नेति-नेति

प्रवचन-क्रम

1. अकेलेपन का बोध...3
2. अज्ञान का बोध...15
3. रहस्य का बोध..28
4. जीवन का सहज स्वीकार..42
5. जीवन जीओ अतिरेक में..55
6. प्रेम संबंध नहीं--चित्त-दशा है...67
7. परतंत्रता से सत्य की ओर...81
8. भ्रम से सत्य की ओर...94
9. श्रद्धा से सत्य की ओर...107 10..स्वप्न से सत्य की ओर
.... 124
11..शून्य से सत्य की ओर
.... 138
12...विरामहीन अंतर्यात्रा
.... 155
13...चैतन्य का द्वार
.... 168
14...विपरीत ध्रवों का समन्वय संगीत
.... 180
15...अपना-अपना अंधेरा
.... 194
16...धारणाओं की आग
.... 207
17..अंधे मन का ज्वर
.... 221
18..संकल्पों के बाहर
.... 235
19...कर्म, ज्ञान, भक्तिः मन के खेल
.... 247
20...ज्ञानः मार्ग नहीं, भटकन है
.... 263
21..भक्तिः भगवान का स्वप्न-सृजन
.... 279
22...कर्मः सबसे बड़ा भ्रम
.... 293

23..सूर्य की ओर उड़ान
....306
24...सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण
....324

नेति-नेति
पहला प्रवचन

अकेलेपन का बोध

एक छोटी-सी कहानी से इस शिविर की पहली चर्चा मैं शुरू करना चाहता हूं। बहुत पुराने दिनों की बात है। एक सम्राट अपने जीवन के अंतिम दिनों की गिनती कर रहा था और बहुत चिंतित भी था। मृत्यु से नहीं, वरन अपने तीन लड़कों से, जिनके हाथ में उसे राज्य को सौंपना था। वह यह निर्णय करने में असमर्थ था कि किसके हाथ में राज्य की शक्ति दे दे, क्योंकि शक्ति केवल उन हाथों में ही शुभ होती है, जो शांत हों। और यह निर्णय बहुत कठिन था कि उन तीनों में शांत कौन है? कैसे परीक्षा हो? कैसे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति उस राज्य के हित में होगा, कौन अहित में?
कुछ चीजें होती हैं, जो बाहर से नापी जा सकती हैं; लेकिन जीवन में जो
भी महत्वपूर्ण है, उसे नापने के लिए न कोई बांट है, न कोई तराजू है।
कुछ चीजें हैं, जो बाहर से पहचानी जा सकती हैं, लेकिन जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बाहर से पहचानने का भी कोई उपाय नहीं है।
कैसे पहचाना जा सके, कैसे जाना जा सके, क्या रास्ता हो?
उस सम्राट ने एक फकीर से पूछा। उस फकीर ने कोई रास्ता बताया। और दूसरे दिन सुबह उसने तीनों अपने बेटों को बुलाया और उन्हें सौ-सौ रुपये दिये और कहा कि तीन जो महल हैं, उन तीनों के नाम--ये सौ-सौ रुपये मैं देता हूं। सौ रुपये में ऐसी चीजें खरीदना कि पूरा महल भर जाये, कुछ जगह खाली न बचे। जो तीनों में सर्वाधिक सफल हो जायेगा, वही सम्राट बनेगा, वही राज्य का अधिकारी हो जायेगा।
कुल सौ रुपये! और महल उन राजकुमारों के बहुत बड़े थे।
पहले राजकुमार ने सोचा, सौ रुपये से क्या महल भरा जा सकेगा? वह गया जुआ
घर में और सौ रुपये उसने दांव पर लगाये। हो सकता है जुए में जीत सके तो फिर बहुत रुपयों से उस बड़े महल को भर ले; क्योंकि महल बहुत बड़ा था। सौ रुपये में भरा नहीं जा सकता था।
लेकिन जैसा कि अकसर होता है, जो बहुत खोजने जुए में जाते हैं, वह भी खोकर लौट आते हैं, जो उनके पास था। वैसे ही वह युवा भी सौ रुपये खोकर घर वापस लौट आया। उसका महल बिल्कुल खाली रह गया।
दूसरे राजकुमार ने सोचा कि सौ रुपये बहुत थोड़े हैं। इतना बड़ा महल हीरे-जवाहरातों से तो भरा नहीं जा सकता। एक ही रास्ता है कि गांव का जो कूड़ा-कचरा बाहर फेंका जाता है, उसे खरीद लिया जाये और महल भर दिया जाये। गांव से जो भी कूड़ा-कचरा बाहर जाता, सब उसने खरीदना शुरू कर दिया और महल में कूड़े-करकट के ढेर लगा दिये। सारा महल भर गया, लेकिन साथ ही दुर्गंध भी भर गयी। उस रास्ते से निकलना भी मुश्किल हो गया।
तीसरे राजकुमार ने भी महल भरा। किससे भरा? कैसे भरा? यह थोड़ी देर में स्पष्ट हो सकेगा।
तिथि आ गयी निर्णय की। परीक्षा के लिए सम्राट आया। पहले राजकुमार का महल खाली था। उस राजकुमार ने कहा,"क्षमा करें, सौ रुपये बहुत कम थे। सोचा मैंने जुआ खेलूं, शायद और जीत जाऊं तो फिर महल को भरूं। मैं हार गया और महल खाली है।"
दूसरे राजकुमार के महल के पास जाकर तो घबराहट हो गयी। इतनी बदबू थी, सारा महल कूड़े-करकट, गंदगी से भरा था! उस राजकुमार ने कहा,"कोई और रास्ता न था। सिर्फ कचरा ही खरीदा जा सकता था। सौ रुपये में और क्या मिल सकता है?" फिर सम्राट तीसरे राजकुमार के महल के पास गया। देखकर दंग रह गये परीक्षार्थी। जो निर्णायक थे, वे देखकर आश्चर्य से भर गये--इतनी सुगंध थी उस महल के पास! फिर वे भीतर गये, रात थी अमावस की। सारे महल में दिये जलाये गये थे! राजा ने पूछा,"तूने महल किस चीज से भरा है?"
उस राजकुमार ने कहा,"प्रकाश से, आलोक से।"

कोने-कोने में दिये जले थे! सारा महल प्रकाश से भरा था, और सुगंधियां छिड़की गयी थीं और महल के द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की पर फूल लटकाये गये थे।
वह महल सुगंध से और प्रकाश से भरा था।
तीसरा राजकुमार सम्राट हो गया। वह उस राज्य का अधिकारी हो गया।
हममें से, बहुत ही मुश्किल है, कोई जीवन का सम्राट हो सके। क्योंकि या
तो हमने जीवन को दांव पर लगा रखा है। और हर दांव इस आशा में कि कुछ मिलेगा तो फिर हम जी लेंगे। और जैसा कि दांव पर होता है, हम हारते ही चले जाते हैं और जीवन का महल अंततः सूना ही रह जाता है। और या फिर हममें से कुछ ने कूड़े- करकट से महल को भरने की ठान ली है। जीवन में जो भी व्यर्थ है, उसी को खरीदकर हम महल में लिए चले आ रहे हैं। जिसका कोई मूल्य नहीं अंतिम, जिसका कोई अंतिम अर्थ नहीं; उस सब कूड़े-करकट को हम घर में इकट्ठा कर रहे हैं! क्योंकि तर्कना हमारी यही है कि इतना छोटा-सा जीवन, इतनी छोटी शक्ति, इससे महल कोई हीरे-जवाहरातों से भरा नहीं जा सकता। इतनी थोड़ी शक्ति से महल कूड़े से ही भरा जा सकता है, सो हम कूड़े से भर रहे हैं।
लेकिन हमें पता नहीं कि जिस महल को भरने में हम लगे हैं, उसी महल की दुर्गंध हमें ही उस महल के भीतर रहने नहीं देगी। हमारा जीना ही मुश्किल हो जायेगा और हमारा जीना मुश्किल हो गया है। इतने अशांत हैं, इतने दुखी हैं, इतने चिंतित हैं! क्यों? यह चिंता और अशांति आकाश से नहीं आती, न चांदत्तारों से आती है। यह चिंता और पीड़ा कहीं से भी नहीं आती है सिवाय उस महल के, जो हमने ही दुर्गंध, कूड़े-करकट से भर रखा है। सारी अशांति, सारी चिंता, सारी पीड़ा वहीं से पैदा होती है। यह हमारे ही श्रम का फल है, यह हमारी ही चेष्टा है, यह हमारा ही प्रयास है, हमारा ही प्रयत्न है।
लेकिन ये दो तरह के राजकुमार तो हमारे भीतर हैं। वह तीसरा राजकुमार हमारे भीतर नहीं है, जो प्रकाश से और सुगंध से अपने महल को भर सके।
यहां इस निर्जन में इस सागर तट पर इसीलिए आपको बुला भेजा है कि इन तीन दिनों में कुछ बातें आपसे करूं कि महल का दिया जल सके, महल में फूल आ सकें, सुगंध आ सके। और शायद परमात्मा के राज्य के आप भी अधिकारी हो सकें। कौन को पता है, किसे पता है, आपको भी इसलिए नहीं भेजा गया होगा? किसको पता है कि जीवन की इस एक परीक्षा में कैसे और कौन उत्तीर्ण होगा?
लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि जीवन के अंत तक जो प्रकाश जला लेता है, अपने जीवन के महल को जो सुगंध से भर लेता है, स्वयं जो संगीत बन जाता है; अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, अगर कहीं भी कोई आनंद है, अगर कहीं भी कोई संपदा है तो निश्चित ही वह उसका अधिकारी हो जाता है।
इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं; ताकि आपका जीवन गृह खाली न रह जाये, कूड़े-करकट से न भर जाये। प्रकाश से भर सके, संगीत से भर सके, सुगंध से भर सके। यह कैसे हो सकता है? आज की रात तो कुछ थोड़े-से प्राथमिक सूत्रों पर आपसे मैं बात करूंगा, जिनके आधार पर तीन दिन हम जीने की कोशिश करेंगे।
यह महल कैसे प्रकाश से भरेगा? वह तो आने वाले तीन दिनों में उसकी दिशा में कुछ सूत्र, कुछ वैज्ञानिक चरण, कुछ सीढिय़ां आपको कहूंगा, लेकिन उसके पहले आज तो कुछ प्राथमिक सूत्र ही समझ लेने जरूरी हैं कि इन तीन दिनों के शिविर में हम कैसे जियेंगे, कैसे रहेंगे?
और इतना स्पष्ट समझ लें कि एक आदमी तीन क्षणों के लिए भी ठीक से जीना सीख जाये तो सारा जीवन ठीक हो सकता है, क्योंकि जो व्यक्ति एक क्षण को भी जीने की ठीक दिशा में कदम उठा ले, जो एक क्षण को भी जीवन के आनंद से संबंधित हो जाये, फिर इस जीवन में दुबारा उस आनंद से अलग हो जाना असंभव है। एक बार भी जो आंख खोल ले और देख ले, फिर इस जीवन में आंख का बंद हो जाना, और अंधे रहकर भटक जाना संभव नहीं है।
तीन दिन बहुत हैं और तीन दिन आप निकालकर यहां आ गये हैं, वह भी स्वागत
के योग्य है और धन्यवाद के योग्य भी। क्योंकि आज की दुनिया में कोई तीन दिन भी जीवन को प्रकाश से भरने के लिए निकालने को राजी नहीं है!
एक आदमी, एक बहुत बड़ा सौदागर, जो नौका लेकर दूर-दूर देशों में करोड़ों रुपये कमाने गया था। उसके मित्रों ने उससे कहा कि तुम नौका में घूमते हो। पुराने जमाने की नौका है। तूफान होते हैं, खतरे होते हैं, नावें डूब जाती हैं। तुम कम से कम तैरना तो सीख लो।

उस सौदागर ने कहा, तैरना सीखने के लिए मेरे पास समय कहां है?
लोगों ने कहा, ज्यादा समय की जरूरत नहीं है। गांव में एक कुशल तैराक है। वह कहता है, तीन दिन में ही हम तैरना सिखा देंगे।
लेकिन उसने कहा, वह ठीक कहता है; लेकिन तीन दिन मेरे पास कहां? तीन दिन में तो हजारों का कारोबार कर लेता हूं। तीन दिन में तो लाखों यहां से वहां हो जाते हैं। कभी फुरसत मिलेगी तो जरूर सीख लूंगा।
फिर भी लोगों ने कहा कि बड़ा खतरनाक है, तुम्हारा नाव पर निरंतर जीवन है, किसी भी दिन खतरा हो और तुम तैरना न जानो!
तो उसने कहा, और कोई सस्ती तरकीब हो तो बता दें, इतना समय तो मेरे पास नहीं है।
तो लोगों ने कहा, कम-से-कम दो पीपे अपने पास रख लो। कभी जरूरत पड़ जाये
तो उन्हें पकड़कर तुम तैर तो सकोगे।
उसने दो पीपे खाली मुंह बंद करवाकर अपने पास रख लिये। उनको हमेशा अपनी नाव में, जहां सोता, वहीं रखता। और किसी को पता भी न था कि एक दिन वह घड़ी आ गयी। तूफान उठा और नाव डूबने लगी। तो वह चिल्लाया, मेरे पीपे कहां हैं?
तो उसके नाविकों ने समझा कि ठीक है, वह अपने पीपे खोजकर आ जायेगा। वह उसके बिस्तर के नीचे ही रखे रहते हैं। तो बाकी नाविक तो कूद गये, वे तैरना जानते थे। वह अपने पीपों के पास गया। लेकिन दो खाली पीपे भी वहां थे, जो उसने रख छोड़े थे तैरने के लिए और दो स्वर्ण-अशर्फियों से भरे पीपे भी थे, जिन्हें वह लेकर आ रहा था। उसका मन डांवांडोल होने लगा कि कौन से पीपे लेकर कूदे--सोने से भरे हुए या खाली? फिर आखिर उसने देखा कि नाव तो डूबने लगी है। खाली पीपे लेकर कूदने से क्या होगा? उसने सोने से भरे पीपे लिये और कूद गया!
जो उसका हुआ होगा, वह आप समझ ही सकते हैं। वह तीन दिन तैरने के लिए नहीं निकाल सका था! आप तीन दिन तैरने के लिए निकाल सके हैं, इससे स्वागत आपका करता हूं। और उसे मौका भी मिल गया था कि वह खाली पीपे लेकर कूद जाता, लेकिन वह भरे पीपे लिये कूद गया! क्योंकि जिनकी जीवन भर भरे होने की आदत होती है, वे एक क्षण में खाली होने को राजी नहीं हो सकते।
इधर तीन दिनों में खाली पीपे कैसे उपलब्ध किये जा सकें, वही मुझे आपसे कहना है। और नदी में तैरना हो तो खाली पीपा सहयोगी होता है। और अगर परमात्मा के सागर में और जीवन के सागर में तैरना हो तो स्वयं को खाली पीपा बन जाना जरूरी होता है। वहां जो व्यक्ति जितना खाली और शून्य हो जाता है, वह उतना ही प्रभु के सागर में तैरने में समर्थ हो जाता है।
लेकिन हम सब अपने को भरने की कोशिश में लगे रहते हैं! कोई सोने से भर लेता है, कोई मिट्टी से। कोई कंकड़ों से भर लेता है, कोई हीरे-जवाहरातों से। लेकिन पीपा सोने से भरा है कि मिट्टी से, कि कंकड़ों से, कि हीरे-जवाहरातों से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भरा पीपा डुबाता है, चाहे किसी चीज से भरा हो।
उस दिन सोने से भरे पीपों ने उसे बचाया नहीं। कितना उसने मन में नहीं कहा होगा डूबते क्षणों में कि "अरे पीपे, मैंने तुझे सोने से भरा है, और तू मुझे बचाता नहीं। मैंने कोई मिट्टी तो भरी नहीं है, जो मैं डूब जाऊं; मैंने सोने से भरा है तुझे, फिर भी तू डुबाता है!" लेकिन पीपे ने शायद ही सुना हो, क्योंकि भरे पीपे सिर्फ डूबना जानते हैं, तैरना नहीं जानते। फिर वे किससे भरे हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
हम क्या भर लिये हैं अपने भीतर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमने सिर्फ डूबने की तैयारी की है, तैरने की हमारी कोई तैयारी नहीं है।
धर्म तैरने की कला है।
और हम सब जो कुछ सीखे हैं, वह सब डूबने की तैयारी है। कैसे हम अपने को खाली करेंगे, कैसे हम तैरने में समर्थ हो जायेंगे, कैसे हम जीवन की नाव को अज्ञात के सागर में उस तट तक पहुंचा सकते हैं--जिस तट का नाम परमात्मा है, जिस तट का नाम प्रभु है, जिसका नाम सत्य है? कैसे?
प्राथमिक सूत्र स्मरण कर लेने जरूरी हैं।

पहली बात, मुझसे लोग पूछते हैं कि साधना-शिविर यानी क्या? कल ही कोई मुझसे रास्ते में पूछ रहा था कि साधना-शिविर क्या है और सत्संग क्या है? तो मैंने उन्हें कहा, सत्संग उनके लिए है, जो श्रावक हैं, सुनने को उत्सुक हैं। और साधना शिविर उनके लिए है, जो साधक हैं, सिर्फ जो सुनने को नहीं, कुछ करने को आतुर हैं। जो लोग सिर्फ सुनने आ गये हों, वह गलत जगह आ गये हैं। सुनने के लिए तो मैं खुद ही आपके नगरों में आ जाता हूं कि आप सुन सकें, लेकिन कुछ करना हो, इसलिए यहां इस दूरी पर आपको बुला भेजा है, इस अकेलेपन में, ताकि कुछ किया जा सके।
इन तीन दिनों में सुनने की बहुत चिंता मत करना। इन तीन दिनों में कुछ करने का ख्याल स्पष्ट होना चाहिए। हम चाहे कितनी ही अच्छी बातें सुन लें, चाहे कितनी ही अच्छी बातें जान लें, उनके जानने और सुन लेने से जीवन में कोई क्रांति और कोई परिवर्तन नहीं हो जाता है, बल्कि इस लिहाज से व्यर्थ की बातें जानना उपयोगी भी है, क्योंकि व्यर्थ की बात जानकर कोई भी यह नहीं सोचता कि मुझे कुछ मिल गया है, लेकिन सार्थक बातें जानकर एक भ्रम पैदा होता है कि शायद हमें कुछ उपलब्ध हो गया है, हमें कुछ मिल गया है। अकेले सुनने से कुछ भी मिलने को नहीं है, यह साधक को सबसे प्रथम जान लेना चाहिए। उसे कुछ करना पड़ेगा, उसे कुछ होना पड़ेगा, उसे अपनी जीवन-विधि में कोई परिवर्तन, अपने जीने के ढंग में कोई भेद, अपने होने की व्यवस्था में कोई क्रांति उसे करनी पड़ेगी तो कुछ हो सकता है, अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता। मात्र सुनने वाला होने से कुछ भी अर्थ नहीं है। सुनना भी एक मनोरंजन है। कोई संगीत सुनकर आनंद अनुभव करता हैं, कोई जीवन के सत्य की बातें सुनकर आनंद अनुभव करता है, लेकिन वह मनोरंजन से ज्यादा नहीं, थोड़ी देर के लिए भुलावा है। हमें कुछ करना पड़े तो हमारा जीवन बदल सकता है।
मैं जो कहूंगा इन तीन दिनों में, वह इसी दृष्टि से कि वह आपके भीतर कोई क्रियात्मक रूपांतरण बने, कोई एक्टिव ट्रांसफार्मेशन बने, आपके भीतर कुछ बदल ले आये। लेकिन वह बदल मैं नहीं ला सकता हूं, वह बदल आपका सहयोग मिले तो निश्चित आ सकती है।
पहली बात, साधना-शिविर एक क्रियात्मक जीवन-क्रांति के लिए सक्रिय रूप से, रचनात्मक रूप से, सृजनात्मक रूप से स्वयं को बदलने के लिए एक अवसर है। मात्र सुनने के लिए, समझने के लिए; कुछ तर्क, कुछ विचार, कुछ चिंतन के लिए नहीं; बल्कि कुछ स्वयं के जीवन की स्थिति को नया रूप, नया जीवन, नयी दिशा देने के लिए।
इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से ध्यान में ले लेंगे, तो मैं जो कहूंगा,
उस पर आपस में कोई विचार नहीं करना है। मैं जो कहूंगा, उस पर बहुत चिंतन नहीं करना है, उस पर बहुत मनन नहीं करना है। मैं जो कहूंगा, उस पर आपस में विवेचन, विवाद और चर्चा बहुत नहीं करनी है।
मैं जो कहूं, उस पर थोड़े प्रयोग करने हैं। तीन दिन बहुत छोटा समय है। उसे चर्चा में, विचार में खो देना उपयोगी नहीं। उस पर कुछ थोड़े से प्रयोग कर लेने जरूरी हैं। क्योंकि मैं जो कहूंगा, वह प्रयोग करने से ही स्पष्ट होगा और समझ में आयेगा कि उसका क्या अर्थ है।
मैं जो कहूंगा, उसे अगर थोड़ा भी, उस दिशा में एक कदम भी उठायेंगे तो वह पूरा का पूरा स्मरण में स्पष्ट हो जायेगा कि क्या कहा है और उसका क्या अर्थ है। उस पर कितना ही सोचें, विचार करें, आपस में विवाद करें, कुछ भी स्पष्ट नहीं होगा, बल्कि थोड़ा स्पष्ट भी हुआ होगा तो वह भी अस्पष्ट हो जायेगा, वह भी उलझ जायेगा।
जीवन में कुछ चीजें हैं, जो केवल जानकर ही नहीं, करके ही जानी और देखी
जा सकती हैं।
एक अंधे आदमी को हम समझाते रहें प्रकाश के संबंध में तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा, लेकिन उसकी आंख का इलाज हो सके, वह आंख खोलकर देख सके तो प्रकाश के संबंध में बिना समझाये सब कुछ समझ में आ जाता है। हमारी स्थिति भी कुछ आंख बंद किये लोगों जैसी है। आंख खोलने का उपाय किया जा सकता है, लेकिन प्रकाश को समझने का कोई उपाय नहीं है। यह आंख कैसे खुले? इसकी प्राथमिक तैयारी हमारी क्या होगी?

पहली तैयारी--इसे ध्यान में ले लेना जरूरी है कि हम कुछ करने को यहां इकट्ठे हुए हैं, कुछ सुनने और विचार के लिए नहीं। एक बार यह स्पष्ट हो मन में कि कुछ करने से रास्ता साफ होगा तो फिर मैं जो कहूंगा, आप उसे दूसरे ढंग से सुनेंगे।
एक घर में आग लगी हो और मैं जाकर वहां कहूं कि घर में आग लगी हुई है और
उस घर के लोग विचार करने लगें कि मैं क्या कह रहा हूं, मेरे कहने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है तो उस घर की आग को बुझाना बहुत मुश्किल हो जायेगा।
लेकिन जब मैं कह रहा हूं, घर में आग लगी हुई है तो मैं कोई उपदेश नहीं
दे रहा हूं, न मैं कोई दार्शनिक बात कह रहा हूं। मैं केवल एक सूचना दे रहा हूं कि इस घर से बाहर निकल जाना जरूरी है। घर से बाहर आने के लिए एक सृजनात्मक, एक सक्रिय कदम उठाने के लिए पुकार दे रहा हूं। घर में आग लगी है--यह न कोई सिद्धांत है, न कोई विवाद हैं, न कोई वाद है, न कोई फिलसफा है। यह केवल एक खबर है। और खबर भी उनके लिए जो घर से दौड़कर बाहर आ सकते हैं, जो कुछ कर सकते हैं।
इधर जो बातें भी मैं तीन दिन में कहने वाला हूं, वह इसी दृष्टि से कि आपके भीतर कोई सक्रिय कदम पैदा हो सके। यह आपको प्राथमिक रूप से स्मरण रख लेना जरूरी है कि मेरा कहा हुआ, कोई सक्रिय कदम उठाने की दिशा में एक पुकार, एक आवाहन है--सुनने, समझने, तत्व-चिंतन के लिए नहीं, तत्व-साधना के लिए कोई दृष्टि है, यह पहली बात है।
दूसरी बात, साधना-शिविर में हम इकट्ठे हो जायें एक जगह एकांत में, इससे कोई भी हल नहीं होता। वहां

(पेईज नं 8 मीसींग)

पसीने की बूंदें आ गयीं। उनके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। वे कुर्सी पर आंख बंद करके बैठ गये। वह पहला मुकदमा हार गये! उन्होंने पीछे मुझे कहा कि मैं हैरान रह गया कि एक छोटी-सी बटन से क्या इतना संबंध हो सकता है? क्या इतना संबंध हो सकता है एक छोटी-सी बटन से! क्या मैं इतना गुलाम हो सकता हूं कि बटन नहीं थी तो सब गड़बड़ हो गया?
हम सब भी इतने ही गुलाम हैं। और हम अगर अपने जीवन की दिशा को बदलना चाहते हों तो हमारे आसपास हमने जो आदतों का एक घेरा बना रखा है, छोटी-छोटी बटनों का ही सही, उस घेरे को तोड़ देना जरूरी है।
इन तीन दिनों में इस बात का सचेतन प्रयास करें। कांशस एफर्ट इस बात का करें। ध्यान रखें कि मैं अपनी आदतों के घेरे में वापस तो नहीं लौटा जा रहा हूं। यहां कोई अखबार पढ़ने की जरूरत नहीं है, न यहां रेडियो सुनने की जरूरत है, न एक-दूसरे से व्यर्थ की बातें करने की जरूरत है। तीन दिन के लिए विश्राम ले लें अपनी सब आदतों से।
यहां अगर पति और पत्नी भी साथ आये हैं तो उन्हें एक-दूसरे को पति और पत्नी मानने की कोई भी जरूरत नहीं है। इन तीन दिन के लिए छुट्टी ले लें पत्नी होने से और पति होने से। इन तीन दिन के लिए वह सारे भाव घर पर छोड़ आयें, जो घर के घेरे में हमको कैद रखते हैं, अन्यथा आप वहां से यहां कभी नहीं आ पायेंगे।
जमीन पर यात्रा कर लेनी बिल्कुल आसान है। असली यात्रा मन के तल पर करने की जरूरत है। साधना-शिविर नारगोल में नहीं हो रहा है, नारगोल में हो रहा होता तो आप आ चुके वहां। साधना-शिविर आपके भीतर होगा और वह यात्रा अगर आप करते हैं सचेतन रूप से, तो ही हो सकती है; अन्यथा रेलगाडिय़ां हमें कहीं भी पहुंचा देती हैं, रास्ते हमें कहीं भी पहुंचा देते हैं; सिर्फ एक जगह के बाहर हमें नहीं ले जा पाते, अपने बाहर नहीं ले जा पाते। हम हमेशा अपने साथ मौजूद हो जाते हैं।
साधना-शिविर में बहुत जरूरी है कि आप अपने को थोड़ा-सा घर छोड़ आते। घर छोड़ आये हों--न छोड़ आये हों तो अभी छोड़ दें। इन तीन दिनों में आप एक नये आदमी की तरह जीयें, जिसका कोई ढांचा नहीं है, कोई आदत नहीं है। और जो-जो

आदतें आपकी हैं, और जो-जो आपका ढांचा है, जो मन को जकड़ता है, उससे थोड़ा सावधान रहने की कोशिश करें।
हो सकता है आपको विवाद करने की आदत हो। किसी ने कुछ कहा और आप विवाद करने लगे। तो थोड़ा सचेत होकर देखें कि मैं कहीं अपनी विवाद करने की आदत में तो नहीं पड़ रहा हूं। और जैसे ही ख्याल आ जाये, फौरन क्षमा मांग लें और कहें, "मैं भूल गया, मैं भूल गया। मेरी आदत वापस लौट आयी। मैं क्षमा चाहता हूं और वापस लौटता हूं। इस आदत को यहीं छोड़ देता हूं।"
दिन भर हमारी बातें करने की आदतें है! कुछ-न-कुछ हम बात कर रहे हैं! मौन बैठने का तो कोई सवाल नहीं है। और आपको पता ही नहीं है कि बात करने वाले लोग कभी भी जीवन के सत्य को नहीं जान सकते हैं। केवल वे ही लोग, जो कभी मौन होना भी जानते हैं, वे ही पहुंच पाते हैं।
मौन हुए बिना कोई स्वयं के सत्य तक न कभी पहुंचा है, न कभी पहुंच सकता है। लेकिन हम चौबीस घंटे बातचीत में तल्लीन हैं। एक घड़ी हमें मौका मिल जाये चुप होने का तो बड़ी बेचैनी, बहुत कठिनाई शुरू हो जाती है। ऐसा लगने लगता है कि कैसे गुजरेगी यह घड़ी!
यहां तीन दिन इसका प्रयोग करें। ज्यादा से ज्यादा मौन रहें। कम-से-कम बोलें। बहुत जरूरी हो तो बोलें, बिल्कुल टैलिग्राफिक जैसे कि आपको पैसे ठुक रहे हैं। एक-एक शब्द बोलने के। आदमी तार करता है तो लंबी-लंबी बातें नहीं लिखता। दस शब्द लिख देता है, आठ शब्द लिख देता है; एक-एक काटता जाता है कि यह व्यर्थ है, इसकी कोई जरूरत नहीं है। और आठ शब्दों का तार उतना काम करता है कि जितनी आठ हजार शब्दों की चिट्ठी नहीं करती। क्योंकि शब्द जितने जरूरी रह जाते हैं, जितने महत्वपूर्ण हो जाते हैं, उतने ही कन्सन्ट्रेटेड हो जाते हैं। वे उतने ही एकाग्र हो जाते हैं, उतनी ही उनमें तीव्रता और बल आ जाता है। जितना बिखर जाते हैं, जितने ज्यादा हो जाते हैं, उतनी तीव्रता कम हो जाती है, उतना बिखराव हो जाता है। जैसे सूरज की किरणों को हम इकट्ठा कर लें किसी कांच से तो आग पैदा हो जाती है और बिखरी हुई किरणें बढ़ती रहती हैं तो कोई आग पैदा नहीं होती।
जो लोग मौन होने की कला सीख जाते हैं, उनके शब्दों में प्राण और जादू आ जाता है। उनका एक-एक शब्द आग पैदा करने की कूबत और शक्ति को उपलब्ध कर लेता है; लेकिन हम चौबीस घंटे बोले जा रहे हैं। कुछ भी बोले जा रहे हैं, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी। जिसका कोई उपयोग न था, जिससे दुनिया में किसी का हित नहीं हुआ, वह हम बोले चले जा रहे हैं!
इन तीन दिनों में ख्याल रखें, ऐसा एक शब्द भी आपके ओठों से बाहर न आये,
जो अनावश्यक था। और आप हैरान हो जायेंगे, आवश्यक शब्द इतने कम हैं, आवश्यक बातें इतनी कम हैं कि आप पायेंगे कि घंटों मौन में बीते जा रहे हैं। कभी कोई एकाध शब्द
लाओत्से का नाम आपने सुना होगा। कोई ढाई हजार वर्ष पहले चीन में हुआ। रोज सुबह घूमने जाता था। एक मित्र भी उसके साथ घूमने जाता था। मित्र आकर उसे करता नमस्कार। आधा घंटा बाद लाओत्से कहता नमस्कार! आधा घंटा चल होने के बाद इतनी ही कुल बात होती थी। बस ये नमस्कार होते थे। घंटे-दो घंटे घूमकर पहाड़ी से वे लौटते थे।
एक दिन मित्र के साथ एक मेहमान भी आ गया। फिर वे तीनों घूमने गये। रास्ते में उस मेहमान ने इतना ही कहा, कितनी खूबसूरत सुबह है, कितना अच्छा मौसम है। लेकिन वे दोनों चूंकि चुप थे, वह इतना कहकर, वह भी चुप हो गया। फिर वे वापस लौट आये।
घर आकर लाओत्से ने अपने मित्र के कान में कहा कि अपने मेहमान को कल से
मत लाना। बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। हमको भी दिखायी पड़ रहा था कि सुबह बहुत सुंदर है, इसे कहने की जरूरत क्या थी? अनावश्यक था? हम भी मौजूद थे, हम भी उस सुबह को देख रहे थे। इसे कहने की क्या जरूरत थी? इस बातूनी मित्र को साथ मत लाना।
आवश्यक-अनावश्यक का ऐसा स्पष्ट भेद मन में होना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूं। वह आवश्यक है या अनावश्यक है, और अगर बीच में भी ख्याल आ जाये कि अनावश्यक बात मैंने कही, आधी हो गयी तो आधी ही छोड़ देना इन तीन दिनों में।

वहीं छोड़ देना, वहीं से क्षमा मांग लेना कि गलती हो गयी। मैं व्यर्थ की बात कर रहा हूं, आदत के कारण किये चला जा रहा हूं।
ये तीन दिन मौन के दिन बनने चाहिए। यह समुद्र का किनारा इतना अद्भुत है, इसके पास अकेले में जाकर बैठना। ये सरू के दरख्त इतने सुंदर हैं, इनके पास बैठना! न अपनी पत्नी से बात करना, न अपने मित्र से। सरू के दरख्तों से कर लेना, समुद्र से कर लेना।
यहां शिविर में आप बिल्कुल अकेले हैं। इस भांति के भाव-बोध को... तीसरी बात स्मरण रखना। यहां ये छह सौ लोग नहीं हैं, यहां मैं अकेला हूं। क्योंकि हम जिस दिशा में जाना चाहते हैं, जिस ध्यान की दिशा में, जिस साधना की दिशा में, वहां कोई संगी-साथी नहीं है। वहां हर आदमी अकेला है। परमात्मा के रास्ते पर कोई भीड़-भाड़ नहीं जाती। वहां एक-एक आदमी ही जाता है। तो यहां हम सब अकेले हैं। साधक की हैसियत से कोई भीड़-भाड़ का संबंध नहीं। यहां इतने लोग हैं, लेकिन प्रत्येक को यह अनुभव करना है तीन दिन कि मैं बिल्कुल अकेला हूं। मेरे साथ यहां कोई भी नहीं है। मुझे ऐसे जीना है तीन दिन, जैसे मैं बिल्कुल अकेला हूं। कंपनी मत खोजें। यहां कोई संगी, साथ मत खोजें। यह मत कहें कि मुझे मेरे मित्रों के साथ ठहरा दें। यहां कोई है ही नहीं।
यहां आप बिल्कुल अकेले हैं और यहां तीन दिन बिल्कुल अकेले, टोटल लोनलीनेस में जीने का प्रयोग करना है। अकेले जीने में जो समर्थ हो जाता है, उसके लिए वे द्वार खुल जाते हैं, जो भीड़ में रहने वालों के लिए हमेशा बंद है। अकेले होने का भाव--अभी रात आप जाकर सोयेंगे तो इस भांति, जैसे आप बिल्कुल अकेले हैं, इस बड़ी जगह में कोई भी नहीं है। आप बिल्कुल अकेले हैं, ऐसे चुपचाप अकेले नींद में डूब जायें। सुबह जब उठें, तब भी ऐसे कि जैसे बिल्कुल अकेले हैं।
और सच है कि आदमी अकेला है। जन्म अकेला है, मौत अकेली है; बीच में बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ती है तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है! शरीर से शरीर टकरा जाते हैं, तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है। शब्द से शब्द बात कर लेते हैं, तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है। लेकिन कोई किसी के साथ नहीं है। यह यात्रा बिल्कुल अकेली है। एक-एक आदमी अकेला है। भीड़ के बीच भी एक-एक आदमी अकेला है। कोई किसी के साथ नहीं है।
कम-से-कम तीन दिन तो इस स्मरण को गहरा करें कि मैं बिल्कुल अकेला हूं।
इस स्मरण के परिणाम होंगे। जब आपको ख्याल आयेगा कि मैं बिल्कुल अकेला हूं तो इसके साथ ही एक अद्भुत मौन आपके भीतर पैदा होना शुरू हो जायेगा।
क्योंकि बात वहां शुरू होती है, जहां कोई और है। संबंध वहां बनते हैं, जहां कोई और है। झगड़े, मित्रता और शत्रुता वहां खड़ी होती है, जहां कोई और है।
जहां मैं अकेला हूं, बिल्कुल अकेला, वहां एक कोरा सन्नाटा भीतर पैदा हो जाये तो आश्चर्य नहीं।
मौन एकाकीपन की छाया है।
तो अकेले होने का भाव इन तीन दिनों में गहरे से गहरा होना चाहिए। किसी
को बाधा न दें, किसी के अकेलेपन को न तोड़ें। कोई अकेला झाड़ों के नीचे बैठा हो तो उसके पास न जायें, पहुंच जायें भूल से तो फौरन हट जायें, जैसे ही ख्याल आ जाये। हरएक को अकेले होने दें, अकेला रहने दें, अकेला जीने दें, अकेला अनुभव करने दें।
अगर तीन दिन कोई इन्टेनसिटि से, कोई पूरी तीव्रता से अकेलेपन का अनुभव करे तो तीन दिन में वह क्रांति हो जायेगी, जिसके लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं।
तीसरा सूत्र यह स्मरण रखे कि हम बिल्कुल अकेले हैं, एकदम अकेले हैं-- एकदम अकेले, कोई नहीं है साथ।
एक यूनान का फकीर था गुरजिएफ। एक छोटे-से गांव में एक प्रयोग कर रहा था। तीस लोगों को एक बंगले में बंद कर रखा था। और उन तीस लोगों से कहा था कि तुम तीस यहां नहीं हो, एक-एक ही है यहां। हरएक को यही अनुभव करना है कि मैं अकेला हूं। तीन महीने तक यह प्रयोग चलेगा। कोई यह ख्याल न करे कि दूसरा यहां मौजूद है। उनतीस लोग यहां नहीं है, अकेले हो तुम। न बोलना है, न किसी की तरफ आंख उठाकर देखना है; क्योंकि आंखों से भी बोला जा सकता है। न स्मरण

रखना है कि कोई यहां है--अकेले, बिल्कुल अकेले हो। तीन महीने के उस प्रयोग ने उन लोगों को कहां पहुंचा दिया!
तीन महीने के उस प्रयोग में उन्होंने वह अनुभव किया, जो कि आदमी तीन जन्मों भी मेहनत करता तो अनुभव नहीं हो पाता। तीन महीने में वे परिपूर्ण शांत हो गये, क्योंकि जहां दूसरा मौजूद नहीं है, वहां बोलने का उपाय नहीं। जहां दूसरा है ही नहीं, वहां मन में भी बात करने का कोई उपाय नहीं। मन में भी हम तभी बात कर पाते हैं, जब हम दूसरे को कल्पित कर लेते हैं, दूसरे को खड़ा कर लेते हैं, दूसरे की इमेज बना लेते हैं। दूसरे की प्रतिमा खड़ी हो जाती है, तब हम बात कर पाते हैं। जब कोई दूसरा है ही नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं, इसी भाव में वे तीन महीने तक डूबते चले गये, डूबते चले गये, तो सारी वाणी समाप्त हो गयी। सारा संवाद बंद हो गया, सारे विचार गिर गये, और निर्विचार मौन में उन्होंने उसे जान लिया, जो उनके भीतर छिपा था।
जब तक हम दूसरे से बोल रहे हैं, तब तक हम उसे नहीं जान सकेंगे, जो हम हैं। जो"मैं" हूं, उसे जानना हो, तो"तू" से छुटकारा चाहिए। वह जो दूसरा है, उससे छुट्टी चाहिए, उससे मुक्ति चाहिए, उससे अवकाश चाहिए। जब तक हम"तू" से बंधे हुए हैं, तब तक"मैं" को नहीं जाना जा सकता है कि वह क्या है। क्योंकि हमारी नजर, हमारी दृष्टि, हमारा ध्यान सब दूसरे पर बहा जा रहा है, दूसरे पर बहा जा रहा है। हम चौबीस घंटे दूसरे पर बिखरे जा रहे, चौबीस घंटे दूसरे पर घूम रहे हैं, भटक रहे है और स्वयं पर आना नहीं हो पाता है। यह स्वयं पर आना हो सकता है, लेकिन उसके लिए अकेलेपन का, बिल्कुल लोनलीनेस का ख्याल, तीव्र भाव चाहिए।
बोधिधर्म एक भिक्षु था। एक सुबह एक युवक उसके पास आया और बोधिधर्म से पूछने लगा कि मैं कौन हूं, मुझे इसका उत्तर चाहिए। बोधिधर्म बड़ा कृपालु, बड़ा दयालु व्यक्ति था। उसकी दया आपको अभी पता चल जायेगी। उसने चांटा--जोर से एक चांटा उस युवक को मारा। वह युवक तो तिलमिला गया और उसने कहा, यह आप क्या करते हैं? मैं पूछने आया हूं कि मैं कौन हूं, और आप मारते हैं!
वह युवक उठा और वापस लौट गया। उसने जाकर एक दूसरे भिक्षु को कहा कि मैं गया था बोधिधर्म से पूछने, मैंने बड़ा नाम सुना था उनका। उन्होंने मुझे चांटा मार दिया है। उस भिक्षु ने कहा, बोधिधर्म बहुत दयालु है। क्या तू मुझसे पूछने आया है? अगर मुझसे पूछने आया है तो ठहर, मैं अपना डंडा उठाता हूं।
वह तो बहुत हैरान हो गया, लेकिन लौटते समय उसे भी ख्याल आया कि बोधिधर्म को क्या प्रयोजन है मुझे मारने से? वह मुझे मारेगा क्यों? अपने हाथ को तकलीफ ही दी और तो कुछ नहीं। जरूर कोई बात होगी, जरूर कोई बात होगी। वह फिर दूसरे दिन सुबह पहुंच गया और बोधिधर्म के पास जाकर बैठा ही था
कि बोधिधर्म ने कहा, फिर आ गये? पूछोगे आज फिर? अगर पूछोगे तो फिर मारूंगा, और अगर आज नहीं भी पूछा तो भी मारूंगा, बोलो क्या करते हो?
वह युवक तो घबराया और नहीं बोल सका। बोधिधर्म हंसने लगा। उसने कहा, पागल, तू मुझसे पूछने आ गया है कि मैं कौन हूं! दूसरे से पूछता है कि मैं कौन हूं, तो उत्तर तुझे कभी भी नहीं मिलेगा। और जो भी उत्तर मिलेंगे, सब झूठे मिलेंगे, क्योंकि दूसरा यह उत्तर कैसे दे सकता है कि तू कौन है। वह उत्तर तो स्वयं से ही आयेगा। इसलिए मैंने तुझे चांटा मारा कि शायद मेरे चांटा मारने से तू मुझसे विरत हो जाये और अपने में लौट जाये। मेरे चांटा मारने से मैंने कोशिश की, ताकि तू अपने में लौट जाये, ताकि तू वापिस लौट जाये।
हम अपने में वापस लौट जायें तो शायद उसका पता चल जाये, जो हम हैं। और उसका पता चल जाना ही सत्य का पता चल जाना है। और उसका पता चल जाना ही प्रभु का पता चल जाना है। और उसका पता चल जाना ही जीवन के घर में रोशनी का जल जाना है, सुगंध का फैल जाना है।
तो मैं तीन दिन पूरी कोशिश करूंगा कि आप अपने पर लौट जायें। मैं इतना दयालु नहीं हूं कि मैं आपको चांटा मारूं। लेकिन पूरी कोशिश करूंगा कि आप अपने घर वापस लौट जायें। और इस अपने पर वापस लौटने में आपका जो सहयोग होगा, वह यह कि"तू" को भूल जाइये, यहां कोई दूसरा नहीं है।"दी अदर"--वह जो दूसरा है, उसको छोडिय़े, उसको भूल ही जाइये कि वह है। इसलिए दरख्तों के साथ आसानी

हो जाती है, समुद्रों के साथ आसानी हो जाती है, पहाड़ों के साथ आसानी हो जाती है, क्यों? क्योंकि दरख्तों को"तू" कहने का आपको ख्याल नहीं आता, समुद्र को"तू" कहने का ख्याल नहीं आता।
असली कठिनाई ह्युमन रिलेशनशिप की है। वह आदमी के साथ हमेशा"तू" मौजूद
हो जाता है। इसलिए थोड़ी देर को यहां समुद्र के पास जाना। समुद्र आपको अपनी तरफ वापस लौटा देता है, क्योंकि वहां कोई"तू" नहीं है। दरख्तों के पास बैठना। दरख्त आपको अपने पास वापस लौटा देते हैं, क्योंकि वहां कोई"तू" नहीं है। आदमी के पास कठिनाई है अभी, क्योंकि वहां उसकी मौजूदगी तत्क्षण आपके चित्त को उसके आसपास घुमाने लगती है। आप अपने पर नहीं लौट पाते, उसके पास पहुंच जाते है। एक दिन जरूर ऐसा आ जाता है, जब आदमी के पास भी आप इसी तरह बैठ सकते हैं, जैसे वृक्ष के पास। आदमी के पास भी इसी भांति बैठ सकते हैं, जैसे सागर के पास।
जिस दिन कोई आदमी के पास भी इस तरह बैठ जाता है, उस दिन आदमी के भीतर उसे वह दिखायी पड़ता है, जो न वृक्षों में दिखायी पड़ सकता, न सागरों में दिखायी पड़ सकता है। तब तो उसे आदमी के भीतर, वह जो सबसे बड़ी"मिस्ट्री" है, जीवन का वह जो रहस्य है, उसके दर्शन हो जाते हैं। लेकिन उसकी तैयारी चाहिए। एक दिन आता है कि आप आदमी के साथ भी ऐसे बैठ सकते हैं, जैसे कोई नहीं है।
लेकिन वह घड़ी धीरे-धीरे आ सकती है। उसके लिए कुछ तैयारी और कुछ भूमिका
हो जानी चाहिए। इन तीन दिनों में उसका हम प्रयास करेंगे। इन तीन दिनों में इस बात की कोशिश करेंगे कि हम बिल्कुल अकेले हैं। अकेलेपन को खोजें, एकांत में बैठें। और मैंने जो तीन सूत्र कहे, उन पर ध्यान रखें।
अभी जब आप जाकर सोयेंगे बिस्तर पर, तो इसी भांति सो जायें कि जैसे इस बड़े विराट जगत में आप बिल्कुल अकेले हैं, जैसे इस पूरी पृथ्वी पर आप बिल्कुल अकेले हैं, इन चांदत्तारों की दुनिया में आप बिल्कुल अकेले हैं। कोई नहीं है, आप बिल्कुल अकेले हैं। इस अकेलेपन में चुपचाप डूबते जायें और सो जायें। सुबह ही आप एक अनूठा भाव लेकर वापस जाग सकेंगे। वह अकेलेपन का भाव है।
साधक अकेला है। उसका न कोई संगी है, न कोई साथी है, न कोई भीड़ है, न कोई संप्रदाय है। और प्रभु के मंदिर की जो यात्रा है, वह बिल्कुल अकेले में पूरी करनी पड़ती है।
इन तीन दिनों में मैं उस अकेलेपन की दिशा में आपको ले जाने की कोशिश करूंगा, लेकिन आपके सहयोग के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। आपका सहयोग आप अपने पूरे मन से दे सकें तो बात इतनी आसान है, जिसका कोई हिसाब नहीं और आपका सहयोग न हो तो बात इतनी कठिन है, इतनी मुश्किल--असंभव। कठिन भी नहीं, असंभव ही है।
एक छोटी-सी घटना, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूंगा। फिर आप चुपचाप जायें
और सो जायें। यहां से जाते समय भी बातचीत न करें। कुछ मत कहें किसी से। चुपचाप चले जायें। और तीन दिन मैं ध्यान रखूंगा कि आप बातचीत तो नहीं कर रहे हैं। आप व्यर्थ की बातचीत में तो नहीं लगे हैं। चुपचाप जितना चुप हो सके--तीन दिन ऐसे जैसे शब्द खो गये और आप गूंगे हो गये हैं। आपसे बोला ही नहीं जाता। आपके ओंठ बंद हो गये हैं।
एक सम्राट एक बहुत बड़े संगीतज्ञ के संगीत को सुनने को बहुत आतुर था। चाहता था कि संगीत सुनने मिल जाये। उसने अपने दरबारी भेजे, वजीर भेजे और संगीतज्ञ को कहलवाया कि दरबार में आ जाओ, तुम जो कुछ भी मांगोगे मैं दूंगा, लेकिन मुझे तुम्हारी वीणा सुननी है।
उस संगीतज्ञ ने कहा कि शायद उन्हें पता नहीं कि संगीत कोई ऐसी बात नहीं कि किसी की आज्ञा से पैदा हो जाये। उन्होंने बुलाया, उनका धन्यवाद। उन्होंने आदेश भेजा हो तो मैं आ सकता हूं, वीणा बजाऊंगा भी, लेकिन वह वीणा न होगी, जो मैं बजाता हूं। न मैं वह संगीतज्ञ होऊंगा, जिसको वे सुनना चाहते हैं। लेकिन अगर उन्होंने प्रार्थना की हो तो फिर मैं किसी दिन आऊंगा, लेकिन उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, आज नहीं। जब मौज में होगा मेरा मन और मेरे पैर उठ जायेंगे दरबार की तरफ तो मैं आ जाऊंगा।

राजा लेकिन बहुत बेचैन हो गया। और भी बेचैन हो गया। उसे पहली दफा पता चला कि आदेश और प्रार्थना में फर्क है।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह प्रार्थना से आता है; जो भी व्यर्थ है, वह आदेश से मिल जाता है।
लेकिन प्रार्थना के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आदेश अभी, इसी क्षण पूरा भी हो सकता है। लेकिन राजा को यह दिखायी पड़ गया है कि आदेश से वह संगीतज्ञ आ जायेगा, तो जिसे मैं सुनना चाहता हूं, नहीं सुन पाऊंगा। बजा देगा!
लेकिन वह बड़ा आतुर था। उसने अपने दरबार के संगीतज्ञ को कहा, तुम कोई रास्ता खोज निकालो। उसने कहा, रास्ता हो सकता है। वह यह नहीं कि संगीतज्ञ दरबार में आये, वह यही हो सकता है कि हम संगीतज्ञ के घर चलें।
राजा ने कहा, इसमें क्या फर्क है, संगीतज्ञ यहां आये या हम उसके घर जायें। उस संगीतज्ञ ने कहा, बहुत फर्क है। बहुत फर्क है, वह आदेश और प्रार्थना का ही फर्क है।
जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, उसके पास हमें स्वयं ही जाना पड़ता है। घर बैठकर उसे बुलाना नहीं पड़ता है। हमें चलने पड़ते हैं कुछ कदम।
राजा राजी हो गया। उस संगीतज्ञ ने, जो एक फकीर था और दरिद्र आदमी था और भिखमंगों के कपड़े पहनता था, उसने राजा से कहा, राजा के वस्त्रों में संगीतज्ञ के घर पहुंचना नहीं होगा। फिर तो वह वही बात होगी। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आप भी मेरे जैसे वस्त्र पहन लें।
राजा ने कहा, इन वस्त्रों से क्या बाधा पड़ेगी? हम संगीत सुनते चलते हैं, वस्त्र क्या करेंगे?
उस संगीतज्ञ ने कहा कि बहुत कुछ करेंगे। आप वहां भी राजा बने रहें तो फिर संगीत जो हम सुनना चाहते हैं, वह नहीं सुना जा सकेगा।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह सम्राटों की भांति नहीं, याचकों की भांति उपलब्ध होता है। वहां हाथ फैलाकर पहुंचना पड़ता है।
और इन वस्त्रों में, आप हाथ न फैला सकेंगे। ये वस्त्र सिंहासनों पर बैठने के आदी हैं। ये धूल में उस गरीब संगीतज्ञ के द्वार पर न बैठ सकेंगे। राजा राजी हुआ। उसने दरिद्र के वस्त्र पहने और वे दोनों, रात उतरने को थी, सांझ होने को थी, तब उस संगीतज्ञ के द्वार पर पहुंच गये। राजा का संगीतज्ञ अपने साथ अपनी वीणा ले गया था। वे दोनों द्वार पर बैठ गये। उसने वीणा बजानी शुरू कर दी। उसने वीणा पर वही--वही बजाना शुरू कर दिया, जो उस संगीतज्ञ के लिए सबसे ज्यादा प्यारा था, जिसमें उसकी कुशलता थी। लेकिन बीच-बीच में दो-चार भूलें कीं, जानकर कीं। संगीतज्ञ ने द्वार खोल दिया और कहा कि कौन--कौन बजा रहा है? और कौन गलत बजा रहा है?
उस संगीतज्ञ ने कहा कि मैं और ज्यादा नहीं जानता हूं। जैसा जानता हूं, बजा रहा हूं। कोई बता दे तो मैं सीखने को हमेशा तैयार हूं।
वह संगीतज्ञ अपनी वीणा उठा लाया भीतर से और उसने बजाना शुरू कर दिया। राजा तो मंत्रमुग्ध हो गया। जब बज चुकी वीणा तो उसने कहा, शायद तुम पहचाने नहीं, मैं सम्राट हूं, जिसने तुम्हें बुलाया था। और आखिर देखो, मैंने सुन लिया न।
उस संगीतज्ञ ने कहा, यह बात और है। तुम एक याचक की भांति आये हो, मुझे बुलाया नहीं गया है। फिर तुमने वह अवसर, वह"सिचुएशन", वह परिस्थिति पैदा कर दी कि मेरे भीतर भाव जग गया और मैं बजाने लगा। मुझे आदेश नहीं दिया गया है।
परमात्मा के द्वार पर भी ऐसे ही जाना होता है। ऐसे ही कोई आदेश नहीं देने पड़ते हैं। एक प्रार्थी का भाव लेकर। राजाओं के वेश में नहीं, दीन-हीन, ह्युमिलिटि, विनम्रता से हाथ फैलाये हुए। सिंहासनों पर बैठे हुए नहीं। और जितनी दीनता से--क्राइस्ट कहते थे,"पुअर इन स्प्रिट", जो इतने भाव में दीन, असहाय, विनम्र, आतुर और याचक होकर उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, फिर जो भी उससे बनता है, जैसे भी भूल-चूक भरे शब्दों में प्रार्थना करने लगता है; जैसे भी बनता है, भूल-चूक भरी वीणा बजाने लगता है; तब वे द्वार खुल जाते हैं, उस परम संगीतज्ञ के और वह अपनी वीणा उठाकर आ जाता है। लेकिन इतनी दूर

तक हमें यात्रा करनी पड़ती है। इस यात्रा के लिए हमें तैयार हो जाना जरूरी है।
आज रात से ही उसकी तैयारी शुरू करें, मैंने जो तीन सूत्र कहे। सुबह से
उन पर प्रयोग शुरू करें। फिर हम साधना के लिए और क्या जरूरी है, क्या महत्वपूर्ण है, किन-किन कदमों को उठायेंगे, उनकी बात करेंगे और प्रयोग करेंगे। आज की पहली बैठक पूरी हुई। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नेति-नेति
दूसरा प्रवचन

अज्ञान का बोध

प्रिय आत्मन्,
एक रात आधी रात हो गयी थी और सुकरात घर नहीं लौटा था। उसके मित्र और उसके शिष्य चिंतित हो गये। सुबह से ही वह घर के बाहर था और आधी रात तक न गांव में देखा गया था, न गांव में किसी को मिला था! और अब आधी रात हो गयी है, अब तक उसका कोई पता नहीं! फिर आधी रात वे उसे ढूंढ़ने निकले। गांव की गलियों-गलियों में खोज डाला। फिर गांव के बाहर। चांदनी की रात थी। वे दूर-दूर गांव के बाहर भी उसे खोजते फिरे। सुबह होने के करीब थी। वह एक वृक्ष के पास बैठा हुआ मिला। रात के अंतिम तारे डूबने के करीब थे और उसकी आंखें आकाश की तरफ लगी हुई थीं। वह जैसे पत्थर हो गया हो, रात भर की सर्दी में जैसे जम गया हो!
मित्रों ने जाकर उसे हिलाया। वह जैसे इस पृथ्वी पर नहीं था, कहीं और था, किसी दूसरे लोक में, शायद उन तारों के पास, जिन्हें वह रात भर देखता रहा था। उसने आंखें नीचे कीं। वह हिला। उसने अपने मित्रों को पहचाना और उसने कहा,"कितना समय बीत गया होगा?" मित्रों ने कहा,"पूरी रात बीत गयी है। दूसरी सुबह होने के करीब है। तुम सुबह से निकले हो, कहां थे?"
सुकरात ने कहा कि,"मैं यहीं आ गया। सुबह के उगते सूरज को देखा, दोपहर होती देखी, सांझ का सूरज डूबते देखा। सूरज के साथ दिनभर यात्रा करता रहा। फिर रात आ गयी, फिर चांद आ गया, फिर सितारे आ गये, फिर उनने मुझे भटका लिया, फिर मैं उनमें डूब गया और मुझे पता भी नहीं कि कितना समय बीत गया है!" उसके मित्र पूछने लगे,"क्या था चांदत्तारों में ऐसा? क्या था सूरज में ऐसा? जो चौबीस घंटे बीत गये और तुम्हें कुछ पता नहीं!"
सुकरात ने कहा,"आश्चर्य तुम्हें होता है, होना मुझे चाहिए। क्या नहीं
है चांदत्तारों में, क्या नहीं है सूरज में, जो आदमी को मंत्र-मुग्ध न कर ले, उसे विस्मय से विमुग्ध न कर दे, उसे अपने पास न बुला ले; अपने गीत में, अपने संगीत में न डुबा ले! क्या नहीं है? मुझे पूछना चाहिए, उलटा तुम्हीं मुझसे पूछते हो कि क्या है चांदत्तारों में! जो रात बीत गयी और तुम्हें पता नहीं! धन्य हैं वे लोग, जो चांदत्तारों में, वृक्षों में, समुद्रों में, पहाड़ों में, मनुष्य की आंखों में कुछ खोज लेते हैं, जिन्हें वहां कुछ दिखायी पड़ जाता है। शायद वे ही लोग आंखों वाले हैं, बाकी सारे लोग अंधे हैं।"
हम भी अंधे हैं। हमें भी कुछ दिखायी नहीं पड़ता है!
यह हमारा अंधापन कैसे निर्मित हो गया है, उस संबंध में थोड़ी बात जान लेनी जरूरी है और इस अंधेपन को हम कैसे तोड़ दें, वह भी समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश करने में असमर्थ होगा, अगर वह जीवन के प्रति एक बुनियादी अंधेपन को लेकर चलता है।
हमें फूल ही दिखायी नहीं पड़ते तो हमें परमात्मा कैसे दिखायी पड़ सकता है?
हमें सागर का गर्जन भी सुनायी नहीं पड़ता तो हमें प्रभु की वाणी कैसे सुनायी पड़ सकती है?
हमें चांदत्तारे ही दिखायी नहीं पड़ते तो हमें वह रोशनी कैसे मिल सकती है, जो जीवन का प्राण है?
हमें कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है! हम करीब-करीब सोये-सोये गुजर जाते हैं! आंख बंद किये-किये गुजर जाते हैं! जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की लहरें कहीं भी हमारे प्राणों को आंदोलित नहीं करती है, कोई संवेदना हमें नहीं पकड़ लेती है, कोई हमें मंत्र-मुग्ध नहीं कर पाता है!
धर्म का पहला संबंध जीवन के रहस्य के अनुभव से है--वह जो जीवन की मिस्ट्री है। और समग्र जीवन ही रहस्यपूर्ण है--एक छोटे-से पत्थर से लेकर आकाश के सूरज तक, एक छोटे बीज से लेकर आकाश को छूते वृक्षों तक--सभी कुछ, जो भी है, अत्यंत रहस्यपूर्ण है।

लेकिन वह रहस्य हमें दिखायी नहीं पड़ता! क्योंकि रहस्य को देखने के लिए जैसी पात्रता चाहिए, शायद हमने अर्जित नहीं की। जैसी"रिसेप्टीविटी" चाहिए, जैसी ग्राहकता चाहिए, हृदय के द्वार जैसे खुले चाहिए--वे शायद हमारे हृदय के द्वार खुले नहीं, बंद हैं। शायद हम किसी कारागृह के भीतर बैठे हैं, सब खिड़कियों और द्वारों को बंद करके, आंखों को बंद करके! और तब अगर हमारा जीवन अंधकारपूर्ण और उदासी से भर गया हो, गंदी हवाओं ने और दुर्गंध ने हमें घेर लिया हो, चिंताओं ने और तनावों ने हमारे घर में निवास बना लिया हो तो आश्चर्य नहीं हो सकता है। यह स्वाभाविक है, यह होगा।
कैसे हमने जीवन के प्रति यह जड़ता अंगीकार कर ली है! और फिर हम पूछते हैं ईश्वर है? और हम फिर पूछते हैं, आत्मा अमर है? और फिर हम सारे प्रश्न पूछते हैं! लेकिन एक प्रश्न हम पूछना भूल जाते हैं--हमारे पास जीवन के रहस्य को देखने की आंखें हैं या नहीं?
जीवन के रहस्य को देखने की आंख मनुष्य रोज-रोज खोता चला गया है। जितने
हम सभ्य होते गये हैं, उतनी हमने जीवन के रहस्य को देखने की आंख खो दी है। जितने हम समझदार होते गये हैं, जितना हमारा ज्ञान बढ़ता गया है, उतना हमने जीवन का जो विस्मय है, जीवन में जो अबूझ है, जीवन में जो पहेली की तरह है; जिसका कोई सुलझाव नहीं, उस सबसे हमने अपने को हटा लिया है, उसकी तरफ पीठ कर ली है।
जीवन एक अबूझ पहेली है, यह हम भूल गये हैं--हमारे ज्ञान में, हमारी जानकारी में, हमारी समझ में
हम ऐसा समझने लगे हैं, आदमी ने यह निष्कर्ष ले लिया है कि करीब-करीब सब हमें ज्ञात है और जो ज्ञात नहीं है, वह भी ज्ञात हो जायेगा। जीवन में कुछ भी अज्ञेय, कुछ भी"अननोएबल" नहीं है; सब जाना जा सकता है। यह सत्य से बिल्कुल ही विपरीत बात है।
जीवन में सब कुछ अज्ञेय है। और जिसे हम जानना समझते हैं, वह भी जानना नहीं है। जीवन में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। एक छोटी पत्ती से लेकर जो कुछ दिखायी पड़ता है, वह सभी बहुत, बहुत अज्ञात, बहुत अज्ञेय, बहुत अबूझ, बहुत रहस्यपूर्ण है। यह रहस्य कभी भी नहीं तोड़ा
जा सकता है, जो हम थोड़ा-सा जान लेते हैं, वह जानना परिचय है, ज्ञान नहीं; एदृंटैंस है। परिचय को हम ज्ञान समझ लेते है! थोड़े दिन कुछ हम जान लेते हैं।
इस सरू के वन में हम बैठे हैं, इस सागर के तट पर। कल आप आये थे तो इन सरू
के वृक्षों में, इस सागर के तट पर थोड़ा-सा अनजाना मालूम पड़ा होगा। आज आप परिचित हो गये हैं, कल आप और परिचित हो जायेंगे, परसों और! जाते-जाते यह सरू का वन आपको दिखायी नहीं पड़ेगा, यह सागर का गर्जन आपको सुनायी नहीं पड़ेगा; लगेगा जानते हैं! जो यहां निकट रहते होंगे, उन्हें यहां कुछ भी नहीं दिखायी पड़ेगा।
काश्मीर लोग यात्रा करने जाते हैं। जो वहां रहते हैं, उन्हें वहां कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता! हिमालय की पहाडिय़ों को--लोग दूर से पागल की तरह, यात्रा करते हैं। जो वहां रहते हैं, उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता है! क्या वे जानते हैं? नहीं, वे परिचित हो गये हैं। निकट रहने से, रोज-रोज देखने से उन्हें यह भ्रम पैदा हो गया है कि हम जानते हैं।
परिचय ज्ञान का भ्रम पैदा कर देता है।
मनुष्य परिचित होता चला जा रहा है जगत से और इसी को वह समझ रहा है कि
हम जान रहे हैं! यह जानने का भ्रम, यह नोइंग एटीटयूड कि हमें पता है, जीवन के सारे रहस्य को खंडित कर रहा है। साधक को इस जानने के भ्रम को तोड़ देना चाहिए और विस्मय को उपलब्ध कर लेना चाहिए।
क्या आप इन वृक्षों के पास इस भांति बैठ सकते हैं, जैसे आप पहली बार ही
एक अज्ञात लोक में उतर आये हों, जहां कुछ भी परिचित नहीं है? क्या आप सागर के गर्जन को ऐसा सुन सकते हैं, जैसा पहली बार, प्रथम बार ही आपने सुना और जाना हो? पृथ्वी पर जो पहला आदमी उतरा होगा, उसने पृथ्वी को जैसा देखा होगा, क्या वैसा आप देख सकते हैं? पहला आदमी चांद पर उतरेगा और जैसा चांद को देखेगा विस्मय-विमुग्ध होकर, अवाक होकर, मौन होकर--सब अपरिचित, सब

अनजाना, क्या वैसा पृथ्वी पर क्षणभर को खड़े हो सकते हैं? अगर खड़े हो सकते हैं, तो साधना की पहली सीढ़ी पार कर ली गयी।
इन तीन दिनों में मैं आपसे यह प्रार्थना करूंगा कि यहां इस भांति खड़े हों, जैसे आपकी नौका टकरा गयी हो नारगोल के तट पर और एक अनजान जगह में आप उतर गये हों, जहां कुछ भी परिचित नहीं है। सब अपरिचित है--रेत भी, वृक्ष भी, तट भी, आकाश भी। सब अपरिचित है।
और सचाई यही है कि जहां हम जन्म लेते हैं, हम कुछ भी जानते हुए नहीं आते, हम बिल्कुल अनजान पैदा होते हैं, बिल्कुल स्ट्रेंजर, बिल्कुल अजनबी। जन्म एक अजनबी लोक में खड़ा कर देता है। और जब हम मरते हैं, तब भी हम बिना कुछ जाने बिदा हो जाते हैं! आदमी क्या जानकर समाप्त होता है? मरते क्षण भी हमारी चेतना वहीं होती है, जहां जन्म के क्षण में थी। हम कुछ भी नहीं जान पाते हैं और विदा हो जाते हैं!
यह जो बीच में जन्म और मृत्यु के बीच में हमें जानने का भ्रम पैदा हो जाता है, वह परिचय का भ्रम है।
बाप सोचता है, मैं बेटे को जानता हूं; पत्नी सोचती है मैं पति को! मित्र सोचता है, मैं मित्र को जानता हूं! कोई भी किसी को नहीं जानता है। इस अनजानेपन को, इस स्ट्रेंजनेस को, इस अजनबीपन को पकड़ लेना है, पहचान लेना है। इस पर ध्यान को ले जाना है, यह हमारे मेडिटेशन का हिस्सा बन जाये, यह हमारे ध्यान और चिंतन और मनन का केंद्र बन जाये कि हम कुछ भी नहीं जानते हैं। क्या यह बन सकता है?
यह बन सकता है, अगर थोड़ा हम साहस करें और अपने उस अहंकार को छोड़ सकें,
जो जानने ने पैदा कर दिया है। मनुष्य के भीतर गहरी-से-गहरी ईगो, गहरा-से- गहरा अहंकार जानने का अहंकार है।
किसी से भी पूछिये--ईश्वर है?
वह कहेगा--हां, ईश्वर है। या कहेगा कि नहीं ईश्वर नहीं है। और दोनों हालतों में वह यह कहेगा कि मैं जानता हूं! शायद ही कोई आदमी खोजे से मिल जाये जो चुप रह जाये और कहे कि मैं नहीं जानता हूं।
लेकिन चाहता हूं मैं कि आप वह आदमी बनें, जो कह सके निर्भयता से, निश्चय से--कि मैं नहीं जानता हूं। पूछें अपने से--हम जानते हैं कुछ? गहराई में अपने से वह प्रश्न उठायें, जानता हूं मैं कुछ? क्या जानता हूं?
और तो जानना दूर है, स्वयं को भी नहीं जानता हूं, अपने को भी नहीं जानता हूं। नहीं जानता हूं उसे, जो कि मैं हूं! फिर मैं और क्या जान सकूंगा? जो मेरे निकटतम है, जो मेरे भीतर है, वह भी अपरिचित और अनजान है, तो जो मेरे बाहर है और मुझसे दूर, वह कैसे परिचित और जाना हुआ हो सकता है? आप अपने को जानते है--शायद न पूछा हो कभी आपने अपने से?
हम कुछ चीजें स्वीकार ही कर लेते हैं--कभी पूछते ही नहीं! हर आदमी यह बात स्वीकार ही कर लेता है कि"मैं जानता हूं अपने को"! और इस भांति चलने और जीने लगता है, जैसे जानता हो! हमने कभी प्रश्न ही नहीं पूछा, और जिसने प्रश्न ही नहीं पूछा, उसकी यात्रा कैसे आगे बढ़ सकती है?
पहला प्रश्न जो प्रत्येक को अपने से पूछ लेना चाहिए, वह यह कि"क्या मैं अपने को जानता हूं?" मैं कौन हूं, मैं क्या हूं, मैं कहां से हूं, मैं कहां के लिए हूं?
लेकिन किसी बात का कोई उत्तर नहीं है! न ज्ञात है कि मैं कौन हूं, न ज्ञात है कि मैं क्या हूं, न ज्ञात है कि मैं कहां से हूं, न ज्ञात है कि मैं कहां के लिए जा रहा हूं। इन चार बुनियादी प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है, लेकिन हम स्वीकार कर लिए हैं कि हम अपने को जानते हैं!
शॉपेनहार--एक सुबह, कोई तीन बजे होंगे, एक छोटे-से बगीचे में गया हुआ था। रात थी। अभी अंधेरा था। बगीचे का माली हैरान हुआ कि इतनी रात गये कौन आ गया है। उसने अपनी लालटेन उठायी, अपना भाला उठाया और वह गया बगीचे के भीतर। शॉपेनहार वहां टहलता है वृक्षों के पास और कुछ अपने से ही बातें कर रहा है!
उस माली को शक हुआ कि जरूर कोई पागल घुस आया है, अकेला अपने से बातें
कर रहा है! उसने दूर से ही खड़े होकर आवाज दी और पूछा कि"कौन हो, कहां से आये हो, किसलिए आये हो, क्या चाहते हो?"

शॉपेनहार जोर से हंसने लगा और उसने कहा,"तुम ऐसे कठिन प्रश्न पूछते हो, जिनका उत्तर आज तक कोई आदमी नहीं दे पाया। पूछते हो, कौन हो? जिंदगी भर हो गया मुझे पूछते-पूछते, अब तक मुझे उत्तर नहीं मिला कि कौन हूं! पूछते हो कहां से आये हो? आज तक कोई आदमी नहीं बता सका कि कहां से आया है! मैं भी असमर्थ हूं। पूछते हो, किसलिए आये हो? उसका भी मुझे पता नहीं कि किसलिए आया हूं!"
निश्चित ही उस माली ने समझा होगा कि पागल ही है यह आदमी, जिसे इतना भी पता नहीं। लेकिन माली पागल था या वह आदमी, जिसे पता नहीं था। कौन था पागल? अगर आपको पता है या आपको भ्रम है कि आपको पता है तो आप पागल हो सकते हैं। लेकिन अगर आपको पता नहीं है तो यह मनुष्य की स्थिति है, यह हयुमन सिचुएशन है कि आदमी को पता नहीं है। इसमें पागलपन का कोई सवाल नहीं है। लेकिन कहीं हम पागल न मालूम पड़ने लगें, इसलिए हमने कुछ व्यवस्था कर ली है। कुछ अपने को पहचानने और जानने का आयोजन कर लिया है। हमने कुछ उपाय कर लिये हैं, जिससे हमें ऐसा लगे कि हम अपने को जानते हैं। हमने अपने नाम रख लिए है, अपनी जाति बना ली है, अपना धर्म बना लिया है, अपना देश बना लिया है! हमें इंगित किया जा सके कि कौन है यह आदमी--तो हमारा नाम है, हमारी जाति है, हमारा धर्म है, हमारा देश है; हमारे मां-बाप हैं, उनके नाम हैं; हमारी वंश परंपराएं हैं! और हमने कुछ इंतजाम कर लिया है, जिस भांति यह पहचाना जा सके कि मैं कौन हूं। और हमारी सारी व्यवस्था झूठी है, हमारी सारी व्यवस्था कल्पित और सपने जैसी है। क्या है नाम किसी का? क्या है किसी की जाति? क्या है किसी का धर्म? कौन-सा है देश, किसका?
लेकिन हमने जमीन पर भी झूठी रेखाएं खींच रखी हैं--भारत की और चीन की,
और रूस की और अमरीका की! झूठी रेखाएं, जो जमीन पर कहीं भी नहीं है, लेकिन ताकि हम कह सकें कि मैं यहां से हूं!
और हमने आदमी के आसपास भी झूठे नाम और लेबल चिपका रखे हैं। कोई राम है, कोई कृष्ण है, कोई कोई है! वे नाम भी बिल्कुल झूठे हैं। आदमी कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता है।
और हमने जातियों के नाम भी चिपका रखे हैं! वे नाम भी बिल्कुल झूठे हैं। आदमी किसी जाति में पैदा नहीं होता। सब जातियां आदमी के ऊपर थोपी जाती हैं।
और हमने मां-बाप के नाम भी अपने साथ जोड़ रखे हैं! न उनका कोई नाम था, न उनके मां-बाप का कोई नाम था, न उनके मां-बाप का कोई नाम था।
लेकिन हमने एक छोटा-सा कोना बना लिया है ज्ञान का, और ऐसा भ्रम पैदा कर लिया है कि हम अपने को जानते हैं। इसी भ्रम में हम जीते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
साधक को यह भ्रम तोड़ देना चाहिए, यह कोना उजाड़ देना चाहिए। उसे जान लेना चाहिए ठीक-ठीक कि मेरा कोई नाम नहीं है, मेरी कोई जाति नहीं है। मेरा कोई देश नहीं है; मेरा परिचय नहीं, मैं बिल्कुल अज्ञात हूं। जैसे ये हवाओं के झोंके अज्ञात हैं, जैसे ये वृक्ष अज्ञात हैं, जैसे ये आकाश के चांदत्तारे अज्ञात हैं, जैसे यह सागर का पानी अनाम और अपरिचित और अज्ञात है, वैसे ही आदमियों के जीवन की लहरें भी अज्ञात हैं, अनजानी हैं, अपरिचित हैं।
लेकिन न केवल आदमी ने ऊपर का परिचय बना रखा है, आदमी ने भीतर का परिचय
भी बना रखा है! किसी से पूछें कि आपके भीतर कौन है? वह कहेगा, मेरे भीतर आत्मा है! आत्मा अमर है! मेरे पिछले जन्म थे! कर्मों के फल हैं! आगे जन्म होंगे! स्वर्ग है, नर्क है! वे लोग जो शुद्ध हो जाते हैं, वे मोक्ष चले जाते हैं!
हमने अज्ञात में, अंधेरे में न मालूम क्या-क्या लिख लिया है! यह ज्ञान
भी आदमी का पकड़ा हुआ और कल्पित ज्ञान है। यह ज्ञान भी हमें पता नहीं--कुछ भी हमें पता नहीं है। लेकिन इन शब्दों को हम दोहराये चले जाते हैं। इन शब्दों को हम पकड़कर बैठ जाते हैं! इन शब्दों पर हम ध्यान करते हैं!
एक संन्यासी कुछ दिन हुए मेरे पास आये। मैंने उनसे पूछा कि क्या ध्यान करते हैं, क्या साधना करते हैं? कहने लगे, बैठकर एकांत में यही सोचता हूं कि मैं सत-चित-आनंद स्वरूप परमात्मा हूं। मैं शुद्ध-बुद्ध

आत्मा हूं। मैं अमृत जीवन हूं। मेरी कोई मृत्यु नहीं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं मन नहीं हूं। मैं आत्मा हूं। यह हम ध्यान करते हैं, यह हम मेडिटेशन करते हैं!
मैंने उनसे कहा, ये बातें आपको पता हैं? ये बातें आपको ज्ञात हैं? यह आपका अनुभव है, यह आपका ज्ञान है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं? या कि सुने हुए शब्द और सीखे हुए शब्द हैं? फिर मैं उनको पूछा, अगर यह आपको ज्ञात ही है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं तो रोज-रोज इसे बैठकर दोहराने की, रिपीट करने की क्या जरूरत है? जो ज्ञात है, उसे कभी कोई नहीं दोहराता है।
जो ज्ञात नहीं है, उसे दोहरा-दोहरा कर हम यह भ्रम पैदा करना चाहते हैं
कि वह ज्ञात है!
अगर यह मालूम है कि मैं परमात्मा हूं, अगर यह पता है--"अहं ब्रह्मास्मि", कि मैं ब्रह्म हूं तो इसे रोज-रोज दोहराने की क्या जरूरत है? कोई कभी नहीं दोहराता, जिसे जानता है। जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे हम दोहराते हैं। क्योंकि बार-बार दोहरा लेने से यह भ्रम पैदा होना शुरू हो जाता है, हम परिचित हो जाते हैं शब्दों से। निरंतर दोहराये जाने से परिचय पैदा हो जाता है। हम भूल जाते हैं कि पहली बार जब हमने कहा था तो हमें पता नहीं था। पचास बार कहने के बाद ऐसा लगता है कि हमें मालूम है। लेकिन पहली बात ही जब हमें ज्ञात नहीं थी तो पचास बार दोहरा लेने से वह ज्ञात नहीं हो सकती है।
रिपीटीशन कहीं भी नहीं ले जाता है सिवाय भ्रम के।
अगर मुझे पहली बार ही पता नहीं था तो मैं हजार बार दोहराऊं, इससे क्या होगा? झूठ हजार बार दोहरा लेने से सच नहीं हो जाता है। और अज्ञान हजार बार दोहरा लेने से ज्ञान नहीं बन जाता है।
लेकिन हम दोहराते हैं। हम दूसरों को भी जब धोखा देना चाहते हैं तो हम दोहराने का उपाय करते हैं! अपने को भी धोखा देना चाहते हैं तो दोहराने का उपाय करते हैं!
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ऐसा कोई भी असत्य नहीं है, जिसे बार-बार दोहरा देने से सत्य न बनाया जा सके। ठीक ही लिखा है।
कोई भी असत्य बार-बार दोहरा देने से सत्य प्रतीत होने लगता है।
जितने सत्य हम जानते हैं, वे इसी तरह दोहराये गये असत्य हैं, जिनको दोहरा-दोहरा कर हमने सत्य मान लिया है। हम कुछ भी मान सकते हैं। उसे बार-बार दोहरा लेने से, निरंतर दोहरा लेने से भ्रम पैदा हो जाता है।
हमने शरीर का भी परिचय बना लिया है, हमने भीतर का भी परिचय बना लिया है! न हमें शरीर का कोई पता है, न भीतर का हमें कोई पता है। अगर सत्य की दिशा में कोई भी कदम उठाना है तो प्राथमिक रूप से हमारा यह अज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिए। इस अज्ञान के स्पष्ट बोध से तो यात्रा हो सकती है, क्योंकि यह अज्ञान सत्य है।
यह हमारा न जानना एक तथ्य है, एक फेक्चुअलटि है। यह मैं आपको सिखा नहीं रहा हूं कि आप नहीं जानते। न जानना हमारी वस्तुस्थिति है। लेकिन दुनिया में निरंतर यह सिखाया जा रहा है कि आप अपने को इस भांति जानें! ये बातें दोहरायें और इनको दोहराते रहें, दोहराते रहें! और दोहराने से आपको ज्ञान पैदा हो जायेगा!
हजारों वर्षों से आदमी को कुछ बातें दोहराने के लिए सिखाया जा रहा है। बैठकर दोहराओ कि मैं ईश्वर हूं, मैं परमात्मा हूं, मैं आत्मा हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं। एक आदमी जीवन भर दोहराता रहे तो भ्रम पैदा हो जाता है कि"मैं यह हूं"। लेकिन जो बात पहले चरण में असत्य थी, वह अंतिम चरण में सत्य नहीं हो सकती।
मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं?
भूलकर भी इस तरह की बातें आप मत दोहराना। इनसे ज्ञान का भ्रम पैदा होता है, ज्ञान पैदा नहीं हो सकता। पहले मनुष्य की वास्तविक स्थिति क्या है? चित्त की वास्तविक दशा क्या है? स्टेट आफ माइंड क्या है हमारा?
सीधी और साफ बात इतनी है कि हम नहीं जानते, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन आदमी अज्ञान को स्वीकार नहीं करना चाहता। आदमी का गहरे से गहरा जो अस्वीकार है, वह यह कि वह अज्ञान को अस्वीकार करता है। हम लड़ने को तैयार हो

जाते हैं, कोई अगर हमसे कह दे कि आप नहीं जानते हैं। कोई किसी बात में कह दे कि आप नहीं जानते, हम लड़ने को तैयार हो जाते हैं! सबसे बड़ी चोट हमारे अहंकार को तब लगती है, जब कोई यह कह देता है कि आप नहीं जानते हैं या कोई कह देता है कि आप गलत जानते हैं।
क्यों लगती है यह चोट?
यह चोट भी शायद इसीलिए लगती है कि वह हमारी सचाई उघाड़ देता है, जो हम छिपाये हुए हैं भीतर, जिसे हमने बहुत से पद ढांक कर भीतर छिपा रखा है। कोई जरा-सा पर्दा उघाड़ देता है तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। हम लड़ने को उतारू हो जाते हैं, हम विवाद करने को तैयार हो जाते हैं।
दुनिया भर के धर्म आज तक कौन-सी लड़ाई करते रहे हैं?
एक ही लड़ाई। हर धर्म यह दावा करता रहा है कि हम जानते हैं और अगर किसी
ने कह दिया कि नहीं, तुम नहीं जानते हो और गलत जानते हो तो तलवारें चलती हैं। जैसे कि तलवार कोई प्रमाण हैं जानने का! जैसे कि किसी की हत्या कर देना कोई तर्क है, कोई आर्ग्यूमेंट है! जैसे कि मंदिरों और मस्जिदों में आग लगा देना, कोई साक्षी है, कोई विटनेस है, कोई गवाही है!
आदमी का अज्ञान गहरा है, अज्ञान बुनियादी है और उस अज्ञान के ऊपर ज्ञान की सारी बातें उसने चिपका रखी हैं। जरा-सा हवा का झोंका और लेबल उड़ने लगता है। तो वह क्रोध से भर जाता है। जरा-सा कोई इनकार कर देता है और गुस्सा भर आता है।
लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, अगर आपको जीवन के सत्य की तरफ कोई भी कदम उठाना है तो अपने अज्ञान की बुनियादी स्थिति का पहला स्वीकार--पहली स्वीकृति कि हम नहीं जानते हैं। हम कुछ भी नहीं जानते हैं।
क्यों इस पर मेरा इतना आग्रह है?
क्योंकि तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है। सिद्धांतों से सत्य तक कोई कभी नहीं जा सकता है। जो वास्तविक स्थिति है, जो एक्चुअलटि है, जो मनुष्य की वास्तविकता है, उससे तो हम कहीं आगे बढ़ सकते हैं।
और भी अगर यह स्मरण आ जाये कि हमारा अज्ञान है, हम नहीं जानते हैं। तो फिर न आप हिंदू रह जाते हैं, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। वे सब ज्ञानियों के दंभ हैं। अज्ञानी का कौन-सा धर्म हो सकता है, कौन-सी फिलासफी हो सकती है। अज्ञानी का कौन-सा शास्त्र हो सकता है?
ज्ञानियों के शास्त्र हो सकते हैं, सिद्धांत हो सकते हैं, संप्रदाय
हो सकते हैं।
अज्ञानी का तो कुछ भी संप्रदाय नहीं हो सकता, कोई शास्त्र नहीं हो सकता। उसकी कोई गीता नहीं, उसका कोई कुरान नहीं, उसके कोई कृष्ण नहीं, उसके कोई महावीर नहीं। उसका तो एक ही कहना है कि मैं नहीं जानता हूं। इसलिए वह दावेदार नहीं, उसका दावा नहीं, उसका कोई विरोध नहीं, उसका कोई विवाद नहीं। ऐसा निर्विवाद में खड़ा हुआ व्यक्ति और स्मरण रहे, जब तक ज्ञान का दावा है, तब तक विवाद से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता है। कोई कितना ही कहे कि मैं विवाद नहीं करता, अगर उसको यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, वह विवाद में है। हर ज्ञानी विवाद में है। विवाद में रहेगा, विवाद में मरेगा।
निर्विवाद वही हो सकता है, जिसे ज्ञान का भ्रम न हो। जैसे ही यह भ्रम टूट जाता है कि मैं जानता हूं; एक ह्युमिलिटी, एक विनम्रता पैदा होनी शुरू होती है, जो अभूतपूर्व है, जिसका आपको कोई परिचय नहीं। आप बिल्कुल एक छोटे बच्चे की भांति हो जाते हैं।
बूढ़े और बच्चे में क्या फर्क है? एक ही फर्क है, बच्चे नहीं जानते हैं; बूढ़े जानते हैं। लेकिन बूढ़ों का जानना झूठ है; और बच्चों का न-जानना सच है। साधक फिर से बचपन को उपलब्ध हो जाता है। पोंछ देता है स्मृति को, फिर वहां खड़ा हो जाता है, जहां बच्चे खड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चों को साधारण से चमकदार पत्थर ऐसे विस्मय से भर देते हैं, एक छोटे से पक्षी का गीत, किन्हीं ऐसे लोकों में ले जाता है! एक छोटी-सी हिलती हुई पत्ती उन्हें किसी दूसरे जीवन में, किसी दूसरी अवस्था में प्रविष्ट करा देती है! बच्चों के लिए जगत बहुत रंग से भरा हुआ, बहुत गीत से, बहुत ध्वनि से भरा हुआ मालूम पड़ता है। यह धूप बहुत स्वर्णिम मालूम पड़ती है। यह चांदनी बहुत चांदी जैसी मालूम पड़ती

है। यह सब कुछ, जो हमें अति साधारण दिखायी पड़ता है, अति असाधारण प्रतीत होता है। क्यों?
भीतर विस्मय की आंख है, जानने वाले का दंभ नहीं। जानने का दंभ ही मनुष्य के आसपास दीवाल खड़ी कर देता है, खोल खड़ी कर देता है, लोहे की मजबूत दीवाल खड़ी कर देता है। आदमी उसके भीतर बंद हो जाता है। फिर जगत से उसके संबंध टूट जाते हैं। जीवन से उसका लेन-देन बंद हो जाता है। संवाद बंद हो जाता है। साधक को यह संवाद वापस उपलब्ध कर लेना है। जीवन से कम्युनिकेशन चाहिए। और जीवन से संवाद तभी हो सकता है, जब यह जानने की खोल टूट जाये। मैं तो मित्रों से कहता हूं कि मैं अज्ञान सिखाता हूं। ज्ञान बहुत सिखाया जा चुका है। ज्ञान मनुष्य को कहीं भी नहीं ले गया है, सिवाय उपद्रवों के। ज्ञान की शिक्षा मनुष्य को बहुत दी जा चुकी है। और मनुष्य उस शिक्षा से पतित हुआ है और कहीं भी नहीं पहुंचा है। परमात्मा और मनुष्य के बीच बाधाएं खड़ी हुई हैं। परमात्मा और मनुष्य के बीच सीढिय़ां नहीं बन सका ज्ञान।
ज्ञानी शायद ही कभी जीवन को जानने में समर्थ हो पाया है। नहीं जान सकते हैं। क्योंकि जानने का ख्याल इतने अहंकार से भर देता है, सारी विनम्रता नष्ट हो जाती है। हृदय कठोर और सख्त हो जाता है।
ज्ञानियों से ज्यादा कठोर आदमी खोजने कठिन हैं।
ज्ञानियों से ज्यादा कठोर आदमी मिल ही नहीं सकते। ज्ञानियों ने इतनी हत्याएं कीं और इतनी हत्याएं करवायीं! ज्ञानी अति कठोर है। ज्ञान कठोर करता है।
एक घटना मुझे बहुत प्रीतिकर है। एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ है। और उस मेले के पास ही एक कुएं में एक आदमी गिर पड़ा है और वह चिल्ला रहा है--कि मुझे निकाल लो, मुझे बाहर निकाल लो। मैं डूब रहा हूं, मैं डूबा जा रहा हूं। वह किसी तरह ईंटों को पकड़े हुए है, किसी तरह संभले हुए है। कुंआ गहरा है, और वह आदमी तैरना नहीं जानता है। लेकिन मेले में बहुत शोरगुल है, किसको सुनायी पड़े। लेकिन एक बौद्ध भिक्षु उस कुएं के पास से निकला है, पानी पीने को झुका है। नीचे से आवाज आ रही है। उसके झुककर नीचे देखा। वह आदमी चिल्लाने लगा, कि भिक्षुजी मुझे बाहर निकाल लें। मैं मरा जा रहा हूं। कोई उपाय करें। अब मेरे हाथ भी छूटे जा रहे हैं।
उस भिक्षु ने कहा, क्यों व्यर्थ परेशान हो रहे हो निकलने के लिए। जीवन
एक दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख है। बुद्ध ने कहा है, जीवन दुख है। जीवन तो एक पीड़ा है। निकलकर भी क्या करोगे? सब तरफ दुख ही दुख है। फिर भगवान ने यह भी कहा है कि जीवन में जो भी होता है, वह पिछले जन्मों के कर्म-फल के कारण होता है। तुमने किसी को किसी जन्म में गिराया होगा कुएं में। इसलिए तुम भी गिरे हो। अपना फल भोगना ही पड़ता है। फल को भोग लो तो कर्म के जाल से मुक्त हो जाओगे। अब व्यर्थ निकलने की कोशिश मत करो। वह भिक्षु तो पानी पीकर आगे बढ़ गया!
उस भिक्षु ने गलत बातें नहीं कहीं। जो शास्त्रों में लिखा है, वही कहा। वह जानता था। वह सामने मरता हुआ आदमी उसे दिखायी नहीं पड़ा, क्योंकि बीच में उसके जाने हुए शास्त्र आ गये! वह आदमी डूब रहा है, वह उसे दिखायी नहीं पड़ रहा है। उसे कर्म का सिद्धांत दिखायी पड़ रहा है! उसे जीवन की असारता दिखायी पड़ रही है! वह उस आदमी को उपदेश देकर आगे बढ़ गया! उपदेशक से ज्यादा कठोर कोई भी नहीं होता।
वह आगे जा भी नहीं पाया है कि पीछे से एक कनफ्यूशियन मांक, एक कनफ्यूशियस को मानने वाला संन्यासी आ गया। उसने भी आवाज सुनी। उसने भी झांककर देखा है।
उसने कहा,"मेरे मित्र, कनफ्यूशियस ने अपनी किताब में लिखा हुआ है कि
हर कुएं के ऊपर घाट होना चाहिए, पाट होना चाहिए; दीवाल होनी चाहिए, ताकि कोई गिर न सके। इस कुएं पर दीवाल नहीं है, इसलिए तुम गिर गये। हम तो कितने दिन से समझाते फिरते हैं गांव-गांव कि जो कनफ्यूशियस ने कहा है, वही होना चाहिए। तुम घबराओ मत, मैं जाकर आंदोलन करूंगा। मैं लोगों को समझाऊंगा। हम राजा के पास जायेंगे। हम कहेंगे कि कनफ्यूशियस ने कहा है कि हर कुएं पर

दीवाल होनी चाहिए, ताकि कोई गिर न सके। तुम्हारे राज्य में दीवालें नहीं हैं, लोग गिर रहे हैं।"
उसने कहा कि"वह सब ठीक है। लेकिन तब तक मैं मर जाऊंगा। पहले मुझे निकाल लो।"
उस आदमी ने कहा,"तुम्हारा सवाल नहीं है। यह तो जनता-जनार्दन का सवाल है। एक आदमी के मरने-जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता। सबके लिए सवाल है। तुम अपने को धन्य समझो कि तुमने आंदोलन की शुरुआत करवा दी! तुम शहीद हो!" दुनिया के नेता लोगों को ऐसे ही मूर्ख बनाते हैं कि तुम शहीद हो, तुम
मर जाओ! इससे बड़ा आंदोलन आयेगा--समाजवाद आयेगा, साम्यवाद आयेगा! दुनिया में लोकतंत्र आयेगा। तुम मरो।
एक-एक आदमी की कोई कीमत नहीं है। कीमत तो आदमियत की है और आदमियत कहीं
भी नहीं है सिवाय शब्दों के! जहां भी मिलता है, आदमी मिलता है। आदमियत कहीं नहीं मिलती, ह्युमिनिटि जैसी चीज कहीं भी नहीं है सिवाय शब्द के। शास्त्रों में लिखी है मनुष्यता। खोजने से हमेशा मनुष्य मिलता है। लेकिन वे शास्त्रों को मानने वाले कहते हैं कि मनुष्यता बचनी चाहिए! मनुष्य के बलिदान की कोई फिक्र नहीं! एक-एक मनुष्य का बलिदान हो जाये, लेकिन मनुष्यता बचनी चाहिए!
वह आदमी डूबता रहा, वह आदमी चिल्लाता रहा और वह कनफ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु जाकर मंच पर खड़ा हो गया। उसने मेले में हजारों लोग इकट्ठे कर लिए और उसने कहा कि देखो, जब तक कुओं पर पाट नहीं बनता, तब तक मनुष्य-जाति को बहुत दुख झेलने पड़ेंगे। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। अच्छे राज्य का यह लक्षण है। कनफ्यूशियस ने किताब में लिखा हुआ है। वह अपनी किताब खोलकर लोगों को दिखा रहा है!
वह आदमी चिल्ला ही रहा है। लेकिन उस मेले में कौन सुने? एक ईसाई पादरी वहां से गुजरा है। नीचे से आवाज उसने सुनी है, उसने जल्दी से अपने कपड़े उतारे! अपनी झोले में से रस्सी निकाली! वह अपने झोले में रस्सी रखे हुए था! उसने रस्सी नीचे फेंकी, वह कूदा कुएं में, उस आदमी को निकालकर बाहर लाया। उस आदमी ने कहा,"तुम ही एक आदमी मुझे दिखायी पड़े। एक बौद्ध भिक्षु निकल गया उपदेश देता हुआ, एक कनफ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु निकल गया!"आंदोलन चलाने चला गया है! वह देखो मंच पर खड़ा हुआ, आंदोलन चला रहा है! तुम्हारी बड़ी कृपा है, तुमने बहुत अच्छा किया।"
वह ईसाई मिशनरी हंसने लगा। उसने कहा,"कृपा मेरी तुम पर नहीं, तुम्हारी मुझ पर है। तुम कुएं में न गिरते तो मैं पुण्य से वंचित रहता। जीसस क्राइस्ट ने कहा है पता नहीं? सर्विस--सेवा ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है, मैं परमात्मा को खोज रहा हूं। मैं इसी तलाश में रहता हूं कि कहीं कोई कुएं में गिर पड़े तो मैं कूद जाऊं। कहीं कोई बीमार हो जाये तो मैं सेवा करूं, कहीं किसी की आंखें फूट जायें तो मैं दवा ले आऊं, कहीं कोई कोढ़ी हो जायें तो मैं इलाज करूं। मैं तो इसी कोशिश में घूमता-फिरता हूं, इसलिए रस्सी हमेशा अपने पास रखता हूं कि कहीं कोई कुएं में गिर जाये! तुमने मुझ पर कृपा की है, क्योंकि बिना सेवा के मोक्ष पाने का कोई उपाय नहीं है। हमेशा ऐसी ही कृपा बनाये रखना, ताकि हम मोक्ष जा सकें। हमारी किताब में लिखा हुआ है।"
उस आदमी ने सोचा होगा कि शायद इसने मुझ पर दया की है तो वह गलती में था। इस आदमी से किसी को भी मतलब नहीं है! यह आदमी किसी को दिखायी नहीं पड़ता! सबकी अपनी किताबें हैं, अपने सिद्धांत हैं। सबका अपना ज्ञान है। मनुष्य और मनुष्य के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और वृक्षों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और समुद्रों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और परमात्मा के बीच ज्ञान की दीवालें हैं!
साधक को ज्ञान की दीवाल बड़ी बेरहमी से तोड़ देनी चाहिए, गिरा देनी चाहिए। एक-एक इट गिरा देनी चाहिए जानने की और ऐसे खड़े हो जाना चाहिए, जैसे मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। तो तो जीवन से संबंध हो सकता है, अन्यथा नहीं। तो तो हम जुड़ सकते हैं, तो तो इसी क्षण संवाद हो सकता है। इसी क्षण संबंध हो सकता है--इसी क्षण। कौन रोकता है फिर, फिर कौन बाधा देने को है?

कबीर का लड़का था--कमाल। एक सुबह कबीर ने कहा कि कमाल,"जा जंगल से थोड़ी घास काट ला।"
कमाल जंगल गया। सुबह गया था, दोपहर हो आयी। कबीर रास्ता देख रहा है, रास्ता देख रहा है। फिर सांझ होने लगी। फिर उसने कहा कि कमाल क्या करने लगा है! घास काटने भेजा था, जरूरत थी, गाय को खिलानी थी।
वह कहां है? फिर कबीर खोजते हुए जंगल में गये। वहां कमाल गले-गले घास
के बीच में खड़ा है! हवाओं के झोंके घास को हिला रहे हैं। कमाल भी उसके साथ हिल रहा है! कबीर ने जाकर उसे पकड़ा और कहा,"पागल, यह क्या कर रहा है!"
उसने आंखें खोली। उसकी आंखें बंद थी। उसने आंख खोली, उसने कहा कि मैं काटने में असमर्थ हो गया। मैं जब आया यहां, इतने आनंद में घास झूमती थी। सूरज की ऐसी स्वर्णिम वर्षा हो रही थी, हवाएं इतनी ताजी थीं और घास इतने आनंद में झूमती थी कि मैं भी झूमने लगा। मेरा भी संबंध हो गया घास से। तुम आये और तुमने मुझे हिलाया तो मुझे पता चला कि मैं कमाल हूं। मैं तो सोच रहा था कि मैं भी घास का एक हिस्सा हूं, मैं भी घास हूं! फिर कौन किसको काटता-- मैं तो घास हो गया! कबीर की समझ में शायद आया या नहीं आया, लेकिन कमाल ने कहा, मैं तो घास हो गया!
जब कोई व्यक्ति सागर के पास ऐसे बैठ जाये कि उसका कोई ज्ञान नहीं है
तो वह थोड़ी देर में पायेगा कि वह सागर हो गया है। संवाद शुरू हो जायेगा। वह वृक्ष के पास बैठ जाये, उसका कोई ज्ञान न हो, कोई दंभ न हो, कोई अहंकार न हो, कोई ईगो न हो, वह थोड़ी देर में पायेगा कि वह वृक्ष हो गया है। वह फूल के पास बैठ जाये, वह थोड़ी देर में पायेगा कि वह फूल हो गया है। एक संबंध है, जो ज्ञान तोड़ता है, जो ज्ञान के कारण नहीं बन पाता। वह संबंध बन जाये तो जीवन चारों तरफ से वह खबर भेजने लगता है, जिसे हम प्रभु की खबर कहें।
पक्षियों के गीत से वह ध्वनि आने लगती है, जो वेदों से नहीं आती।
वृक्षों की कंपती टहनियों से वह आवाज आने लगती है, जो कुरान में नहीं है, जो महावीर नहीं कह सकते, जो बुद्ध नहीं कह सकते। जो कोई वाणी नहीं कह सकती।
वह मौन में प्रकट होनी शुरू हो जाती है।
लेकिन उसके लिए पात्रता चाहिए। अज्ञानी का सरल, विनम्र हृदय चाहिए।
ज्ञानी का दंभ और कठोर मजबूत मन नहीं।
इसलिए पहली सीढ़ी पर आपसे यह कहना चाहता हूं, अज्ञानी हो जायें।
अज्ञानी हैं, इसे जान लें, इसे पहचान लें।
और यह बड़े रहस्य की बात है कि जो अपने अज्ञान को पहचानता है, उसने ज्ञान की तरफ पहला कदम उठा लिया। वे लोग जो जान लेते हैं कि नहीं जानते हैं, जानने की तरफ उनकी गति शुरू हो गयी। वे किसी दिन जान भी सकेंगे, किसी दिन जानना भी हो जायेगा। लेकिन विनम्रता चाहिए जानने के लिए और विनम्रता अज्ञान के अतिरिक्त कहीं भी नहीं है, कहीं भी नहीं हो सकती।
साधक के लिए पहला सूत्र है अज्ञान का बोध। अज्ञान का बोध! इस बोध के लिए न तो शास्त्रों को पढ़ने की जरूरत है, क्योंकि जो शास्त्रों में पढ़ लेते हैं, उन्हें यह बोध पाने में सिवाय कठिनाई के और कुछ भी नहीं होता। न इस बोध को प्राप्त करने के लिए किन्हीं गुरुओं के पास जाने की कोई जरूरत है, क्योंकि गुरुओं के पास ज्ञान मिल सकता है। अज्ञान का बोध कैसे मिलेगा? न इस अज्ञान के बोध के लिए सत्संगों की जरूरत है, क्योंकि वहां सब शब्द और सिद्धांत मिल सकते हैं।
यह बोध कैसे मिलेगा?
इस बोध के लिए तो एकांत में, अकेले में, अपनी वस्तुस्थिति समझने की जरूरत है।"क्या मैं जानता हूं?" यह अपने से बार-बार पूछ लेने की जरूरत है-- क्या मैं जानता हूं? भीतर से उत्तर आयेगा कि नहीं, नहीं जानते हैं। हो सकता है, जाने हुए सिद्धांत बीच में खड़े हो जायें और कहें कि हां, जानते हैं। तो थोड़ा उन सिद्धांतों को परख लेना--ये मैंने सुन कर सीखे हैं, पढ़ कर सीखे हैं या मैं जानता हूं? ये मैंने शास्त्र से सीखे हैं। ये शब्द हैं, सिद्धांत हैं या मेरी अनुभूतियां हैं? इतना उनसे पूछ लेना तो वे तत्क्षण गिर जायेंगे, खड़े नहीं रह सकेंगे।
ज्ञान एकदम बेबुनियाद है।

एक जरा से धक्के की जरूरत है कि जैसे ताश के पत्तों का महल गिर जाता है, ऐसे ही गिर जायेगा।
ज्ञान बिल्कुल कागज की नाव है। छोड़ो इसे पानी में और डूब जायेगी।
ज्ञान हमारा है ही नहीं, सिर्फ हम बनाये हुए बैठे हैं और माने हुए बैठे हैं कि है। जब तक हम माने हुए बैठे हैं, तब तक वह है। जिस दिन हम आंख खोलकर पहचानेंगे, उसी दिन वह नहीं हो जाता है। और जिस दिन ज्ञान"नहीं" हो जाता है, उस दिन फिर जीवन में प्रवेश का द्वार खुलता है।
तो आज की सुबह की चर्चा में एक ही बात आपसे कहना चाहता हूं, अज्ञान को उपलब्ध कर लें।
अज्ञान का भाव बड़ी धन्यता है, बड़ी कृतार्थता है।
छोड़ दें कचरे को जो जान लिया है। अज्ञान की अपनी गहराई है, जो किसी ज्ञान में नहीं। क्योंकि ज्ञान कितना भी होगा, सीमित होगा। अज्ञान असीम हो सकता है, अज्ञान असीम है। ज्ञान कितना ही होगा, और आगे बढ़ाया जा सकता है।
अज्ञान अनंत है। उसमें और कुछ नहीं जोड़ा जा सकता। आप जानते हैं तो कुछ
और जान सकते हैं, कुछ और जान सकते हैं, कुछ और जान सकते हैं। आप नहीं जानते हैं तो नहीं जानते हैं। उसमें कुछ जोड़ने-घटाने का उपाय नहीं। ऐसा जो अज्ञान का बोध है, उसे अगस्टीन ने एक शब्द दिया
था। उसने कहा था,"डिवाइन इग्नोरेंस"-- दिव्य अज्ञान। सच में ही अज्ञान
की बड़ी दिव्यता है, क्योंकि अज्ञान में अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं है और जहां अहंकार नहीं है, वहीं दिव्यता शुरू हो जाती है। और जहां अहंकार के खड़े होने का उपाय है, वहीं दिव्यता खंडित हो जाती है।
यह तो सुबह की थोड़ी-सी बात मैंने आपसे कही। इसे सोचें, परखें, पहचानें
और अगर दिखायी पड़ता तो गिरा दें; ज्ञान के मकान को गिरा दें, ताकि अज्ञान का मंदिर खड़ा हो सके।
ज्ञान के सब मकान हैं, अज्ञान का अपना मंदिर है।
इस बात के बाद सुबह के ध्यान के लिए हम बैठेंगे। तो मैं सुबह के ध्यान
के संबंध में दो-तीन बातें आपको कह दूं, फिर हम ध्यान के प्रयोग के लिए बैठेंगे।
ध्यान तो बड़ी सरल-सी बात है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह सरल ही हो सकता है। कठिनाई हमेशा असत्य के साथ होती है, सत्य के साथ कोई कठिनाई नहीं। ध्यान बड़ी सरल-सी बात है, एकदम सरल-सी बात है। कुछ भी करना नहीं है, थोड़ी देर को न-करने की अवस्था में अपने को छोड़ देना है। न-करने की अवस्था में,"स्टेट आफ नाट डूइंग"। कुछ भी नहीं करना है, थोड़ी देर को छोड़ देना है। यह तो इतना अच्छा अवसर है यहां। यह इतनी सुंदर जगह है कि न-करने में छोड़ना एकदम आसान है।
न-करने के क्या सूत्र होंगे?
न-करने का पहला सूत्र यह है कि मन में करने का कोई भाव न हो। हम ध्यान करने बैठते हैं तो एक भाव होता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं, पूजा कर रहा हूं, प्रार्थना कर रहा हूं, मैं कुछ कर रहा हूं। करने का भाव तनाव पैदा करता है, टैंशन पैदा करता है। जहां करने का भाव आया, तनाव आया। करने के भाव के पीछे अशांति आयेगी ही। न-करने के भाव के पीछे शांति आ सकती है, विश्राम आ सकता है।
तो पहली बात, अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे, हमारी सारी भाषा करने की भाषा है। ध्यान करने बैठेंगे, ऐसा कहेंगे तो गलत है कहना, क्योंकि ध्यान में करने जैसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन हमारी सारी भाषा, मनुष्य की सारी भाषा करने की भाषा है, न-करने की हमारे पास कोई भाषा नहीं है।
जापान में कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले एक बहुत बड़ी मॉनेस्ट्री थी, एक बड़ा आश्रम था। वहां कोई पांच सौ भिक्षु साधना करते थे। सम्राट उत्सुक हो गया उस आश्रम को देखने और गया। दूर-दूर जंगल में फैला हुआ वह आश्रम था, दूर-दूर फैली हुई कुटिया थीं। एक-एक कुटी को दिखाने लगा भिक्षु, जो प्रधान था और बताने लगा, इस कुटी में हमारे भिक्षु भोजन बनाते हैं, इस कुटी में हमारे भिक्षु अध्ययन करते हैं, इस कुटी में गीत गाते हैं; यहां यह करते हैं, वहां वह करते हैं; वहां स्नान करते हैं।

बीच में बड़ा भवन है आश्रम का, वह भिक्षु उस भवन के बाबत कुछ भी नहीं कहता है! राजा बार-बार पूछने लगा, कि ठीक है, ठीक है, लेकिन इस बड़े भवन में क्या करते हैं? यह बात सुनते ही वह भिक्षु चुप हो जाता, जैसे बहरा हो गया हो, जैसे उसे सुनायी नहीं पड़ता हो! फिर दूसरी कुटिया के बाबत बताने लगता है। फिर पूरा आश्रम घूम लिया गया। उस बड़े भवन के आसपास चक्कर लग गया, लेकिन उस बड़े भवन के संबंध में एक शब्द नहीं कहा! फिर वे द्वार पर आ गये और राजा विदा होने लगा और राजा ने कहा, मैं समझता हूं, या तो मैं पागल हूं या तुम। जो भवन मैं देखने आया था उसके संबंध में तुमने एक शब्द भी नहीं कहा! मैंने बार-बार पूछा, तुम बहरे हो जाते हो! इस बड़े भवन में क्या करते हो?
वह भिक्षु कहने लगा, बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं आप। आप बार-बार पूछते हैं कि इस बड़े भवन में क्या करते हो। तो मैं समझ गया कि आप करने की भाषा समझ सकते हैं; इसलिए मैंने बताया कि यहां हम स्नान करते हैं, यहां हम भोजन बनाते हैं, यहां हम भोजन करते हैं, यहां हम किताब पढ़ते हैं।
तो मैंने करने की भाषा में बताया, मैंने एक्शन की भाषा में बताया। अब
रह गया बीच का भवन। बड़ी मुश्किल है। वहां हम कुछ भी नहीं करते हैं, वहां तो जब कोई भिक्षु कुछ भी नहीं करना चाहता तो चला जाता है। वह हमारे ध्यान का भवन है। वह मेडिटेशन हाल है। और आप पूछते हैं, वहां क्या करते हो? तो आप मुझे मुश्किल में डालते हैं। अगर मैं कहूं कि हम वहां ध्यान करते हैं तो गलती होगी, क्योंकि ध्यान का करने से कोई संबंध नहीं है। वहां हम कुछ भी नहीं करते हैं।
यह जो ध्यान की बात मैं कर रहा हूं, यह कुछ भी न-करने की बात है।
आपने राम राम जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। आपने माला फेरी होगी, उसको ध्यान कहा होगा। आपने गायत्री पढ़ी होगी, उसको ध्यान कहा होगा। आपने नमोकार जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। वह कोई भी ध्यान नहीं है। जब तक आप कुछ कर रहे हैं, तब तक आप ध्यान में नहीं जा सकते, चाहे माला फेरते हों, चाहे राम राम जपते हों, चाहे गायत्री, चाहे नमोकार, चाहे कुछ और। जब तक आप कुछ कर रहे हैं, तब तक आप ध्यान के बाहर हैं। जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सब मौन, सब शांत हो गया, सब शिथिल हो गया, करने का सारा यंत्र चुप हो गया, तब आप ध्यान में प्रविष्ट होते हैं।
ध्यान एक अक्रिया है।
ध्यान एक अक्रिया है तो यहां हम ध्यान में अभी जायेंगे तो कैसे जायेंगे? अक्रिया में कैसे जायेंगे?
अक्रिया में जाने का पहला सूत्र तो यह जान लेना है कि मैं कुछ भी नहीं
कर रहा हूं। भाव में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, मैं न-करने में डूबने वाला हूं। भाव के तल पर यह बोध कि मैं न-करने में बैठ रहा हूं--मैं चुपचाप, सिर्फ शिथिल होकर बैठ जाऊंगा, कुछ भी नहीं करूंगा। पहली बात।
दूसरी बात, आप शिथिल होकर बैठ जायेंगे तो भी हवाएं तो बहती रहेंगी, हवाएं तो शिथिल नहीं हो जायेंगी। पक्षी तो बोलते रहेंगे। वह कौआ बोल रहा है, वह आवाज देता रहेगा। सागर गर्जन करता रहेगा, वृक्षों के पत्ते हिलेंगे और आवाज होती रहेगी। यह सब तो होता रहेगा। आप निष्क्रिय हो जायेंगे, लेकिन यह सारा जगत तो अपनी पूरी क्रिया में गतिमान होगा। इस सारी क्रिया के प्रति आप क्या करेंगे?
इस सारी क्रिया के प्रति आप सिर्फ जागरूक बने रहना। होश से भरे रहना, अवेअर बने रहना। यह कौआ बोले तो यह आपको सुनायी पड़ता रहे। ये सागर गर्जन करे तो आपको सुनायी पड़ता रहे। ये हवाएं आयें और वृक्षों को हिलायें तो आपको सुनायी पड़ता रहे। यह जो चारों तरफ जो कुछ भी हो रहा है, वह आपके बोध में, आपके जागरण में, आपको अनुभव होता रहे। बस आप कुछ मत करना, सिर्फ जागे रहना। सिर्फ सुनते रहना।
और स्मरण रहे, जागना कोई क्रिया नहीं है। जब आप किसी क्रिया में होते हैं, तब भीतर आपका जागरण सो जाता है। जब आप बिल्कुल अक्रिया में होते हैं, तब जागरण पूरा प्रकट हो जाता है।
जागरण कोई क्रिया नहीं है, मनुष्य का स्वभाव है। कोई एक्ट नहीं है, कोई कर्म नहीं है, मनुष्य की चित्त दशा है। मनुष्य की चेतना है।

तो सिर्फ सचेत, होश से भरे हुए, कांशस, चुपचाप, मौन इन वृक्षों के पास बैठे रहना है। श्वास चलती रहेगी तो श्वास को चुपचाप अनुभव करते रहें। और सुनते रहें--चारों तरफ जो भी सुनायी पड़ रहा है, उसे सुनते रहें। सुनते ही सुनते आप हैरान हो जायेंगे। एक-दो क्षण मौन से सुनते ही भीतर गहरी शांति उतरनी शुरू हो जायेगी। थोड़ी देर में सब विलीन हो जायेगा, एक सन्नाटा भर भीतर रह जायेगा। उस सन्नाटे में कोई पक्षी बोलेगा तो उसकी गूंज सुनायी पड़ेगी। गूंज विलीन हो जायेगी, सन्नाटा और भी ज्यादा गहरा हो जायेगा। कोई चीज बाधा नहीं डालेगी। हर चीज जो चारों तरफ हो रही है, सहयोगी बन जायेगी, मित्र बन जायेगी।
एक बार आप शिथिल और मौन होकर रह जायें, विचार अपने आप शांत हो जायेंगे, विलीन हो जायेंगे। उन्हें शांत करना नहीं पड़ता है, उन्हें हटाना भी नहीं पड़ता है। जो मौन में बैठकर चारों तरफ के जगत के प्रति जागरूक हो जाता है, धीरे-धीरे उसके विचार अपने आप समाप्त हो जाते हैं। यह अभी और यहीं हो सकेगा। इसके पहले कि हम बैठें थोड़े दूर-दूर हम बैठ जायेंगे, ताकि कोई किसी को छूता हुआ न हो। और यहां तो इतनी फैली जगह है, इतने वृक्ष हैं, अपना-अपना वृक्ष चुन लें। थोड़े फासले पर हो जायें, ताकि आप बिल्कुल अकेले में निष्क्रिय हो सकें। थोड़े हट जायें, कोई किसी को छूता हुआ न हो।

नेति-नेति
तीसरा प्रवचन

रहस्य का बोध

प्रिय आत्मन्,
सुबह जो कुछ मैंने कहा है, उस संबंध में बहुत-से प्रश्न आये हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या सारा ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन में बाधा है? क्या शास्त्र व्यर्थ हैं? क्या सिद्धांतों, दर्शनों को जो हम जानते हैं, उससे सत्य की दिशा में कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता है? ऐसे ही और भी कुछ मित्रों ने प्रश्न पूछे हैं।
एक छोटा-सा बच्चा अपने घर के बाहर खेल रहा था। सुबह का सूरज निकला है। सूरज की स्वर्ण जैसी किरणें घर के बगीचे में बरस रही हैं। सुबह की ताजी हवाएं हैं, तितलियां फूलों पर उड़ रही हैं और वह बच्चा घास में लेटा हुआ खेल रहा है। तभी उसे ख्याल आया है कि सूरज की इन नाचती किरणों को काश! वह कैद कर ले, बंद कर ले, अपने पास सुरक्षित कर ले। वह भीतर गया है और एक पेटी ले आया है। उसने सूरज की किरणों को बंद कर लिया है उस पेटी में, हवाओं को बंद कर लिया है!
और फिर, खुशी से नाचता हुआ पेटी को लेकर भीतर अपनी मां के पास पहुंच गया है और उसने कहा है कि तुझे पता भी नहीं है कि मैं पेटी में क्या बंद कर लाया हूं। सूरज की नाचती हुई किरणें, सुबह की हवाएं, वह सब इसमें बंद कर लाया हूं!
उसे पता भी नहीं कि जिसे उसने बंद किया है, वह बंद नहीं किया जा सकता। उसे पता भी नहीं कि वह पेटी को भीतर ले आया है, सूरज की किरणें बाहर ही रह गयीं हैं।
उसकी मां हंसने लगी और उसने कहा, खोल, अपनी पेटी को खोल, मैं भी देखूं,
तू किन किरणों को पकड़ लाया है; क्योंकि मैंने सुना नहीं है अब तक कि किरणें कोई पकड़कर ले आता है! और मैंने सुना नहीं है कि कोई सुबह की हवाएं भी पेटियों में बंद हो जाती हैं!
उसने खुशी में और मां को चमत्कृत करने के लिए पेटी खोली है और दंग खड़ा
रह गया है। उसकी आंखों में आंसू आ गये हैं। उसकी पेटी में तो घुप्प अंधकार है, वहां तो कोई भी सूरज की किरण नहीं है। वहां तो सुबह की कोई ताजी हवा नहीं है। और वह रोने लगा है और कहने लगा है कि क्या! मैंने तो बंद किया था, वे सब किरणें कहां गयीं?
मनुष्य भी सत्य के सागर के किनारे जीवन की जिन हवाओं को, प्रभु की जिन किरणों को अनुभव करता है--सोचता है, शब्दों की पेटियों में, शास्त्रों में बंद कर ले! बड़े श्रम से ये पेटियों बंद की जाती हैं, लेकिन जब भी कोई उन पेटियों को खोलता है तो वहां कोरे शब्दों के अतिरिक्त, खाली पेटियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बंद करने का कोई भी उपाय नहीं है।
बंद करने के रास्ते कोई भी हों--शब्द भी अनुभवों को बंद करने की पेटियों से ज्यादा नहीं हैं। जीवन जो जानता है, शब्दों में हम उसे कैद करके प्रकट करना चाहते हैं। कोशिश करते हैं कि उसे पकड़ लें, जो हमने जाना, उसे शब्दों में बांध दें। लेकिन शब्द ही हाथ में रह जाते हैं। जिसे बांधा था, वह बंधन के हमेशा बाहर है।
परमात्मा को किसी भी बंधन में बांधने का कोई उपाय नहीं।
मौन में तो उसे कहा जा सकता है, शब्दों में कहने का कोई मार्ग नहीं।
शून्य में तो उसके अनुभव को पाया जा सकता है, लेकिन शास्त्रों से उसे निकाल लेने की कोई राह नहीं।
लेकिन हम शास्त्रों से जो कुछ उपलब्ध करते हैं, सोचते हैं, वह ज्ञान है। वे शब्द हैं कोरे। जिन्होंने उन शब्दों को कहा था, उन्होंने सोचा होगा कि जो वे जान रहे हैं, शायद शब्दों में बांध दिया जा सके। उनकी करुणा है इसके पीछे, उनका प्रेम है इसके पीछे। मनुष्य-जाति भी उस सबको जान ले, जो उसको ज्ञात हुआ है।

लेकिन नहीं, शब्दों में कुछ भी उतरकर नहीं आता है, जैसे खाली कारतूस हों। ऐसे सभी शब्द खाली कारतूसों की तरह हैं, जिनके भीतर कोई अनुभव बंधा हुआ नहीं आता है।
आपके पास अपना अनुभव हो तो शब्द भी सार्थक हो जाते हैं, लेकिन आपके पास अपना अनुभव न हो तो शब्द खाली कारतूस हैं, उनमें कुछ भी नहीं है। उन शब्दों को इकट्ठा करते रहें, ब्रह्म को, अद्वैत को, आत्मा को, सच्चिदानंद को। इन सब शब्दों को इकट्ठा करते रहें, इनका अंबार लगा लें, इनको तिजोरी में भर लें और आपको सिर्फ भ्रम पैदा होगा कि आपने कुछ जान लिया है। आप कुछ जान नहीं सकेंगे। और यह भ्रम बाधा है। इसलिए मैंने कहा,"ज्ञान नहीं ले जाता परमात्मा के द्वार तक, बल्कि यह प्रतीति ले जाती है कि मैं नहीं जानता हूं।"
यह जानने का भ्रम शब्दों से पैदा हो जाता है। यह जानने का भ्रम शास्त्रों से पैदा हो जाता है, सिद्धांतों से पैदा हो जाता है। जिस व्यक्ति को खोज करनी हो, उसे साहस करना पड़ता है।
सत्य को पाना हो तो शब्दों को छोड़ने का साहस करना पड़ता है।
हमारा ज्ञान शब्दों के जोड़ के अतिरिक्त और क्या है?
और इस ज्ञान से हमने भीतर अपने क्या कर लिया है? सिवाय इसके कि हमारी अस्मिता, हमारी ईगो, हमारा अहंकार मजबूत हो गया हो। हमें लगने लगा है कि मैं कुछ हूं, क्योंकि"मैं" जानता हूं। हमारे इस"मैं" का पत्थर और भी भारी और वजनी हो गया है। किसलिए हमने ये शब्द इकट्ठे कर रखे हैं, शायद इसीलिए ताकि मुझे ज्ञात हो सके, अनुभव हो सके कि मैं कुछ हूं, मैं जानता हूं। मैं अज्ञानी नहीं हूं।
मैं एक बात इस संबंध में आपको कहूं। जो भी बात आपके अहंकार को मजबूत करती हो, आप भली-भांति जान लेना कि वह जीवन-सत्य की खोज में दीवाल बन जायेगी, बाधा बन जायेगी, पत्थर बन जायेगी--जो भी चीज आपके"मैं" को मजबूत करती हो, घनीभूत करती हो और यह भ्रम पैदा करती हो कि मैं हूं।
एक समुद्र के तट पर जैसे हम आज यहां बैठे हैं, एक सांझ सूरज डूबता था
और एक बाप अपने छोटे से बेटे के साथ समुद्र के किनारे बैठा हुआ था। सूरज डूबने लगा। उस बाप ने सूरज की तरफ उंगली उठायी और सूरज से कहा"गो डाउन, गो डाउन"--नीचे जाओ, नीचे जाओ!
सूरज तो नीचे जा ही रहा था। सूरज नीचे चला गया और डूब गया। वह बच्चा तो हैरान रह गया अपने बाप की ताकत देखकर। इतना शक्तिशाली पिता है उसका कि सूरज को भी कहता है, गो डाउन, तो सूरज भी नीचे चला जाता है!
उस बेटे ने अपने बाप की तरफ आंखें उठायीं, उसके कंधे पकड़ लिए और कहा, मेरे पिता, इतने शक्तिशाली हैं आप, तो एक कृपा और करें। उस बच्चे ने अपने बाप से कहा, डू इट डैडी अगेन, डू इट अगेन, एक बार और करके दिखायें!
उस बाप ने बड़ी कठिनाई अनुभव की होगी। फिर सभी समझदार लोग रास्ते निकाल लेते हैं। उसने कहा, यह ऐसा काम है कि दिन में एक ही बार किया जा सकता है। कल सांझ फिर करके दिखाऊंगा।
बाप बेटे के सामने ज्ञानी बन जाता है, शक्तिशाली बन जाता है! पति पत्नी के सामने ज्ञानी बन जाता है, शक्तिशाली बन जाता है। गुरु विद्यार्थी के सामने शक्तिशाली बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है। बूढ़े बच्चों के सामने ज्ञान दिखाकर अपने अहंकार को भर लेते हैं।
लेकिन जीवन को तो धोखा नहीं दिया जा सकता इस भांति। हम अपने को जरूर धोखा दे लेते हैं। हमारा सारा ज्ञान ऐसा है, जिसके पीछे सिर्फ एक बात की कोशिश है कि मैं यह दिखा सकूं कि मैं कुछ हूं। मैं जानता हूं, मैं शक्तिशाली हूं; मैं अज्ञानी नहीं, मैं कमजोर नहीं।
और सच्चाई क्या है?
हमारा ज्ञान और हम रेत पर खींची गयी रेखाओं की तरह विलीन हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम सूखे पत्तों की तरह हवाओं में उड़ जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम कागज के भवनों की तरह हैं, जरा से झोंके में गिर जाते हैं।

आदमी का ज्ञान भी क्या हो सकता है? आदमी के खुद के होने की भी क्या सामर्थ्य है, और क्या शक्ति है? इस बड़े विराट जगत में आदमी क्या है, आदमी की सामर्थ्य क्या है?
चांदत्तारों को शायद ही पता हो कि आप हैं। चांदत्तारे बहुत दूर हैं,
इन दरख्तों को भी शायद ही पता हो कि आप हैं। दरख्त दूर, इस रेत को शायद ही पता हो कि आप हैं। इस विराट अस्तित्व में आपका, मेरा, हमारा मनुष्य का होना क्या है?
लेकिन मनुष्य ने बहुत से--बहुत से झूठे अहंकार पोषित कर लिए हैं। उनमें एक अहंकार सबसे गहरा और बुनियादी यह है कि हम जीवन की सच्चाइयों को जानते हैं। जीवन की कोई सच्चाई हमें ज्ञात नहीं है। जीवन बहुत अज्ञात है। एक मित्र ने पूछा है कि यह हो सकता है कि बहुत बड़ी-बड़ी चीजें हमें ज्ञात न हों, लेकिन कुछ चीजें तो मनुष्य को ज्ञात हैं।
जीवन में बड़ी और छोटी चीजों का कोई भेद और फासला नहीं है। न तो सूरज बड़ा है और न एक छोटा-सा दीया छोटा है। एक कंकड़ भी छोटा नहीं है, क्योंकि अस्तित्व की उतनी ही मिस्ट्री, उतना ही रहस्य एक छोटे से कंकड़ में है, जितना कि बड़े हिमालय में होगा। एक पानी की बूंद भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितना हिंद महासागर है। छोटे और बड़े का भेद आदमी की कल्पना में है। अस्तित्व में छोटे और बड़े का कोई फासला नहीं है।
मैंने सुना है, एक सांझ जब सूरज पश्चिम में डूबने लगा तो उसने चिल्लाकर कहा, मैं तो जा रहा हूं और रात अंधेरी उतरने को है, अब मेरी जगह अंधेरे से लड़ाई कौन करेगा, संघर्ष कौन करेगा?
चांद चुप रहा, तारे चुप रहे, लेकिन एक मिट्टी के छोटे-से दीये ने कहा, मैं--"मैं रात भर लड़ता रहूंगा, जब तक आप वापस न लौट आयें।"
और रात भर एक छोटे-सा दीया--रात भर अंधेरे से लड़ता रहा! सूरज बड़ा होगा बहुत, लेकिन एक छोटे-से दीये के अंधेरे में संघर्ष को देखा है आपने? एक छोटे-से दीये की ज्योति को तूफानों में कांपते देखा है आपने? उस छोटी-सी ज्योति का अपना रहस्य है, जो किसी सूरज से कम नहीं। उस छोटी-सी ज्योति में वह सब छिपा है, जो बड़े-से-बड़े सूरज में होगा या हो सकता है। कौन है छोटा और कौन है बड़ा?
एक कवि ने कहा है कि अगर हम एक छोटे-से फूल को भी पूरा जान लें तो हम पूरे विश्व को जान लेंगे, पूरे जगत को, पूरे जीवन को। एक छोटा-सा फूल, एक घास का छोटा-सा फूल भी अगर आदमी पूरी तरह जान ले तो जानने को फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। क्या एक बूंद को जान लेने से सागर नहीं जान लिया जाता? क्या एक रेत के एक छोटे-से टुकड़े को जान लेने से सारे पहाड़ नहीं जान लिए जाते? एक छोटे-से अणु का उदघाटन और जीवन के सारे अस्तित्व का बोध नहीं हो जाता है?
लेकिन नहीं, कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है और जिसे हम ज्ञान समझ रहे हैं,
तो वह ज्ञान नहीं, केवल काम-चलाऊ, युटिलिटेरियन परिचय है। उस परिचय के कारण यह भ्रम पैदा हो जाता है कि हम जानते हैं!
मुझे प्रीतिकर लगा है एक व्यक्ति का उोख। एडीसन एक छोटे-से गांव में गया था। एडीसन ने अपने जीवन में एक हजार आविष्कार किये हैं। शायद किसी वैज्ञानिक ने इतने आविष्कार कभी नहीं किये हैं-- एक हजार! विद्युत के लिए, इलेक्ट्रीसिटी के लिए उससे बड़ा कोई तत्ववेत्ता नहीं था। कोई नहीं था, जो इतना जानता हो विद्युत के संबंध में जितना एडीसन। वह एक छोटे-से गांव में गया है। गांव के लोगों को पता भी नहीं कि वह कौन है। गांव के स्कूल में, एक छोटी-सी एक्जीबीशन, एक प्रदर्शनी चल रही है। स्कूल के बच्चों ने बहुत-से खेल-खिलौने बनाये हैं। स्कूल के विज्ञान के विद्यार्थियों ने बिजली के भी खेल-खिलौने बनाये हैं। छोटी नाव बनायी हैं, रेलगाड़ी बनायी है, मोटरगाड़ी बनायी है। और बच्चे बड़े आनंद से, प्रदर्शनी को जो भी लोग देखने आये हैं, उन्हें समझा रहे हैं एक-एक चीज को। एडीसन भी घूमता हुआ उस प्रदर्शनी में पहुंच गया। वह विज्ञान के हिस्से में चला गया। छोटे-छोटे बच्चे उसे समझा रहे हैं कि नाव विद्युत से चलती है। यह गाड़ी विद्युत से चलती है। वह खुशी से देख रहा है--अवाक, विस्मय से भरा हुआ। वे बच्चे और भी खुश होकर उसे समझा रहे हैं।

तब अचानक उस बूढ़े ने उन बच्चों से पूछा, यह तो ठीक है कि तुम कहते हो कि
ये विद्युत से चलती हैं--यह मशीन, यह नाव, यह गाड़ी। लेकिन मैं अगर तुमसे पूछूं तो तुम बता सकोगे क्या? एक छोटा-सा सवाल मेरे मन में आ गया है, व्हाट इज इलेक्ट्रीसिटी? विद्युत क्या है, बिजली क्या है?"
बच्चे बोले,"बिजली! हम नाव तो चलाना जानते हैं बिजली से, लेकिन बिजली क्या है, यह हमें पता नहीं। हम अपने शिक्षक को बुला लाते हैं।"
वे अपने शिक्षक को बुला लाये हैं और एडीसन ने उनसे भी पूछा है, व्हाट
इज इलेक्ट्रीसिटी?
शिक्षक भी हैरान हो गया। वह विज्ञान का स्नातक है, ग्रेज्युएट है। उसने कहा, यह तो हमें पता है कि विद्युत कैसे काम करती है, लेकिन यह हमें कुछ भी पता नहीं कि विद्युत क्या है। लेकिन आप ठहरें, हमारा प्रिंसिपल तो डी. एस सी. है, वह तो विज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान है। हम उसे बुला लाते हैं।
वे अपने प्र्रिंसिपल को बुला लाये हैं। और एडीसन का किसी को पता नहीं
कि सामने जो आदमी खड़ा है, वह विद्युत को सबसे ज्यादा जानने वाला आदमी है। वह प्र्रिंसिपल आ गया है, उसने समझाने की कोशिश की है। लेकिन एडीसन पूछता है,"मैं यह नहीं पूछता कि बिजली कैसे काम करती हैं, मैं यह नहीं पूछता कि बिजली किन-किन चीजों से मिलकर बनी है, मैं यह पूछता हूं कि बिजली क्या है?" उस प्र्रिंसिपल ने कहा"क्षमा करें। इसका तो हमें कुछ पता नहीं।" वे
सब बड़े पेशोपश, बड़ी चिंता में पड़ गये हैं। तब वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहा,"शायद तुम्हें पता नहीं, मैं एडीसन हूं और मैं भी नहीं जानता हूं कि बिजली क्या है।"
यह विनम्रता, यह ह्युमिलिटी सत्य के शोधक के लिए पहली शर्त है। एडीसन
कह सकता है कि मैं भी नहीं जानता हूं कि विद्युत क्या है। यह धार्मिक चित्त का लक्षण है,"रिलीजस माइंड" का लक्षण है कि वह जीवन के इस अनंत रहस्य को स्वीकार करता है।
जो व्यक्ति जीवन के रहस्य को स्वीकार करता है, वह व्यक्ति अपने ज्ञानी होने को स्वीकार नहीं कर सकता है। क्योंकि ये दोनों बातें आपस में विरोधी हैं। जब कोई कहता है कि मैं ज्ञानी हूं, तब वह यह कहता है कि जीवन में अब कोई रहस्य नहीं, मैंने जान लिया हैं। जिस बात को हम जान लेते हैं, उसमें फिर कोई रहस्य, कोई मिस्ट्री नहीं रह जाती।
जो व्यक्ति कहता है, मैं नहीं जानता हूं; वह यह कह रहा है, जीवन एक रहस्य है, जीवन एक अनंत रहस्य है।
व्यक्ति के अज्ञान पर मेरा इतना जोर क्यों है? यह जोर इसलिए है, ताकि जीवन की रहस्यमयता, जीवन का मिस्टीरियस होना आपके स्मरण में आ सके। ज्ञानी के लिए कोई रहस्य नहीं है। जहां हमने जान लिया, वहां रहस्य समाप्त हो जाता है। हजारों वर्षों से धर्म-शास्त्रियों ने मनुष्य के रहस्य की हत्या की है। वे हर चीज को ऐसा समझते हुए मालूम पड़ते हैं, जैसे जानते हों! उनसे अगर पूछो कि दुनिया किसने बनायी तो उनके पास रेडिमेड उत्तर तैयार है! वे कहते हैं कि ईश्वर ने बनायी है! और वे यहां तक बताते हैं, उनमें से कुछ कि छह दिन तक उसने दुनिया बनायी, फिर सातवें दिन विश्राम किया! उनमें से कुछ यह भी कहते हैं--कि तिथि, तारीख भी बताते हैं कि आज से इतने हजार वर्ष पहले फलां सन में, फलां तिथि में, ईसा से चार हजार वर्ष पहले पृथ्वी बनायी गयी है, जीवन बनाया गया! वे हर चीज का उत्तर देने के लिए हमेशा तैयार हैं!
मनुष्य कैसे जान सकता है कि जीवन कब बनाया गया और कैसे बनाया गया? मनुष्य तो जीवन के बीच में स्वयं आता है, वह जीवन के प्रारंभ को कैसे जान सकता है? सागर की एक लहर कैसे जान सकती है कि सागर कब बना होगा? सागर के होने पर ही लहरें उठती हैं। सागर जब नहीं था, तब लहर भी नहीं हो सकती है--तो लहर कैसे जान सकती है, मनुष्य कैसे जान सकता है? कोई भी कैसे जान सकता है कि जीवन कब और कैसे पैदा हुआ?
लेकिन नहीं, ज्ञानियों का दंभ बहुत मजबूत है। वे हर चीज का उत्तर देने
को हमेशा तैयार हैं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसके लिए वे इनकार करें। ऐसा

कोई प्रश्न नहीं, जिसके लिए वे कहें कि हम नहीं जानते हैं। आप कोई भी प्रश्न लेकर चले जायें, धर्म-शास्त्रियों के पास हमेशा उत्तर हैं तैयार! इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि एक वैज्ञानिक तो शायद कभी जीवन के सत्य के करीब पहुंच जाये, क्योंकि वैज्ञानिक के मन में एक ह्युमिलिटी है, एक विनम्रता है। लेकिन धर्मों के पंडित कभी परमात्मा के पास नहीं पहुंच सकते हैं, क्योंकि उनके पास हर बात का उत्तर है, हर बात का ज्ञान है। वे सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं! उनकी सर्वज्ञता जीवन के रहस्य को नष्ट कर रही है, इसका उन्हें कोई ख्याल नहीं। आदमी के जीवन से धर्म इसी तरह धीरे-धीरे क्षीण होता गया है।
अगर मनुष्य को वापस धर्म की दिशा में ले जाना हो तो उसके रहस्य को फिर
से जन्म देने की जरूरत है। इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, आदमी को अपने अज्ञान का बोध होना चाहिए। यह बोध अत्यंत अनिवार्य है। इस बोध के बिना कोई गति नहीं हो सकती।
एक मित्र ने पूछा है कि ऐसी परिस्थितियां होती हैं कि उसमें हम साधना नहीं कर सकते हैं।
मुझे पता नहीं कि उनकी परिस्थितियां कैसी हैं, लेकिन मैं ऐसी एक भी परिस्थिति नहीं जानता हूं और कल्पना भी नहीं कर पाता हूं, जिसमें कि साधना न की जा सके। परिस्थितियों की बात हमेशा आदमी का बहाना है और हम बहाने ईजाद करने में बहुत कुशल लोग हैं। जो हमें नहीं करना होता है, उसके लिए हम हमेशा बहाना ईजाद कर लेते हैं!
एक मंदिर बन रहा था, सारे आसपास के गांवों के लोग श्रमदान कर रहे थे उस मंदिर में--मंदिर बनाने में। मंदिर के बनाने वालों ने प्रार्थना की थी गांव-गांव के लोगों से कि सभी आकर थोड़ा-थोड़ा मंदिर बनायें। कोई एक इट ले आये, कोई एक इट जोड़ दे; कोई एक पत्थर ले आये, कोई एक पत्थर रख दे; कोई मिट्टी ढो दे, लेकिन वह सब लोगों के श्रम से बने मंदिर।
बड़े समझदार लोग रहे होंगे उस गांव के। क्योंकि जब एक आदमी मंदिर बनाता है तो वह मंदिर अहंकार का मंदिर हो जाता है। और जब हजारों लोग प्रेम से मिलकर कुछ बनाते है तो वह प्रेम ही उस स्थान को मंदिर बना देता है। तो गांव में दूर-दूर से लोग उस मंदिर को बनाने आये हुए थे। वह किसी एक आदमी के पत्थर के आसपास बनने वाला मंदिर नहीं था। काम शुरू हो गया था।
लेकिन एक आदमी सुबह से ही आकर खड़ा हो गया है चुपचाप उदास। वह कोई काम नहीं कर रहा है। वह एक झाड़ के नीचे चुपचाप खड़ा है। मंदिर बनाने वाले दो-चार लोग उसके पास गये और कहां, मित्र, तुम कुछ हाथ नहीं बंटाओगे? तुम कुछ सहयोग नहीं दोगे?
उस आदमी ने कहा,"मैं भी चाहता हूं कि प्रभु के मंदिर में श्रम करूं, मैं भी चाहता हूं कि यह आनंद मुझे भी मिले, लेकिन भूखे पेट आदमी हो तो क्या कर सकता है?"मैं भूखा पेट हूं, भूखे पेट कैसे श्रम किया जा सकता है?"
बात तो ठीक थी। वे लोग उसे अपने घर ले गये। उसे भर पेट भोजन कराया।
फिर वे सब मंदिर की तरफ वापस लौटे। वे चारों लोग तो मंदिर में काम करने लग गये। वह आदमी फिर अपने वृक्ष के नीचे जाकर वैसा ही खड़ा हो गया, जैसे सुबह खड़ा था। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वह फिर उदास, वहीं खड़ा है, उसने न एक पत्थर उठाया है, न एक इट ढोयी है! वे फिर उसके पास गये और कहा,"महाशय, फिर कोई तकलीफ आ गयी क्या, आप फिर भी कोई सहायता नहीं कर रहे हैं?"
उसने कहा कि मैं भी चाहता हूं कि प्रभु के मंदिर में श्रम करूं, लेकिन भरे पेट कोई श्रम कर सकता है क्या?
सुबह वह खाली पेट था, इसलिए श्रम नहीं कर सकता था; अब वह भरे पेट है, इसलिए श्रम नहीं कर सकता! अब यह आदमी कब श्रम करेगा?
कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि गरीब है, कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि अमीर है। कोई इसलिए साधना की तरफ नहीं जा पाता कि पेट खाली है। कोई कहता है कि पेट भरा है, इसलिए हम उस ओर नहीं जा पाते। मुझे हर परिस्थिति के लोग मिलते हैं और मैंने पाया कि हर परिस्थिति के लोग कहते हुए पाये जाते हैं कि हमारी परिस्थिति ऐसी है कि हम कुछ करने में समर्थ नहीं है। अब तक

मुझे एक आदमी नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि मेरी परिस्थिति ऐसी है कि मैं करने में समर्थ हूं!
जरूर कोई और बात है, परिस्थितियां असली कारण नहीं है। असली कारण है,
जो हम नहीं करना चाहते हैं, उसके लिए हमेशा"जस्टिफिकेशन", उसके लिए हमेशा न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं और निश्चिंत हो जाते हैं!
ऐसी कौन-सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी शांत न हो सके; ऐसी कौन सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी प्रेमपूर्ण न हो सके? ऐसी कौन-सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी थोड़ी देर के लिए मौन और शांति में प्रविष्ट न हो सके?
हर स्थिति में, हर परिस्थिति में--वह होना चाहे तो बिल्कुल हो सकता है।
यूनान में एक वजीर को उसके सम्राट ने फांसी की सजा दे दी थी। सुबह तक
सब ठीक था। दोपहर वजीर के घर सिपाही आये और उन्होंने घर को चारों तरफ से घेर लिया और वजीर को भीतर जाकर खबर दी, कि आप कैद कर लिए गये हैं और सम्राट की आज्ञा है कि आज संध्या आपको फांसी दे दी जायेगी, छह बजे! 9 वजीर के घर उसके मित्र आये हुए थे। एक बड़े भोजन का आयोजन था। वजीर का जन्म-दिन था वह। एक बड़े संगीतज्ञ को बुलाया गया था। वह अभी-अभी अपनी वीणा लेकर हाजिर हुआ था। अब उसका संगीत शुरू होने को था। संगीतज्ञ के हाथ ढीले पड़ गये। वीणा उसने एक ओर टिका दी। मित्र उदास हो गये। पत्नी रोने लगी।
लेकिन उस वजीर ने कहा,"छह बजने में अभी बहुत देर है, तब तक गीत पूरा हो जायेगा! तब तक भोज भी पूरा हो जायेगा! राजा की बड़ी कृपा है कि छह बजे तक कम-से-कम उसने फांसी नहीं दी।
लेकिन वीणा बंद क्यों हो गयी? भोज बंद क्यों हो गया? मित्र उदास क्यों
हो गये हैं? छह बजने में अभी बहुत देर है। छह बजे तक कुछ भी बंद करने की कोई जरूरत नहीं।
लेकिन मित्र कहने लगे, अब हम भोजन कैसे करें? संगीतज्ञ कहने लगा, मैं वीणा कैसे बजाऊं? परिस्थिति बिल्कुल अनुकूल नहीं रही।
वह आदमी हंसने लगा, जिसको फांसी होने को थी! उसने कहा,"इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। छह बजे मैं मर जाऊंगा। क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं संगीत सुनूं? क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं अपने मित्रों से हंस लूं, बोल लूं, मिल लूं। क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव का स्थान बन जाये; क्योंकि सांझ छह बजे मुझे हमेशा को विदा हो जाना है।"
घर के लोग कहने लगे, परिस्थिति अनुकूल न रही कि अब कोई वीणा बजाये। घर
के लोग कहने लगे परिस्थिति अनुकूल न रही कि अब कोई भोज हो।
लेकिन वह आदमी कहने लगा कि इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। जब
छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है तो क्या यह उचित न होगा कि विदा होते क्षणों में मैं संगीत सुनूं? क्या यह उचित न होगा कि मित्र उत्सव करें? क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव बन जाये, कि जाते क्षण मेरी स्मृति में हमेशा वे थोड़े से पल टिके हुए रह जायें, जो मैंने अंतिम क्षण में, विदाई के क्षण में अनुभव किये थे।
और उस घर में वीणा बजती रही और उस घर में भोजन चलता रहा। यद्यपि लोग उदास थे, संगीतज्ञ उदास था, परेशान था। लेकिन वह वजीर खुश था, वह प्रसन्न था!
राजा को खबर मिली। राजा देखने आया कि वह वजीर पागल तो नहीं है! और जब
वह पहुंचा तो घर वीणा बजती थी और मेहमान इकट्ठे थे। और राजा जब भीतर गया तो वजीर खुद भी आनंदमग्न बैठा था! तो उस राजा ने पूछा, तुम पागल हो गये हो? खबर नहीं मिली कि छह बजे सांझ मौत तुम्हारी आ रही है।
उसने कहा,"खबर मिल गयी, इसलिए आनंद के उत्सव को हमने तीव्र कर दिया है, उसे शिथिल करने का तो सवाल न था, क्योंकि छह बजे मैं विदा हो जाऊंगा, तो छह बजे तक हमने आनंद के उत्सव को तीव्र कर दिया है; क्योंकि अंतिम विदा के क्षण स्मरण में रह जायें।"
राजा ने कहा,"ऐसे आदमी को फांसी देना व्यर्थ है। जो आदमी जीना जानता है, उसे मरने की सजा नहीं दी जा सकती है। उसने कहा, सजा मैं वापस ले लेता हूं। ऐसे प्यारे आदमी को अपने हाथों से मारूं, यह ठीक नहीं।"

जीवन में क्या अवसर है, क्या परिस्थिति है, यह इस बात पर निर्भर नहीं होता है कि क्या है। यह इस बात पर निर्भर होता है कि हम उस परिस्थिति को किस भांति लेते हैं, किस"एटीटयूड" में, किस दृष्टि से।
तो ज्ञात नहीं होता कि कोई भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है, जो आपके जीवन में प्रभु की तरफ जाने से आपको रोकती हो। आप ही अपने को रोकना चाहते हों तो बात दूसरी है। तब हर परिस्थिति रोक सकती है। और आप ही अपने को न रोकना चाहते हो, तो कोई ऐसी परिस्थिति न कभी थी और न कभी हो सकती है।
थोड़ा ध्यान से अपनी दृष्टि को देखने कि कोशिश आप करना। परिस्थिति पर दोष मत देना। थोड़ा ध्यान करना इस बात पर, कि मेरा दृष्टिकोण, परिस्थिति को समझने की मेरी वृत्ति, मेरी एप्रोच, मेरी पहुंच तो कहीं गलत नहीं है। कहीं मैं गलत ढंग से तो चीजों को नहीं ले रहा हूं।
एक घटना मुझे और स्मरण आती है। कोरिया में एक भिक्षुणी, एक भिक्षुणी स्त्री, एक संन्यासिनी एक रात एक गांव में भटकी हुई पहुंची। रास्ता भटक गयी है और जिस गांव पहुंचना चाहती थी, वहां न पहुंचकर दूसरे गांव पहुंच गयी है। उसने जाकर एक द्वार पर दरवाजा खटखटाया। आधी रात है। दरवाजा खुला। लेकिन उस गांव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे, वह भिक्षुणी दूसरे धर्म की थी। उस दरवाजे के मालिक ने दरवाजा बंद कर लिया और कहा, देवी, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। हम इस धर्म को नहीं मानते हैं। तुम कहीं और खोज कर लो और उसने चलते वक्त यह भी कहा कि इस गांव में शायद ही कोई दरवाजा तुम्हारे लिए खुले, क्योंकि इस गांव के लोग दूसरे ही धर्म को मानते हैं और हम तुम्हारे धर्म के शत्रु हैं।
आप तो जानते ही हैं, धर्म धर्म आपस में बड़े शत्रु हैं! एक गांव का अलग धर्म हैं, दूसरे गांव का अलग धर्म है! एक धर्म वाले को दूसरे धर्म वाले के यहां कोई शरण नहीं, कोई आशा नहीं, कोई प्रेम नहीं।
द्वार बंद हो जाते हैं। द्वार बंद हो गये उस गांव में! उसने दो-चार दरवाजे खटखटाये, लेकिन दरवाजे बंद हो गये। सर्द रात है, अंधेरी रात है, वह अकेली स्त्री है, वह कहां जायेगी?
लेकिन धार्मिक लोग इस तरह की बातें कभी नहीं सोचते। धार्मिक लोगों ने मनुष्यता जैसी बात कभी सोची ही नहीं! वे हमेशा सोचते हैं, हिंदू है या मुसलमान; बौद्ध है या जैन। आदमी का सीधा कोई मूल्य उनकी दृष्टि में कभी नहीं रहा है!
वह स्त्री उसको गांव छोड़ देना पड़ा। आधी रात वह जाकर गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गयी। कोई दो घंटे बाद ठंड के कारण उसकी नींद खुली। उसने आंख खोली। ऊपर आकाश तारों से भरा है! उस वृक्ष पर फूल खिल गये हैं! रात के खिलने वाले फूल, उनकी सुगंध चारों तरफ फैल गयी है। वृक्ष के फूल चटक रहे हैं। आवाज आ रही है और फूल खिलते चले जा रहे हैं। वह आधी घड़ी तक मौन उस फूल को, उन वृक्ष के फूलों को खिलते देखती रही। आकाश के तारों को देखती रही। फिर दौड़ी गांव की तरफ, फिर जाकर उसने उन दरवाजों को खटखटाया, जिन दरवाजों को उनके मालिकों ने बंद कर लिया था। आधी रात फिर कौन आ गया? उन्होंने दरवाजे खोले, वही भिक्षुणी खड़ी है! उन्होंने कहा हमने मना कर दिया, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है, फिर दुबारा क्यों आ गयी हो?
लेकिन उस भिक्षुणी की आंखों से कृतज्ञता के आंसू बहे जाते हैं। उसने कहा, नहीं, अब द्वार खुलवाने नहीं आयी, अब ठहरने नहीं आयी, केवल धन्यवाद देने आयी हूं। काश! तुम आज मुझे अपने घर में ठहरा लेते तो रात आकाश के तारे और फूलों का चटककर खिल जाना--मैं देखने से वंचित ही रह जाती। मैं सिर्फ धन्यवाद देने आयी हूं कि तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने द्वार बंद कर लिये और मैं आकाश के नीचे सो सकी। तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने घर की दीवालों से मुझे बचा लिया और खुले आकाश में मुझे भेज दिया।
जब तुमने भेजा था, तब तो मेरे मन को लगा था, कैसे बुरे लोग हैं। अब मैं
यह कहने आयी हूं कि कैसे भले लोग हैं इस गांव के। मैं धन्यवाद देने आयी हूं, परमात्मा तुम पर कृपा करे। जैसी तुमने मुझे एक अनुभव की रात दे दी, जो आनंद मैंने आज जाना है, जो फूल मैंने आज खिलते देखे हैं--जैसे मेरे भीतर भी कोई प्राणों की कली चिटक गयी हो, खुल गयी हो। जैसी आज अकेली रात में मैंने आकाश के तारे देखे हैं, जैसे मेरे भीतर ही कोई आकाश स्पष्ट हो गया हो और

तारे खिल गये हों। मैं उसके लिए धन्यवाद देने आयी हूं। भले लोग हैं तुम्हारे गांव के।
परिस्थिति कैसी है, इस पर कुछ निर्भर नहीं करता। हम परिस्थिति को कैसे लेते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।
हरएक व्यक्ति को परिस्थिति कैसी लेनी है, यह सीख लेना चाहिए। तब तो राह पर पड़े हुए पत्थर भी सीढिय़ां बन जाते हैं। और जब हम परिस्थितियों को गलत ढंग से लेने के आदी हो जाते हैं तो सीढिय़ां भी मंदिर की पत्थर मालूम पड़ने लगती हैं, जिनसे रास्ता रुकता है। पत्थर सीढिय़ां बन सकते हैं, सीढिय़ां पत्थर मालूम हो सकती हैं। अवसर दुर्भाग्य मालूम हो सकते हैं, दुर्भाग्य अवसर बन सकते हैं। हम कैसे लेते हैं, हमारे देखने की दृष्टि क्या है, हमारी पकड़ क्या है, जीवन का कोण हमारा क्या है, हम कैसे जीवन को लेते और देखते है?
आशा से भरकर जीवन को देखें।
साधक अगर निराशा से जीवन को देखेगा तो गति नहीं कर सकता है। आशा से भरकर जीवन को देखें। अधैर्य से भरकर जीवन को देखेंगे, अपने मन को, तो साधक एक-कदम आगे नहीं बढ़ सकता है। धैर्य से, अनंत धैर्य से जीवन को देखें। उतावलेपन में जीवन को देखेंगे, शीघ्रता में, भागते हुए, तो साधक एक इंच आगे नहीं बढ़ सकता है।
प्रतीक्षा से जीवन को देखें--अनंत प्रतीक्षा से जो आज नहीं हुआ, वह कल
हो सकेगा; जो कल भी नहीं होगा, वह परसों हो सकेगा। सकेगा--प्रतीक्षा और आशा! मनुष्य के जीवन में अज्ञात के रास्ते पर, जहां कोई माइल स्टोन नहीं लगे हुए हैं, जिनसे पता चल सके कि हम कितना चल गये। जहां कोई भीड़ साथ नहीं चलती, जिससे आश्वासन मिल सके कि हम कितना बढ़ गये। एकांत के रास्ते पर, अकेले के रास्ते पर मनुष्य प्रभु की तरफ जाता है। वहां अनंत प्रतीक्षा उसके साथ न हो, धैर्य साथ न हो, आशा साथ न हो, जीवन को देखने का आनंदपूर्ण दृष्टिकोण साथ न हो, प्रार्थनापूर्ण मन साथ न हो तो फिर आगे बढ़ना बहुत कठिन है।
इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए और फिर कुछ प्रश्न बच रहेंगे तो कल हम उन पर बात करेंगे।
दो-तीन बातें समझने के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
मैंने कहा, साधक के लिए आशापूर्ण दृष्टि चाहिए। सामान्यतः हमारी दृष्टि बड़ी निराशापूर्ण है। हम चीजों को हमेशा अंधेरे हिस्से की तरफ से देखते हैं। हमेशा हम वहां से देखते हैं, जहां चीजें दुखद, कष्टपूर्ण, प्रतिकूल प्रतीत होने लगती हैं।
एक आदमी एक अजनबी गांव में गया हुआ था। उसने जाकर गांव के भीतर पूछा
कि मैं फलां युवक को खोजने आया हूं। मैंने सुना है, वह बहुत अच्छा बांसुरी बजाता है। जिस आदमी से उसने कहा था, उसने कहा, छोड़ो यह ख्याल, वह आदमी क्या बांसुरी बजायेगा? वह आदमी चोर है, बेईमान है, झूठा है। वह क्या बांसुरी बजायेगा, उस जैसा चोर आदमी नहीं हैं हमारी बस्ती में!
तो उसने कहा कि फिर मैं क्या पूछूं? मुझे उसकी खोज करनी है। क्या मैं
यह पूछूं कि तुम्हारी बस्ती में जो सबसे ज्यादा चोर है, वह कहां रहता है? उसने कहा, इसी तरह पूछोगे तो पता भी चल सकता है।
उसने दूसरे आदमी से जाकर पूछा कि इस गांव में फलां आदमी को खोजने आया हूं, जो बहुत बड़ा चोर है, बेईमान है, झूठ बोलने वाला है।
उस आदमी ने कहा, मैं विश्वास भी नहीं कर सकता कि वह झूठ बोलता होगा, चोरी करता होगा। वह इतनी अच्छी बांसुरी बजाता है!
एक आदमी है, जो बांसुरी बजाता है। कोई देखता है कि बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है तो कैसे चोरी कर सकता होगा। कोई दूसरा देखता है कि चोर है, ऐसा बुरा चोर है तो कैसे बांसुरी बजाता होगा।
हम कैसे देखते हैं, हम कहां से देखते हैं? हम जीवन में, मनुष्य में, परिस्थितियों में, घटनाओं में क्या खोजते हैं? हम कोई प्रकाश, उन्न्वल पक्ष खोजते हैं या कोई अंधकारपूर्ण बात? हम क्या खोजते है? हम कोई प्रकाश की किरण खोजते हैं या अंधकार की कोई धारा? हम जब फूलों के पास जाते हैं तो कांटों की गिनती करते हैं या फूलों की? हम जब किसी मनुष्य के पास बैठते

हैं तो हम उसके भीतर क्या देखते हैं, कोई प्रशंसा का द्वार या निंदा की कोई गंदी गली? हम क्या खोजते हैं? हमारी दृष्टि क्या है? और जो दृष्टि हमारी होगी, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हमारे भीतर उसी तरह का भाव घनीभूत होता चला जाता है।
साधक के लिए स्पष्ट रूप से बहुत आशावादी दृष्टि चाहिए। बहुत प्रकाशपूर्ण पक्ष को देखने की सामर्थ्य चाहिए। प्रत्येक स्थिति में वह खोज सके कि शुभ क्या है। और घने से घने कांटों के जंगल में वह एक फूल भी खोज सके कि यह फूल है तो उसका रास्ता निरंतर कांटों से मुक्त होता चला जाता है। रोज-रोज उसे फूलों के और गहरे से गहरे मार्ग मिलते जाते हैं।
हम जो खोजते हैं, वही हमें मिल जाये तो आश्चर्य नहीं है। वही हमें मिल जाता है। हम क्या खोजने निकल पड़े हैं, वही हमें मिल जाता है।
तो थोड़ी अपनी परिस्थितियों पर विचार करना है। क्या उन परिस्थितियों में कोई भी संभावना नहीं है शुभ की? क्या उन परिस्थितियों में कोई भी अनुकूलता नहीं? उन परिस्थितियों में कोई भी मैत्री की संभावना नहीं? क्या उन परिस्थितियों में कुछ भी नहीं है, जहां से द्वार खोला जा सके, दीवाल तोड़ी जा सके, रास्ता बनाया जा सके, दीया जलाया जा सके?
खोजेंगे तो पायेंगे, बहुत कुछ है, बहुत कुछ है। नहीं खोजेंगे या गलत
को खोजते रहेंगे, तो पायेंगे, कुछ भी नहीं है।
एक आदमी के पैर में चोट लग गयी है। वह बहुत बेचैन, बहुत दुखी, परमात्मा
की निंदा करता हुआ है। एक मकान की एक बड़ी मंजिल में, न्यूयार्क की एक लिफ्ट में सवारी कर रहा है, ऊपर जा रहा है। जैसे ही लिफ्ट उठने लगी है, उसने देखा है कि लिफट पर एक और आदमी भी सवार है। उसके दोनों पैर कटे हुए हैं, वह कुर्सी पर बैठा हुआ है, हंस रहा है और गीत गुनगुना रहा है। उसके पैर में जरा-सी चोट थी, वह परमात्मा के प्रति क्रोध से भरा हुआ था। उसने उस आदमी से पूछा, मेरे दोस्त, तुम्हारे पास क्या है? तुम्हारे दोनों पैर कटे हुए हैं और तुम गीत गुनगुना रहे हो और हंस रहे हो!
उस आदमी ने कहा, मेरी दोनों आंखें शेष हैं, मेरे दोनों हाथ अभी शेष हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है, जिसके दोनों हाथ भी कट गये थे। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है, जिसकी दोनों आंखें भी नहीं थीं। दोनों पैर ही गये तो क्या हुआ? अभी मेरे दोनों हाथ शेष हैं, मेरी दोनों आंखें शेष हैं, अभी और सब कुछ तो शेष हैं। मैं दो पैर जो चले गये हैं, उनके लिए भगवान के प्रति क्रोध प्रकट करूं या जो मेरे पास शेष है, उसके लिए धन्यवाद दूं? मैं क्या करूं? जो हमारे पास है, उसके लिए हम धन्यवाद दें या जो हमारे पास नहीं है, उसके लिए हम शिकायत करें?
मर्जी है आदमी की, जो चाहे करे--चाहे शिकायत करे, चाहे प्रशंसा करे, कोई कुछ कहने नहीं आयेगा। लेकिन दोनों हालतों में जमीन और आसमान का फर्क पड़ जायेगा और उस फर्क से खुद को पीड़ा झेलनी पड़ेगी। शिकायत करने वाला मन धीरे-धीरे उदास हो जाता है और निराश हो जाता है।
धन्यवाद देने वाला मन धीरे-धीरे आनंद से भर जाता है, प्रफुता से, आशा से।
जो आशा से भर जाता है, वह आगे कदम उठा सकता है। जो निराशा से भर जाता है, उसके उठे हुए कदम भी पीछे लौटने लगते हैं।
तो मैं आपको कहूंगा, कि परिस्थितियों में खोजें कि क्या वहां आशापूर्ण कोई भी संभावना नहीं है?
दूसरी बात, क्या चौबीस घंटे में थोड़े से क्षणों के लिए अपनी परिस्थितियों से मुक्त नहीं हुआ जा सकता?
नींद रोज मुक्त कर देती है, आपकी सारी परिस्थितियां बाहर पड़ी रह जाती हैं। न आप गरीब रह जाते हैं, न अमीर रह जाते हैं। न आप दुखी रह जाते हैं, न आप सुखी रह जाते हैं। नींद आपको कहीं ले जाती है, जहां आप परिस्थितियों के बाहर हो जाते हैं।
क्या थोड़ी देर के लिए जानते-बूझते परिस्थितियों के बाहर नहीं हुआ जा सकता? और स्मरण रहे, जो आदमी अपनी परिस्थितियों के बाहर थोड़े से क्षणों को भी सचेत रूप से हो जाता है, उसे यह पता चल जाता है कि वह तो हमेशा--

परिस्थितियां उसके आसपास आती हैं और गुजर जाती हैं--वह हमेशा परिस्थितियों के बाहर है। वह परिस्थितियों के बाहर है।
एक क्षण को भी परिस्थितियों का अतिक्रमण कर जाने पर पता चलता है कि मनुष्य की चेतना हमेशा परिस्थितियों के बाहर है। सांझ आती है, सुबह आती है, सूरज निकलता है, रात आ जाती है। आदमी के आसपास से सब गुजर जाता है और आदमी हमेशा अलग खड़ा रह जाता है।
जिस दिन इस पृथकता का बोध होगा, जिस दिन जीवन के बीच इस साक्षी का भाव उदय होगा कि मैं तो दूर खड़ा रह जाता हूं, धाराएं आती हैं और बह जाती हैं, हवाएं आती हैं और गुजर जाती हैं। धूप आती है, शीत आती है, वर्षा आती है, गरमी आती है, और मैं दूर खड़ा रह जाता हूं, मैं पृथक, अलग खड़ा रह जाता हूं। कुछ भी मुझे छूता नहीं, कुछ भी मेरे प्राणों को अतिक्रांत नहीं करता, कुछ भी मेरे भीतर जाकर बदलाहट नहीं करता। मैं तो वहीं रह जाता हूं। चीजें आती हैं और बदल जाती हैं। जिस दिन यह एक क्षण को भी ख्याल होगा, उसी दिन जीवन भर के लिए स्थिति बन जाती है।
तो थोड़ी देर परिस्थितियों के बाहर होने की क्षमता जुटानी चाहिए। परिस्थितियों के लिए रोते रहने से कोई भी फल नहीं है।
ध्यान का अर्थ इतना ही है कि हम परिस्थिति के बाहर जा रहे हैं थोड़ी देर को
ध्यान का यही अर्थ हैं--परिस्थितियों के बाहर उठ जाना, दूर हट जाना, ऊपर उठ जाना, परिस्थितियों के पार खड़े हो जाना।
जैसे कोई हवाई जहाज पर ऊपर उड़ रहा हो। वृक्ष नीचे छूट जाते हैं, पहाड़ नीचे छूट जाते हैं, बादल नीचे छूट जाते हैं। ठीक जैसे ही कोई ध्यान के शून्य में प्रवेश करता है, वैसे ही परिस्थितियां, घर-द्वार, पत्नी-बच्चे अर्थ-जीवन सब पीछे छूट जाते हैं। चेतना एक नयी दिशा में उड़ान लेना शुरू कर देती है। और तब पता चलता है कि जिन परिस्थितियों से हम घिरे थे, उनमें घिरे तो जरूर थे, लेकिन घिरे होकर भी हमेशा बाहर थे। जैसे सूरज बादलों में घिर जाये, ठीक वैसे मनुष्य की चेतना परिस्थितियों में घिरी है, लेकिन हमेशा बाहर है। हमेशा बाहर है। यह बाहर होने का अनुभव ध्यान से उपलब्ध होता है। परिस्थितियों को दोष न दें, रास्ता निकालें, रास्ता जरूर मिल जाता है। ऐसी कोई भी जगह नहीं है, जहां से प्रभु तक रास्ता न जाता हो। हो सकता है थोड़ा पथरीला रास्ता हो; हो सकता है थोड़ा ऊबड़-खाबड़ रास्ता हो। हो सकता है, थोड़ा टकराना पड़े, तोड़ना पड़े, दौड़ना पड़े, जीतना पड़े, लड़ना पड़े। लेकिन ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहां से उस तक रास्ता नहीं जाता है।
और मैं अंत में यह भी कह देना चाहता हूं कि वे लोग जो थोड़े कठिन रास्तों से गुजरकर आते हैं, उनकी उपलब्धियों का मजा ही और है, उनके पा लेने का आनंद ही और है। उनके जीत लेने की, उनके विजय की कथा और गौरव की कथा ही और है। इसलिए घबरायें न। हो सकता है कठिन रास्तों से गुजरकर आप और भी मधुमय स्रातों तक पहुंच जायें।
जो चलता ही चला जाता है, आशा और प्रतीक्षा से भरा हुआ है, वह अवश्य पहुंच जाता है।
अब रात्रि के ध्यान के संबंध में थोड़ी-सी बात समझ लें। फिर हम रात्रि
के ध्यान के लिए बैठेंगे।
रात्रि के ध्यान के संबंध में दो बातें समझ लें। सुबह का ध्यान जागने
के बाद करने के लिए है। रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने के लिए है।
रात बहुत अदभुत अवसर और मौका है। अगर ठीक से ध्यान में प्रवेश होकर सो जाया जाये तो पूरी रात धीरे-धीरे कुछ ही समय में ध्यान में परिवर्तित हो जाती है। अगर सोते क्षणों में ध्यान में प्रविष्ट हो जाये चेतना तो फिर धीरे-धीरे पूरी रात, पूरी निद्रा ध्यान का हिस्सा बन जाती है। यह शायद आपको ख्याल न हो।
नींद के अंतिम क्षण, जब आप सोते हैं, तो आखिरी क्षण हैं, जब आप नींद के दरवाजे में प्रविष्ट होते हैं, उस अंतिम क्षण में वह जो संक्रमण का क्षण है, वह जो बीच का द्वार है, जहां से जागना समाप्त होता है और नींद शुरू होती हैं, उस क्षण में आपके मन की जो दशा होती है, रात भर चेतना उसी दशा के आसपास घूमती रहती है। अगर आप चिंता में सो गये हैं तो रात चिंता में व्यतीत हो

जाती है। अगर आप क्रोध में सो गये हैं तो रात के सपने क्रोध के आसपास घूमते रहते हैं। विद्यार्थी जानते हैं कि पढ़ते-पढ़ते रात जब वे सो जाते हैं तो रात भर परीक्षा के आसपास घूमते रहते हैं।
चित्त जहां होता है नींद के पहले क्षण में, रात भर उसके आसपास न्युक्लियस बन जाता है, केंद्र बन जाता है, चित्त वहीं घूमता है।
और सुबह भी जब आप उठते हैं तो आपने शायद कभी ख्याल न किया हो, निरीक्षण
न किया हो; करेंगे तो पता चल जायेगा कि सुबह जो पहला क्षण होता है नींद के टूटने का, तो चित्त सबसे पहले उसी भाव को उपलब्ध हो जाता है, जो सोते समय अंतिम भाव था, अंतिम विचार था। उसी जगह आप फिर सुबह खड़े हो जाते हैं, जहां रात आप सोये थे।
इसलिए रात्रि ध्यान में सो जाने का बहुत मूल्य है। अगर यह संभव हो जाये कि आप रोज रात्रि में ध्यान में प्रवेश होकर सो जायें तो आपके पूरे जीवन में एक आमूल क्रांति होनी शुरू हो जायेगी। सुबह आप बिल्कुल नये आदमी की तरह उठेंगे और उठते ही ध्यान पहली बात होगी, जो आपके स्मरण में आयेगी। और रात के छह घंटे, सात घंटे, अगर शांत निद्रा में बीत जायें, आपके चौबीस घंटे शांत हो जायेंगे, ताजे हो जायेंगे, नये हो जायेंगे।
जो लोग ध्यान के साथ निद्रा में गये हैं, जो लोग जाते हैं, वे मुझे कहते हैं फिर कि ऐसी नींद हमने जीवन में कभी भी नहीं जानी। ध्यान के साथ नींद संयुक्त हो जाये तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाती है। यह रात्रि का ध्यान नींद के पहले करने का है। अंतिम, बिस्तर पर जब सो जायें, सब काम से निपट जायें, अब कुछ भी करने को शेष नहीं रहा, तब पंद्रह मिनट के लिए इस ध्यान को करें। और ध्यान करने के बाद चुपचाप सो जायें, फिर उठें नहीं, फिर कुछ भी न करें। ध्यान के बाद चुपचाप सो जायें, ताकि ध्यान में जो धारा शुरू हो, वह नींद में प्रविष्ट हो जाये, उसकी अंडर करेंट पूरी नींद में प्रविष्ट हो जाये। इस प्रयोग को लेटकर ही करना है। बिस्तर पर लेट जायें और इसको करें। प्रयोग करने में दो-तीन बातें ख्याल में लेनी जरूरी हैं।
एक बात, सारे शरीर को शिथिल छोड़ देना जरूरी है, रिलेक्स छोड़ देना जरूरी है। शरीर पर कोई तनाव न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही न रहे हों। एक-एक अंग ढीला छोड़ दें, कोई तनाव न रखें, कोई तनाव-खिंचाव शरीर पर न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, और आराम से लेट जायें। फिर आहिस्ता से आंख बंद कर लें। फिर शरीर की शिथिलता के लिए थोड़े से सुझाव, थोड़े-से सजेशंस शरीर को दें। सिर्फ यह भाव थोड़ी देर करते रहें, एक-दो मिनट कि शरीर शिथिल हो रहा है। यह भाव कि शरीर शिथिल हो रहा है। दो-तीन मिनट करने से दस-पांच दिन में, यह आप पायेंगे, शरीर बिल्कुल शिथिल हो जायेगा। और जब शरीर शिथिल होता है तो बाडीलेसनेस पैदा हो जाती है। जब शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाता है तो अशरीरी भाव का अनुभव होता है। पता चलता है, शरीर है ही नहीं। शरीर का पता तनाव के कारण चलता है, स्ट्रेन के कारण चलता है। शिथिल शरीर का कोई पता नहीं चलता है।
आपको पता होगा, पैर में कांटा गड़ जाये तो पैर का पता चलता है, सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। अगर पैर में कांटा नहीं तो पैर का कोई पता नहीं चलता कि पैर है भी या नहीं। सिर में दर्द न हो तो सिर का भी कोई पता नहीं चलता है कि सिर है या नहीं। जहां शरीर में तनाव होता है, वहीं शरीर का बोध होता है।
स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसे शरीर का कहीं भी पता न चलता हो। हेल्थ का और कोई लक्षण नहीं होता। बीमारी का पता चलता है, स्वास्थ्य का कोई पता नहीं चलता है।
ध्यान के पहले शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना कि उसका पता ही न चले। और
एक पंद्रह दिन के प्रयोग में, और जो लोग ठीक ईमानदारी से, सिंसियरिटी से प्रयोग करें, आज ही हो सकता है। कि आज ही जब हम यहां प्रयोग करें तो आपको पता चले, जैसे शरीर समाप्त हो गया है, शरीर है ही नहीं। तो दो तीन मिनट तक यह सुझाव देना है, शरीर शिथिल हो रहा है।
फिर श्वास को ढीला छोड़ देना है। रोकना नहीं है, शिथिल छोड़ देना हैं; जितनी जाये जाये, आये आये। और दो-तीन मिनट तक यह भाव करना है कि श्वास भी शांत हो रही है--शांत हो रही है, शांत हो रही है। भाव करते-करते ही श्वास

शांत हो जायेगी, बहुत अल्प आती-जाती मालूम पड़ेगी। थोड़े दिन प्रयोग करने पर पता भी नहीं चलता है कि श्वास आ रही है कि नहीं आ रही है, इतनी शांत हो जाती है!
शरीर शिथिल होता है तो श्वास अपने आप शांत होती हैं, श्वास शांत होती
है तो विचार क्षीण हो जाते हैं। फिर तीसरा सुझाव मन पर देना है कि विचार भी शांत हो रहे हैं।
ये तीन सुझाव देने हैं। और सुबह जो हमने ध्यान किया था--चौथी बात वही
है कि फिर चुपचाप पड़े रह जाना है, सुनते रहना है--हवाओं को, दरख्तों को, समुद्र को; कोई आवाज आती हो, आवाजों को। रास्ते पर लोग निकलते होंगे, वाहन निकलते होंगे, टैक्सी चलती होगी, ठेला चलता होगा--सब चुपचाप सुनते रहना है।
तीन बातें--शरीर, श्वास और विचार--इनको शांत छोड़ देना है। और फिर चुपचाप, जो सुबह हमने प्रयोग किया था, वही लेटकर करते रहना है। एक दस मिनिट। फिर इसके बाद चुपचाप करवट लेकर सो जाना है।
यहां तो हम प्रयोग को करेंगे, ताकि आप समझ लें। फिर प्रयोग को जाकर अपने स्थान पर सोते समय करें और सो जायें। यहां तो प्रयोग आप समझ लें, इसलिए करना जरूरी है। और यहां परिणाम भी उसका बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है, जितनी हमारी तैयारी, जिज्ञासा, खोज, आकांक्षा हो।
तो अब हम प्रयोग करेंगे। तो सब लोग इतने फासले पर हो जायें कि आप लेट सकें, फिर प्रकाश अलग कर दिया जायेगा। और आपको मैं आज तो सुझाव दूंगा, ताकि आपको ख्याल में आ जाये कि क्या सुझाव देने हैं, फिर अपने कमरे पर जाकर आप प्रयोग को करें और सो जायें।
तो अपने-अपने लिये जगह बना लें, थोड़े फासले पर हट जायें। कोई किसी को छूता हुआ नहीं रहेगा और सब लोग लेट सकें, ऐसी अपनी जगह बना लें, चुपचाप बिना बातचीत किये।
हां थोड़े हट जाये, क्योंकि लेटना पडेगा, इसलिए हट जायें।
बातचीत बिल्कुल भी न करें, क्योंकि बातचीत से कोई संबंध नहीं है। जरा
भी बातचीत नहीं, किसी को भी बाधा न हो। अपनी-अपनी जगह बना लें, कहीं भी हट जायें।
हां, मैं मान लेता हूं कि आप जल्दी जगह बना लें। बिल्कुल अकेले में हो जायें और वहां आराम से लेट जायें, ताकि आप पूरा प्रयोग कर सकें और गहरे जा सकें।
ठीक है, अपनी-अपनी जगह लेट जायें। अपनी-अपनी जगह लेट जायें। 1 इस मौके
का पूरा फायदा लें,
इस अवसर का पूरा प्रयोग करें। इतनी अदभुत रात मिले, न मिले। इतना एकांत, ऐसा स्वर्ण अवसर आये, न आये।
बिल्कुल लेट जायें। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें।
आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें
फिर मैं सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें। भाव के साथ ही परिणाम होने शुरू हो जायेंगे।
ठीक है अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है।
भाव करें, शरीर शिथिल हो गया है। शरीर बिल्कुल शांत और शिथिल हो गया है। जैसे हो ही नहीं, जैसे शरीर का कोई अस्तित्व ही न हो। हवायें हैं, आकाश है, वृक्ष है, लेकिन शरीर नहीं है। शरीर बिल्कुल शिथिल और शांत हो गया है। श्वास को भी धीमा छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है। श्वास भी बिल्कुल धीमी छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है

विचार भी शांत हो रहे हैं। विचार शांत हो रहे हैं। विचार शांत हो रहे हैं। विचार शांत हो रहे हैं। विचार शांत हो रहे हैं। विचार भी शांत हो गये हैं।
सब मौन हो गया है। अब चुपचाप सुनते रहें--हवाओं को, आवाजों को, चुपचाप सुनते रहें
भीतर धीरे-धीरे बिल्कुल सन्नाटा हो जायेगा। रात जैसी बाहर शांत है, ठीक वैसा ही सब कुछ भीतर भी शांत हो जायेगा। सुनें--शांत हवाओं को सुनते रहें। दस मिनिट तक चुपचाप सुनते रहें।
मन शांत होता जा रहा है। धीरे-धीरे मन शांत होता जा रहा है। सब शांत होता जा रहा है। भीतर एक सन्नाटा और शून्य आ जायेगा।
मन शांत होता जा रहा है। सुनते रहें, चुपचाप सुनते रहें। मन शांत होता
जा रहा है। हवाएं रह जायेंगी, आप मिट जायेंगे। बिल्कुल मिट जायें, सब शांत होता जा रहा है
मन शांत हो गया है। मन बिल्कुल शांत हो गया है। मन शांत हो गया है। हवाएं ही रह गयी हैं, रात रह गयी है। आप बिल्कुल शांत हो गये हैं, बिल्कुल मिट गये हैं। सुनते रहें, सुनते रहें।
मन शांत हो गया है। एक अपूर्व शांति भीतर उतर आयी है। सब शांत हो गया है। सब मौन हो गया है। आप बिल्कुल मिट गये हैं। आप हैं ही नहीं।
मन बिल्कुल शांत हो गया है। इस शांति को पहचाने। इस शांति को समझें।
सब शांत हो गया है।
इसी शांति में रोज-रोज प्रवेश करना है। रोज और गहरे, और गहरे प्रवेश होना है। यही शांति अंततः परमात्मा के मंदिर तक पहुंचायेगी।
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। दो-चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत धीरे से आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी मालूम होगी। लेटे ही लेटे धीरे से आंख खोलें। बाहर भी सब शांत है।
बहुत आहिस्ता से उठकर अपनी जगह बैठ जायें। किसी को बाधा न हो। आवाज न करें, चुपचाप उठकर बैठ जायें। जिससे उठते न बने, वह दो-चार गहरी श्वास और ले। फिर धीरे-धीरे उठें और बैठ जायें।
एकदम से उठते न बने तो थोड़ी देर लेटे रहें। आहिस्ता से उठें। उठकर चुपचाप बैठ जायें। किसी को पड़ोस में बाधा न हो। धीरे से उठ आयें।
इस प्रयोग को जाकर रात अभी बिस्तर पर करें, ताकि ताजा वह आपके ख्याल में रहे। और फिर प्रयोग को करने के बाद चुपचाप सो जायें। बैठक समाप्त हुई।

नेति-नेति
चौथा प्रवचन

जीवन का सहज स्वीकार

प्रिय आत्मन्,
मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, वह शायद यही कि जीवन से उसकी आत्म-एकता, उसकी एकतानता टूट गयी है। जीवन से हम कुछ दूर-दूर खड़े हो गये हैं। जीवन और हमारे बीच कोई सेतु नहीं रहा, कोई संबंध नहीं रहा
मां के पेट से बच्चे का जन्म होता है, तब शरीर तो टूट जाता है मां से अलग। तब एक भेद एक पृथकता की यात्रा शुरू होती है; जो मां के साथ संयुक्त और इकट्ठा था, वह पृथक हो जाता है। शायद उसी पृथकता से यह भ्रम पैदा होता है कि शरीर अलग हो गया, इसलिए प्राण भी अलग हो गये होंगे। शायद शरीर अलग हो गया, इसलिए भीतर के जीवन में भी भेद पड गया होगा।
मां के शरीर से बच्चे का शरीर अलग होता है, लेकिन आत्मा एक और अपृथक है, समस्त जीवन से। वहां कोई भेद नहीं, वहां कोई भिन्नता नहीं। लेकिन उस अभेद का, उस अद्वैत का, हमें कोई अनुभव नहीं होता, कोई स्मरण नहीं होता, कोई बोध नहीं होता!
मनुष्य के जीवन में यही दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्य को ही पार कर जाना साधक कि लिए दूसरा चरण है।
पहले चरण में मैंने आपसे कहा, ज्ञान मिथ्या है, ज्ञान असत्य है। सीखे हुए शब्द, सिद्धांत और शास्त्रों से ज्यादा नहीं। अज्ञान, इग्नोरेंस मनुष्य की वस्तु-स्थिति है। अज्ञान को जो स्वीकार कर लेता है और इस स्मरण से भर जाता है कि मैं नहीं जानता हूं, जीवन और उसके बीच की पहली दीवाल गिर जाती है।
लेकिन एक दूसरी दीवाल भी है। उसके संबंध में ही आज सुबह मुझे आपसे बात करनी है। वह भी गिर जानी चाहिए, जो ही व्यक्ति परमात्मा के सत्य को अनुभव कर सकता है। जो परमात्मा का सत्य है, वही स्वयं का सत्य भी है। उसे कोई जीवन कहे, उसे कोई मोक्ष कहे, उसे कोई ईश्वर कहे, इससे कोई भी भेद, कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल पहले दुर्भाग्य की दीवाल ज्ञान की दीवाल है। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल क्या है?
जो भी जीया जा सकता है। जो भी जाना जा सकता है, उसके साथ एक हो जाना अनिवार्य है।
एक छोटी-सी घटना से मैं समझाने की कोशिश करूंगा।
कोई डेढ़ हजार वर्ष पहले चीन के एक सम्राट ने सारे राज्य के चित्रकारों को खबर की कि वह राज्य की मुहर बनाना चाहता है। मुहर पर एक बांग देता हुआ, बोलता हुआ मुर्गा, उसका चित्र बनाना चाहता है। जो चित्रकार सबसे जीवंत चित्र बनाकर ला सकेगा, वह पुरस्कृत भी होगा, राज्य का कलागुरु भी नियुक्त हो जायेगा। और बड़े पुरस्कार की घोषणा की गयी।
देश के दूर-दूर कोनों से श्रेष्ठतम चित्रकार बोलते हुए मुर्गे के चित्र बनाकर राजधानी में उपस्थित हुए। लेकिन कौन तय करेगा कि कौन-सा चित्र सुंदर है? हजारों चित्र आये थे। राजधानी में एक बूढ़ा कलाकार था। सम्राट ने उसे बुलाया कि वह चुनाव करे, कौन-सा चित्र श्रेष्ठतम बना है।
वही राज्य की मुहर बन जायेगा।
उस चित्रकार ने उन हजारों चित्रों को एक बड़े भवन में बंद कर लिया और स्वयं भी उस भवन के भीतर बंद हो गया! सांझ होते-होते उसने खबर दी कि एक भी चित्र ठीक नहीं बना है! सभी चित्र गड़बड़ हैं! एक से एक सुंदर चित्र आये थे। सम्राट स्वयं देखकर दंग रह गया था। लेकिन उस बूढ़े चित्रकार ने कहा, कोई भी चित्र योग्य नहीं हैं!
राजा हैरान हुआ। उसने कहा,"तुम्हारे मापदंड क्या हैं, तुमने किस भांति जांचा कि चित्र ठीक नहीं है।"
उसने कहा, मापदंड एक ही हो सकता था और वह यह कि मैं चित्रों के पास एक जिंदा मुर्गे को ले गया और उस मुर्गे ने उन चित्रों के मुर्गों को पहचाना भी नहीं, फिक्र भी नहीं की, चिंता भी नहीं की! अगर वे मुर्गे जीवंत होते

चित्रों में तो वह मुर्गा घबराता या बांग देता, या भागता, या लड़ने को तैयार हो जाता! लेकिन उसने बिल्कुल उपेक्षा की, उसने चित्रों की तरफ देखा भी नहीं! बस एक ही क्राइटेरियन, एक ही मापदंड हो सकता था। वह मैंने प्रयोग किया। कोई भी चित्र मुर्गे स्वीकार नहीं करते हैं कि चित्र मुर्गों के हैं।
सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गयी। यह मैंने सोचा भी नहीं था कि मुर्गों से परीक्षा करवायी जायेगी चित्रों की! लेकिन उस बूढ़े कलागुरु ने कहा कि मुर्गों के सिवाय कौन पहचान सकता है कि चित्र मुर्गे का है या नहीं?
राजा ने कहा,"फिर अब तुम्हीं चित्र बनाओ।"
उस बूढ़े ने कहा,"बड़ी कठिन बात है। इस बुढ़ापे में मुर्गे का चित्र बनाना बहुत कठिन बात है।"
सम्राट ने कहा,"तुम इतने बड़े कलाकार, एक मुर्गे का चित्र नहीं बना सकोगे?"
उस बूढ़े ने कहा,"मुर्गे का चित्र तो बहुत जल्दी बन जाये, लेकिन मुझे मुर्गा होना पड़ेगा। उसके पहले चित्र बनाना बहुत कठिन है।"
राजा ने कहा,"कुछ भी करो।"
उस बूढ़े ने कहा,"कम से कम तीन वर्ष लग जायें, पता नहीं मैं जीवित बचूं
या न बचूं।"
उसे तीन वर्ष के लिए राजधानी की तरफ से व्यवस्था कर दी गयी और वह बूढ़ा जंगल में चला गया। छह महीने बाद राजा ने लोगों को भेजा कि पता लगाओ, उस पागल का क्या हुआ? वह क्या कर रहा है?
लोग गये। वह बूढ़ा जंगली मुर्गों के पास बैठा हुआ था!
एक वर्ष बीत गया। फिर लोग भेजे गये। पहली बार जब लोग गये थे, तब तो उस बूढ़े चित्रकार ने उन्हें पहचाना भी लिया था कि वे उसके मित्र हैं और राजधानी से आये हैं। जब दोबारा वे लोग गये तो वह बूढ़ा करीब-करीब मुर्गा हो चुका था। उसने फिक्र भी नहीं की और उनकी तरफ देखा भी नहीं, वह मुर्गों के पास ही बैठा रहा!
दो वर्ष बीत गये। तीन वर्ष पूरे हो गये। राजा ने लोग भेजे कि अब उस चित्रकार को बुला लाओ, चित्र बन गया हो तो। जब वे गये तो उन्होंने देखा कि वह बूढ़ा तो एक मुर्गा हो चुका है, वह मुर्गे जैसी आवाज कर रहा है, वह मुर्गों के बीच बैठा हुआ है, मुग उसके आसपास बैठे हुए हैं। वे उस बूढ़े को उठाकर लाये। राजधानी में पहुंचा, दरबार में पहुंचा।
राजा ने कहा,"चित्र कहां है?"
उसने मुर्गे की आवाज की! राजा ने कहा,"पागल, मुझे मुर्गा नहीं चाहिए, मुझे मुर्गा का चित्र चाहिए। तुम मुर्गे होकर आ गये हो। चित्र कहां है?" उस बूढ़े ने कहा,"चित्र तो अभी बन जायेगा। सामान बुला लें, मैं चित्र बना दूं।" और उसने घड़ी भर में चित्र बना दिया। और जब मुर्गे कमरे के भीतर लाये गये तो उस चित्र को देखकर मुर्गे डर गये और कमरे के बाहर भागे।
राजा ने कहा,"क्या जादू किया है इस चित्र में तुमने?"
उस बूढ़े ने कहा,"पहले मुझे मुर्गा हो जाना जरूरी था, तभी मैं मुर्ग को निर्मित कर सकता था। मुझे मुर्गे को भीतर से जानना पड़ा कि वह क्या होता है। और जब तक मैं आत्मसात न हो जाऊं, मुर्गे के साथ एक न हो जाऊं, तब तक कैसे जान सकता हूं कि मुर्गा भीतर से क्या है, उसकी आत्मा क्या है?"
आत्म-ऐक्य के बिना, जीवन के साथ एक हुए बिना, जीवन के प्राण को, जीवन की आत्मा को भी नहीं जाना जा सकता। जीवन का प्राण ही प्रभु है। वही सत्य है। जीवन के साथ एक हुए बिना कोई रास्ता नहीं है कि कोई जीवन को जान सके।
और जिसे हम जानते नहीं, उसे हम जी भी कैसे सकते हैं? इसीलिए तो हम सिर्फ नाममात्र को जीवित मालूम होते हैं--नाममात्र को। इसीलिये तो हम मृत्यु से भयभीत प्रतीत होते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति एक बार जीवन के स्वाद को चख लेगा, उसके लिए मृत्यु बचती ही नहीं, उसके लिए कोई मृत्यु नहीं रह जाती। मृत्यु का भय इस बात की खबर है कि हमें जीवन का कोई भी पता नहीं है।

जीवन का पता होगा भी नहीं। हमने जीवन के साथ कभी एकता, एकतानता नहीं साधी, कभी हम लयबद्ध नहीं हुए। यह कैसे टूट गयी है लय, यह संगीत हमारा विच्छिन्न कैसे हो गया? जीवन के और हमारे बीच यह दरार, यह खाई कैसे पैदा हो गयी? इसे समझ लेना जरूरी है तो शायद यह खाई इसी क्षण पूरी भी की जा सकती है।
यह खाई पैदा हो गयी है मनुष्य-जाति में--आज तक मनुष्य को समझाने वाले कुछ ऐसे लोगों के कारण, जिन्होंने जीवन की निंदा की है, जीवन का विरोध किया है, जीवन को असार कहा है, जीवन को दुख कहा है, जीवन को छोड़ देने योग्य कहा है, जीवन से मुक्त हो जाने के लिए कहा है।
जिन लोगों ने भी, जिन शिक्षाओं ने भी जीवन की निंदा की है, जीवन का कंडेमनेशन किया है, उन शिक्षाओं ने ही मनुष्य और जीवन के बीच एक खाई खड़ी कर दी है। जिसकी निंदा हो, जिसका विरोध हो, जो असार हो, व्यर्थ हो, उसके साथ संबंधित होने का मार्ग कहां रह जाता है?
और हमने जीवन की सब भांति निंदा की है। शरीर की निंदा की है, क्योंकि शरीर जीवन का प्रकट रूप है। संसार की निंदा की है, क्योंकि संसार परमात्मा का प्रगट रूप है। पदार्थ की निंदा की है, क्योंकि पदार्थ प्राण का प्रकट रूप है। जो भी प्रकट है, उस सबकी हमने निंदा की है!
और अप्रकट की प्रशंसा की है! अप्रगट पर न मुट्ठी बांधी जा सकती है, न अप्रगट को छुआ जा सकता है, न अप्रगट को देखा जा सकता है। अदृश्य की तो केवल बातें की जा सकती हैं, दिखायी तो पड़ता है दृश्य। अरूप की तो केवल चर्चा हो सकती है, पकड़ में तो आता है रूप। और रूप की, आकार की, दृश्य की निंदा की गयी है! स्वभावतः अरूप की सिर्फ चर्चा रह गयी है हमारे हाथों में।
और स्मरण रहे कि रूप को जो जान ले, वह अरूप से परिचित हो सकता है। जो पदार्थ को जान ले, वह अपदार्थ से परिचित हो सकता है। जो शरीर को पहचान ले, वह आत्मा से भी संबंधित हो सकता है। लेकिन जो रूप का ही विरोध कर दे, वह अरूप तक जाने की अपनी सीढ़ी ही तोड़ देता है, इसका उसे कुछ पता ही नहीं है। लेकिन रूप की, और आकार की और जीवन की, पदार्थ की और शरीर की, और संसार
की इतनी निंदा की गयी है, इतना विरोध किया गया है, इतनी घृणा जाहिर की गयी है, जिसका हिसाब लगाना आज कठिन है।
काश, जीवन की इतनी प्रशंसा की गयी होती! काश, इतने लोगों ने जीवन के आनंद के गीत गाये होते! काश, इतने मुखों से, इतनी वाणियों से जीवन की गरिमा और गौरव अभिव्यक्त हुआ होता! तो आज पृथ्वी दूसरी होती, आज पृथ्वी धर्म से भरी होती, आज जीवन आनंद से भरा होता, आज जीवन एक संगीत बन गया होता।
लेकिन मनुष्य-जाति के अब तक के शिक्षकों ने जीवन की निंदा की है, विरोध किया है। यह जो विरोध है, यह जो जीवन की बुनियादी रूप से निंदा है, कंडेमनेशन है, उसने हमारे और जीवन के बीच अगर एक दीवाल खड़ी कर दी हो तो बिल्कुल स्वाभाविक है।
धर्म का विचार करते ही यह ख्याल आना शुरू हो जाता है कि जीवन व्यर्थ है, जीवन छोड़ देना है, जीवन से हट जाना है, जीवन से मुक्त हो जाना है, आवागमन से मुक्त हो जाना है! धर्म का चिंतन ही कुछ मरणोन्मुखी, कुछ स्युसाइडल, कुछ आत्महत्यावादी, कुछ जीवन-निषेध का बन गया है। जीवन के आनंद में सम्मिलित होने का आमंत्रण नहीं मालूम होता। धर्म जीवन पर आंख बंद कर लेने का, जीवन से हट जाने का, उदासीन हो जाने का निमंत्रण मालूम होता है।
और जब हम चित्त से उदासीन हों और चित्त से असार समझें और चित्त हमारा
यह कहे कि सब व्यर्थ है। और हम जन्मे, यह हमारे पापों का कारण है। और जिस दिन हमारे पाप नष्ट हों जायेंगे, उस दिन हमारे जन्म का भी कोई कारण न रह जायेगा। हम मोक्ष में उस जगह, जहां कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं; जहां कोई देह नहीं; जहां कोई इंद्रियां नहीं; जहां कोई रूप नहीं, उस अरूप में प्रविष्ट हो जायेंगे। यह जो भाव-दशा न हो तो फिर जीवन की इस वृहत लीला से संबंधित नहीं हुआ जा सकता है।
यह बात सबसे पहले समझ लेने जैसी है कि मनुष्य को अधार्मिक बनाने वाले लोग, वे लोग नहीं हैं, जिन्होंने ईश्वर को इंकार किया है। वे लोग भी नहीं, जिन्होंने आत्मा को अस्वीकार किया है। बल्कि वे लोग, जिन्होंने रूप का खंडन किया है और निंदा की है और जीवन की प्रकट अभिव्यक्ति को असार कहा है।

एक स्मरण मुझे आता है। एक मित्र, एक संन्यासी, मेरे पास कुछ दिन मेहमान थे। आते ही मेरे आसपास जो बड़ी बगिया थी, जिसमें बहुत फूल थे; आते ही उन्होंने फूलों को ऐसे देखा है, जैसे कोई शत्रु को देखता हो। और उन्होंने मुझसे कहा, आपको भी फूलों से प्रेम है! आपको भी फूलों से कोई लगाव है!
मैं चुप रह गया, क्योंकि जो फूलों को भी न समझ पा रहा हो, वह फूलों की प्रशंसा में कही किसी बात को समझ पायेगा, इसकी कोई आशा न थी। फिर रात हुई। और एक मित्र कुछ गीत सुनाने आये थे तो मैं गीत सुनने बैठ गया। उन संन्यासी ने कहा, आपको गीतों से भी लगाव है, गीतों से भी प्रेम है!
मैं फिर हंसा और चुप रह गया, क्योंकि जो गीत ही न समझ पा रहा हो, गीत की प्रशंसा में कही गयी बात को समझ सकेगा, इसकी कोई आशा न थी।
फिर रात हम खाना खाने बैठे। वे इस भांति खाना खाने लगे, जैसे कोई एक बोझ भरा काम कर रहे हों, कोई एक जबरदस्ती, कोई एक नेसेसरी ईविल, कोई एक आवश्यक बुराई है, जो करनी पड़ रही है, मजबूरी है कि भोजन खाना पड़ रहा है, वैसे वे भोजन करने लगे! मैंने उनसे कहा,"आप यह क्या कर रहे हैं?"
उन्होंने कहा,"मैं अस्वाद का व्रती हूं, अस्वाद का व्रत लिया हुआ है। भोजन ऐसे करना है, जैसे कोई मिट्टी खा रहा हो! कोई स्वाद नहीं लेना है!" मैंने कहा, यह तो मैं समझ गया था। जब फूलों को देखकर आपके हृदय में जो भाव उठा, जब गीत को सुनकर, जो भाव उठा, तभी मैं समझ गया था। क्योंकि अगर हम ठीक से देखें तो फूल आंख का आहार है और गीत और संगीत कान का आहार है। सब भोजन है।
जीवन चारों तरफ एक भोजन है, एक आहार है।
आंख जब भरे वृक्ष को देखकर आनंदित होती है तो आंख को भोजन मिल गया और कान जब वीणा को सुनकर प्रफुोत हो उठते हैं, तो उन्हें भी भोजन मिल गया। चौबीस घंटे सभी इंद्रियों से आहार चल रहा है। परमात्मा बहुत द्वारों से प्रवेश पा रहा है। परमात्मा के ये सभी प्रवेश आनंद से गृहीत हों; स्वागत से, अनुग्रह से, ग्रेटीटयूड से भरे हुए हों तो वैसे आदमी का संबंध जीवन से हो सकता है।
लेकिन जो इन सभी द्वारों पर घृणा का भाव लिये खड़ा हो, विरोध, शत्रुता लिए खड़ा हो; जो कान इसलिए बंद कर लेता हो कि संगीत न सुनायी पड़ जाये; जो स्वाद का इसलिए शत्रु हो जाता हो, जो आंख इसलिए बंद कर लेता हो। आंख फोड़ लेने वाले लोग भी हुए हैं, उन्होंने अपनी आंख फोड़ ली! इसके तो वे मालिक थे, लेकिन उनके प्रभाव में सारी मनुष्य-जाति की आंखें धुंधली हो गयी हैं--इसका उनको कोई हक नहीं था।
आंखें फोड़ ली हैं लोगों ने कि कहीं रूप आकर्षित न कर ले! जीवन जहां- जहां से प्रवेश पा सकता है मनुष्य के भीतर, वे सारे द्वार बंद कर लेने हैं! ऐसे बंद द्वारों वाला व्यक्ति अहंकार को तो उपलब्ध हो सकता है, ब्रह्म भाव को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे इस भाव से तो भर सकता है कि मैं कुछ हूं, लेकिन जीवन क्या है, इसका उसे कोई ओर-छोर नहीं मिल सकता है।
जीवन को जानने की संभावना तो तभी है, जब हमारा सारा व्यक्तित्व एक ओपनिंग, एक द्वार बन जाये। गीत के लिये, हवाओं के लिए, सौंदर्य के लिए, संगीत के लिए, स्वाद के लिए, सुगंध के लिए, सब तरफ हमारा जीवन एक द्वार बन जाये।
साधक मेरी दृष्टि में एक द्वार बन जाता है। सब भांति से एक द्वार बन जाता है। जीवन का जो क्षुद्रतम है, वह भी उसे विराट का ही अंग प्रतीत होता है। वह जो छोटे-छोटे अणु हैं, वह भी उसे ब्रह्मांड प्रतीत होते हैं। यह जो छोटा-सा फूल खिल जाता है, यह जो कोयल कहीं बोल रही है अनजान में, यह सब उसके प्राणों के अंतर्गीत बन जाते हैं, अंतर्नाद बन जाता है। वह सब स्वीकार कर लेता है। जीवन जो भी देता है, सभी को अनुग्रह से स्वीकार कर लेता है। भोजन करना भी उसे प्रार्थना के तुल्य है, स्नान करना भी उसे पूजा की भांति है। हवाओं में सांस लेना भी उसे भगवान के लिए धन्यवाद है।
जीवन से संबंध और आत्म-ऐक्य तभी हो सकता है, जब जीवन के प्रति निंदा का भाव गिर जाये।

कल मैंने आपको ज्ञान छोड़ने को कहा। आज मैं आपसे जीवन के प्रति निंदा
के भाव छोड़ने के लिए कहना चाहता हूं। लेकिन गहरे, बहुत गहरे हमारे चित्त में कंडीशनिंग, बहुत गहरे संस्कार बैठ गये हैं जीवन की हर चीज की निंदा के। अगर आपको बुद्ध कहीं हंसते हुए मिल जायें तो आप बड़े चिंतित हो जायेंगे। अगर महावीर आपको कहीं वीणा सुनते हुए मिल जायें तो आप बड़े हैरान हो जायेंगे।
क्रिश्चियंस कहते हैं,"जीसस नेवर लाफ--जीसस कभी हंसे नहीं!" हम उदास संतों को देखने के आदी हो गये हैं।
जीवन से जिन्होंने मृतक का भाव ले लिया है; जीवन के प्रति जो जीते-जी
मर जाने की कोशिश में लग गये हैं, उनकी छाया मनुष्य के चित्त पर गहरी हो गयी हैं, बहुत अंधकारपूर्ण हो गयी है। हंसता हुआ संत हमारी कल्पना में भी नहीं आता है! हम बुरे आदमी को हंसता हुआ देख सकते हैं, भले आदमी को नहीं! भले आदमी के साथ हंसी का कोई संबंध नहीं! जीवन के आनंद का कोई संबंध नहीं! धार्मिक लोग वे ही हो सकते हैं, जो किसी भांति रुग्ण हों, उदास हों, बीमार हों! धार्मिक लोग वे ही हो सकते हैं, जो जीवन के प्रति शत्रुता का भाव लेकर किसी कोने में खड़े हो गये हों! रंगों का, स्वरों का, सुगंधों का धार्मिक आदमी से क्या संबंध है? लेकिन नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, ठीक धार्मिक व्यक्ति और ही तरह का व्यक्ति होगा।
तीन संतों के बाबत मैंने सुना है। वे तिब्बत में हुए। और"तीन हंसते हुए संत", ही उनका नाम था उनका कोई और नाम न था--थ्री लाफिंग सेंट्स। इसी तरह ही वे जाने जाते हैं। वे जिस गांव में जाते, उस गांव में हंसी की, खुशी की एक लहर पहुंच जाती। वे हंसते, वे इतना हंसते कि हंसना संक्रामक हो जाता और धीरे-धीरे पूरा गांव हंसने लगता! वे जिस चौराहे पर खड़े हो जाते, वहां हंसी के फव्वारे छूट जाते।
लोग उनसे पूछते, आपका कोई उपदेश नहीं है? वे कहते, एक ही हमारा उपदेश
है कि जीवन को हंसी के भाव से स्वीकार कर लो। जीवन को रोते हुए, जो स्वीकार करेगा, जीवन से उसका कोई संबंध नहीं हो सकता। वे लोगों से कहते कि न कभी रोते हुए आंसुओं से भरे हुए, कोई आदमी प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हुआ है, और न कभी हो सकेगा। मुस्कुराहटें तो उसका मार्ग बन सकती हैं। मुस्कुराहटों के इंद्रधनुष तो उस तक पहुंचने के सेतु हो सकते हैं, लेकिन रोती हुई सूरतें नहीं। एक ही हमारा संदेश है कि लोग प्रफुोत मन से जीवन को अंगीकार करना सीख जायें।
वे तीनों बूढ़े हो गये और गांव-गांव भटकते रहे। मुझे पता नहीं, वैसे संत कहीं और भी हुए हों। काश, वैसे संत और कहीं भी होते तो यह दुनिया आज दूसरी होती। फिर उन तीनों में से--वे तीनों बूढ़े हो गये--एक संत की मृत्यु हो गयी। जिस गांव में एक संत की मृत्यु हुई, गांव के लोगों ने कहा, अब तो रोयेंगे वे जरूर, अब तो दुखी होंगे, आज हम उनकी आंखों में आंसू देख लेंगे। गांव के लोग इकट्ठे हो गये झोपड़े के पास, लेकिन वे दोनों हंसते हुए अपने मृतक साथी को लेकर बाहर निकले। और उन्होंने गांव के लोगों से कहा कि आओ और देखो, कितना अदभुत आदमी था यह। लोगों ने देखा, उसकी लाश पड़ी है, लेकिन उसके होंठ मुस्करा रहे हैं! वह जो आदमी मर गया है, वह हंसते हुए ही मर गया है! और मरते वक्त कह गया है अपने मित्रों को कि एक कृपा करना, मुझे जब ले जाकर, मेरी अर्थी को तुम जलती हुई लकडिय़ों पर रखो तो मेरे वस्त्र मत निकालना, मुझे स्नान मत कराना।
तिब्बत में वैसा रिवाज था कि आदमी मर जाये तो कपड़े निकालना, स्नान कराना, नये कपड़े पहना देना। एक नयी यात्रा पर कोई जाता है तो उसे नये कपड़े तो कम से कम पहना ही देने चाहिए। लेकिन वह आदमी कह गया है कि नहीं, मेरे कपड़े मत बदलना, मुझे स्नान मत कराना, इन्हीं कपड़ों में चिता पर चढ़ा देना! फिर वह सारा गांव लेकर संत की अर्थी को मरघट पहुंच गया। हजारों लोग इकट्ठे हो गये हैं, चिता जल गयी है, अर्थी रख दी गयी है। जैसे ही आग लगी है, शरीर जलना शुरू हुआ है--उस अर्थी को चिता पर चढ़ा दिया गया है। आग लग गयी है, लोग उदास खड़े हैं। हजारों की भीड़ है, लेकिन फिर एकदम धीरे-धीरे भीड़ में हंसी छूटने लगी! लोग हंसने लगे! हंसी फैलती चली गयी, हंसी बिल्कुल संक्रामक हो गयी! क्या हो गया था?

जैसे ही लाश में आग लगी, लोगों को पता चला कि वह आदमी अपने कपड़ों के भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपाकर मर गया है। कपड़े में उसने भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपा रखे हैं! लाश में आग लग गयी है, पटाखे फूटने लगे हैं, फुलझडिय़ां छूटने लगी हैं और लोग हंसने लगे हैं और वे कहने लगे कि अदभुत था वह आदमी! वह मरा हंसता हुआ, जीया हंसता हुआ और मरने के बाद भी लोग उसे हंसते ही विदा दें, इसकी भी व्यवस्था, इसका भी आयोजन कर गया!
उस गांव में लोगों को पता चला, हंसते हुए जीया जा सकता है, हंसते हुए मरा जा सकता है। मरने के बाद भी पीछे हंसी की संभावना पैदा की जा सकती है। ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं।
रोते, उदास लोगों को विदा कर दें। धर्म उनसे बहुत पीड़ित हो चुका। मनुष्य के जीवन में मनुष्यता के ऊपर जो सबसे बड़े दुर्भाग्य गिरे, वह रोते हुए लोगों का प्रभाव है। रोते हुए लोगों से हम पीड़ित हैं, रुग्ण और उदास लोगों से हम पीड़ित हैं। जो लोग जीवन की खुशी को उपलब्ध नहीं कर पाते, उनकी स्थिति वैसी ही है, जैसी उस लोमड़ी की आपने सुनी होगी, जो अंगूरों के एक वृक्ष के नीचे थी। और लटके थे अंगूर, पके हुए और वह छलांग लगाने लगी। लेकिन वृक्ष था ऊंचा और लोमड़ी नहीं पहुंच सकी वहां तक तो वह वापस लौट पड़ी और रास्ते में कहती गयी, खट्टे अंगूर हैं, उन्हें पाने की भी क्या जरूरत है! जीवन के आनंद को, जीवन के फूलों को और जीवन के गीतों को, जो उपलब्ध नहीं कर पाते, वे कहते हैं, जीवन खट्टा है, अंगूर खट्टे हैं; जीवन बुरा है, जीवन असार है। अपनी असफलता को वे जीवन की निंदा में छिपा लेते हैं। और जिन्हें जीवन के ही अंगूर नहीं मिल पाये, उन्हें परमात्मा के अंगूर मिल जायेंगे, इसकी कोई उम्मीद नहीं है।
जीवन के रस से तो यह पता मिल सकता था कि परमात्मा कहां है, लेकिन जीवन
से विरस होकर तो उसका पता-ठिकाना भी नहीं मिल सकेगा। जीवन के भीतर जाकर तो वह खबर मिल सकती थी कि रास्ता कहां ले जाता है, प्रभु तक कैसे जायेगा; लेकिन जीवन को ही पीठ करके, जो खड़े हो गये हों, उनके लिए कोई रास्ता नहीं। प्रभु कहीं भी है अगर, तो जीवन के भीतर; जीवन के विरोध में नहीं, जीवन
के विपरीत नहीं।
लेकिन अस्वस्थ, रुग्ण, हारे हुए लोग, पराजित लोग अपने को दोष न देकर जीवन को ही दोष दे देते हैं। हारा हुआ आदमी हमेशा इसी कोशिश में होता है कि कोई बहाना मिल जाये, खुद को दोष न देना पड़े। हारे हुए लोग--स्मरण रखिये, हारे हुए लोग अब तक धर्म में उत्सुक होते रहे हैं। हारे हुए लोगों की जमात धर्म के आसपास इकट्ठी हो गयी है। मंदिरों और मस्जिदों में जाइये, वहां हारे और पराजित लोग दिखायी पड़ेंगे। आदमी जब मरने के करीब पहुंचने लगता है, जब जीवन पर सारी अंगुलियां छूट जाती हैं, बूढ़ा होने लगता है, लगता है जीवन अब गया, तब गया; तब वह मंदिर की यात्रा शुरू कर देता है। तब वह सोचता है कि अब मंदिर का वक्त आ गया है।
जब जीवन का वक्त गुजर जाता है, तब मंदिर का वक्त आता है!
अगर कहीं कोई मंदिर है तो जीवन के घनेपन में है।
यह जो उदास, यह जो निराश, यह जो असफल लोगों का समूह है, इसने धर्म को आक्रांत कर रखा है। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं इस दूसरी चर्चा में, अपने को उदास और रोते हुए लोगों से मुक्त कर लीजिये। रुग्ण, अस्वस्थ, विक्षिप्त लोगों से मुक्त कर लीजिये। अगर जीवन के अंगूर न मिलते हो तो खट्टे मत कहिये। यह कहिये कि मेरी छलांग छोटी है।
छलांग बड़ी की जा सकती है। साधक छलांग बड़ी करने का प्रयास करता है। पलायनवादी एस्केपिस्ट कहता है, अंगूर खट्टे हैं और लौट जाता है।
छलांग बड़ी करिये। जीवन हाथ में न आता हो तो हाथ और बढ़ाये। आंखें न देख पाती हों तो आंखों को और खोलिये। कान न सुन पाते हों तो कानों को और प्रशिक्षण दीजिये। भोजन में न मिल पाता हो परमात्मा, तो अस्वाद पर मत लौट जाइये। क्योंकि अस्वाद अंगूरों को खट्टा कहने की दलील है। तो स्वाद को और शिक्षित कीजिये, स्वाद को और साधिये, क्योंकि जो लोग जानते थे, उन्हें अन्न में भी ब्रह्म दिखायी पड़ सका है। जो लोग जानते हैं, उन्हें स्वर में भी ब्रह्म दिखायी पड़ सका है। जो लोग जानते हैं, उन्हें रूप में भी उसके ही दर्शन हो सके हैं। सौंदर्य भी उन्हें उसकी ही खबर बन गयी है। सब कुछ उसकी

ही खबर बन गया है। शरीर का सौंदर्य भी भीतर छिपे परमात्मा की खबर बन जाता है, लेकिन देखने वाली आंख चाहिए।
आंख मत फोडिय़े। आंख को शिक्षित करिये।
इंद्रियों की शिक्षा साधना। इंद्रियों का विरोध नहीं, दमन नहीं, सप्रेशन नहीं। एक-एक इंद्रिय ऐसी साधी जा सकती है कि उसके द्वार से प्रभु तक पहुंचने का मार्ग बन जाये।
तो मैं आपसे कहूंगा, स्वाद है तो पूर्ण स्वाद लीजिये, अस्वाद नहीं। भोजन कर रहे हों तो ऐसे करिये कि भोजन करना ही एकमात्र कृत्य रह जाये। सारा प्राण, सारी देह, सारी शक्ति, समग्र चेतना भोजन करे। जरा-सा स्वाद छूट न जाये। स्वाद में इतनी लीनता, इतनी तल्लीनता, इतना आत्मभाव! फिर आपको पता चलेगा कि अन्न ब्रह्म हो जाता है। फिर आपको पता चलेगा कि स्वाद भी उसकी खबर है। और तब भोजन करके अगर आपका हृदय धन्यवाद से भर जाये परमात्मा के लिये तो आश्चर्य नहीं। तब सौंदर्य को भी देखिये और परिपूर्ण तल्लीनता से, परिपूर्ण एकात्मभाव से। और तब आपको सौंदर्य के पीछे अरूप के दर्शन होने लगें तो आश्चर्य नहीं।
रूप तो केवल ऊपर की खोल है, भीतर अरूप छिपा है।
जब आपको कोई फूल सुंदर लगता है तो क्या सुंदर लगता है वहां? क्या आपको फूल की पंखुडिय़ां, उनमें दौड़ते हुए केमिकल्स, खनिज--क्या सुंदर लगता है? नहीं, फूल की पंखुडिय़ां भी नहीं, फूल का पदार्थ भी नहीं, फूल के खनिज भी नहीं, फूल का रसायन भी नहीं। लेकिन उन सबके मेल से जो अरूप है, उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो पीछे छिपा है, उस सबके मेल से वह जो पीछे छिपा है, उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है।
जब आप वीणा सुनते हैं तो तारों की टंकार अच्छी लगती है, या हाथों का प्रभाव--क्या अच्छा लगता है? नहीं, लेकिन स्वरों के माध्यम से, वह जो स्वरों के बीच में अस्वर छिपा हुआ है, शून्य छिपा हुआ है, स्वरों के बीच-बीच में, वह जो शून्य छिपा हुआ है, उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो संगीत के पीछे निशब्द छिपा हुआ है, संगीत से वह प्रकट होने लगता है।
जीवन की यह अदभुत लीला है कि यहां जीवन में जो कुछ भी प्रकट होता है,
वह कंट्रास्ट में, विरोध में, प्रकट होता है।
स्कूल में हम बच्चों को पढ़ाते हैं तो काला तख्ता लगा लेते हैं। सफेद खडिय़ा से लिखते हैं इस पर। सफेद खडिय़ा काले की पृष्ठभूमि में प्रकट होती है, पूर्णता से प्रकट होती है। सफेद तख्ते भी बना सकते हैं, लेकिन तब पढ़ना मुश्किल हो जायेगा। सफेद खडिय़ा लिखेगी, सफेद तख्तों पर कुछ भी दिखायी नहीं पड़ेगा।
जीवन हमेशा कंट्रास्ट में प्रकट होता है। आत्मा को प्रकट होना है तो शरीर में प्रकट होती है। शरीर काले ब्लैक बोर्ड की तरह भूमि बन जाता है, आत्मा के प्रकट होने के लिए। सौंदर्य को प्रकट होना है तो रूप में प्रकट होता है, ताकि अरूप कंट्रास्ट ले ले, वह दिखायी पड़ सके। शून्य को प्रकट होना है तो संगीत में प्रकट होता है। उलटी है बात। संगीत तो ध्वनि है। शून्य निर्ध्वनि है। लेकिन निर्ध्वनि को प्रकट होना हो तो ध्वनि का माध्यम, ध्वनि का बैक-ग्राउंड, ध्वनि की पार्श्वभूमि चाहिए।
परमात्मा को प्रकट होना है तो पदार्थ का संसार चाहिए।
जीवन हमेशा पृष्ठभूमि मांगता है अभिव्यक्ति के लिए। अगर पृष्ठभूमि न
हो तो जीवन प्रकट नहीं हो सकता। जीवन की सारी अभिव्यक्ति कंट्रास्ट में है।
लेकिन अगर हम तख्ते को मिटा दें तो फिर सफेद अक्षर भी विलीन हो जायेंगे। अगर हम शरीर के शत्रु हो जायें तो आत्मा भी हमसे दूर हो जायेगी। अगर हम संसार के दुश्मन हो जायें तो हम परमात्मा की तरफ जाना भी बंद हो जायेंगे। यह सीधा-सा गणित दिखायी नहीं पड़ सकता। यह अत्यंत दो और दो चार जैसी बात दिखायी नहीं पड़ सकी! क्यों नहीं दिखायी पड़ सकी? न पड़ने के कुछ कारण हैं।
हमें भी वही बात स्वीकृत हो जाती है--वही बात, जो हमारी जीवन-स्थिति के अनुकूल पड़ती है। हम सब भी हारे हुए लोग हैं, इसलिए हारे हुए लोगों का संदेश हमें ठीक सुनायी पड़ जाता है। हम सब भी पराजित लोग हैं, इसलिए पराजित लोग जब

कहते हैं कि जीवन असार है, तब हमें भी यह बात बिल्कुल ही ठीक मालूम पड़ने लगती है। जो हमारी आदत का हिस्सा हो जाती है, वही हमारी समझ में आता है, शेष हमें समझ में नहीं आता।
मैंने सुना है, एक मछुआ जीवन भर मछलियों को मारने का धंधा करता रहा था। एक बार देश की राजधानी में पहुंच गया। वह राजधानी घूम-घूम कर देखने लगा--चकित, विमुग्ध। फिर वह उस रास्ते पर पहुंच गया, जहां देश के, राजधानी के इत्र बिकते थे, सुगंधियां बिकती थीं। वह सुगंधियों का बाजार था, वह वहां पहुंच गया। जाते ही उसे अपनी नाक बंद कर लेनी पड़ी, क्योंकि उसे बड़ी बदबू मालूम पड़ी! उसने मछलियों की सुगंध को ही जाना था। उसी को वह सुगंध कहता था।
वह बहुत हैरान हो गया है लेकिन। भागने की भी कोशिश की उसने कि बाजार
से निकल जाये। लेकिन लंबा बाजार था। राजधानी का बाजार था। वहां दुनिया की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सुगंधियां थीं। आखिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा। गंध इतनी तेज मालूम होने लगी कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा। भीड़ इकट्ठी हो गयी। पास के दुकानदार कीमती से कीमती सुगंधें लेकर आ गये कि शायद सुगंध सुंघाने से उसे होश आ जाये। उन्हें पता भी नहीं कि वह सुगंधों की वजह से ही बेहोश हो गया है। वे उसे सुगंधियां सुंघाने लगे। वह तड़फड़ाने लगा, हाथ-पैर फेंकने लगा! उसको तो बोलते भी नहीं बन रहा है! वह और बेहोश हो गया!
और तभी उस भीड़ में एक आदमी बाहर आया, जो पहले मछुआ रह चुका था। उसने कहा कि मित्रो, तुम बड़ा गड़बड़ किये दे रहे हो। यह आदमी मर जायेगा। आप हटो, अपनी सुगंधियां दूर हटाओ। इन्हीं के कारण वह बेहोश हो गया है!
लेकिन उसके पास उसका झोला था, जिसमें वह मछलियां बाजार बेचने लाया था। उस पर पानी थोड़ा छिड़का और उस आदमी की नाक के पास वह झोला रख दिया। उसने गहरी सांस ली, आंख खोली और उसने कहा, "दिस इज रियल परफ्यूम"--यह है असली सुगंध!
स्वाभाविक है, हमें वही बात ठीक मालूम पड़ती है, जिसके हम आदी हैं। हमें वही सुगंध मालूम पड़ती है, जिसे हम जानते हैं। चूंकि सभी मनुष्य जीवन की कला में दीक्षित नहीं है, और इसीलिए पराजित हो जाते हैं। इसलिए जब कोई पराजित व्यक्ति खड़े होकर कहता है, असार है सब, व्यर्थ है सब, छोड़ देने जैसा है सब, तो हाथ हमारे भी उठ जाते हैं कि आप ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। जीवन की कला ही नहीं सिखायी गयी!
जीवन एक कला है।
जन्म के साथ ही जीवन नहीं मिल जाता। जीवन एक लंबा प्रशिक्षण है। और सूक्ष्मतम कला है जीवन की।
इस जीवन-कला का दूसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं।
जो भी है, जो भी उपलब्ध है, इंद्रियों से जो भी आता है, उस सबको अत्यंत आनंद से, अत्यंत ग्रेटिटयूड से स्वीकार करें और आप पायेंगे कि जीवन से आपका संबंध होना शुरू हो गया है।
हमारे भाव तोड़ते हैं। हमारे भाव जोड़ सकते हैं। हमारा दुर्भाव तोड़ देता हैं, हमारा सदभाव जोड़ देता है। जीवन के प्रति सदभाव! मैं उन सारे लोगों को परमात्मा का शत्रु कहता
हूं, एनीमीज ऑफ गॉड, जो जीवन के प्रति दुर्भाव सिखाते हैं।
कल ही एक मित्र आये। उन्होंने कहा कि मैं तो साठ बरस का हो गया हूं, लेकिन अब भी सुंदर स्त्री को देखता हूं तो बेचैन और परेशान हो जाता हूं। जिंदगी भर मैंने कोशिश की है कि अपने मन को स्त्री से अलग कर लूं, अलग कर लूं, अलग कर लूं। लेकिन इस उम्र में भी स्त्री मेरा पीछा कर रही है!
मैंने कहा, वह पीछा करती ही चली जायेगी। वह आप कब्र में चले जायेंगे
और वह पीछा करती चली जायेगी। आप पीछा करवा रहे हैं। जीवन की कला स्त्री से भागना नहीं सिखाती, सौंदर्य से आंखें फेरना नहीं सिखाती, बल्कि इस जिज्ञासा में और ऊपर उठ आती कि जो सौंदर्य दिखायी पड़ रहा है, वह कहां से आ रहा है? वह सौंदर्य क्या है?
और अगर एक स्त्री में भी सौंदर्य दिखायी पड़ा हो--दिखायी पड़ सकता है। फूल में दिखायी पड़ सकता है तो स्त्री में क्यों नहीं, पुरुष में क्यों नहीं, आंखों में क्यों नहीं, शरीर में क्यों नहीं? क्योंकि फूल भी एक शरीर

है, चांद भी एक शरीर है, तारे भी एक शरीर हैं, सागर भी एक शरीर है, वृक्ष भी एक शरीर है। तो आदमी के शरीर का ही कसूर क्या है?
लेकिन अगर सौंदर्य का विरोध न होता, अगर निंदक की दृष्टि न होती, तो शायद उस सौंदर्य में और गहरे प्रवेश होता है। वह सौंदर्य की ध्वनि पर सवार होकर मन और आगे जाता
और उस जगह पहुंच जाता, जहां से सारा सौंदर्य आता है। उस रूप पर पहुंच जाता, जहां से जीवन के सारे आनंद और सारी खुशियां आती हैं। तो शायद फिर एक स्त्री मंदिर बन जाती, उसके भीतर परमात्मा दिखायी पड़ जाता। फिर चाहे एक पुरुष प्रभु बन जाता, उसके भीतर परमात्मा दिखायी पड़ जाता।
तो मैं नहीं कहता हूं कि आप भागें इस सौंदर्य से, रूप से, संगीत से, सुगंध से, सुवास से, स्वाद से--किसी से भी मत भागें। सभी के भीतर खोज करें कि जो आकर्षित कर रहा है, जरूर वहां कहीं भीतर परमात्मा होगा।
जहां भी आकर्षण है, जहां भी ग्रेविटेशन है, स्मरण रखें कि वहां कहीं कोई परमात्मा का केंद्र होगा, अन्यथा कोई आकर्षण संभव नहीं। तो आकर्षण को सूचना समझें और भीतर और भीतर और गहरे और गहरे प्रवेश करें। चित्त को जाने दें और धीरे से आप पायेंगे कि सारी खबरें उसकी खबरें हैं। फूल से भी वही झांकता है, सागर से भी वही, चांदत्तारों से भी वही, आदमी से भी वही, स्त्री से भी वही, बच्चों से भी वही--सबसे वही झांकता है। उसकी खोज करनी है तो द्वार खुले होने चाहिए। रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, पूर्ण होनी चाहिए कि सब तरफ से जो संदेश आयेगा, उसे मैं अपने हृदय तक ले जाने को हमेशा तैयार हूं। यह मनुष्य-जाति बिल्कुल दूसरी मनुष्य की जाति हो सकती है। यह पूरी ह्युमैनिटी एक ट्रांसफार्मेशन से गुजर सकती है। एक रूपांतरण हो सकता है। लेकिन नहीं, निंदकों का प्रभाव हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है। जीवन के प्रशंसकों का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं!
तो यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। इन तीन दिनों में तो आप प्रयोग करेंगे ही। द्वार खोलें मन का। समस्त आकर्षण के लिए द्वार खोल दें। जीवन के समस्त स्वाद के लिए द्वार खोल दें। और जीवन के प्रत्येक अनुभव में आनंद की गहरी से गहरी खोज और आत्मलीनता खोजें, तल्लीनता खोजें और जीवन की जो मधु-वर्षा हो रही है, उसमें डूब जायें, उसमें एक हो जायें, उससे जुड़ जायें, उसके और अपने बीच कोई फासला न रखें। जैसे एक सूखा पत्ता हवाओं में उड़ता है, हवायें पूर्व ले जाती हैं तो पूर्व चला जाता है, हवायें पश्चिम ले जाती हैं तो पश्चिम चला जाता है। हवायें जमीन पर गिरा देती हैं तो जमीन पर गिर जाता है, हवायें आकाश में उठा देती हैं तो बादलों में उठ जाता है।
एक सूखा पत्ता हो जायें और जीवन के सारे रस, जीवन का सारा आनंद, जीवन
के सारे अनुभवों को गुजरने दें। कोई बाधा न डालें; कहीं कोई बैरियर खड़ा न करें, कहीं कोई दीवाल न बनायें। जीवन के सागर में बह जायें। तो, स्मरण रखें कि वह सागर अंततः परमात्मा तक ले जाने वाला बन जाता है।
जीवन में जो बहते हैं, वे तो कभी पहुंच जाते हैं। लेकिन जीवन के विरोध में पीठ करके, जो खड़े हो जाते हैं, वे न कभी पहुंचे हैं, न कभी पहुंच सकते हैं, न कभी पहुंच सकेंगे। यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं।
तीसरे सूत्र पर कल सुबह हम बात करेंगे। इसे थोड़ा प्रयोग करें तो ही पता चलेगा। वह जो भीतर निंदक बैठा है, वह बहुत इनकार करेगा, कि बहुत खतरा हो सकता है। वह जो भीतर कंडेमनेशन बैठा है, वह कहेगा, भूलकर मत पड़ना, इसमें तो मुश्किल हो जायेगी, इसमें तो सब गड़बड़ हो जायेगी, इसमें तो साधना सब भ्रष्ट हो जायेगी।
वह निंदक बहुत जोर से कहेगा भीतर, क्योंकि वह आज का नहीं है। वह हमारे"कलेक्टिव माइंड" का हिस्सा है, वह हमारे समूह-मन का हिस्सा है, वह कोई पांच हजार वर्ष से हमारे भीतर बैठा है और उसकी वजह से जीवन एकदम विषाक्त पायजनस हो गया है। जीवन की कोई खुशी अंगीकृत नहीं रही, कोई गीत अंगीकृत नहीं रहा। लाइफ निगेटिव है, वह हमारा जो दृष्टिकोण है।
और"लाइफ अफरमेशन चाहिए। "रिवरेंस फार लाइफ" चाहिए। जीवन के प्रति आदर-सम्मान, जीवन के प्रति प्रेम, अनुग्रह का भाव चाहिए।
धन्य हैं वे लोग, जो जीवन के प्रति अनुग्रह से भरते हैं, क्योंकि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सुंदर है, शुभ है, वह सभी उनको उपलब्ध हो जाता है।

इसके बाद हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो दो-चार बात समझ लें। फिर
हम अलग-अलग ध्यान के लिए बैठेंगे। मेरे लिए तो ध्यान भी जीवन की स्वीकृति है, अंगीकार है। ये हवाएं हैं, ये आयेंगी, ये गुजर जायेंगी। आवाजें हैं, पैदा होंगी, विलीन हो जायेंगी। सागर का गर्जन चलता रहेगा। कोई पक्षी बोलेगा। इस सबको परमात्मा का आशीर्वाद समझकर अंगीकार कर लेना है। इसे स्वीकार कर लेना है।
अब तक ध्यान के नाम से जो भी सिखाया गया है, वह रेसिस्टेंस है, वह प्रतिरोध है। अब तक यही सिखाया गया है कि कोई आवाज न सुनायी पड़े, चींटी काटे तो पता न चले। पत्थर की तरह हो जाना है, कुछ पता न चले! ये मर जाने की प्रक्रियाएं है। आदमी मर जाता है, तब चींटी भी काटती है तो पता नहीं चलता। हवा भी चलती है तो पता नहीं चलता है। बच्चा भी रोता है तो पता नहीं चलता। जिंदा आदमी को तो पता चलेगा और जितना ज्यादा जिंदा होगा, उतना ज्यादा पता चलेगा, उतनी सेन्सीटिविटि बढ़ जायेगी उसकी, उतनी उसकी संवेदना बढ़ जायेगी। जितना शांत होगा, जितना जीवंत होगा--जरा-सी ध्वनि और उसके प्राणों में आंदोलन होगा। जरा-सी आवाज उसे सुनायी पड़ेगी। एक सुई गिर जायेगी तो भी उसे सुनायी पड़ेगी। जीवन का लक्षण तो संवेदना है। मृत्यु का लक्षण संवेदना नहीं है।
लेकिन अब तक हमको इस तरह की बातें ही सिखायी गयी हैं कि जैसे डेड हो जाओ, मुद की तरह हो जाओ। नहीं, मैं आपको और भी जीवंत देखना चाहता हूं, इतना जीवंत कि वृक्ष का एक छोटा-सा पत्ता भी हिले तो पता चले।
अब तक रेसिस्टेंस बताया गया है ध्यान का अर्थ--प्रतिरोध! अपने को दबाओ, हटाओ, कुछ सुनायी न पड़े, कुछ ज्ञात न हो, सब तरफ से अपने को बंद कर लो-- एक क्लोजिंग।
मैं कह रहा हूं, ध्यान है एक ओपनिंग--द्वार का खोलना, बंद करना नहीं।
खोल दें द्वार और जो भी आता है, चुपचाप देखते रहें। बस, एक साक्षी रह जायें, एक विटनेस रह जायें। जितने शांत होंगे, जितने साक्षी होंगे, उतना ही पायेंगे कि जीवन के द्वार टूटते जा रहे हैं। एक मेल होता जा रहा है, सब जुड़ता जा रहा है। धीरे-धीरे पता चलेगा, सारी परिधि टूटती जा रही है। सारी सीमाएं गिरती जा रही हैं और असीम के साथ मिलन होता चला जा रहा है।
असीम के साथ मिलन है समाधि, और असीम की तरफ बढ़ने के प्रयास का नाम है ध्यान।
लेकिन असीम की तरफ वही बढ़ सकता है, जो सारा विरोध छोड़ दे, क्योंकि विरोध सीमा बनाता है। रेसिस्टेंस सीमा बनाता है। कोई रेसिस्टेंस नहीं। सब स्वीकार। एक स्वीकृति भर मन में रह जाये, टोटल एक्सेप्टेंस रह जाये मन में। सब स्वीकृत है और मैं मौन बैठा हुआ हूं, देख रहा हूं, देख रहा हूं; जान रहा हूं, केवल साक्षी हूं।
अब हम यहां बैठेंगे। सब एक दूसरे से थोड़े फासले पर बैठ जायें। और रात
के छह घंटे, सात घंटे, अगर शांत निद्रा में बीत जायें, आपके चौबीस घंटे शांत हो जायेंगे, ताजे हो जायेंगे, नये हो जायेंगे। जो लोग ध्यान के साथ निद्रा में गये हैं, जो लोग जाते हैं, वे मुझे कहते हैं फिर कि ऐसी नींद हमने जीवन में कभी भी नहीं जानी। ध्यान के साथ नींद संयुक्त हो जाये तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाती है।
यह रात्रि का ध्यान नींद के पहले करने का है। अंतिम, बिस्तर पर जब सो जायें, सब काम से निपट जायें, अब कुछ भी करने को शेष नहीं रहा, तब पंद्रह मिनिट के लिए इस ध्यान को करें। और ध्यान करने के बाद चुपचाप सो जायें, फिर उठें नहीं, फिर कुछ भी न करें। ध्यान के बाद चुपचाप सो जायें, ताकि ध्यान में जो धारा शुरू हो, वह नींद में प्रविष्ट हो जाये। उसकी अंडर करेंट पूरी नींद में प्रविष्ट हो जाये। इस प्रयोग को लेटकर ही करने का प्रयोग है। बिस्तर पर लेट जायें और इसको करें। प्रयोग करने में दो-तीन बातें ख्याल में लेनी जरूरी हैं।
एक बात, सारे शरीर को शिथिल छोड़ देना जरूरी है। रिलेक्स छोड़ देना जरूरी है। शरीर पर कोई तनाव न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं रहे हों। एक-एक अंग ढीला छोड़ दें, कोई तनाव न रखें, कोई तनाव-खिंचाव शरीर पर न हो। बिल्कुल ढीला छोड़ दें और आराम से लेट जायें। फिर

आहिस्ता से आंख बंद कर लें। फिर शरीर की शिथिलता के लिए थोड़े से सुझाव, थोड़े से सजेशंस शरीर को दें। सिर्फ यह भाव थोड़ी देर करते रहें--एक मिनिट, दो मिनिट कि शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है।
एक दो-तीन मिनिट भाव करने से, दस-पांच दिन में ही आप पायेंगे, शरीर बिल्कुल शिथिल हो जायेगा। और जब शरीर शिथिल होता है, तो बाडीलेसनेस पैदा हो जाती है। जब शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाता है तो अशरीरी भाव का अनुभव होता है। पता चलता है शरीर है ही नहीं।
शरीर का पता तनाव के कारण चलता है, स्ट्रेन के कारण चलता है। शिथिल शरीर का कोई पता नहीं चलता। आपको पता होगा, पैर में कांटा गड़ जाये तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। अगर पैर में कांटा नहीं तो पैर का कोई पता नहीं चलता कि पैर है भी या नहीं। सिर में दर्द न हो तो फिर सिर का कोई पता नहीं चलता कि सिर है या नहीं। जहां शरीर में तनाव होता है, वहीं शरीर का बोध होता है। स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसे शरीर का कहीं भी पता न चलता हो, हेल्थ का और कोई लक्षण नहीं होता। बीमारी का पता चलता है, स्वास्थ्य का कोई पता नहीं चलता।
तो ध्यान के पहले शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि उसका पता ही न चले। और एक पंद्रह दिन के प्रयोग में और जो लोग ठीक ईमानदारी से, सिनसियरटि से प्रयोग करें, आज ही हो सकता है। कि आज ही जब हम यहां प्रयोग करें तो आपको पता चले कि जैसे शरीर समाप्त हो गया है, शरीर है ही नहीं।
तो दो-तीन मिनिट तक ये सुझाव देना है, कि शरीर शिथिल हो रहा है। फिर श्वास को ढीला छोड़ देना है, रोकना नहीं है, शिथिल छोड़ देना है।--जितनी जाये, जाये; आये, आये। और दो-तीन मिनिट तक यह भाव करना है कि श्वास भी शांत हो रही है, शांत हो रही है, शांत हो रही है। भाव करते-करते ही श्वास शांत हो जायेगी। बहुत अल्प आती-जाती मालूम पड़ेगी। थोड़े दिन प्रयोग करने पर पता भी नहीं चलता कि श्वास आ रही है कि नहीं आ रही है। इतनी शांत हो जाती है। शरीर शिथिल होता है, तो श्वास अपने आप शांत होती है। श्वास शांत होती
है तो विचार क्षीण हो जाते हैं। फिर तीसरा सुझाव मन को देना है कि विचार भी शांत हो रहे हैं। ये तीन सुझाव देने हैं।
और सुबह जो हमने ध्यान किया था चौथी बात वही है कि फिर चुपचाप पड़े रह जाना है--सुनते रहना है हवाओं को, दरख्तों को, समुद्र को; कोई आवाज आती हो, आवाजों को। रास्ते पर लोग निकलते होंगे, वाहन निकलते होंगे, टैक्सी चलती होगी, ठेला चलता होगा। सब चुपचाप सुनते रहना है।
तीन बातें--शरीर, श्वास और विचार, इनको शांत छोड़ देना है और फिर चुपचाप
जो सुबह हमने प्रयोग किया था, वह लेटकर करते रहना है, एक दस मिनिट। फिर उसके बाद चुपचाप करवट लेकर सो जाना है।
यहां तो हम प्रयोग को करेंगे, ताकि आप समझ लें। फिर प्रयोग को जाकर अपने स्थान पर सोते समय करें और सो जायें। यहां तो प्रयोग आप समझ लें, इसलिए करना जरूरी है। और यहां परिणाम भी उसका बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है। वह उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है, जितनी हमारी तैयारी, जिज्ञासा, खोज, आकांक्षा हो।
तो अब हम प्रयोग करेंगे। तो सब लोग इतने फासले पर हो जायें कि आप लेट सकें। फिर प्रकाश अलग कर दिया जायेगा। और आपको मैं आज तो सुझाव दूंगा, ताकि आपको ख्याल में आ जाये कि क्या सुझाव देने हैं। फिर अपने कमरे पर जाकर आप प्रयोग को करें और सो जायें।
तो अपने-अपने लिए जगह बना लें, थोड़े फासले पर हट जायें, कोई किसी को छूता हुआ नहीं रहेगा और सब लोग लेट सकें, ऐसी अपनी जगह बनाकर चुपचाप बिना बातचीत किये
हां, थोड़े हट जायें, क्योंकि लेटना पड़ेगा, इसलिए हट जायें
बातचीत बिल्कुल भी न करें, क्योंकि बातचीत से कोई संबंध नहीं है
जरा भी बातचीत नहीं, किसी को भी बाधा न हो। अपनी-अपनी जगह बना लें, कहीं भी हट जायें

हां, मैं मान लेता हूं, आप जल्दी जगह बना लें, बिल्कुल अकेले में हो जायें, वहां आराम से लेट जायें, ताकि आप पूरा प्रयोग कर सकें। और गहरे जा सकें
ठीक है। अपनी-अपनी जगह लेट जायें अपनी-अपनी जगह लेट जायें
इस मौके का पूरा फायदा लें, इस अवसर का पूरा उपयोग करें। इतनी अदभुत रात मिले, न मिले। इतना एकांत, ऐसा स्वर्ण अवसर आये, न आये। बिल्कुल लेट जायें। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें
आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें
फिर मैं सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें। भाव के साथ ही साथ परिणाम होने शुरू हो जायेंगे।
इसके बाद सारे सुझाव पूर्व-प्रवचन जैसे हैं। शरीर को शिथिल करना है, श्वास को शांत करना है, मन को मौन करना है और अंत में दस मिनिट के लिए पूर्ण विश्राम में चले जाना है।

नेति-नेति
पांचवां प्रवचन

जीवन जीओ अतिरेक में

जीवन-देवता के प्रति समर्पण का भाव, स्वीकार, सम्मान और श्रद्धा की मनःस्थिति के संबंध में सुबह थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं हैं। उस संबंध में बहुत से प्रश्न आये हैं। उन पर अभी बात करनी है।
जीवन सदा से अस्वीकृत रहा है! जीवन की श्रद्धा और सम्मान के लिए न तो कभी कोई पुकार दी है, न कभी कोई आख्रान किया गया है। जीवन को छोड़ देने, जीवन से पलायन करने, जीवन को तोड़ देने और नष्ट कर देने की बहुत-बहुत चेष्टाएं जरूर की गयी हैं। या तो वे लोग पृथ्वी पर प्रभावी रहे हैं, जिन्होंने दूसरों के जीवन को नष्ट करने की कोशिश की है--राजनीतिज्ञ, सेनापति, युद्धखोर। या वे लोग जो दूसरों का जीवन नष्ट करने में नहीं लगे हैं, तो वे दूसरी प्रक्रिया में लग गये हैं, वे अपने ही जीवन को नष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं--तथाकथित धार्मिक, तथाकथित साधु-संन्यासी।
दो प्रकार की हिंसा चलती रही है। या तो दूसरे का जीवन नष्ट करो या अपना जीवन नष्ट करो। या तो दूसरों को समाप्त करो या स्वयं को समाप्त करो। जीवन की दोनों ही अर्थों में हत्या होती रही है। जीवन का परिपूर्ण सम्मान आज तक भी मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित नहीं हो पाया। स्वभावतः जब मैं कहूं कि जीवन ही देवता है, जीवन ही प्रभु है तो अनेक प्रश्न उठ आने स्वाभाविक हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि अगर जीवन ही प्रभु है तो फिर जीवन से छुटकारा
और आवागमन से मुक्ति और मोक्ष इस सबका क्या होगा? जीवन को तो बंधन कहा गया है और मैं जीवन को ही प्रभु कह रहा हूं?
निश्चित ही आज तक जीवन को बंधन ही कहा गया है। लेकिन जीवन बंधन नहीं है। जो लोग जीवन को जीने की कला नहीं जानते, उनके लिए जीवन जरूर बंधन हो जाता है।
एक अजनबी देश से कुछ मित्र यात्रा कर रहे थे। वे भूखे थे और फलों की एक दुकान पर रुके। लेकिन जो फल वहां बिक रहे थे, अपरिचित थे। अजनबी देश था, नहीं जानते थे क्या हैं वे फल। नारियल बिकते थे। लेकिन वे लोग जिस देश से आते थे, वहां नारियल नहीं होते थे। उन्होंने पूछा, यह क्या है?
दुकानदार ने कहा, बहुत, बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत शक्तिवर्धक
फल हैं। उन्होंने उन फलों को खरीद लिया। दुकानदार ने प्रशंसा में यह भी कहा कि बड़े-बड़े शहंशाह भी, बड़े-बड़े सम्राट भी मेरी ही दुकान से इन फलों को खरीदते हैं।
फिर वे फलों को लेकर आगे बढ़ गये। गांव के बाहर वे रुके और उन्होंने फलों को खाने की चेष्टा की, लेकिन नारियलों से वे परिचित नहीं थे। वे जिन फलों से परिचित थे, उन पर नारियल जैसी कड़ी खोल नहीं होती थी। उन्होंने नारियल को ऊपर से ही खाना शुरू किया। बहुत परेशान हो गये। तिक्त हो गया मुंह। कहीं कोई स्वाद न दिखायी पड़ा। दांत गपाना भी कठिन था, मुश्किल था। फिर उन्होंने एक-एक करके वे फल फेंक दिये और कहा, बड़े मूढ़ हैं इस देश के सम्राट और शहंशाह, जो इन फलों को खाते हैं। इन फलों में न कोई स्वाद है, न कोई रस है, न कोई अर्थ प्रतीत होता है। कैसे पागल हैं इस देश के लोग!
उन फलों को फेंककर वे भूखे ही आगे बढ़ गये और अपने देश में जाकर उन्होंने बहुत प्रचार किया कि हम एक मूर्खों के एक देश से गुजरकर आ रहे हैं। वहां लोग पत्थरों जैसे फलों को खाते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं! उन बेचारों को पता भी नहीं था कि फल वे पत्थर जैसे नहीं थे, लेकिन खाने
की विधि उन्हें ज्ञात न थी। खाने की विधि अज्ञात थी।
जीवन के फल पर भी जो खाने की विधि से, जीवन को भोगने की विधि से; जीवन
के रस के मार्ग से, जीवन के छंद को अनुभव करने के मार्ग से अपरिचित हैं, उन्हें जीवन लोहे की जंजीर प्रतीत होता तो आश्चर्य नहीं।
जीवन जंजीर नहीं है और जीवन से भिन्न कोई मोक्ष नहीं है।

जीवन को ही जो उसकी परिपूर्णता में जान लेने में समर्थ होता है, वह जीवन के मध्य, जीवन के बीच ही मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।
यह हो भी नहीं सकता है कि जीवन और मोक्ष में कोई विरोध हो। यह हो भी नहीं सकता कि जगत में कोई दो विरोधी सत्ताएं हों। यह हो भी नहीं सकता कि प्रभु और संसार में बुनियादी शत्रुता हो। कोई गहरी मैत्री का सेतु है। कोई एक ही सब संसार में, मोक्ष में प्रकट हो रहा है--देह में, आत्मा में; रूप में, अरूप में।
लेकिन हमारी असफलता, जीवन के फल को चखने की हमारी सीमा, हमारे लिए बंधन बनती रही है। जीवन को जीने की कला ही हमने नहीं सीखी। बल्कि कला न जानने से जब जीवन तिक्त और बेस्वाद लगा तो हमने जीवन को ही तोड़ देने की कोशिश की, अपने को बदलने की नहीं! हमने उस पागल की तरह व्यवहार किया है, शायद उस पागल के संबंध में आपने सुना हो। न सुना हो तो मैं कहूं और शायद आप पहचान भी लें कि वह पागल कौन है।
एक पागल आदमी था। वह अपने को बहुत ही सुंदर समझता था। जैसा कि सभी पागल समझते हैं, वैसा वह समझता था कि पृथ्वी पर उस जैसा सुंदर और कोई भी नहीं है। यही पागलपन के लक्षण हैं। लेकिन वह आईने के सामने जाने से डरता था। और जब कभी कोई उसके सामने आईना ले आता तो तत्क्षण आईने को फोड़ देता था। लोग पूछते, क्यों? तो वह कहता कि मैं इतना सुंदर हूं और आईना कुछ ऐसी गड़बड़ करता है कि आईना मुझे कुरूप बना देता है! आईना मुझे कुरूप बनाने की कोशिश करता है! मैं किसी आईने को बरदाश्त नहीं करूंगा, मैं सब आईने तोड़ दूंगा! मैं सुंदर हूं, और आईने मुझे कुरूप करते हैं! वह कभी आईने में न देखता। लोग आईना ले आते तो तत्क्षण तोड़ देता!
मनुष्य भी उस पागल की तरह व्यवहार करता रहा है। नहीं सोचता कि आईना वही दिखाता है, जो मेरी तसवीर है। आईना वही बताता है, जो मैं हूं। आईने को कोई प्रयोजन भी नहीं कि मुझे कुरूप करे। आईने को कोई मेरा पता भी नहीं। मैं जैसा हूं, आईना वैसा बता देता है। लेकिन बजाय यह देखने के कि मैं कुरूप हूं, आईने को तोड़ने में लग जाता हूं!
संसार को छोड़कर भाग जाने वाले लोग आईने को तोड़ने वाले लोग हैं। अगर संसार दुखद मालूम पड़ता है, तो स्मरण रखना कि संसार एक दर्पण से ज्यादा नहीं। वही दिखायी पड़ता है, जो हम हैं।
अगर दुख हमारे जीवन की व्यवस्था है तो संसार में दुख दिखायी पड़ेगा।
अगर चिंता हमारे चित्त की व्यवस्था है तो संसार में चिंता झलकेगी।
अगर कांटे हमने इकट्ठे कर रखे हैं तो संसार में कांटे दिखायी पड़ेंगे।
संसार हमारी प्रतिध्वनि है। जो हमारे भीतर है, वही प्रतिध्वनित हो उठता है, वही री-ईको हो उठता है।
लेकिन नहीं, यह देखने को हम राजी नहीं हैं! हम कहते हैं,"संसार बंधन है। हम कहते हैं, संसार दुख है। हम कहते हैं, संसार असार है, छोड़ दें, तोड़ दें, मुक्त हो जायें, बाहर हो जायें।
किससे बाहर होंगे? दर्पण को तोड़कर कोई मुक्त होता है? प्रतिध्वनियों
को बंद कर कोई मुक्त होता है?
मुक्त होना है तो स्वयं को बदलना पड़ता है, न कि जीवन को तोड़ना। मुक्त होना हो तो स्वयं को आमूल बदलना पड़ता है। और स्वयं को जो आमूल बदलने को तैयार हो जाता है, वह पाता है कि जीवन एक धन्यता है, एक कृतार्थता है। वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर उठता है--इतना सुंदर है जीवन, इतना अदभुत है, इतना रसपूर्ण, इतने छंद से भरा हुआ, इतने गीतों से, इतने संगीत से। लेकिन उस सबको देखने की क्षमता और पात्रता चाहिए। उस सबको देखने की आंखें, सुनने के कान, स्पर्श करने वाले हाथ चाहिए।
और भी कुछ मित्रों ने पूछा है कि मैंने सुबह जीवन की कला पर कुछ कहा। मैं और ठीक से कहूं कि जीवन की कला से मेरा क्या प्रयोजन है।
जीवन की कला से मेरा यही प्रयोजन है कि हमारी संवेदनशीलता, हमारी पात्रता, हमारी ग्राहकता, हमारी रिसेप्टीविटी इतनी विकसित हो कि जीवन में जो सुंदर है, जीवन में जो सत्य है, जीवन में जो शिव है, वह सब--वह सब हमारे हृदय तक पहुंच सके। उस सबको हम अनुभव कर सकें।

लेकिन हम जीवन के साथ जो व्यवहार करते हैं, उससे हमारे हृदय का दर्पण
न तो निखरता है, न निर्मल होता है, न साफ होता है; और गंदा होता, और धूल से भर जाता है। उसमें प्रतिबिंब बनाने और भी कठिन हो जाते हैं। जिस भांति जीवन को हम बनाये हैं--सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारा समाज मनुष्य के व्यक्तित्व को ठीक दिशा में नहीं ले जाता है। बचपन से ही गलत दिशा शुरू हो जाती है। और वह गलत दिशा जीवन भर, जीवन से ही परिचित होने में बाधा डालती रहती है। उस संबंध में दो-चार बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी। उस संबंध में ही प्रश्न पूछे गये हैं, वे भी हल हो सकेंगे।
पहली बात, जीवन को अनुभव करने के लिए एक प्रामाणिक चित्त, एक आथेंटिक माइंड चाहिए। हमारा सारा चित्त औपचारिक है, फार्मल है, प्रामाणिक नहीं है। न तो हम प्रामाणिक रूप से कभी प्रेम किये हैं, न प्रामाणिक रूप से कभी क्रोध किये हैं, न प्रामाणिक रूप से कभी हमने घृणा की है, न प्रामाणिक रूप से हमने कभी क्षमा की है।
हमारे सारे चित्त के आवर्तन, हमारे सारे चित्त के रूप औपचारिक हैं, झूठे हैं, मिथ्या हैं। अब मिथ्या चित्त को लेकर जीवन के सत्य को कोई कैसे जान सकता है? सत्य चित्त को लेकर ही जीवन के सत्य से संबंधित हुआ जा सकता है। हमारा पूरा माइंड, हमारा पूरा चित्त, हमारा पूरा मन मिथ्या और औपचारिक है। इसे समझ लेना उपयोगी है।
सुबह ही आप अपने घर के बाहर आ गये हैं और कोई राह पर दिखायी पड़ गया है
और आपने नमस्कार कर लिया है। और आप कहते हैं उसे मिलकर कि बड़ी खुशी हुई, आपके दर्शन हो गये। लेकिन मन में आप सोचते हैं कि इस दुष्ट का सुबह ही सुबह चेहरा कहां से दिखायी पड़ गया है!
यह अनआथेंटिक माइंड है, यह गैर-प्रामाणिक मन की शुरुआत हुई। चौबीस घंटे हम ऐसे दोहरे ढंग से जीते हैं, तो जीवन से कैसे संबंध होगा? फिर दोष देना जीवन को! बंधन पैदा होता है दोहरेपन से। जीवन में कोई बंधन नहीं है। बंधन पैदा होता है मनुष्य के दोहरेपन से। हम दोहरे ढंग से जी रहे हैं। भीतर कुछ है, बाहर कुछ है। दोहरा ढंग भी होता तो भी ठीक है। हम हजार ढंग से जी रहे हैं! एक ही साथ हजार बातें हमारे भीतर चल रही हैं! हमारे व्यक्तित्व में कोई प्रामाणिकता, कोई भी सचाई नहीं है। सारा व्यक्तित्व झूठ मालूम होता है। सारा व्यक्तित्व ही अभिनय का, एक्टिंग का मालूम होता है!
किसको धोखा दे रहे हैं लेकिन आप? किसके सामने यह अभिनय चल रहा है? किसी और को धोखा नहीं होगा। इस धोखा देने में स्वयं को ही जानने से वंचित रह जायेंगे, जीवन से संबंधित होने से वंचित रह जायेंगे। सब तरह का धोखा है, जो आदमी दे रहा है! सबसे गहरा धोखा मन के तलों पर है, जहां हमारी कोई भी चीज सच नहीं रह गयी है!
कभी आपने सच में ही किसी को प्रेम किया है? समझदार लोग कहते हैं, प्रेम नासमझ करते हैं। समझदार लोग प्रेम की बातें करते हैं, अभिनय करते हैं, प्रेम वगैरह कभी नहीं करते। व्यावहारिक लोग, जो प्रेक्टिकल लोग हैं, वे कभी प्रेम-व्रेम सिर्फ प्रेम की बातें करते हैं! हमारे सारे भाव बातों तक सीमित हो गये हैं! कभी कोई जीवन की कोई भी अनुभूति ऐसी तीव्रता से हमने नहीं पकड़ ली हैं, जिसके लिए हम जी जायें या जिसके लिए हम मर जायें।
कोई आथेंटिक, कोई प्रामाणिक भाव हमारे जीवन में नहीं है! क्रोध भी हम करते हैं तो पोच, इंपोटेंट। उस क्रोध में भी कोई बल नहीं होता, कोई शक्ति नहीं होती। जो क्रोध भी नहीं कर सकता प्रामाणिक रूप से, वह क्षमा कैसे कर सकेगा? क्षमा भी वही कर सकता है, जो क्रोध करने में समर्थ हो। मित्र भी वही हो सकता है, जो शत्रु होने में समर्थ हो।
लेकिन न हम शत्रु हो सकते हैं, न हम मित्र हो सकते हैं! हम बिल्कुल बीच में खड़े रहते हैं! हम बिल्कुल त्रिशंकु हो गये हैं! हमारे जीवन की कोई भाव-दशा नहीं रह गयी है!
एक--एक ग्रामीण युवक, पुराने दिनों की बात है, क्योंकि अब तो दुनिया में ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। ग्राम रह गये हैं, ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। आदमी सब शहरी हैं। एक ग्रामीण युवक ने विवाह किया। यह अमरीका की कोई दो सौ, ढाई सौ वर्ष पहले की किसी गांव की घटना है। वह विवाह किया और अपनी नववधू, पत्नी को लेकर अपनी घोड़ा-गाड़ी में सवार होकर गांव की तरफ

वापिस लौटा। रास्ते में घोड़ा एक जगह ठिठक गया, रुक गया। उसने बहुत चलाने की कोशिश की, लेकिन नहीं चला। उसने घोड़े से कहा, दिस इज वंस, यह एक बार हुआ।
उसकी पत्नी कुछ भी न समझी कि घोड़े से क्या बात की जा रही है। फिर घोड़ा थोड़ी दूर चला और फिर ठिठक गया। उस जवान ने कहा,"दिस इज ट्वाइस, यह दुबारा हो गयी बात।
उसकी पत्नी फिर भी चुप रही।
घोड़ा तीसरी बार ठिठका। उसने कहा, दिस इज था इस। उठा, बंदूक उठाकर घोड़े
को गोली मार दी! उसकी पत्नी तो हैरान रह गयी। उसने उसे जोर से धक्का मारा और कहा, यह क्या क्रूरता करते हो? यह क्या पागलपन करते हो?
उसने जबाब दिया, दिस इज वंस। उसने कहा, यह पहली बार हुआ।
उसकी पत्नी तो दंग रह गयी।
उस जवान ने कहा, दो मौके और बच गये।
उसकी पत्नी ने लिखा है कि मैंने पहली बार उस व्यक्ति की तरफ देखा, जिसका क्रोध इतना ज्वलंत हो सकता है और मुझे पहली दफा उसके व्यक्तित्व में एक बल और एक शक्ति और एक तेज का दर्शन हुआ है।
नहीं आपसे कह रहा हूं कि किसी को गोली मार दें लेकिन उसकी पत्नी ने कहा कि वह व्यक्ति उतना ही प्रेम भी कर सका
मनुष्य-जाति को, उसके जीवन को विषाक्त कर देने वाले, जो शिक्षक हुए हैं, उन्होंने सब तरफ से इंपोटेंट कर दिया है, सब तरफ से पंगुता सिखायी है, सब तरफ से--जीवन के समस्त तीव्र भावों पर सब तरफ से रोक लगा दी है, सब तरफ से कैद कर दिया आदमी को! तब उसके भीतर कोई भी चीज बलशाली शेष नहीं रह गयी है। अकबर के दरबार में एक सुबह। एक घटना घट गयी। दो राजपूत युवक आये हैं। नंगी तलवारें उनके हाथों में हैं। और अकबर के सिंहासन के सामने वे खड़े हो गये और उन्होंने कहा,"हम दो राजपूत जवान हैं, हम दोनों जुड़वां भाई हैं और हम दोनों तलाश में निकले हैं, नौकरी चाहिए।
अकबर ने पूछा,"तुम्हारी योग्यता क्या है?"
तुम्हारी योग्यता क्या है!
उन्होंने कहा,"हम दो बहादुर हैं, और कोई हमारी योग्यता नहीं है।
अकबर ने कहा,"कोई प्रमाणपत्र, कोई सर्टिफिकेट लाये हो?"
उन दोनों की आंखें ऐसी चमक उठीं जैसे दो अंगारे। उनकी तलवारें म्यानों के बाहर आ गयीं और एक दूसरे की छाती में एक क्षण में प्रविष्ट हो गयीं! एक क्षण बाद दो लाशें पड़ीं थीं और खून के फव्वारे बह गये थे!
अकबर तो घबराया, उसके तो हाथ-पैर कंपने लगे। उसने अपने राजपूत सेनापति को बुलाया और कहा कि यह क्या हुआ? मैंने तो छोटी-सी बात कही थी कि कोई प्रमाणपत्र लाये हो बहादुरी का?
वह राजपूत सेनापति बोला,"गलत बात कही थी आपने। राजपूत से कहीं ऐसा पूछना होता है--बहादुरी का प्रमाणपत्र! और बहादुरी के कोई प्रमाणपत्र होते हैं सिवाय इसके कि कोई जिंदगी दांव पर लगाकर दिखा दे! और क्या प्रमाणपत्र हो सकता है? कोई कागज के सर्टिफिकेट होते हैं बहादुरी के? उन दोनों ने दिखा दिया कि बहादुरी का क्या मतलब होता है। एक ही मतलब होता है कि आदमी मौत के सामने खड़ा हो सकता है निर्भय। और कोई मतलब नहीं होता है बहादुरी का। और बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र नहीं होता। और जो आदमी बहादुरी का प्रमाणपत्र लिये फिरता हो, उस आदमी से ज्यादा कायर कोई आदमी नहीं हो सकता है। असल में प्रमाणपत्र कायर ही ढोते हैं और कोई प्रमाणपत्र नहीं लिये घूमता है।
अकबर ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि वह बात तो मुझे याद रह गयी। मैंने तो जिंदा आदमी देखे थे। एक क्षण में, एक तीव्रता में--एक प्रामाणिक जीवन देखा था, एक क्षण में वह चमक देखी थी, जो आदमी की चमक है।
लेकिन हम सबके जीवन से आदमी की चमक विलीन हो गयी है! न कभी वहां क्रोध ऐसा चमकता है कि बिजली की लौ पैदा हो जाये, न कभी प्रेम। वहां कोई चमक ही नहीं है। हम बिल्कुल बिना चमक के, बिना विद्युत के, बिना बल के, बिना शक्ति के, लोप होते चले गये हैं।

जीवन से हमारा संबंध नहीं हो सकता है। जीवन से संबंधित होने के लिए शास्त्रों का अध्ययन नहीं, जीवन से संबंधित होने के लिए मंदिरों की प्रार्थनाएं नहीं; इन्टैनसिटि, तीव्रता का जीवन चाहिए।
एक ही प्रार्थना है जीवन-देवता के मंदिर में--वह है इन्टैंस लिविंग,
वह है तीव्र जीवन, वह है उद्दाम जीवन; वह है बलशाली, शक्तिशाली जीवन; ऊर्जा से भरा जीवन।
हम सब बिना ऊर्जा के जीते चले जाते हैं! चलते नहीं हैं रास्तों पर, जैसे धक्के खाते हैं!
मेरी दृष्टि में जीवन की कला की पहली शिक्षा जो हो सकती है, वह यह है
कि हम जीवन को कितनी तीव्रता से ले सकें। एक-एक क्षण को तीव्रता से ले सकें। जैसे एक-एक क्षण ही हमारा
जीवन दांव पर लगा हो। कौन जानता है, एक क्षण के बाद जीवन आये न आये, श्वास आये न आये।
सचाई यही है कि एक-एक क्षण जीवन दांव पर लगा हुआ है। अभी आप यहां बैठे हैं इतनी सुस्ती से, इतने आराम से। अगर आपको खबर की जाये कि बस घंटा भर और है आपके जीवन के लिए--वह घंटा क्या होगा? या आपको कहा जाये कि बस एक क्षण और है, यह अंतिम क्षण है। उस क्षण में आप कैसे जीयेंगे?
सचाई भी यही है कि एक आदमी को एक क्षण से ज्यादा जीवन मिला हुआ नहीं है। दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं है। वह आये और न आये। जो क्षण मेरे हाथ में है, वही मेरे हाथ में है। अगर उस क्षण को मैं अपनी पूरी शक्ति से नहीं जीता हूं, तो मैं जीवन की कला कभी नहीं सीख पाऊंगा। अगर मैं भोजन कर रहा हूं, तो कौन जानता है--दोबारा भोजन कर सकूंगा कि नहीं। अगर मैं किसी को प्रेम कर रहा हूं तो कौन जानता है, दोबारा यह प्रेम का क्षण आयेगा या नहीं। अगर मैं आकाश के तारे देख रहा हूं तो कौन कह सकता है कि दोबारा ये तारे मुझे देखने को मिलेंगे या नहीं।
तो एक ही बात हो सकती है, जीवन-कला का पहला सूत्र यही हो सकता है कि जो
भी मैं कर रहा हूं, जिस क्षण से भी मैं गुजर रहा हूं, जो भी मैं हूं, वह मैं समग्रता से हो जाऊं, वह पूर्णता से मैं हो जाऊं। वह मेरा टोटल, वह मेरे समग्र जीवन का केंद्रित अणु बन जाये, क्योंकि उसके बाहर का कुछ पता नहीं है। उसका कुछ भी पता नहीं है।
आज रात जब आप सोयें तो कौन-सा पता है कि कल सुबह आप उठेंगे। तो फिर आज रात पूरी तरह सो लें, क्योंकि दोबारा सोना आयेगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। और अगर मित्र को विदा देने गये हैं तो यह विदा इतना संपूर्ण हो, इतनी परिपूर्ण, कि कौन जाने यह मित्र दोबारा मिलेंगे कि नहीं।
लेकिन हम ऐसे ढीले-ढाले जीते हैं कि वहां हमारे जीवन में क्षणों की तीव्रता का कोई बोध ही नहीं है, कोई स्पष्टता ही नहीं है! हम ऐसे जीते हैं, जैसे हमेशा जीने को हैं! हम ऐसे जीते है--सुस्ती से और आहिस्ता से, जैसे जीवन एक लेजीनेस है, एक आलस्य है, एक प्रमाद है!
जीवन एक तीव्रता है। और जो जितनी तीव्रता से जीता है, वह जीवन के मंदिर में उतना ही गहरा प्रविष्ट हो जाता है।
लेकिन तीव्रता तो सिखायी नहीं जाती। न हम रोते हैं कभी तीव्रता से कि हमारे सारे प्राण आंसू बन जायें। तब वे आंसू भी अदभुत हो जाते हैं, जो पूरे प्राणों से आते हैं। तब उन आंसुओं का मोल बहुत ज्यादा है। तब वे किन्हीं भी हीरे-जवाहरातों, किन्हीं भी मोतियों से ज्यादा बहुमूल्य हैं। वे आंसू जो पूरे प्राणों की झलक लेकर आते हैं, एक बार भी वैसा आदमी जब रो लेता है, तो रोने के द्वार से ही वह जीवन से संबंधित हो जाता है। या कि जब हम मुस्कुरायें तो वह हमारे पूरे प्राणों की मुस्कुराहट हो। तो वह मुस्कराहट भी हमें उसी तीव्रता में ले जाती है।
जीवन का प्रत्येक अनुभव तीव्रता बने, इन्टैनसिटि ले।
लेकिन क्या हमारे जीवन में ऐसी तीव्रता है? नहीं है तो फिर जीवन एक बंधन मालूम होगा। और वह जीवन का कसूर नहीं हैं। वह आपके शिथिल, अतीव्र, ढीले-ढाले, सुस्त और प्रमादी जीवन का लक्षण है। वह आप जीना नहीं सीखे, इस बात का सबूत है।

जीना मेरी दृष्टि में, या कभी भी जब जीवन को आप जानेंगे तो आपकी दृष्टि में भी प्रति पल एक दांव है, एक जुआ है, उस पर सब कुछ लगा देना है। जो सब कुछ लगा देता है, वही सब कुछ को जान भी पाता है। हम कुछ लगाते ही नहीं! हमारा सब झूठा, सब शाब्दिक है। न हमने कभी श्रद्धा की है पूरे प्राणों से, न कभी प्रेम किया है, न कभी हंसे हैं, न कभी रोये हैं।
एक स्मरण मुझे आता है विजयनगर के राज्य में, एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी सत्तरवीं वर्षगांठ राजधानी में मनायी जाती थी, राजदरबार में मनायी जाती थी। दूर-दूर से उसे प्रेम करने वाले और उसे श्रद्धा करने वाले लोग इकट्ठे हुए थे। वे अनेकानेक भेंट लाये थे, बहुमूल्य से बहुमूल्य। राजा आये थे, धनपति आये थे, बड़े कुशल संगीतज्ञ आये थे। सब भेंट लाये थे राजमहल में। दरबार भेंटों से भर गया था।
और तभी द्वार पर एक भिखमंगे ने आकर खबर की कि मैं भी कुछ भेंट लाया हूं। मुझे भी भीतर प्रवेश मिल जाये। लेकिन कपड़े उसके फटे थे, दीन-दरिद्र था। द्वारपाल लौटाने लगे। वह रोने लगा और उसने कहा,"क्या करते हैं, मैं भी कुछ भेंट लाया हूं, मुझे भीतर तो जाने दें।
लेकिन भिखमंगे को कौन भीतर आने दे? लेकिन उसकी आवाज, उसका रोना, उसका चिल्लाना भीतर तक पहुंच गया। संगीतज्ञ को खबर मिली। उसने कहा,"जरूर आ जाने दें--जो भी वह लाया हो, भिखमंगा ही सही। भेंट तो प्रेम की होती है। जरूर कुछ लाया होगा।
वह भिखमंगा ज्यादा उम्र का नहीं था, मुश्किल से चालीस वर्ष उसकी उम्र थी। वह द्वार पर आया, हजारों लोग राजदरबार में थे। वह भीतर लाया गया। वह संगीतज्ञ के चरणों में झुका और उसने कहा, हे परमात्मा, मेरी शेष उम्र संगीतज्ञ को दे दो! और उसी क्षण उसके प्राण निकल गये!
उसी क्षण उसके प्राण निकल गये!
यह ऐतिहासिक घटना है, कोई कहानी नहीं। वे हजारों लोग खड़े रह गये दंग। ऐसी भेंट न तो कभी देखी गयी थी, न सुनी गयी थी। लेकिन पूर्णता के क्षणों में ही--पूर्णता के क्षणों में ही ऐसी संभावना घटित हो सकती है। पूरे प्राण फिर जो भी चाहते हैं, वह अगर घटित हो जाये तो कोई मिरेकल नहीं, कोई चमत्कार नहीं। पूरे प्राणों से उठी प्रार्थना उठने के पहले पूरी हो जाती है और पूरे प्राणों से उठी आकांक्षा शब्द बनने के पहले सत्य हो जाती है और पूरे प्राणों से चाहे गये स्वप्न रूप लेने के पहले यथार्थ हो जाते हैं। लेकिन पूरे प्राणों से न हमने कभी कुछ चाहा है, न पूरे प्राणों से हमने जीने की कला सीखी है! इसलिए जीवन एक बंधन मालूम होता है। पूरे प्राणों से जो जीता है, वह निरंतर स्वतंत्रता में जीता है, वह हमेशा फ्रीडम में जीता है। उसके लिए कोई मोक्ष कहीं नहीं। प्रति पल वह मोक्ष में जीता है। इसलिए कोई मोक्ष स्वर्ग में नहीं है, कोई मोक्ष आकाश में नहीं है। वह है जीवन की परिपूर्णता से जीने की कला में।
रवीन्द्रनाथ मरने को थे। एक मित्र ने कहा, कि रवीन्द्रनाथ अब अंतिम क्षण आ गये, जीवन की संध्या आ गयी। अब तुम प्रार्थना करो प्रभु से कि जीवन-मरण से छुटकारा दिला दे, आवागमन से मुक्त कर दे!
रवीन्द्रनाथ ने आंखें खोल लीं, जो बंद थीं। और वे हंसने लगे। और उनने कहा, रवीन्द्रनाथ ने कहा अपने मित्र को कि परमात्मा ने जो जीवन मुझे दिया था, वह इतना धन्य हुआ, मैं उसे पाकर इतना कृतार्थ हुआ कि मैं किस मुंह से कहूं कि मुझे जीवन से छुटकारा दिला दो? एक ही प्रार्थना अंतिम क्षण में मेरे हृदय में होगी कि अगर मुझमें जरा भी पात्रता हो तो हे प्रभु, मुझे बार-बार अपनी दुनिया में वापिस भेज देना। अगर जरा-सी भी पात्रता हो मुझमें तो मुझे बार-बार अपनी दुनिया में भेज देना। तेरी दुनिया बहुत सुंदर थी। और अगर कहीं कोई कुरूपता मुझे दिखी होगी तो वह मेरे देखने का दोष रहा होगा, वह मेरी भूल रही होगी। और तेरी दुनिया में बहुत फूल थे और कांटे गड़ गये होंगे तो मेरी कोई गलती रही होगी। अगली बार आऊं तो और समर्थ होकर आऊं, ताकि तेरे जीवन के आनंद को और भी अनुभव कर सकूं।
गांधी ने जीवन के अंतिम दिनों में एक अदभुत प्रयोग किया था। शायद आपके ख्याल में न हो, क्योंकि गांधी के शिष्यों ने उसे छिपाने की पूरी कोशिश की। उस प्रयोग की चर्चा पूरे मुल्क में नहीं हो सकी। गांधी ने जीवन

के अंतिम दिनों में एक छोटा-सा प्रयोग किया था। शायद उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग था। वे एक नग्न युवती को लेकर रात सोने लगे थे, ताकि वे यह पूरा का पूरा अनुभव कर सकें कि उनके मन में कहीं अब भी कोई वासना की रूपरेखा है, कहीं कोई अब भी शरीर का आकर्षण शेष तो नहीं रह गया है। प्राण जब पूरे के पूरे प्रभु की तरफ बहने लगे हों तो शरीर की तरफ बहने को मन में कोई भाव शेष नहीं रह जाता है। इसका परीक्षण कर लें, पहचान कर लें, खोजबीन कर लें।
लेकिन इसके पहले कि प्रयोग करें, उन्होंने अपने कोई बीस निकटतम मित्रों को पत्र लिखे और उनसे पूछा कि मैं यह प्रयोग करने को हूं। इसके पहले कि मैं प्रयोग करूं, तुमसे पूछ लेना चाहता हूं कि तुम राजी हो, सहमत हो, तुम्हारा कोई एतराज, तुम्हारा कोई विरोध तो नहीं। बीस जो पत्र लिखे थे, उन्नीस पत्रों का जो उत्तर आया, उसकी इबारत करीब-करीब ऐसी थी कि आप तो बहुत बड़े महात्मा हैं, आप जो भी करते हैं, ठीक करते हैं, लेकिन इस प्रयोग को न करें तो बड़ी कृपा होगी! इससे बड़ी बदनामी हो जायेगी! इससे यह होगा, इससे वह 8 होगा! सभी का रूप यही था कि आप तो बहुत बड़े महात्मा है, लेकिन वह"लेकिन" सबके पीछे आ जाता था!
गांधी पढ़ते और पत्र को एक तरफ रख देते और कहते, जहां"लेकिन" आ गया, वहां पहले कही गयी सारी बात झूठ हो गयी, मिथ्या हो गयी। आप बड़े महात्मा हैं लेकिन अब लेकिन की क्या जरूरत है बड़े महात्मा के साथ? अच्छा होता कि कहते कि आप छोटे आदमी हैं इसलिए, वह कम से कम सच होता, ईमानदारी का होता, आथेंटिक होता, प्रामाणिक होता।
लेकिन उन बीस पत्रों में एक पत्र जरूर था। जिसे गांधी हाथ में उठाकर खुशी के आंसुओं से भर गये। वह जे. बी. कृपलानी ने, उस पत्र के उत्तर में लिखा था कि आप क्या मुझसे पूछते हैं, मैं तो हैरान हो गया। अगर मैं अपनी आंखों से आपको व्यभिचार करते भी देख लूं तो पहला शक मुझे अपनी आंख पर होगा, आप पर नहीं। पहला शक मुझे अपनी आंखों पर होगा, आप पर नहीं! और आप मुझसे पूछते हैं तो मैं हैरान हो गया हूं। मैं आपसे पूछता तो ठीक था। ऐसे लोग, जीवन को इस भांति देखने वाले लोग।
लेकिन हम अपनी आंख पर शक नहीं करते, हम पूरे परमात्मा पर ही शक कर लेते हैं! हम कहते हैं, यह जीवन ही बंधन है! हम कहते हैं, यह जीवन ही असार है! हम कहते हैं, यह जीवन ही बुरा है! और एक बार भी ख्याल नहीं आता कि कहीं मेरी आंख ही तो कुछ गलत नहीं देखती, कहीं मेरी आंख ही तो बुरी नहीं।
धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जिसे अपनी आंख पर शक आता है, अपने चित्त पर शक आता है, अपने होने के ढंग पर शक आता है, अपने पर संदेह आता है-- लेकिन इस विराट जीवन पर नहीं। वह आदमी धार्मिक है। वह आदमी रिलीजस है। और वह आदमी जीवन की कला सीख सकता है। क्योंकि जिसे स्वयं पर संदेह आता है, वह स्वयं को बदलने का कोई उपाय कर सकता है।
और अगर जीवन पर संदेह आता है, तब तो एक ही उपाय है कि पीठ करो जीवन की ओर--और भागो, पलायन करो, छोड़ो, निषेध करो, त्याग करो! धीरे-धीरे ग्रेजुअली मरने का उपाय करो, जीवन से हटो और मृत्यु की तरफ जाओ!
जीवन की कला की इसलिए पहली स्मरणीय बात यह है कि मैं कहीं गलत हूं, अगर जीवन मुझे बंधन मालूम होता है, दुख मालूम होता है, पीड़ा मालूम होती है! मैं कहां गलत हूं? तो मेरे गलत होने की सबसे पहली भूमि है कि मैं औपचारिक हूं, मैं फार्मल हूं; आथेंटिक नहीं, प्रामाणिक नहीं। मेरा होना एक झूठ है। मेरे शब्द झूठे हैं, मेरे इशारे झूठे हैं, मेरी आंखें झूठ कहती हैं, मेरा सब कुछ झूठ है। इस पर चिंतन, इस पर ध्यान बहुत जरूरी है कि मैंने कहीं कोई झूठा व्यक्तित्व, कोई फाल्स पर्सनाल्टी तो खड़ी नहीं कर ली?
हम सबने खड़ी कर ली है। बचपन से ही जहर के बीज बोये जाते हैं, कि व्यक्तित्व झूठा हो जाता है। लेकिन जब होश आ जाये, तभी व्यक्तित्व को सत्य बनाने की दिशा में कुछ किया जा सकता है। तो मैं आपसे यह कहूंगा कि एक-एक पल को प्रामाणिक रूप से जीने की हिम्मत और साहस और कोशिश; स्मरणपूर्वक, माइंडफुली-- एक-एक क्षण को पूरी तीव्रता से जीने का प्रयास साधना का अनिवार्य अंग है। तो अब जब रोयें तो परिपूर्णता से, पूरे प्राणों से। हंसें तो पूरे प्राणों से। मैत्री तो पूरे प्राणों से। भोजन भी तो पूरे

प्राणों से। स्मरण भी तो पूरे प्राणों से; सोयें भी, उठें भी तो पूरे प्राणों से।
जो प्रति पल आ रहा है, वह दोबारा नहीं आयेगा। वह एक ही बार अनुभव से गुजरना है। उस रास्ते से दोबारा गुजरने की कोई संभावना नहीं है। वह पल फिर न आयेगा, वह अवसर फिर न आयेगा। तो जिसे एक बार गुजरना है, वह पूरे होश से, पूरा जागा हुआ, पूरे प्राणों से गुजर जाये। मेरा टोटल व्यक्तित्व, मेरा समग्र व्यक्तित्व समाहित हो जाये, संलग्न हो जाये, एकतान हो जाये। तो धीरे-धीरे आपको दिखायी पड़ना शुरू होगा कि जीवन के बंधन गिरने लगे। बंधन आपके शिथिल जीने में थे। तीव्रता से जीते ही तत्क्षण गिर जाते हैं। लेकिन प्रयोग करना पड़े। साधना करनी पड़े, उस दिशा में कुछ कदम उठाने पड़ें, उस दिशा में कुछ स्मरणपूर्वक रोज-रोज, प्रति पल होश रखना पड़े कि मैं कहीं झूठा जीना तो शुरू नहीं कर रहा हूं।
पति है, वह अपनी पत्नी से रोज कहे जाता है कि"मैं तुझे प्रेम करता हूं!" और जब कहता है, तब उसे पता भी नहीं है कि वह क्या कर रहा है! शब्द ऐसे कह रहा है, जैसे किसी ग्रामोफोन रिकार्ड से निकलते हों, जिनमें न कोई प्राण है, न कोई अर्थ है। पत्नी भी जानती है। वह भी जानता है। पत्नी भी कहे जा रही है कि"हम तुम्हें प्रेम करते हैं, हम जान लगा देंगे, तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं जी सकते!"
और इन शब्दों के पीछे प्राणों की कोई गवाही नहीं है। ये शब्द झूठे हैं। मत कहें। चुप बैठे रहें, वह बेहतर है। लेकिन मत कहें इनको। इनको कहकर आप सारे व्यक्तित्व को जाल में कस रहे हैं अपने हाथ से।
जिनके प्रति हमें कोई श्रद्धा नहीं, वहां हम सिर झुकाये चले जा रहे हैं! जिन मंदिरों में हमें पत्थर दिखायी पड़ते हैं, वहां हम पूजा किये चले जा रहे हैं! जिस शास्त्रों में हमें किसी सत्य का कोई दर्शन नहीं हुआ, उन्हें हम सिर पर लिये बैठे हैं! सारा व्यक्तित्व झूठा है।
तो इस झूठे व्यक्तित्व से जीवन के सत्य की तरफ कैसे कोई मार्ग बने, कैसे कोई द्वार खुले, कैसे कोई कदम उठे? जिस मंदिर में आप हाथ जोड़कर गये हैं, सच में हाथ आपके जुड़े थे? उस मंदिर में किसी प्रभु का कभी कोई अनुभव हुआ था? फिर क्यों गये उस मंदिर में? फिर किसने कहा था कि उन मूर्तियों के सामने खड़े हो जायें?
एक फकीर एक रात जापान के एक मंदिर में ठहरा हुआ है। सर्द रात है, बहुत ठंडी रात है। फकीर के पास कपड़े भी नहीं। मंदिर के पुजारी ने दया करके उसे भीतर ठहरा लिया। आधी रात पुजारी की नींद खुली तो घबराकर देखा कि मंदिर के बीच आंगन में आग जल रही हैं, फकीर आंच ताप रहा है!
वह भागा हुआ गया और कहा,"यह क्या कर रहे हो?" वहां जाकर तो पागल हो गया।
भगवान बुद्ध की तीन मूर्तियां थीं लकडिय़ों की। उनमें से एक को वह जलाकर आंच ताप रहा था! उस पुरोहित ने कहा, कि पागल,"यह क्या कर रहा है? भगवान की मूर्ति जला रहा है? भगवान को जला रहा है?"
वह फकीर पास में पड़ी हुई एक लकड़ी का टुकड़ा उठाकर जल गयी मूर्ति की राख में घुमाने लगा, कुरेदने लगा! उस पुरोहित ने पूछा,"आप क्या कर रहे हैं यह? उसने कहा,"मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं।"
उस पुजारी ने सिर पर हाथ ठोक लिया, उसने कहा, मैं पागल को ठहराकर दिक्कत में पड़ गया। अब लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं?
तो वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा,"जब लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां ही नहीं होती तो भगवान कैसे हो सकते होंगे? तुम जाओ, अभी रात बहुत बाकी है, दो मूर्तियां और रखी हैं, वे भी उठा लाओ! तुम भी तापो, मैं भी तापता हूं!
रात ही उस फकीर को मंदिर के बाहर निकाल दिया गया, उस सर्द रात में! क्योंकि लकड़ी की मूर्ति में भगवान दिखायी पड़ते थे और इस जीते-जागते भगवान को सर्दी लगेगी बाहर, इसकी फिक्र नहीं की गयी! उसे बाहर निकाल दिया गया। सुबह जब पुजारी उठा, मंदिर के बाहर गया तो देखा कि सड़क के किनारे जो मील का पत्थर लगा है, उसके पास बैठकर वह फकीर हाथ जोड़े हुए ध्यान कर रहा है। उसे फिर उतनी ही हैरानी हुई, जैसी रात हो गयी थी। उसके पास जाकर उसे

हिलाया और कहा,"पागल, यह क्या कर रहा है? पत्थर को हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा है?"
उस फकीर ने कहा, मुझे सभी जगह भगवान ही दिखायी पड़ते हैं--सभी जगह! रात मैंने इसीलिए मूर्ति जलायी थी कि मैं देखना चाहता था कि तुम्हें भगवान कितने गहरे दिखायी पड़ते हैं। अस्थियों के लिए तुम भी राजी न हो सके। तुम्हारे ही तर्क से पता चला कि भगवान तुम्हें बिल्कुल दिखायी नहीं पड़ते थे। वह मूर्ति झूठी थी तुम्हारे लिए। वे जुड़े हुए हाथ झूठे थे। वह की गयी पूजा झूठी थी।
रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर में पुजारी की जगह मिली थी। बीस रुपये महीने
की नौकरी थी, लेकिन दो-चार आठ दिन में ही मुश्किल शुरू हो गयी। कमेटी थी मंदिर की, वह परेशान हो गयी। कमेटी जुड़ी और उसने कहा कि यह आदमी तो गड़बड़ मालूम होता है। ठीक आदमी हमेशा गड़बड़ मालूम होते हैं! बड़ी शिकायतें आ गयी हैं, चार ही दिन में--पूजा बड़ी गड़बड़ चल रही है।
क्या-क्या शिकायतें थीं।
शिकायतें बड़ी साफ थीं और ठीक थीं। खबर आयी थी कि रामकृष्ण फूलों को सूंघकर मूर्ति को चढ़ाते हैं, खबर आयी थी कि प्रसाद को पहले चख लेते हैं, फिर भगवान को लगाते हैं! तो कहा, यह सब क्या गड़बड़ हो रहा है? यह कोई पूजा है।
रामकृष्ण को बुलाया--कि सुना गया है कि तुम फूल पहले सूंघ लेते हो फिर मूर्ति को चढ़ाते हो?
रामकृष्ण ने कहा कि मैं वैसे चढ़ा ही नहीं सकता। पता नहीं, फूल में सुगंध हो या न हो।
कहा कि, सुना है कि तुम पहले भोजन चख लेते हो फिर तुम भगवान को लगाते हो?
उन्होंने कहा, मेरी मां भी ऐसा ही करती थी। पहले चख लेती थी, फिर मुझे देती थी। मैं बिना चखे नहीं दे सकता। पता नहीं, भोजन देने लायक बना भी हो या न बना हो।
यह आथेंटिक, यह एक प्रामाणिक पूजा हो गयी। लेकिन हमारी सारी पूजा झूठी और बकवास और धोखा है। कुछ दिखायी नहीं पड़ता वहां! हाथ जोड़े खड़े हैं अंधेरे में! शब्द झूठे हैं! प्रार्थना झूठी है! प्रेम झूठा है! और फिर पूछते हैं कि जीवन बंधन है? बंधन जीवन नहीं, मिथ्या व्यक्तित्व बंधन है। वह जो फाल्स पर्सनैलटि है, वह जो हमने सब झूठा कर रखा है, वह बंधन है। तोड़ें--औपचारिकता को तोड़ें, छोड़ें।
प्रामाणिकता को, जीवंत अनुभव को तीव्रता से जीयें। उसको सच्चाई में जीना शुरू करें, फिर आप पायेंगे कि छोटे-छोटे काम पूजा हो गये। उठना-बैठना पूजा हो गयी। फिर आप पायेंगे, किसी का हाथ हाथ में लेना पूजा हो गयी। फिर आप पायेंगे, किसी की आंख में एक क्षण प्रेम से झांक लेना, प्रार्थना हो गयी। फिर आपको दिखायी पड़ेगा, वह तो सब तरफ मौजूद होने लगा। उसका मंदिर तो सब तरफ उठने लगा। फिर तो कण-कण में, पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में उसकी झलक आने लगी। फिर तो सब उसी के शब्द हो जाते हैं।
लेकिन जो प्रामाणिक रूप से जीता है, वह प्रामाणिक रूप से जीवन के सत्य
से संबंधित हो जाता है।
हम अप्रामाणिक रूप से जीते हैं, इसलिए जीवन से संबंध नहीं होता है।
अभी तो इतना ही। फिर और कुछ दो-चार प्रश्न इस संबंध में होंगे। तो कल उनकी बात करेंगे। एक छोटी बात और, फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। ध्यान के संबंध में भी, इसी संदर्भ में, यह समझ लेना जरूरी है कि वह प्रामाणिक है या अप्रामाणिक। वह हम अपने पूरे प्राणों से बैठ रहे हैं या बस बैठ गये हैं, क्योंकि और सब लोग बैठ गये हैं। अगर इसी भांति आप बैठ गये हैं--चूंकि और सब लोग बैठे हैं, इसलिए हम भी बैठे हैं! चूंकि शिविर में आये हैं, इसलिए बैठे हैं! चूंकि अब आ ही गये हैं, इसलिए बैठ ही जाना चाहिए। अगर इस तरह बैठ रहे हैं तो उस ध्यान में कहीं कोई गति नहीं होगी।
लेकिन पूरे प्राणों से, पूरा दांव लगाकर--कौन जानता है कि ध्यान के बाद आप उठ पायें या न उठ पायें। कौन जानता है, यह क्षण अंतिम हो। और कहीं यह

क्षण हाथ से खो जाये तो हमेशा के लिए खो जाये। कौन कह सकता है? तो इस भांति कि जैसे हो सकता है, यह अंतिम क्षण हो।
एक--एक युवा संन्यासी अपने गुरु के पास पहुंचा था। उस गुरु के उस आश्रम का नियम था कि जब भी कोई व्यक्ति आये तो पहले तीन परिक्रमा करे गुरु की, फिर सात बार पैर छुए, फिर बैठकर जिज्ञासा करे! वह युवा पहुंचा। उसने जाकर कंधे पकड़ लिए सीधे और कहा, कि मैं कुछ पूछने आया हूं!
उस गुरु ने कहा, कैसे बदतमीज हो, कैसे अशिष्ट हो? तुम्हें पता भी नहीं,
कि पहले तीन परिक्रमा, सात बार चरण स्पर्श--फिर बैठो, फिर पूछो। ऐसे उत्तर नहीं दिये जाते।
उस युवक ने कहा कि"तीन बार नहीं, मैं तीन सौ परिक्रमायें करूंगा और सात बार नहीं, सात सौ बार पैर छुऊंगा, लेकिन क्या आप विश्वास दिलाते हैं कि मैं तीन चक्कर लगाऊं, उसके बाद भी जिंदा बचूंगा? आप विश्वास दिलाते हैं, आप जिम्मा लेते हैं मेरे बचने का? मेरा उत्तर पहले है, मेरा प्रश्न पहले है। मुझे पहले उत्तर मिल जाये, फिर फुर्सत से आपके चक्कर लगाऊं, पैर छुऊं।" उस गुरु ने अपने और शिष्यों से कहा,"यह पहली दफा एक आथेंटिक, पहली दफा
एक प्रामाणिक प्रश्न पूछने वाला आदमी आ गया है। अब इसे उत्तर देने की भी जरूरत नहीं है। इसका प्रश्न ही काफी है। उत्तर तक पहुंचा देगा।
तो ध्यान इतनी संपूर्णता से, समग्रता से हो, तो इसी क्षण हो सकता है-- अभी और यहीं, इसी क्षण हो सकता है, अगर पूरे प्राण इकट्ठे हो जायें। स्वामी रामतीर्थ पढ़ते थे, गणित के विद्यार्थी थे। और हमेशा की एक आदत थी--परीक्षा में अगर बारह प्रश्न आते और लिखा होता कि कोई भी सात हल करें तो वे बारह ही हल करते और लिखते कि कोई भी सात जांच लें! वैसी आदत थी। हमेशा की आदत थी। जितने प्रश्न परीक्षक पूछता, सारे हल कर देते और, ऊपर जैसा नोट परीक्षक देता हैं कि दस दिये हैं प्रश्न, कोई पांच हल करें; वैसा ऊपर नोट लिखते कि दस कर दिये हैं प्रश्न, कोई भी पांच जांच लें! उतना विश्वास भी था कि वे सभी सही हैं।
एम. ए. की गणित की अंतिम परीक्षा दे रहे थे और सांझ सात बजे से एक प्रश्न हल करना शुरू किया। रात के तीन बजे गये, और प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। साथ जो कमरे में उनका दूसरा सहपाठी है, वह कहने लगा, तुम पागल हो गये हो। सुबह करीब आयी जाती है और एक प्रश्न पर सारी रात खराब कर रहे हो! कौन कहता है कि यह प्रश्न आयेगा भी। दूसरों की फिक्र भी कर लो।" रामतीर्थ ने कहा,"और अगर यह आ गया तो क्या आज पहली दफा अंतिम परीक्षा में मुझे सारे प्रश्न हल नहीं करने पड़ेंगे? पांच ही करके आ जाऊंगा? नहीं, नहीं, यह मुझे हल करना ही है। फिर परीक्षा का सवाल नहीं है। जो प्रश्न हल नहीं हो रहा है, उसने मेरे पूरे प्राणों को चुनौती दे दी है। उसे तो हल करना ही पड़ेगा।
साढ़े तीन बज गये, चार बज गये, अब तो दो ही घंटे बचे हैं सुबह के। पूरी रात खो गयी। वह प्रश्न हल नहीं होता। वह मित्र घबरा गया है--साथी, और कह रहा है, क्या पागलपन कर रहे हो?
तभी रामतीर्थ उठे हैं और जाकर उन्होंने अपनी पेटी से एक छुरा निकाल लाये। छुरे को टेबल पर रख लिया। घड़ी में पंद्रह मिनिट बाद का अलार्म भर दिया और अपने मित्र से कहा, कि भाई नमस्कार! अगर पंद्रह मिनिट में यह सवाल हल नहीं हो गया तो छुरा छाती के भीतर हो जायेगा।"
मित्र ने कहा,"क्या बिल्कुल ही पागल हुए जा रहे हो! इस सवाल से ऐसा क्या लेना-देना है?"
लेकिन रामतीर्थ सुनने के बाहर हो गये थे! पंद्रह मिनिट का अलार्म भर दिया था। घड़ी टिक-टिक आगे बढ़ने लगी है। छुरा सामने गपा हुआ है नंगा और वे सवाल हल करने में लग गये। सर्द रात है। ठंडी हवा है। माथे से तीन मिनट के भीतर पसीना चूने लगा! सारे शरीर से पसीने की धाराएं बहने लगीं! पांच मिनिट पूरे नहीं हो पाये हैं कि सवाल हल हो गया है। जो छह-सात घंटे से परेशान किये हुआ था, वह सवाल पांच मिनिट के भीतर हल हो गया। माथा पोंछा उन्होंने और अपने मित्र से कहा, कि"सवाल हल हो गया है।"

उसके मित्र ने कहा,"यह तो तरकीब बड़ी अच्छी है! अगली बार जब कभी ऐसी दिक्कत मुझे हुई, मैं भी छुरा रख लूंगा, मैं भी अलार्म भर दूंगा। और किसको छुरा मारना है? अलार्म बज भी जायेगा और नहीं भी हुआ तो हर्ज भी क्या है।" तो रामतीर्थ ने कहा,"तू समझता है कि यह कोई तरकीब हुई। यह तरकीब न थी। किसी को धोखा नहीं दिया जा रहा था। यह तो निश्चित था कि पंद्रह मिनिट पूरे होते और छुरा छाती के भीतर हो जाता।
जब ऐसी समग्रता से कोई व्यक्ति किसी प्रश्न के सामने खड़ा हो जाये तो प्रश्न की कोई हस्ती है, कोई हैसियत है? कोई ताकत है? जब इतने प्राणों को पूरा का पूरा कोई दांव पर लगा दे तो किस चीज की ताकत है? कौन-सा प्रश्न है, जो रुकेगा? कौन-सी समस्या है, जो रुकेगी? कौन सी उलझन है, जो रुकेगी? कौन-सी अशांति है, जो रुकेगी? जीवन की कौन-सी बाधा है, जो रुक सकती है? समग्रता से जीवन को दांव पर लगाने वाले लोगों के सामने न कभी कुछ आया
है, न कभी आ सकता है। सब हट जाता है। सब द्वार खुल जाते हैं। सब ताले टूट जाते हैं। लेकिन हम कभी समग्रता से जीने की कोई--कोई दृष्टि ही हमारे पास नहीं है। ध्यान भी केवल उनके लिए कुंजी हो सकती है, जो ध्यान को पूरी प्रामाणिकता से, समग्रता से एक दांव बना लेते हैं। सब कुछ लगा देते हैं-- पूरी शक्ति--सब, सारी ऊर्जा।
यह बात और मुझे आपसे कहनी है कि ध्यान तो जीवन के समस्त खजानों की कुंजी है। लेकिन वह कुंजी उन्हीं को उपलब्ध होती है, जो उसे पाने के लिए पूरी प्यास को प्रकट करते हैं, पूरी प्रार्थना को, पूरे प्राणों को सामने ले आते हैं। आज ही हो सकता है। इसी वक्त हो सकता है। करने की भी जरूरत नहीं। मेरे कहते-कहते भी हो सकता है।
अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
तो अपनी-अपनी जगह बना लें, क्योंकि लेटना पड़ेगा। चुपचाप, बिल्कुल आवाज नहीं। जरा भी बात नहीं। अपनी-अपनी जगह ले लें। और आज पूरे प्राणों से, क्योंकि एक रात आज, एक रात कल, फिर विदा हो जाना है
जरा भी हंसिये नहीं, जरा भी बात मत करिये, क्योंकि वह सब आपके लिए नुकसान की बात होगी
जगह ऊंची-नीची हो तो ऐसे लेटिये कि सिर आपका ऊंचाई की तरफ रहे कोई किसी को छूता हुआ न हो, थोड़े हट जायें, थोड़ी जगह बाहर आ जायें हां, बीच में तकलीफ हो तो थोड़ा बाहर निकल आयें। जगह अपनी-अपनी जगह ले लें चुपचाप कहीं भी। कहीं भी चुपचाप लेट जायें
ठीक हैं, मैं मान लेता हूं, आपने अपनी जगह बना ली है। जल्दी अपनी जगह बना लें। चुपचाप लेट जायें। यहां-वहां न घूमें। बैठ जायें, लेट जायें सबसे पहली पूरी प्रामाणिकता से--मैं ध्यान में जा रहा हूं, इस भाव को ठीक से अपने चित्त के केंद्र पर ले लें। पूरी शक्ति से, पूरी प्राणों से, पूरी आत्मा से--मैं शून्य में प्रवेश कर रहा हूं।
यह मेरा एक प्रामाणिक संकल्प है। यह कोई औपचारिक बात नहीं कि मैं ध्यान करने बैठ गया हूं। जैसे इस पर ही मेरी पूरी जिंदगी लगी हुई है। मेरी पूरी जिंदगी और मृत्यु का सवाल है। इस भाव को चित्त के केंद्र पर ले लें। फिर आंख बंद कर लें।
सारे शरीर को शिथिल छोड़ दे। आंख बंद कर लें, सारे शरीर को शिथिल छोड़ दें। इतनी अदभुत रात है कि जरूर कुछ हो सकेगा। इतनी आपकी प्यास है कि जरूर कुछ हो सकेगा। कौन रोक सकता है होने से। शरीर को शिथिल छोड़ दें। आंख बंद कर लें।
अब मैं थोड़े से सुझाव देता हूं। मेरे साथ पूरे प्राणों से अनुभव करें, फिर वैसा ही होता चला जायेगा।
इसके बाद सारे सुझाव तीसरे प्रवचन के अंत में दिये सुझावों के अनुरूप हैं। शरीर को शिथिल करना है, श्वास को शांत करना है, मन को मौन करना है और अंत में दस मिनिट के लिए पूर्ण विश्राम में चले जाना है।

नेति-नेति
छठवां प्रवचन

प्रेम संबंध नहीं--चित्त-दशा है

पहले दिवस की चर्चा में जीवन के प्रति विस्मय-विमुग्ध भाव चाहिए, इस संबंध में थोड़ी-सी बात मैंने आपसे कही थी। दूसरे दिन की चर्चा में जीवन के प्रति रस-विभोर भाव चाहिए, इस संबंध में थोड़ी-सी बातें कहीं हैं। और आज तीसरी चर्चा में जीवन के प्रति प्रेम-निमग्न मन चाहिए, इस संबंध में कुछ आपसे कहूंगा। प्रेम तीसरा सूत्र है।
ज्ञान से जहां नहीं पहुंचता मनुष्य, वहां प्रेम से पहुंच जाता है।
लेकिन प्रेम का हमें कोई पता ही नहीं है। प्रेम के नाम से जो कुछ हम जानते हैं, वे सब झूठे सिक्के हैं। झूठे सिक्के इतने ज्यादा प्रचलित हैं कि असली सिक्कों को पहचानना ही कठिन हो गया है।
प्रेम शब्द जितना मिसअंडरस्टुड है, जितना गलत समझा जाता है, उतना शायद मनुष्य की भाषा में कोई दूसरा शब्द नहीं! प्रेम के संबंध में जो गलत-समझी है, उसका ही विराट रूप इस जगत के सारे उपद्रव, हिंसा, कलह, द्वंद्व और संघर्ष हैं। प्रेम की बात इसलिए थोड़ी ठीक से समझ लेनी जरूरी है।
जैसा हम जीवन जीते हैं, प्रत्येक को यह अनुभव होता होगा कि शायद जीवन
के केंद्र में प्रेम की आकांक्षा और प्रेम की प्यास और प्रेम की प्रार्थना है। जीवन का केंद्र अगर खोजना हो, तो प्रेम के अतिरिक्त और कोई केंद्र नहीं मिल सकता है।
समस्त जीवन के केंद्र में एक ही प्यास है, एक ही प्रार्थना है, एक ही अभीप्सा है--वह अभीप्सा प्रेम की है।
और वही अभीप्सा असफल हो जाती हो तो जीवन व्यर्थ दिखायी पड़ने लगे-- अर्थहीन, मीनिंगलेस, फस्ट्रेशन मालूम पड़े, विफलता मालूम पड़े, चिंता मालूम पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं है। जीवन की केंद्रीय प्यास ही सफल नहीं हो पाती है! न तो हम प्रेम दे पाते हैं और न उपलब्ध कर पाते हैं। और प्रेम जब असफल रह जाता है, प्रेम का बीज जब अंकुरित नहीं हो पाता, तो सारा जीवन व्यर्थ-व्यर्थ, असार-असार मालूम होने लगता है।
जीवन की असारता प्रेम की विफलता का फल है।
जब प्रेम सफल होता है, तो जीवन सार बन जाता है। प्रेम विफल होता है तो जीवन प्रयोजनहीन मालूम होने लगता है। प्रेम सफल होता है, जीवन एक सार्थक, कृतार्थता और धन्यता में परिणित हो जाता है।
लेकिन यह प्रेम है क्या? यह प्रेम की अभीप्सा क्या है? यह प्रेम की पागल प्यास क्या है? कौन-सी बात है, जो प्रेम के नाम से हम चाहते हैं और नहीं उपलब्ध कर पाते हैं?
जीवन भर प्रयास करते हैं? सारे प्रयास प्रेम के आसपास ही होते हैं। युद्ध प्रेम के आसपास लड़े जाते हैं। धन प्रेम के आसपास इकट्ठा किया जाता है। यश की सीढिय़ां प्रेम के लिए पार की जाती हैं। संन्यास प्रेम के लिए लिया जाता है। घर-द्वार प्रेम के लिए बसाये जाते हैं और प्रेम के लिए छोड़े जाते हैं।
जीवन का समस्त क्रम प्रेम की गंगोत्री से निकलता है।
जो लोग महत्वाकांक्षा की यात्रा करते हैं, पदों की यात्रा करते हैं,
यश की कामना करते हैं, क्या आपको पता है, वे सारे लोग यश के माध्यम से जो प्रेम से नहीं मिला है, उसे पा लेने की कोशिश करते हैं! जो लोग धन की तिजोरियां भरते चले जाते हैं, अंबार लगाते जाते हैं, क्या आपको पता है, जो प्रेम से नहीं मिला, वह पैसे के संग्रह से पूरा करना चाहते हैं! जो लोग बड़े युद्ध करते हैं और बड़े राज्य जीतते हैं, क्या आपको पता है, जिसे वे प्रेम में नहीं जीत सके, उसे भूमि जीतकर पूरा करना चाहते हैं!
शायद आपको ख्याल में न हो, लेकिन मनुष्य-जीवन का सारा उपक्रम, सारा श्रम, सारी दौड़, सारा संघर्ष अंतिम रूप से प्रेम पर ही केंद्रित है। लेकिन यह प्रेम की अभीप्सा क्या है? पहले इसे हम समझें तो और बात समझी जा सकेगी।

जैसा मैंने कल कहा, मनुष्य का जन्म होता है, मां से टूट जाता है संबंध शरीर का। अलग एक इकाई अपनी यात्रा शुरू कर देती है। अकेली एक इकाई जीवन के इस विराट जगत में अकेली यात्रा शुरू कर देती है! एक छोटी-सी बूंद समुद्र से छलांग लगा गयी है और अनंत आकाश में छूट गयी है। एक छोटे-से रेत का कण तट से उड़ गया है और हवाओं में भटक गया है। मां से व्यक्ति अलग होता है। एक बूंद टूट गयी सागर से और अनंत आकाश में भटक गयी है। वह बूंद वापस सागर से जुड़ना चाहती है। वह जो व्यक्ति है, वह फिर समष्टि के साथ एक होना चाहता है। वह जो अलग हो जाना है, वह जो पार्थक्य है, वह फिर से समाप्त होना चाहता है। प्रेम की आकांक्षा--एक हो जाने की, समस्त के साथ एक हो जाने की आकांक्षा है।
प्रेम की आकांक्षा, अद्वैत की आकांक्षा है।
प्रेम की एक ही प्यास है, एक हो जाये सबसे; जो है, समस्त से संयुक्त हो जाये।
जो पार्थक्य है, जो व्यक्ति का अलग होना है, वही पीड़ा है व्यक्ति की।
जो व्यक्ति का सबसे दूर खड़े हो जाना है, वही दुख है, वही चिंता है। वापस बूंद सागर के साथ एक होना चाहती है।
प्रेम की आकांक्षा समस्त जीवन के साथ एक हो जाने की प्यास और प्रार्थना है। प्रेम का मौलिक भाव एकता खोजना है।
लेकिन जिन-जिन दिशाओं में हम यह एकता खोजते हैं, वहीं-वहीं असफल हो जाते हैं। जहां-जहां यह एकता खोजी जाती है, वहीं-वहीं असफल हो जाते हैं। शायद जिन मार्गों से हम एकता खोजते हैं, वे मार्ग ही अलग करने वाले मार्ग हैं, एक करने वाले मार्ग नहीं। इसलिए प्रेम के नाम से झूठे सिक्के प्रचलित हो गये हैं।
मनुष्य जो एकता खोजता है, वह शरीर के तल पर खोजता है। लेकिन शायद आपको पता नहीं, पदार्थ के तल पर जगत में कोई भी एकता संभव नहीं है। शरीर के तल पर कोई भी एकता संभव नहीं है। पदार्थ अनिवार्य रूप से एटामिक है, आणविक है और एक-एक अणु अलग-अलग है। दो अणु पास तो हो सकते हैं, लेकिन एक नहीं हो सकते। निकट हो सकते हैं, लेकिन एक नहीं हो सकते। दो अणुओं के बीच अनिवार्य रूप से जगह शेष रह जायेगी, फासला, डिस्टेंस शेष रह जायेगा।
पदार्थ की सत्ता एटामिक है, आणविक है। प्रत्येक अणु दूसरे अणु से अलग है। हम लाख उपाय करें तो भी दो अणु एक नहीं हो सकते। उनके बीच में फासला है, उनके बीच में दूरी शेष रह ही जायेगी। ये हाथ हम कितने ही निकट ले आयें, ये हाथ हमें जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन ये हाथ फिर भी दूर हैं। इनके जोड़ में भी फासला है। इन दोनों हाथ में बीच में दूरी है, वह दूरी समाप्त नहीं हो सकती।
प्रेम में हम किसी को हृदय से लगा लेते हैं। दो देह पास आ जाती हैं, लेकिन दूरी बरकरार रहती है, दूरी मौजूद रह जाती है। इसलिए हृदय से लगाकर भी किसी को पता चलता है कि हम अलग-अलग हैं, पास नहीं हो पाये हैं, एक नहीं हो पाये हैं। शरीर को निकट लेने पर भी, वह जो एक होने की कामना थी, अतृप्त रह जाती है। इसलिए शरीर के तल पर किये गये सारे प्रेम असफल हो जाते हों, तो आश्चर्य नहीं। प्रेमी पाता है कि असफल हो गये। जिसके साथ एक होना चाहा था, वह पास तो आ गया; लेकिन एक नहीं हो पाये।
लेकिन उसे यह नहीं दिखायी पड़ता कि यह शरीर की सीमा है कि शरीर के तल पर
एक नहीं हुआ जा सकता, पदार्थ के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता, मैटर के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता। यह स्वभाव है पदार्थ का कि वहां पार्थक्य होगा, दूरी होगी, फासला होगा।
लेकिन प्रेमी को यह नहीं दिखायी पड़ता है! उसे तो यह दिखायी पड़ता है कि शायद जिसे मैंने प्रेम किया है, वह मुझे ठीक से प्रेम नहीं कर पा रहा है, इसलिए दूरी रह गयी है। शरीर के तल पर एकता खोजना नासमझी है, यह उसे नहीं दिखायी पड़ता! लेकिन दूसरा--प्रेमी दूसरी तरफ जो खड़ा है, जिससे उसने प्रेम की आकांक्षा की थी, वह शायद प्रेम नहीं कर रहा है, इसलिए एकता उपलब्ध नहीं हो पा रही। उसका क्रोध प्रेमी पर पैदा होता है, लेकिन दिशा ही गलत थी प्रेम की, यह ख्याल नहीं आता! इसलिए दुनिया भर में प्रेमी एक-दूसरे पर क्रुद्ध दिखायी पड़ते हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे पर क्रुद्ध दिखायी पड़ते हैं!

सारे जगत में प्रेमी एक-दूसरे के ऊपर क्रोध से भरे हुए हैं, क्योंकि
वह आकांक्षा जो एक होने की थी, वह विफल हो गयी है, असफल हो गयी है। और वे सोच रहे हैं कि दूसरे के कारण असफल हो गयी है! प्रत्येक यही सोच रहा है कि दूसरे के कारण असफल हो गया हूं, इसलिए दूसरे पर क्रोध कर रहा है! लेकिन मार्ग ही गलत था। प्रेम शरीर के तल पर नहीं खोजा जा सकता था, इसका स्मरण नहीं आता है।
इस एकता की दौड़ में, जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम"पजेस" करना चाहते हैं, उसके हम पूरे मालिक हो जाना चाहते हैं! कहीं ऐसा न हो कि मालकियत कम रह जाये, पजेशन कम रह जाये तो एकता कम रह जाये। इसलिए प्रेमी एक-दूसरे के मालिक हो जाना चाहते हैं। मुट्ठी पूरी कस लेना चाहते हैं। दीवाल पूरी बना लेना चाहते हैं कि प्रेमी कहीं दूर न हो जाये, कहीं हट न जाये, कहीं दूसरे मार्ग पर न चला जाये, किसी और के प्रेम में संलग्न न हो जाये। तो प्रेमी एक-दूसरे को पजेस करना चाहते हैं, मालकियत करना चाहते हैं।
और उन्हें पता नहीं कि प्रेम कभी मालिक नहीं होता। जितनी मालकियत की कोशिश होती है, उतना फासला बड़ा होता चला जाता है, उतनी दूरी बढ़ती चली जाती है; क्योंकि प्रेम हिंसा नहीं है, मालकियत हिंसा है, मालकियत शत्रुता है। मालकियत किसी की गर्दन को मुट्ठी में बांध लेना है। मालकियत जंजीर है। लेकिन प्रेम भयभीत होता है कि कहीं मेरा फासला बड़ा न हो जाये, इसलिए निकट, और निकट, और सब तरफ से सुरक्षित कर लूं ताकि प्रेम का फासला नष्ट हो जाये, दूरी नष्ट हो जाये। जितनी यह चेष्टा चलती है दूरी नष्ट करने की, दूरी उतनी बड़ी होती चली जाती है। विफलता हाथ लगती है, दुख हाथ लगता है, चिंता हाथ लगती है।
फिर आदमी सोचता है कि यह प्रेम शायद इस व्यक्ति से पूरा नहीं हो पाया
है, इसलिए दूसरे व्यक्ति को खोजूं। शायद यह व्यक्ति ही गलत है। तब आंखें दूसरे प्रेमियों की खोज में भटकती हैं, लेकिन बुनियादी गलती वहीं की वहीं बनी रहती है। शरीर के तल पर एकता असंभव है, यह ख्याल नहीं आता! यह शरीर और वह शरीर का सवाल नहीं है। सभी शरीर के तल पर एकता असंभव है।
आज तक मनुष्य-जाति शरीर के तल पर एकता और प्रेम को खोजती रही है, इसलिए जगत में प्रेम जैसी घटना घटित नहीं हो पायी।
जैसा मैंने आपसे कहा, यह जो पजेशन और मालकियत की चेष्टा चलती है, स्वभावतः उसके आसपासर ईष्या का जन्म होगा।
जहां मालकियत है, वहांर ईष्या है। जहां पजेशन है, वहां जेलसी है।
इसलिए प्रेम के फूल के आसपासर ईष्या के बहुत कांटे, बहुत बागुड़ खड़े हो जाते हैं औरर ईष्या की आग के बीच प्रेम कुम्हला जाता हो, तो आश्चर्य नहीं। वह जन्म भी नहीं पाता है कि जलना शुरू हो जाता है! जन्म भी नहीं हो पाता कि चिता पर सवारी शुरू हो जाती है!
जैसे किसी बच्चे को पैदा होते ही हमने चिता पर रख दिया हो, ऐसे ही प्रेमर ईष्या की चिता पर रोज चढ़ जाता है। र ईष्या वहां पैदा होती है, जहां मालकियत हैं। जहां मैंने कहा,"मैं","मेरा", वहां डर है कि कहीं कोई और मालिक न हो जाये। र ईष्या शुरू हो गयी, भय शुरू हो गया, घबराहट शुरू हो गयी, चिंता शुरू हो गयी, पहरेदारी शुरू हो गयी। और ये सारे के सारे मिलकर प्रेम की हत्या कर देते हैं। प्रेम को किसी पहरे की कोई जरूरत नहीं। प्रेम का, र ईष्या से कोई नाता नहीं है।
जहांर ईष्या है, वहां प्रेम संभव नहीं है। जहां प्रेम है, वहांर ईष्या संभव नहीं है।
लेकिन प्रेम है ही नहीं। प्रेम के किनारे जाकर आदमी की नौका टूट जाती है। जो नौका बननी चाहिए थी, जिस पर हम यात्रा करते, वह टूट जाती है; क्योंकि हमने प्रेम को बिल्कुल ही गलत प्रारंभ से शुरू किया है।
पहली बात आपसे यह कहना चाहता हूं, पदार्थ के तल पर कोई प्रेम संभव नहीं है। वह इम्पासीबिलिटी है। वह मेरी और आपकी असफलता नहीं है, वह मनुष्य-जाति, जीवन के लिए, असंभावना है। पदार्थ के तल पर कोई एकता उपलब्ध नहीं हो सकती।
जब तक यह एकता उपलब्ध नहीं होती, सब तरफ चिंता और विफलता दिखायी पड़ती है, तो कुछ शिक्षक यह कहने लगते हैं कि यह प्रेम ही गलत है, यह प्रेम की बात

ही गलत है, प्रेम का विचार ही गलत है! छोड़ो प्रेम के भाव को, उदासीन हो जाओ! जीवन को उदासी से भर लो, जीवन से प्रेम की सब जड़ें काट दो! यह दूसरी गलती है।
प्रेम गलत दिशा में गया था, इसलिए असफल हुआ है। प्रेम असफल नहीं हुआ, गलत दिशा असफल हुई है। लेकिन कुछ लोग इसका अर्थ लेते हैं कि प्रेम असफल हो गया है!
तो अप्रेम की शिक्षाएं हैं--अपने प्रेम को सिकोड़ लो, बंद कर लो, अपने
से बाहर मत जाने दो! अपने से बाहर तो बंधन बनेगा, मोह बनेगा, आसक्ति बनेगा! अपने भीतर बंद कर लो! प्रेम को बाहर मत बहने दो! उदासीन जीवन के प्रति हो जाओ! प्रेम की खोज ही बंद कर दो! एक यह दिशा पैदा होती है। यह विफलता का ही परिणाम है, यह रिएक्शन है फस्ट्रेशन का।
प्रेम की तरफ पीठ करके जाने वाले लोग उसी गलती में हैं, जिस गलती में प्रेम को शरीर के तल पर खोजने वाले लोग थे।
दिशा गलत थी, प्रेम की खोज गलत नहीं थी। लेकिन दिशा गलत है, यह नहीं दिखायी पड़ा! दिखायी पड़ा कि प्रेम की खोज ही गलत है। तो प्रेम से उदासीन शिक्षकों का जन्म हुआ, जिन्होंने प्रेम की निंदा की, प्रेम को बुरा कहा, प्रेम को बंधन बताया, प्रेम को पाप कहा; ताकि व्यक्ति अपने में बंद हो जाये। लेकिन उन्हें इस बात का पता न रहा कि व्यक्ति जब प्रेम की संभावना छोड़ देगा, तो उसके पास सिर्फ अहंकार की संभावना शेष रह जाती है, और कुछ भी शेष नहीं रह जाता।
प्रेम अकेला तत्व है, जो अहंकार को तोड़ता है और मिटाता है। प्रेम अकेला रसायन है, जिसमें अहंकार गलता है और पिघलता है और बह जाता है।
जो लोग प्रेम से वंचित अपने को कर लेंगे, वे सिर्फ ईगोइस्ट हो सकते हैं, सिर्फ अहंकारी हो सकते हैं और कुछ भी नहीं। उनके पास अहंकार को गलाने और तोड़ने का कोई उपाय न रहा, कोई मार्ग न रहा।
प्रेम स्वयं के बाहर ले जाता है। प्रेम अकेला द्वार है, जिससे हम अपने बाहर निकलते हैं और अनंत की यात्रा पर चरण रखते हैं। प्रेम जो अनन्य है, जो जगत है, जो जीवन है, उससे जोड़ता है।
लेकिन जो प्रेम की यात्रा बंद कर देते हैं, वे टूटकर सिर्फ अपने"मैं" में, अपने अहंकार में, अपने ईगो में कैद हो जाते हैं, बंद हो जाते हैं। एक तरफ विफल प्रेमी हैं, दूसरी तरफ अहंकार से भरे हुए साधु और संन्यासी हैं! अहंकार इस बात की स्वीकृति है जैसा मैंने कहा।
प्रेम इस बात की खोज है कि मैं सबके साथ एकता खोज लूं, समष्टि के साथ
एक हो जाऊं। अहंकार इस बात का निर्णय है कि मैंने एकता खोजनी बंद कर दी। "मैं" मैं हूं। मैं अलग ही रहूंगा। मैं अपनी सत्ता से निश्चिंत हो गया हूं। मैंने मान लिया कि"मैं" मैं हूं। बूंद ने स्वीकार कर लिया कि सागर से मिलना असंभव है या मिलने की कोई जरूरत नहीं है! यह बूंद जो अपने में बंद हो गयी, यह भी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकती। यह सिकुड़ गयी, बहुत छोटी हो गयी, बहुत क्षुद्र हो गयी।
अहंकार क्षुद्र कर देता है, सिकोड़ देता है, बहुत छोटा बना देता है।
जहां सीमा है, वहां अंत है, वहां मृत्यु है। जहां सीमा नहीं है, वह अनंत है, वहां अमृत है। क्योंकि जहां सीमा नहीं, वहां अंत नहीं, वहां मृत्यु नहीं।
अहंकारी क्षुद्र के साथ जुड़ जाता है। अपने को अलग मानकर ठहर जाता है; रुक जाता है, पिघलने से, बह जाने से, मिट जाने से; सबके साथ एक हो जाने से अपने को रोक लेता है!
मैंने सुना है, एक नदी समुद्र की तरफ यात्रा कर रही थी, जैसे कि सभी नदियां समुद्र की तरफ यात्रा करती हैं। भागी चली जा रही थी नदी समुद्र की तरफ। कौन खींचे लिए जाता था?
मिलन की कोई आशा, एक हो जाने की, विराट के साथ संयुक्त हो जाने की कोई कामना, किनारों को तोड़ देने की, सीमाओं को तोड़ देने की, तटहीन सागर के साथ एक हो जाने की--कोई प्यास नदी को भगाये ले जा रही थी। नदियां भाग रही हैं। वह नदी भी भाग रही थी--कोई प्रेम।

जैसे प्रत्येक मनुष्य की चेतना भाग रही है, भाग रही है, अनंत के सागर
के साथ एक होने को, वैसी वह नदी भी भाग रही थी। लेकिन बीच में आ गया मरुस्थल। बड़ा था मरुस्थल। नदी उसमें खोने लगी। नदी दौड़ने लगी तेजी से-- संघर्ष करने लगी! तोड़ देगी! उसने पहाड़ तोड़े थे, उसने घाट तोड़े थे, उसने मार्ग बनाये थे। वह इस मरुस्थल में भी मार्ग बना लेगी। लेकिन महीनों बीत गये, सालों बीतने लगे, मार्ग नहीं बन पाया। नदी मरुस्थल में खोती चली जाती है, रेत उसे पीती चली जाती है! राह नहीं बनती। और तब नदी घबरायी और रोने लगी।
उस मरुस्थल की रेत ने कहा, अगर हमारी सुनो तो एक बात स्मरण रखो। मरुस्थल को केवल वे ही नदियां पार कर सकती हैं, जो हवाओं के साथ एक हो जाती हैं, जो अपने को खो देती हैं और हवाओं के साथ एक हो जाती हैं। जो अपने को मिटा देती हैं। जैसे ही वे अपने को मिटाती हैं, हवाएं उन्हें अपने कंधों पर उठा लेती हैं और फिर मरुस्थल पार हो जाता है। मरुस्थल से लड़कर कोई कभी पार नहीं होता। मरुस्थल के ऊपर उठकर पार होता है। बहुत नदियां आयी हैं इस मरुस्थल को पार करने, वे खो गयीं। केवल वे ही नदियां उठ पायी हैं, जिन्होंने अपने को खो दिया, भाप हो गयीं, हवाओं के कंधों पर उठ गयीं, मरुस्थल को पार गयीं।
लेकिन वह नदी कहने लगी, मैं मिट जाऊंगी? मैं मिटना नहीं चाहती हूं। मैं बनी रहना चाहती हूं।
तो सागर की रेत ने कहा कि अगर बनी रहना चाहोगी तो मिट जाओगी। और अगर मिट जाओगी, तो बनी भी रह सकती हो!
पता नहीं, उस नदी ने उस सागर की रेत की बात सुनी या नहीं। जरूर सुन ली होगी, क्योंकि नदियां आदमियों जैसी नासमझ नहीं होतीं। वह सवार हो गयी होगी हवाओं के ऊपर। पार कर गयी होगी, बादल बन गयी होगी, उठ गयी होगी ऊपर, उसने नयी दिशा में यात्रा कर ली होगी।
लेकिन आदमी का अहंकार लड़-लड़ कर टूट जाता है, लेकिन मिटने को राजी नहीं होता। लड़ता है, टूटता है, लेकिन मिटने को राजी नहीं होता! जितना लड़ता है, उतना ही टूटता है, उतना ही नष्ट होता है। क्योंकि किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं की जड़ों से! किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं के ही विराट रूप से! किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं की ही सत्ता से! टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे--दुखी होंगे, पीड़ित होंगे, प्रेम से जो बचता है।
स्मरण रहे, प्रेम, मैंने कहा, एक हो जाने की आकांक्षा है। और एक वही हो सकता है, जो मिटने को राजी हो।
एक वही हो सकता है, जो मिटने को राजी हो।
जो मिटने को राजी नहीं होता, उसके लिए दूसरी दिशा खुल जाती है। वह अहंकार की दिशा है। तब वह अपने को बनाने को, मजबूत करने को, पुष्ट करने को, ज्यादा सख्त अपने आसपास दीवाल उठाने को, किला बनाने को उत्सुक हो जाता है! अपने"मैं" को मजबूत करने की यात्रा में संलग्न हो जाता है।
प्रेमी असफल हो गये, क्योंकि शरीर के तल पर एकता खोजी। संन्यासी असफल
हो जाते हैं, क्योंकि अहंकार के तल पर अलग होने का निर्णय करते हैं। क्या कोई तीसरा मार्ग नहीं है?
उसी तीसरे मार्ग की आपसे बात कहना चाहता हूं।
अहंकार तो कोई मार्ग नहीं है। अहंकार तो दुख की दिशा है, अहंकार तो भ्रांति है।"मैं" जैसी कोई चीज ही नहीं है भीतर, सिवाय शब्द के। जब सब शब्द छूट जाते हैं और आदमी मौन होता है तो पाता है कि वहां कोई"मैं" नहीं है। कभी मौन होकर देखें। कभी चुप होकर देखें, कभी शांत होकर देखें, वहां फिर कोई"मैं" नहीं पाया जाता। वहां कोई"मैं" नहीं है। वहां एक्जिसटेंस है, वहां सत्ता है, अस्तित्व है। लेकिन"मैं" नहीं है।
"मैं" मनुष्य की ईजाद है।"मैं" मनुष्य का आविष्कार है। बिल्कुल झूठा। उतना ही झूठा, जैसे हमारे नाम झूठे हैं। क्यों?
कोई आदमी किसी नाम को लेकर पैदा नहीं होता। लेकिन जन्म के बाद हम नाम
दे देते हैं, ताकि दूसरे लोग उसे पुकार सकें, बुला सकें। नाम की उपयोगिता है, युटिलिटी है, लेकिन नाम की कोई सत्ता नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। दूसरे लोग नाम लेकर बुलाते हैं, मैं खुद क्या कहकर अपने को बुलाऊं? मैं अपने

को"मैं" कहकर बुलाता हूं।"मैं" खुद के लिए, खुद को पुकारने के लिए दिया गया नाम है। और नाम दूसरों को पुकारने के लिए दिये गये नाम हैं।
नाम भी उतना ही असत्य है, जितना"मैं" का भाव असत्य है।
लेकिन इसी"मैं" को हम--इसी"मैं" को मजबूत करते चले जाते हैं!"मैं" को मोक्ष चाहिए,"मैं" को परमात्मा चाहिए--इसी"मैं" को सुख चाहिए! लेकिन"मैं" को कुछ भी नहीं मिल सकता है, क्योंकि"मैं" बिल्कुल झूठ है,"मैं" असत्य है। जो असत्य है, उसे कुछ भी नहीं मिल सकता है।
"मैं" भी असफल हो जाता है और प्रेम भी असफल हो जाता है। और दो ही दिशाएं है--एक प्रेम की दिशा है और एक अहंकार की दिशा है। मनुष्य के जगत में दो मार्गों के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग नहीं है--एक"मैं" का, एक प्रेम का।
प्रेम असफल होता है, क्योंकि हम शरीर के तल पर खोजते हैं।
"मैं" असफल होता हैं, क्योंकि असत्य है।
तीसरा क्या हो सकता है? तीसरा यह हो सकता है कि हम"मैं" की सम्यक दिशा खोजें, प्रेम की सम्यक दिशा खोजें, और"मैं" की असम्यक दिशा से बचें।
प्रेम शरीर के तल पर नहीं, चेतना के तल पर घटने वाली घटना है।
शरीर के तल पर जब प्रेम को हम घटाने की कोशिश करते हैं, तो प्रेम आब्जेक्टिव हो जाता है। कोई पात्र होता है प्रेम का, उसकी तरफ हम प्रेम को बहाने की कोशिश करते हैं। वहां से प्रेम वापस लौट आता है, क्योंकि पात्र शरीर होता है, जो दिखायी पड़ता है, जो स्पर्श में आता है।
लेकिन प्रेम को अगर आत्मिक घटना बनानी है, अगर प्रेम की कांशसनेस बनाना है, चेतना बनाना है तो प्रेम आब्जेक्टिव नहीं रह जाता, सब्जेक्टिव हो जाता है। तब प्रेम एक संबंध नहीं, चित्त की एक दशा है, स्टेट आफ माइंड है।
बुद्ध एक सुबह बैठे हैं और एक आदमी आ गया है। वह बहुत क्रोध में है। उसने बुद्ध को बहुत गालियां दी हैं और फिर इतने क्रोध से भर गया है कि उसने बुद्ध के मुंह के ऊपर थूक दिया है! बुद्ध ने अपने चादर से वह थूक पोंछ लिया और उससे कहा, मित्र, कुछ और कहना है?
भिक्षु आनंद बुद्ध के पास बैठा है। वह क्रोध से भर गया है। और बुद्ध
की यह बात सुनकर कि वे कहते हैं कि कुछ और कहना है, वह और हैरान हो गया है। और उसने कहा,"आप क्या कहते हैं? यह आदमी थूक रहा है और आप पूछते हैं, कुछ और कहना है!"
बुद्ध ने कहा,"मैं समझ रहा हूं, शायद क्रोध इतना भारी हो गया है कि शब्द कहने में असमर्थ मालूम होते होंगे, इसलिए उसने थूककर कोई बात कही है। मैं समझ गया हूं, उसने कुछ कहा है। अब मैं पूछता हूं, और कुछ कहना है?
वह आदमी उठ गया है, लौट गया है। पछताया है, रात भर सो नहीं सका है। दूसरे दिन सुबह क्षमा मांगने आया है। बुद्ध के चरणों में उसने सिर रख दिया। सिर उठाया, बुद्ध ने कहा, और कुछ कहना है?
वह आदमी कहने लगा, कल भी आप यही कहते थे!
बुद्ध ने कहा, आज भी वही कहता हूं। शायद कुछ कहना चाहते हो। शब्द कहने में असमर्थ थे, इसलिए सिर पैरों पर रखकर कह दिया है। कल थूक कर कहा था। पूछता हूं, कुछ और कहना है?
वह आदमी बोला, कुछ और नहीं, क्षमा मांगने आया हूं। रात भर सो नहीं सका।
मन में यह ख्याल हुआ, आज तक आपका प्रेम मिला मुझे, आज थूक आया हूं आपके ऊपर, अब शायद वह प्रेम मुझे नहीं मिल सकेगा।
बुद्ध खूब हंसने लगे और उन्होंने कहा, सुनते हो आनंद, यह आदमी कैसी पागलपन की बातें कहता है! यह कहता है कि कल तक मुझे आपका प्रेम मिला और कल मैंने थूक दिया तो अब प्रेम नहीं मिलेगा! तो शायद यह सोचता है कि यह मेरे ऊपर नहीं थूकता था, इसलिए मैं इसे प्रेम करता था, जो थूकने से प्रेम बंद हो जायेगा!
पागल है तू! मैं प्रेम इसलिए करता हूं कि मैं प्रेम ही कर सकता हूं और कुछ नहीं कर सकता हूं। तू थूके, तू गाली दे, तू पैरों पर सिर रखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं प्रेम ही कर सकता हूं। मेरे भीतर प्रेम का दीया जल गया। अब मेरे पास से जो भी निकले, उस पर प्रेम पड़ेगा। कोई न निकले तो एकांत

में प्रेम का दीया जलता रहेगा। अब इसका किसी से कोई संबंध न रहा। अब यह कोई संबंध न रहा, यह मेरा स्वभाव हो गया है।
प्रेम जब तक किसी से संबंध है, तब तक, आप शरीर के तल पर प्रेम खोज रहे हैं, जो असफल हो जायेगा।
प्रेम जब जीवन के भीतर, स्वयं के भीतर जला हुआ एक दीया बनता है-- रिलेशनशिप नहीं, स्टेट आफ माइंड--जब किसी से प्रेम एक संबंध नहीं है, बल्कि मेरा प्रेम स्वभाव बनता है, तब, तब जीवन में प्रेम की घटना घटती है।
तब प्रेम का असली सिक्का हाथ में आता है। तब यह सवाल नहीं है कि किससे प्रेम, तब यह सवाल नहीं है कि किस कारण प्रेम। तब प्रेम अकारण है, तब प्रेम इससे-उससे नहीं है, तब प्रेम है। कोई भी हो तो प्रेम के दीये का प्रकाश उस पर पड़ेगा। आदमी हो तो आदमी, वृक्ष हो तो वृक्ष, सागर हो तो सागर, चांद हो तो चांद, कोई न हो तो फिर एकांत में प्रेम का दीया जलता रहेगा।
प्रेम परमात्मा तक ले जाने का द्वार है। लेकिन जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह सिर्फ नर्क तक ले जाने का द्वार बनता है। जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह पागलखानों तक ले जाने का द्वार बनता है। जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह कलह, द्वंद्व, संघर्ष, हिंसा, क्रोध, घृणा, इन सबका द्वार बनता है। वह प्रेम झूठा है।
जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं, वह प्रभु तक ले जाने का मार्ग बनता है, लेकिन वह प्रेम संबंध नहीं है। वह प्रेम स्वयं के चित्त की दशा है, उसका किसी से कोई नाता नहीं, आपसे नाता है। इस प्रेम के संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी, और इस प्रेम को जगाने की दिशा में कुछ स्मरणीय बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, जब तक आप प्रेम को एक संबंध समझते रहेंगे, एक रिलेशनशिप, तब
तक आप असली प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। वह बात ही गलत है। वह प्रेम की परिभाषा ही भ्रांति है।
जब तक मां सोचती है कि बेटे से प्रेम, मित्र सोचता है मित्र से प्रेम, पत्नी सोचती है पति से प्रेम, भाई सोचता है बहन से प्रेम, जब तक संबंध की भाषा में कोई प्रेम को सोचता है, तब तक उसके जीवन में प्रेम का जन्म नहीं हो सकता है।
संबंध की भाषा में नहीं, किससे प्रेम नहीं; मेरा प्रेमपूर्ण होना है। मेरा प्रेमपूर्ण होना अकारण, असंबंधित, चौबीस घंटे मेरा प्रेमपूर्ण होना है। किसी से बंधकर नहीं, किसी से जुड़कर नहीं, मेरा अपने आपमें प्रेमपूर्ण होना हैं। यह प्रेम मेरा स्वभाव, मेरी श्वास बने। श्वास आये, जाये, ऐसा मेरा प्रेम--चौबीस घंटे सोते, जागते, उठते हर हालत में। मेरा जीवन प्रेम की भाव-दशा, एक लविंग एटिटयूड, एक सुगंध, जैसे फूल से सुगंध गिरती है।
किसके लिए गिरती है? राह से जो निकलते हैं, उनके लिए? फूल को शायद पता
भी न हो कि कोई राह से निकलेगा। किसके लिए, जो फूल को तोड़कर माला बना लेंगे और भगवान के चरणों में चढ़ा देंगे, उनके लिए? किसके लिए--फूल की सुगंध किसके लिए गिरती है?
किसी के लिए नहीं। फूल के अपने आनंद से गिरती है। फूल के अपने खिलने
से गिरती है। फूल खिलता है, यह उसका आनंद है। सुगंध बिखर जाती है।
दीये से रोशनी बरसती है, किसके लिए? कोई अंधेरे रास्ते पर न भटक जाये इसलिए? किसी को रास्ते के गड्ढे दिखायी पड़ जायें इसलिए?
दिखायी पड़ जाते होंगे, यह दूसरी बात है; लेकिन दीये की रोशनी अपने लिए, अपने आनंद से, अपने स्वभाव से, गिरती और बरसती है।
प्रेम भी आपका स्वभाव बने--उठते, बैठते, सोते, जागते; अकेले में, भीड़ में, वह बरसता रहे फूल की सुगंध की तरह, दीये की रोशनी की तरह, तो प्रेम प्रार्थना बन जाता है, तो प्रेम प्रभु तक ले जाने का मार्ग बन जाता है, तो प्रेम जोड़ देता है समस्त से, सबसे, अनंत से।
इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेम तब संबंध नहीं बनेगा। वैसा प्रेम चौबीस घंटे संबंध बनेगा, लेकिन संबंधों पर सीमित नहीं होगा। उसके प्राण संबंधों के ऊपर से आते होंगे। गहरे से आते होंगे। तब भी पत्नी पत्नी होगी, पति पति होगा, पिता पिता होगा, मां मां होगी। तब भी बेटे पर प्रेम गिरेगा। लेकिन बेटे के कारण नहीं, मां के अपने प्रेम के कारण। तब भी पत्नी का प्रेम

चलेगा, बहेगा; लेकिन पति के कारण नहीं, अपने कारण। दृलिटी भीतर होगी, भीतर से आयेगी और बहेगा। बाहर से कोई खींचेगा और बहेगा नहीं, भीतर से आयेगा और बहेगा। वह अंतरभाव होगा, बाहर से खींचा गया नहीं।
अभी हम सब बाहर से खींचे गये प्रेम पर जी रहे हैं, इसलिए वह प्रेम कलह
बन जाता है। जो भी चीज जबरदस्ती खींची गयी है, वह दुख और पीड़ा बन जाती है। जो भीतर से स्पॉनटेनियस, सहज प्रकट हुई है, वह बात और हो जाती है। वह बात ही और हो जाती है। तब जीवन बहुत प्रेमपूर्ण होगा, लेकिन प्रेम एक संबंध नहीं होगा। साधक को स्मरण रखना है कि प्रेम उसकी चित्त दशा बने तो ही प्रभु के मार्ग पर, सत्य के मार्ग पर यात्रा की जा सकती है, तो ही उसके मंदिर तक पहुंचा जा सकता है।
पहली बात, संबंध में प्रेम के भाव को भूल जायें। वह परिभाषा गलत है, वह प्रेम को देखने का ढंग गलत है। जब कोई गलत ढंग गलत दिखायी पड़ जाये, तो फिर ठीक ढंग देखा जा सकता है। तो पहली बात है, जो"फाल्स लव" है, वह जो झूठा प्रेम है, जो संबंध को प्रेम समझता है, उसकी व्यर्थता को समझ लें। वह सिवाय असफलता के और चिंता के कहीं भी नहीं ले जायेगा।
फिर दूसरी बात है। वह दूसरी बात यह है कि क्या आपके भीतर से प्रेम का जन्म हो सकता है? भीतर से! बाहर कोई भी न हो तो भी? हो सकता है। जब भी प्रेम का जन्म हुआ है तो वैसे ही हुआ है।
हमारे भीतर वह छिपा है बीज, जो फूट सकता है, लेकिन हमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया! हम संबंध वाले प्रेम पर ही जीवन भर संघर्ष करते रहे हैं। हमने कभी ध्यान नहीं दिया उसके--उसके पार भी कोई प्रेम की संभावना है, कोई रूप है। हम हमेशा रेत से तेल निकालने की कोशिश करते रहे हैं। रेत से तो तेल नहीं निकला, निकल नहीं सकता था, लेकिन रेत से तेल निकालने में हम भूल ही गये कि ऐसे बीज भी थे, जिनसे तेल निकल सकता था।
हम सब संबंध वाले प्रेम से जीवन को निकालने की कोशिश कर रहे हैं! वहां
से नहीं निकला है, नहीं निकलेगा, लेकिन समय खोता है, शक्ति खोती है। और जहां से निकल सकता था, उस तरफ ध्यान भी नहीं जाता है!
प्रेम चित्त की एक दशा की तरह पैदा होता है। बस वैसा ही पैदा होता है।
जब भी होता है, वैसा ही पैदा होता है। उसे कैसे पैदा करें, वह कैसे जन्म ले ले, वह बीज कैसे टूट जाये और अंकुरित हो जाये? तीन बातें, तीन सूत्र इस संबंध में स्मरण रख लेने चाहिए।
पहली बात, जब अकेले में हों तब--तब भीतर खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण
हो सकता हूं? जब कोई न हो, तब खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं? क्या अकेले में लविंग--क्या अकेले में, एकांत में भी आंखें ऐसी हो सकती हैं, जैसे प्रेम-पात्र मौजूद हो? क्या अकेले में, शून्य में, एकांत में, खाली में भी मेरे प्राणों से प्रेम की धाराएं उस रिक्त स्थान को भर सकती हैं, जहां कोई नहीं, कोई पात्र नहीं, कोई आब्जेक्ट नहीं? क्या वहां भी प्रेम मुझसे बह सकता है? इसको ही मैं प्रार्थना कहता हूं। उसको नहीं प्रार्थना कहता कि हाथ जोड़े मंदिरों में बैठे हैं!
एकांत में जो प्रेम को बहाने में सफल हो रहा है, कोशिश कर रहा है, वह प्रार्थना में है, वह प्रेयरफुल मूड में है।
तो अकेले में बैठकर देखें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं? लोगों
के साथ प्रेमपूर्ण होकर बहुत देख लिया होगा आपने। अब अकेले में थोड़ी खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं?
पहला सूत्र, एकांत में प्रेमपूर्ण होने का प्रयोग करें, खोजें, टटोलें अपने भीतर। हो जायेगा, होता है, हो सकता है। जरा भी कठिनाई नहीं है। कभी प्रयोग ही नहीं किया उस दिशा में, इसलिए ख्याल में बात नहीं आ पायी है। निर्जन में भी फूल खिलते हैं और सुगंध फैला देते हैं।
निर्जन में, एकांत में प्रेम की सुगंध को पकड़ें। जब एक बार एकांत में प्रेम की सुगंध पकड़ जायेगी तो आपको ख्याल आ जायेगा कि प्रेम कोई रिलेशनशिप नहीं, कोई संबंध नहीं।
प्रेम स्टेट आफ माइंड है, स्टेट आफ कांशसनेस है, चेतना की एक अवस्था है।

दूसरी बात, दूसरा सूत्र, मनुष्य इतर जगत में प्रेम का प्रयोग करें। एक पत्थर को भी हाथ में उठायें तो ऐसे, जैसे किसी को प्रेम कर रहे हों। एक पहाड़ को भी देखें तो ऐसे, जैसे अपने प्रेमी को देख रहे हों। मनुष्य इतर जगत में दूसरा। पहला एकांत में, दूसरा मनुष्य जगत में। पत्थर को, रेत को, सागर को देखें तो ऐसे, जैसे प्रेमी को। प्रेम बहा चला जाये, आंखें खो जायें। कुर्सी को भी छुएं, भोजन की थाली को भी उठाएं तो ऐसे जैसे प्रेमी को स्पर्श कर रहे हों।
मनुष्य इतर जगत में क्यों? क्योंकि मनुष्य को जब भी आप प्रेम करते हैं, तो वहां से उत्तर आता है। उत्तर आया कि रिलेशनशिप खड़ी हो जाती है, संबंध खड़ा हो जाता है। पत्थर को छुएंगे तो कोई उत्तर नहीं आयेगा। सागर को देखेंगे प्रेम से तो सागर कोई उत्तर नहीं देगा, आपके गले में बांहें नहीं डाल देगा और कहेगा, मैं भी आपको प्रेम करता हूं। कोई उत्तर नहीं आयेगा, प्रेम निरुत्तर छूट जायेगा। उस तरफ से कोई जवाब नहीं आने वाला है। आप प्रेम करेंगे और प्रेम छूट जायेगा।
जवाब की आकांक्षा के कारण प्रेम मुक्त नहीं हो पाता, संबंध बना रहता है। एक व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं, फिर मैं अपेक्षा करता हूं, उत्तर आना चाहिए। जब उत्तर नहीं आता है तो फ्रस्ट्रेशन आता है, दुख आता है, पीड़ा आती है, चिंता आती है।
निरुत्तर प्रेम की संभावना बढ़नी चाहिए। लेकिन निरुत्तर प्रेम की पहली संभावना मनुष्य को छोड़कर ही हो सकती है। मनुष्य के साथ एकदम प्रयोग करना आसान नहीं है। वृक्षों के साथ हो सकती है, पत्थरों के साथ हो सकती है। सागरों के साथ हो सकती है। इसलिए प्रकृति में जो कुछ भी है, उस पर प्रेम को भेजें। वहां अपेक्षा नहीं, वहां एक्सपेक्टेशन नहीं हो सकता है कि आप राह देखेंगे, उत्तर आयेगा। उत्तर न आयेगा, आपका प्रेम ही जायेगा। और आपको पहली दफा पता चलेगा, उत्तर के लिए नहीं है प्रेम।
प्रेम दान है, मांग नहीं। प्रेम देना है, लौटाना नहीं।
प्रेम का आनंद दे देने में है, प्रेम का आनंद पा लेने में नहीं।
यह दूसरा सूत्र जब स्पष्ट हो जायेगा कि प्रेम दान है, मांग नहीं। कोई उत्तर की अपेक्षा नहीं है, कोई रिस्पांस की जरूरत नहीं है। हमने दे दिया और सागर ने स्वीकार कर लिया तो धन्यवाद है सागर का। और पत्थर ने स्वीकार कर लिया है तो धन्यवाद है पत्थर का। लौटते उत्तर का कोई सवाल नहीं है। तो यह दूसरा सूत्र स्पष्ट करेगा आपके भीतर उस संभावना को कि प्रेम एक चित्त की दशा है, उत्तर नहीं है। तो कोई संबंध नहीं बनता है।
फिर तीसरी बात--पहला एकांत, दूसरा मनुष्य इतर जगत, तीसरा असंबंधित मनुष्यता।
जिनसे आप संबंधित हैं, उन पर नहीं; जिनसे आप बिल्कुल असंबंधित हैं, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं--राह चलते लोग, ट्रेन में बैठे हुए लोग, बस में बैठे हुए लोग, जिनसे कोई संबंध नहीं है, जिनसे कोई नाता नहीं है, उनके प्रति प्रेम। पड़ोस में कोई आपके बैठ गया है बस में आकर, उसके प्रति प्रेम-- अपरिचित के, अनजान के, स्ट्रेंजर के प्रति।
तीसरे सूत्र में, अजनबी के प्रति प्रेम। क्योंकि अजनबी के प्रति प्रेम, एक बात ही और है। परिचित के प्रति प्रेम बात और है।
परिचित के प्रति प्रेम अपेक्षाओं से भरा है, संबंधों से भरा है। उसने
कल कुछ किया था, उसके कारण प्रेम है, वह कल कुछ करेगा, इस कारण प्रेम है। उनका--उस प्रेम के पीछे लाभ-हानियां जुड़ी हैं, उस प्रेम के पीछे याददाश्तें जुड़ी हैं, अतीत जुड़ा है, भविष्य जुड़ा है। अजनबी से कोई संबंध नहीं है कल का, आने वाले कल का भी कोई संबंध नहीं है। उससे प्रेम निपट प्रेम है। उसके आगे-पीछे कोई लाभ-हानि नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई मार्ग नहीं है। उसे हम जानते भी नहीं हैं, वह कहां विराट जगत में कल खो जायेगा, कुछ पता नहीं है।
अजनबी के प्रति प्रेम, असंबंधित मनुष्यता के प्रति प्रेम, तीसरा सूत्र है। अगर आपको अपने भीतर उस प्रेम को पैदा कर लेना है, जिसे मैं स्टेट आफ माइंड कह रहा हूं, जिसे मैं चित्त की दशा कह रहा हूं। तो ये तीन सूत्र हैं।

और जब आप पत्थरों को प्रेम कर पायेंगे, सागर को प्रेम कर पायेंगे, एकांत को प्रेम कर पायेंगे, अजनबी को प्रेम कर पायेंगे, तो जो निकट है, जो संबंधित है, उसे प्रेम नहीं कर पायेंगे? उसे तो प्रेम कर ही पायेंगे, वह तो सहज बह जायेगा। ये तीन की तैयारी हो तो उसे तो प्रेम कर ही पायेंगे, उसे तो बहुत प्रेम उपलब्ध हो जायेगा।
लेकिन उसके प्रेम में भी क्रांतिकारी फर्क हो जायेगा, क्योंकि जिसने पत्थरों को प्रेम किया, जिसने एकांत को प्रेम किया, जिसने अजनबियों को प्रेम किया, उसके प्रेम की दृलिटी, उसके प्रेम का गुण बदल जायेगा। वह संबंधित को-- मां बेटे को प्रेम करेगी तो भी ऐसे जैसे एकांत को करती हो, ऐसे जैसे पत्थर को करती हो, उत्तर की कोई अपेक्षा नहीं। ऐसे जैसे अजनबी को करती हो, जो कल भटक जायेगा तो कोई पीड़ा नहीं छोड़ जायेगा। तब पत्नी पति को प्रेम करेगी, पति पत्नी को प्रेम करेगा, लेकिन उस प्रेम की दृलिटी, उस प्रेम का गुण-धर्म बदल जायेगा। उस प्रेम में कोई अपेक्षा नहीं, कोई मांग नहीं, कोईर ईष्या नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई कलह नहीं, कोई छीना-झपटी नहीं। वह प्रेम तब एक सहज दान हो जाता है, और यह सहज दान जितना बढ़ता चला जाये, जितना बढ़ता चला जाये, उतना ही व्यक्ति का अहंकार नष्ट हो जाता है, विलीन हो जाता है।
प्रेम अहंकार की मृत्यु है।
प्रेम अहंकार की मृत्यु है--और जहां अहंकार नहीं, वहां हम हो गये एक समस्त से, वहां हम जुड़ गये विराट से, वहां परमात्मा से मिलन हो गया। उस मिलन की प्यास है, उस मिलन की दौड़ है, उस मिलन की आकांक्षा है। बूंद सागर से टूट गयी--सागर होना चाहती है। रेत का एक कण हवाओं में उड़ गया--अपने तट पर वापस लौट आना चाहता है। ऐसे ही एक-एक मनुष्य का व्यक्तित्व वापस लौट आना चाहता है प्रभु के सागर में।
हमने अब तक जो उपाय किये हैं, वे सब उपाय गलत साबित हुए हैं। या तो हमने झूठे प्रेम का उपाय किया है, या हमने अहंकार का उपाय किया है। वे दोनों उपाय व्यर्थ हैं।
सम्यक प्रेम, राइट लव, क्या होगा--उस दिशा में मैंने तीन सूत्र कहे हैं। इनका प्रयोग करें, ताकि आपके भीतर वह प्रेम जन्म पा सके, जो आपका है, जो आपका स्वभाव है, जो आपकी श्वास-श्वास है। तब आप जो भी छुयेंगे, तब आप जो भी देखेंगे, तब आप जो भी सुनेंगे, वह सभी प्रेम-पात्र, वह सभी प्रीतम बन जायेगा, वह सभी बिलवेड बन जायेगा। और जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन मनुष्य प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट होता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले नहीं, उसके पहले कभी नहीं। जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन सारी खबरें उसकी ही खबरें हो जाती हैं।
लेकिन यह कोई आसमान से नहीं घट जायेगी घटना। यह प्रत्येक को अपने भीतर पात्रता, प्रत्येक को अपने भीतर द्वार, प्रत्येक को अपने भीतर एक ओपनिंग, प्रत्येक को अपने भीतर के फूल को खिला लेना है, तो यह घटना घट सकती है। यह तीसरा सूत्र है।
चित्त को विस्मय से भरें, जीवन के रस में तल्लीन हों और आत्मा को प्रेमपूर्ण करें। फिर इन तीन सीढिय़ों को पार करें और देखें कि क्या हो जाता है? अनंत संपदा है मनुष्य को पाने के लिए। अनंत आनंद उसे उपलब्ध हो सकता है। लेकिन हम व्यर्थ ही जीते और नष्ट हो जाते हैं!
एक छोटी-सी घटना अपनी बात मैं पूरी करूं। फिर हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।
एक राजधानी में एक भिखारी एक सड़क के किनारे बैठकर बीस-पच्चीस वर्षों
तक भीख मांगता रहा। फिर मौत आ गयी, फिर मर गया। जीवन भर यही कामना की कि मैं भी सम्राट हो जाऊं। कौन भिखारी ऐसा है, जो सम्राट होने की कामना नहीं करता? जीवन भर हाथ फैलाये खड़ा रहा रास्तों पर।
लेकिन हाथ फैलाकर, एक-एक पैसा मांगकर कभी कोई सम्राट हुआ है? मांगने वाला कभी सम्राट हुआ है? मांगते की आदत जितनी बढ़ती है, उतना ही बड़ा भिखारी हो जाता है। सम्राट कैसे हो जायेगा? तो पच्चीस वर्ष पहले छोटा भिखारी था, पच्चीस वर्ष बाद पूरे नगर में प्रसिद्ध भिखारी हो गया था, लेकिन सम्राट नहीं हुआ था। फिर मौत आ गयी। मौत कोई फिक्र नहीं करती। सम्राटों को भी आ

जाती है, भिखारियों को भी आ जाती है। और सच्चाई शायद यही है कि सम्राट थोड़े बड़े भिखारी होते हैं, भिखारी जरा छोटे सम्राट होते हैं। और क्या फर्क होता होगा!
वह मर गया भिखारी तो गांव के लोगों ने उसकी लाश को उठाकर फिंकवा दिया। फिर उन्हें लगा कि पच्चीस वर्ष एक ही जगह बैठकर भीख मांगता रहा। सब जगह गंदी हो गयी। गंदे चीथड़े फैला दिये हैं। टीन-टप्पर, बर्तन-भांडे फैला दिये हैं। सब फिंकवा दिया। फिर किसी को ख्याल आया कि पच्चीस वर्ष में जमीन भी गंदी कर दी होगी। थोड़ी जमीन भी उखाड़कर थोड़ी मिट्टी भी साफ कर दें। ऐसा ही सब व्यवहार करते हैं, मर गये आदमी के साथ। भिखारियों के साथ ही करते हों, ऐसा नहीं। जिनको प्रेमी कहते हैं, उनके साथ भी यही व्यवहार होता है। उखाड़ दी, थोड़ी मिट्टी भी खोद डाली।
मिट्टी खोदी तो नगर दंग रह गया। भीड़ लग गयी। सारा नगर वहां इकट्ठा हो गया। वह भिखारी जिस जगह बैठा था, वहां बड़े खजाने गड़े हुए थे। सब कहने लगे, कैसा पागल था! मर गया पागल, भीख मांगते-मांगते! जिस जमीन पर बैठा था, वहां बड़े हंडे गड़े हुए थे, जिनमें बहुमूल्य हीरे-जवाहरात थे, स्वर्ण अशर्फियां थीं! वह सम्राट हो सकता था, लेकिन उसने वह जमीन न खोदी, जिस पर वह बैठा हुआ था! वह उन लोगों की तरफ हाथ पसारे रहा, जो खुद ही भिखारी थे, जो खुद ही दूसरों से मांग-मांगकर ला रहे थे! वे भी अपनी जमीन नहीं खोदे होंगे। उसने भी अपनी जमीन नहीं खोदी! फिर गांव के लोग कहने लगे, बड़ा अभागा था!
मैं भी उस गांव में गया था। मैं भी उस भीड़ में खड़ा था। मैंने लोगों से कहा, उस अभागे की फिक्र छोड़ो। दौड़ो अपने घर, अपनी जमीन तुम खोदो। कहीं वहां कोई खजाना तो नहीं? पता नहीं, उस गांव के लोगों ने सुना कि नहीं! आपसे भी यही कहता हूं--अपनी जमीन खोदो, जहां खड़े हैं, वहीं खोद लें। कहता हूं, वहां खजाना हमेशा है!
लेकिन हम सब भिखारी हैं और कहीं मांग रहे हैं! प्रेम के बड़े खजाने भीतर हैं, लेकिन हम दूसरों से मांग रहे हैं कि हमें प्रेम दो! पत्नी पति से मांग रही है, मित्र-मित्र से मांग रहा है कि हमें प्रेम दो! जिनके पास खुद ही नहीं है, वे खुद दूसरों से मांग रहे हैं, कि हमें प्रेम दो! हम उनसे मांग रहे हैं! भिखारी भिखारियों से मांग रहे हैं! इसलिए दुनिया बड़ी बुरी हो गयी है। लेकिन अपनी जमीन पर, जहां हम खड़े हैं, कोई खोदने की फिक्र नहीं करता! वह कैसे खोदा जा सकता है, वह थोड़ी-सी बात मैंने कही हैं। वहां खोदें, वहां बहुत खजाना है और प्रेम का खजाना खोदते-खोदते ही एक दिन आदमी परमात्मा के खजाने तक पहुंच जाता है। और कोई रास्ता न कभी था, न है, और न हो सकता है। यह तीसरे सूत्र की बात पूरी हुई।
अब हम सब सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। सुबह के ध्यान में बैठने के पहले एक बात और आपसे कह देनी है। दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार तीन दिन तक हमने बातचीत की शब्दों से। मैंने आपसे कुछ कहा; किसी ने सुना होगा, किसी ने नहीं सुना होगा; किसी ने सुनकर भी समझ लिया होगा, किसी ने सुनकर भी नहीं समझा होगा। शब्दों की अपनी सीमा है, अपना सामर्थ्य है। शब्द उसे कहने में असमर्थ हैं, जो दिखायी पड़ता है, जो अनुभव होता है। इशारे भर किये जा सकते हैं। इशारे चूक भी सकते हैं।
तो दोपहर आज बिना शब्द के थोड़ी देर बात करेंगे। दोपहर आज थोड़ा"साइलेंट कम्युनिकेशन" के लिए, थोड़ा मौन-संभाषण के लिए बैठेंगे। साढ़े तीन बजे आकर मैं यहां बैठ जाऊंगा। आप भी चुपचाप आकर बैठ जायेंगे। घंटे भर कोई बात नहीं होगी। बस चुपचाप बैठेंगे। कोई बातचीत नहीं होगी।
ऐसे बातचीत मैं करूंगा, अगर आप तैयार रहें तो शायद कुछ आपको सुनायी पड़े, कुछ पता चले। लेकिन शब्दों से कोई बात न होगी। एक घंटा चुपचाप यहां बैठे रहना है। जैसी आपकी मौज हो--बैठ जाना है। किसी को लेटना हो, लेट जाना; किसी को वृक्ष से टिकना हो, टिक जाना। आंख बंद रखनी हो, बंद रख लेना; खुली रखनी हो, खुली रखना। बस, एक भी बात नहीं होगी। आपस में भी नहीं कोई बात होगी। मुझसे भी कोई बात नहीं होगी। चुपचाप यहां आपके पास बैठूंगा। घंटे भर देखें। शायद चुपचाप होने में कुछ आपको सुनायी पड़े, कोई संबंध हो जाये। जीवन के सब संबंध मौन में होते हैं।
शब्द तोड़ते हैं, मौन जोड़ता है।

तो इस प्रयोग को यहां आज आखिरी दिन है, फिर आप विदा हो जायेंगे, इसलिए घंटे भर मौन में बैठेंगे, एक मौन संभाषण के लिए।
तैयारी चाहिए मौन के लिए थोड़ी। तो साढ़े तीन बजे यहां आयेंगे। ढाई बजे
से आप थोड़ी वहां तैयारी करना। ढाई बजे से ही थोड़ा चुपचाप हो जाना शुरू कर देना, क्योंकि विचार का मूमेंटम होता है। एक चका को हम चला दें, फिर छोड़ दें तो भी पंद्रह-बीस मिनिट तक वह चका चलता चला जाता है, चलता चला जाता है। ढाई बजे से आप शिथिल छोड़ देना बात करने को, तो शायद साढ़े तीन बजे तक थोड़ी चुप्पी आ पाये। तो उसकी थोड़ी तैयारी करना।
अच्छा हो कि स्नान करके आयें, साढ़े तीन बजे जब यहां आयें, ताजे वस्त्र पहनकर आयें, ताकि एक बिल्कुल नयी दिशा में गति हो सके। फिर वहां से आयें तो रास्ते में भी बात करते हुए न आयें। यहां भी कोई बात न करे। ऐसा ही समझें कि आप अकेले आ गये हैं। किसी की फिक्र न करें कि कौन है, कौन नहीं है। चुपचाप बैठते चले जायें।
एक घंटे के लिए हम बैठेंगे। उसकी तैयारी करके आयें। किसी को आंसू आ जायें तो रो ले, किसी को हंसी आ जाये तो हंस ले। कोई भी भाव उठ जाये तो बह जाने दें; जरा भी बाधा न डालें, जरा भी रोकें नहीं। किसी को मन हो जाये तो दो क्षण मेरे पास आकर बैठ जाये और फिर चुपचाप उठकर चला जाये। किसी को मन हो तो निश्चित उठकर आ जाये, उसे रोकें नहीं। लेकिन दो मिनिट मेरे पास बैठे, ज्यादा नहीं, ताकि फिर कोई और आना चाहे, तो आ जाये। फिर चुपचाप ही बैठे और चला जाये। एक घंटे। किसी का मन बीच में ऊब जाये, तो चुपचाप उठे और चला जाये। जबरदस्ती न बैठा रहे। एक घंटे बाद मैं उठ जाऊंगा। फिर धीरे-धीरे जब जिसकी मौज हो, वह उठता हुआ चला जाये। वह एक घंटे के लिए हम बैठेंगे, उसकी तैयारी करके आयें।
शब्दों को समझने के लिए उतनी तैयारी की जरूरत नहीं होती। मौन को समझने के लिए बहुत तैयारी की जरूरत है। लेकिन मेरी कोशिश है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जो लोग मेरे निकट आते हैं, वे केवल शब्द ही न समझें, वे मौन को भी समझना शुरू करें। क्योंकि आज नहीं कल, जो और जरूरी बातें मुझे आपसे कहनी हैं, वे शब्दों से नहीं कही जा सकती हैं, वे तो फिर सिर्फ मौन से ही कही जायेंगी। तो जो मौन को समझने में समर्थ होने लगेंगे, फिर जो और गहरी बातें हैं, उनके कहने का द्वार उनसे खुल जायेगा।
तो वह ढाई बजे से आप तैयारी करेंगे, साढ़े तीन बजे जैसे कोई मंदिर में जाता हो--और मौन से बड़ा कोई मंदिर नहीं है। उतनी पवित्रता से, स्नान करके, ताजे कपड़े पहनकर, चुपचाप ढाई बजे से ही तैयारी में--कि उसकी धुन भीतर घुस जाये। फिर यहां आकर चुपचाप बैठ जाना है। फिर यहां जैसा भी मन हो। इंडोनेशिया में ध्यान का एक प्रयोग होता है, उसका नाम है लातिहान। आज नहीं कल इस मुल्क में भी इस प्रयोग को मैं लाना चाहता हूं कि वह यहां आ जाये।
लातिहान में दो-चार दस लोग चुपचाप बैठ जाते हैं। चुपचाप बैठ जाते हैं। फिर किसी को रोने का हो आता है, तो रो लेता है। किसी को नाचने का हो आता है, तो नाच लेता है। और एक घंटे के लातिहान की बैठक के बाद जो अनुभव उन्हें होते हैं, उनका कोई हिसाब नहीं! छोड़ देते हैं, बिल्कुल रिलेक्स, जो होना है, होता है। हाथ-पैर हिलते हैं तो हिलते हैं। उठने का मन होता है, तो उठते हैं। बैठने का मन होता है, बैठते हैं। लेटने का मन होता है, लेटते हैं। छोड़ देते हैं पूरा परमात्मा के चरणों में। प्रभु के चरणों में समर्पण कर देते हैं, जो कराना होगा, करायेगा। नहीं कराना होगा, नहीं करायेगा। उसके अदभुत परिणाम हैं, गहरे परिणाम हैं, जीवन-क्रांति के लिए। तो एक घंटे को दोपहर जो हम प्रयोग कर रहे हैं, उसमें बिल्कुल छोड़ देना है, एक समर्पण का भाव कि अब मैं हूं ही नहीं। अब एक घंटे जो होगा, होगा। आंसू आ जायेंगे तो रोकना नहीं है। बहेंगे, बह जायेंगे। जो होगा, होगा। और किसी को भी लगे कि दो क्षण मेरे पास आना है, तो मेरे पास आकर बैठ जायेगा।
समझेगा कि उसे मैंने बुलाया है। चुपचाप फिर उठकर चला जायेगा। कोई बात नहीं होगी। वह साढ़े तीन बजे यहां आ जाना है।

अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठें। अभी मेरी जो बात इतनी सुनी है, उसने जरूर भाव बना दिया होगा। थोड़े दूर-दूर हो जायें। कोई किसी को छूता हुआ न हो।
चुपचाप बिना बात किये हुए थोड़े फासले पर हट जायें।
ठीक है, हट जायें अलग-अलग। मौन बैठ जायें। आज सुबह की तो यह अब अंतिम बैठक होगी।
फिर यह सागर की आवाज सुनायी पड़े, न पड़े। फिर इन वृक्षों से मिलना हो, न हो। फिर यह दिन आये, न आये। यह सुबह आये, न आये। इसलिए जो मौजूद है, उसमें पूरी तल्लीनता को, पूरे आनंद को, पूरे प्रेम को उपलब्ध हो जाना चाहिए। शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बंद कर लें। आंख धीमे से बंद कर लें। शरीर को शिथिल छोड़ दें। अब हम ध्यान में प्रविष्ट होते हैं। मौन सुनते रहना है हवाओं की आवाज, पक्षियों के गीत, सागर का गर्जन
सुनते रहें। मौन सुनते रहना है। बस चुपचाप सुनते रहें, सुनते रहें।
यह धूप, ये किरणें, ये हवायें; ये सब मिलकर कोई एक अदभुत अवसर पैदा कर रहीं हैं। उसमें सम्मिलित हो जायें। इस धूप के साथ, इन हवाओं के साथ एक हो जायें।
चुपचाप सुनते रहें। सुनते ही सुनते मन शांत और मौन होता जायेगा। सुनते ही सुनते मन शांत और मौन होता जायेगा। सुने. देखें पक्षी भी बोलने को आ जाते हैं। सुनें. दस मिनिट के लिए सिर्फ सुनते रह जायें। सुनें सुनते ही सुनते मन शांत होता जाता है। सुनते ही सुनते मन शांत होता जाता है। मन बिल्कुल शांत हो जायेगा। 1 सुनते रहें हवाओं को, पक्षियों को, सागर को। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत हो जायेगा। सूरज की किरणें रह जायेंगी। वृक्षों की डोलती छाया रह जायेगी। हवायें रह जायेंगी, सागर का गर्जन रह जायेगा। लेकिन आप--आप बिल्कुल मिट जायेंगे। सुनते रहें, सुनते ही सुनते भीतर कुछ पिघल जायेगा, मिट जायेगा। सब शांत हो जायेगा।
शांत सुनते रहें मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। हवायें रह गयीं, आप--आप नहीं रहे। मिट गये, बह गये। खो गयी बूंद सागर में। मन शांत हो गया है। सुनते रहें, सुनते रहें, सुनते रहें।
छोड़ दें अपने को, बिल्कुल छोड़ दें। मन शांत हो गया है। मन शांत हो गया है। मन बिल्कुल शांत हो गया है।
हवायें रह गयी हैं। सूरज की किरणें रह गयी हैं। सागर का गर्जन रह गया है। आप मिट गये हैं। छोड़ दें अपने को, मिट जायें।
मन बिल्कुल शांत हो गया है। मन शांत हो गया है। मन शांत हो गया है।
मन बिल्कुल शांत हो गया है।
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोल लें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें। जो भीतर है, वही बाहर भी है।
धीरे-धीरे आंख खोलें, देखें वृक्षों को। देखें सूरज की किरणों को। जो भीतर है, वही बाहर भी है।
सुबह की बैठक समाप्त हुई।

नेति-नेति
सातवां प्रवचन

परतंत्रता से सत्य की ओर

प्रिय आत्मन्,
एक सम्राट ने जंगल में गीत गाते एक पक्षी को बंदी बना दिया।
गीत गाना भी अपराध है, अगर आसपास के लोग गलत हों! उस पक्षी को पता भी न होगा कि गीत गाना भी परतंत्रता बन सकता है।
आकाश में उड़ने और वृक्षों पर बसेरा करने वाले उस पक्षी को सम्राट ने सोने के पिंजड़े में रखा था! उस पिंजड़े में हीरे-जवाहरात लगाये थे! करोड़ों रुपये का पिंजड़ा था वह!
लेकिन जिसने खुले आकाश की स्वतंत्रता जानी हो, उसके लिए सोने का क्या अर्थ है? हीरे-मोतियों का क्या अर्थ है? जिसने अपने पंखों से उड़ना जाना हो और जिसने सीमा-रहित आकाश में गीत गाये हों, उसके लिए पिंजड़ा चाहे सोने का हो, चाहे लोहे का, बराबर है।
वह पक्षी बहुत सिर पीट-पीटकर रोने लगा।
लेकिन सम्राट और उसके महल के लोगों ने समझा कि वह अभी गीत गा रहा है!
कुछ लोग सिर पीटकर रोते हैं, लेकिन जो नहीं जानते, वे यही समझते हैं कि गीत गाया जा रहा है!
वह पक्षी बहुत हैरान था, बहुत परेशान था। फिर धीरे-धीरे सबसे बड़ी परेशानी तो उसे यह मालूम होने लगी, उसे डर हुआ कहीं ऐसा तो नहीं हो जायेगा कि पिंजड़े में बंद रहते-रहते मेरे पंख उड़ना भूल जायें?
कारागृह और कोई बड़ा नुकसान नहीं कर सकता, एक ही नुकसान कर सकता है कि पंख उड़ना भूल जायें।
उस पक्षी को एक ही चिंता थी कि कहीं ऐसा न हो कि खुले आकाश के आनंद की स्मृति ही मैं भूल जाऊं। फिर अगर पिंजड़े से मुक्त भी हो गया तो क्या होगा! क्योंकि स्वतंत्रता तो केवल वे जानते हैं, जिनके प्राणों में स्वतंत्रता का अनुभव और आनंद है। अकेले स्वतंत्र हो जाने से ही कोई स्वतंत्रता को नहीं जान लेता। अकेले खुले आकाश में छूट जाने से ही कोई स्वतंत्र नहीं हो जाता। उस पक्षी को डर था, कहीं परतंत्र रहते-रहते परतंत्रता का मैं आदी न हो जाऊं! वह बहुत चिंता में था कि कैसे मुक्त हो सकूं।
एक दिन सुबह-सुबह एक फकीर को गीत गाते उस पक्षी ने सुना। फकीर गीत गाता था। जिन्हें मुक्त होना है, उन्हें एक ही रास्ता है--और वह रास्ता है सत्य। जिन्हें स्वतंत्र होना है, उनके लिए एक ही द्वार है--वह द्वार है सत्य। और सत्य क्या है?
उस फकीर ने अपने गीत में कहा, कि सत्य वह है, जो दिखायी पड़ता है। जैसा दिखायी पड़ता है, उसे वैसा ही देखना, वैसा ही जानना, वैसा ही जीने की कोशिश करना, वैसा ही अभिव्यक्त करना सत्य है। और जो सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं।
उसके गीत का यही अर्थ था। यही सड़कों पर गाते वह गुजरता था। मनुष्यों
ने तो नहीं सुना, लेकिन उस पक्षी ने सुन लिया। क्योंकि पक्षियों को अभी खुले आकाश का अनुभव है। मनुष्य तो खुले आकाश का सारा अनुभव ही भूल गया है! पक्षियों को तो पता है कि उनके पंख उड़ने के लिए हैं। मनुष्य को तो पता ही नहीं कि उनके पास भी पंख हैं और वे भी उड़ सकते हैं--किसी आकाश में।
महावीर भी चिल्लाते हैं, बुद्ध भी चिल्लाते हैं, क्राइस्ट भी चिल्लाते हैं, कृष्ण भी चिल्लाते हैं, लेकिन सुनता कौन है!
वह फकीर गांव में चिल्लाता रहा, सुना एक पक्षी ने, आदमियों ने नहीं!
और उस पक्षी ने उसी दिन सत्य का एक छोटा-सा प्रयोग किया। सम्राट महल
के भीतर था, कोई मिलने आया था। पहरेदारों से सम्राट ने कहलवाया, कह दो कि सम्राट घर पर नहीं है। तभी उस पक्षी ने चिल्लाकर कहा कि नहीं, सम्राट घर पर है। और यह सम्राट ने ही कहलवाया है पहरेदारों से कि कह दो मैं घर पर नहीं हूं। सम्राट तो बहुत नाराज हुआ।

सत्य से सभी लोग नाराज होते हैं। क्योंकि सभी लोग असत्य में जीते हैं। और वे जो सम्राट हैं--चाहे सत्ता के, चाहे धन के, चाहे धर्मों के, जिनके हाथों में किसी तरह की भी सत्ता है, वे सभी सत्य से बहुत नाराज होते हैं। क्योंकि सत्ता हमेशा असत्य के सिंहासन पर विराजमान होती है। इसलिए सत्ताधारी हमेशा सत्य को सूली पर चढ़ा देते हैं। क्योंकि सत्य अगर जीवित रहे तो सत्ताधिकारियों की सूली बन सकता है।
सम्राट ने कहा कि इस पक्षी को तत्क्षण महल के बाहर कर दो।
महलों में सत्य का कहां निवास! वृक्षों पर बसेरा हो सकता है, लेकिन महलों में बसेरा सत्य के लिए बहुत कठिन है। वह पक्षी बाहर कर दिया गया।
लेकिन उस पक्षी को तो मन की मुराद मिल गयी। वह तो खुले आकाश में नाचने लगा।
उसने कहा, ठीक कहा था उस फकीर ने कि अगर मुक्त होना है तो सत्य ही एक मात्र द्वार है।
वह पक्षी तो नाचता था। लेकिन एक तोता एक वृक्ष पर बैठकर रोने लगा और कहा, पागल पक्षी, तू नाचता है सोने के पिंजड़े को छोड़कर! सौभाग्य से ये पिंजड़े मिलते हैं। ये सभी को नहीं मिलते। पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण मिलते हैं! हम तो तरसते थे उस पिंजड़े के लिए, लेकिन तू नासमझ है; पिंजड़ों में रहने की भी कला होती है!
पिंजड़े में रहने की पहली कला यह है कि मालिक जो कहे, वही करना। यह सोचना ही नहीं कि यह सच है या झूठ। जिसने सोचा, वह फिर पिंजड़ों में नहीं रह सकता। क्योंकि विचार विद्रोह है और जिसके जीवन में विचार का जन्म हो जाता है, वह परतंत्र नहीं रह सकता।
तूने विचार क्यों किया पागल पक्षी? विचार करना बहुत खतरनाक है। समझदार लोग कभी विचार नहीं करते! समझदार लोग अपने कारागृहों में रहते हैं और अपने कारागृह को भवन समझते हैं, मंदिर समझते हैं! अगर ज्यादा ही तकलीफ थी तो भीतर से ही अपने पिंजड़े के सींकचों को सजा लेना था। सजाया हुआ पिंजड़ा घर जैसा मालूम पड़ने लगता! ध्यान रहे, अनेक लोग ऐसे ही पिंजड़ों को सजाकर घर समझते रहते हैं।
उस पक्षी ने तो सुना भी नहीं, वह तो खुशी से नाच रहा था, उसके पंख हवाओं में डोल रहे थे! वह तो खुले आकाश में आ गया था!
लेकिन उस तोते ने कहा कि अगर पिंजड़े में रहने का मजा लेना है तो तोतों
से कला सीखो। हम वही कहते हैं, जो मालिक कहते हैं। हम कभी वह नहीं कहते, जो सच है। हम इसकी चिंता नहीं करते कि सत्य क्या है। हम तो वही कहते हैं, जो मालिक कहते हैं। मालिक क्या करता है, यह नहीं कहना है। अपनी आंख से देखना नहीं, अपने विचार से सोचना नहीं। मालिक की आंख से देखना और मालिक के विचार से सोचना। तोता यह सब चिल्लाता रहा! और खुले पिंजड़े में जहां से वह पक्षी छूट गया था, तोता जाकर भीतर बैठ गया! पिंजड़े को द्वारपाल ने बंद कर दिया। वह तोता अब भी उस महल के पिंजड़े में है। अब वह वही करता है, जो मालिक कहता है। वह सदा वहीं बंद रहेगा, क्योंकि मुक्त होने का एक ही रास्ता है-- और वह रास्ता है सत्य। और तोते और सब-कुछ बोलते हैं, लेकिन सत्य कभी नहीं बोलते।
और तोते तो ठीक, यहां आदमियों में भी तोतों की इतनी बड़ी तादाद है, जिसका कोई हिसाब नहीं! ये तोते भी वही बोलते हैं, जो मालिक कहते हैं। हजारों-हजारों साल से, ये वही बोलते चले जाते हैं, जो मालिक कहते हैं! शास्त्रों के नाम पर तोते बैठ गये हैं, संप्रदायों के नाम पर तोते बैठ गये हैं, मंदिरों के नाम पर तोते बैठ गये हैं! सारी दुनिया, सारी आदमियत तोतों की आवाज से परेशान है। उन्हीं की आवाज सुन-सुनकर हम सब भी धीरे-धीरे तोते हो जाते हैं! और हमें पता भी नहीं रहता कि खुला आकाश भी है, हमारे पास पंख भी हैं, आत्मा भी है, मुक्ति भी है!
अगर परतंत्रता में शांति से जीना हो तो कभी सत्य का नाम भी मत लेना। अगर परतंत्रता को ही जीवन समझना हो तो सत्य की तरफ कभी आंख मत उठाना। और अगर कोई आदमी सत्य की बातें करे तो उसे दुश्मन समझना, क्योंकि सत्य खतरनाक है, क्योंकि सत्य स्वतंत्रता की तरफ ले जाता है।
स्वतंत्रता में बड़ी असुरक्षा है। परतंत्रता में बड़ी सुरक्षा है।

पिंजड़े में कितनी सुरक्षा है--न आंधी-पानी का कोई भय है, न आकाश में उठते हुए तूफानों का कोई डर है, न बरसते हुए बादल, न कड़कती हुई बिजलियां।
नहीं, कोई भय नहीं है।
पिंजड़े के भीतर आदमी बिल्कुल सुरक्षित है। खुले आकाश में बड़े भय हैं।
छोटा-सा पक्षी और इतना बड़ा आकाश! तूफान भी उठते हैं, वहां आंधियां भी आती हैं, कोई बचाने वाला भी नहीं, कोई सुरक्षा भी नहीं।
परतंत्रता बड़ी सुरक्षित, सीक्योर्ड है, स्वतंत्रता बहुत असुरक्षित, इनसीक्योर्ड है। इसीलिए तो अधिक लोग परतंत्र होने को राजी हो गये हैं! सुरक्षा चाहते हों तो अपने मन में पूछ लेना कि परतंत्रता चाहते हो? अगर सुरक्षा चाहते हों तो सत्य की बात भी मत करना। सुरक्षा चाहते हों तो परतंत्रता ही ठीक है। राजनीतिक परतंत्रता हो या धर्मों की; अर्थ की परतंत्रता हो या शब्द की; जिसे सुरक्षा चाहिए, उसे परतंत्रता ही ठीक है। और हम तो यहां तीन दिनों में सत्य की खोज का विचार करने बैठे हैं। यह खोज उनके लिए नहीं है, जो सुरक्षित जीवन को सब-कुछ मान लेते हैं। यह खोज उनके लिए है, जिनसे प्राणों में असुरक्षित होने का भय नहीं है। यह खोज उनके लिए है, जो अपने उड़ने के पंखों को नहीं भूल गये हैं और जो आकाश को नहीं भूल गये हैं और जिनके प्राणों में कहीं कोई स्मृति चोट मारती रहती है कि तोड़ दो सब बंधन, तोड़ दो सब दीवारें, उड़ जाओ वहां, जहां कोई दीवार नहीं, जहां कोई बंधन नहीं।
लेकिन कितने थोड़े लोग हैं ऐसे? लाख-लाख आंखों में झांको--कभी किसी एक आंख में स्वतंत्रता की प्यास दिखायी पड़ती है। लाख-लाख आदमियों के प्राणों को खटखटाओ, किसी एकाध प्राण से सत्य की कोई झंकार सुनाई पड़ती है। सारी मनुष्यता को क्या हो गया है?
इस सारी मनुष्यता ने सुरक्षित होने को ही सब कुछ मान लिया है! सुरक्षा
ही हमारा धर्म है--बस किसी तरह सुरक्षित रह लें, जी लें और समाप्त हो जायें!
मैंने सुना है, एक सम्राट ने एक महल बनवाया था। और महल उसने इतना सुरक्षित बनवाया था कि उस महल में किसी दुश्मन के आने की कोई संभावना नहीं थी।
हम सब भी इसी तरह के महल जीवन में बनाते हैं, जिसमें कोई दुश्मन न आ सके। जिसमें हम बिल्कुल सुरक्षित रह सकें। आखिर आदमी जीवन भर करता क्या है? धन किसके लिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाये। पद किसलिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाये। यश किसलिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाये। ताकि जीवन में कोई भय न रह जाये, जीवन निर्भय हो जाये। लेकिन मजा यही है और रहस्य भी यही है कि जितनी सुरक्षा बढ़ती है, उतना ही भय बढ़ता चला जाता है। उस सम्राट ने भी सब कुछ जीत लिया था। अब एक ही डर रह गया था कि कोई दुश्मन न मार दे।
क्योंकि जो भी दुश्मन को जीतने निकलता है, वह दुश्मन बना लेता है।
दूसरों को जीतने वाला आदमी धीरे-धीरे सबको दुश्मन बना लेता है। हां, जो दूसरों से हारने को तैयार हो, वही केवल इस जगत में मित्र बन सकता है।
उसने सारी दुनिया को जीतना चाहा था तो सारी दुनिया दुश्मन हो गयी थी।
तो भय बढ़ गया था। भय बढ़ गया था तो सुरक्षा का आयोजन करना जरूरी था। उसने बड़ा महल बनवाया। उस महल में केवल एक दरवाजा रखा, खिड़की भी नहीं, द्वार भी नहीं, कोई और कुछ रंध्र भी नहीं, ताकि कोई दुश्मन भीतर न आ जाये! एक दरवाजा, बड़ा महल और इस दरवाजे पर हजारों नंगी तलवारों का पहरा था।
पड़ोस का राजा उसके सुरक्षित महल को देखने आया। दूर-दूर तक खबर पहुंच गयी। पड़ोस का राजा भी देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा, मैं इसे देखकर बहुत आनंदित हुआ और मैं भी ऐसा महल जाकर शीघ्र बनवाता हूं। यह तो बिल्कुल सुरक्षित है, इसमें तो कोई खतरा नहीं।
जब पड़ोस का राजा विदा ले रहा था, तब फिर उस पड़ोस के राजा ने दुबारा कहा
कि बहुत खुश हूं, तुम्हारी समझ-सूझ को देखकर, तुमने अदभुत बात कर ली है। कोई राजा कभी इतना सुरक्षित महल नहीं बना पाया है। मैं भी जल्दी जाकर ऐसा ही महल बनवाता हूं। तभी सड़क के किनारे बैठा एक बूढ़ा भिखारी जोर से हंसने लगा! उस भवन के मालिक ने कहा, पागल, तू क्यों हंस रहा है?

उस बूढ़े भिखारी ने कहा, मालिक आज मौका आ गया तो आपसे कह दूं कि एक भूल
रह गयी है इस महल में। और तो सब ठीक है, एक दरवाजा है, यही गलती है। इससे दुश्मन भीतर आ सकता है। आप भीतर हो जायें और इस दरवाजे को भी चिनवा लें तो आप बिल्कुल सुरक्षित हो जायेंगे। फिर कभी कोई दुश्मन भीतर प्रवेश नहीं कर सकता।
उस सम्राट ने कहा, पागल, अगर मैं दरवाजे को भी चिनवा लूं और भीतर हो जाऊं तो यह महल नहीं कब्र हो जायेगी?
उस फकीर ने कहा, कब्र यह हो गया है, सिर्फ एक दरवाजा बचा है, इतनी ही कमी है कब्र होने में, उसको भी पूरा कर लें। एक दरवाजा है, दुश्मन घुस सकता है। दुश्मन नहीं तो कम से कम मौत तो एक दरवाजे से भीतर चली जायेगी। आप ऐसा करें कि भीतर हो जायें, फिर मौत भी नहीं जा सकती।
लेकिन उस राजा ने कहा, जाने का सवाल नहीं, मौत के जाने के पहले मैं मर जाऊंगा!
उस फकीर ने कहा, तो फिर ठीक से समझ लें। जितने ज्यादा दरवाजे थे इस महल में, उतना ही जीवन था आपके पास। जितने दरवाजे कम हुए, उतना जीवन कम हो गया। अब एक दरवाजा बचा है, थोड़ा-सा जीवन बचा है। इसको भी बंद कर दें, वह भी समाप्त हो जाये। इसलिए कहता हूं, एक भूल रह गयी है इसमें।
और फिर वह जोर-जोर से हंसने लगा। कहने लगा, महाराज कभी मेरे पास भी महल थे। फिर मैंने यह अनुभव किया कि महल कारागृह बन जाते हैं, तो धीरे-धीरे दरवाजे बड़ा करता गया, सब दीवारें अलग करता गया। फिर यह ख्याल आया कि चाहे कितने ही दरवाजे कम करूं, ज्यादा करूं, दीवारें तो रह ही जायेंगी। तो फिर मैं दीवारों के बाहर ही निकल आया। अब खुले आकाश में हूं और अब पूरी तरह जीवित हूं।
लेकिन हम सबने भी अपनी सामर्थ्य से अपनी-अपनी दीवारें बना ली हैं। और
वे जो दीवारें दीखती हैं--पत्थर और मिट्टी की दीवारें, वे इतनी खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि दिखाई पड़ती हैं। और बारीक दीवारें हैं और सूम दीवारें हैं। और पारदर्शी, ट्रांसपेरेंट, जो दिखाई नहीं पड़तीं, कांच की दीवारें हैं। विचार की दीवारें हैं, सिद्धांतों की, शास्त्रों की दीवारें हैं--वे बिल्कुल दिखायी नहीं पड़तीं। वे हमने अपनी आत्मा के चारों तरफ खड़ी कर दी हैं, ताकि हम सुरक्षित अनुभव करें!
और जितनी ही ज्यादा ये दीवारें हमने अपनी आत्मा के पास इकट्ठी कर ली हैं, उतने ही हम सत्य के खुले आकाश से दूर हो गये हैं। फिर तड़पते हैं प्राण, छटपटाती है आत्मा। लेकिन जितनी छटपटाती है आत्मा, उतनी ही हम दीवारें मजबूत करते चले जाते हैं। डर लगता है--शायद यह घबराहट, यह छटपटाहट, दीवारों के कारण तो नहीं है? दीवारों के कारण ही है।
आदमी की आत्मा जब तक परतंत्र है, तब तक कभी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकती।
परतंत्रता के अतिरिक्त और कोई दुख नहीं है।
और ध्यान रहे जो परतंत्रता दूसरा व्यक्ति आपके ऊपर थोपता है, वह कभी वास्तविक नहीं होती। जो परतंत्रता दूसरा थोपता है, वह बाहर ज्यादा होती है, वह आपके भीतर कभी नहीं पहुंचती। लेकिन जो परतंत्रता आप स्वयं स्वीकार कर लेते हैं, वह आपकी आत्मा तक प्रविष्ट हो जाती है। और हमने बहुत दिनों से परतंत्रता को स्वीकार कर लिया है!
किसने कहा आपसे कि आप हिन्दू हैं? किसने कहा आपसे कि आप मुसलमान हैं?
और किसने कहा कि आप गांधी से बंध जाओ? और किसने कहा कि बुद्ध से बंध जाओ? और किसने कहा कि माक्र्स से बंध जाओ? किसने कहा बंधने के लिए? नहीं, किसी ने नहीं, आप ही अपने हाथ से बंध गये हैं! कौन बांधता है गीता से? कौन बांधता है कुरान से? कौन बांधता है बाइबिल से? कोई नहीं, आप अपने हाथ ही बंध गये हैं! कुछ गुलामियां हैं, जो दूसरे हम पर थोपते हैं। कुछ गुलामियां हैं, जो
हम खुद स्वीकार कर लेते हैं! जो गुलामियां दूसरे हम पर थोपते हैं, वे हमारे शरीर से ज्यादा और गहराई तक नहीं जाती हैं। लेकिन जो गुलामियां हम स्वीकार कर लेते हैं, वे हमारी आत्मा तक को बांध लेती हैं! और ऐसे हम सब परतंत्र हैं।

इस परतंत्र चित्त को लेकर सत्य की खोज कैसे हो सकती है? इस बंधे हुए चित्त को लेकर यात्रा कैसे हो सकती है? इस सब तरफ से जंजीरों से भरे हुए प्राणों को लेकर कैसे उठेंगे आकाश की तरफ? बहुत भारी जंजीरें हैं!
वृक्ष बंधे हैं जमीन से, क्योंकि उनकी जड़ें जड़ी हैं जमीन से। आदमी चलते-फिरते मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उनकी आत्मा की जड़ें वृक्षों से भी ज्यादा जमीन के भीतर घुसी हैं। वह जमीन परंपरा की है, वह जमीन समाज की है। उस जमीन में हमारी आत्मा की जड़ें कसी हुई हैं। वहां से जब तक उखड़ न जायें, अपरूटेड न हो जायें, वहां से जब तक जंजीरें टूट न जायें, तब तक सत्य की कोई यात्रा नहीं हो सकती।
सत्य की यात्रा के पहले सूत्र पर इसलिए आज आपसे बात करना चाहता हूं।
और वह यह कि ठीक से यह अनुभव कर लेना कि हम एक गुलाम हैं। आदमी एक गुलाम हैं। किसका? अपनी ही मूढ़ता का, अपनी ही जड़ता का, अपने ही अज्ञान का, अपनी ही नासमझी का।
हम अपने ही कारण गुलाम हैं और यह गुलामी हमें बहुत स्पष्ट रूप से अनुभव हो जानी चाहिए, तभी हम गुलामी से मुक्त होने के लिए कुछ कर सकते हैं। सबसे अभागा गुलाम वह होता है, जिसे यह पता नहीं होता कि मैं गुलाम हूं! सबसे अभागा गुलाम वह होता है, जो समझता है कारागृह को अपना घर! सबसे बड़ा गुलाम वह होता है, जो जंजीरों को आभूषण समझ लेता है! क्योंकि जब जंजीर आभूषण समझ ली जाती है, तब उसे हम तोड़ते नहीं, संभालते हैं।
मैंने सुना है एक जादूगर था और वह जादूगर भेड़ों को बेचने का काम करता था। भेड़ें पाल रखी थीं उसने, और उनको बेचता था, उनके मांस को बेचता था। उन्हें खिला-पिलाकर मोटा करता, जब वे चरबी-मांस से भर जातीं, तब उनको काटकर बेचता था। लेकिन उसने सारी भेड़ों को बेहोश करके एक बात सिखा दी थी। वह बहुत होशियार आदमी रहा होगा। उसने सारी भेड़ों को बेहोश, हिप्नोटाइज करके एक बात सिखा दी कि तुम सब भेड़ नहीं हो, शेर हो। सारी भेड़ें अपने को शेर समझती थीं! हालांकि दूसरी भेड़ों को भेड़ ही समझती थीं, खुद को शेर समझती थीं! इसलिए दूसरी भेड़ें जब कटती थीं, तब अपने मन में सोचती थीं, हम तो शेर हैं, हमारे कटने का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो भेड़ हैं, वह कटते हैं, वह कट रहे हैं।
और इसलिए हर रोज भेड़ें कटती जाती थीं, लेकिन बाकी भेड़ों को जरा भी चिंता सवार नहीं होती थी! वे अपने को शेर ही समझती चली जाती थीं! जब उनकी काटने की बारी आती थी, तभी पता चलता था कि बुरा हुआ। लेकिन तब बहुत समय बीत चुका होता था, तब कुछ भी नहीं किया जा सकता था। भागने का वक्त निकल चुका था। अगर उन्हें दूसरी भेड़ों को काटते देखकर ख्याल आ गया होता कि हम भी भेड़ हैं तो शायद वे भेड़ें भाग गयी होतीं। उन्होंने बचाव का कोई उपाय कर लिया होता। लेकिन उनको भ्रम था कि हम शेर हैं। जब भेड़ अपने को शेर समझ ले, तब उससे कमजोर भेड़ खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसे यह ख्याल ही मिट गया कि मैं भेड़ हूं।
उस जादूगर से किसी ने कहा कि तुम्हारी भेड़ें भागती क्यों नहीं? उसने कहा, मैंने उनके साथ वही काम किया, जो हर आदमी ने अपने साथ कर लिया है! जो हम नहीं हैं, वही हमने समझ लिया है! जो ये नहीं हैं, वही मैंने इनको समझा दिया है।
हर आदमी अपने को समझता है कि मैं स्वतंत्र हूं! इससे बड़ा झूठ और कुछ भी नहीं हो सकता। और जब तक आदमी यह समझता रहता है कि मैं स्वतंत्र हूं, मैं एक स्वतंत्र आत्मा हूं, तब तक वह आदमी स्वतंत्रता की खोज में कुछ भी नहीं करेगा।
इसलिए पहला सत्य समझ लेना जरूरी है कि हम परतंत्र हैं। हम का मतलब पड़ोसी नहीं, हम का मतलब मैं। हम का मतलब यह नहीं कि और लोग जो मेरे आसपास बैठे हों। हम का मतलब वे नहीं, मैं।
मैं एक गुलाम हूं और इस गुलामी की जितनी पीड़ा है, उस पूरी पीड़ा को अनुभव करना जरूरी है। इस गुलामी के जितने आयाम हैं, जितने डायमैनशंस हैं, जितनी दिशाओं से यह गुलामी पकड़े हुए है, उन दिशाओं का भी अनुभव कर लेना जरूरी है। किस-किस रूप में यह गुलामी छाती पर सवार है, उसे समझ लेना जरूरी है। इस गुलामी की क्या-क्या कडिय़ां हैं, वे देख लेना जरूरी है। जब तक हम इस

स्प्रीचुअल स्लेवरी, आध्यात्मिक दासता से पूरी तरह परिचित नहीं हो जाते, तब तक इसे तोड़ा भी नहीं जा सकता।
अगर कोई कारागृह से भागना चाहे तो सबसे पहले क्या करेगा? सबसे पहले तो उसे यह समझ लेना होगा कि मैं कैदी हूं, कारागृह में हूं। और दूसरी बात यह करनी पड़ेगी कि कारागृह की एक-एक दीवार, एक-एक कोने से परिचित होना पड़ेगा, क्योंकि जिस कारागृह से निकलना हो, उससे बिना परिचित हुए कोई कभी निकल ही नहीं सकता। जिस कारागृह से निकल जाना है, उस कारागृह का परिचय जरूरी है। उससे जो जितना ज्यादा परिचित होगा, उतना ही आसानी से कारागृह से बाहर हो सकता है।
इसलिए कारागृह के मालिक कभी भी कैदी को कारागृह की दीवारों से, कोनों
से परिचित नहीं होने देते। कारागृह से परिचित कैदी खतरनाक है। वह कभी भी कारागृह से बाहर हो सकता है। क्योंकि ज्ञान सदा मुक्त करता है। कारागृह का ज्ञान भी मुक्त करता है। इसलिए कारागृह से परिचित होना बहुत खतरनाक है मालिकों के लिए।
और कारागृह से अपरिचित रखना हो कैदी को तो सबसे पहली तरकीब यह है कि उसे समझाओ कि यह कारागृह नहीं है, भगवान का मंदिर है! यह कारागृह है ही नहीं! और उसे समझाओ कि तुम कैदी नहीं हो, तुम तो एक स्वतंत्र व्यक्ति हो! कि दुनिया तो इतनी ही है, जितनी इस दीवार के भीतर दिखायी पड़ती है! इसके बाहर कोई दुनिया ही नहीं है, बस यही सब-कुछ है! और उसे समझाओ, अगर तकलीफ होती हो। तो दीवारों को लीपो, पोतो, साफ करो। दीवारें गंदी है, इसलिए तकलीफ होती है। दीवारों को साफ-सुथरा करो--कारागृह की दीवारों को। और अगर तकलीफ होती है तो उसका मतलब है बगीचा लगाओ कारागृह के भीतर, फूल-फुलवारी लगाओ; सुगंध आने लगेगी, आनंद आने लगेगा! कारागृह को सजाओ, क्योंकि यह कारागृह नहीं है, यह तो घर है!
और जो कैदी इन बातों को मान लेगा, वह कैदी क्या कभी मुक्त हो सकता है? उसके मुक्त होने का सवाल ही ही मिट जाता है। और हमने ऐसी ही बातें मान ली हैं!
पहली तो बात हमें स्मरण ही नहीं कि हम कारागृह में बंद है। जन्म के बाद मृत्यु तक हम न मालूम कितनी तरह के कारागृहों में बंद हैं। सब तरफ दीवारें हैं, कारागृह की दीवारें हैं। जब एक हिंदू कहता है कि मैं हिंदू हूं। जब एक मुसलमान कहता है कि मैं मुसलमान हूं, तो वह इस तरह नहीं कहता कि मैं मुसलमान की दीवार के भीतर बंद हूं। वह अकड़ से कहता है, जैसे मुसलमान, होना, हिंदू होना, जैन होना कोई बड़ी कीमत की बात है! जब एक आदमी कहता है, मैं भारतीय हूं और एक आदमी कहता है कि मैं चीनी हूं, तो बहुत अकड़ से कहता है! उसे पता भी नहीं कि ये भी दीवारें हैं और रोकती है बड़ी मनुष्यता से मिलने में।
जो भी चीज रोकती है, वह दीवार है।
अगर मैं आपसे मिलने में रुकता हूं तो जो भी चीज बीच में खड़ी है, वह दीवार है। हिंदू-मुसलमानों के बीच कोई रोकता है तो दीवार है। हिंदुस्तानी और चीनी के बीच अगर कोई रोकता है तो दीवार है। अगर शूद्र और ब्राह्मण के बीच मिलने में बाधा पड़ती है तो कोई दीवार है--चाहे व दिखाई पड़ती हो या दिखाई नहीं पड़ती हो। जहां भी बीच में मिलने में कोई चीज आड़े आती हो, वह दीवार है।
और आदमी-आदमी के आसपास कितनी तरह की दीवारें हैं! लेकिन वे दीवारें ट्रांसपैरेंट हैं, कांच की दीवारें हैं, उनके आरपार दिखायी पड़ता है। और अब हमें शक नहीं होता कि दीवार बीच में है। पत्थर की दीवार के आरपार दिखायी नहीं पड़ता है। हिंदू और मुसलमान की दीवार के आरपार दिखायी पड़ता है। उस दिखायी पड़ने के कारण ख्याल होता है कि कोई दीवार बीच में नहीं है। इसीलिए पारदर्शी दीवारें बड़ी खतरनाक हैं। उनके आरपार दिखायी भी पड़ता है, लेकिन हाथ नहीं बढ़ा सकते। हिंदू की तरफ से मुसलमान की ओर कहीं हाथ बढ़ सकता है? लेकिन बीच में दीवार आ जायेगी, हाथ यहीं मुड़कर वापिस लौट आयेगा। शूद्र और ब्राह्मण के बीच कोई मिलन हो सकता है? कोई मिलन वहां नहीं है।

लेकिन यह हमें ख्याल में नहीं आता कि हम कारागृह में है। सिद्धांतों
की दीवारें हैं। और हमें ख्याल ही नहीं कि हर आदमी अपने-अपने सिद्धांतों में बंद होकर बैठ जाता है, फिर उसे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता।
रूस में वे समझाते हैं कि ईश्वर नहीं है। वहां का बच्चा यही सुनकर बड़ा होता है कि ईश्वर नहीं है। उसकी आत्मा के चारों तरफ एक लक्ष्मण रेखा खिंच जाती है--ईश्वर नहीं है। अब वह इसी लक्ष्मण रेखा के भीतर जीवन भर जीयेगा कि ईश्वर नहीं है। और जब भी दुनिया को देखेगा तो इसी घेरे के भीतर से देखेगा कि ईश्वर नहीं है। अब इस घेरे को लेकर ही वह चलेगा!
ये जो बाहर के कारागृह हैं, इनके भीतर आपको बंद होना पड़ता है, पर इनको लेकर आप नहीं चल सकते। ये जो आत्मा के कारागृह हैं, बहुत अदभुत हैं! आप जहां भी जायें, ये आपके चारों तरफ चलते हैं, ये आपके साथ ही चलते हैं!
अब जिस आदमी के दिमाग में यह ख्याल बैठ गया कि ईश्वर नहीं है, वह आदमी इसी ख्याल की दीवार में बंद जिंदगी भर इसे कहीं जीयेगा। फिर ईश्वर दिखायी नहीं पड़ सकता, क्योंकि आदमी को वही दिखायी पड़ सकता है, जो देखने की उसकी तैयारी हो। और जिस आदमी के देखने की तैयारी कुंठित हो गयी, बंद हो गयी, इस आदमी ने तय कर लिया कि ईश्वर नहीं है। अब इसे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ेगा। लेकिन आप कहेंगे कि इससे तो हम बेहतर हैं, जो मानते हैं कि ईश्वर है!
हम भी उतनी ही बदतर हालत में हैं। क्योंकि इस आदमी ने तय कर लिया है कि ईश्वर है। अब वह कभी आंख उठाकर खोज भी नहीं करेगा कि वह कहां है? मानकर बैठ गया कि"है" और खत्म हो गया! अब वह समझ गया कि"है" बात खत्म हो गयी! अब और क्या करना है?
जिसने मान लिया कि है, वह"है" में बंद हो जाता है! जिसने मान लिया कि"नहीं है", वह"नहीं है" में बंद हो जाता है! एक नास्तिकता में बंद हो जाता है, एक आस्तिकता में बंद हो जाता है! दोनों की अपनी खोल हैं!
लेकिन सत्य की खोज वह आदमी करता है, जो कहता है, मैं खोल क्यों बनाऊं? मुझे अभी पता ही नहीं कि"है" या"नहीं है"। मैं कोई खोल नहीं बनाता। मैं बिना खोल के, बिना दीवार के खोज करूंगा, मुझे पता नहीं है। इसलिए मैं किसी सिद्धांत को अपने साथ जकड़ने को राजी नहीं हूं। किसी भी तरह का सिद्धांत आदमी को बांध लेता है और सत्य की खोज मुश्किल हो जाती है।
एक फकीर एक गांव में ठहरा हुआ था। उस गांव के लोगों ने उस फकीर को कहा
कि तुम आकर हमें नहीं बतलाओगे कि ईश्वर है या नहीं? उस फकीर ने कहा, ईश्वर! ईश्वर से तुम्हें क्या प्रयोजन हो सकता है? अपना काम करो। ईश्वर से किसी को भी कोई प्रयोजन नहीं है। अगर ईश्वर से कोई प्रयोजन होता तो यह दुनिया बिल्कुल दूसरी ही दुनिया होती। यह ऐसी दुनिया नहीं हो सकती--इतनी कुरूप, इतनी गंदी, इतनी बेहूदी!
ईश्वर से हमारा प्रयोजन होता तो हमने यह सारी दुनिया और तरह की कर ली होती। नहीं, इस दिशा में कोई प्रयोजन नहीं है। वे जो मंदिरों में बैठे हैं, उन्हें भी नहीं है। वे जो पुजारी, साधु, संन्यासी और गुरुओं का जत्था खड़ा हुआ है--उन्हें भी नहीं है। वे जो लोग नारियल फोड़ रहे हैं दीवारों के सामने, पत्थरों के सामने, उन्हें भी नहीं है।
अगर ईश्वर से हमें मतलब होता तो यह दुनिया बिल्कुल दूसरी हो गयी होती। क्योंकि ईश्वर से मतलब रखने वाली दुनिया इतनी गंदी और कुरूप नहीं हो सकती।
उस फकीर ने कहा, क्या मतलब है तुम्हें ईश्वर से? अपना काम-धाम देखो, बेकार समय मत गंवाओ। लेकिन वे लोग नहीं माने। उन्होंने कहा, आज छुट्टी का दिन है और आप जरूर चलें। फकीर ने कहा, अब मैं समझा, चूंकि छुट्टी का दिन है, इसलिए ईश्वर की फिक्र करने आये हो!
छुट्टी के दिन लोग ईश्वर की फिक्र करते हैं! क्योंकि जब कोई काम नहीं होता और आदमी से बेकाम नहीं बैठा रहा जाता तो कुछ न कुछ करता है! ईश्वर के लिए कुछ करता है! बेकाम आदमी कुछ न कुछ करता है--माला ही फेरता है!
उस फकीर ने कहा, अच्छा, छुट्टी का दिन है, तब ठीक है, मैं चलता हूं। लेकिन, ईश्वर के संबंध में कहूंगा क्या? क्योंकि ईश्वर के संबंध में आज तक कुछ भी नहीं कहा जा सका। जिन्होंने कहा है, उन्होंने गलती की। जो जानते थे,

वे चुप रह गये। अब मैं मूर्ख बनूंगा, अगर मैं कुछ कहूं। क्योंकि उससे सिद्ध होगा कि मैं नहीं जानता हूं। और तुम कहते हो कि कुछ कहो!
खैर, मैं चलता हूं। वह मस्जिद में गया। उस गांव के लोगों ने बड़ी भीड़ इकट्ठी कर ली थी। भीड़ को देखकर बड़ा भ्रम पैदा होता है।
ईश्वर को समझने के लिए भीड़ इकट्ठी हो जाये तो भ्रम पैदा होता है कि लोग ईश्वर को समझना चाहते हैं!
उस फकीर ने कहा, इतने लोग ईश्वर में उत्सुक हैं तो मैं एक प्रश्न पूछ लूं पहले, तुम ईश्वर को मानते हो? ईश्वर है? सारे गांव के लोगों ने हाथ उठा दिया ऊपर कि हम मानते हैं ईश्वर को, ईश्वर है। उस फकीर ने कहा, फिर बात खत्म। जब तुम्हें पता ही है, तब मेरे बोलने की अब कोई जरूरत नहीं। मैं वापिस जाता हूं।
गांव के लोग मुश्किल में पड़ गये। अब कुछ उपाय भी न था। कह चुके थे, जानते तो नहीं थे। लेकिन कह चुके थे कि जानते हैं, हाथ हिला दिया था। अब एकदम इंकार करेंगे तो ठीक भी नहीं है।
कौन जानता है? आप जानते हैं? लेकिन अगर कोई पूछेगा कि क्या ईश्वर है?
तो आप भी हाथ उठा देंगे। ये हाथ झूठ हैं। और जो आदमी ईश्वर के सामने तक झूठ बोलता है, उसकी जिंदगी में अब सच का कोई उपाय नहीं हो सकता। जो ईश्वर के लिए झूठी गवाही दे सकता है कि हां, मैं जानता हूं--"ईश्वर है"! और उसे कोई भी पता नहीं! उसकी जिंदगी में कहीं कोई किरण नहीं उतरी ईश्वर की। उसकी जिंदगी में कभी कोई चिराग नहीं जला ईश्वर का। उसकी जिंदगी में कभी कोई प्रार्थना नहीं आयी ईश्वर की। उसकी जिंदगी में कभी कोई फूल नहीं खिला ईश्वर का और वह कहता है कि हां"ईश्वर है"! वह कभी भीतर नहीं देखता कि मैं सरासर झूठ बोल रहा हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है!
बाप बेटों से झूठ बोल रहे हैं! गुरु शिष्यों से झूठ बोल रहे हैं! धर्मगुरु अनुयायियों से झूठ बोल रहे हैं! और उन्हें कुछ भी पता नहीं कि वह है या नहीं! किसकी बात कर रहे हो? उनको अगर जोर से हिला दो तो उनका सब ईश्वर बिखर जायेगा। भीतर से कहीं कोई आवाज नहीं आयेगी कि वह है। शायद जब वह आपसे कह रहे हैं कि"है"--तभी उनके भीतर कोई कह रहा है कि अजीब बात कर रहे हो, पता तो तुम्हें बिल्कुल नहीं है।
उस फकीर ने कहा कि जब तुम्हें पता ही है तो बात खत्म हो गयी। लेकिन मैं हैरान हूं कि इस गांव में ईश्वर को जानने वाले इतने लोग हैं, यह गांव दूसरी तरह का हो जाना चाहिए था! लेकिन तुम्हारा गांव वैसा ही है, जैसे मैंने दूसरे गांव देखे।
गांव के लोग बहुत चिंतित हुए। उन्होंने कहा, अब क्या करें? उन्होंने कहा, अगली बार फिर हम चलें। अगले शुक्रवार को उन्होंने फिर फकीर के पैर पकड़ लिए और कहा आप चलें और ईश्वर को समझायें।
उसने कहा, लेकिन मैं पिछली बार गया था और तुम्हीं लोगों ने कहा था कि ईश्वर को तुम जानते हो। बात खत्म हो गयी, अब उसके आगे बताने को कुछ भी नहीं बचता। जो ईश्वर को जान ही लेता है, उसके आगे जानने को कुछ बचता है फिर?
उन लोगों ने कहा, महाशय वे दूसरे लोग रहे होंगे। हम गांव के दूसरे लोग हैं। आप चलिये और हमें समझाइये। हमें कुछ भी पता नहीं। ईश्वर को हम जानते ही नहीं।
उस फकीर ने कहा, धन्यवाद, तेरा परमात्मा! ये वही के वही लोग हैं। शक्लें मेरी पहचानी हुई हैं; लेकिन ये बदल रहे हैं!
असल में धार्मिक आदमी के बदलने में देर नहीं लगती। धार्मिक आदमी से ज्यादा बेईमान आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। वह जरा में बदल सकता है। दुकान में वह कुछ और होता है, मंदिर में कुछ और हो जाता है। मंदिर में कुछ और होता है, बाहर निकलते ही कुछ और हो जाता है।
बदलने की कला सीखनी हो तो उन लोगों से सीखो, जो मंदिर जाते हैं। क्षण
भर में आत्मा दूसरी कर लेते हैं! फिल्मों के अभिनेता भी इतने कुशल नहीं हैं, क्योंकि वे सिर्फ चेहरा बदल पाते हैं, कपड़े, रंग-रोगन। लेकिन मंदिर में जाने वाले लोग आत्मा तक को बदल लेते हैं! दुकान पर वही आदमी, उसकी आंखों में झांको, कुछ और मालूम पड़ेगा। वही आदमी जब मंदिर में माला फेर रहा

हो, तब देखो तो मालूम पड़ेगा कि यह आदमी कोई और ही है! फिर घड़ी भर बाद वह आदमी दूसरा हो जाता है!
वह जो घड़ी भर पहले कुरान पढ़ रहा था मस्जिद में, इस्लाम को खतरे में देखकर किसी कि छाती में छुरा भोंक सकता है! वह जो घड़ी भर पहले गीता पढ़ रहा था, घड़ी भर बाद हिंदू धर्म के लिए आग लगा सकता है। धार्मिक आदमी को बदल जाने में देर नहीं लगती! और जब तक ऐसे बदल जाने वाले आदमी दुनिया में धार्मिक समझे जाते रहेंगे; तब तक दुनिया से अधर्म नहीं मिट सकता।
उस फकीर ने कहा, धन्यवाद है भगवान, बदल गये ये लोग, ठीक है! जब दूसरे ही हैं, तो मैं चलूंगा। वह गया, वह मस्जिद में खड़ा हुआ और उसने कहा, दोस्तो, मैं फिर वही सवाल पूछता हूं, क्योंकि दूसरे लोग आज आये हुए हैं। हालांकि सब चेहरे मुझे पहचाने हुए मालूम होते हैं। क्या ईश्वर है?
उस मस्जिद के लोगों ने कहा, नहीं है, ईश्वर नहीं है। ईश्वर को हम न मानते हैं, न जानते हैं। अब आप बोलिये।
उस फकीर ने कहा, बात खत्म हो गयी। जब है ही नहीं, तब उसके संबंध में बात
भी क्या करनी है? प्रयोजन क्या है अब बात करने का? किसके संबंध में पूछते हो मित्रो? जो है ही नहीं उसके संबंध में? कौन ईश्वर? कैसा ईश्वर?
मस्जिद के लोगों ने कहा, यह तो मुश्किल हो गयी। इस आदमी से पार पाना कठिन है।
उसने कहा, जाओ अपने घर। अब कभी भूलकर यहां मस्जिद मत आना। किसलिए आते
हो यहां? जो है ही नहीं, उसकी खोज करने? और तुम्हारी खोज पूरी हो गयी, क्योंकि तुम्हें पता चल गया कि वह नहीं है! खोज पूरी हो गयी, तुमने जान लिया कि वह नहीं है! अब बात खत्म हो गयी। अब कोई आगे यात्रा नहीं, मुझे क्षमा कर दो, मैं जाता हूं।
गांव के लोगों ने कहा, क्या करना पड़ेगा? इस आदमी से सुनना जरूरी है। जरूर कोई राज अपने भीतर छिपाये हुए है। यह आदमी कोई साधारण आदमी नहीं है। क्योंकि साधारण आदमी तो बोलने के लिए आतुर रहता है। आप मौका दो और वह बोलेगा। और यह आदमी बोलने के मौके छोड़कर भाग जाता है। अजीब है, जरूर कुछ बात होगी, कुछ राज है, कहीं कोई मिस्ट्री, कोई रहस्य है।
फिर तीसरे शुक्रवार उन्होंने जाकर प्रार्थना की कि चलिये हमारी मस्जिद में। लेकिन उसने कहा कि मैं दो बार आया हूं और बात खत्म हो चुकी है। उस मस्जिद के लोगों ने कहा, आज तीसरा मामला है, आप चलिये। हम तीसरा उत्तर देने की तैयारी करके आये हैं।
उस फकीर ने कहा, जो आदमी तैयारी करके उत्तर देता है, उसके उत्तर हमेशा झूठ हैं। उत्तर भी कहीं तैयार करने पड़ते हैं? तैयार करने का मतलब है कि उत्तर मालूम नहीं हैं। जिसे मालूम है, वह तैयार नहीं करता। और जिसे मालूम नहीं है, वह तैयार कर लेता है।
और ध्यान रहे, जिन-जिन बातों के उत्तर आपने तैयार किये हैं, उन-उन बातों के उत्तर सब झूठे हैं। जिंदगी में उत्तर आते हैं, तब सच होते हैं। तैयार किये हुए उत्तर कभी सच नहीं होते। सत्य कभी तैयार नहीं किया जा सकता। सत्य आता है, झूठ तैयार किया जाता है। जो हम तैयार करते हैं, वह झूठ होता है। जो आता है, वह सच होता है। सत्य, आदमी तैयार नहीं करता।
आदमी जो भी तैयार करता है, सब झूठ होता है। इसीलिए दुनिया के सारे शास्त्र, दुनिया के सारे संप्रदाय, दुनिया के सारे सिद्धांत; जो आदमी ने बनाये हैं, सब झूठ हैं। आदमी सत्य नहीं बना पाता है।
सत्य तब आता है, जब आदमी का यह भ्रम टूट जाता है कि मैं सत्य बना सकता हूं। और जब आदमी सब बनाये हुए झूठ को छोड़ देता है, तब सत्य तत्क्षण उत्तर आता है।
उस फकीर ने कहा, तुमने तैयार किया है उत्तर, तब तो वह निश्चित ही झूठ होगा। उस उत्तर को बिना सुने ही कह सकता हूं कि वह झूठ है। लेकिन मैं चलूंगा।
वह तीसरी बार गया। उस गांव के लोग बड़े होशियार रहे होंगे। लेकिन होशियारी कभी-कभी महंगी पड़ती है--यह पता नहीं! होशियारी उन चीजों के मामले में बहुत महंगी पड़ जाती है, जहां होशियारी से काम नहीं चलता, जहां सादगी

से, सरलता से काम चलता है। सत्य के जगत में होशियारी, कनिंगनेस काम नहीं करती।
सत्य की दुनिया में सरलता काम करती है। वहां वे जीत जाते हैं, जो सरल हैं। और वे हार जाते हैं, जो होशियार हैं।
पर गांव के लोग बड़े होशियार थे। उन्होंने बड़ी तैयारी की थी। उन्होंने कहा, आज तो फकीर को फंसा ही लेना है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि फकीरों को फांसना मुश्किल है। क्योंकि फकीर का मतलब यह है कि जिसने फंसने के सब रास्ते तोड़ दिये हैं। और, उन्हें यह भी पता नहीं कि दूसरों को फंसाने में अकसर आदमी खुद फंस जाता है।
खैर, वह फकीर पहुंच गया और उसने कहा दोस्तो, फिर वही सवाल, ईश्वर है या नहीं!
आधे मस्जिद के लोगों ने हाथ उठाये और कहा कि ईश्वर है और आधे मस्जिद
के लोगों ने हाथ उठाये और कहा कि ईश्वर नहीं है। अब हम दोनों उत्तर देते हैं। अब आप बोलिये?
उस फकीर ने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और कहा, भगवान बड़ा मजा है इस गांव में। और कहा, पागलो, जब तुम आधों को पता है और आधों को पता नहीं है, तो आधे जिनको पता है उनको बता दें, जिनको पता नहीं है! मुझे बीच में क्यों ले आते हो? मेरी बीच में क्या जरूरत है? जब इस मस्जिद में दोनों तरह के लोग मौजूद हैं तो आपस में तुम निपटारा कर लो, मैं जाता हूं।
उस गांव के लोग फिर चौथी बार उस फकीर के पास नहीं आये। चौथा उत्तर खोजने की उन्होंने बहुत कोशिश की, लेकिन चौथा उत्तर नहीं मिल सका। असल में तीन ही उत्तर हो सकते हैं--हां, ना या दोनों। चौथा कोई उत्तर नहीं हो सकता है। चौथा क्या उत्तर हो सकता है? तीन ही उत्तर हो सकते हैं।
वह फकीर बहुत दिन रुका और प्रतीक्षा करता रहा कि शायद वे फिर आयें, लेकिन वे नहीं आये। बाद में किसी ने उस फकीर से पूछा कि क्यों रुके हो यहां? उसने कहा कि रास्ता देखता हूं कि शायद वे चौथी बार आयें, लेकिन वे नहीं आये। उस आदमी ने कहा, चौथी बार हम कैसे आयें? चौथा उत्तर ही नहीं सूझता। हम क्या उत्तर देंगे, जब तुम बोलोगे? उस फकीर ने कहा, अगर मैं बताऊंगा वह उत्तर तो वह भी बेकार हो जायेगा। तुम्हारे लिए फिर वह सीखा हुआ उत्तर हो जायेगा।
उस फकीर ने बाद में अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं राह देखता रहा कि शायद उस गांव के लोग आयें और मुझे ले जायें। और मैं जब सवाल पूछूं, तब वे चुप रह जायें और कोई भी उत्तर न दें। अगर वे कोई भी उत्तर न दें, तब मुझे बोलना पड़ेगा, क्योंकि उनके उत्तर की चुप्पी बतायेगी कि वे खोजने वाले लोग हैं। उन्होंने पहले से कुछ मान नहीं रखा है। वे यात्रा करने के लिए तैयार हैं, वे जा सकते हैं जानने के लिए, उन्होंने कुछ भी नहीं मान रखा है। जिसने मान रखा है, वह जानने की यात्रा पर कभी नहीं निकलता। जिसका कोई बिलीफ है, जिसका कोई विश्वास है, वह कभी भी सत्य की खोज पर नहीं जाता।
इसलिए पहली बात यह कहना चाहता हूं कि सत्य की खोज पर वे जाते हैं, जो सिद्धांतों के कारागृह को तोड़ने में समर्थ हो जाते हैं।
हम सब सिद्धांतों में बंधे हुए लोग हैं, शब्दों में बंधे हुए लोग हैं,
हम सब शास्त्रों में बंधे लोग हैं--सत्य हमारे लिए नहीं हो सकता। ये शास्त्र बड़े सोने के हैं और इन शास्त्रों में बड़े हीरे-मोती भरे हैं। पिंजड़े सोने के भी हो सकते हैं और पिंजड़े में हीरे-मोती भी लगे हो सकते हैं। लेकिन कोई पिंजड़ा इसीलिए कम पिंजड़ा नहीं हो जाता कि वह सोने का है, बल्कि और खतरनाक हो जाता है। क्योंकि लोहे के पिंजड़े को तो तोड़ने का मन होता है, पर सोने के पिंजड़े को पाने की इच्छा होती है।
कारागृह में बंधा हुआ चित्त--हम अपने ही हाथों से अपने को बांधे हुए हैं!
यह पहली बात जान लेना जरूरी है कि जब तक हम इससे मुक्त न हो जायें, तब
तक सत्य की तरफ हमारी आंख नहीं उठ सकती। तब तक हम नहीं देख सकते, जो है। तब तक हम वही देखने की कोशिश करते रहेंगे, जो हम चाहते हैं कि हो। जब तक हम चाहते हैं कि कुछ हो, तब तक हम वही नहीं जान सकते हैं, जो है। जब तक हमारी यह इच्छा है कि सत्य ऐसा होना चाहिए, तब तक हम सत्य के ऊपर अपनी इच्छा थोपते

चले जायेंगे। जब तक हम कहेंगे कि भगवान ऐसा होना चाहिए--बांसुरी बजाता हुआ, धनुष-बाण लिए हुए, तब तक हम अपनी ही कल्पना को भगवान पर थोपने की चेष्टा जारी रखेंगे।
और यह हो सकता है कि हमें धनुर्धारी भगवान के दर्शन हो जायें और यह भी
हो सकता है कि बांसुरी बजाता हुआ कृष्ण दिखाई पड़े। और यह भी हो सकता है कि सूली पर लटके हुए जीसस की हमें तस्वीर दिखायी पड़ जाये। लेकिन ये सब तस्वीरें हमारे ही मन की तस्वीरें होंगी। इनका सत्य से कोई दूर का भी संबंध नहीं। यह सब हमारी कल्पना का जाल होगा, यह हमारा ही प्रोजेक्शन होगा। यह हमारी ही इच्छा का खेल होगा। यह हमारा ही स्वप्न होगा और इस स्वप्न को जो सत्य समझ लेता है, फिर तो सत्य से मिलने के उसके मौके ही समाप्त हो जाते हैं।
नहीं, सत्य को तो केवल वे ही जान सकते हैं, जिनकी आत्मा पर कोई सिद्धांत का आग्रह नहीं। जो कहते हैं, जो भी होगा, हम उसे जानने को तैयार हैं। और उसके जानने की तैयारी में हम अपनी सारी जंजीरें खोने को भी तैयार हैं।
और बड़े मजे की बात है, सत्य कहता है कि सिर्फ जंजीरें खो दो और मैं तुम्हें मिल जाऊंगा। सत्य और कुछ नहीं मांगता, सिर्फ जंजीरें मांगता है! अपनी जंजीरें खो दो और मैं तुम्हें मिल जाऊंगा।
लेकिन हम जंजीरें खोने को तैयार नहीं हैं! जंजीरों से मोह हो जाता है!
और पुरानी जंजीरों से तो बहुत मोह हो जाता है! बाप-दादे दे गये हों जंजीरों को तो बहुत मोह हो जाता है! जंजीरें बेटों को दे जाते हैं बाप, फिर बेटे अपने बेटों को संभलवा देते हैं!
आदमी मर जाते हैं। जंजीरें पीढ़ी दर पीढ़ी चलती चली जाती हैं। हजारों- हजारों, लाखों-लाखों साल पुरानी जंजीरें हैं! हम भूल ही गये हैं कि हम उनसे बंधे हैं!
लेकिन यह ध्यान में रख लेना आज, पहले सूत्र में जरूरी है कि जब तक आपके
मन में कोई एक सिद्धांत-- चाहे आस्तिक का, चाहे नास्तिक का, चाहे हिंदू का, चाहे मुसलमान का, चाहे ईसाई का, पकड़े हुए हैं। जब तक कोई भी सिद्धांत आपको पकड़े हुए है और आप कहते हैं कि मैं यह सिद्धांत सही मानता हूं, तब तक आपको सत्य का दर्शन नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य के दर्शन के पहले किसी सिद्धांत के सही होने का क्या अर्थ होता है?
जब तक सत्य मुझे नहीं मिला, तब तक मैं कैसे कहूं कि कौन-सा शास्त्र सत्य है? अगर मेरी तस्वीर आपने देखी हो और मुझे भी देखा हो तो आप कह सकते हैं कि मेरी कौन-सी तस्वीर सच है। लेकिन अगर आपने मुझे न देखा हो और आपके सामने हजार तस्वीरें रख दी जायें तो आप बता सकते हैं कि कौन-सी तस्वीर सच है? मुझे देखा हो तो आप बता सकते हैं कि तस्वीर कौन-सी सच है। लेकिन मुझे न देखा हो तो आप बता सकते हैं कि कौन-सी तस्वीर सच है? फिर आप जिस तस्वीर को सच बतायेंगे, आप झूठ की यात्रा पर चल रहे हैं।
कौन-सा शास्त्र सत्य है? कैसे पता चलेगा आपको, जब तक आपको सत्य का पता नहीं? कौन सिद्धांत सत्य है? कैसे पता चलेगा? कौन तीर्थंकर? कौन अवतार? कौन ईश्वर का पुत्र सत्य है? कैसे पता चलेगा, जब तक आपको सत्य का पता न हो? सत्य का पता नहीं है और सिद्धांत के सत्य होने का पता चल गया? सत्य का पता नहीं है और शास्त्र के सत्य होने का पता चल गया? फिर हम झूठ से बंध गये। और जो झूठ से बंध गया, उसे अब सत्य का पता नहीं चल सकता।
पहला सूत्र अपने मन की जंजीरों को गौर से देखना। और अगर हिम्मत जुटा सकें और यह मजे की बात है कि अगर जंजीरें दिखायी पड़ जायें तो हिम्मत जुटाने में बहुत ताकत नहीं लगानी पड़ती। जंजीर दिखायी नहीं पड़ती, इसलिए हिम्मत जुटाना मुश्किल होता है। एक बार पता चल जाये कि यह रही मेरी गुलामी तो अपनी गुलामी कोई बरदाश्त करने को कभी राजी नहीं होता। फिर उसे तोड़ना आसान हो जाता है।
हम जंजीरें तोड़ने के सूत्रों पर बात करेंगे। लेकिन आज इतना ही आप सोचते हुए जाना कि आप गुलाम तो नहीं हैं? आपका मन भी कैद तो नहीं है? आपने भी दीवारें तो नहीं बना रखी हैं? और आपका मन भी कुछ सत्य मानकर तो नहीं बैठ

गया है? अगर बैठ गया है तो सचेत हो जाना जरूरी है। अगर बैठ गया है तो खड़े हो जाना जरूरी है। अगर कहीं बंधन पकड़ लिए हैं तो उसे छोड़ देना जरूरी है।
और एक बार आदमी हिम्मत जुटा ले तो इतनी बड़ी शक्ति भीतर पैदा होती है।
एक बार साहस जुटा ले तो इतनी बड़ी आत्मा का जन्म होता है। और एक बार तय कर ले तो फिर कोई ताकत उसे गुलाम नहीं रख सकती। और जिस आदमी की आंखें आकाश की तरफ उठनी शुरू हो जाती हैं, खुले आकाश की तरफ, उस आदमी के निकट परमात्मा का आना शुरू हो जाता है।
परमात्मा है खुले आकाश की भांति। जो अपने पंखों को खोलकर उसमें उड़ते हैं, वे जरूर उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन पिंजड़े में बंधे लोग उस तक नहीं पहुंच पाते।
क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि हमारे पंख भी हैं या नहीं? क्या कभी आपके प्राणों में ऐसी प्यास नहीं जगती कि मैं मुक्त हो जाऊं? क्या कभी आपको गुलामी दिखायी नहीं पड़ती? इन्हीं प्रश्नों के साथ आज की अपनी पहली बात पूरी करता हूं। यही अपने से पूछते जाना और सोते समय भी यही पूछना बार-बार कि मैं भी एक गुलाम तो नहीं हूं? और अगर मैं गुलाम हूं तो क्या मैं अपने ही हाथों से गुलाम होने को राजी हुआ हूं? फिर कल सुबह मैं दूसरे सूत्र पर आपसे बात करूंगा।

नेति-नेति
आठवां प्रवचन

भ्रम से सत्य की ओर

प्रिय आत्मन्,
एक विस्तार बाहर है। आंखें बाहर देखती हैं, हाथ बाहर स्पर्श करते हैं, कान बाहर सुनते हैं।
एक विस्तार भीतर भी है, लेकिन न वहां आंख देखती है, न वहां हाथ स्पर्श करते हैं, न वहां कान सुनते हैं। शायद इसीलिए जो भीतर है, वह अनजाना, अपरिचित रह जाता है। या इसलिए भी कि वह इतने निकट है कि हमें दिखाई ही नहीं पड़ता। जो दूर है, वह दिखाई पड़ जाता है। जो निकट है, वह छिप जाता है!
देखने के लिए दूरी चाहिए, फासला चाहिए। आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं, क्योंकि मुझसे दूर हैं। मैं स्वयं को ही दिखाई नहीं पड़ूंगा, क्योंकि वहां दूरी जरा भी नहीं है। आंख सब कुछ देखती है, सिर्फ स्वयं को छोड़कर। आंख अपने को ही नहीं देख पाती, जो सबको देखती है।
हम जो सबको जानते हैं, अपने को ही नहीं जान पाते! और सत्य की खोज में जो अपने को नहीं जान पाते, और सत्य की खोज में जो अपने को ही न जानता हो, वह और क्या जान सकता है?
सत्य का पहला अनुभव स्वयं के भीतर है।
क्योंकि वही है निकटतम। वही है, जहां हमारा प्रवेश है। और सबको हम बाहर से ही जान सकते हैं, पर उनके भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। सिर्फ एक बिंदु है अस्तित्व का, जहां हम भीतर भी प्रविष्ट हो सकते हैं। वह स्वयं का बिंदु है। और इसलिए सत्य के मंदिर का पहला द्वार है स्वयं के भीतर।
लेकिन अदभुत है यह पहेली। जीवन बीत जाता है और हमें अपनी न कोई गंध मिलती, न अपनी कोई खबर मिलती। अपने से अपरिचित यह पूरा जीवन बीत जाता है! एक विचारक था शॉपेनहार। वह एक रात एक बगीचे में घूमने गया। अभी कोई तीन ही बजे होंगे, अभी सुबह होने में बहुत देर थी। वह रात भर सो नहीं सका था, किसी प्रश्न में उलझा था और जल्दी ही बगीचा पहुंच गया था। माली अपनी लालटेन और अपना भाला उठाकर देखने गया। दूर से देखने की कोशिश की कि कौन है? और तभी उसे यह भी शक हुआ कि जो आदमी घुस आया है, वह पागल भी मालूम पड़ता है। क्योंकि शॉपेनहार एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर अपने से ही बातें कर रहा था! दूसरा कोई भी न था! वह जोर-जोर से बातें कर रहा था! माली ने समझा पागल है। उसने जोर से अपने भाले को पटककर आवाज की और कहा कि कौन हैं आप? और कैसे आ गये हैं यहां? और कहां से आ गये यहां?
शॉपेनहार बहुत हंसने लगा और उसने कहा, बड़ी मुसीबत हो गयी, यही तो मैं अपने से पूछ रहा हूं जिंदगी भर से--कि मैं कौन हूं? और कहां से आ गया हूं? और कैसे आ गया हूं? और यही तुम भी पूछते हो! काश, मेरे पास इसका उत्तर होता! निश्चित ही माली ने समझा होगा कि आदमी पागल है, जिसे यह भी पता नहीं कि
वह कौन है? कहां से आ गया है? और क्यों आ गया है? लेकिन क्या हमें पता है? शॉपेनहार पर हम भी हंस सकते हैं। लेकिन शॉपेनहार की जो स्थिति थी, वही स्थिति हमारी भी है। हमें भी कुछ पता नहीं--कि कौन हैं हम? कहां से आ गये? और क्यों आ गये? और यह यात्रा कहां के लिए चल रही है?
जीवन का कोई भी जरूरी तत्व हमें परिचित नहीं, सब अपरिचित है! और सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि हम अपने से ही अपरिचित है--मैं कौन हूं! और जो यह भी नहीं जानता कि मैं कौन हूं, वह सत्य के और पहलुओं को कैसे जान सकता है?
स्वयं को जानना, सत्य के जानने की दिशा में अनिवार्य चरण है। उसके बिना कोई सत्य की तरफ नहीं जा सकता।
हममें से न मालूम कितने लोग पूछते हैं--ईश्वर है? न मालूम कितने लोग पूछते हैं--मोक्ष है? न मालूम कितने लोग और कितने प्रश्न पूछते हैं। शायद एक प्रश्न कोई भी नहीं पूछता कि--मैं कौन हूं! हूं, तो कौन हूं?
धर्म का सबसे बुनियादी प्रश्न ईश्वर नहीं है। धर्म का सबसे ज्यादा प्रश्न स्वयं का होना है।

सत्य की यात्रा बाहर की तरफ नहीं है। सत्य की यात्रा भीतर की तरफ है। बाहर जो यात्रा चल रही है, खोज चल रही है, उससे सत्य कभी भी उपलब्ध नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा काम-चलाऊ बातें ज्ञात हो जाती हैं। सत्य की उपलब्धि तो भीतर की तरफ चलने से ही ज्ञात हो सकती है।
मैंने सुना है, एक राजधानी में एक भिखारी की मृत्यु हो गयी। रोज ही कोई मरता है। उस गांव में उस भिखारी का मर जाना, कोई आश्चर्य की बात न थी। लेकिन बड़ा आश्चर्य हो गया और सारा गांव इस भिखारी की, जहां लाश पड़ी थी, वहां इकट्ठा हो गया। तीस-पैंतीस वर्षों तक वह भिखारी उस चौरस्ते पर बैठकर भीख मांगता रहा, फिर उसकी मौत हुई। लोगों ने उसके चीथड़ों में आग लगा दी, उसके टूटे-फूटे बर्तन फेंक दिये और उसकी लाश को उठाकर ले जा रहे थे, तभी किन्हीं लोगों ने कहा, इस भिखारी ने इस जमीन पर बैठकर तीस वर्षों में जमीन भी गंदी कर दी है। थोड़ी जमीन की मिट्टी भी खोदकर साफ कर ली जाये।
जैसे ही उन्होंने जमीन खोदी, वे सब हैरान रह गये, सारा नगर वहां इकट्ठा हो गया। खुद सम्राट भी वहां आया। वह भिखारी जिस जगह पर बैठकर भीख मांगता रहा, उस जगह बहुत धन गड़ा हुआ था, बहुत खजाने भरे हुए थे! लेकिन उस भिखारी ने सब तरफ हाथ फैलाये, कभी वह जगह खोदकर नहीं देखी, जहां वह बैठा था। और तब गांव के सारे लोग हंसने लगे, और कहने लगे भिखारी बिल्कुल पागल था।
लेकिन उस गांव में फिर किसी आदमी को यह ख्याल भी नहीं आया कि कहीं ऐसा
ही मेरे साथ भी तो नहीं हो रहा, जहां मैं खड़ा हूं, वहीं खजाने गड़े हों और मैं जिंदगी भर बाहर हाथ फैलाकर भीख मांगता रहूं!
हम जहां खड़े हैं, जहां हमारा अस्तित्व है, जो हमारा होना है, वहीं खजाने गड़े हैं सत्य के।
और हम शास्त्रों में खोजेंगे, गुरुओं के चरणों को पकड़ेंगे, शब्दों में खोजेंगे, सिद्धांतों में खोजेंगे और वहां कभी नहीं, जहां हम हैं! कोई भीतर न खोजेगा सत्य को! कोई कुरान में, कोई बाइबिल में, कोई महावीर के पास, कोई बुद्ध के पास, लेकिन कभी कोई वहां फिकर नहीं करेगा, जहां वह है, जहां वह खुद है।
और सत्य जब भी मिलता है, तब वहीं मिलता है, जहां हम हैं। चाहे बुद्ध को मिले--तो किसी और के पास नहीं मिलता, अपने भीतर मिलता है। और चाहे महावीर को मिले--तो किसी के पास नहीं मिलता अपने भीतर मिलता है। और चाहे क्राइस्ट को मिले--तो किसी के पास नहीं मिलता, अपने भीतर मिलता है।
सत्य जब भी मिला है, अपने भीतर मिला है और जिन्हें भी कभी मिलेगा, अपने भीतर ही मिलेगा।
और हम सब बाहर ही खोजते-खोजते समाप्त हो जाते हैं, इसलिए उसे उपलब्ध नहीं कर पाते! इसलिए दूसरे सूत्र की पहली बात समझ लेनी जरूरी है।
सत्य है तो स्वयं के भीतर है।
इसलिए किसी और से मांगने से नहीं मिल जायेगा। सत्य की कोई भीख नहीं मिल सकती। सत्य उधार भी नहीं मिल सकता। सत्य कोई सिखा भी नहीं सकता, क्योंकि जो भी हम सीखते हैं, वह बाहर से सीखते हैं। जो भी हम मांगते हैं, वह बाहर से मांगते हैं। सत्य पढ़कर नहीं जाना जा सकता, क्योंकि जो भी हम पढ़ेंगे, वह बाहर से पढ़ेंगे।
सत्य है हमारे भीतर--न उसे पढ़ना है, न मांगना है, न किसी से सीखना है-- उसे खोदना है। उस जमीन को खोदना है, जहां हम खड? हैं। और तब वे खजाने उपलब्ध हो जायेंगे, जो सत्य के खजाने हैं।
एक और छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। सुना है मैंने, भगवान ने दुनिया बनायी और आदमी को बनाया। तो आदमी को बनाते ही वह बहुत परेशान हो गया! और उसने सारे देवताओं को बुलाया और कहा, आदमी को बनाकर मैं बहुत मुसीबत में पड़ गया हूं और ऐसा मुझे लगता है कि यह आदमी चौबीस घंटे मेरे दरवाजे पर खड़े होकर शिकायतें करता रहेगा। अब मैं न सो सकूंगा, न शांति से बैठ सकूंगा। इस आदमी से मुझे बच जाना बहुत जरूरी है। मैं कहां छिप जाऊं कि आदमी मुझे न खोज पाये?
और उसके देवताओं ने बहुत से रास्ते सुझाये। किसी देवता ने कहा, आप हिमालय की गौरीशंकर चोटी पर बैठ जायें। ईश्वर ने कहा, तुम्हें पता नहीं,

बहुत जल्द तेनजिंग और हिलेरी नाम के लोग वहां पहुंच जायेंगे और मेरी मुसीबत शुरू हो जायेगी। किसी ने कहा, पैसिफिक महासागर में पांच मील नीचे गहराई में छिप जाइये। ईश्वर ने कहा, तुम्हें पता
नहीं, जल्दी वहां वैज्ञानिक पहुंच जायेंगे। किसी ने कहा, चांदत्तारों
पर बैठ जायें। ईश्वर ने कहा, तुम्हें पता नहीं, क्षण भी नहीं बीत पायेंगे और वैज्ञानिक वहां चरण रख देंगे। मुझे कोई ऐसी जगह बताओ, जहां आदमी न पहुंच सके।
फिर एक बूढ़े देवता ने ईश्वर के कान में कहा कि आप आदमी के भीतर ही छिप जायें, आदमी वहां कभी नहीं जायेगा! और ईश्वर ने वह बात मान ली और वह आदमी के भीतर बैठ गया। और सच में ही आदमी, वहां कभी नहीं जाता!
एक जगह छोड़कर आदमी सब जगह जाता है! एक जगह चूक जाता है, वहां वह नहीं जाता! वह खुद के भीतर होने का जो डायमेंशन है, वह जो खुद के भीतर होने की दिशा है, वहां हमारे पैर कभी नहीं पड़ते!
शायद हमें उसका पता ही नहीं कि भीतर भी एक मार्ग है। शायद हमें पता ही नहीं कि भीतर भी एक द्वार है। शायद हमें पता ही नहीं कि भीतर भी कुछ है। हमें उसका कोई स्मरण नहीं है और इसलिए एक जगह हम चूक जाते हैं! और उस जगह से जो चूक जाता है, वह सत्य से भी चूक जाता है।
कोई अगर पूछे कि सत्य का मंदिर कहां है? कोई अगर पूछे कि सत्य का आवास कहां है? कोई अगर पूछे कि कहां है सत्य? तो एक ही उत्तर है कि वह जो भीतर है, वह जो इनरनेस है, वह जो भीतर होना है; वही मंदिर है, वही आवास है, वही जगह है, जहां सत्य बैठा है।
एक बीज हम जमीन में बो देते हैं तो एक अंकुर निकलता है, पत्ते निकलते हैं, पौधा बड़ा हो जाता है। कभी आपने सोचा कि यह पौधा और इतना बड़ा वृक्ष जिसके नीचे हजारों लोग विश्राम करें, कहां से आ गया? इस वृक्ष की आत्मा कहां है? उस छोटे से बीज में! उस बीज को तोड़ें-फोड़ें तो उसमें वृक्ष कहीं नहीं मिलता! लेकिन वहीं कहीं छिपा है। यह जो इतना बड़ा वृक्ष प्रकट हो गया है, उस छोटे से बीज के प्राणों में छिपा है!
यह जो इतना बड़ा विस्तार है सारे जगत का, यह भी, वह जो भीतर होने का बीज है, वहीं कहीं छिपा है! वहीं से सब ओर फैलता है--बड़ा होकर। हम भी अपने भीतर किसी कोने में, किसी बीज में छिपे हैं। वहीं से प्रकट होते हैं, फैलते हैं। फिर सिकुड़ते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं।
जीवन की सारी गति भीतर से बाहर की ओर है। सारी चीजें भीतर से बाहर की
ओर फैलती हैं और विकसित होती हैं। उलटा नहीं होता, बाहर से भीतर की तरफ कुछ भी नहीं जाता। सब-कुछ भीतर से बाहर की तरफ आता है। यह जो भीतर होना है, यह जो बीइंग है, आत्मा है--यह जो भीतर होना है, इस पर ध्यान तभी जा सकता है, जब हम बाहर से मुक्त हो जायें। जब हमारी नजर बाहर से मुक्त हो जाये, तभी भीतर की तरफ जा सकती है। बाहर की तरफ भटकती दृष्टि, भीतर की तरफ नहीं जा सकती। स्वाभाविक ही जब तक हम बाहर देखते रहते हैं, तब तक हम भीतर कैसे देख सकते हैं?
और हम सब बाहर देख रहे हैं। बाहर भी हम इसलिए देख रहे हैं कि हमें यह ख्याल है कि जो भी मिलता है, वह बाहर मिलता है। जो भी पाना है, वह बाहर पाया जा सकता है। जो उपलब्धि है, वह बाहर है। इसलिए हम बाहर देख रहे हैं।
भीतर हम तभी देख सकते हैं, जब हमें यह स्पष्ट हो जाये कि बाहर किसी को कभी कुछ नहीं मिला। बाहर देखने वालों ने व्यर्थ देखा है। बाहर दौड़ने वाले व्यर्थ दौड़े हैं। वे कभी कहीं पहुंचे नहीं।
शायद आपने सुना हो सिकंदर जिस दिन मरा और जिस राजधानी में उसकी अर्थी निकली तो लोग देखकर हैरान रह गये। उसकी अर्थी के बाहर दोनों हाथ लटके हुए थे! लोग पूछने लगे कि सिकंदर की अर्थी के बाहर हाथ क्यों लटके हुए हैं? क्योंकि कभी किसी के हाथ अर्थी के बाहर लटके हुए नहीं देखे गये थे! इस सिकंदर की अर्थी के साथ कोई भूल हो गयी?
लेकिन यह कोई भिखमंगे की अर्थी न थी कि भूल हो जाती, यह सिकंदर की अर्थी थी। हजारों सम्राट आये थे, बड़े सेनापति आये थे। बड़े-बड़े सम्राट अर्थी में कंधा लगाये हुए थे। किसी को तो दिखाई पड़ जाता कि हाथ बाहर क्यों लटके हुए हैं? फिर हर आदमी यही पूछने लगा!

सांझ होते-होते लोगों को पता चला कि सिकंदर ने मरने के पहले अपने मित्रों से कहा था कि मेरी अर्थी जब निकले तो मेरे हाथ बाहर लटके रहने देना। तब मित्रों ने पूछा, कैसे पागलपन की बात करते हो? हाथ कभी अर्थी के बाहर लटके देखे हैं? सिकंदर ने कहा, लेकिन मैं यही चाहता हूं कि मेरे हाथ बाहर लटके रहें।
मित्र पूछने लगे, चाहते क्यों हो ऐसा?
सिकंदर ने कहा, मैं इसलिए चाहता हूं, ताकि सारे लोग देख लें कि सिकंदर
के हाथ भी खाली हैं।
जिंदगी भर दौड़कर, बाहर सब खोजकर भी हाथ भर नहीं पाया, हाथ खाली रह गये! सिकंदर के हाथ भी खाली रह जाते हैं! हम सबके हाथ भी खाली रह जायेंगे। बाहर कभी कोई कुछ भी न पा सका। आशा बढ़ती है कि बाहर कुछ मिल जायेगा, जीवन चूक जाता है और आशा निराशा हो जाती है।
एक भी आदमी ने नहीं कहा आज तक पृथ्वी पर कि मैंने खोजा और मुझे बाहर मिल गया। और जिन्होंने भीतर खोजा, उनमें से एक ने भी नहीं कहा कि मैंने भीतर खोजा और मुझे नहीं मिला!
इसलिए मैं धर्म को परम विज्ञान कहता हूं, सुप्रीम साइंस कहता हूं। क्योंकि विज्ञान का अर्थ होता है, जहां अपवाद न होते हों, एक्सेप्शन न होते हों। और विज्ञान में, जिसे हम साइंस कहते हैं, अपवाद मिल सकते हैं। धर्म के जगत में आज तक कोई एक भी अपवाद नहीं है। जिन्होंने बाहर खोजा, उन्होंने निरपवाद रूप से कभी कुछ नहीं पाया! जिन्होंने भीतर खोजा, उन्होंने निरपवाद रूप से सदा पाया!
इसलिए दूसरे सूत्र पर जोर देना चाहता हूं कि बाहर नहीं है सत्य की संपदा। जीवन का सत्य भीतर है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मन में स्पष्ट हो जाये तो हमारी भीतर की तरफ यात्रा शुरू हो सकती है। लेकिन हमारे मन में कहीं यह ख्याल है कि नहीं, बाहर है! बाहर सब-कुछ मालूम पड़ता है, सब बाहर दिखाई पड़ता है। इतना बड़ा विस्तार दिखाई पड़ता है जगत का बाहर कि लगता है, भीतर क्या होगा! बाहर सब मालूम पड़ता है तो भीतर क्या होगा?
इतना छोटा मालूम पड़ता है भीतर का होना--कि मेरे भीतर, आपके भीतर क्या
हो सकता है? जो भी है इस अनंत विस्तार में, बाहर है। सब बाहर दिखाई पड़ता है, अंतहीन फैला हुआ। भीतर तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। इस बड़े विस्तार के कारण ही यह भ्रम पैदा होता है कि भीतर क्या हो सकता है, छोटी-सी जगह में!
लेकिन सवाल छोटे का नहीं है। और चूंकि हम भीतर नहीं गये, इसलिए हमें मालूम पड़ता है कि भीतर छोटा है। जिस दिन जायेंगे, उस दिन पता चलेगा कि बाहर, अनंत बाहर समा जायें उस छोटे में, इतना बड़ा है! जायेंगे, तभी स्मरण हो सकता है, तभी बोध हो सकता है। अनुभव करें, तभी ख्याल हो सकता है। बाहर की तो सीमा भी है, भीतर की तो सीमा भी नहीं! लेकिन बिना अनुभव के कोई रास्ता नहीं।
कुछ चीजें हैं, जो केवल अनुभव से ही जानी जा सकती हैं। अगर मेरे हाथ में दर्द हो रहा हो तो मैं किसी दूसरे को नहीं समझा सकता कि वह दर्द कैसा हो रहा है। मैं लाख उपाय करूं तो भी नहीं समझा सकता। और मैं इस दर्द को निकालकर भी नहीं बता सकता कि वह दर्द यह रहा। और अगर मैं अपने हाथ काटूं, पीटूं तो भी वह दर्द कहीं से निकालकर मैं खुद भी नहीं देख सकता कि यह है वह दर्द।
हम सबके भीतर विचार चलते हैं और अगर सिर को काट-पीट कर देखा जाये तो नसें मिलेंगी, नाडिय़ां मिलेंगी, विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। आज तक एक भी विचार को बाहर निकालकर नहीं देखा जा सका है। और हम देखने की ही जिद्द करें तो मानना पड़ेगा कि विचार होते ही नहीं हैं। लेकिन हम सब जानते हैं कि विचार होते हैं।
हम सब जानते हैं कि भीतर प्रेम भी होता है। लेकिन वैज्ञानिक कहेगा कि हृदय को हम बहुत काटते-छांटते हैं, देखते हैं वहां, तो कोई प्रेम जैसी चीज मिलती नहीं। और न ही मैं अपने भीतर के प्रेम को निकालकर किसी को दिखा सकता हूं कि यह रहा प्रेम। किसी दूसरे की फिक्र छोड़ दूं, मैं भी नहीं देख सकता कि यह रहा! फिर भी हम जानते हैं कि भीतर प्रेम भी है, भीतर विचार भी है, भीतर अनुभव भी है, दर्द भी है, पीड़ा भी है। लेकिन वे सब अनुभव की बातें हैं।

और भीतर जो छोटा-सा प्रेम है, जब किसी के जीवन में प्रकट होता है, तब छोटा-सा नहीं रह जाता। जब भीतर प्रेम प्रकट होता है तो यह सारा जगत छोटा हो जाता है और प्रेम बड़ा हो जाता है। और जब भीतर पीड़ा होती है तो पीड़ा छोटी नहीं रह जाती। यह सारा जगत छोटा हो जाता है और पीड़ा बड़ी हो जाती है। और भीतर जब आनंद का जन्म होता है तो आनंद छोटा नहीं होता, यह सारे जगत का सारा आनंद छोटा पड़ जाता है और वह आनंद बड़ा हो जाता है। छोटा और बड़ा होना तभी पता चल सकता है, जब भीतर जो है, उसका हमें अनुभव हो।
और भीतर के जिस सत्य की हम बात कर रहे हैं, जिस दिन उसका अनुभव होता है,
उस दिन वह सत्य इतना बड़ा, इतना विराट हो जाता है कि जिस जगत को हम जानते हैं, इस तरह के अनंत जगत भी उसकी विराटता को नहीं छूते! लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं। उस दिशा में हमने कोई कदम ही नहीं उठाया।
हम उस अंधे की भांति हैं, जिसे प्रकाश का कोई पता न हो और अंधे को हम लाख समझाने की कोशिश करें तो भी उसे पता नहीं चल सकता है कि प्रकाश क्या है। प्रकाश पर लिखे बड़े-बड़े ग्रंथ उसके सामने रख दें तो भी उसे कुछ पता नहीं चलता। हमारे ग्रंथों से नासमझी पैदा हो जाये, समझ पैदा नहीं होती। रामकृष्ण कहते थे कि एक आदमी, एक अंधा आदमी, अपने मित्रों के घर मेहमान था। मित्रों ने बहुत-बहुत उसका स्वागत किया था, बहुत सत्कार किया था, स्वादिष्ट मिष्ठान्न बनाये थे। फिर वह अंधा मित्र पूछने लगा कि यह जो मैं खा रहा हूं, बहुत स्वादिष्ट है, यह काहे से बना है, यह क्या है? मित्रों ने कहा कि यह दूध से बनी हुई चीज है। वह अंधा आदमी कहने लगा, दूध के संबंध में मुझे कुछ समझाओ, कैसा होता है दूध? वे मित्र कहने लगे, दूध! बगुला देखा है? वह बगुले की तरह सफेद, बगुले के पंखों की तरह सफेद होता है, बिल्कुल शुभ्र।
वह अंधा आदमी कहने लगा पहेलियां मत बुझाओ, मुझे यह भी पता नहीं कि दूध क्या होता है? अब तुम कहते हो कि बगुले के पंखों की तरह सफेद! मुझे यह भी पता नहीं कि बगुले के पंख क्या होते हैं। मुझे यह भी पता नहीं कि यह सफेद क्या है। तुमने तो और मुश्किलें खड़ी कर दीं। मेरी पहली मुश्किल अपनी जगह है कि दूध क्या है? और दूसरी मुश्किल खड़ी हो गयी कि बगुला क्या है? और तीसरी मुश्किल खड़ी हो गयी कि यह सफेद क्या है? अब तो तुम मुझे समझाओ कि यह बगुला क्या है?
उसके मित्रों ने कहा कि यह तो बहुत मुश्किल हो गयी। यह आदमी अंधा है, इसे रंग कैसे समझाया जा सकता है? उस मित्र ने कहा कि कोई तरकीब निकालो, जिससे मैं समझ सकूं कि बगुला क्या होता है।
एक मित्र बहुत समझदार रहा होगा। वह पास आया और अपना हाथ उस अंधे के पास ले गया और कहा मेरे हाथ पर फेरो। जिस तरह मेरा हाथ सुडौल झुका हुआ है, इसी तरह बगुले की गरदन होती है।
उस आदमी ने हाथ पर हाथ फेरा, फिर वह खुशी से नाचने लगा और कहने लगा मैं समझ गया कि दूध कैसा होता है। मैं बिल्कुल समझ गया कि मुड़े हुए हाथ की तरह दूध होता है!
उस अंधे के मित्रों ने अपने हाथ सिर से ठोंक लिए और उन्होंने कहा
यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। समझाने हम चले और नासमझी पैदा हो गयी।
अंधे को बताना बहुत मुश्किल है कि रंग कैसा होता है। जो भीतर से नहीं जानता, उसे बाहर से बताने का कोई उपाय नहीं है। अंधा अगर भीतर से जानता हो कि रंग कैसा होता है तो बाहर से बताया जा सकता है। फिर बताने की भी कोई जरूरत नहीं।
यही उलझन है--जीवन में सबसे बड़ी उलझन यही है। जो जानते हैं, उन्हें बताने की कोई जरूरत नहीं। और जो नहीं जानते, उन्हें बताने का कोई उपाय नहीं है। जो नहीं जानते हैं, उन्हें बताने से और उलझन पैदा हो जाती है। और जो जानते हैं, उन्हें तो बताने का कोई सवाल नहीं है, कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जाना भीतर से जा सकता है। और बताया हमेशा बाहर से जा सकता है। इसलिए सत्य को कभी बताया नहीं जा सकता, जाना जा सकता है। जानने का अर्थ यह हुआ कि भीतर से हमारी कोई पकड़ और पहचान होनी चाहिए। और बताने का यह अर्थ हुआ कि जिनकी पकड़ और पहचान हो, वह हमें बता दें।

एक गांव में बुद्ध मेहमान थे। कुछ लोग अंधे आदमी को पकड़ लाये और कहने लगे कि इस मित्र को समझा दें कि प्रकाश है। यह आदमी इंकार करता है। यह कहता है, प्रकाश नहीं है। हम जानते हैं कि प्रकाश है, पर सिद्ध नहीं कर पाते कि प्रकाश है। यह आदमी हमसे कहता है कि मैं छूकर देखना चाहता हूं तुम्हारे प्रकाश को। कहां है, लाओ, मैं जरा छूकर देख लूं।
अब प्रकाश छूकर नहीं देखा जा सकता। लेकिन अंधा आदमी तो चीजों को छूकर
ही जानता है। उसके जीवन की पहचान का रास्ता स्पर्श है। होने का, अस्तित्व का सबूत स्पर्श है उसके लिए। वह कहता है कि मैं प्रकाश को छूकर देखना चाहता हूं। और वह गलत तो नहीं कहता, वह चीजों को छूकर ही जानता है। जिनको छू लेता है, मानता है कि वे हैं। जिनको नहीं छू पाता, मानता है कि नहीं है। छूना ही होने का प्रमाण है। और फिर वह अंधा आदमी हंसता है और कहता है, नहीं ला पाते अपने प्रकाश को, क्यों व्यर्थ की बातें करते हो? क्यों स्वप्न देखते हो? प्रकाश नहीं होगा।
उन मित्रों ने बुद्ध से कहा कि आप आये हैं गांव तो हमने सोचा कि शायद
आप समझा सकेंगे, इसलिए इस मित्र को ले आये हैं। यह कहता है कि मैं छूकर देख सकता हूं, स्वाद लेकर देख सकता हूं। बताओ तुम्हारे प्रकाश को, मैं उसकी ध्वनि सुन लूं। सुगंध हो तुम्हारे प्रकाश में तो उसकी वास ले लूं। लेकिन जब हम कहते हैं कि प्रकाश को न छुआ जा सकता है, न सुगंध ली जा सकती है, न वास; न उसकी ध्वनि है; उसे तो देखा जा सकता है। तब यह अंधा आदमी कहता है कि यह देखना क्या है? क्योंकि अंधे आदमी को यदि देखने का ही पता हो तो वह अंधा नहीं होता। और तब यह हंसता है और कहता है कि नाहक मुझे अंधा सिद्ध करने को क्यों प्रकाश की बातें करते हो? तुम्हें भी नहीं दिखाई पड़ता, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता, जो नहीं है, वह कैसे दिखाई पड़ेगा?
बुद्ध ने कहा कि मैं इसे नहीं समझाऊंगा, क्योंकि इस दिशा में इसे समझना नासमझी होगी। मैं तुमसे कहूंगा कि इसे किसी विचारक के पास ले जाने की जरूरत नहीं है। इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ। इसे उपदेश की आवश्यकता नहीं है, इसे उपचार की जरूरत है। इसकी आंख का इलाज करवाओ, ताकि यह देख सके। जिस दिन यह देख सकेगा भीतर से, उस दिन ही जान सकेगा, इसके पहले नहीं। लाख बुद्ध समझायें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ सकता।
उस अंधे आदमी को वैद्य के पास ले जाया गया। उसकी आंख पर कोई जाली थी,
जो छह महीने के प्रयोग से कट गयी।
वह आदमी नाचता हुआ बुद्ध के पास आया, उनके चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि प्रकाश है। लेकिन बुद्ध ने कहा, छूकर दिखाओ कहां है? मैं छूकर देखना चाहता हूं। वह अंधा आदमी हंसने लगा और कहने लगा कि नहीं वह छूकर नहीं जाना जा सकता। तो बुद्ध ने कहा, मैं उसका स्वाद लेना चाहता हूं। वह आदमी कहने लगा कि आप मजाक न करें, उसका स्वाद भी नहीं लिया जा सकता। तो बुद्ध ने कहा, बताओ उसे, ताकि मैं उसकी ध्वनि सुन सकूं। वह आदमी कहने लगा कि आप पुरानी बातें छोड़ दें। अब मुझे भी दिखाई पड़ता है। प्रकाश को देखा जा सकता है, मैं देख रहा हूं, वह है।
लेकिन बुद्ध ने कहा, पहले वे तुम्हें समझाते थे, तो तुम नहीं समझते थे!
उस आदमी ने कहा, मेरी कोई गलती न थी। गलती थी तो उनकी ही थी, जो समझाते थे। क्योंकि अंधे आदमी को कैसे समझाया जा सकता है? और अगर मैं उनकी बात मान लेता तो गलती में पड़ जाता। मैंने उनकी बात नहीं मानी। नहीं मानी तो उन्हें मेरा इलाज करवाना पड़ा। अगर मैं उनकी बात मान लेता तो शायद इलाज की कोई जरूरत न थी। मैं मान लेता और बात खत्म हो जाती, मैं अंधा ही रह जाता और मैं कभी नहीं जान पाता।
जाना जा सकता है सत्य को, माना नहीं जा सकता।
सीखा नहीं जा सकता, सिखाया नहीं जा सकता। सत्य की कोई लघनग नहीं होती।
इसीलिए सत्य का कोई स्कूल नहीं होता, जहां सिखा दिया जाये और लोग सीख लें।
लेकिन चिकित्सा हो सकती है। आंख का उपचार हो सकता है। वह आंख का उपचार कैसे हो सकता है, यह कल सुबह तीसरे सूत्र में बात करेंगे।
अभी दूसरे सूत्र में यह समझ लेना जरूरी है कि जाना जा सकता है, लेकिन जानना हमेशा भीतर से आता है। और जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमेशा बाहर से आता है। नोइंग भीतर से आती है और नालेज बाहर से आती है। प्रकाश के संबंध

में ज्ञान तो प्रकाश के विषय में लिखी हुई किताबों में मिल जायेगा। लेकिन प्रकाश का जानना किसी किताब में नहीं मिल सकता, वह भीतर से आता है। जानने और ज्ञान में अंतर है। यह समझ लेना कि नोइंग और नालेज में अंतर है। यह समझ लेना, जानना भीतर से आता है और ज्ञान बाहर से आता है। ज्ञान आदमी को पंडित बना देता है, ज्ञानी नहीं।
ज्ञानी आदमी बन सकता है जानने से, खुद के ही जानने से।
एक आदमी किताबें पढ़ ले तैरने के संबंध में, हजारों किताबें पढ़ ले, तैरने के विषय का पंडित हो जाये। तैरने के संबंध में जो भी लिखा है, वह सब जान ले; तैरने के संबंध में जो कभी भी कहा गया है, सब जान ले। तैरने के संबंध में खुद भी किताब लिख सके, व्याख्यान दे सके, तैरने के संबंध में पी. एच. डी. कर ले। लेकिन उस आदमी को भूल से भी पानी में धक्का मत दे देना। क्योंकि वह आदमी और सब कर सकता है, तैर नहीं सकता। तैरने के संबंध में जानना, तैरना जानना नहीं है। तैरना जानना बिल्कुल अलग बात है।
और ध्यान रहे, यह भी हो सकता है कि जो तैरना जानता हो, वह तैरने के संबंध में कुछ भी न बता सके। वह कुछ कहे कि बस तैरा जा सकता है। हम कूद जाते हैं और तैरते हैं, तुम भी कूद जाओ और तैरो। लेकिन उससे कहो कि एक व्याख्यान दो तैरने के संबंध में। वह कहेगा, व्याख्यान कैसे दें? पानी हो तो हम कूदकर बता दें। वह तैर जायेगा। लेकिन व्याख्यान क्या हो सकता है तैरने के संबंध में? तैरने के संबंध में जानना, नोइंग एबाउट एक बात है।
सत्य के संबंध में तो जाना जा सकता है, लेकिन वह सत्य का जानना नहीं है। सत्य के संबंध में जो जानते हैं, उन पंडितों की लंबी कतारें सारी दुनिया में हैं। लेकिन जो सत्य को जानते हैं, वे बहुत थोड़े लोग हैं मुश्किल से।
और जो सत्य को जानते हैं, अकसर सत्य के संबंध में जानने वाले उनके दुश्मन हो जायेंगे। अकसर यह होगा कि सत्य को जानने वाला आदमी और सत्य के संबंध में जानने वाले आदमियों के बीच दुश्मनी खड़ी हो जायेगी। क्योंकि वह जो सत्य के संबंध में, जो भी बातें जानी जाती हैं, वे सब फिजूल की, दो कौड़ी की हैं। क्योंकि जो तैरना जानता है, वह कहेगा कि तैरने के संबंध में जानने का क्या अर्थ? जिस संबंध में जानने से तैरना न आ जाता हो-- क्या प्रयोजन उस ज्ञान का, जो तैरना न सिखाता हो?
आपने सुनी होगी यह बात। मुल्ला नसरुद्दीन एक फकीर था। वह एक छोटे-से गांव में नाव चलाने का काम करता था। दो पैसा नाव पर लेता था लोगों से। एक दिन गांव का बड़ा पंडित नाव पर सवार होकर पार जा रहा था। बीच नदी में उसने मुल्ला से पूछा, मुल्ला गणित जानते हो? उस मुल्ला ने कहा, गणित! गणित कैसा होता है? उस पंडित ने कहा, अरे मूर्ख, पूछता है, गणित कैसा होता है? गणित भी नहीं जानता! तेरी जिंदगी बेकार गयी, तेरी चार आना जिंदगी बिल्कुल बेकार चली गयी। क्योंकि जो आदमी गणित नहीं जानता वह और क्या जान सकता है? मुल्ला ने कहा, आप कहते हैं तो ठीक है, चली गयी हो।
थोड़ी दूर आगे फिर उस पंडित ने कहा, ज्योतिष-शास्त्र जानते हो? मुल्ला
ने कहा, ज्योतिष-शास्त्र! यह क्या बला है? उस पंडित ने अपने सिर से हाथ ठोककर कहा कि तेरी चार आना जिंदगी और बेकार गयी। जो आदमी ज्योतिष ही नहीं जानता, वह और क्या जानेगा जीवन में? तेरी आठ आना जिंदगी बेकार हो गयी।
और तभी जोर का तूफान आया और आंधियां घिर गयीं, बादल घिर गये, नाव डगमगाने लगी। उस मुल्ला ने कहा, पंडित जी आपको तैरना आता है? पंडित जी ने कहा, बिल्कुल नहीं! उस मुल्ला ने कहा, आपकी यह सोलह आने जिंदगी बेकार हो गयी। मैं कूदकर जाता हूं। गणित मुझे नहीं आता, न ज्योतिष मुझे आता है, लेकिन तैरना मुझे आता है। और मैं जा रहा हूं, अब नाव डूबने के करीब है। अब आपकी सोलह आना जिंदगी खत्म हो गयी।
जिंदगी में यह जो नोइंग एबाउट है, चीजों के संबंध में जानना, वह किसी बहुत मूल्य का नहीं है। सत्य के सामने खड़े होने का तो कुछ मतलब है, सत्य के संबंध में जानने का कोई मतलब नहीं है।
लेकिन बाहर से जो भी कुछ हम जानते हैं, वह संबंध में ही जानते हैं, सत्य को नहीं जानते। हम जान भी नहीं सकते, यह स्पष्ट हो जाये तो उस दिशा में हमारी यात्रा होनी शुरू हो जाये। कोई आदमी आकर आपसे कह सकता है कि

सत्य ऐसा है, वैसा है, आपको इससे क्या पता चलेगा? कोई आदमी आकर कह सकता है ईश्वर ऐसा है, ईश्वर वैसा है, आप इससे क्या जान लेंगे? सिवाय शब्दों के आप कुछ भी नहीं जान पायेंगे।
और अकेले शब्दों में कुछ भी नहीं होता। हम जिंदगी में ऐसी भूल नहीं करते। भाषाकोश में लिखा हुआ है घोड़ा, उसको हम घोड़ा समझकर उसके ऊपर सवारी नहीं करते। जो घोड़ा अस्तबल में बंधा हुआ है, उसी पर सवारी करते हैं। शब्दकोश में भी लिखा हुआ है घोड़ा, लेकिन उस पर सवारी नहीं करते हैं। न हम शब्द को घोड़ा मान लेते हैं। जिंदगी के आम हिसाब में हम कभी शब्दों को सत्य नहीं मानते। लेकिन सत्य की खोज में हमने शब्दों को ही सत्य मान लिया है! एक किताब में लिखा हुआ है ईश्वर, हम उसको नमस्कार करते हैं! क्योंकि उसमें लिखा हुआ है ईश्वर! जैसे कि कोई लिखे हुए घोड़े पर सवारी करता हो! ईश्वर-लिखी किताब में पैर लग जाता है तो घबड? जाते हैं कि ईश्वर को पैर लग गया! शब्द को लगा हुआ पैर ईश्वर को लगा हुआ पैर नहीं है। शब्दों में कुछ भी नहीं, शब्द कोरे कागज पर खींची हुई लकीर से ज्यादा नहीं!
लेकिन एक आदमी कहता है कि धर्मशास्त्रों को संभालकर हम सिर पर ले जा रहे हैं। कोई शास्त्र धर्मशास्त्र नहीं है। क्योंकि धर्मशास्त्र वह शास्त्र हो सकता है, जिसमें सत्य हो। और किसी शास्त्र में सत्य नहीं हो सकता, सिर्फ शब्द होते हैं। शब्दों को हम घोड़ा कभी नहीं मानते, लेकिन शब्दों को ईश्वर जरूर मानते हैं! शब्दों की पूजा चलती है! शब्दों को कंठस्थ कर लेते हैं, शब्दों को दोहराते रहते हैं और उन दुहराये हुए शब्दों से समझाते हैं कि हम जानते हैं!
एक आदमी अगर गीता को कंठस्थ कर लेता है तो वह ज्ञानी हो जाता है! गीता
को कंठस्थ करने से कोई ज्ञानी कैसा हो जायेगा? स्टुपिड, बुद्धिहीन आदमी का लक्षण है किसी चीज को कंठस्थ करना। बुद्धिमान आदमी का लक्षण नहीं है यह। लेकिन अगर गीता कंठस्थ हो गयी, कुरान कंठस्थ हो गया और उनके अध्याय कोई दोहराने लगा तो वह ज्ञानी समझा जाता है! उसके पास क्या
है? शब्दों की रिकाघडग, शब्दों का जोड़त्तोड़ उसके पास है। शब्दों को छीन लो, उसके पास फिर कुछ भी नहीं है। उसके पास उतना ही ईश्वर है, जैसे किसी ने घोड़ा याद कर लिया हो, घोड़ा कंठस्थ कर लिया हो। जितना घोड़ा उसके पास है, उतना ही ईश्वर को कंठस्थ करने वाले के पास ईश्वर है।
लेकिन एक आदमी को घोड़ा शब्द कितना ही कंठस्थ हो जाये तो हम कभी यह नहीं मानते कि उसके पास घोड़ा है। लेकिन ईश्वर शब्द कंठस्थ हो जाये तो हम मानने लगते हैं कि इस आदमी के पास ईश्वर है! सत्य के संबंध में हमने शब्दों को ही स्वीकार कर लिया है और कुछ भी नहीं है पीछे! बाहर से शब्द ही आ सकते हैं, भीतर से आता है सत्य। यह बहुत साफ हो जाये तो हम बाहर के उलझाव से मुक्त हो सकते हैं और भीतर की यात्रा कर सकते हैं। जब तक हमें यह ख्याल है कि बाहर से मिल जायेगा, तब तक हमसे यह यात्रा नहीं हो सकती।
रूस में एक अदभुत विचारक था ऑस्पेनस्की। एक फकीर था गुरजिएफ। ऑस्पेंस्की उससे मिलने गया। जब उससे मिलने गया था, तब तक ऑस्पेनसकी की कई किताबें प्रकाशित हो चुकी थीं। और एक किताब में तो इतनी प्रसिद्धि उसको मिली थी कि लोग कहते थे कि दुनिया में उसके मुकाबले की सिर्फ तीन ही किताबें हैं। एक अरस्तू ने लिखी है किताब, जो यूनान का दार्शनिक था। उस किताब का नाम आरगानन। वह है सत्य का पहला सिद्धांत। फिर बेकन ने दूसरी किताब लिखी है, नोवम आरगानन, सत्य का दूसरा सिद्धांत। और तीसरी किताब ऑस्पेंस्की ने लिखी है, टरसीयम आरगानन, सत्य का तीसरा सिद्धांत। लोग कहते हैं कि बस ये तीन ही किताबें हैं अदभुत।
ऑस्पेंस्की की किताब छप गयी थी। उसकी बड़ी कीर्ति और प्रसिद्धि फैल गयी थी। वह गुरजिएफ से मिलने गया। गुरजिएफ एक बिल्कुल ही गांव का फकीर था। गुरजिएफ से जाकर उसने पूछा कि मैं आपसे कुछ पूछने आया हूं। ऑस्पेंसकी बड़ा पंडित था।
गुरजिएफ ने एक कोरा कागज उसको दे दिया और कहा कि पहले इस पर तुम लिख दो, जो तुम जानते हो और जो नहीं जानते हो। क्योंकि जो तुम जानते हो, उस संबंध में कोई बात नहीं करूंगा। क्योंकि तुम जानते ही हो, बात खत्म हो गयी। जिस संबंध में तुम नहीं जानते, उस संबंध में कुछ बात करूंगा तो

तुम्हें कुछ फायदा हो सकेगा। कहा, जाओ इस कोने में बैठ जाओ और जिस संबंध में तुम्हें पूछना हो, ईश्वर, आत्मा, मोक्ष--लिख दो किस संबंध में तुम जानते हो और किस संबंध में नहीं जानते।
ऑस्पेंसकी कागज लेकर बैठा और बहुत मुश्किल में पड़ गया। सोचने लगा, ईश्वर को जानता हूं। तो ख्याल आया ईश्वर के संबंध में तो जानता हूं, ईश्वर को तो बिल्कुल नहीं जानता। आत्मा को जानता हूं? तो ख्याल आया आत्मा के संबंध में जानता हूं, आत्मा को तो बिल्कुल नहीं जानता। घंटे भर कलम-दावत लिए, कागज लिए बैठा रहा। एक शब्द लिखने की हिम्मत न पड़ी!
लौटकर कोरा कागज गुरजिएफ के हाथ में दे दिया और कहा कि क्षमा करना, यह
तो मुझे आज तक ख्याल ही नहीं आया, तुमने एक मुसीबत खड़ी कर दी। मैं तो समझता था कि मैं जानता हूं। लेकिन तुमने इतने जोर से पूछा और तुम्हारी आंखों को देखकर मुझे डर पैदा हो गया कि यह भागने नहीं देगा। अगर इससे कहा कि जानता हूं तो पकड़ लेगा, मेरी हिम्मत नहीं पड़ती कि मैं कुछ लिखूं।
तब गुरजिएफ ने कहा कि वह जो तुमने अब तक बड़ी-बड़ी किताबें लिखी हैं, वे कैसे लिखीं? तुम्हारी किताबों की तो बड़ी कीर्ति है! वे किताबें तुमने कैसे लिखीं?
ऑस्पेंसकी ने कहा, अब तक मुझे यही ख्याल था कि मैं जानता हूं। लेकिन
आज जब यह सवाल सीधा सामने खड़ा हो गया, यह पहले कभी खड़ा ही नहीं हुआ। और मुझे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। शब्दों की यात्रा कर ली है मैंने। बहुत-से शब्द सीख लिए हैं, इसी को मैंने ज्ञान समझ लिया है। मेरा जहां तक जानने का संबंध है, मैं कुछ भी नहीं जानता।
गुरजिएफ ने कहा, फिर अब तुम कुछ जान सकते हो, क्योंकि जानने योग्य पहली बात तुमने जान ली है कि तुम कुछ भी नहीं जानते हो। यह पहली बात तुमने जान ली।
यह ज्ञान का पहला चरण है कि तुम कुछ भी नहीं जानते। वह बड़ी हिम्मत की बात है। यह समझ लेना कि मैं नहीं जानता, बड़ी हिम्मत की बात है। क्योंकि भीतर से अहंकार यही कहता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं नहीं जानता? इतने दिन से गीता पढ़ता हूं, इतने दिन से उपनिषद पढ़ता हूं, इतने दिन से मंदिर जाता हूं, सत्संग करता हूं, यह कैसे हो सकता है कि मैं नहीं जानता हूं?
तलवारें निकल आती हैं जानने पर कि मेरा जानना सही है! दूसरा कहता है
कि मेरा जानना सही है! जिस संबंध में कुछ भी पता नहीं, उस संबंध में हम दावेदार हो जाते हैं।
और अगर अब तक हम कुछ भी नहीं जान सके शब्दों को सीखकर तो आगे भी शब्दों
को सीखकर हम कुछ नहीं जान सकेंगे। एक जन्म नहीं, अनंत जन्मों तक हम शब्दों को सीखते रहें, तब भी हम कुछ नहीं जान सकते हैं। शब्दों को सीखने वाला ज्ञान के भ्रम में होता है, ज्ञान को कभी उपलब्ध नहीं होता।
फिर कैसे जान सकते हैं? फिर जानने का मार्ग क्या है?
अब तक तो हम यही सोचते थे कि अध्ययन, मनन ही ज्ञान के मार्ग हैं। अब तक यही हमें कहा जाता रहा है कि किताबें पढ़ो, सत्संग करो, ज्ञानियों की बातें सुनो, और तुम जान लोगे! यह सरासर झूठी बात है। कितनी ही किताबें पढ़ो और कितने ही ज्ञानियों का सत्संग करो, कभी भूलकर भी कुछ नहीं जान सकोगे।
आज तक सत्संग से कभी किसी ने कुछ नहीं जाना। आज तक शास्त्रों को पढ़कर कभी किसी ने कुछ नहीं जाना। हां, जानने का भ्रम जरूर पैदा हो जाता है। और जानने का भ्रम अज्ञान से ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि अज्ञानी को तो यह भी पता रहता है कि मैं नहीं जानता, और शायद वह कभी जानने की कोई खोज करे। लेकिन ज्ञान के भ्रम में यह कठिनाई हो जाती है। उसे लगता है, मैं जानता हूं और तब जानने को कुछ बच नहीं रह जाता।
यह दुनिया अज्ञान के कारण परेशान नहीं है, झूठे ज्ञान के कारण, स्यूडो नालेज के कारण परेशान है। यह जो हम सत्य से इतने दूर हैं, यह दूरी अज्ञान के कारण नहीं, यह दूरी झूठे ज्ञान के कारण, मिथ्या ज्ञान के कारण है। सुकरात जब बूढ़ा हो गया तो सुकरात ने खबर कर दी एथेंस में कि जाओ सबसे
कह दो कि कोई मुझे भूलकर ज्ञानी न कहे। जब मैं जवान था, तब मुझे यह भ्रम था कि मैं जानता हूं। जैसे-जैसे समझ बढ़ी उसके शब्द सोचने जैसे हैं। उसने कहा

कि जैसे-जैसे मेरी समझ बढ़ी, वैसे-वैसे ज्ञान हवा हो गया। और अब जब समझ पूरी बढ़ गयी है, मैं कहता हूं कि मुझसे बड़ा अज्ञानी खोजना मुश्किल है, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
एथेंस के बूढ़े लोगों ने उस दिन खुशी जाहिर की और कहा कि मालूम होता है, सुकरात ज्ञान के मंदिर में प्रविष्ट हो गया।
लोगों ने कहा, वह तो खुद कह रहा है, मुझसे बड़ा अज्ञानी नहीं है और तुम कहते हो कि ज्ञान के मंदिर में प्रविष्ट हो गया!
तो उन बूढ़ों ने कहा कि पागलो, तुम्हें पता ही नहीं कि ज्ञान के मंदिर में केवल वे ही प्रविष्ट होते हैं, जिनका ज्ञान का भ्रम छूट जाता है; जो कहते हैं, हम नहीं जानते। जो इतने सरल हो जाते हैं कि कह देते हैं कि हमें पता नहीं, ज्ञान के द्वार उनके लिए खुल जाते हैं। क्योंकि जो यह समझ लेता है कि मैं नहीं जानता, उसकी आंख बाहर से भीतर की तरफ लौटनी शुरू हो जाती है। बाहर के ज्ञान से छुटकारा होते ही मनुष्य भीतर के ज्ञान की दिशा में प्रविष्ट होना शुरू हो जाता है।
जब तक यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, जब तक यह ख्याल है कि बाहर से जाना
जा सकता है। जब तक यह ख्याल है कि शास्त्रों, शब्दों से जाना जा सकता है, तब तक कोई भीतर की तरफ नहीं मुड़ता, वह टघनग नहीं आती, वह मुड़ना पैदा नहीं होता।
इसलिए इस दूसरे सूत्र में शब्दों के जाल से मुक्त हो जाना जरूरी है।
और उनके जाल से हम तभी मुक्त होंगे, जब हम स्पष्ट जान लें कि शब्द सदा असत्य हैं। शब्द कभी भी सत्य नहीं हैं। शब्द से कभी सत्य नहीं कहा गया है, न कहा जा सकता है। शब्द सीखकर न कभी सत्य जाना गया है, न जाना जा सकता है। जो शब्दों से मुक्त होते हैं, और शब्दों से मुक्त होने का मतलब भीतर जाना शुरू हो जाता है। क्योंकि बाहर हैं शब्द और भीतर है शून्य, भीतर कोई शब्द नहीं हैं।
यह दूसरी बात, यह दूसरा सूत्र है कि सत्य की खोज में ज्ञान से मुक्त हो जायें। ज्ञान जो सीखा हुआ है, ज्ञान जो कल्टीवेटेड है, ज्ञान जो दूसरों से मिला है--उधार, बारोड, उससे मुक्त हो जायें; ताकि वह ज्ञान खोजा जा सके-- अनबारोड, जो कभी किसी से नहीं मिलता, जो भीतर मौजूद है। वह ज्ञान मिल सके, जो किसी किताब में नहीं लिखा, जो स्वयं के प्राणों में लिखा है। वह ज्ञान मिल सके, जिसकी भीख नहीं मांगनी पड़ती, जो खुद भीतर से आता है और जीवन पर छा जाता है। वही ज्ञान सत्य है। क्योंकि उस ज्ञान को फिर छीना नहीं जा सकता। जो दूसरों से मिला है, वह छीना जा सकता है। जो अपने से आता है, वही अपना है और कभी नहीं छीना जा सकता। जो ज्ञान दूसरों से सीखा है, वह संदिग्ध है, हमेशा संदिग्ध है। उस पर कभी श्रद्धा नहीं हो सकती। जो ज्ञान अपने से आता है, वह असंदिग्ध है। उस पर संदेह का कभी कोई सवाल नहीं उठता।
विवेकानंद अपनी खोज में थे, सत्य की। महर्षि देवेंद्रनाथ के पास वे गये। अंधेरी रात थी और महर्षि एक बजरे पर गंगा पर निवास करते थे। विवेकानंद पानी में कूदकर आधी रात में बजरे पर पहुंच गये। द्वार को धक्का दिया, जाकर महर्षि की गरदन पकड़ ली। वे ध्यान में बैठे थे। घबराकर उन्होंने आंख खोली। कोई युवक था, पानी में लथपथ, आधी रात दरवाजे पर खड़ा था। और विवेकानंद पूछने लगे कि मैं जानना चाहता हूं, ईश्वर है?
बहुत पूछने वाले लोग महर्षि देवेंद्र के पास आये होंगे, लेकिन ऐसा आदमी कभी नहीं आया। गरदन पकड़ कर किसी से ईश्वर पूछा जाता है! और आधी रात बेवक्त पानी को तैरकर आ गया है यह युवक!
वह भी घबरा गये, एक क्षण को झिझक गये। कहा कि बेटा, बैठ जाओ, फिर मैं बात करूं। विवेकानंद ने कहा, बात खत्म हो गयी, आपकी झिझक ने सब कुछ कह दिया। वह आदमी, विवेकानंद कूदकर वापस चला गया। महर्षि बुलाते रहे कि सुनो भी, बैठो भी। उसने कहा, बात खत्म हो गयी!
यही युवक दो महीने के बाद रामकृष्ण के पास गया। उसी ढंग से जाकर रामकृष्ण को पकड़ लिया और कहा कि ईश्वर है? रामकृष्ण ने कहा, उसके सिवाय और कुछ भी नहीं, तुझे जानना हो तो बोल!

यहां कोई झिझक न थी। और रामकृष्ण ने यह नहीं कहा, मैं तुझे समझाऊंगा।
रामकृष्ण ने कहा, तुझे जानना हो तो बोल! यह फिक्र छोड़ दे कि है या नहीं।
तुझे जानना है कि नहीं, यह बता।
विवेकानंद ने कहा कि पहली दफा मैं झिझककर खड़ा हो गया। अब तक मैं लोगों
को पकड़कर झिझका देता था। क्योंकि अभी तक मैंने यह सोचा ही नहीं था कि मेरी जानने की तैयारी है या नहीं। रामकृष्ण के पास कुछ बात और थी। जिनसे पहले पूछा था, उनके पास सीखे हुए शब्द होंगे, भीतर उनके खुद भी संदेह होगा। रामकृष्ण के पास अपना अनुभव था, शब्द नहीं थे। अनुभव के पास झिझक नहीं होती। अनुभव बेझिझक है, अनुभव असंदिग्ध है, वह इनडिबेटिवल है, उसमें कोई संदेह नहीं।
लेकिन ऐसा ज्ञान सदा भीतर से आता है, जो असंदिग्ध है और जो मुक्त करता है। भीतर से वह आ सके, उसके पहले बाहर के ज्ञान से मुक्त हो जाना जरूरी है। क्योंकि जो बाहर के ज्ञान को ज्ञान समझकर रुका रहता है, वह कभी भीतर की तरफ नहीं मुड़ता।
जिस आदमी ने कंकड़-पत्थर को हीरे-जवाहरात समझ रखा हो और कंकड़-पत्थरों
को तिजोरी में बंद करके बैठा हो, वह आदमी कभी हीरे-जवाहरात खोज सकता है? हीरे-जवाहरात की खोज में पहला काम तो यह होगा कि वह जान ले कि जिनको हमने अब तक पकड़ा है, वह कंकड़-पत्थर है। वह तिजोरी खाली करके फेंक दे। हीरे- जवाहरात की खोज में पहले यह जान लेना जरूरी है कि पत्थर क्या है, कंकड़ क्या है? पत्थर, कंकड़ हीरे नहीं हैं, यह जान लेना पहले जरूरी है। तभी हीरों को खोजा जा सकता है कि हीरे क्या है।
ज्ञान क्या नहीं है, ज्ञान की खोज में पहले यह ज्ञान जान लेना जरूरी है। जो भी बाहर से सीखा गया है, वह ज्ञान नहीं है। जो भी शब्दों से आया है, वह ज्ञान नहीं है। जो भी दूसरों से आया है, वह ज्ञान नहीं है। यह बहुत स्पष्ट हो जाये कि ऐसा ज्ञान झूठा है तो फिर उसे जानने की खोज हो सकती है, जो कि सत्य है।
इसलिए दूसरे सूत्र में मैं कहता हूं, ज्ञान से मुक्त हो जायें, ताकि वास्तविक ज्ञान उपलब्ध हो सके। ज्ञान से छूट जायें, ताकि ज्ञान का जन्म हो सके। इस दूसरे सूत्र को सोचते हुए थोड़ा जायेंगे कि मेरे पास जो भी ज्ञान है, वह मेरा है? यह एक प्रश्न छोड़कर आज की बात मैं पूरी करता हूं।
यह पूछते हुए जाना कि जो भी मैं जानता हूं, क्या वह मेरा है? वह मैं जानता हूं? और अगर मैं नहीं जानता तो उसका कोई उपयोग नहीं। अगर मैं नहीं जानता तो वह ज्ञान नहीं है। बासी, उधार, मरी हुई बातें हैं, इनफर्मेशन है, नालेज नहीं। सूचनाएं हैं, खबरें हैं, अफवाहें हैं।
और मजे की बात है कि हम आदमियों के संबंध में अफवाहें मान लेते हैं। सत्य के संबंध में भी अफवाहें मान लेते हैं!
यह अपने से पूछना कि जो मैं जानता हूं, वह मैं जानता हूं? बहुत कठोर है
यह प्रश्न और बहुत निर्मम भी। क्योंकि यह प्रश्न अहंकार को बहुत दुख पहुंचायेगा। क्योंकि अब तक यह ख्याल था कि मैं जानता हूं। वह यह प्रश्न सारा ख्याल छीन लेगा। एक-एक इट गिर जायेगी उस जानने की। इस एक कसौटी पर अपने सारे जानने को कस लेना कि जो मैं जानता हूं, वही ज्ञान हो सकता है। जो मैं नहीं जानता, वह दुनिया जानती हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह मेरे लिए ज्ञान नहीं है।
और अगर यह स्पष्ट हो जाये कि वह मेरे लिए ज्ञान नहीं है तो फिर तीसरे सूत्र पर काम आगे हो सकता है। उसके पहले तीसरे सूत्र पर काम नहीं हो सकता। एक सीढ़ी हम छोड़ें तो नयी सीढ़ी पर पैर रखा जा सकता है।
नयी सीढ़ी पर पैर रखने के लिए पुरानी सीढ़ी छोड़ देनी पड़ती है। पुरानी भूमि से पैर उठा लेते हैं, तभी नयी भूमि पर पैर रखा जा सकता है।
अगर जिद करके हम पुरानी भूमि पर पैर रखे रहेंगे और हमें चलने का रास्ता बताया जाये तो चलना नहीं हो सकता। ज्ञान को जाने दें, जिसको पकड़ा है, सीखा है। तो फिर वह ज्ञान आ सकता है, जो अनसीखा, अनलर्न्ड है। उस तीसरे सूत्र पर हम आगे बात करेंगे।

नेति-नेति
नौवां प्रवचन

श्रद्धा से सत्य की ओर

मित्रों ने बहुत-से प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं कि सत्य शब्दों में नहीं मिल सकता है, शास्त्रों से नहीं मिल सकता है, गुरुओं से नहीं मिल सकता है, तो फिर मैं क्यों बोलता हूं?
मेरे बोलने से भी सत्य नहीं मिल सकेगा। मेरे बोलने से भी सत्य नहीं मिलेगा, इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। किसी के भी बोलने से सत्य नहीं मिल सकता है। एक कांटा पैर में लग गया हो तो दूसरे कांटे से लगे हुए कांटे को निकाला जा सकता है। लेकिन कांटे के निकल जाने पर दोनों कांटे एक जैसे व्यर्थ हो जाते हैं और फेंक देने के योग्य हो जाते हैं।
मैं जो बोल रहा हूं, उससे सत्य नहीं मिल सकता है। लेकिन जो शब्द आपने पकड़ रखे हैं और समझ लिया है कि वह सत्य है, इन कांटों को मेरे बोलने के कांटों से निकाला जा सकता है। निकल जाने पर दोनों कांटे एक जैसे व्यर्थ और फेंक देने योग्य हो जाते हैं।
मेरे शब्दों से सत्य नहीं मिलेगा, क्योंकि किसी के शब्दों से सत्य नहीं मिल सकता है। लेकिन शब्द, शब्दों को छीन सकते हैं। और शब्द छिन जायें, और मन खाली हो जाये, और मन के ऊपर शब्दों की कोई पकड़ न रह जाये, कोई क्लिंगिंग न रह जाये तो मन स्वयं ही सत्य को उपलब्ध हो जाता है।
सत्य कहीं बाहर नहीं है, प्रत्येक के पास है, निकट है, स्वयं में है।
एक बार मन बाहर की तरफ देखना बंद कर दे तो सत्य को पा लेना कठिन नहीं है।
और जब तक कोई गुरुओं की तरफ देखता है, तब तक बाहर देखता है। जब तक कोई शास्त्रों की तरफ देखता है, तब तक बाहर देखता है। जब तक किन्हीं दूसरों के शब्दों को कोई पकड़कर बैठता है, तब तक उसे वह उपलब्ध नहीं हो सकता, जो निःशब्द में और मौन में ही मिलता है। जिन्होंने सत्य को जाना है, उन्होंने बहुत प्रकार की चेष्टाएं की हैं कि वह सत्य आप तक प्रकट हो जाये, लेकिन आज तक यह संभव नहीं हो सका।
मैंने सुना है, एक महाकवि समुद्र के किनारे गया था। सुबह ही सुबह जब
वह समुद्र किनारे पहुंचा, आकाश से सूरज की रोशनी बरसती थी। ठंडी हवाएं सागर की लहरों से खेलती थीं। सागर की लहरों पर नाचती हुई उस रोशनी में वह खुद भी नाचने लगा रेत के तट पर। एकांत था, सुंदर सुबह थी, उसे स्मरण आने लगा अपनी प्रेयसी का, जो एक अस्पताल में बीमार पड़ी थी। और उसे ख्याल आया, काश, आज इस सुंदर सुबह में वह भी यहां मौजूद होती। कवि था, उसकी आंखों से आंसू बहने लगे!
और फिर उसे ख्याल आया, क्यों न मैं एक खूबसूरत पेटी लाऊं और उस पेटी में इस छोटे-से टुकड़े को भर कर भेज दूं अपनी प्रेयसी के पास।
वह बाजार से एक पेटी ले आया खूबसूरत और उसने आकर बड़े प्रेम से समुद्र
के किनारे उस पेटी को खोला। सूरज की किरणों को, हवा को, सुबह के उस सुंदर छोटे-से रूप को उस पेटी में बंद करके ताला बंद कर दिया। एक चिट्ठी लिखी और पेटी एक आदमी के सिर पर रखकर अपनी प्रेयसी के पास भेज दी।
उस पत्र में उसने लिखा कि सुबह के एक छोटे-से खंड को तुम्हारे पास भेजता हूं। सूरज की किरणों को, समुद्र में नाचती हुई हवाओं को, सुबह के सुंदर एक छोटे से टुकडे को, एक कतरे को तुम्हारे पास भेजता हूं। नहीं तुम आ सकती हो समुद्र के तट तक, बीमार हो; तो मैं ही समुद्र के तट की एक स्मृति को तुम्हारे पास भेजता हूं। नाच उठेगी जब इस पेटी को खोलकर देखोगी।
उस प्रेयसी को बहुत हैरानी हुई, पेटी में सुबह के टुकड़े कैसे भरकर भेजे जा सकते हैं! पत्र पहुंच गया, पेटी पहुंच गयी। उसने पेटी खोली उस पेटी के भीतर कुछ भी न था--न तो सूरज की किरणें थीं, न ठंडी हवाएं थीं, न कोई सुबह थी, वहां तो घुप्प अंधकार था। उस पेटी में कुछ भी न था!
समुद्र के किनारे जो दिखाई पड़ता है, उसे पेटियों में भरकर भेजने का कोई उपाय नहीं। और परमात्मा के किनारे और सत्य के सागर के पास पहुंचकर जो

अनुभव होता है, उसे तो शब्दों की पेटियों में भरकर भेजने का और भी उपाय नहीं। शब्द आ जाते हैं कोरे और खाली। वह जो किनारे पर जाना है, वह पीछे ही रह जाता है।
जो पहुंच जाते हैं सत्य के तट पर, उनके प्राणों में भी यह पीड़ा, यह प्यास पकड़ती होगी कि जो प्रियजन पीछे रह गये हैं, उन तक खबर पहुंचा दें। वे जो नहीं आ पाये हैं यहां तक, उन तक भी थोड़ी-सी खबर पहुंचा दें। वे शब्दों को पेटियों में भरकर हम तक भेजते हैं। गीता और कुरान और बाइबिल--किताबें पहुंच जाती हैं, शब्द पहुंच जाते हैं, पेटियां पहुंच जाती हैं; लेकिन जो उन्होंने भेजा था, वह वहीं रह जाता है, वह नहीं आता! उनकी करुणा तो प्रकट होती है, लेकिन शब्द आज तक कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो पाये।
शब्द कभी भी समर्थ नहीं हो सकेंगे। अगर वह प्रेयसी उस पेटी को सिर पर रखकर नाचने लगे तो हम कहेंगे, पागल है। और अगर वह प्रेयसी उस पेटी को देखकर यह समझ ले कि कुछ भेजने की कोशिश की गयी थी, जो नहीं पहुंच सका है। और पेटी को लात मारकर फेंक दे और दौड़ पड़े सागर की तरफ तो एक दिन वहां पहुंच जायेगी-- उसी सागर किनारे, जहां सूरज की किरणें नाचती हैं और सुबह की ठंडी हवाएं बहती हैं और सागर की लहरों का नृत्य है। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब पेटी को लात मारकर फेंक दें और उस तरफ दौड़ पड़े, जहां से पेटी में कुछ लाने की कोशिश की थी, लेकिन नहीं ला पाये। और तभी वह प्रेयसी भी सागर के किनारे पहुंच सकती है।
शास्त्रों को फेंककर जो उस तरफ दौड़ जाते हैं, जहां से शास्त्र आते हैं; वे वहां पहुंच जाते हैं, जहां सत्य का किनारा है, जहां सत्य का सागर है।
लेकिन हम उन पागलों की तरह हैं, जो गीता को सिर पर रखकर नाचते रहते हैं
और वहां नहीं पहुंच पाते, जिस किनारे से कृष्ण ने खबर भेजी हो! बाइबिल को सिर पर रखकर बैठ जाते हैं, छाती पर रखकर बैठ जाते हैं और उस किनारे तक नहीं पहुंच पाते, जहां से क्राइस्ट ने यह खबर भेजी!
और क्राइस्ट और कृष्ण और महावीर और बुद्ध अगर कहीं भी होंगे तो सिर धुनकर रोते होंगे हमें देखकर-- पागलों को हमने खबर भेजी थी कि तुम सागर किनारे आ जाना। वे हमारी खबर को लिए हुए बैठे हैं, वे वहीं रुक गये हैं! अगर उनका बस चले तो लौटकर हमसे किताबें छीन लें। लेकिन अगर कृष्ण भी आ जायें और गीता छीनने लगें तो हम कृष्ण की गर्दन दबा देंगे कि हमसे गीता छीनते हो? गीता छिन जायेगी तो फिर हमारे पास क्या रह जायेगा? ऐसा हुआ है। दोस्तोवस्की ने एक किताब लिखी है रूस में। उस किताब का नाम है ब्रदर्स करमाझोव। उस अदभुत किताब में उसने यह लिखा है कि 1800 वर्ष बाद जीसस क्राइस्ट को यह ख्याल आया कि 1800 वर्ष पहले मैं पृथ्वी पर था, लेकिन तब मुझे मानने वाला एक भी आदमी नहीं था। तब जो लोग मेरे दुश्मन थे, उन्होंने मुझे सूली पर लटका दिया था। अब मुझे जाना चाहिए जमीन पर। अब तो आधी जमीन मुझे मानती है। अब तो गांव-गांव में मेरे चर्च हैं, मेरे पुजारी हैं, क्रास लटकाये हुए मेरे पुरोहित हैं। जगह-जगह मेरा प्रचार है। जगह-जगह मेरा नाम है। ऐसी कौन-सी जगह है, जहां जीसस का मंदिर न हो? लाखों संन्यासी जीसस का नाम लेकर सारी पृथ्वी पर प्रचार करते हैं। तो जीसस ने सोचा कि अब मैं जाऊं। अब ठीक समय आ गया है। अब समय पक गया है। अब मेरा स्वागत हो सकेगा।
और एक दिन रविवार की सुबह जेरुसलम के गांव में ईसा उतरकर एक झाड़ के नीचे खड़े हो गये! चर्च से लोग वापिस लौट रहे थे, सुबह की प्रार्थना पूरी करके। उन्होंने एक झाड़ के नीचे जीसस को खड़े देखा, वे बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, यह कौन आदमी रंग-ढंग बनाकर खड़ा हुआ है? यह कौन आदमी है, जो बिल्कुल जीसस जैसा बनकर खड़ा हो गया है? कोई अभिनेता, कोई नाटक का अभिनेता मालूम होता है! उन्होंने भीड़ लगा ली और मजाक करने लगे! और जीसस से कहा कि मित्र, बिल्कुल बन गये हो; बिल्कुल ऐसे लगते हो, जैसे जीसस क्राइस्ट हो। जीसस ने कहा, बन गया हूं! मैं वही हूं। लोग हंसने लगे। किसी ने पत्थर फेंका, किसी ने जूता फेंका और कहा कि बड़े पागल हो गये हो। भाग जाओ, हमारा पादरी आता है, अगर देख लेगा तो मुसीबत में पड़ जाओगे।

जीसस ने कहा, तुम्हारा पादरी या कि मेरा पादरी? तुम मुझे पहचानते नहीं, मैं वही हूं, जिसकी तुम सुबह प्रार्थना करते हो। वे सब खूब हंसने लगे। उन्होंने कहा कि तुम्हारी भली-भांति पूजा हो जायेगी, भाग जाओ। लेकिन जीसस ने कहा, लोग नहीं पहचानते, कोई हर्ज नहीं, लेकिन मेरा पादरी तो मुझे पहचान लेगा, जो सुबह-शाम मेरे ही गीत गाता है। पादरी आया तो जीसस की जो लोग मजाक उड़ा रहे थे, वे ही लोग पादरी के झुक-झुक कर पैर छूने लगे!
ऐसा ही हुआ है--दुनिया में भगवान आ जाये तो आदमी मजाक उड़ाते हैं! और भगवान की पूजा और धंधा करने वाले जो पुजारी हैं, उनके झुक-झुक कर लोग पैर छूते हैं! पादरी के लोग पैर छूने लगे! जीसस ने कहा, बड़ा गजब है। बड़ा कमाल है, जो मेरे गीत गाता है, उसके पैर छूते हो, मेरी तरफ देखते भी नहीं!
लोगों ने कहा, चुप, अगर पादरी के सामने इस तरह की बातें कहीं तो हम बहुत अपमानित अनुभव करेंगे।
और पादरी ने सिर ऊपर उठाकर देखा और कहा, यह कौन बदमाश आदमी यहां खड़ा हुआ है? इसे नीचे उतारो।
जीसस ने कहा, तुम भी मुझे नहीं पहचान रहे हो! तुम तो अपने गले पर मेरा क्रास लटकाये हुए हो। लेकिन जीसस को क्या खबर कि जीसस को जिस सूली पर लटकाया गया था, वह लकड़ी की सूली थी और पादरी सोने का क्रास लटकाये हुए था! सोने के कहीं क्रास हुए हैं दुनिया में? और क्रास पर आदमी लटकाया जाता है, क्रास कहीं गले में लटकाया जाता है?
उस पादरी ने कहा, यह आदमी कोई शैतान मालूम पड़ता है! हमारा जीसस एक बार
आ चुका है, अब उसके आने की कोई जरूरत नहीं। अब उसका काम हम भली-भांति कर रहे हैं।
जीसस को पकड़ लिया गया और चर्च की एक कोठरी में बंद कर दिया गया! जीसस
तो बहुत हैरान हुए, यह तो वही काम शुरू हो गया जो 1800 साल पहले हुआ था! क्या मुझे फिर सूली पर लटकाया जायेगा?
आधी रात पादरी आया, दरवाजा खोला, जीसस के पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि महानुभाव, मैं आपको पहचान गया था। लेकिन बाजार में हम आपको कभी नहीं पहचान सकते। आपकी अब कोई जरूरत नहीं है। काम बिल्कुल ठीक से चल रहा है। हमने दुकान अच्छी तरह जमा ली है। यू आर दी ओल्ड डिसटरबर, तुम तो पुराने गड़बड़ करने वाले हो। तुम आये तो फिर सब गड़बड़ कर दोगे। हम बा-मुश्किल जमा पाते हैं कि तुम वापिस लौट-लौट कर आ जाते हो! तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं। हम तुम्हें बाजार में नहीं पहचान सकते हैं! आपकी कोई आवश्यकता नहीं! और गड़बड़ की तो क्षमा करना, हमें वहीं व्यवहार करना पड़ेगा, जो 1800 साल पहले किया गया था!
कृष्ण के साथ भी यही होगा और महावीर के साथ भी यही होगा। और महावीर के साथ जैन यही करेंगे और कृष्ण के साथ हिंदू यही करेंगे और मोहम्मद के साथ मुसलमान यही करेंगे। जिनकी किताबों को पकड़कर हम बैठे हैं, हमें पता नहीं कि वे सब हमसे किताबें छुड़ा देना चाहते हैं। और जिनके शब्दों को पकड़कर हम बैठे हैं, उन सबने यह कहा है कि शब्दों को पकड़कर मत रुक जाना। क्योंकि मैं तो वहां उपलब्ध होता हूं, जहां सब शब्द खो जाते हैं।
निःशब्द में, मौन में, जहां सब विचार खो जाते हैं, वहां सत्य की उपलब्धि है।
सत्य मेरे शब्दों में भी नहीं होगा। किसी के शब्दों में भी कभी नहीं होता। फिर मैं किसलिए बोल रहा हूं? सिर्फ इसलिए कि आपसे शब्द छीन लूं। आपको देने के लिए नहीं, आपसे शब्द छीनने के लिए। कांटे से जैसे कोई कांटे को निकाल ले और फिर दोनों कांटे व्यर्थ हो जायें। अगर मैं आपके मन में चुभे हुए शब्दों को अपने शब्दों से खींच लूं तो बात खत्म हो गयी। आप उन शब्दों से भी मुक्त हो गये और मेरे शब्दों से भी। और वह जो शब्दों से खाली मन है, वही खाली मन प्रभु की यात्रा कर पाता है, सत्य की यात्रा कर पाता है। यह बड़े दुख की बात है, दुर्भाग्य की भी कि जो हमें छुड़ाने के लिए आते हैं, हम उन्हीं को पकड़ लेते हैं!
बुद्ध ने कहा था अपने भिक्षुओं से कि मेरी मूर्ति मत बनाना। आज जमीन
पर बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं, उतनी किसी दूसरे आदमी की नहीं! अकेले

बुद्ध की इतनी मूर्तियां हैं, जितनी किसी दूसरे आदमी की नहीं! उर्दू में तो बुत शब्द बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। बुद्ध का मतलब ही मूर्ति हो गया है। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध का मतलब ही मूर्ति हो गया! एक-एक मंदिर में दस-दस हजार बुद्ध की मूर्तियां हैं!
चीन में एक मंदिर है, दस हजार मूर्तियों वाला मंदिर! उसमें बुद्ध की
दस हजार मूर्तियां हैं। और बुद्ध ने कहा था कि मेरी पूजा मत करना!
बड़े अजीब लोग हैं हम, जो हमसे कहे कि हमें मत पकड़ना, हम उसे और जोरों से पकड़ लेते हैं कि बहुत प्यारा आदमी है। कहीं भाग न जाये, कहीं छूट न जाये। यह जो हमारी आदत है--जो शब्दों को, व्यक्तियों को पकड़ लेने की, इस आदत ने हमें गुलाम बना दिया है। और अगर पुराने आदमी छूट जाते हैं तो हम नये पैदा कर लेते हैं! लेकिन हम छोड़ते नहीं पीछा!
अगर महावीर और बुद्ध थोड़े छूट गये हैं, कृष्ण और राम थोड़े दूर पड़ गये हैं तो हम गांधी को पैदा कर लेंगे और गांधी को पकड़ लेंगे! लेकिन हमें पकड़ने को कोई न कोई चाहिए। हम खुद अपने पैरों पर खड़े नहीं होना चाहते। और मैं कहना चाहता हूं कि वही आदमी अपने को आदमी कहने का हकदार है, जो सबको छोड़कर खुद को पकड़कर खड़ा हो जाता है।
सबको जो छोड़ देता है, वही खुद को पकड़ सकता है।
और ध्यान रहे, जो दूसरों को पकड़ता है, उसकी अपने पर, स्वयं पर कोई श्रद्धा नहीं है। दूसरों को वही पकड़ता है, जो अपने प्रति अश्रद्धावान हो। खुद को जितना कमजोर पाता है, वह उतना दूसरों को पकड़कर मजबूत अनुभव करना चाहता है। खुद के प्रति जो अश्रद्धा है, वही दूसरों के प्रति श्रद्धा बनती है।
जो व्यक्ति खुद के प्रति श्रद्धावान है, वह आदमी किसी को भी नहीं पकड़ता है।
और मजे की बात है कि जो आदमी अपने को ही नहीं पकड़ पाता है, वह दूसरे को पकड़ कैसे पायेगा? जिसका अपने पर कोई वश नहीं है, वह दूसरों को क्या वश में कर पायेगा? जिसे अपना कोई सुराग नहीं, अपना ही कुछ पता नहीं, वह महावीर और बुद्ध की धूल पर बने हुए चिकृं को पकड़कर बैठ जाये तो उसे क्या मिल जायेगा? स्वयं पर श्रद्धा धर्म है, दूसरों पर श्रद्धा धर्म नहीं। जो दूसरों
पर श्रद्धा करता है, वह स्वयं पर अश्रद्धा करता है। स्वयं के पास परमात्मा ने वह सब दिया है, जो किसी और को दिया है। स्वयं के पास वह सब है छिपे हुए अर्थों में, जो किसी के भी पास प्रकट कभी हुआ हो--किसी राम के पास, किसी बुद्ध के पास, किसी महावीर के पास, किसी गांधी के पास।
जो भी प्रकट होता है, वह बीज रूप में हर आदमी के पास छिपा हुआ है।
और जब मैं यह कहता हूं कि उन्हें छोड़ दो तो मेरी उनसे कोई दुश्मनी नहीं है। जिनको मैं छोड़ने को कहता हूं, उनसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। उनसे क्या दुश्मनी हो सकती है? इतने प्यारे लोगों से क्या दुश्मनी हो सकती है? जब मैं कहता हूं कि उन्हें छोड़ दो तो उनसे मेरी कोई बुराई नहीं है। कहता हूं, छोड़ दो, क्योंकि जब तक उन्हें पकड़े हो, तब तक अपने को पाना असंभव है। और जो अपने को नहीं पा सकता, वह आदमी कभी भी परमात्मा के मंदिर में प्रवेश का अधिकारी नहीं होता।
इसी संबंध में कुछ और मित्रों ने पूछा है कि मैं क्यों गांधी के खिलाफ कहता हूं कुछ?
मुझे गांधी के खिलाफ कहने से क्या प्रयोजन है? गांधी जैसे आदमी हजारों वर्षों तक जमीन तपश्चर्या करती है, तब पैदा होते हैं। गांधी के खिलाफ कहने से मुझे क्या प्रयोजन है? लेकिन आप गांधी को पकड़ने की दौड़ में पड़ गये हैं, इसलिए गांधी के खिलाफ भी कहता हूं, राम के खिलाफ भी कहता हूं, बुद्ध और महावीर के खिलाफ भी कहता हूं। उनके खिलाफ ही नहीं, उनके प्रति भी मुझे कठोर होना पड़ता है। क्योंकि मुझे लगता है कि अब एक नयी मूर्ति बन रही है और उसको लोगों ने पकड़ना शुरू कर दिया। पुरानी मूर्तियों से छुटकारा नहीं हो पाता और नयी मूर्तियां निर्मित हो जाती हैं और आदमी की गुलामी जारी रहती है! मालिक बदल जाते हैं, गुलामी कायम रहती है!
कोई राम से मुक्त हो तो बुद्ध को पकड़ लेता है! बुद्ध से मुक्त हो तो क्राइस्ट को पकड़ लेता है! क्राइस्ट से छुटकारा हो तो मोहम्मद को पकड़ लेता

है! पहले दूसरे को पकड़ लेता है, तब एक को छोड़ता है। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि सबको छोड़ दे और अपने पैरों पर खड़ा हो जाये।
जो आदमी सबको छोड़कर, अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, वह भगवान का प्यारा
हो जाता है। क्योंकि भगवान उसे चाहता है, जो किसी को पकड़े हुए नहीं है, जो अपने बल पर खड़ा है।
मैंने सुनी है एक कहानी। एक मुसलमान फकीर था। वह रात सोया। रात उसने सपना देखा कि वह स्वर्ग चला गया है। सपने में ही लोग स्वर्ग जाते हैं। असलियत में तो नर्क चले जायें, लेकिन स्वप्न में कोई नर्क क्यों जाये? स्वप्न में तो कम से कम स्वर्ग जाना चाहिए। स्वप्न में वह चला गया। और देखता है कि स्वर्ग के रास्ते पर बड़ी भीड़-भाड़ है, लाखों लोगों की भीड़ है। उसने पूछा कि बात क्या है आज?
तो भीड़ के रास्ते चलते किसी आदमी ने कहा कि भगवान का जन्म-दिन है। उसका जलसा मनाया जा रहा है। तो उसने कहा, बड़े सौभाग्य मेरे, भगवान के बहुत दिनों से दर्शन करने थे। यह मौका मिल गया। आज भगवान का जन्म-दिन है, अच्छे मौके पर मैं स्वर्ग आ गया। वह भी रास्ते के किनारे लाखों दर्शकों की भीड़ में खड़ा हो गया।
फिर एक घोड़े पर सवार, एक बहुत शानदार आदमी, उसके साथ लाखों लोग निकले!
वह झुककर लोगों से पूछता है, क्या जो घोड़े पर सवार हैं, वे ही भगवान हैं? तो किसी ने कहा, नहीं, ये भगवान नहीं है, ये हजरत मोहम्मद हैं और उनके पीछे उनको मानने वाले लोग हैं। वह जुलूस निकल गया।
फिर दूसरा जुलूस है और रथ पर सवार एक बहुत महिमाशाली व्यक्ति है। वह पूछता है, क्या यही भगवान हैं?
किसी ने कहा, नहीं ये भगवान नहीं, ये राम हैं और राम के मानने वाले लोग उनके पीछे हैं।
फिर वैसे ही कृष्ण भी निकलते हैं और उनके मानने वाले लोग! और क्राइस्ट
और बुद्ध और महावीर और जरथुस्त्र और कनफ्यूशियस और न मालूम कितने महिमाशाली लोग निकलते हैं और उनको मानने वाले लोग निकलते हैं। आधी रात बीत जाती है, फिर धीरे-धीरे रास्ते में सन्नाटा हो जाता है। फिर वह आदमी सोचता है कि अभी तक भगवान नहीं निकले! वे कब निकलेंगे?
और जब सारे लोग जाने के करीब हो गये हैं, रास्ता उजड़ने लगा है, कोई रास्ते पर ध्यान नहीं दे रहा है, तब एक बूढ़े-से घोड़े पर एक बूढ़ा-सा आदमी अकेले, चला आ रहा है। उसके साथ कोई भी नहीं है। वह हैरान होता है कि ये महाशय कौन हैं? जिनके साथ कोई भी नहीं! यह अपने आप ही घोड़े पर बैठकर चले आ रहे हैं, बिल्कुल अकेले। तो वह चलता हुआ आदमी कहता है कि हो न हो, यह भगवान होंगे। क्योंकि भगवान से अकेला और दुनिया में कोई भी नहीं। वह जाकर भगवान को ही पूछता है, उस घोड़े पर बैठे हुए बूढ़े आदमी से कि महाशय, आप भगवान हैं? मैं बहुत हैरान हूं, मोहम्मद के साथ बहुत लोग थे, क्राइस्ट के साथ बहुत लोग थे, राम के साथ बहुत लोग थे, सबके साथ बहुत लोग थे, आपके साथ कोई भी नहीं! भगवान की आंखों से आंसू गिरने लगे और भगवान ने कहा, सारे लोग उन्हीं
के बीच बंट गये, कोई बचा ही नहीं, जो मेरे साथ हो सके। कोई राम के साथ है, कोई कृष्ण के साथ, मेरे साथ तो कोई भी नहीं। और मेरे साथ वही हो सकता है, जो किसी के साथ न हो, मैं अकेला ही हूं।
घबराहट में उस फकीर की नींद खुल गयी। नींद खुल गयी तो पाया, वह जमीन पर अपने झोपड़े में है। वह पास-पड़ोस में जाकर कहने लगा कि मैंने एक बहुत दुखद स्वप्न देखा है, बिल्कुल झूठा स्वप्न देखा है। मैंने यह देखा कि भगवान अकेला है। यह कैसे हो सकता है?
वह फकीर मुझे भी मिला और मैंने उससे कहा कि तुमने सच्चा ही स्वप्न देखा है। भगवान से ज्यादा अकेला कोई भी नहीं। क्योंकि जो हिंदू है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो मुसलमान है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो जैन है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो कोई भी नहीं है, जिसका कोई विशेषण नहीं है, जो किसी का अनुयायी नहीं है, जो किसी का शिष्य नहीं है, जो बिल्कुल अकेला है।
जो बिल्कुल नितांत अकेला है, वही केवल उस नितांत अकेले से जुड़ सकता है, जो भगवान है।

अकेले में, तनहाई में, लोनलीनेस में, बिल्कुल अकेले में वह द्वार खुलता है, जो भगवान से जोड़ता है।
भीड़-भाड़ से भगवान का कोई संबंध नहीं। जब हम हिंदू होते हैं, तब हम एक भीड़ के हिस्से होते हैं। जब हम मुसलमान होते हैं, तब हम दूसरी भीड़ के हिस्से होते हैं। जब हम राम के पीछे चलते हैं, तब हम अपनी ही कल्पना के पीछे चलते हैं। और जब हम बुद्ध के पीछे चलते हैं, तब भी हम अपनी ही कल्पना के पीछे चलते हैं। सत्य से इसका कोई संबंध नहीं है।
और जब मैं कहता हूं छोड़ दें इन्हें, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि राम आदमी के काम के नहीं हैं। बहुत काम के हैं, पर यही ही खतरे हैं, इनसे पकड़ पैदा हो जाती है। जब मैं कहता हूं, छोड़ दो उन्हें, तो मेरा मतलब यह है कि हाथ खाली चाहिए।
जब तक हम किसी को पकड़े हुए हैं, तब तक हाथ भरे हुए हैं। और भरे हुए हाथ परमात्मा के चरणों की तरफ नहीं बढ़ सकते। वहां खाली हाथ चाहिए, जिन हाथों में कोई न हो। और जब हाथ बिल्कुल खाली होते हैं, तब परमात्मा उपलब्ध होता है।
एक और छोटी-सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूं। मैंने सुना है, कृष्ण एक दिन भोजन करने बैठे हैं और रुक्मणि उनकी थाली पर पंखा झलती है। एक-दो कौर ही उन्होंने खाये हैं और फिर थाली को सरका कर भागे हैं, एकदम दरवाजे की तरफ! रुक्मणी ने कहा, आप पागल हो गये हैं! आधा खाना खाकर कहां भागते हैं?
लेकिन कृष्ण ने उत्तर नहीं दिया, वह तो भागते हुए द्वार पर चले गये। फिर द्वार पर ठिठककर खड़े हो गये! फिर चुपचाप उदास वापिस लौटकर, बैठकर भोजन करने लगे!
रुक्मणि ने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया मुझे। क्या ऐसी जरूरत आ गयी थी कि इतनी तेजी से भागे? कौन-सी दुर्घटना घट गयी थी? कहां आग लग गयी थी? और फिर बिना आग को बुझाये, दरवाजे से वापिस लौट आये, क्या था?
कृष्ण ने कहा, सचमुच ही दुर्घटना हो गयी थी। एक मेरा प्यारा, एक राजधानी से गुजर रहा है, कुछ लोग उसे पत्थर मार रहे हैं। उसके माथे से खून की धाराएं बह रही हैं। भीड़ उसे घेरे हुए खड़ी है। बहती हुई खून की धाराओं में भी वह चुपचाप खड़ा हंस रहा है। मेरी जरूरत पड़ गयी थी कि मैं जाऊं, इसलिए मैं भागा।
रुक्मणि ने कहा, फिर द्वार से वापिस कैसे लौट आये!
कृष्ण ने कहा, द्वार पर जब पहुंचा, तब मेरी जरूरत न रह गयी। उस फकीर ने अपने हाथ में पत्थर उठा लिया। अब वह खुद ही उत्तर दे रहा है। अब मेरी कोई जरूरत नहीं। जब तक वह बेसहारा था, जब तक उसका कोई भी न था, जब तक वह बिल्कुल अकेला था, तब तक मेरी जरूरत थी, तब तक उसके पूरे प्राण मुझे चुंबक की तरह खींच रहे थे। अब वह बेसहारा नहीं है, अब उसके हाथ में पत्थर है। उसने पत्थर का सहारा खोज लिया, अब उसके हाथ भरे हुए हैं। अब वह कमजोर नहीं है। अब उसके पास अपनी ताकत है, अब वह लड़ रहा है, अब मेरी कोई भी जरूरत नहीं है।
यह कहानी पता नहीं सच है या झूठ। इसके सच और झूठ होने से कोई प्रयोजन
भी नहीं है। लेकिन एक बात मैं जानता हूं और वह बात मैं आपसे कहना चाहता हूं।
जब तक आपके हाथ भरे हुए हैं, जब तक आपका मन भरा है, जब तक आप कोई सहारा पकड़े हुए हैं, तब तक परमात्मा का सहारा उपलब्ध नहीं होगा। उसका सहारा उसी क्षण उपलब्ध होता है, जब आदमी परिपूर्ण बेसहारा हो जाता है। जब पूरी तरह बेसहारा, टोटल हेल्पलेस होता है, तब उसका सहारा उपलब्ध होता है। लेकिन हम कोई न कोई सहारा पकड़ लेते हैं और वही सहारा बाधा बन जाता है।
तो जब मैं कहता हूं, छोड़ दें सबको, तो मेरा मतलब है कि बिल्कुल बेसहारा
हो जायें, सब भांति बेसहारा हो जायें। जिस दिन आदमी सब भांति बेसहारा हो जाता है, एक चुंबक बन जाता है और परमात्मा की सारी शक्तियां उसकी तरफ खिंचनी शुरू हो जाती हैं। लेकिन उस बेसहारा होने के लिए सारे शास्त्र, सारे गुरु, सारे नेता, वे सब जिनको हम पकड़ सकते हैं और सहारा बन सकते हैं, उन सबसे मुक्त हो जाना जरूरी है।

लेकिन मेरी बात को गलत मत समझना। मेरी बात को रोज-रोज गलत समझा जाता है। जब मैं कहता हूं कि छोड़ दो गांधी को तो लोग समझते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं!
मैं आपसे छोड़ने को कह रहा हूं और गांधी को ही नहीं, सभी को छोड़ने को कह रहा हूं। अगर मुझको भी कोई पकड़े हो, तो मैं कहूंगा छोड़ दें, मुझे मत पकड़ना। वह फिर मेरा ही दुश्मन हो गया! मैं छोड़ने को कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं, मुट्ठी खाली रहनी चाहिए, कोई पकड़ नहीं चाहिए।
अदभुत है वह घड़ी, जब एक आदमी सब छोड़कर खड़ा हो जाता है। तब उसके जीवन में कैसी घटना घटती है, उसका हमें कोई भी पता नहीं। तब उसके जीवन में पहली बार परमात्मा का आगमन होता है। तब पहली बार वे पगध्वनियां सुनायी पड़ती हैं, जो सत्य की हैं। इसीलिए कहता हूं, छोड़ दें।
एक और मित्र ने पूछा है कि अगर सत्य शब्द से नहीं कहा जा सकता और शास्त्र में नहीं लिखा जा सकता, तो फिर क्या रास्ता है उसे कहने का?
उसे कहने का कोई भी रास्ता नहीं, उसे कहने की कोई जरूरत भी नहीं है। उसे जानने की जरूरत है, कहने की नहीं। और जानने से भी ज्यादा वही हो जाने की जरूरत है। कहने का सवाल नहीं है कि हम उसे कहें। उसे जानने और अनुभव करने का सवाल है। कहने का क्या अर्थ?
एक फकीर था शेख फरीद। वह तीर्थयात्रा पर निकला हुआ था। काशी के करीब
से गुजरता था तो काशी के पास ही कबीर का आश्रम था। फरीद के साथियों ने कहा कि कितना अच्छा होगा कि दो दिन के लिए हम कबीर के आश्रम पर रुक जायें। आप दोनों की बातचीत होगी, हम आनंदित होंगे, हम सुनकर प्रफुोत होंगे। हमारे जीवन में तो अमृत की वर्षा हो जायेगी।
फरीद ने कहा, कहते हो तो रुक जायेंगे, लेकिन बातचीत! बातचीत शायद ही हो।
लेकिन मित्रों ने कहा, कबीर से आप बात नहीं करियेगा?
फरीद ने कहा, बात कबीर से करने की कोई जरूरत नहीं है। कबीर भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं, बात क्या करेंगे?
कबीर के साथियों ने कबीर से कहा कि सुना है, फरीद निकलता है पास से, क्या ही अच्छा हो कि हम उसे निमंत्रित करें? और वह दो दिन हमारे पास रहे। आप दोनों की बातें होंगी तो हमारे तो भाग्य खुल जायेंगे। हम कुछ पकड़ लेंगे उस बातचीत से।
कबीर ने कहा, बातचीत बहुत मुश्किल है! जो बोलेगा, वह मूर्ख सिद्ध होगा। फरीद को कहो तो बुला लूं जरूर--बैठेंगे, हंसेंगे, गले मिलेंगे; कहोगे तो रो लेंगे, बोलेंगे नहीं। क्योंकि जो बोलेगा, वही नासमझ सिद्ध होगा। लेकिन लोगों ने कहा, बोलेंगे क्यों नहीं? कबीर ने कहा कि तुम नहीं मानते हो तो बुला लो।
फरीद बुला लिया गया। कबीर गांव के बाहर उसके स्वागत को गये। दोनों गले मिले, देर तक गले मिले। आंखों से आंसू बहने लगे। दोनों मिलकर बैठ गये झाड़ के नीचे। दोनों के शिष्य घेरकर बैठे हैं कि शायद कुछ बात हो। लेकिन बात न हुई! एक दिन बीत गया और दूसरा दिन भी बीतने लगा, और फिर बिदा का वक्त भी आ गया! सारे शिष्य घबरा गये कि यह क्या मामला है, बोलते क्यों नहीं हो? लेकिन वे दोनों हंसते थे और बोलते नहीं थे। फिर बिदा भी हो गये।
जैसे ही बिदा हुए, कबीर के शिष्यों ने कबीर को पकड़ लिया और फरीद के शिष्यों ने फरीद को! और पूछा, यह क्या मामला है, बोले क्यों नहीं?
कबीर ने कहा, बोलते क्या? जो जानते हैं, वह बोला नहीं जा सकता। और दूसरे जानने वाले के सामने बोलते क्या?
और फरीद ने कहा कि जो बोलता, वह मूर्ख सिद्ध होता।
लेकिन ये दोनों आदमी क्यों नहीं बोले? सत्य जाना जा सकता है, बोला नहीं जा सकता।
लेकिन फरीद बोलता था, दूसरों के बीच। और कबीर भी बोलते थे। फिर वे क्या बोलते थे, अगर सत्य नहीं बोला जा सकता? वे सिर्फ इतना ही बोलते थे कि वे आपको भी यह कह सकें कि सत्य नहीं बोला जा सकता, सत्य नहीं दिया जा सकता। वे आपको भी यह नकारात्मक ख्याल दे सकें कि सत्य मिल सकता है, खोजा जा सकता है, लेकिन किसी से पाया नहीं जा सकता है।

अगर इतना भी ख्याल बोलने से आ सके, अगर इतनी ही बात स्मरण में आ जाये
कि कोई एक ऐसी इंडीवीजुअल, व्यक्तिगत खोज भी है, जिसमें दूसरा सहयोगी और साथी नहीं हो सकता। अगर इतना भी ख्याल आ जाये कि एक ऐसी यात्रा भी है, जो अकेले ही करनी पड़ती है, तो शायद उस यात्रा पर कोई निकल जाये, वह इशारा पकड़ में आ जाये।
लेकिन हम तो उन पागलों की तरह हैं कि अगर मैं अपनी अंगुली उठाकर बताऊं
कि वह रहा चांद आकाश में, तो आप मेरी अंगुली पकड़ लेंगे और कहेंगे यह है चांद! मैं चिल्लाकर कहूं कि अगुंली छोड़ दो मेरी; चांद वहां है, जहां अंगुली नहीं है। मैं बता रहा था सिर्फ अंगुली से उस तरफ--उस तरफ देखो। और आप कहेंगे कि बड़ी प्यारी अंगुली है, ठीक है, हम समझ गये कि यहीं चांद है, लीजिये आपकी अंगुली की पूजा करें!
जापान में एक मंदिर है, वहां एक अंगुली बनी है मंदिर की मूर्ति की जगह!
और बुद्ध का एक वचन नीचे लिखा हुआ है कि मैं तुम्हें अंगुली दिखाता हूं कि तुम चांद को देख लो और तुम मेरी पूजा करते हो! हम सब अंगुलियों की पूजा कर रहे हैं!
शब्द, शास्त्र और सब इशारे उस तरफ हैं, जहां न शास्त्र रह जायेगा, न शब्द रह जायेगा, न इशारे रह जायेंगे। लेकिन हम उन लोगों की तरह हैं, जैसे रास्ते के किनारे पत्थर लगा होता है और पत्थर पर तीर का निशान लगा होता है और लिखा होता है कि जूनागढ़ पचास मील। और कई समझदार इसी पत्थर को छाती से लगाये बैठे हैं कि पहुंच गये जूनागढ़--लिखा है यहां जूनागढ़! यही पत्थर है जूनागढ़! उस पत्थर पर लिखा है कि जूनागढ़ बहुत दूर है।
इस पत्थर को पकड़कर बैठ गये तो कभी नहीं पहुंचोगे। इस पत्थर को छोड़ो और आगे बढ़ जाओ और जहां तक पत्थर लगे हैं, छोड़ते ही चले जाना। और जहां पत्थर आ जाये--जिस पर लिखा हो जीरो जूनागढ़। समझ लेना कि आ गये वहां, जहां लिखा है जीरो जूनागढ़। एक पत्थर जूनागढ़ में कहीं होगा, जहां लिखा होगा जीरो जूनागढ़, शून्य जूनागढ़। वह शून्य वाला पत्थर सार्थक है।
अगर कोई किताब मिल जाये, जिसमें लिखा हो शून्य, तो वह किताब धर्मशास्त्र हो सकती है। जहां तक शब्द है--वहां से आगे, और आगे। और आगे छोड़ते जाना है, छोड़ते जाना है और वहां पहुंच जाना है, जहां फिर और आगे नहीं होता। लेकिन वहां शून्य है। सारे शब्दों का इशारा
शून्य की तरफ है।
शून्य का अर्थ है ध्यान, शून्य का अर्थ है समाधि।
शून्य का अर्थ है, सब छोड़कर निपट ना-कुछ हो जाना। उस ना से सब-कुछ मिलता है।
शून्य ही द्वार है पूर्ण का।
शब्द--शब्द नहीं हैं द्वार। शब्द है दीवार, शून्य है द्वार। जो शब्द
पर अटक जाते हैं, वे उसी दीवार से सिर टकराते रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं। जो शून्य के द्वार से प्रवेश करते हैं, वे प्रवेश कर जाते हैं।
कभी आपने देखा? आपके घर का दरवाजा शून्य है। कभी आपने ख्याल किया, दीवार भरी हुई है, दरवाजा खाली है। दरवाजा एक रिक्तता, एम्पटीनेस है। कभी आपने ख्याल किया कि घर में जो दरवाजे हैं, उन दरवाजों में कुछ भी नहीं है। दरवाजे का मतलब क्या होता है? जहां कुछ भी नहीं है, जहां दीवार नहीं है, पत्थर नहीं है, कुछ भी नहीं है, खाली जगह है। उस दरवाजे से आप निकलते हैं, जहां खाली जगह है। कभी दीवार से नहीं निकलते, जहां भरा हुआ है सब-कुछ। वहां से निकलियेगा तो सिर टूट जायेगा, निकल नहीं पायेंगे, क्योंकि दरवाजे से निकलते हैं।
दरवाजे का क्या मतलब होता है दरवाजे का मतलब है--खाली जगह, एम्पटीनेस। मकान में सबसे कीमती चीज मालूम है, क्या है? दरवाजा है, जहां कुछ भी नहीं है। अगर किसी मकान में दरवाजा न हो तो मकान बेकार हो गया।
बर्तन में पानी भरते हैं आप, शायद आप सोचते होंगे कि बर्तन की जो दीवार है, उसमें पानी भरते हैं तो गलती में हैं। भीतर जो खाली जगह है, उसमें पानी भरते हैं। बर्तन क्या है? दीवार की खाली जगह। वह जो बर्तन की दीवार के भीतर खाली जगह है, मटके के भीतर, उसमें पानी भरता है। वह खाली जगह ही असली मटका है। वह जो दीवार है, वह सिर्फ खाली जगह को घेरती है। वह दीवार

मटका नहीं है। बाजार से जो चार आने में आप खरीद लाते हैं, वह चार आने में आप दीवार खरीद लाते हैं? लेकिन आपको पता नहीं, असल में आप भीतर की खाली जगह खरीद कर आ रहे हैं। उस खाली जगह में पानी भरीयेगा। उस मटके में जो खाली जगह है, वही है असली चीज। मकान में जो दरवाजा है, वही है असली चीज।
और मन के भीतर जो शून्य है, वही है असली चीज।
जहां मन में शब्द हैं, वहीं दीवार है और जहां शून्य है, वहीं द्वार है।
और हम तो मन को शब्दों से भर लेते हैं और जितने ज्यादा शब्द किसी आदमी
के पास हों, हम कहते हैं, वह उतना ही बड़ा ज्ञानी है! लेकिन उतना ही बड़ा दीन-हीन है वह आदमी। उसके पास सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं है। मन में शब्द बहुत हों तो हम कहते हैं, बहुत जानता है यह आदमी!
लेकिन जानते हैं वे, जिनके भीतर शब्द की दीवार नहीं, शून्य का द्वार है। शब्दों को छोड़कर जानता है आदमी, शब्दों को पकड़कर नहीं। यह उलटी बात मालूम पड़ती है। लेकिन यही है सत्य।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ और कुछ लोगों ने बुद्ध से पूछा कि आपको क्या मिल गया ज्ञान में? तो बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो सदा से मिला ही हुआ था, उसका पता भर चल गया। बुद्ध से उन्होंने पूछा कि क्या करके मिल गया? बुद्ध ने कहा, जब तक कुछ करता रहा, तब तक नहीं मिला। जब सब करना छोड़ दिया, तब मिल गया। लोग कहने लगे, आप बड़ी उलटी बातें करते हैं!
बुद्ध ने कहा, जब तक कुछ करने की कोशिश करता था, तब तक मन में अशांति रही। क्योंकि करने से ही अशांति पैदा होती है। जब सब करना छोड़ दिया, करना ही छोड़ दिया तो एकदम मन शांत हो गया और उसका पता चल गया, जो भीतर था।
शब्द भी अशांति है। जब तक शब्द भीतर घूमता है, तब तक चित्त अशांत रहेगा। जब सब शब्द शांत हो जाते हैं, भीतर कोई शब्द नहीं घूमता; कोई गीता नहीं बोली जाती, भीतर कोई कुरान नहीं उठता; कोई महावीर, कोई बुद्ध की वाणी नहीं सुनाई पड़ती; सब खो जाता है, सब मौन हो जाता है।
उस क्षण में क्या होता है? उस क्षण में उसका पता चलता है, जो भीतर है,
जो सदा से था, जिसे हमने कभी खोया नहीं, जिसे हम चाहें तो भी खो नहीं सकते। वही है सत्य, जो न खोजा जा सकता है, न कभी खोया गया है, जो हमारा वास्तविक होना है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं चलता, क्योंकि शब्दों की पर्तें हमने चारों तरफ इकट्ठी कर रखी हैं!
कभी प्याज को छील कर देखा है? जैसे प्याज को पर्त-पर्त छीलते चले जायें--प्याज की एक पर्त निकलती है तो दूसरी आ जाती है, वह निकलती है तो तीसरी आ जाती है--छीलते ही चले जायें। ऐसे ही मन के भीतर शब्दों की पर्तें हैं। हजार हजार पर्तें हैं, जन्मों-जन्मों की पर्तें हैं। एक-एक पर्त को छीलते चले जायें, निकालते चले जायें; जब तक पर्तें निकलती हों, तब तक उखाड़ते चले जायें। फिर एक वक्त आयेगा कि सब पर्तें निकल जायेंगी। फिर क्या बचेगा?
भीतर शून्य बच रहेगा। कुछ भी नहीं बचेगा। और जिस दिन सब पर्तें चली जायेंगी और शेष रह जायेगा वही, जो शेष रह जाता है; दी रिमेनिंग, वह जो पीछे रह जाता है--वही सत्य है। जिसको आप निकालकर फेंक नहीं सकते। बस, वही सत्य है, जिसे हटाया नहीं जा सकता, जो सबके बाद में भी शेष रह जाता है। सब हट जाये फिर भी शेष रह जाता है।
एक मकान में से हम सामान को निकालना शुरू कर दें, सारा फर्नीचर बाहर
कर दें। दरवाजे से फोटुयें निकाल लें, कैलेंडर निकाल लें, खिड़कियों से सामान निकाल लें, बर्तन निकाल लें, सब चीजें बाहर निकाल लें। जब सब चीजें निकल जायें, तब भी कुछ पीछे रह जाता है। तब पीछे क्या रह जाता है? खालीपन पीछे रह जाता है। वह खालीपन ही मकान है।
पीछे कुछ रह जाता है? खाली मकान पीछे रह जाता है। वह खालीपन ही असली मकान है। और हम उस खालीपन में चीजें भरते चले जायें और हम इतनी चीजें भर दें कि भीतर जाना मुश्किल हो जाये, तो फिर मकान तो है, लेकिन भरा हुआ मकान है, जिसमें प्रवेश भी नहीं पाया जा सकता।
मन भी एक मकान है, जिस मकान में हम शब्दों को भरते चले जाते हैं। शब्द इतने भर जाते हैं कि फिर मन के भीतर प्रवेश मुश्किल हो जाता है। कभी अपने भीतर गये हैं? सिवाय शब्दों के वहां कुछ भी नहीं मिलेगा! भीतर जायेंगे और

शब्द ही शब्द टकराते मिलेंगे! जैसे बाजार में चले जायें और आदमी ही आदमी मिलेंगे, वैसे ही अपने भीतर चले जायें तो सिवाय शब्दों के कुछ भी नहीं मिलेगा। लेकिन इन शब्दों की भीड़ के कारण ही भीतर प्रवेश नहीं हो पाता।
जब इन सारे शब्दों को कोई बाहर फेंक देता है, तब भी आप तो भीतर रह जायेंगे। आप तो शब्द नहीं हैं। आप तो कुछ और हैं। शब्द बाहर निकल जायेंगे, फिर भी आप तो बचेंगे। जब सारे शब्द फिंक जायेंगे, तब जो बच जाता है, उसका नाम ही आत्मा है। और जो उसे जान लेता है, वह सत्य को जान लेता है। और जो अपने भीतर जान लेता है, वह सबके भीतर जान लेता है। और जिसे एक बार उसका दर्शन हो जाता है, उसे फिर घड़ी-घड़ी, सब जगह उसका ही दर्शन होने लगता है। इसलिए मैं कहता हूं, शब्द से नहीं, शास्त्र से नहीं, शून्य से दरवाजा है। शून्य से प्रवेश करने की जरूरत है। इसलिए कहता हूं, छोड़ दें। सब छोड़ने पर जोर इसलिए है कि पीछे जो शेष रह जायेगा, जिसको छोड़ा नहीं जा सकता, जिसको छोड़ने का कोई उपाय नहीं है, वही आप हैं। और जिसको छोड़ा जा सकता है, वह आप नहीं हैं। जिसको छोड़ा जा सकता है, वह मैं कैसे हो सकता हूं? जो भी मुझसे छीना जा सकता है, वह मैं नहीं हो सकता। जो मुझमें जोड़ा जा सकता है, वह मैं नहीं हो सकता। जो मुझमें न जोड़ा जा सकता है, न मुझसे अलग ही किया जा सकता है, वही मैं हूं। और उस होने का नाम ही सत्य है।
इसलिए इतना जोर देता हूं कि छोड़ दें सबको, छोड़ दें सारे शास्त्रों को। शास्त्र से दुश्मनी नहीं है, शास्त्र बेचारे से क्या दुश्मनी हो सकती है? किताबों से क्या दुश्मनी हो सकती है? कोई दिमाग खराब है मेरा कि किताबों से दुश्मनी करूं? किताबों से क्या दुश्मनी हो सकती है? दुश्मनी है एक बात से, वह जो आदमी अपने को भर लेता है, उससे दुश्मनी है। क्योंकि भरा हुआ आदमी, उसे जानने से वंचित रह जाता है, जो वह है। जो उसका वास्तविक होना है, उससे वह अपरिचित रह जाता है।
जापान में एक फकीर था बोकोजु। उस फकीर से मिलने एक युनिवर्सिटी का प्रोफेसर आया। वह युनिवर्सिटी का प्रोफेसर बड़ा ज्ञानी था। बहुत शब्द थे उसके पास। बहुत शास्त्र उसने जाने थे। वह फकीर बोकोजु के झोपड़े पर गया। थका-मांदा, रास्ते की धूप से उसके चेहरे पर पसीना बह रहा है। वह गया भीतर। उसने बोकोजु को नमस्कार किया और माथे का पसीना पोंछा और कहा कि मैं यह जानने आया हूं कि सत्य क्या है?
बोकोजु ने कहा, सत्य क्या है, यह जानने के लिए यहां आने की क्या जरूरत थी? अगर सत्य होगा, तो तुम्हारे घर में भी होगा और नहीं होगा तो कहीं भी नहीं होगा। यहां किसलिए आये हो? सत्य का मैंने कोई ठेका ले रखा है? सत्य अगर होगा तो वहां भी, जहां से तुम आ रहे हो। और अगर वहां नहीं है और वहां तुम्हें दिखायी नहीं पड़ा तो यहां तुम्हें कैसे दिखायी पड़ सकता है?
एक अंधा आदमी अपने घर से बाहर निकले और हजार मील चलकर किसी दूसरे के
घर में जाये और कहे कि रोशनी कहां है? तो वह आदमी भी कहेगा, पागल, अगर आंखें थीं तो रोशनी वहां भी थी, जहां से तुम आ रहे हो! अगर आंखें नहीं है तो तुम दुनिया भर में घूमते रहो, रोशनी कहीं भी नहीं है। रोशनी वहां होती है, जहां आंखें होती हैं और जहां आंखें नहीं होती, वहां रोशनी नहीं होती, तुम कहीं भी चले जाओ।
उस फकीर ने कहा, क्या तुम्हें सत्य दिखायी पड़ता है? अगर दिखायी पड़ता
तो वही दिखायी पड़ जाता, यहां आने की क्या जरूरत थी? तुम यहां तक आये, इससे पता चलता है कि तुम अंधे आदमी हो, तुम्हें सत्य दिखायी नहीं पड़ता। और इसलिए मैं भी क्या कर सकता हूं? एक ही बात कह रहा हूं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे ज्ञान ने तुम्हें अंधा बना दिया हो? तुम बहुत जानते हो, कहीं यही खतरा तो नहीं है? क्योंकि बहुत जानने वाले लोग बहुत खतरनाक होते हैं।
जिन्हें भी यह ख्याल पैदा हो जाता है कि हम बहुत जानते हैं, वे बहुत खतरनाक हो जाते हैं।
क्योंकि बहुत जानने से बड़ा अज्ञान दुनिया में दूसरा नहीं है। क्योंकि जिन्हें ज्ञान पैदा होता है, वह तो उन लोगों को पैदा होता है, जो कहते हैं कि हम जानते ही नहीं, जानने का भ्रम ही छोड़ देते हैं।

बोकोजु ने कहा, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि तेरी खोपड़ी शब्दों से बहुत
भर गयी है। और इसलिए तुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। फिर भी थोड़ी देर रुक, मैं थोड़ी चाय बना लाऊं, थका-मांदा मालूम पड़ता है तू, थोड़ी चाय पी ले, थोड़ा विश्राम कर ले, फिर कुछ बात करेंगे। और यह भी हो सकता है कि चाय पीने में बात भी हो जाये और यह भी हो सकता है कि तूने जो पूछा है, चाय पीने में उसका उत्तर भी मिल जाये।
उस प्रोफेसर ने कहा, चाय पीने में? और सत्य का उत्तर! आप कह क्या रहे हैं? मैं किस पागल के पास आ गया हूं? मैंने व्यर्थ इस धूप में इतनी यात्रा की।
उस फकीर ने कहा, ठहर, इतनी जल्दी मत कर, मैं थोड़ी चाय बना लाऊं।
थका था प्रोफेसर, बैठा रहा। लेकिन ख्याल तो उसका खत्म हो गया कि इस आदमी से कुछ जानने को मिल सकता है। क्योंकि जो आदमी कहता है कि चाय पीने से सत्य का पता चल जायेगा, उस आदमी से क्या मिल सकता है?
फकीर चाय बनाकर ले आया। उसने प्लेट और कप संभलवा दिया और प्रोफेसर के
कप में केटली से चाय डाली। प्याली भर गयी, लेकिन वह फकीर चाय डालता ही चला गया! फिर नीचे का बर्तन भी भर गया, वह फकीर चाय डालता ही चला गया! फिर चाय गिरने के करीब हो गयी!
तब वह प्रोफेसर चिल्लाया कि अब रुकिये भी, अब एक बूंद भर की जगह मेरी प्याली में नहीं है।
उस फकीर ने कहा कि तुझे दिखाई पड़ता है कि बूंद भर भी जगह तेरी प्याली में नहीं है? तुझे दिखाई पड़ता है! और तुझे यह भी दिखाई पड़ता है कि जिस प्याली में बूंद भर भी जगह नहीं है, अब उसमें चाय भरने से गिर जाने का डर है? लेकिन तुझे कभी अपनी खोपड़ी में जगह दिखाई पड़ी? वहां भी सब शब्दों से भर गया है, जगह बिल्कुल नहीं है। और अब तेरे पागल होने का वक्त करीब आ रहा है, क्योंकि अब वे शब्द जो तेरे भीतर भर गये हैं, वे बाहर गिरने शुरू हो जायेंगे।
आदमी पागल कब हो जाता है, पता है आपको? जब विचार इतने खोपड़ी में भर जाते हैं कि उनको संभाल नहीं पाते और वे गिरने लगते हैं। रास्ते पर चला जा रहा है और बोलने लगता है! जो नहीं सुनना चाहता, उसको पकड़कर बोलने लगता है! रात सोता है और बोलता है! अकेले में बैठता है और बोलता है। जब शब्द इतने भर जाते हैं कि बाहर झड़ने लगते हैं तो आदमी को हम कहते हैं, पागल हो गया।
ऐसे थोड़े-बहुत पागल हम सभी होते हैं। क्योंकि अकेले बैठते हैं, तब भी अपने से बोलते ही रहते हैं। कुछ न कुछ जारी रहता है। भीतर खोपड़ी में काम चलता ही रहता है। वहां कभी विश्राम नहीं है। हम सब भी थोड़े-बहुत पागल है। पागल में और हममें कोई गुण का फर्क नहीं होता, सिर्फ मात्रा का फर्क होता है। थोड़ी मात्रा बढ़ जाये और हम भी पागल हो जायें।
कभी अकेले कोने में बैठ जाना, जाकर दस मिनिट आंख बंद कर लेना। और दरवाजा लगा लेना भीतर से, ताला बंद कर लेना और एक कागज पर अपने मन में जो भी चलता हो, उसको लिखना। दस मिनिट तक ईमानदारी से वही, जो चलता हो। और दस मिनिट के बाद अपनी पत्नी को या अपने पति को या अपने निकटतम मित्रों को भी वह कागज बताने की हिम्मत न होगी! क्योंकि वह कहेगा, यह तुमने लिखा? तुम्हारे भीतर चल रहा है यह!
दस मिनिट अपने ही भीतर जो चल रहा है, उसे कागज पर लिखें तो पता चल जायेगा कि वहां भीतर शब्द पागल हो गये हैं, वहां रुग्ण शब्द घूम रहे हैं। चारों तरफ किसी तरह अपने को संभालकर हम काम चला रहे हैं। हम सब पागल हैं-- संभले हुए पागल! अपने को संभाले हुए हैं और अपने पर कब्जा किये हुए हैं। वह जो भीतर है, अगर जोर से बाहर निकल आये तो पता चल जाये, आप क्या हैं?
किसी आदमी को शराब पिला दें और फिर देखें कि वह आदमी क्या बातें करना शुरू कर देता है! अभी जब तक शराब नहीं पी थी, तब तक राम-भजन कर रहा था, शराब पीते ही गाली बकना शुरू कर देता है! शराब क्या भजन को गाली में बदल सकती है? ऐसी कोई कीमिया शराब में है? शराब में कोई ऐसी केमिस्ट्री है कि भजन को गाली बना दे?
शराब कुछ भी नहीं कर सकती। शराब सिर्फ एक काम कर सकती है कि जब तक वह आदमी शराब नहीं पीये हुआ था, गालियां उसके भीतर चल रही थी,--भजन ऊपर से कर

रहा था, अपने को संभाले हुए था! शराब ने वह संभालना खत्म कर दिया, हाथ-पैर ढीले हो गये और वह ताकत नहीं रही संभलने की। जो असलियत थी, भीतर से बाहर आनी शुरू हो गयी।
सन्न्न आदमी भी भीतर सन्न्न नहीं है। वह भजन तो ऊपर से जोर-जोर से कह रहा है, भीतर कुछ और कह रहा है, भीतर कुछ और चल रहा है! भीतर एक पागल मस्तिष्क दौड़ रहा है--यह जो शब्दों का पागलपन चल रहा है।
उस फकीर ने कहा कि तुम्हारी खोपड़ी में इतने शब्द भरे हैं कि अब सत्य
को जानने के लिए जगह भी है? सत्य को भी प्रवेश के लिए जगह चाहिए। प्याली में तुम्हें दिखाई पड़ता है कि अब जगह भर गयी, लेकिन अपने मन को कभी देखा कि वहां जगह कब की भर चुकी है, कई जन्मों पहले भर चुकी है और अब ओवर क्राउडिंग है! अब सब ऊपर से भरता चला आ रहा है, अब जगह वहां नहीं है। अब सब अतिरिक्त वहां भरता चला आ रहा है। वह अतिरिक्त जितना भरता जा रहा है, उतना ही आदमी रुग्ण, अस्वस्थ होता चला जा रहा है। उतना ही आदमी का सत्य से संबंध टूटता चला जा रहा है।
अगर सत्य से संबंधित होना है तो इस भीतर की भीड़ को बाहर कर देना जरूरी है। भीतर शब्दों का जो जमघट, जमाव है; उससे छूट जाना मुक्त हो जाना जरूरी है। लेकिन हम तो कहते हैं कि शब्द ज्ञान है। तो फिर कैसे इससे छूटेंगे? जब तक हम शब्द को ज्ञान समझते हैं, तब तक हम शब्द से नहीं छूट सकते। जिस दिन हम समझेंगे कि शब्द ज्ञान नहीं है, बल्कि शब्द के कारण ही हम अपने अज्ञान को छिपाये हुए बैठे हैं। शब्द झूठा ज्ञान है, शब्द स्यूडो नालेज है। शब्द ज्ञान नहीं है। जिस दिन हमें यह पता चलेगा, उस दिन हम शब्द को फेंक सकेंगे। और जिस दिन शब्द फिंक जाता है, भीतर एक क्रांति घटित हो जाती है, एक्सप्लोजन हो जाता है, एक नयी दुनिया खुल जाती है, एक नया द्वार खुल जाता है। एक छोटी-सी कहानी, उससे मैं समझाऊं।
एक बहुत पुराना साम्राज्य था। उस साम्राज्य के बड़े वजीर की मृत्यु हो गयी थी। उस राज्य का यह नियम था कि देश भर में जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी होता, उसी को वजीर बनाते थे। उन्होंने सारे देश में परीक्षाएं लीं और तीन आदमी चुने गये, जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान सिद्ध हुए थे। फिर उन तीनों को राजधानी बुलाया गया, अंतिम परीक्षा के लिए। और अंतिम परीक्षा में जो जीत जायेगा, वही राजा का बड़ा वजीर हो जायेगा।
वे तीनों राजधानी आये। वे तीनों चिंतित रहे, पता नहीं क्या परीक्षा होगी? जैसा कि परीक्षार्थी चिंतित होते हैं। उन्हें राजधानी में जो भी मिला, उनसे पूछा कि कुछ पता है?
और मुश्किल हो गयी। राजधानी में सभी को पता था कि क्या परीक्षा होगी। सारे गांव को मालूम था। सारे गांव ने कहा, परीक्षा! परीक्षा तो बहुत दिन पहले से तय है। राजा ने एक मकान बनाया है और मकान में एक कक्ष बनाया है। उस कक्ष में एक ताला उसने लगाया है। वह ताला गणित की एक पहेली है। उस ताले की कोई चाबी नहीं है। उस ताले पर गणित के अंक लिखे हुए हैं। और जो उस गणित को हल कर लेगा, वह ताले को खोलने में सफल हो जायेगा। तुम तीनों को उस भवन में बंद किया जाने वाला है। जो सबसे पहले दरवाजे खोलकर बाहर आयेगा, वही राजा का वजीर हो जायेगा। वे तीनों घबरा गये होंगे!
एक उनमें से सीधा अपने निवास स्थान पर जाकर सो गया। उन दो मित्रों ने समझा कि उसने, दीखता है, परीक्षा देने का ख्याल छोड़ दिया। वे दोनों भागे बाजार की ओर। रात भर का सवाल था, कल सुबह परीक्षा हो जायेगी। उन्हें तालों के संबंध में कोई जानकारी न थी। न तो वे बेचारे चोर थे कि तालों के संबंध में जानते, न ही वे कोई तालों को सुधारने वाले कारीगर थे, न ही वे कोई इंजीनियर थे। और न वे कोई नेता थे, जो सभी चीजों के बाबत जानते! वे कोई भी न थे। वे बहुत परेशानी में पड़ गये कि हम तालों को खोलेंगे कैसे?
उन्होंने जाकर दुकानदारों से पूछा, जो तालों के दूकानदार थे। उन्होंने गणित के विद्वानों से पूछा। उन्होंने इंजीनियरों से जाकर सलाह ली। उन्होंने बड़ी किताबें इकट्ठी कर लीं पहेलियों के ऊपर। वे रात भर किताबों को कंठस्थ करते रहे, सवाल हल करते रहे। जिंदगी का सवाल था, उन्होंने कहा, सोना उचित नहीं। एक रात न भी सोयें तो क्या हर्ज है?

परीक्षार्थी सभी यही सोचते हैं कि एक रात नहीं सोयें तो क्या हर्जा है। लेकिन सुबह उनको पता चला कि बहुत हर्जा हो गया है। रात भर पढ़ने के कारण जो थोड़ा-बहुत वे जानते थे, वह भी गड़बड़ हो चुका था। सुबह अगर उनसे कोई पूछता कि दो और दो कितने होते हैं, तो वे चौंककर खड़े हो जाते। एकदम से नहीं कह सकते थे कि चार होते हैं। क्योंकि दिमाग रात भर में अस्त-व्यस्त हो गया था। न मालूम कैसी-कैसी पहेलियां हल की थीं। यही तो होता है परीक्षार्थियों का। परीक्षा के बाहर जिन सवालों को वे हल कर सकते हैं, वे ही परीक्षा में हल नहीं कर पाते!
तीसरा मित्र जो रात भर सोया रहा था, सुबह होते उठ गया। हाथ-मुंह धोकर
उन दोनों के साथ हो लिया। वे तीनों राजमहल पहुंचे। अफवाहें सच थीं। सम्राट ने उन्हें एक भवन में बंद कर दिया और कहा कि इस ताले को खोलकर जो बाहर आ जायेगा--इसकी कोई चाबी नहीं है, यह गणित की एक पहली है। गणित के अंक ताले के ऊपर खुदे हैं, हल करने की कोशिश करो--जो बाहर निकल आयेगा सबसे पहले, वही बुद्धिमान सिद्ध होगा और उसी को मैं वजीर बना दूंगा। मैं बाहर प्रतीक्षा करता हूं।
वे तीनों भीतर गये। जो आदमी रात भर सोया रहा था, वह फिर आंखें बंद करके
एक कोने में बैठ गया। उसके दो मित्रों ने कहा, इस पागल को क्या हो गया है! कहीं आंखें बंद करने से दुनिया के सवाल हल हुए हैं? शायद इसका दिमाग खराब हो गया। वे दोनों मित्र जो होशियार थे, सोचते थे कि उनका दिमाग ठीक था, अपनी किताबें अपने कपड़ों के भीतर छिपा लाये थे। उन्होंने जल्दी से किताबें बाहर निकालीं और अपने सवाल हल करने शुरू कर दिये।
परीक्षार्थी ऐसा न समझें कि आजकल ही परीक्षार्थी होशियार होते हैं। पहले जमाने में भी आदमी इसी तरह के बेईमान थे। बेईमानी बड़ी प्राचीन है, वेदों से भी ज्यादा प्राचीन बेईमानी है। सब किताबें नयी हैं। बेईमानी की किताब बहुत पुरानी है।
उन्होंने जल्दी से किताबें निकालीं। दरवाजा बंद हो चुका था। वे फिर सवाल हल करने लगे। वह आदमी आधा घंटे तक, वह तीसरे नंबर का आदमी, आंख बंद किये बैठा रहा। फिर उठा चुपचाप, जैसे उसके पैरों में भी आवाज न हो। उन दो मित्रों को भी पता न चला। वह उठा, दरवाजे पर गया, दरवाजे को धक्का दिया, दरवाजा अटका हुआ था, उस पर कोई ताला ही नहीं था, वह बाहर निकल गया!
सम्राट भीतर आया और उसने कहा कि दोनों बंद कर दो अपनी किताबें। जिस आदमी को निकलना था, वह निकल चुका है। उन दोनों ने चौंककर देखा। उन्होंने कहा, यह आदमी कैसे निकल सकता है? इसने कुछ भी नहीं किया निकलने के लिए। सम्राट ने कहा, यहां कुछ करने की जरूरत ही न थी। दरवाजा सिर्फ अटका हुआ था। और हम यह जानना चाहते थे कि तुम तीनों में से, जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान होगा, वह सबसे पहले यह देखेगा कि दरवाजा बंद है या नहीं। इसके पहले कि तुम सवाल हल करो, यह तो जान लेना चाहिए कि सवाल है भी या नहीं? समस्या हो तो उसका समाधान हो सकता है। और अगर समस्या न हो तो उसका समाधान कैसे हो सकता है? समस्या को पहले जान लेना जरूरी है।
इस आदमी ने बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। इसने सबसे पहले यह देखना चाहा कि समस्या है या नहीं? दरवाजा अटका था, यह बाहर निकल गया। यह बुद्धिमान आदमी का पहला लक्षण है।
पर वे दोनों पूछने लगे कि तुमने किया क्या? उस आदमी ने कहा, मैंने कुछ
भी नहीं किया। क्योंकि मैंने सोचा कि मैं जो भी जानता हूं, उससे कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि सवाल बिल्कुल नया है, जिसको मैं बिल्कुल नहीं जानता हूं। अब तक जो भी मैंने सीखा है, उससे सवाल का कोई भी संबंध नहीं है। जो मेरा ज्ञान है, वह बेकाम है तो फिर मैं क्या करूं?
फिर मैंने सोचा कि उचित यही है कि मैं अपने ज्ञान की फिक्र छोड़ दूं, और मौन और शांत होकर बैठ जाऊं। और देखूं, क्या मेरे मौन से भी उत्तर आ सकता है? क्या मैं शांति से भी कुछ उत्तर खोज सकता हूं? क्योंकि मैंने सोचा कि मैं जितना उत्तर खोजने की कोशिश करूंगा, उतना ही अशांत हो जाऊंगा और जितना अशांत हो जाऊंगा, उतना ही सवाल का हल करना मुश्किल हो जायेगा। सवाल नया है और मेरे पास सब उत्तर पुराने हैं। पुराना उत्तर काम नहीं आ सकता है। इसलिए मैंने सोचा कि पुराने उत्तर की फिक्र छोड़ दूं। मैं चुपचाप बैठकर देखूं कि

क्या कोई नया उत्तर आ सकता है? मैंने अपना सारा ज्ञान छोड़ दिया। जितने मेरे पास शब्द थे, मैंने कहा, क्षमा करो, बिदा हो जाओ। अब मैं बिना शब्द के चुपचाप थोड़ी देर बैठना चाहता हूं।
और मैं हैरान हो गया। जब मैं पूरी तरह मौन बैठा, कोई मेरे भीतर बोला कि उठकर देख, दरवाजा खुला है, दरवाजा बंद नहीं है। मैं उठा, दरवाजा खुला था, मैं बाहर निकल गया। यह मैंने नहीं खोला है! मैंने सब खोज बंद कर दी थी। यह उत्तर आया है। यह उत्तर मेरा नहीं है, यह उत्तर परमात्मा का ही हो सकता है। तुम अपने उत्तर खोज रहे थे। इसलिए परमात्मा के उत्तर मिलने का कोई सवाल न था। मैंने अपनी फिक्र छोड़ दी। मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता था। मैं सिर्फ प्रतीक्षा करता रहा कि अगर कोई उत्तर हो तो आ जाये। और अगर किसी को उत्तर सुनना हो ऊपर का, तो फिर अपनी सारी बातचीत, अपने सारे शब्द खो देना जरूरी हैं। क्योंकि जब तक अपना शोरगुल भीतर चलता हो, तब तक कोई उत्तर नहीं सुनाई पड़ सकता है।
जिन लोगों ने परमात्मा की आवाज सुनी है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने अपनी आवाज खो दी है। जिन लोगों ने परमात्मा से सत्य को जाना है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने अपने सीखे हुए शब्दों को मौन कर दिया है। जिन लोगों ने परमात्मा की किताब खोली है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने आदमियों की सारी किताबों पर आंखें बंद कर ली हैं। और वे लोग परमात्मा की तरफ आंखें उठा पाये हैं, जिन्होंने आदमी के पीछे चलना बंद कर दिया है।
मौन और शून्य में और शांति में उसका द्वार है। वह हम सबके निकट है। शायद वह हमें रोज पुकारता है, प्रतिपल हमारे द्वार पर दस्तक देता है। लेकिन हम सुनने को मौजूद कहां हैं? हम इतने शब्दों में खोये हैं कि उसकी शांत आवाज हमें कहां सुनाई पड़ सकेगी? हम इतने डूबे हुए हैं अपनी ही बातों में कि हमें उसकी वाणी का कैसे पता चल सकता है? इसलिए मैं जोर देकर बार-बार कहता हूं--छोड़ दें सब शब्द और हो जायें निःशब्द। एक बार देखें, एक बार मौन होकर देखें कि क्या हो सकता है। बहुत दिन तक शब्दों में रहकर देखा है, एक बार निःशब्द होने का भी प्रयोग करके देखें। इस निःशब्द होने के प्रयोग को ही मैं ध्यान कहता हूं।
एक-दो मिनिट इस ध्यान के संबंध में समझाऊंगा। फिर हम ध्यान के लिए दस मिनिट बैठेंगे और विदा हो जायेंगे। क्योंकि जो मैंने कहा है, वह मेरे कहने से आपकी समझ में नहीं आ सकता। लेकिन हो सकता है कि मेरे कहने से आपको कुछ ख्याल आ जाये, कोई प्यास जग जाये और आप दस मिनट को जरा चुप होकर, मौन होकर देखें।
उस आदमी का ख्याल करें, जो उस कमरे में जाकर बैठ गया चुपचाप। क्या किया होगा उसने? उस आदमी ने क्या किया उतनी देर? उसने अपने सारे शब्दों को छोड़ दिया और फिक्र की चुपचाप हो जाने की, साइलेंट हो जाने की, मौन हो जाने की। और जब वह परिपूर्ण मौन हो गया तो उसे कुछ उत्तर मिला--जो उत्तर उसका अपना नहीं था; वह कहीं ऊपर से आया था, गहराई से आया था, जो परमात्मा का था। हम भी दस मिनिट इस शांत रात्रि में चुप होने की कोशिश करें। यह हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि हमने कभी कोई प्रयोग नहीं किया है, इसलिए नहीं हुआ होगा। लेकिन जो कभी नहीं हुआ है, वह अब हो सकता है। जो आज नहीं हुआ, वह कल हो सकता है। संभावना हमेशा, सहज है। जो थोड़ा-सा श्रम करते हैं, उनकी संभावना वास्तविक बन सकती है।
क्या करेंगे दस मिनिट के लिए हम यहां? देखते हैं, रात चारों तरफ बिल्कुल शांत है--वृक्ष शांत हैं, चांदत्तारे शांत हैं, हवाएं शांत हैं। क्या इनके साथ दस मिनिट के लिए हम भी शांत होकर चुप नहीं बैठ सकते?
बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि भीतर वह शब्दों का जाल है--वह चलता ही रहेगा,
वह सोचता ही रहेगा कि दस मिनिट कब खत्म हो जायें। वह बार-बार आंख खोलकर देखेगा कि पड़ोसी आदमी क्या कर रहे हैं? वह जो भीतर शब्दों का जाल है, वह जो भीतर तुच्छ दिमाग है, वह जो छोटा-सा शेलो माइंड है, वह उथला मन इसी तरह की बातों में दस मिनिट गंवा देगा। वह चुप नहीं होगा।
नहीं, लेकिन वह चुप किया जा सकता है, अगर हम थोड़ा होशपूर्वक प्रयोग करें। क्या करेंगे, जिससे वह चुप हो जाये?

एक ही रास्ता है दुनिया में चुप होने का। एक ही रास्ता है, कभी कोई दूसरा रास्ता नहीं है--और वह रास्ता है साक्षीभाव का। जो आदमी दस मिनिट के लिए भी अगर साक्षी, विटनेस होकर बैठ जाये, वह शांत हो सकता है।
यह रात है हमारे चारों तरफ, ये लोग हैं हमारे चारों तरफ--कोई बच्चा आवाज करेगा, कोई पक्षी शोर करेगा, रास्ते पर कोई गाड़ी गुजरेगी, हवाएं पत्तों को हिलायेंगी। चारों तरफ कुछ होगा। अगर आप दस मिनिट अपने भीतर सिर्फ एक भाव लेकर बैठ जायें कि मैं एक दर्शक हूं, एक द्रष्टा हूं। मैं सिर्फ चुपचाप देखता रहूंगा। जो हो रहा है, उसका अनुभव करता रहूंगा। मैं अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करूंगा, सिर्फ देखता रहूंगा। जैसे कोई आदमी नदी के किनारे खड़ा हो जाये और नदी को बहता हुआ देखे। जैसे कोई आदमी आकाश के नीचे खड़ा हो जाये और आकाश में चलते हुए बादलों को देखे, उड़ते हुए पक्षियों की कतार देखे। जैसे कोई आदमी बाजार में खड़ा हो जाये--और इस तरह बाजार में खड़ा हो जाये, जैसे किसी नाटक में खड़ा हो और बाजार में चलती हुई दुकानों को और चलते हुए लोगों को इस तरह देखे, जैसे फिल्म पद पर चलती हो।
सिर्फ देखता रह जाये और कुछ भी न करे तो एक बड़ी अदभुत घटना घटती है। अगर आप सिर्फ देखते रह जायें चुपचाप तो भीतर एक शांति होनी शुरू हो आती है, शब्द खोने शुरू हो जाते हैं।
साक्षीभाव शब्दों की मृत्यु बन जाता है।
तो दस मिनिट हम साक्षी का एक प्रयोग करेंगे। उस प्रयोग के दो-तीन छोटे-से सूत्र हैं।
पहली बात तो यह है कि जब हम प्रयोग के लिए बैठेंगे तो शरीर को बिल्कुल आराम से ढीला छोड़कर बैठेंगे, जैसे शरीर में कोई प्राण न हों, कोई तनाव शरीर में न हो, कोई स्ट्रेन न हो।
दूसरी बात आंखों को बंद कर लेंगे। बंद करने में भी आंखों पर कोई जोर न पड़े। धीरे से आंखों की पलकें ढीली छोड़ देंगे। फिर बिजली बुझा दी जायेगी, अंधेरा हो जायेगा। चांद का प्रकाश है, धीमी-सी उसकी रोशनी नीचे गिरती रहेगी। उस चांद की रोशनी में आंख बंद किये हम दस मिनिट के लिए, सिर्फ दस मिनिट के लिए हम चुपचाप साक्षी बनकर रह जायेंगे।
हम कुछ भी नहीं करेंगे। हम बैठे हैं एक नाटक में, एक भागीदार हैं। हम सिर्फ चुपचाप सुन रहे हैं, जो सुनाई पड़ रहा है। जो अनुभव हो रहा है, वह अनुभव कर रहे हैं। भीतर विचार चलेंगे तो उनको भी चुपचाप देखते रहेंगे कि वह चल रहे हैं, हम देख रहे हैं। हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। जो चलता है, उसे चलने देना है।
चुपचाप दस मिनिट देखने पर हैरानी होगी--जितना सन्नाटा बाहर है, उतना
ही सन्नाटा भीतर भी पैदा हो जायेगा। एक बार भी, एक क्षण को भी, अगर भीतर सब मौन हो जाये तो एक नयी दुनिया में कदम उठ जाता है। यह तो प्रयोग के लिए हम करेंगे यहां।
अगर किसी को प्रीतिकर लगे और किसी को लगे कि कुछ हो सकता है तो वह दस मिनिट रोज रात सोने के पहले करता रहे। तीन महीने में वह हैरान हो जायेगा। दस मिनिट की चोट तीन महीने में भीतर एक द्वार खोल देगी। उससे कुछ नयी दुनिया की शुरुआत मालूम होने लगेगी। वह अपने भीतर एक नये आदमी से परिचित हो जायेगा, जिससे वह कभी भी परिचित नहीं रहा।

नेति-नेति
दसवां प्रवचन

स्वप्न से सत्य की ओर

प्रिय आत्मन्,
सूर्य के प्रकाश में गिरनार के चमकते मंदिरों को देखकर मैं आया--अभी आया हूं। उन मंदिरों को देखकर मुझे ख्याल आया, आत्मा के भी ऐसे ही गिरनार-शिखर हैं। आत्मा के उन शिखरों पर भी इनसे भी ज्यादा चमकते हुए मंदिर हैं। उन मंदिरों पर परमात्मा का और भी तीव्र प्रकाश है।
लेकिन हम तो बाहर के मंदिरों में ही भटके रह जाते हैं और भीतर के मंदिरों का कोई पता भी नहीं चल पाता! हम तो पत्थर के शिखरों पर ही यात्रा करते हुए जीवन गंवा देते हैं! चेतना के शिखरों का कोई अनुभव नहीं हो पाता! जैसे गिरनार के इस पर्वत पर चढ़ने वाली पगडंडियां हैं, वैसे ही चेतना
के शिखरों पर चढ़ने वाली पगडंडियां भी हैं। लेकिन एक फर्क है उन पगडंडियों में और इन पगडंडियों में। चेतना के जगत में कोई चरण-चिकृ नहीं बनते। जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं तो कोई उनके चिकृ पीछे नहीं छूट जाते। पीछे आने वाले पक्षियों को, आगे उड़ गये पक्षियों के मार्ग पर चलने का कोई भी उपाय नहीं। प्रत्येक पक्षी को अपने ही मार्ग पर उड़ना होता है।
ऐसे ही सत्य के मार्ग पर कोई राजपथ नहीं बने हैं, कोई बंधे-बंधाये रास्ते नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपना रास्ता बनाना पड़ता है। चलने से ही वहां रास्ता बनता है। चलने के पहले कोई भी रास्ता बना हुआ नहीं है। रास्ते अगर बने होते तो हम किसी का अनुगमन करके उन शिखरों पर पहुंच सकते थे। लेकिन वहां कोई रास्ता निर्मित ही नहीं होता। वहां आदमी चलता है और चरण-चिकृ मिट जाते हैं, पुंछ जाते हैं, आकाश में खो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही रास्ता बनाना पड़ता है।
लेकिन फिर भी उन रास्तों के संबंध में कुछ इशारे किये जा सकते हैं। उन रास्तों के संबंध में कुछ संकेत किये जा सकते हैं। इस अंतिम चर्चा में उन संकेतों पर ही कुछ बात करनी है।
पहले सूत्र में कुछ बातें कही थीं, दूसरे सूत्र में कुछ और, और आज तीसरे सूत्र पर आपसे बात करूंगा। यह तीसरा सूत्र थोड़ा सांकेतिक है, सिम्बालिक है। इसे थोड़ा समझ लेना होगा। इस संकेत की पहली बात--जिन लोगों को सत्य की यात्रा करनी है, उन्हें पहला संकेत समझ लेना है। और वह पहला संकेत यह है कि साधारणतः जिस जीवन को हम सत्य समझते हैं, वह जीवन सत्य नहीं है। और जब तक हम इस जीवन को सत्य समझे चले जायेंगे, तब तक जो सत्य है, उस दिशा में हमारी आंखें भी नहीं उठेंगी। जो जीवन हमें सत्य मालूम पड़ता है, जिन्हें सत्य की यात्रा करनी है, उन्हें इस जीवन को सपने की भांति समझना शुरू करना पड़ता है--यह पहला संकेत है।
यह जो जन्म से लेकर मृत्यु तक की लंबी यात्रा है--यह सत्य है या एक सपना है?
इस संबंध में थोड़ा विचार करना जरूरी है। साधारणतः हम इसे सत्य मानकर
ही जीते हैं। लेकिन कभी हमने शायद बहुत विचार नहीं किया। रात भर हम सपना देखते हैं तो देखते समय सपना भी सत्य मालूम पड़ता है। कभी आपको स्वप्न में ऐसा पता नहीं चला होगा कि जो आप देख रहे हैं, वह असत्य है। स्वप्न भी सत्य मालूम होता है। बार-बार सपने देखते हैं, रोज-रोज सपने देखते हैं, जीवन भर सपने देखते हैं। फिर भी सपना देखते समय सत्य ही मालूम पड़ता है! यह स्मरण ही नहीं आता कि जो हम देख रहे हैं, वह भी असत्य हो सकता है!
जो लोग और बड़े सत्य के प्रति जागते हैं, वे कहते हैं कि हम जो आंख खोलकर दुनिया देख रहे हैं, वह दुनिया भी सपना है।
एक सम्राट का युवा पुत्र बीमार पड़ा। एक ही बेटा था उसका, वही मरण-शय्या पर पड़ा था। चिकित्सकों ने कहा था कि बचने की कोई उम्मीद नहीं है। उस रात ही उसका दीया बुझ जायेगा, ऐसी संभावना थी।
सम्राट रात भर जागता बैठा रहा। सुबह भोर होते-होते उसकी झपकी लग गयी।
सम्राट अपनी कुर्सी पर बैठा ही बैठा पांच बजे के करीब सो गया। सोते ही भूल

गया उस बेटे को, जो सामने खाट पर बीमार पड़ा था; जो उस महल, उस राज्य का मालिक था।
एक सपना आना शुरू हुआ। उस सपने में उसने देखा कि सारी पृथ्वी का मैं मालिक हूं। बारह बेटे हैं उसके, बहुत सुंदर, स्वर्ण जैसी काया है उनकी, बहुत स्वस्थ, बहुत बुद्धिमान। सारी पृथ्वी पर फैला हुआ है राज्य, स्वर्ण के महल हैं उसके पास, हीरे-जवाहरातों की सीढिय़ां हैं, वह अति आनंद में है। और तभी इस बाहर लेटे हुए बेटे की सांस टूट गयी। पत्नी छाती पीटकर रोने लगी। रोने से नींद खुल गयी सम्राट की। आंख खोलकर वह उठा। खो गये वे सपने के स्वर्ण महल, खो गये वे बारह बेटे, खो गया वह चक्रवर्ती का बड़ा राज्य! देखा तो बाहर बेटा मर चुका है, पत्नी रोती है। लेकिन उसकी आंखों में आंसू नहीं आये, होठों पर हंसी आ गयी उस सम्राट के!
पत्नी कहने लगी, क्या तुम्हारा मन विक्षिप्त हो गया? क्या तुम पागल हो गये हो? बेटा मर गया है और तुम हंस रहे हो!
वह सम्राट कहने लगा, मुझे हंसी किसी और बात से आ रही है। मैं इस चिंता में पड़ गया हूं कि किन बेटों के लिए रोऊं? अभी-अभी बारह मेरे बेटे थे, सोने के महल थे, बड़ा राज्य था। तू रोई और वह मेरा सारा राज्य छिन गया, मेरे वे बेटे छिन गये! आंख खोलता हूं, तो वे सब खो गये हैं!
और यह बेटा, जब तक आंख बंद थी, खो गया था। मुझे याद भी नहीं था कि मेरा कोई बेटा है, जो बीमार पड़ा है। जब तक वे बारह बेटे थे, इस बेटे की कोई याद नहीं थी! और अब जब यह बेटा दिखायी पड़ रहा है, तब वे बारह बेटे खो गये हैं! अब मैं सोचता हूं कि मैं किसके लिए रोऊं? उन बारह बेटों के लिए, उन स्वर्ण-महलों के लिए, उस बड़े राज्य के लिए या इस बेटे के लिए?
और मुझे हंसी इसलिए आ गयी कि कहीं दोनों ही सपने तो नहीं हैं-- एक आंख बंद का सपना और एक खुली आंख का सपना। क्योंकि जब तक आंख बंद थी, वह भूल गया था! और जब आंख खुली तो, वह जो आंख बंद में दिखाई पड़ा था, वह भूल गया!
एक सपना है, जो हम आंख बंद करके देखते हैं और एक सपना है, जो हम आंख खोलकर देखते हैं! लेकिन वे दोनों ही सपने हैं।
च्वांगत्सु चीन में हुआ, एक फकीर था। लोगों ने उसे हंसते ही देखा था, कभी उदास नहीं देखा था। एक दिन सुबह उठा और उदास बैठ गया झोपड़े के बाहर! उसके मित्र आये, उसके प्रियजन आये और पूछने लगे, आपको कभी उदास नहीं देखा। चाहे आकाश में कितनी ही घनघोर अंधेरी छायी हो और चाहे जीवन पर कितने ही दुखदायी बादल छाये हों, आपके होठों पर सदा मुस्कुराहट देखी है। आज आप उदास क्यों हैं? चिंतित क्यों हैं?
च्वांगत्सु कहने लगा, आज सचमुच एक ऐसी उलझन में पड़ गया हूं, जिसका कोई
हल मुझे नहीं सूझता।
लोगों ने कहा, हम तो अपनी सब समस्याएं लेकर आपके पास आते हैं और सभी समस्याओं के समाधान हो जाते हैं। आपको भी कोई समस्या आ गयी! क्या है यह समस्या?
च्वांगत्सु ने कहा, बताऊंगा जरूर, लेकिन तुम भी हल न कर सकोगे। और मैं सोचता हूं कि शायद अब इस पूरे जीवन, वह हल नहीं हो सकेगी!
रात मैंने एक सपना देखा। उस सपने में मैंने देखा कि मैं एक बगीचे में तितली हो गया हूं और फूलों-फूलों पर उड़ता फिर रहा हूं।
लोगों ने कहा, इसमें ऐसी कौन सी बड़ी समस्या है? आदमी सपने में कुछ भी
हो सकता है।
च्वांगत्सु ने कहा, मामला यही होता तो ठीक था। लेकिन जब मैं जागा तो मेरे मन में एक प्रश्न पैदा हो गया कि अगर च्वांगत्सु नाम का आदमी सपने में तितली हो सकता है तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि तितली सो गयी हो और सपना देखती हो कि च्वांगत्सु हो गयी! मैं सुबह से परेशान हूं। अगर आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली भी सपने में आदमी हो सकती है। और अब मैं तय नहीं कर पा रहा हूं कि मैं तितली हूं, जो सपना देख रही है आदमी होने का या कि मैं आदमी हूं, जिसने सपना देखा तितली होने का! और अब यह कौन तय करेगा? मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं।
शायद यह कभी तय नहीं हो सकेगा। च्वांगत्सु ठीक कहता है, जो हम बाहर देखते हैं, वह भी क्या एक खुली आंख का स्वप्न नहीं है? क्योंकि आंख बंद

होते ही वह मिट जाता है और खो जाता है और विलीन हो जाता है। आंख बंद होते ही हम किसी दूसरी दुनिया में हो जाते हैं। और आंख खोलकर भी जो हम देखते हैं, उसका मूल्य सपने से ज्यादा मालूम नहीं होता।
आपने जिंदगी जी ली है--किसी ने पंद्रह वर्ष, किसी ने चालीस वर्ष, किसी
ने पचास वर्ष। अगर आप लौटकर पीछे की तरफ देखें कि उन पचास वर्षों में जो भी हुआ था, वह सच में हुआ था या एक स्वप्न में हुआ था? तो क्या फर्क मालूम पड़ेगा? पीछे लौटकर देखने पर क्या फर्क मालूम पड़ेगा? जो भी था-- जो सम्मान मिला था, जो अपमान मिला था-- वह एक सपने में मिला था या सत्य में मिला था? मरते क्षण आदमी को क्या फर्क मालूम पड़ता है? जो जिंदगी उसने जी थी, वह
एक कहानी थी या जो उसने सपने में देखी थी, सच में ही वह जिंदगी में घटी थी। इस जमीन पर कितने लोग रह चुके हैं हमसे पहले! हम जहां बैठे हैं, उसके कण-कण में न-मालूम कितने लोगों की मिट्टी समायी है, न मालूम कितने लोगों की राख है। पूरी जमीन एक बड़ा श्मशान है, जिसमें न जाने कितने अरबों-अरबों लोग रहे हैं और मिट चुके हैं। आज उनके होने और न होने से क्या फर्क पड़ता है? वे जब रहे होंगे, तब उन्हें जिंदगी मालूम पड़ी होगी कि बहुत सच्ची है। अब न जिंदगी रही उनकी, न वे रहे आज, सब मिट्टी में खो गये हैं।
आज हम जिंदा बैठे हैं, कल हम भी खो जायेंगे। आज से हजार वर्ष बाद हमारी राख पर लोगों के पैर चलेंगे। तो जो जिंदगी आखिर में राख हो जाती हो, उस जिंदगी के सच होने का कितना अर्थ है? जो जिंदगी अंततः खो जाती हो, उस जिंदगी का कितना मूल्य है?
जिस च्वांगत्सु की मैंने बात कही, वही च्वांगत्सु एक बार एक गांव से निकलता था। रात का वक्त था। गांव के बाहर आया तो एक मरघट पर एक खोपड़ी पड़ी थी आदमी की। वह उसके पैरों से टकरा गयी। और कोई आदमी होता तो जोर से लात मारकर उस खोपड़ी को अलग कर दिया होता। समझता कि अपशकुन हो गया, कहां बीच में खोपड़ी आ गयी!
लेकिन च्वांगत्सु तो बहुत अदभुत आदमी था। उसने उस खोपड़ी को उठाकर सिर
से लगा लिया और बहुत-बहुत क्षमा मांगने लगा। कहने लगा, क्षमा कर दो मुझे, भूल से मेरा पैर लग गया; अंधेरा है, रात है, मैं देख नहीं पाया कि आप यहां हैं!
अब वह खोपड़ी थी आदमी की--मरे हुए आदमी की, न मालूम वह आदमी कब मर गया था।
च्वांगत्सु के मित्र कहने लगे, क्या पागलपन करते हो? किससे क्षमा मांग रहे हो?
च्वांगत्सु ने कहा, वह तो थोड़े समय के फर्क की बात है, अगर यह आदमी जिंदा होता तो आज मेरी मुसीबत हो जाती।
लेकिन वे लोग कहने लगे, अब यह आदमी जिंदा नहीं है।
च्वांगत्सु ने कहा, तुम्हें पता नहीं है, यह छोटे लोगों का मरघट नहीं है, यह गांव के बड़े लोगों का मरघट है!
मरघट भी अलग-अलग होते हैं गरीब आदमियों के अलग, अमीर आदमियों के अलग! जिंदगी में तो फर्क रहते ही हैं, मरने पर भी फर्क कायम रहते हैं! च्वांगत्सु ने कहा, यह किसी बड़े आदमी की खोपड़ी है, किसी साधारण आदमी
की खोपड़ी नहीं है। अगर यह आदमी आज होता तो मेरी मुसीबत हो जाती।
लेकिन वे लोग कहने लगे, अब यह नहीं है तो मुसीबत का सवाल क्या है? च्वांगत्सु ने कहा, नहीं, क्षमा तो मुझे मांगनी ही चाहिए, और भी कई कारणों से मैं इससे क्षमा मांगता हूं और इस खोपड़ी को अपने साथ ही रखूंगा।
वह उस खोपड़ी को अपने साथ ले गया और रोज सुबह उठकर क्षमा मांगने लगा। मित्रों ने बहुत समझाया कि पागल हो जाओगे इस खोपड़ी को अपने पास रखकर। क्षमा मांगने की जरूरत क्या है?
च्वांगत्सु कहने लगा, कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि बड़े आदमी की खोपड़ी है!
लेकिन मित्र कहने लगे, सब खोपडिय़ां मिट्टी में मिल जाती हैं--छोटे आदमी की और बड़े आदमी की।
मिट्टी कोई फर्क नहीं करती कि कौन बड़ा था, कौन छोटा था। और जब छोटे और बड़े सभी मिट्टी में मिल जाते हैं तो छोटा होना और बड़ा होना कहीं एक सपना तो

नहीं है? जो मिट्टी सब सपनों को मिटा देती है और एक-सा कर देती है। छोटा और बड़ा होना कोई असलियत नहीं मालूम होती, किसी सपने का ख्याल मालूम होता है। च्वांगत्सु कहने लगा, मैं इसे इसलिए अपने पास रखता हूं कि मुझे भी अपनी खोपड़ी की याद रहे, जो आज नहीं कल, किसी मरघट पर पड़ी रहेगी। चलते-फिरते लोगों की ठोकर लगेगी और फिर मैं कुछ भी न कर सकूंगा। जब आखिर में यही हो जाना है तो आज मेरे सिर में अगर किसी का पैर लग जाये तो नाराज होने की क्या जरूरत है? जब यह हो ही गया है।
जो जानते हैं, वे कहेंगे कि जो हो ही जाना है, वह हो ही गया है। अगर जिंदगी मिट जानी है तो मिटी हुई ही है। और अगर जिंदगी मिट्टी में गिर जानी है तो मिट्टी में गिरी हुई है। यह थोड़ी देर का ख्वाब है, थोड़ी देर का सपना है और लगता है कि सब ठीक है।
अगर हम थोड़ा विस्तार से जीवन को देखेंगे तो हम पायेंगे कि सभी कुछ खो जाता है, सभी कुछ मिट्टी हो जाता है। और जहां सभी कुछ मिट्टी हो जाता हो, वहां सत्य मानने का कितना कारण है?
लेकिन हम कहेंगे कि सपना तो क्षण भर का होता है रात में, जिंदगी तो सत्तर-अस्सी वर्ष, सौ वर्ष की होती है। लेकिन अगर और थोड़ी आंखें खोलकर हम देखें तो इस विराट जगत में सौ वर्ष भी क्षण भर से ज्यादा नहीं मालूम होते। इस पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हो चुके हैं। इस सूरज को बने कोई छह अरब वर्ष हो चुके हैं, लेकिन यह सूरज दुनिया में सबसे नया अतिथि है। ये जो और तारे हैं, वे इससे बहुत पुराने हैं। यह सूरज सबसे नया है, छह अरब वर्ष, यह बहुत नया मेहमान है। ये जो और तारे हैं, उनकी संख्या लगाना बहुत मुश्किल है कि वे कितने पुराने हैं।
इस विराट समय के प्रवाह में सौ वर्ष का क्या अर्थ होता है? कोई भी अर्थ नहीं होता। चांदत्तारों को पता भी नहीं चलता कि सौ वर्ष कब बीत गये। सौ वर्ष ऐसे ही बीत जाते हैं, जैसे घड़ी की टिक-टिक बीत जाती है, एक क्षण बीत जाता है। इस विराट जीवन की धारा में सौ वर्ष की कितनी लंबाई है? कोई भी लंबाई नहीं है शायद।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा। वह आदमी बहुत कंजूस था। उसने जिंदगी भर पैसे इकट्ठे किये थे। मरते वक्त उसने एक किताब पढ़ी थी और उस किताब में लिखा हुआ था कि स्वर्ग में पहुंचने पर वहां की एक-एक कौड़ी भी अरबों-खरबों रुपयों की होती है। वह आदमी तो जिंदगी भर रुपये ही इकट्ठे करता रहा था। मरते वक्त भी यही सोचते मरा कि अगर स्वर्ग में एक कौड़ी भी मिल जाये तो गजब हो जाये। क्योंकि अरबों-खरबों की होती है। जैसे ही आंख स्वर्ग में खुली, उसने कौड़ी खोजनी शुरू कर दी! देवताओं ने उससे पूछा कि क्या कर रहे हो? उसने कहा कि मैं एक कौड़ी चाहता हूं, सिर्फ एक कौड़ी! मैंने सुना है, अरबों-खरबों की होती है एक कौड़ी स्वर्ग की।
उन देवताओं ने कहा, ठहरो, एक क्षण ठहरो, हम तुम्हें दे देंगे एक क्षण बार।
घंटों बीतने लगे तो उसने कहा, महाशय, वह एक क्षण कब बीतेगा?
तो उन देवताओं ने कहा कि तुम्हें ख्याल नहीं, जिस स्वर्ग में एक कौड़ी अरबों-खरबों की होती है, वहां एक क्षण भी अरबों-खरबों वर्षों का होता है। एक क्षण रुको, अभी दे देंगे।
वहां पैमाने, जीवन के पैमाने, बहुत बड़े हैं। अंतहीन पैमाने में सौ वर्षों का क्या अर्थ है? कितना अंतहीन पैमाना है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कब से समय चल रहा है, कब तक समय चलेगा?
बट्रेंड रसेल ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। उसने लिखा है कि एक चर्च
का एक पादरी एक रात सोया और उसने स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। लेकिन द्वार इतना बड़ा है कि उसके ओर-छोर का कोई पता नहीं चलता। वह सिर उठाकर देखता है और देखता ही रह जाता है, लेकिन उसका कोई अंत नहीं दीखता। वह उस द्वार पर जोर-जोर से थपकी देता है।
लेकिन उतने बड़े द्वार पर उस छोटे-से आदमी की थपकियों की क्या आवाज पैदा होती? उस अंतहीन सन्नाटे में कोई आवाज पैदा नहीं होती। वह सिर पटक-पटक कर थक जाता है और बहुत दुखी होता है। क्योंकि सदा उसने यही सोचा था कि मैं तो भगवान की दिन रात पूजा और प्रार्थना करता हूं। जब मैं जाऊंगा तो

भगवान द्वार पर ही हाथ फैलाये हुए, आलिंगन करने को तैयार मिलेंगे। यहां दरवाजा ही बंद है। और यहां इतने जोर से पीटता है वह, लेकिन कोई आवाज नहीं होती, क्योंकि दरवाजा बहुत बड़ा है!
बहुत चिल्लाने, बहुत शोरगुल मचाने पर एक खिड़की दरवाजे में से खुलती
है और कोई झांकता है। लेकिन वह पादरी घबरा जाता है और द्वार की संध में सरक जाता है। क्योंकि वे आंखें इतनी तेज हैं, और एक दो आंखें नहीं हैं, हजार-हजार आंखें हैं। वे इतनी तेज हैं कि वह घबरा जाता है और चिल्लाकर कहता है, कृपा करके भीतर हो जाइये और वहीं से बात करिये, देखिये मत। एक-एक आंख एक-एक सूरज मालूम पड़ती है! वह कहता है, हे भगवान, आपके दर्शन हो गये, बड़ी कृपा हुई!
लेकिन वह जो आदमी झांकता है द्वार से, कहता है मैं भगवान नहीं हूं, यहां का द्वारपाल हूं। और तुम कहां छिप गये हो, मुझे दिखाई नहीं पड़ते? कितने छोटे आदमी हो, कहां से आ गये हो? वह जो हजार-हजार आंखों वाला आदमी है, उसको भी वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता--इतना छोटा! उस पादरी के मन में बड़ी दीनता मालूम होती है। मैं सोचता था कि भगवान द्वार पर मिलेंगे, यह तो केवल द्वार का चपरासी है।
वह पादरी कहता है कि आपको पता नहीं, मैं आने वाला था?
उस द्वारपाल ने कहा कि तुम जैसा जीव-जंतु पहली बार ही देखा गया, अनंत काल में यहां। कहां से आये हो?
उसने कहा, पृथ्वी से आ रहा हूं।
उस द्वारपाल ने कहा कि यह नाम कभी सुना नहीं है, यह पृथ्वी कहां है?
तब उसकी श्वासें सरक गयीं, हृदय की धड़कन उसकी बंद होने लगी। जब पृथ्वी
का ही नाम नहीं सुना तो पृथ्वी के ईसाई धर्म का नाम कहां से सुना होगा और ईसाई धर्म के भी केथलिक संप्रदाय का नाम कहां सुना होगा? और केथलिक संप्रदाय के फलां-फलां गांव के चर्च का इसको क्या पता होगा? और चर्च के पुजारी का कहां हिसाब होगा? जब वह कहता है, पृथ्वी का नाम पहली बार सुना है! कहां है यह पृथ्वी?
तो वह पुजारी कहता है कि सूरज का एक परिवार है, उसमें पृथ्वी एक ग्रह है।
वह द्वारपाल कहता है, तुम्हें कुछ अंदाज नहीं, कितने अनंत सूरज हैं? कौन-सा सूरज? नंबर क्या है? इंडेक्स नंबर क्या है, तुम्हारे सूरज का? शायद तुम नंबर बता सको अपने सूरज का तो कुछ खोज-बीन की जा सकती है कि किस सौर-परिवार से आये हो।
उसने कहा, नंबर! हम तो एक ही सूरज को जानते हैं।
फिर भी उसने कहा, कोशिश की जायेगी। खोज-बीन करने से शायद पता चल जायेगा। लेकिन बहुत कठिन है पता लगना!
घबराहट में उस पादरी की नींद खुल जाती है। वह पसीने से तर-बतर हो उठता
है और उसको पहली दफा पता चलता है कि जिस विराट जगत में वह है, वहां कहां पृथ्वी का कोई ठिकाना है!
यह पृथ्वी कितनी छोटी है, लेकिन हमें कितनी बड़ी मालूम पड़ती है। इस पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बड़ा है और सूरज बहुत छोटा ग्रह है। वे जो तारे हमें दिखाई पड़ते हैं आकाश में, वे सूरज से बहुत बड़े-बड़े हैं, लेकिन छोटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि फासला बहुत ज्यादा है। इस सूरज से किरण को आने में पृथ्वी तक दस मिनिट लग जाते हैं। और किरण की यात्रा बहुत तेज है। सूरज की किरण चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से किरण चलती है! सूरज से किरण आने में दस मिनिट लग जाते हैं।
सूरज बहुत दूर है, लेकिन बहुत दूर नहीं है। सूरज के बाद जो सबसे निकट
का तारा है, उसकी किरण को पहुंचने में पृथ्वी तक चार वर्ष लग जाते है। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से चलने वाली किरण चार वर्षों में पृथ्वी पर पहुंच पाती है!
और वह तो निकटतम तारा है। और दूर के तारे हैं, जिनसे सौ वर्ष लगते हैं,
दो सौ वर्ष लगते हैं, हजार वर्ष लगते हैं, करोड़ वर्ष लगते हैं, अरब वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे भी हैं, जिनसे चली हुई किरण, अब तक पृथ्वी तक नहीं

पहुंची! और उस समय चली थी, जब पृथ्वी बन रही थी, चार अरब वर्ष पहले! उसके आगे भी तारे हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, जिनकी किरण कभी भी नहीं पहुंचेगी! इतने बड़े इस विस्तार के जगत में पृथ्वी का क्या मूल्य है? और इस पृथ्वी पर हमारा क्या मूल्य है? लेकिन हम अपना कुछ मूल्य मानकर ही जीते हैं। जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम अशांत होते है। जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम परेशान होते हैं। जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम पीड़ित होते हैं। और जितना हम मूल्य मानकर अशांत हो जाते हैं, उतना ही सत्य के दर्शन की संभावना क्षीण और कम हो जाती है। सत्य का दर्शन उन्हें हो सकता है, जो शांत हों।
और शांत होने का पहला सूत्र है--जिस जीवन को सत्य समझ रहे हैं, उसे सत्य मत समझना, उसे सपने से ज्यादा मूल्य मत देना।
जिस दिन जीवन सपना मालूम पड़ता है, उसी दिन चित्त शांत हो जाता है।
जब तक जीवन सत्य मालूम पड़ेगा, तब तक चित्त शांत नहीं हो सकता, तब तक छोटी-छोटी चीज का बहुत मूल्य है हमें। हम तो सपने को सत्य मानकर परेशान हो जाते हैं! रात में एक आदमी सपने में भूत देख लेता है तो नींद खुल जाती है और छाती धड़कती रहती है। आंख खुल गयी है, नींद खुल गयी है, लेकिन वह सपना इतना सच मालूम पड़ता है कि अभी भी प्राण धम-धम घबरा रहे हैं।
हम तो नाटक को भी सच मान लेते हैं। सिनेमागृह में जाकर न मालूम कितने लोग आंसू पोंछ लेते हैं रूमालों से। वहां परदे पर कुछ भी नहीं चल रहा है सिवाय बिजली की धारा के, सिवाय नाचती हुई विद्युत के। वहां कुछ भी नहीं है परदे पर। और मालूम है भली-भांति कि कोरा परदा है पीछे। उस कोरे परदे पर विद्युत की किरणें दौड़ रही हैं और चित्र बन रहे हैं। कोई रो रहा है, कोई हंस रहा है, कोई घबरा रहा है! हम तो नाटक को भी सच मान लेते हैं!
और सत्य की खोज का पहला सूत्र है कि जिसे हम सच कहते हैं, उसे भी नाटक जानना, तो आदमी सत्य को उपलब्ध हो सकता है।
बंगाल के एक बहुत बड़े विचारक थे ईश्वरचंद्र विद्यासागर। एक नाटक को देखने गये। नाटक में एक अभिनेता है, जो एक स्त्री के पीछे बुरी तरह से पड़ा हुआ है। वह स्त्री को सब तरह से परेशान कर रहा है। आखिर एक एकांत रात्रि में उसने स्त्री के घर में कूदकर स्त्री को पकड़ लिया।
विद्यासागर के बर्दाश्त के बाहर हो गया। वह भूल गये कि यह नाटक है। जूता निकालकर मंच पर कूद पड़े और उस आदमी को लगे जूते मारने! सारे देखने वाले दंग रह गये कि यह क्या हो रहा है?
लेकिन उस अभिनेता ने क्या किया? उसने विद्यासागर का जूता अपने हाथ में ले लिया, जूते को नमस्कार किया और जनता से कहा, इतना बड़ा पुरस्कार मेरे जीवन में मुझे कभी नहीं मिला। मेरे अभिनय को कोई सत्य समझ लेगा, वह भी विद्यासागर जैसा बुद्धिमान आदमी; मैंने कभी नहीं सोचा था! मेरा अभिनय सत्य हो सकता है--मैं धन्य हो गया, इस जूते को मैं संभालकर रखूंगा! मुझे बहुत इनाम मिले हैं, लेकिन इतना बड़ा इनाम मुझे कभी नहीं मिला। विद्यासागर तो बहुत झेंपे और जाकर अपनी जगह बैठ गये। बाद में लोगों
से कहा कि बड़ी हैरानी की बात है। वह नाटक मुझे सच मालूम पड़ गया, मैं भूल ही गया कि जो देख रहा हूं, वह केवल नाटक है।
अगर नाटक भी सच मालूम पड़े तो आदमी अशांत हो जाता है और अगर जीवन नाटक मालूम पड़ने लगे तो आदमी शांत हो जाता है।
सपने में अशांत होने का कारण क्या है? तब अगर गरीबी आती है तो सपना है
और अमीरी आती है तो सपना है। तब बीमारी आती है तो सपना है और स्वास्थ्य आता है तो सपना है। तब सम्मान मिलता है तो सपना है, अपमान मिलता है तो सपना है। तब अशांत, पीड़ित, परेशान और टेंस होने का कारण क्या है?
सारा तनाव इसलिए पैदा होता है कि जीवन हमें बहुत सच्चा मालूम पड़ता है, बहुत यथार्थ मालूम पड़ता है। और जितनी यह बात स्पष्ट होने लगे, उतना ही भीतर चित्त शांत होना शुरू हो जाता है। सत्य अशांत होने के कारण ही विलीन हो जाता है।
जापान के एक गांव में एक फकीर ठहरा हुआ था। बहुत सुंदर युवक था, बड़ी कीर्ति थी उस गांव में उसकी। सारे लोग उसे सम्मान देते थे, आदर देते थे। लेकिन एक दिन स्थिति बदल गयी। सारे गांव के लोग उसके विरोध में हो गये!

सारा गांव उसके झोपड़े पर टूट पड़ा! लोगों ने जाकर पत्थर फेंके! उसकी झोपड़ी में आग लगा दी!
वह आदमी पूछने लगा, वह फकीर पूछने लगा, बात क्या है? मामला क्या है?
तो लोगों ने जाकर एक छोटे-से बच्चे को उसकी गोद में पटक दिया और कहा कि मामला पूछते हो? गांव की एक लड़की को यह बच्चा पैदा हुआ है। यह बच्चा तुम्हारा है! उस लड़की ने कहा है कि इस बच्चे के बाप तुम हो! और हमसे बड़ी भूल हुई, जो हमने तुम्हें सम्मान दिया। हमसे बड़ी भूल हुई, जो हमने तुम्हारे लिए झोपड़ा बनाया और गांव में रहने की व्यवस्था की। तुम ऐसे चरित्रहीन सिद्ध होगे, यह हमने कभी सोचा भी न था। यह बेटा तुम्हारा है।
बेटा रोने लगा था। वह फकीर उस बेटे को चुप कराने लगा। और उसने उन लोगों से कहा, इज इट सो? क्या ऐसा मामला है कि बेटा मेरा है? अब जब तुम कहते हो तो ठीक ही कहते होगे।
वे लोग गालियां देकर, झोपड़े में आग लगाकर, उस फकीर के सामान को फेंककर वापिस लौट गये।
दोपहर होने पर वह फकीर गांव में भिक्षा के लिए निकला उस बेटे को लेकर! शायद दुनिया के किसी गांव में कभी कोई फकीर कभी इस भांति भिक्षा मांगने नहीं निकला होगा। वह छोटा-सा बेटा रो रहा है। वह फकीर एक-एक घर के सामने भीख मांगता है और लोग द्वार बंद कर देते हैं! कौन उसे भीख देगा?
सारे गांव में वह भटक रहा है। लोग चारों तरफ से भीड़ लगाये हुए हैं, लोग गालियां बक रहे हैं, अपमानजनक शब्द बोल रहे हैं! लोग पत्थर फेंक रहे हैं! उस छोटे बच्चे को बचाता हुआ वह उस घर के सामने पहुंचा, जिस घर की बेटी का वह है। उस घर के सामने भी चिल्लाता है कि मुझे खाना न मिले, समझ में आ सकता है, लेकिन इस छोटे-से बच्चे को दूध तो मिल जाये। और मेरा कसूर हो सकता है, लेकिन इस बच्चे का तो कोई भी कसूर नहीं है।
भीड़ वहां दरवाजे पर खड़ी है। वह जिस लड़की का बेटा है, उसका हृदय पिघल जाता है, वह अपने बाप के पैर पकड़ लेती है और कहती है, मुझसे भूल हो गयी। मैंने झूठ ही उस फकीर का नाम ले लिया, उस फकीर को मैं जानती नहीं। उस बेटे का बाप दूसरा है। उसी को बचाने के लिए मैंने फकीर का नाम ले लिया था। मैंने सोचा था थोड़ी-बहुत गाली-गलौज करके आप वापिस लौट आयेंगे, बात यहां तक बढ़ जायेगी, यह मैंने नहीं सोचा था, मुझे क्षमा कर दो।
बाप तो हैरान हो गया, आकर फकीर के पैर पड़ने लगा! उसके हाथ से उस छोटे बच्चे को वह छीनने लगा!
उस फकीर ने पूछा कि बात क्या है? मेरे बेटे को छीनते क्यों हो?
उस बाप ने कहा, आपका बेटा नहीं है, यह हमसे भूल हो गयी है! यह बेटा आपका नहीं, किसी और का है!
उस फकीर ने कहा, इज इट सो? बेटा मेरा नहीं है? क्या कहते हो! सुबह तो तुम्हीं कहते थे कि तुम्हारा है!
सारे गांव के लोग कहने लगे कि तुम कैसे पागल हो? तुमने सुबह ही क्यों नहीं कहा कि बेटा मेरा नहीं है?
उस फकीर ने कहा, क्या फर्क पड़ता है, इस सपने में कि बेटा किसका है? किसी न किसी का होगा। और जब तुम सारे लोग कहते हो तो ठीक ही कहते हो और इससे क्या फर्क पड़ता है? एक झोपड़ा तुमने जला ही दिया था, एक आदमी को गालियां दे ही चुके थे। और अगर मैं कहता कि मेरा नहीं है तो एक झोपड़ा और जलाते, एक और दूसरे आदमी को गालियां देते और क्या फर्क पड़ता?
पर वे लोग कहने लगे कि तुम्हें अपने सम्मान की फिक्र नहीं है?
उस फकीर ने कहा, जिस दिन से यह दिखाई पड़ गया कि बाहर जो है, वह एक सपना है, उस दिन से सम्मान और अपमान में कोई फर्क नहीं रह गया, उस दिन से सब बराबर है। सपने में सम्मान और अपमान से क्या फर्क हो सकता है? हां, असलियत हो तो फर्क हो सकता है। असलियत न हो तो क्या फर्क हो सकता है?
नेपोलियन हार गया था। और हारे हुए नपोलियन को सेंट हेलना नाम के एक छोटे-से द्वीप में बंद कर दिया गया था। नेपोलियन था बादशाह, विजय का यात्री। फिर हार गया और एक छोटे-से द्वीप पर साधारण कैदी की तरह बंद कर दिया गया।

दूसरे दिन सुबह ही घूमने निकला है द्वीप पर, उसके साथ उसका डाक्टर है।
वे दोनों एक छोटी-सी पगडंडी से निकल रहे हैं। एक खेत के बीच में से एक औरत, एक घास काटने वाली औरत, एक घसियारिन अपने सिर पर घास का बोझ लिये हुए पगडंडी पर आती है। नेपोलियन का साथी डाक्टर चिल्लाकर कहता है, घास वाली औरत, रास्ते से हट जा, तुझे पता नहीं कौन आ रहा है? नेपोलियन आ रहा है! नेपोलियन अपने मित्र डाक्टर का हाथ पकड़कर नीचे खींचता है और कहता है, पागल, सपना बदल गया। वह दिन गये, जब हम लोगों से कहते थे, हट जाओ, नेपोलियन आ रहा है। अब हमें हट जाना चाहिए। नेपोलियन ने कहा, सपना बदल गया प्यारे! हट जाओ रास्ते से, वे जमाने गये, जब हम पहाड़ को कहते, हट जाओ और पहाड़ को हटना पड़ता था। अब तो घास वाली औरत के लिए भी हमको हट जाना चाहिए।
नेपोलियन बड़ी समझ की बात कह रहा है। वह कह रहा है कि सपना बदल गया, वह बात बदल गयी। अब एक दूसरा सपना चल रहा है।
लेकिन डाक्टर बहुत दुखी हो जाता है, यह बात देखकर कि नेपोलियन को हटना पड़ा। नेपोलियन हंस रहा है। क्योंकि जिस आदमी को सपना मालूम पड़ रहा हो, उसके लिए रोने का कारण क्या रह गया?
नेपोलियन हारकर भी वही है, जो जीतकर था। और नेपोलियन ने यह कहकर कि सब सपना है, एक अदभुत सत्य की गवाही दे दी।
जिंदगी अगर बाहर सपना दिखाई पड़नी शुरू हो जाये, तो भीतर आदमी शांत होना शुरू हो जाता है।
फिर हार और जीत में फर्क क्या है? फिर हार भी वही है, जीत भी वही है। फिर सम्मान भी वही है, अपमान भी वही है। फिर जीवन भी वही है, मृत्यु भी वही है। फिर कैसी अशांति? फिर कैसा तनाव? फिर व्यक्ति के भीतर एक गंभीर शांति का अवतरण हो जाता है। वही शांत पगडंडी है उन शिखरों की, जहां सत्य के मंदिर हैं।
शांति की पगडंडी से आदमी सत्य के शिखरों पर पहुंचता है।
और शांति की पगडंडी पर वही चल सकते हैं, जिनको जीवन सपना दिखाई पड़ता है। जिन्हें जीवन एक सत्य, एक ठोस सत्य मालूम होता है, वे कभी शांति के मार्गों पर नहीं चल सकते। यह है पहली बात। इससे ही जुड़ी हुई है दूसरी बात। जिस आदमी को जीवन सपना दिखाई पड़ने लगेगा, उस आदमी का व्यवहार क्या होगा? जिस आदमी को जिंदगी अयथार्थ मालूम होने लगेगा, वह आदमी जीयेगा कैसे? उसके जीवन का सूत्र क्या होगा? सपने के साथ हम क्या करते हैं? सपने को देखते हैं, और कुछ तो कर भी नहीं सकते हैं?
जिस आदमी को पूरी जिंदगी सपना दिखाई पड़ने लगेगी, वह एक द्रष्टा हो जायेगा, वह एक साक्षी हो जायेगा। वह देखेगा और कुछ भी नहीं करेगा। जिंदगी जैसी होगी, उसे देखता चला जायेगा।
सपना है दशा, साक्षी है परिणति। सपना है आधार और साक्षी है उस पर उठा हुआ भवन।
जब कोई आदमी जीवन को सपना जान लेता है तो फिर एक साक्षी रह जाता है, एक द्रष्टा रह जाता है। फिर एक देखने वाले से ज्यादा उसका मूल्य और अर्थ नहीं होता। फिर वह जीवन ऐसे जीता है, जैसे एक दर्शक। और जब कोई आदमी दर्शक की भांति जीवन में जीना शुरू कर देता है, तब उसके जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उस क्रांति का नाम ही धार्मिक क्रांति है। वह धर्म की क्रांति शास्त्रों के पढ़ने से नहीं होती, साक्षी बनने से होती है। वह धर्म की क्रांति पिटे-पिटाये सूत्रों को कंठस्थ करने से नहीं होती, जीवन में साक्षी के जन्म हो जाने से हो जाती है। और जो आदमी साक्षी की तरह जीने लगता है, वह चढ़ जाता है उन शिखरों पर, जहां सत्य का दर्शन होना निश्चित है।
तो दूसरा सूत्र है साक्षी भाव। जीवन में ऐसे जीना, जैसे एक दर्शक। जैसे जीवन के बड़े पद पर एक कहानी चल रही है और हम देख रहे हैं। एक दिन भर के लिए प्रयोग करके देखना और जिंदगी दूसरी हो जायेगी। एक दिन तय कर लें कि सुबह छह बजे से शाम छह बजे तक इस तरह जीयेंगे, जैसे एक दर्शक। और जिंदगी को ऐसा देखेंगे, जैसे कहानी एक पद पर चलती हो। और पहले ही दिन जिंदगी में कुछ नया होना शुरू हो जायेगा।
आज ही करके देखें, एक छोटा-सा प्रयोग करके देखें कि जिंदगी को ऐसे देखेंगे, जैसे एक दर्शक। एक बड़े पद पर कहानी चलती हो और हम हों सिर्फ

दर्शक। सिर्फ एक दिन के लिए प्रयोग करके देखें। और उस प्रयोग के बाद आप दुबारा वही आदमी कभी नहीं हो सकेंगे, जो आप थे। उस प्रयोग के बाद आप आदमी ही दूसरे हो जायेंगे।
साक्षी होने का छोटा-सा प्रयोग करके देखें। देखें आज घर जाकर और जब पत्नी गाली देने लगे या पति गर्दन दबाने लगे, तब इस तरह देखें, जैसे कोई साक्षी देख रहा है। और जब रास्ते पर चलते हुए लोग दिखाई पड़े, दुकानें चलती हुई दिखाई पड़ें, दफ्तर की दुनिया हो; तब ख्याल रखें, जैसे किसी नाटक में प्रवेश कर गये हों और चारों तरफ एक नाटक चल रहा हो। एक दिन भर इसका स्मरण रखकर देखें और आप कल दूसरे आदमी हो जायेंगे।
दिन तो बहुत बड़ा है, एक घंटे भी कोई आदमी साक्षी होने का प्रयोग करके देखे, उसकी जिंदगी में एक मोड़ आ जायेगा, एक टघनग आ जायेगी। वह आदमी फिर वही कभी नहीं हो सकेगा, जो एक घंटे पहले था। क्योंकि एक घंटे में जो उसे दिखाई पड़ेगा, वह हैरान कर देने वाला हो जायेगा। और उस एक घंटे में उसके भीतर, जो परिवर्तन होगा, जो ट्रांसफार्मेशन होगा, उससे कीमिया ही बदल जायेगी। वह उसके भीतर चेतना के नये बिंदुओं को जन्म दे देगी। एक घंटे के लिए ऐसे देखें।
अगर पत्नी गालियां दे रही हो, अगर मालिक गालियां दे रहा हो, तो ऐसे देखें, जैसे आप सिर्फ एक नाटक देख रहे हों। फिर देखें कि क्या होता है? सिवाय हंसने के और कुछ भी नहीं होगा। भीतर एक हंसी फैल जायेगी और चित्त एकदम हल्का हो जायेगा।
कल यही गाली बहुत भारी पड़ गयी होती, छाती पर पत्थर बनकर बैठ गयी होती।
इस गाली ने भीतर जहर पैदा कर दिया होता। इस गाली ने भीतर प्राणों को मथ डाला होता। इस गाली ने भीतर जाकर जीवन में एक संकट, एक अशांति पैदा कर दी होती। जिंदगी एक प्रतिक्रिया बन जाती, एक रिएक्शन बन जाती। जिंदगी एक तूफान और एक आंधी हो जाती।
वही गाली आज आयेगी और इधर भीतर अगर साक्षी है तो गाली ऐसे ही बुझ जायेगी, जैसे अंगारा पानी में पड़कर बुझ जाये, राख हो जाये। और आप देखते रह जायेंगे। और तब हैरानी होगी कि यही गाली कल पीड़ित करती थी, और आज क्या हो गया है? यही बात कल बहुत कष्ट देती थी और आज, आज क्या हो गया! आज आप बदल गये है।
दुनिया वही है, दुनिया हमेशा वही है, सिर्फ आदमी बदल जाते हैं। और जब आदमी बदल जाता है तो दुनिया बदल जाती है।
पहला सूत्र है जीवन एक सपना है।
दूसरा सूत्र है उस सपने में एक साक्षी की तरह जीना है।
और जो आदमी सपने में साक्षी की तरह जीना शुरू कर देता है, उसकी जिंदगी में क्या हो जाता है, इसे शब्दों में कहना मुश्किल है। इसे तो केवल करके ही जाना जा सकता है। इसे तो प्रयोग करके एक्सपेरिमेंट्स से ही पकड़ा जा सकता है और पहचाना जा सकता है कि क्या हो जाता है? यूं थोड़ा-सा प्रयोग करें और देखें।
मंदिरों में जाने की फिक्र छोड़ दें। जिंदगी ही मंदिर बन जाती है, अगर साक्षी बनकर खड़े हो जायें।
पहाड़ों पर, हिमालय पर जाने की चिंता छोड़ दें। वह जिंदगी यहीं इसी क्षण तीर्थ बन जाती है, अगर साक्षी बन जायें।
जो आदमी जहां साक्षी बन जायेगा, वहीं तीर्थ शुरू हो गया, वहीं एक नयी घटना शुरू हो गयी।
सुकरात मरने के करीब था। उसे जहर दिया जा रहा है। बाहर जहर पीसा जा रहा है। सुकरात लेटा हुआ है। उसके मित्र सब रो रहे हैं।
और सुकरात उनसे पूछता है कि तुम रोते क्यों हो?
तो उन मित्रों ने कहा, हम रोयें न तो और क्या करें? तुम मरने के करीब हो।
सुकरात ने कहा, पागलो, वह तो मैं जिस दिन जन्मा था, उस दिन रो लेना था, क्योंकि जब जन्म शुरू हुआ, तभी मौत शुरू हो गयी थी। अब तुम इतनी देर करके रोते हो? वह तो जब मैं जन्मा, तभी से मरना शुरू हो गया था।

जब कहानी शुरू होती है, तभी उसका अंत भी आ जाता है। जब परदे पर फिल्म शुरू होती है, तभी जान लेना चाहिए कि समाप्ति भी आयेगी। यह दी एंड--यह तो बहुत जल्दी आ जाने वाला है, अंत प्रारंभ में ही छिपा हुआ है।
पागलो, सुकरात ने कहा, वह तो हम जन्मे थे, तभी हमने समझ लिया था कि मर गये, बात वहीं खत्म हो गयी। अब क्या रोते हो? और सुकरात ने कहा, अगर रोना ही है तो अपने लिए रोना, मेरे लिए तुम क्यों रोते हो, जब मैं ही नहीं रो रहा हूं?
सुकरात ने कहा कि जाओ, जल्दी से देखो, जहर तैयार हुआ या नहीं? सुकरात खुद उठकर बाहर गया। वह जहर पीसने वाले से कहने लगा कि समय हुआ जा रहा है, छह बजे जहर देना है, अभी तक जहर तैयार नहीं हुआ!
वह जहर पीसने वाला कहने लगा कि मैंने बहुत लोगों को जहर दिया, पर तुम जैसा पागल आदमी नहीं देखा! हम चाहते हैं कि थोड़ी देर लगा लें, तुम थोड़ी देर और जिंदा रह लो, थोड़ी देर और श्वासें ले लो। इतनी जल्दी क्या है मरने की? सुकरात कहने लगा, जल्दी कुछ भी नहीं है। लेकिन जिंदगी बहुत देख चुके हैं, मौत को भी देख लेने का इरादा है! जिंदगी का सपना बहुत देख चुके, अब नयी कहानी मौत को भी देख लेना चाहते हैं। इसलिए बड़ी उत्सुकता है कि जल्दी एक फिल्म खत्म हो और नयी फिल्म शुरू हो, नया नाटक शुरू हो। इसलिए हम पूछते हैं कि जल्दी करो।
सुकरात को जहर दे दिया गया। उस आदमी ने इस तरह जहर पी लिया, जैसे किसी
और आदमी को जहर दिया गया हो! जहर पीता रहा और बातें करता रहा! जहर पीकर लेट गया और कहने लगा कि मेरे पैर ठंडे हो रहे हैं! ऐसा मालूम पड़ता है कि पैर ठंडे हुए जा रहे हों।
मित्रों ने कहा, पैर ठंडे हुए जा रहे हैं, तुम्हीं ठंडे हुए जा रहे हो! सुकरात ने कहा कि मैं ठंडा कैसे हो सकता हूं? मैं तो जान रहा हूं कि पैर ठंडे हो रहे हैं। मैं तो अब भी वही हूं। फिर उसने कहा कि मेरे घुटनों तक जहर छा गया, अब मेरी कमर तक, हाथ-पैर ऐसे हो गये हैं, जैसे हों ही न। मुझे पता नहीं चल रहा है।
लोगों ने कहा, क्या बातें कर रहे हो? तुम्हीं ठंडे हुए जा रहे हो।
सुकरात ने कहा कि मैं तो पूरी तरह वही का वही हूं, जो जहर देने के पहले था। हां, इतना मालूम पड़ रहा है कि हाथ-पैर ठंडे हुए जा रहे हैं। हाथ-पैर जा रहे हैं। यह हाथ-पैर वाली कहानी खत्म हुई जाती है। अब शायद कोई दूसरी कहानी शुरू होगी। मैं तो वही हूं! मैं तो अब भी देख रहा हूं!
जिंदगी भर जिसने देखा ही है, वह मौत को भी देख सकता है। और जो मौत को देख सकता है, उसकी मौत कैसे हो सकती है?
जिसने साक्षी-भाव साध लिया, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
स्वामी राम अमेरिका गये। वह बड़े अजीब आदमी थे। दुनिया में कुछ थोड़े-
से अजीब आदमी कभी-कभी पैदा हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में थोड़ी रौनक है। स्वामी राम बहुत ही अजीब आदमी थे। अगर कोई गाली देता तो वह खड़े होकर हंसने लगते और मित्रों को जाकर कहते कि आज बाजार में राम को खूब गालियां पड़ीं। लोग कहते राम को! आपको नहीं?
स्वामी राम कहते कि मुझको? मुझको लोग जानते ही नहीं, गालियां कैसे देंगे? राम को जानते हैं, इसलिए राम को गालियां देते हैं? और जब राम को गालियां पड़ रही थीं, तब हम भीतर बैठकर हंस रहे थे मन ही मन में कि अच्छा है बेटा, गालियां पड़ रही हैं!
एक गांव में राम गया था स्वामी राम कहते हैं--एक गांव में राम गया था! गिर पड़ा एक गड्ढे में। हम खूब हंसे, हमने कहा कि अच्छे गिरे! अगर बिना देखकर चलोगे तो गिरोगे ही! लोग कहते कि आप किसके बाबत बातें करते हैं? तो वे कहते, इस राम के बाबत बातें करता हूं!
और आप कौन हैं?
तो वे कहते, मैं तो सिर्फ देखने वाला हूं। यह राम पर कहानी चल रही है,
हम देख रहे हैं! राम की जिंदगी है, हम देख रहे हैं।
यह जो देखने की बात है, यह जो देखने की तरकीब है, यह जो देखने की टेक्नीक है, जिंदगी के प्रति साक्षी हो जाने की, यह जो कला है, यह धर्म का सारभूत रहस्य है।

देखें, जिंदगी को एक साक्षी होकर और तब एक नयी जिंदगी की शुरुआत हो जाती है। यह नयी शुरुआत ही सत्य पर ले जाती है। उस सत्य पर जिसका न कोई जन्म हुआ है। उस सत्य पर जिसकी न कभी कोई मृत्यु होती है। उस सत्य पर जो सपना नहीं है। लेकिन अगर हम अपने में और कहानी में ही सोये रहें तो शायद उसका हमें कभी भी पता नहीं चलता।
बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो जीवन के सत्य को जान पाते हैं। अधिक लोग जीवन के सपने में ही जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं!
सपने से जागना है, ताकि सत्य उपलब्ध हो सके।
और कहानी से जागना है, नाटक से जागना है, अभिनय से जागना है, ताकि वह जाना जा सके; जो अभिनय नहीं है, जो नाटक नहीं है, जो कहानी नहीं है। उसका नाम ही आत्मा है, उसका नाम ही परमात्मा है। चाहे कोई उसे सत्य कहे या कोई और नाम दे दे, उसको जानते ही आदमी मुक्त हो जाता है। क्योंकि सब बंधन सपने के बंधन हैं।
कोई बंधन सच्चा बंधन नहीं है। सब बंधन सपने के बंधन हैं। सब बंधन झूठे बंधन हैं। एक बार यह दिखाई पड़ जाये तो पता चलता है कि मैं तो मुक्त ही था, मैं तो सदा से ही मुक्त हूं। और यह जो प्रतीति है, यह कितने अनंत आनंदों से भर देती है, यह कितने आलोक से भर देती है, उसकी कोई गणना करनी कठिन है। इम्मेजरेबल, उसको नापने का कोई उपाय नहीं, उसे शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं, उसको अभिव्यक्ति देने का भी कोई मार्ग नहीं, उसे तो बस जाना जा सकता है और जीया जा सकता है।
उस जीने की दिशा में ये दो सूत्र बहुत याद रखने की जरूरत है। जीवन एक सपना है और हम एक साक्षी हैं। इसका थोड़ा प्रयोग करके ही देखा जा सकता है कि क्या परिणाम होते हैं। देखें प्रयोग करके देखें और समझें। और जब तक उस प्रयोग को नहीं करते हैं, तब तक और कुछ भी करते रहें, सत्य का कोई पता कभी नहीं चल सकता है। सत्य का कभी कोई पता नहीं चल सकता!
और कुछ करने से न माला फेरने से, न राम-राम जपने से, न गीता पढ़ने से, न कुरान पढ़ने से, न मंदिरों में पूजा-आराधना करने से--नहीं, और किसी तरह से सत्य का कोई पता न कभी चला है और न चल सकता है। सिर्फ वे ही जान पाते हैं, जो जागते हैं, साक्षी हो जाते हैं। और साक्षी होते ही सब बदल जाता है। सब नया हो जाता है।
लेकिन यह बात प्रयोग की है। और यह बात कोई दूसरा आपके लिए नहीं कर सकता, आपको ही अपने लिए करनी पड़ेगी। यह रास्ता कोई दूसरा आपके लिए नहीं चल सकता। गिरनार के पहाड़ पर तो डोली में बैठकर भी जाया जा सकता है, लेकिन इन सत्यों के शिखरों पर डोली में बैठकर जाने का कोई उपाय नहीं है। वहां कोई डोलियां उपलब्ध नहीं हैं और न कोई कहार है, जो आपको चढ़ाकर ले जाये। वहां अपने ही पैरों पर भरोसा करना पड़ता है। किसी दूसरे के पैर साथ नहीं दे सकते। और वहां कोई बंधा हुआ रास्ता भी नहीं है। वहां चलने से ही रास्ता बनता है।
जितना हम चलते हैं साक्षी की तरह, उतना ही रास्ता निर्मित हो जाता है।
और एक बार थोड़ा-सा भी द्वार खुल जाये साक्षी का तो फिर बहुत कुछ और नहीं करना पड़ता। वह थोड़ा-सा द्वार ही पुकारता है, खींचता है और आदमी खिंचता चला जाता है।
जैसे कोई आदमी छत पर से कूदना चाहे, छत पर से कूद जाये और फिर पूछे कि
अब मैं क्या करूं जमीन तक पहुंचने के लिए? तो हम कहेंगे कि अब कुछ भी करने की जरूरत नहीं, तुम कूद गये, अब बाकी काम जमीन कर लेगी। अब जमीन खींच लेगी, उसकी कशिश, उसका गुरुत्वाकर्षण, ग्रेवीटेशन खींच लेगा। तुम छत पर से कूद गये बस, अब तुम्हारा काम खत्म, अब जमीन काम कर लेगी।
एक बार आदमी साक्षी में कूद जाये, फिर उसे खुद कुछ नहीं करना पड़ता। वह परमात्मा की जो कशिश है, वह जो ग्रेवीटेशन है, वह जो परमात्मा का गुरुत्वाकर्षण है, वह काम पूरा कर लेता है। जब तक हम सपने में खड़े हुए हैं, तब तक वह काम नहीं करता। जैसे ही हम सपने को तोड़ते हैं और कूदते हैं, वैसे ही परमात्मा खींचना शुरू कर देता है।

आदमी एक कदम चले परमात्मा की तरफ और परमात्मा हजार कदम चलता है। हम जरा से बढ़ें, वह हजार कदम बढ़ जाता है। हम जरा-सा उसको पुकारें और उसकी पुकार हमारी पुकार से हजार गुनी होकर शुरू हो जाती है।
लेकिन हम जरा-सा भी अपने सपने से नहीं हटते, बल्कि हम तो अपने सपने को मजबूत करते चले जाते हैं! कहीं सपना टूट न जाये, इसलिए चारों तरफ से पत्थर की दीवार बनाकर सपनों को सुरक्षित करते हैं! छोटा सपना देखने वाला बड़ा सपना देखना चाहता है। छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर होना चाहता है। वह जरा बड़ा सपना देखना चाहता है। छोटे झोपड़े वाला महल वाला सपना देखना चाहता है। झोपड़े का सपना जरा दुखद सपना है। महल का सपना जरा सुखद सपना है।
सभी दुखद सपने देखने वाले सुखद सपना देखना चाहते हैं! छोटे सपने देखने वाले बड़े सपने देखना चाहते हैं! जूनागढ़ में सपना देखने वाले दिल्ली में सोकर सपना देखना चाहते हैं! सपने देखते चले जाना चाहते हैं और मजबूत करते चले चाहते हैं!
सपना जितना मजबूत होता है, उतने ही हम सत्य से दूर होते चले जाते हैं। सपने को तोड़ना है, मजबूत नहीं करना है। और हम सब सपने को मजबूत करने के सब उपाय करते हैं! और अगर कोई दूसरा हमारे सपने को तोड़ना चाहे तो हम नाराज हो जाते हैं!
इंग्लैंड के एक बहुत बड़े डाक्टर ने एक किताब लिखी है और किताब एक फकीर
को समर्पित की है। और समर्पण, डेडिकेशन में जो शब्द लिखे हैं, वह मुझे बहुत प्यारे लगे। समर्पण, डेडिकेशन में उसने लिखा है उस फकीर गुरजिएफ के लिए समर्पण किया है। लिखा है--टू जार्ज गुरजिएफ, दी डिस्टरबर आफ माइ स्लीप; जार्ज गुरजिएफ के लिए समर्पित, जिसने मेरी नींद तोड़ दी!
नींद तोड़ने वाले हैं कुछ, लेकिन नींद तोड़ने वाला कभी प्रीतिकर नहीं मालूम पड़ता। नींद तोड़ने वाला बहुत दुश्मन मालूम पड़ता है। क्योंकि हम अपने सपने में खोये हैं, नींद में देख रहे हैं। कोई आकर हमें झकझोरता है और जगाता है। तो तबियत होती है कि मना करो इसे, रोको इसे। सपना हम देख रहे हैं, क्यों तोड़ते हो हमारी नींद को? क्यों तोड़ते हो मेरे सपनों को?
और इसलिए दुनिया में सपने तोड़ने वाले लोग कभी भी प्रीतिकर नहीं मालूम हुए। हम अपने सपनों में खोये हैं--ये नासमझ लोग आकर जगाते हैं और हिलाते हैं और सपना तोड़ देते हैं!
लेकिन जिन्होंने सपने के बाहर की दुनिया देख ली है, उनके प्राणों में ऐसा लगता है कि काश, तुम भी अपनी नींद के बाहर आ जाओ और उसे जान लो, जो सत्य है। क्योंकि जिन्होंने सत्य नहीं जाना, उन्होंने जीवन भी नहीं जाना। और जिन्होंने सत्य नहीं जाना, उन्होंने केवल नींद में गंवा दिया अवसर को, उन्होंने केवल मूर्च्छा में खो दिया सब कुछ।
वे जो सोते हैं, खो देते हैं। और वे जो जागते हैं, केवल वे ही उपलब्ध कर पाते हैं जीवन की संपदा को, जीवन के सौंदर्य को, जीवन के शिव को।
ये दो छोटे सूत्र स्मरण रखना आप। जीवन एक सपना है और मनुष्य को बनना
है एक साक्षी। क्योंकि जैसे ही वह साक्षी बना, सपना टूट जाता है और सपना टूटा, तब जो शेष रह जाता है--वही है सत्य।

नेति-नेति
ग्यारहवां प्रवचन

शून्य से सत्य की ओर

प्रिय आत्मन्,
बहुत-से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।
एक मित्र ने पूछा है, आत्मा दिखाई नहीं देती है और जो नहीं दिखाई देती, उसका इतना महत्व क्यों माना जाता है? और आप भी उसी न दिखाई पड़ने वाली आत्मा की बात क्यों कर रहे हैं?
वृक्ष दिखाई पड़ता है, जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं; जड़ें जमीन के भीतर छिपी होती हैं। लेकिन इस कारण नहीं दिखाई पड़ने वाली जड़ों का मूल्य कम नहीं हो जाता है। बल्कि जो वृक्ष दिखाई पड़ता है, वह उन्हीं जड़ों पर निर्भर होता है, जो दिखाई नहीं पड़तीं। और वृक्ष की ही देख-संभाल में जो समय गंवा देगा और जड़ों की फिक्र नहीं करेगा, उसका वृक्ष सूख जाने वाला है। उस वृक्ष पर न पत्ते आयेंगे, न फूल आयेंगे, न फल लगेंगे। नहीं दिखाई पड़ने वाली जड़ों में ही वृक्ष के प्राण छिपे हैं।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह छिपा हुआ है। जो प्रकट होता है, वह ऊपर की खोल है। जो अप्रकट रह जाता है, वह भीतर का प्राण है।
शरीर दिखाई पड़ता है, क्योंकि शरीर ऊपर की खोल है। वह नहीं दिखाई पड़ता,
जो शरीर के भीतर है। लेकिन इस कारण नहीं दिखाई पड़ने वाले का मूल्य कम नहीं हो जाता। बल्कि नहीं दिखाई पड़ता है, इसलिए उसकी खोज और भी ज्यादा जरूरी हो जाती है।
कहीं ऐसा न हो जाये कि जो दिखाई पड़ता है, हम उसी को सत्य मानकर समाप्त
हो जायें। कहीं ऐसी भूल न हो जाये कि जो दिखाई पड़ता है, हम उसी को सब कुछ मानकर रुक जायें। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी है। नहीं दिखाई पड़ने का कुल अर्थ इतना है कि सामान्य आंखों से नहीं दिखाई पड़ता है। लेकिन जो थोड़ी जो अंतर्दिष्ट पैदा करें, विवेक पैदा करें, समझ पैदा करें, उन्हें वह भी दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।
विचार आपके भीतर चलते हैं। अगर आपके सिर को तोड़ा जाये और आपके सिर की नसों को काटा जाये तो उनमें विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। अगर विज्ञान की परीक्षा-शाला में मस्तिष्क को काट-पीट करके जांच-परख की जाये तो विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। और वैज्ञानिक कह देगा कि विचार कहीं भी खोजने से नहीं मिलते। लेकिन हम सब जानते हैं कि विचार हैं। विचार दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन हमें उनका अनुभव होता है। हम किसी दूसरे को भी उन्हें बता नहीं सकते हैं, लेकिन हम भीतर जानते हैं कि वे हैं।
लेकिन प्रयोगशाला में वे नहीं पकड़े जा सकेंगे। इससे उनका न होना सिद्ध नहीं होता, इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि प्रयोगशाला में जो उपकरण उपयोग में लाया जा रहा है, वह बहुत स्थूल है और बहुत सूम को नहीं पकड़ पाता है। वैसे अभी कुछ प्रयोग चलते हैं और ऐसा मालूम होता है कि शायद विचार को पकड़ने की भी क्षमता हम शीघ्र ही विकसित कर लेंगे।
अमेरिका के एक विश्वविद्यालय ने एक छोटा-सा प्रयोग किया है। उसने सारी दुनिया के विचारशील लोगों को हैरानी में डाल दिया। एक आदमी को एक बहुत बड़े संवेदनशील कैमरे के सामने बिठाकर उस व्यक्ति से कहा गया कि तुम किसी एक चीज पर बहुत तीव्रता से विचार करो। उस कैमरे में जो फिल्म लगाई गयी थी, वह बहुत सेंसेटिव, बहुत संवेदनशील थी। और इस बात की आशा की गयी थी कि अगर बहुत तीव्रता से एक विचार किया जाये तो शायद उस विचार की प्रतिछवि को कैमरे की फिल्म पकड़ ले। उस आदमी ने बहुत तीव्रता से एक विचार किया, एक छुरी के ऊपर विचार किया। सारे मन को केंद्रित कर दिया और बड़ी हैरानी की बात है, कैमरे की फिल्म में छुरी की आकृति पकड़ी जा सकी! वे जो मन में विचार की सूम तरंगें थीं, वे भी संवेदनशील कैमरे में पकड़ी जा सकीं! अब तक विचार नहीं देखा गया था। लेकिन विचार की पहली तस्वीर पकड़ी जा सकी।
सोवियत रूस में एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक है फयादौव। और रूस जैसे मुल्क में जो कि सूक्ष्मतम चीजों पर बहुत आस्था नहीं रखते हैं, फयादौव ने एक

प्रयोग किया--एक हजार मील दूर तक विचार के संप्रेषण का! फयादौव ने मास्को में बैठकर तिफलिस नगर में एक हजार मील दूर तक विचार की धारा को संवादित किया, बिना किसी यंत्र के माध्यम से! तिफलिस के एक बगीचे में दस नंबर की सीट के आसपास कुछ लोग मौजूद हैं, छिपे हुए। मित्रों ने फोन से खबर दी फयादौव को मास्को में कि दस नंबर की सीट पर एक आदमी बैठा है। आप मास्को से विचार भेजकर उस आदमी को सुला सकते हों तो सुला दें।
फयादौव ने मास्को में बैठकर ध्यान केंद्रित किया और उस आदमी को नींद
के सुझाव भेजे--सो जाओ, सो जाओ। एक हजार मील दूर सिर्फ मन से! वह आदमी तीन मिनिट के भीतर सो गया!
लेकिन, यह भी हो सकता है, वह आदमी थका-मांदा हो और उसको नींद लग गयी हो।
जो मित्र छिपे थे, उन्होंने फोन से खबर दी कि आदमी तो सो गया है, लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। आप अगर पांच मिनिट के भीतर ठीक उसे वापिस नींद से उठा दें तो हम सोच सकते हैं कि आपके विचारों से वह प्रभावित हुआ है। फयादौव ने फिर उसे सुझाव भेजे कि ठीक पांच मिनिट के भीतर तुम उठ जाओ--उठ जाओ, उठ जाओ। एक हजार मील दूर सोये उस आदमी ने पांच मिनिट के बाद आंखें खोल ही दीं
और चौंककर चारों तरफ देखा, जैसे किसी ने उसे पुकारा! जो मित्र छिपे थे, उन्होंने उस आदमी से आकर पूछा कि आप, इस तरह चौंककर क्यों देख रहे हैं?
उस आदमी ने कहा, मैं बहुत हैरान हूं। मैं अचानक यहां आकर बैठा और मुझे पहले ऐसा मालूम पड़ा कि कोई मुझसे कह रहा है कि सो जाओ, सो जाओ, सो जाओ! मैंने सोचा कि शायद मैं थका-मांदा हूं, मेरा मन ही मुझसे कहता है कि सो जाओ और मैं सो गया। लेकिन फिर अभी-अभी मुझे जोर से सुनाई पड़ने लगा--उठ जाओ, उठ जाओ; पांच मिनिट के भीतर उठ जाओ! मैं बहुत हैरान हूं कि यह कौन बोल रहा है? फयादौव ने और भी प्रयोग किये। और जो विचार दिखाई नहीं पड़ता, उसके संप्रेषण के वैज्ञानिक प्रमाण दिये!
विचार दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन विचार है। आत्मा और भी दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन वह भी है। और जो ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं, उन्हें वह आत्मा भी एक अर्थों में दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। वह भी दिखाई पड़ सकती है। जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, लेकिन गड्ढा खोदा जाये तो चारों तरफ की जड़ें भी दिखाई पड़ सकती हैं। आत्मा दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन जो आदमी शरीर के भीतर थोड़े गड्ढे खोदने की कोशिश करता है और शरीर से भिन्न वह जो चेतना है, उसे पृथक करने की कोशिश करता है, उसे वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। जैसे वृक्ष के चारों तरफ गड्ढा खोदने पर मिट्टी अलग हो जायेगी और जड़ें अलग दिखाई पड़नी शुरू हो जायेंगी।
एक मुसलमान फकीर था शेख फरीद। एक गांव में ठहरा हुआ था। न मालूम कितने लोग उसके चरणों के दर्शन करने आते थे। एक आदमी ने शेख फरीद से पूछा, मैंने सुना है कि जब जीसस को सूली दी गयी तो वे मुस्कराते रहे! यह कैसे हो सकता है कि एक आदमी को सूली दी जा रही हो और वह मुस्कुराता रहे? और उस आदमी ने कहा कि मैंने सुना है कि जब मंसूर के हाथ-पैर काटे गये, तब वह हंस रहा था। यह असंभव मालूम पड़ता है। मंसूर की आंखें फोड़ दी गयीं और उसके चेहरे पर दुख का जरा-सा भी भाव न आया, यह कैसे हो सकता है?
फरीद ने पास में पड़े हुए एक नारियल को उठा लिया, जो लोग उसके चरणों में चढ़ा गये थे। उस नारियल को उस मित्र को दिया और कहा कि जरा जाकर इसे फोड़ लाओ। उस आदमी ने कहा कि मेरे सवाल का जवाब?
फरीद ने कहा कि वह जवाब ही मैं दे रहा हूं। यह नारियल देखते हो, कैसा है? नारियल कच्चा है? उस मित्र ने कहा, नारियल कच्चा है। फरीद ने कहा कि इसे फोड़कर इसके भीतर की गरी को साबित बचाकर ला सकते हो? उस आदमी ने कहा, थोड़ा मुश्किल है, कच्चा है नारियल, खोल और गरी दोनों जुड़े हुए हैं। खोल को तोडूंगा तो गरी भी टूट जायेगी।
फरीद ने कहा, छोड़ो इस नारियल को। एक दूसरा नारियल सूखा उसे उठाकर दिया
और कहा कि इसे देखते हो? उस आदमी ने कहा, इसकी गरी बचाकर लायी जा सकती है। साबित है यह नारियल, सूखा है।
फरीद ने कहा, लेकिन सूखे नारियल की गरी को क्यों साबित बचाया जा सकता है?

उस आदमी ने कहा, बात साफ है। नारियल की खोल और गरी दोनों अलग हो गयी हैं। दोनों के बीच फासला है। ऊपर की खोल तोड़ी जा सकती है। भीतर की गरी साफ बच जायेगी।
तो फरीद ने कहा कि बस तेरे सवाल का जवाब हो गया। कुछ लोग हैं, जो शरीर
की खोल से जुड़े रहते हैं। शरीर को चोट पहुंचती है तो उनको भी चोट पहुंच जाती है। कुछ लोग जो शरीर की खोल को अपने से थोड़ा फासले पर कर लेते हैं, उनके शरीर को काट दिया जाता है तो भीतर कोई पीड़ा, कोई दुख नहीं होता। वह जीसस जो था, वह मंसूर जो था, वह सूखा हुआ नारियल था। और तू गीला नारियल है, यही मैं तुझसे कहना चाहता हूं।
शरीर ही दिखाई पड़ता है। क्योंकि वह जो भीतर है, इतना जुड़ा हुआ है, इतना इकट्ठा जुड़ा हुआ है कि हमें पता ही नहीं। अगर हम थोड़ा दोनों को फासले पर करके देख सकें तो वह जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी दिखाई पड़ सकता है।
और रह गयी यह बात कि उसको इतना मूल्य क्यों दिया जाता है? उसका ही मूल्य है, इसलिए दिया जाता है। शरीर का कोई भी मूल्य नहीं है। वस्त्रों का क्या मूल्य हो सकता है? स्थायी का मूल्य है, थोड़ी देर का मूल्य नहीं है। वस्त्रों का मूल्य वही नहीं है, जो पहनने वाले का है। शरीर का भी वही मूल्य नहीं, जो शरीर के भीतर निवास करने वाले का है। न जाने कितने शरीर उस भीतर के निवासी ने ग्रहण किये हैं। और न मालूम कितने शरीर वह छोड़ चुका! उसकी यात्रा बहुत लंबी है।
लेकिन हम उसे नहीं पहचानते हैं, हम वस्त्रों को ही पहचानते हैं, और वस्त्रों को ही सब-कुछ समझ लेते हैं! जो जानते हैं, वे कहेंगे कि मूल्य इसका ही है, जो भीतर छिपा है, वही है असली सत्य। जो बाहर दिखाई पड़ रहा है; वह खोल है, बदल जायेगी। और रोज बदल जाती है।
शायद आपको पता न हो, जिस शरीर को लेकर बचपन में आप पैदा हुए, क्या वही शरीर आपके पास है? मां के पेट से जिस छोटे से बीजांकुर का जन्म हुआ था, वही आप हैं? वह जरा-सा टुकड़ा, जरा-सा सेल्स का जोड़, क्या दूरबीन से भी दिखाई पड़ेगा कि वही आप हैं? कहां है वह शरीर, जो के मां पेट में आपका था? और जब आप पैदा हुए थे, और अब आप वही हैं?
शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है, जैसे गंगा प्रतिक्षण बह रही है। शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष में पूरे शरीर का सब-कुछ बदल जाता है, सब नया हो जाता है। सत्तर साल आदमी जीता है, दस बार शरीर बदल जाता है। शरीर पूरे वक्त बह रहा है, शरीर एक बहाव है।
लेकिन भीतर कुछ है, जो नहीं बह रहा है। भीतर कुछ है, जो वही है; जो कल था, जो परसों था, जो कल भी होगा और परसों भी होगा। आप बच्चे थे, जवान हो गये। लेकिन क्या आप बदल गये हैं? अगर आप ही बदल गये होते तो यह ख्याल ही पैदा होना मुश्किल था कि मैं कभी बच्चा था। मैं बच्चा था इस बात की स्मृति--इस बात का सबूत और गवाह है कि मैं"मैं" ही था। जब बच्चा था, तब शरीर को मैं जानता था कि बच्चा है और जवान हुआ तो जानता हूं, कल बूढ़ा हो जाऊंगा तो जानूंगा। जो और भी गहराई से जानते हैं, वे मरते क्षण में भी जानते हैं कि मैं वही हूं, शरीर मर रहा है।
सिकंदर हिंदुस्तान से लौटा। जब वह हिंदुस्तान की तरफ आया था तो उसके मित्रों ने यूनान में उससे कहा था कि हिंदुस्तान से बहुत चीजें लाओगे, एक संन्यासी भी ले आना! संन्यासी हिंदुस्तान में ही पाये जाते हैं बहुत दिनों से! हिंदुस्तान के बाहर तो सब एक्सपोर्टेड हैं--हिंदुस्तान से गये हुए संन्यासी हैं, या यहां से गयी हुई हवाएं हैं, या यहां से गये हुए विचार-बीज हैं। सिकंदर के मित्रों ने कहा था, एक संन्यासी को भी ले आना! हम देखना चाहते हैं, संन्यासी कैसा होता है?
सिकंदर सब लूटकर जब वापिस लौटता था, तब पंजाब के एक गांव में ठहरा। उसे ख्याल आया, उसने पुछवाया गांव में कि खबर करो कोई संन्यासी यहां मिल जाये तो मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहता हूं शाही सम्मान के साथ।
गांव के लोगों ने कहा, एक संन्यासी है, लेकिन ले जाना बहुत मुश्किल है।

सिकंदर ने कहा, इसकी तुम फिक्र मत करो। एक साधारण संन्यासी को, एक फकीर को ले जाने में मुझे क्या मुश्किल हो सकती है? मैं ले जाऊंगा, क्या ताकत हो सकती है एक गरीब संन्यासी की?
उस गांव के लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, शायद आपको पता नहीं कि संन्यासी की क्या ताकत होती है? संन्यासी को आप नहीं ले जा सकेंगे। संन्यासी को मार डालना आसान है, लेकिन संन्यासी को इंच भर हिलाना मुश्किल है।
सिंकदर की कुछ समझ में नहीं पड़ा। वह तलवार का विश्वासी, उसे क्या यह
सब बात समझ में पड़ती? तलवार के विश्वासियों को संन्यासी कभी समझ में नहीं आता और कभी नहीं आयेगा। सिकंदर तलवार नंगी लेकर उस संन्यासी की खोज में गया नदी के पास। उसके दो सिपाहियों ने जाकर पहले खबर की उस संन्यासी को कि महान सिकंदर आपसे मिलने आ रहा है।
उस संन्यासी ने कहा, महान सिकंदर! क्या वह खुद भी अपने को महान समझता है?
उन सिपाहियों ने कहा, निश्चित, वह यही सिद्ध करने निकला है दुनिया में
कि मैं महान हूं।
वह संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, उस पागल से कह देना, महान कभी अपने
को महान सिद्ध करने नहीं निकलते। और जो महान सिद्ध करने निकलता है, वह यह जानता है कि वह छोटा आदमी है, इसलिए महान सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। सिंकदर सुनकर क्रोध से भर गया। उसने तलवार खींच ली और उसने कहा कि मेरे साथ चलना है तुम्हें, मैं आज्ञा देता हूं।
संन्यासी ने कहा, पागल हो गये हो? हमने किसी की भी आज्ञा मानना बंद कर दिया है, इसलिए तो हम संन्यासी हैं। हम किसी की आज्ञा नहीं मानते। आज्ञा जो मानते हैं, वे और लोग हैं। हम अपनी मौज से जीते हैं। जैसे हवाएं अपनी मौज से चलती हैं, ऐसे ही हम अपनी मौज से चलते हैं। हम पर आज्ञाएं नहीं चलती हैं। तुम्हें संन्यासियों से बात करने का ढंग नहीं मालूम!
सिकंदर ने कहा कि मैं यह सुनने को राजी नहीं हूं। मैंने कभी अपनी आज्ञा का उोंघन नहीं सुना। आज्ञा के टूटने का एक ही मतलब होगा। यह तलवार तुम्हारी गर्दन को अलग कर देगी।
उस संन्यासी ने कहा, पागल, तुझे पता नहीं कि जिस गर्दन को तू अलग करने
की बात कर रहा है, उससे हम बहुत पहले से अलग हैं, ऐसा जान चुके हैं। और इसलिए अब उसे हमसे अलग करना, न-करना सब बराबर है। अगर तू गर्दन काटेगा तो जिस तरह तू देखेगा कि गर्दन गिर गयी जमीन पर, उसी तरह हम भी देखेंगे, कि गर्दन गिर गयी जमीन पर! हम भी देखेंगे, तुम भी देखोगे। लेकिन इस ख्याल में मत रहना कि तुम मुझे काट दोगे। तुम जिसे काट सकोगे, वह मैं नहीं हूं। और यही तो, यही अनुभव करने के लिए तो, इस जीवन की खोज में निकला था। वह अनुभव पूरा हो गया।
सिंकदर ने कहा यूनान में जाकर कि एक आदमी मिला था, जिसे लोग संन्यासी कहते थे। लेकिन उस पर मेरा कोई बस न चल सका, क्योंकि वह आदमी मरने से नहीं डरता था!
और जो मरने से नहीं डरता, उस पर किसी का कोई भी बस नहीं चल सकता। हम मरने से डरते हैं, इसलिए बस चल जाता है। पर हम मरने से डरते क्यों है? हम मरने से डरते इसलिए हैं कि जो हमें दिखाई पड़ता है, उसी को हम सब समझ लेते हैं। वह मरणधर्मा है, इसलिए मरने से डर लगता है।
लेकिन जो उसको खोज लेते हैं, जो नहीं दिखाई पड़ता, वह जो अमृत है, वे मृत्यु के ऊपर उठ जाते हैं।
उसका मूल्य क्यों है--पूछते हो? उसका मूल्य इसलिए है कि वही जीवन है, वही अमृत है, वही सत्य है। इस शरीर का कोई भी मूल्य नहीं है। इस शरीर का उतना ही मूल्य है, जितना एक मकान के मालिक का होता है। लेकिन मकान के मालिक? मकान के मालिक के मूल्य की बात अलग है। लेकिन कई ऐसे नासमझ हैं कि मकान के मालिक को बेच देते हैं और मकान को बचा लेते हैं! कई ऐसे नासमझ हैं कि मकान को सब समझ लेते हैं और खुद को भूल जाते हैं!
स्वामी राम जापान गये हुए थे। टोकियो के एक बहुत बड़े मकान में आग लग गयी थी। स्वामी राम उस रास्ते से गुजरते थे। वह भी उस भीड़ में खड़े हो गये।

न मालूम कितना कीमती महल आग की लपटों में जल रहा था। सैकड़ों लोग महल के भीतर जाकर सामान बाहर ला रहे थे। महल का मालिक बाहर खड़ा हुआ था। बेहोश हालत में था, लोग उसको संभाले हुए थे। तिजोरियां बाहर निकाली जा रही थीं। कीमती वस्त्र बाहर निकाले जा रहे थे। कीमती फर्नीचर बाहर निकाला जा रहा था। बहुमूल्य चित्र बाहर निकाले जा रहे थे। फिर सारा सामान बाहर निकल गया। अंदर से लोगों ने आकर उस मकान के मालिक से कहा और कुछ बचा हो तो हमें बता दें, एक बार और मकान के भीतर जाया जा सकता है। फिर लपटें पूरी तरह पकड़ लेंगी। फिर भीतर जाना असंभव होगा। कोई बहुमूल्य चीज बची हो तो बता दें। मकान के मालिक ने कहा, मेरा इकलौता बेटा! जो इस सब सामान का मालिक है,
वह कहां है? लोगों ने कहा, भूल हो गयी। हम सामान के बचाने में लग गये और मकान मालिक का इकलौता बेटा, जो कि सारे सामान का मालिक था, वह भीतर ही रह गया और जल गया! अब हम उसकी लाश लेकर आये हैं! अब हम रो रहे हैं कि हमने आपका सामान व्यर्थ बचाया, क्योंकि जिसके लिए वह सामान था, वही खत्म हो गया! स्वामी राम ने अपनी डायरी में लिखा कि आज मैंने एक बड़ी अदभुत घटना देखी, लेकिन बड़ी सच्ची। मैंने आज एक मकान देखा, जिसमें मकान का मालिक जल गया और सामान बचा लिया गया! और मैं यह घटना देखकर इस नतीजे पर पहुंचा कि ऐसा ही सारी दुनिया में हो रहा है। हर आदमी मकान के मालिक को जलने दे रहा है और सामान को बचा रहा है! वह सामान दिखाई पड़ता है इसलिए, और मकान का मालिक दिखाई नहीं पड़ता है इसलिए।
लेकिन जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी है ही। और जो दिखाई पड़ता है, वह भी उसके ही सहारे है। जो नहीं दिखाई पड़ता, वही बुनियाद है। जो दिखाई पड़ता है, वह बुनियाद नहीं है। वह दिखाई पड़ने वाला भवन, न दिखाई पड़ने वाले के आधार पर खड़ा है। लेकिन यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह बुनियाद हो। हम तो सोचते हैं, जो दिखाई पड़ता है, वही बुनियाद होता है। लेकिन जिंदगी बड़ी पहेली है, यहां चीजें बड़ी उलटी हैं। इन उलटी चीजों से ही सारी चीजें बनी हैं।
एक पत्थर उठाकर आप देखते हैं, आपने कभी सोचा कि यह पत्थर उन चीजों से बना हुआ है, जो दिखाई नहीं पड़ती हैं! अभी जाकर वैज्ञानिक से पूछें। वह कहेगा, एटम दिखाई नहीं पड़ता है। और उसे पूछें पत्थर किससे बना है? वह कहेगा, पत्थर एटम से बना है, एटम के जोड़ से बना है।
बड़ा पागल है यह आदमी। जब एटम दिखाई नहीं पड़ते, तब उनका जोड़ कैसे दिखाई
पड़ सकता है? कोई एटम दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यह पत्थर सिर्फ एटम का जोड़ है। यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह भी सब न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ है! कोई अणु दिखाई नहीं पड़ता और उन न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ दिखाई पड़ रहा है!
कभी आपने ख्याल किया होली के वक्त। अभी होली करीब आती है। कुछ बच्चे
आग लगाकर जोर से हाथ को घुमायेंगे। आपने देखा एक लकड़ी में आग लगाकर? कोई जोर से घुमाये तो एक आग का वृत्त, एक फायर सर्किल बन जाता है। एक मशाल को हाथ में लेकर जोर से घुमाइये तो एक चक्कर दिखाई पड़ने लगता है। वह चक्कर है कहीं? नहीं सिर्फ दिखाई पड़ता है! है तो सिर्फ एक मशाल, जो जोर से घूमती है और चक्कर बन जाती है। वह चक्कर है नहीं, लेकिन दिखाई पड़ता है! वह चक्कर इसलिए दिखाई पड़ता है कि मशाल इतने जोरों से घूम रही है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता कि बीच में खाली जगह भी निकल रही है। मशाल बहुत तेजी से घूमने की वजह से एक चक्र बन जाता है।
वैज्ञानिक कहते हैं, एटम इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि वे दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन उनके तेजी से घूमने की वजह से हमें पत्थर दिखाई पड़ता है। सारी दुनिया दिखाई पड़ रही है। और जिन चीजों से मिलकर बनी है, वे दिखाई पड़ने वाली चीजें नहीं हैं!
आत्मा ही नहीं, जगत की सारी चीजें न दिखाई पड़ने वाली चीजों से बनी हैं
और दिखाई पड़ रही हैं! यह चमत्कार है।
पदार्थ हम उसको कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है। शायद, आपको ख्याल न हो, अब
जो जानते हैं, वे कहते हैं, पदार्थ है ही नहीं, मैटर जैसी कोई भी चीज नहीं है!

नीत्शे ने कोई साठ-सत्तर साल पहले, अस्सी साल पहले यह कहा था--गाड इज डेड, ईश्वर मर गया। लेकिन ईश्वर तो नहीं मरा। अब पूरा विज्ञान यही कहता है मैटर इज डेड, पदार्थ मर गया! पदार्थ है ही नहीं, मैटर जैसी कोई चीज दुनिया में नहीं है! जो भी दिखाई पड़ता है, वह भ्रम है। लेकिन हम कहेंगे, जो हमें दिखाई पड़ता है, वह कैसे भ्रम हो सकता है?
उस आकाश की तरफ देखें, वहां तारे दिखाई पड़ रहे हैं आपको, और आपको शायद पता नहीं होगा कि जहां यह आपको तारा दिखाई पड़ रहा है, वहां कोई भी तारा नहीं है। वह सिर्फ दिखाई पड़ रहा है। आप कहेंगे, अगर नहीं है तो दिखाई कैसे पड़ रहा है? वह दिखाई इसलिए पड़ रहा है कि वहां तारा कभी था। जिस जगह आपको तारा दिखाई पड़ रहा है, वहां साठ साल पहले तारा रहा होगा। साठ साल में बहुत आगे बढ़ गया। साठ साल पहले उसकी चली हुई किरण अब हमारी जमीन पर पहुंच पायी है! इसलिए हमको वहां दिखाई पड़ रहा है। हो सकता है इस बीच वह खत्म हो गया हो, हो भी न, लेकिन वह दिखाई पड़ रहा है! वह साठ साल तक आगे भी दिखाई पड़ता रहेगा। सारा आकाश झूठा है। जो तारे दिखाई पड़ते हैं, वे कोई भी वहां नहीं हैं!
और जहां वे हैं, वहां आपको दिखाई नहीं पड़ रहे हैं! और जहां हैं, वहां कभी दिखाई नहीं पड़ेंगे! और सदा वहीं दिखाई पड़ते रहेंगे, जहां वे नहीं हैं! क्योंकि उनसे किरणों के आने में वर्षों लग जाते हैं।
जिंदगी बहुत अदभुत है। यह जो पदार्थ हमें दिखाई पड़ता है, वह भी नहीं है। यह जो शरीर हमें दिखाई पड़ता है, बहुत ठोस मालूम पड़ता है, यह भी न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ है!
और इसके भीतर सबसे महत्वपूर्ण और सबसे रहस्य की जो बात छिपी है, वह है चेतना, वह है कांशसनेस, जिसके ऊपर सारा खेल है; वह बिल्कुल ही दिखाई नहीं पड़ती!
और उसकी जितनी खोज कीजियेगा, जितनी उसकी खोज में जाइयेगा, वह उतनी ही पीछे सरकती चली जाती है! क्योंकि कौन उसको खोजेगा? आप ही तो वही हैं।
अगर एक चिमटे से हम किसी भी चीज को पकड़ना चाहें तो पकड़ लेंगे। लेकिन उसी चिमटे से अगर उसी चिमटे को पकड़ने की कोशिश की तो फिर बहुत मुश्किल हो जायेगी। फिर वह पकड़ में नहीं आ सकेगी। क्योंकि चिमटा खुद अपने को कैसे पकड़ सकता है? और जब आत्मा की खोज में कोई जाता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि आत्मा और सबको देख सकती है, खुद को कैसे देख सकती है? और इसलिए कठिनाई शुरू हो जाती है।
लेकिन आत्मा को अनुभव किया जा सकता है। उसे अनुभव किया गया है, उसे आज
भी अनुभव किया जा सकता है। लेकिन उसे अनुभव वे ही करेंगे, जो देखने पर न रुक जायें, दृश्य पर न रुक जायें और अदृश्य की खोज में संलग्न हों।
इन तीन दिनों में हमने उसी सत्य की खोज के संबंध में कुछ सूचक, कुछ संकेतों पर, कुछ सूत्रों पर बात की है। उसका मूल्य है, जो दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए उसकी बात की जाती है। जिस दिन यह शरीर गिर जायेगा, उस दिन वही बच रहता है, जो नहीं दिखाई पड़ता है। इसलिए उसकी बात करना बहुत जरूरी है, बहुत उपादेय है। उसकी खोज करना भी बहुत जरूरी है, बहुत उपादेय है। और धन्य हैं वे लोग, जो उसकी खोज में संलग्न हो जाते हैं। और अभागे हैं वे लोग, जो दिखाई पड़ता है, उसी पर रुक जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं!
एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं संयम का विरोधी हूं?
मैं निश्चित ही संयम का विरोधी हूं, उस संयम का जो आदमी जबरदस्ती अपने ऊपर थोप लेता है। मैं संयम का बहुत पक्षपाती हूं, लेकिन उस संयम का जो समझ के परिणामस्वरूप मनुष्य को सहज उपलब्ध होता है। इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है। एक तो ऐसा संयम है, जो आदमी जबरदस्ती अपने ऊपर थोपता है। भीतर कुछ होता है, ऊपर से कुछ और हो जाता है। और अधिकतर संयमी इसी तरह के लोग होते हैं। भीतर हिंसा होती है, ऊपर से आदमी अहिंसक हो जाता है--पानी छानकर पीता है, रात खाना नहीं खाता है! ये सारे इंतजाम कर लेता है। और सोचता है कि मैं अहिंसक हो गया! भीतर हिंसा की लपटें, भीतर हिंसा की आग जलती रहती है, भीतर वासना सुलगती रहती है--ऊपर ब्रह्मचर्य और संयम के पाठ लेकर बैठ जाता है! भीतर क्रोध जलता है, ऊपर मुस्कुराहटें सीख लेता है! भीतर कुछ होता है, ऊपर बिल्कुल उलटा हो जाता है। ऐसा संयम बहुत खतरनाक है। और ऐसा संयम अपने आपको ज्वालामुखी पर बिठाने के समान है।

मैंने सुना है एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। वह इतना क्रोधी था
कि उसने अंततः अपने क्रोध में अपनी पत्नी को धक्का दे दिया एक कुएं में। उसकी पत्नी गिर गयी और मर गयी! तब उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।
सभी क्रोधियों को पश्चात्ताप होता है। लेकिन पश्चात्ताप से क्रोधियों को कोई अंतर नहीं पड़ता। वे फिर तय कर लेते हैं कि अब ऐसा नहीं करेंगे। और कल फिर वही करते हैं, जो उन्होंने तय किया था कि नहीं करेंगे! पश्चात्ताप में वह बहुत दुखी हो उठा। गांव में एक संन्यासी, एक मुनि आये थे। मित्रों ने उसे सलाह दी कि तुम इस तरह नहीं बदलोगे। वह मुनि आये हैं, उनके पास जाओ। शायद वह कोई रास्ता बता सकें। वह क्रोधी आदमी पश्चात्ताप के क्षणों में मुनि के पास जाकर, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं क्रोध से जल रहा हूं। मैंने अपनी पत्नी को धक्का दे दिया। अब मैं बहुत घबरा गया हूं। मैं कैसे अपने क्रोध पर विजय पा सकता हूं?
मुनि ने कहा, साधारण गृहस्थ रहते हुए क्रोध को जीतना मुश्किल है! इसके लिए संयम की साधना करनी पड़ेगी, संन्यास लेना पड़ेगा। अगर तुम दीक्षा ले लो तो कुछ हो सकता है। वे मुनि नग्न थे।
उस आदमी ने फिर आव देखा न ताव, वस्त्र फेंककर नग्न खड़ा हो गया! उसने कहा कि दीक्षा दें, इसी वक्त दीक्षा दें!
मुनि बहुत चकित हुए! मुनि ने कहा, बहुत लोग मैंने देखे हैं, इतना संकल्पवान आदमी, इतना विल पावर का आदमी मैंने नहीं देखा! संकल्प कुछ भी न था। वह आदमी क्रोधी था। जैसे एक क्षण में उसने धक्का देकर पत्नी को कुएं में गिरा दिया था, उसी तरह एक धक्का देकर अपने को दीक्षा में गिरा दिया। वही क्रोध था, कोई फर्क न था दोनों बातों में। लेकिन मुनि समझे कि बहुत संकल्पवान है!
क्रोधी लोग अकसर तपस्वी हो जाते हैं, क्योंकि क्रोध बड़ी तपश्चर्या करवा सकता है। क्रोध बड़ी खतरनाक ताकत है। क्रोध दूसरे को भी सता सकता है, क्रोध खुद को भी सता सकता है। क्रोध को मजा सताने में आता है। सौ में से अंठानवे प्रतिशत तपस्वी और संन्यासी लोग क्रोधी लोग होते हैं। और जो क्रोध दूसरों को कष्ट देता है, उस क्रोध को अपनी तरफ मोड़ लेते हैं और खुद को कष्ट देना शुरू कर लेते हैं!
दुनिया में दो तरह के सताने वाले लोग होते हैं। दो तरह की वायलेंस होती है, हिंसा होती है। एक हिंसा होती है दूसरे के प्रति, जिसको अंग्रेजी में सैडिज्म कहते हैं--परपीड़न! और एक हिंसा होती है, जिसे अंग्रेजी में मैसोचिज्म कहते हैं--आत्मपीड़न! खुद को सताने में भी उतना ही मजा आने लगता है!
उस आदमी ने वस्त्र फेंक दिये और खड़े होकर कहा, मैं दीक्षा लेने को तैयार हूं। मुनि ने कहा, तू बड़ा धन्यभागी है। तूने इतना महान कार्य किया कि एक क्षण में तूने संकल्प ले लिया!
और दूसरे दिन से उस आदमी के महान संकल्प के अनेक प्रमाण मिलने शुरू हो गये। वह इतनी कठिन तपश्चर्या में लग गया कि मुनि के सारे शिष्य पीछे पड़ गये। वह सबसे आगे निकल गया, जो सबसे पीछे आया था। उसके गुरु ने उसे मुनि शांतिनाथ का नाम दिया, क्योंकि उसने क्रोध पर विजय करने की साधना शुरू की थी।
वर्ष बीतते-बीतते वह आदमी जगत में ख्याति प्राप्त हो गया। जगह-जगह से उसकी पूजा के समाचार आने लगे। जब दूसरे साधु छाया में बैठते तो वह धूप में खड़ा रहता! जब दूसरे साधु बंधे हुए रास्तों पर चलते तो वह कांटों से भरी पगडंडियों पर चलता! जब दूसरे साधु दिन में एक बार भोजन करते, वह तीन दिन में एक बार भोजन लेता! उसने सारे शरीर को सुखाकर कांटा कर दिया! फिर जितना आदर मिलने लगा, उतना ही वह क्रोधी आदमी अपना दुश्मन होने लगा! उसने हजार-हजार तरकीबें निकाली खुद को सताने की! उसकी ख्याति बढ़ती चली गयी।
वह देश की राजधानी में पहुंचा। देश की राजधानी में उसकी ख्याति पहुंच गयी थी। उसका एक मित्र राजधानी में रहता था। वह बहुत चकित हुआ यह जानकर कि उसका क्रोधी दोस्त साधु हो गया है, मुनि शांतिनाथ हो गया है! यह कैसे हो गया! यह उसे विश्वास नहीं पड़ा। वह आदमी अपने मित्र को, संन्यासी को देखने आया।

संन्यासी बड़े मंच पर आसीन था। हजारों लोग उसके दर्शन करने को आये थे!
जो आदमी बड़े मंचों पर आसीन हो जाते हैं, वे नीचे बैठने वालों को नहीं पहचानते! वह मंच चाहे मिनिस्टर का हो और चाहे संन्यासी का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मंच ऊंचा होना चाहिए। फिर कोई किसी नीचे वाले को नहीं पहचानता। इसी मजे के लिए कि किसी को पहचानना न पड़े, आदमी बड़े मंचों की यात्रा करता है! दुनिया उसको पहचाने और वह किसी को न पहचाने, यही तो मजा है अहंकार का।
मित्र को देख तो लिया संन्यासी ने, लेकिन पहचाना नहीं! मित्र को भी समझ में तो आ गया कि वह पहचान गया है, फिर भी पहचानना नहीं चाह रहा है! तभी उसे ख्याल आ गया कि मुश्किल है इस आदमी ने क्रोध जीता हो। क्योंकि क्रोध और अहंकार सगे भाई हैं। अगर एक आता है तो दूसरा अपने आप चला आता है।
वह मित्र पास आकर बैठ गया। और उसने कहा कि महाराज, आपका बड़ा नाम सुना है, आपकी बड़ी कीर्ति सुनी है, लेकिन मुझे पता नहीं कि आपका ठीक-ठीक नाम क्या है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका क्या नाम है? मुनि को तो क्रोध आ गया, क्योंकि वह भली-भांति जानता है, वह मुझे बचपन से जानता है और अब नाम पूछने आया है!
उसने कहा, अखबार नहीं पढ़ते हो? रेडियो नहीं सुनते हो? मेरे नाम की सारे जगत में चर्चा है! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ, ठीक से सुन लो!
मित्र ने कहा, भगवान, आपने बड़ी कृपा की, जो नाम बता दिया। फिर मुनि कुछ दूसरी बातों में लग गये।
दो मिनिट बाद उस मित्र ने कहा कि ठहरिये, ठहरिये मैं भूल गया, आपका नाम क्या है?
मुनि के भीतर क्रोध जग गया! कहा, आदमी हो या पागल, मेरा नाम मैंने अभी बताया था--मुनि शांतिनाथ।
मित्र ने कहा, धन्यवाद, आपने फिर बता दिया, मैं भूल गया था क्षमा करें।
दो मिनिट बाद दूसरी बात चली होगी कि उस आदमी ने फिर पैर को हाथ लगाया और कहा मुनि जी मैं भूल गया, नाम क्या है आपका?
मुनि ने अपना डंडा उठा लिया और कहा सिर तोड़ दूंगा! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ--बुद्धि है तेरे पास या नहीं?
उस मित्र ने कहा, सब अपनी जगह है महाराज। मेरे पास बुद्धि अपनी जगह है
और आपका क्रोध अपनी जगह है। मैं सिर्फ यही देखने आया था कि वह क्रोध चला गया या मौजूद है?
यह सारा संयम उस क्रोध को भीतर दबाये हुए बैठा है। हिंसक, अहिंसक बन जाते हैं! क्रोधी क्षमावान दिखाई पड़ने लगते हैं! कभी ब्रह्मचर्य की धारणा कर लेते हैं! यह सब हो सकता है। लोभी त्यागी हो सकते हैं। लेकिन भीतर कोई अंतर नहीं पड़ता। ऊपर से थोपी गयी बात, भीतर की आत्मा को रूपांतरित नहीं करती।
कोई भी क्रांति बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती। सारी क्रांतियां भीतर
से बाहर की तरफ होती हैं। आत्मा बदल जाये तो आचरण बदल जाता है। लेकिन आचरण भर बदलने से आत्मा नहीं बदलती।
मैं उस संयम के विरोध में हूं, जो सिर्फ आचरण पर बल देता है। मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जो आत्मा से जन्मता है और बाहर की तरफ फैलता है। इन दोनों की प्रक्रियाएं अलग हैं। बाहर से थोपा गया संयम हमेशा दमन, सप्रेशन का फल होता है। अगर भीतर हिंसा है तो उसको दबा दो, अगर भीतर क्रोध है तो उसको दबा दो। और दबाकर उससे उलटे को अपने ऊपर ले आओ। लेकिन वास्तविक संयम, जिसको मैं संयम कहता हूं, वह संयम दमन से नहीं आता। हिंसा के दमन से अहिंसा नहीं आती, बल्कि हिंसा की समझ से, हिंसा को समझने से, हिंसा को पहचानने से, भीतर की हिंसा की खोज करने से, हिंसा के प्रति जाग्रत होने से, धीरे-धीरे हिंसा विसर्जित होती है। और फिर जो शेष रह जाता है, उसका नाम अहिंसा है। दो तरह की अहिंसा हुई। हिंसा को भीतर दबा दो और अहिंसक हो जाओ। या हिंसा भीतर से क्षीण हो जाये और अहिंसा जन्मे।
लेकिन अब तक हजार वर्षों से आदमियों के ऊपर थोपने वाले संयम के पाठ पढ़ाये गये। इसलिए संयम के पाठ तो बहुत हैं, लेकिन जीवन में असंयम पाठों से बहुत ज्यादा है! संयम की हजारों वर्षों से चर्चा चलती है, लेकिन मनुष्य

संयमी नहीं हो पाया! जितनी चर्चा हुई है, उतना ही मनुष्य असंयमी होता चल गया है। यह क्या हुआ है? जिस देश में ब्रह्मचर्य की जितनी बात होगी, उस देश में कामुक व्यक्ति उतने ही अधिक होंगे। यह बड़ी हैरानी की बात है। ब्रह्मचर्य की इतनी बातचीत चले और आदमी सैक्सुअल होता चला जाये! इसके बीच कोई संबंध मालूम होता है। और वह संबंध यह है कि हम जिस चीज को दबाते हैं, वही चीज हमारे प्राणों में गहरी प्रविष्ट होकर बैठ जाती है।
दमन मुक्त नहीं करता, दमन बांध देता है।
किसी भी चीज को दबाकर देख लें और जिसको आप दबायेंगे, आप उसी के साथ बंध जायेंगे।
एक फकीर का मुझे स्मरण आता है। नसरुद्दीन नाम का एक फकीर हो गया है।
वह अपने घर से सांझ निकल रहा था किन्हीं मित्रों से मिलने। जाने को निकला ही घर के बाहर कि उसका एक मित्र आ गया और गले मिल गया। बीस वर्ष बाद वह मित्र आया था।
नसरुद्दीन ने कहा कि वर्षों बाद तुम आये हो, बहुत खुश हुआ तुम्हें मिलकर। लेकिन बड़ा दुख है, तुम्हें थोड़ी देर रुक जाना पड़ेगा। मैं अब किन्हीं से मिलने जा रहा हूं। मैं थोड़ा मिल आऊं, जल्दी ही आ जाऊंगा। फिर तुमसे बैठकर घंटों बात करेंगे। बीस वर्ष बाद तुम मिले हो। कितनी बातें हो गयीं, कितनी बातें करनी हैं।
इस बीच उस मित्र ने कहा, मुझे तो क्षण भर खोने की हिम्मत नहीं है। मैं
तो चाहता हूं कि तुम्हारे साथ ही चलूं। लेकिन वस्त्र मेरे सब गंदे हो गये हैं। तुम्हारे पास कोई ठीक कोट कुर्ता हो तो मैं डाल लूं और तुम्हारे साथ हो जाऊं।
फकीर ने रख छोड़ा था एक कोट, जिसे किसी सम्राट ने भेंट किया था। कोट था, पगड़ी थी, जूते थे। ताजे कपड़े थे, ले आया निकालकर। बहुत कीमती कपड़े थे, खुद कभी नहीं पहने थे। इतने कीमती कपड़े थे कि पहनने की फकीर हिम्मत नहीं जुटा पाया था। प्रतीक्षा करता था कि कभी पहनूंगा, वह मौका ही नहीं आया। आज खुश हुआ कि चलो मित्र को पहनने के काम आ जायेंगे। मित्र को कपड़े दे दिये। लेकिन जब मित्र ने कपड़े पहने तो फकीर के मन मेंर ईष्या पकड़ गयी, इतने सुंदर कपड़े थे। और उस दिन सुंदर कपड़ों में वह मित्र बहुत सुंदर मालूम पड़ने लगा। उसके सामने नसरुद्दीन बिल्कुल नौकर दिखाई पड़ने लगा। खुद के ही कपड़े और आदमी नौकर हो जाये तो तकलीफ होगी। दूसरे के कपड़े हों, तब भी तकलीफ हो जाती है। यहां तो अपने ही कपड़े थे और उसके सामने ही नौकर दिखाई पड़ने लगे थे!
लेकिन मन को बहुत समझाया कि इन बातों में क्या रखा है। कपड़े अपने हुए
या उसके हुए। मित्र अपना है, कपड़ों में क्या रखा हुआ है? बहुत समझाया अपने मन को, जैसा संयमी लोग समझाते हैं। समझाने की बहुत कोशिश की कि सब बेकार बात है। रास्ते भर मित्र से बात करता रहा ऊपर-ऊपर और भीतर अपने को समझता रहा कि इसमें क्या रखा हुआ है? किसी ने अगर कपड़े पहन लिए तो हर्ज क्या है? लेकिन सारे रास्ते पर जिसकी भी नजर गयी, मित्र के कपड़ों पर गयी!
दुनिया तो कपड़ों को देखती है, आदमी को कोई देखता नहीं! जब भी किसी की नजर गयी कपड़ों पर गयी। नसरुद्दीन को किसी ने देखा ही नहीं! उस दिन रास्ते भर बड़ी तकलीफ हो गयी, बड़ी पीड़ा हो गयी।
फिर मित्र के घर गये। जहां मिलने गये थे, वहां जाकर कहा कि मेरे मित्र हैं, बहुत पुराने दोस्त हैं, बीस वर्षों बाद आये हैं, बहुत ही अच्छे आदमी हैं। और रह गये कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं! एक क्षण में यह बात निकल गयी मुंह से कि कपड़े मेरे हैं! फिर बहुत दुखी हुआ। मित्र भी हैरान हुआ। जिसके घर गये थे, वे लोग भी चकित हुए कि कपड़ों की बात कहने की क्या जरूरत थी?
बाहर निकालकर मित्र ने कहा, क्षमा करें, मैं अब आपके साथ नहीं जा सकूंगा। यह क्या अपमान किया मेरा? अगर यही था तो मैं अपने ही कपड़े पहने आता। वे गंदे थे, तब भी कम से कम अपने तो थे। यह बताने की क्या जरूरत थी कि कपड़े आपके हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि जबान धोखा दे गयी।
जबान कभी धोखा नहीं देती है, ध्यान रखना। भीतर जो होता है, वह कभी भी जबान से निकल जाता है। जबान धोखा कभी नहीं देती, मन कभी धोखा नहीं देता है। भीतर दबा हो, वह कभी भी फूट जाता है। जैसे केटली में भाप दबाकर रख दी हो तो

केवल फूट सकती है। केटली धोखा नहीं देती, भाप निकलना चाहती है, केटली फूट सकती है।
मित्र ने कहा कि तुम कहते हो तो मान लेता हूं, लेकिन दूसरी जगह ध्यान रहे।
नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल ध्यान है। न केवल ध्यान है, बल्कि मैं कहता हूं, ये कपड़े अब तुम्हारे ही हुए। मैं सदा के लिए ये कपड़े तुम्हीं को दिये देता हूं, अब कपड़े तुम्हारे ही हैं, मेरा सवाल ही न रहा।
दूसरे मित्र के घर गये। दूसरा मित्र, उसकी पत्नी जैसे ही बाहर आये, उनकी आंखें अटक गयीं उस मित्र के कपड़ों पर! फिर नसरुद्दीन के मन में हुआ कि यह मैंने पागलपन कर दिया? कपड़े बिल्कुल ही दे दिये। अब कभी मौका नहीं मिलेगा इनको पहनने का, चूक गया। मित्र ने पूछा, कौन हैं आप?
नसरुद्दीन ने कहा, बहुत पुराने दोस्त हैं, बड़े प्यारे आदमी हैं, बीस वर्षों बाद मिले हैं। और रह गये कपड़े, कपड़े उन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं! लेकिन इसे कहने की क्या जरूरत थी? कपड़े जब किसी के होते हैं, तब कोई भी नहीं कहता कि उसी के हैं। फिर शक पैदा हो गया।
मित्र ने बाहर निकलकर कहा, क्षमा कर दो, अब मैं तुम्हारे साथ कदम नहीं
रख सकता हूं। यह क्या पागलपन है?
नसरुद्दीन ने कहा, एक मौका और दो, नहीं तो जिंदगी भर के लिए मेरे मन में दुख रह जायेगा। भूल हो गयी। शायद पिछली भूल के कारण ही यह भूल भी हो गयी। पिछली बार मैंने कहा कि मेरे हैं तो मन में दुख समा गया और लगा कि अपने मित्र को यही बता दूं। शायद इससे ही यह भूल हो गयी।
लेकिन भूल का कारण दूसरा था। भूल का कारण था दमन, भूल का कारण था सप्रेशन--दबा रहा था भीतर कि कपड़े! कपड़े कुछ भी नहीं है! और जिन चीजों को दबा रहा था, वे चीजें बाहर निकलने की कोशिश कर रही थीं।
तीसरे मित्र के घर, वह अब अपने को बिल्कुल संयम साधकर भीतर प्रवेश कर रहा है। भीतर कपड़े ही कपड़े उठ रहे हैं मन में! कपड़े ही कपड़े दिखाई पड़ रहे हैं! आंख खोलता है तो कपड़े हैं, आंख बंद करता है तो कपड़े हैं। अपने को संभाल रहा है। किसी को पता नहीं है, इस बेचारे के भीतर क्या हो रहा है!
संयमी आदमी के भीतर क्या होता है, किसी को पता नहीं। संयमी आदमी बड़े खतरनाक होते हैं। जो बाहर नहीं दिखाई देता, वही उनके भीतर चलता रहता है! वह घबरा रहा है, परेशान हो रहा है। ऊपर से ठीक दिखाई पड़ रहा है, लेकिन भीतर वह बिल्कुल पागल हालत में है। उसे कपड़े ही दिखाई पड़ रहे हैं। पश्चात्ताप भी हो रहा है, दुख भी हो रहा है कि मैंने यह क्या किया। कपड़ों की बात नहीं करनी थी। कपड़ों की बात ही नहीं करनी है।
और तभी मित्र ने पूछा, कौन हैं आप?
फिर वही कपड़े सामने आ गये! कहा कि मेरे मित्र हैं और रह गये कपड़े--सो कपड़े की कसम खा ली है, बात ही नहीं करनी है, किसी के भी हों!
यह दमित चित्त इसी तरह काम करता है। जिसको दबाता है, उसी से उलझ जाता है। किसी भी चीज को दबायें, उसी से उलझ जायेंगे। चित्त रुग्ण हो जाता है, आब्सेशन पैदा हो जाता है।
संयम का क्या अर्थ है? संयम का अर्थ दमन नहीं है। लेकिन संयम का अर्थ दमन ही प्रचलित रहा है! और आज भी जब कोई संयम साधने जाता है तो दमन करने में लग जाता है, आत्म-दमन में लग जाता है! और जिन-जिन चीजों को दबाता है, उन्हीं-उन्हीं चीजों का रुग्ण आकर्षण सारे चित्त को पकड़ लेता है।
मैं एक साध्वी के साथ समुद्र-किनारे पर बैठा हुआ था। साध्वी आत्मा- परमात्मा की, मोक्ष की बातें कर रही थी! हम जिन चीजों की बातें करते हैं, अकसर उनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता। जिनसे हमारा संबंध होता है, उनकी हम शायद बात ही नहीं करते हैं। साध्वी आत्मा-परमात्मा की बातें कर रही थी। मैं उसकी बात सुन रहा था। वह बातों में जब कुछ बोल रहीं थीं, तभी जोरों की हवा आयी, तूफान आया समुद्र की तरफ से, मेरा चादर उड़ा और साध्वी को छू गया। साध्वी घबरा गयीं! मैंने कहा कि चादर छूने से आप घबरा गयीं!
उस साध्वी ने कहा, पुरुष का चादर छूने की वर्जना है, मनाई है। मुझे उपवास करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा!

मैंने उससे कहा, अभी तो तुम कह रही थीं कि तुम शरीर भी नहीं हो, आत्मा हो। और अब तुम्हारी बात से पता चलता है कि चादर भी स्त्री और पुरुष हो सकते हैं! चादर भी स्त्री और पुरुष! पुरुष ने चादर पहन-ओढ़ लिया तो पुरुष हो गया चादर भी! यह सप्रेस्ड सेक्सुअलिटि के लक्षण हैं। यह दबायी हुई वासना, यह दबाया हुआ चित्त, यह दबाया हुआ मन है। यह इतने जोर से दबाया गया है कि चादर भी प्रतीक बन गया! चादर से क्यों घबरा गयी हो?
मैंने उससे कहा, अगर तुम्हें यह पता चल गया कि आत्मा शरीर नहीं है, तब यदि शरीर भी पुरुष को छू जाये तो घबराने की कोई बात नहीं, क्योंकि शरीर भी मिट्टी है। लेकिन नहीं, अगर चित्त में दबाया गया है तो जिसे दबाया है, उसके प्रति बहुत सजगता, बहुत कांशसनेस हो जायेगी। और जो दबाया है, वह नये-नये रूपों में पकड़ना शुरू कर देगा।
एक साधु के पास मैं ठहरा हुआ था। वह सुबह-शाम दो-तीन बार दिन में कहते
थे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। मैंने उनसे पूछा कि लात मारी कब है? वे कहने लगे, कोई तीस-पैंतीस वर्ष हो गये। मैंने कहा, फिर लात ठीक से लग नहीं पायी होगी। अन्यथा पैंतीस वर्षों तक याद रखने की जरूरत न थी। लग गयी थी, बात खत्म हो गयी थी। वे लाखों रुपये अब तक पीछा क्यों कर रहे हैं? लाखों रुपयों पर लात मारी है, लेकिन रुपये छूटे नहीं हैं! वे अपनी जगह कायम हैं! दमन किया गया है, त्याग नहीं हुआ। संयम किया गया है, संयम आया नहीं। जब लाखों रुपये पास में रहे होंगे, तब भी अकड़कर चलते रहे होंगे कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। फिर लात मार दी, तब से फिर अकड़कर चल रहे हैं कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी! और पहली अकड़ से दूसरी अकड़ ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि पहली अकड़ बहुत स्थूल थी, दूसरी अकड़ बहुत सूम है। पहली अकड़ पहचान में आ जाती है। दूसरी अकड़ पहचान में भी नहीं आयेगी। लेकिन यह संयम न हुआ, यह दमन हुआ। और इसी दमन को हम संयम समझ लेते हैं! हम कहेंगे, यह आदमी बड़ा त्यागी है!
मैं जयपुर में ठहरा हुआ था। एक मित्र आये और मुझसे कहने लगे, एक बहुत बड़े महात्मा ठहरे हैं, आप भी मिलेंगे तो बड़े खुश होंगे।
मैंने उनसे कहा, तुमने किस तराजू पर तौलकर पता लगाया कि महात्मा बड़े हैं? महात्मा के बड़े होने का पता कैसे चला? मेजरमेंट क्या है? तौला कैसे तुमने? कौन-सा फुट है, जिससे तुम्हें पता लग गया कि महात्मा बड़े हैं? उन्होंने कहा, इसमें तौलने की कोई जरूरत नहीं है। खुद जयपुर महाराज उनके पैर छूते हैं।
तो मैंने कहा, फिर जयपुर महाराज बड़े होंगे। महात्मा का बड़ा होना, इससे कहां सिद्ध होता है? जयपुर महाराज अगर पैर छूते हैं किसी संन्यास के तो वह संन्यासी बड़ा हो गया और अगर जयपुर महाराज पैर नहीं छुयेंगे तो संन्यासी छोटा हो जायेगा? मापदंड क्या है? मापदंड है-- जयपुर महाराज! मापदंड धन है त्याग का भी! त्याग का भी मापदंड धन है!
कभी आपने सोचा, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं। एक भी गरीब आदमी का पुत्र नहीं है! बुद्ध राजपुत्र हैं; राम, कृष्ण सब राजपुत्र हैं! हिंदुस्तान में जितने अवतार, जितने तीर्थंकर, जितने बुद्ध पुरुष हुए, सब राजाओं के पुत्र हैं! कोई गरीब का बेटा तीर्थंकर नहीं हो सका! बात क्या है? क्या तीर्थंकर होने के लिए भी अमीर होना जरूरी है?
तीर्थंकर होने के लिए अमीर होना जरूरी नहीं है। गरीब के बेटे भी तीर्थंकर हुए हैं, लेकिन उनको तौलने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हम तौलेंगे तभी, जब धन छोड़कर कोई आयेगा। क्योंकि त्यागी का पता भी धन छोड़ने से चलता है। कितना छोड़ा उससे त्याग का पता चलता है! तब तो यह त्याग न हुआ, यह धन का ही दूसरा रूप हुआ। यह धन का ही इन्वेस्टमेंट हुआ, मोक्ष के लिए। यह धन की ही दूसरी स्थिति हुई, यह लोभ की ही दूसरी प्रक्रिया हुई।
मैं अहमदाबाद में था, कोई दो वर्ष हुए, एक संन्यासी का व्याख्यान हुआ। फिर मैं बोला। उस संन्यासी ने कहा कि अगर मोक्ष पाना हो तो लोभ छोड़ना पड़ेगा। मैं उनके पीछे बोला। मैंने कहा कि इन्होंने बड़ी अदभुत बात कही है।
ये कहते हैं, अगर मोक्ष पाना है तो पहले लोभ छोड़ना पड़ेगा! और मोक्ष पाने का लोभ पहले दे रहे हैं! और कोई लोभी होगा तो बेचारा लोभ छोड़ने को तैयार हो

जायेगा। क्योंकि मोक्ष का लोभ अगर पैदा हो गया तो वह लोभ छोड़ने को राजी हो जायेगा। लेकिन मोक्ष का लोभ भी लोभ है, वह भी ग्रीड है।
जिंदगी बहुत उलझी हुई है। इस उलझी हुई जिंदगी में संयम के नाम से, त्याग के नाम से, मोक्ष के नाम से उलटी चीजें चलती हैं। उन उलटी चीजों के मैं विरोध में हूं। जिंदगी साफ, सीधी, और अखंड होनी चाहिए। उसमें टुकड़े- टुकड़े नहीं चाहिए। भीतर कुछ उलटा हो, बाहर कुछ उलटा हो, ऐसा नहीं चाहिए। जिंदगी इकट्ठी, इंटीग्रेटेड--जिंदगी एक इकाई चाहिए। जो भीतर हो, वही बाहर हो।
लेकिन हम बाहर की तरफ से भीतर को नहीं बदल सकते। हां, भीतर की तरफ से बाहर को बदला जा सकता है। अगर किसी की जिंदगी में धन व्यर्थ हो जाये तो फिर वह धन को छोड़ा, ऐसा भी कभी नहीं कहेगा। क्योंकि जो व्यर्थ हो गया, उसे छोड़ने का कोई मतलब नहीं होता है। आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक आते हैं, लेकिन जाकर गांव में खबर नहीं करते कि आज फिर कचरे का त्याग कर दिया। क्योंकि कचरे का त्याग नहीं किया जाता, कचरे का त्याग कर ही देना होता है। लेकिन कोई आदमी कहता है कि मैंने धन का त्याग किया तो धन अभी उसके लिए कचरा नहीं हो गया। अभी धन उसके लिए धन था। और धन था इसलिए त्यागा। त्याग के बाद भी उसे लग रहा है कि वह धन है!
मैंने सुना है, एक फकीर था गांव में। गरीब आदमी था, भिखमंगा था। बहुत गरीब था, लेकिन कभी, न किसी से दान मांगा, न कभी किसी के सामने हाथ फैलाया। भिखारी था एक अर्थों में। भीख नहीं मांगता था, लेकिन उसके पास कुछ भी न था। उसकी पत्री थी और वे दोनों जंगल से लकडिय़ां काट लाते थे बेच देते थे, जो बचता था, उसी से खा लेते थे। सांझ जो बचता था, उसको बांट देते थे। सुबह फिर लकडिय़ां काट लाते।
एक बार बे-मौसम पानी गिरा। और पांच दिन तक वे लकडिय़ां काटने न जा सके
तो पांच दिन भूखे ही रहे। बूढ़े थे दोनों। छठवें दिन सूरज निकला तो दोनों जंगल गये लकडिय़ां काटने। जंगल से लकडिय़ां काटकर लौटते थे। आगे बूढ़ा था, पीछे बुढिय़ा थी लकड़ी की मोरी लिए हुए। बूढ़े ने पगडंडी के रास्ते पर देखा कि घुड़सवार आगे गया है, पैर के चिकृ हैं घोड़े के। और पास ही पगडंडी के किनारे अशर्फियों की एक थैली पड़ी है। कुछ अशर्फियां बाहर हैं, कुछ थैली के भीतर हैं!
उस बूढ़े को ख्याल आया। संयमी आदमियों को इस तरह के ख्याल बहुत आते हैं। उसे बूढ़े को ख्याल आया कि मेरी बुढिय़ा जो पीछे आ रही है, कहीं उसका मन डांवाडोल न हो जाये। बुढिय़ा का मन धन पर डांवाडोल न हो जाये, यह बूढ़े को ख्याल आया! संयमी को दूसरों की बड़ी फिक्र होती है, कि किसका मन कहां डांवाडोल हो रहा है! संयमी आदमी राम भर सोता नहीं बेचारा। पास-पड़ोस में कौन क्या कर रहा है, इसकी फिक्र रखता है! संयमी आदमी इसका हिसाब रखता है कि किस-किस को नरक जाना पड़ेगा और नरक में क्या-क्या होगा! इसकी वह सब फिक्र रखता है कि किस तरह जलाये जाओगे, किस तरह सड़ाये जाओगे।
संयमी आदमी यह सब फिक्र क्यों रखता है? संयमी आदमी के खुद के भीतर जो
हो रहा है, वह दूसरों पर प्रोजेक्ट करता है, वह दूसरे पर थोपता है, जो उसके भीतर हो रहा है।
उस बूढ़े ने सोचा कि कहीं बुढिय़ा का मन डांवाडोल न हो जाये, डांवाडोल उसका मन खुद हो गया था! अन्यथा बुढिय़ा का उसे ख्याल भी न आता। लेकिन कोई यह मानने को राजी नहीं होता कि मेरा मन डांवाडोल हो गया है। उसने सोचा कि बुढिय़ा का मन डांवाडोल न हो जाये! जल्दी से उसने अशर्फियों को गड्ढे में डालकर मिट्टी से ढंक दिया। बुढिय़ा आ गयी, जब मिट्टी ढंक रहा था।
उस बूढ़ी औरत ने पूछा कि आप क्या कर रहे हैं, कैसे रुक गये?
बूढ़े ने कसम ली थी कि कभी झूठ नहीं बोलेंगे। संयमी आदमी थे, सत्य बोलने का नियम ले रखा था!
संयमी आदमी नियम लेकर चलते हैं। और जो भी आदमी नियम लेकर चलता है, ध्यान रखना, उसके भीतर उलटा हमेशा मौजूद रहता है; अन्यथा नियम लेने की कोई जरूरत नहीं है। आप कभी यह नियम नहीं लेते कि हम दरवाजे से निकलेंगे क्योंकि दरवाजा निकलने जैसा दिखाई पड़ता है। लेकिन अंधा आदमी यह भी कसम खा

सकता है कि कसम खाता हूं कि मैं दरवाजे से निकलूंगा, दीवाल से नहीं निकलूंगा।
अंधा कसम खा कसता है, आंख वाला कभी कसम नहीं खायेगा। कसम की कोई जरूरत नहीं है। जिसे उलटा हो सकता है, वह कसम लेता है। जिसे उलटा नहीं हो सकता, वह क्यों लेगा? उस बूढ़े ने कसम खायी थी कि झूठ नहीं बोलेंगे! कसम किसके खिलाफ खायी जाती है? अपने ही खिलाफ, वह जो झूठ बोलने का मन है, उसके खिलाफ। बुढिय़ा ने पूछा कि क्या कर रहे हो तो मजबूरी खड़ी हो गयी। सच बताना जरूरी हो गया।
उस बूढ़े ने कहा कि क्या कर रहा हूं, मत पूछो तो अच्छा है। लेकिन तुम पूछती हो तो मुझे कहना पड़ेगा। यहां अशर्फियां पड़ी थीं सोने की। उनको गड्ढे में डालकर दबा रहा हूं कि कहीं तेरा मन डांवाडोल न हो जाये!
वह बूढ़ी खड़ी होकर हंसने लगी। उस जंगल में उसकी हंसी गूंजी; काश, आप भी वहां होते, वह हंसी सुनते! वह बूढ़ा पूछने लगा हंसती क्यों हो?
उस बुढिय़ा ने कहा, हे भगवान! मैं समझती थी कि तुम्हारा धन से छुटकारा
हो गया, लेकिन तुम्हें अभी धन दिखाई पड़ता है। तुम्हें अशर्फियां दिखाई कैसे पड़ी? तुम अपन रास्ते जाते थे, तुम्हें अशर्फियां कैसे दिखाई पड़ीं? अशर्फियां सोने की थी, यह तुम्हें कैसे दिखाई पड़ा? सोने और मिट्टी में तुम्हें फर्क मालूम पड़ता है! और मैं धोखे में रही आज तक, मैं सोचती थी कि तुम मुक्त हो गये। और आज तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते देखकर मैं शघमदा हो रही हूं। ये दरख्त हंसते होंगे नम में कि मिट्टी पर यह आदमी मिट्टी डाल रहा है!
ये दोनों संयमी है। बूढ़ा संयमी है उस तरह का, जिस संयम से सावधान रहना चाहिए। वह स्त्री भी, बुढिय़ा भी संयमी है, उन अर्थों में जिन अर्थों से जीवन सत्य से रूपांतरित होता है। अगर यह दिखाई पड़ गया कि सोना मिट्टी है तो फिर इस मिट्टी को मिट्टी से ढांकने की भी जरूरत नहीं रह जाती। न इसे छोड़ने और न इससे भागने की जरूरत रह जाती है। न इसके त्याग की खबर दुनिया मैं फैलाने की जरूरत रह जाती है। बात खत्म हो गयी, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से नीचे गिर जाता है। न तो वृक्ष को पता चलता है, न सूखे पत्ते को पता चलता है, न हवाओं को खबर आती है कि सूखा पत्ता टूट गया। टूटकर चुपचाप गिर जाता है।
लेकिन कच्चे पत्ते को तोड़ें तो वृक्ष को भी पता चलता है। कच्चे पत्ते
के भी प्राण कंप जाते हैं और पीछे घाव छूट जाता है। कच्चे पत्ते पीछे घाव छोड़ जाते हैं क्योंकि कच्चे पत्तों को तोड़ना पड़ता है, कच्चे पत्ते टूटते नहीं हैं। और जो आदमी संयम को थोपता है, लादता है, चेष्टा करता है, वह सब कच्चे पत्ते तोड़ता है, उसके घाव छूट जाते हैं। और घाव पीछे कष्ट देते हैं, तकलीफ देते हैं, दुख देते हैं।
मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जो सूखे पत्ते की तरह आता है। जिंदगी से कुछ चीजें गिर जाती हैं, अर्थहीन हो जाती हैं, झड़ जाती हैं और जिंदगी रूपांतरित हो जाती है।
लेकिन वे झड़ कैसे जायेंगी? आप कहेंगे, जब तक हम उन्हें गिरायेंगे नहीं, ये गिरेंगी कैसे? गिरायेंगे तो फिर कच्चे पत्ते टूट जायेंगे!
तो फिर मैं क्या कहता हूं--गिराइये मत, समझिये। जिंदगी में जो भी बुरा है, उससे लड़ने मत लग जाइये, उसे जानिये, उसे पहचानिये। अगर क्रोध है, उदाहरण के लिए, तो क्रोध से लडिय़े मत; क्रोध को जानिये, क्रोध को समझिये। और जब क्रोध पकड़ ले तो एक कोने मैं चले जायें, द्वारा बंध कर लें और क्रोध के ऊपर ध्यान करें--मेडिटेट आन इट। क्रोध को देखें, कहां है क्रोध? पहचानें, क्या है क्रोध? कहां-कहां प्राण को घेरा रहा है? चित्त में कहां- कहां क्रोध की आग जल रही है, इसे देखें।
और आप हैरान रह जायेंगे। जितना क्रोध को आप समझेंगे, उतना ही विलीन हो जायेगा। और आप जितने क्रोध के प्रति जागेंगे, क्रोध विनष्ट हो जायेगा। और एक घड़ी आयेगी जीवन में कि क्रोध सूखे पत्ते की तरह गिर जायेगा। फिर पीछे जो रह जायेगा, वह शांति है।
क्रोध दबाने से शांति उपलब्ध नहीं होती। क्रोध के चले जाने पर जो शेष
रह जाता है, उसका नाम शांति है।

यह ध्यान रहे, हिंसा की उलटी नहीं है अहिंसा। अहिंसा हिंसा का अभाव है, एब्सेंस है।
प्रेम घृणा का उलटा नहीं है कि आप घृणा को दबाकर प्रेम को ले आयेंगे। प्रेम घृणा का अभाव है। जब घृणा का अभाव हो जाता है तो जो शेष रह जाता है, वह प्रेम है।
यह ठीक वैसा ही है, जैसे इस अंधेरी रात में हम एक दीया जलायें, दीया जलते ही अंधेरा विलीन हो जाये। क्योंकि दीया जलते ही अंधेरा कहां टिक सकेगा? अंधेरा चला जायेगा।
लेकिन कोई आदमी दीया न जलाये और अंधेरे को दूर करने में लग जाये, धक्के दे अंधेरे को, तलवारें ले आये, कुश्ती लड़े अंधेरे से, तो भी अंधेरा नहीं हारेगा। लड़ने वाला ही हार जायेगा। अंधेरा नहीं हटाया जा सकता। हिंसा को भी नहीं हटाया जा सकता। क्रोध को भी नहीं हटाया जा सकता। घृणा को भी नहीं हटाया जा सकता।
लेकिन दीये जलाये जा सकते हैं। ज्ञान का दीया जलाया जा सकता है। और ज्ञान का दीया जलते ही जो अंधकार है, वह विलीन हो जाता है। उसका कहीं खोजना भी मुश्किल है।
एक छोटी-सी घटना, और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
मैंने सुना है, एक बार अंधेरे ने भगवान के जाकर पैर पकड़ लिए और भगवान
के पैर पर सिर पटकने लगा। उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। भगवान ने पूछा, हुआ क्या है? तुझे क्या हो गया है? कभी तू आया नहीं, आज क्या हो गया है?
उस अंधेरे ने कहा, बहुत परेशान होकर आया हूं? मैं बहुत घबरा हूं। करोड़ों वर्षों से तुम्हारा सूरज मेरे पीछे बुरी तरह से पड़ा है। सुबह से उठता है और मुझे खदेड़ना शुरू कर देता है। सांझ तक मैं थक जाता हूं, हाथ-पैर टूट जाते हैं। किसी तरह वह पीछा छोड़ता है। रात भर विश्राम पूरा भी नहीं हो पाता कि वह सुबह फिर मेरे द्वार के सामने हाजिर है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है। मैंने क्या बिगड़ा है तुम्हारे सूरज का?
भगवान ने कहा, यह तो बड़ी ज्यादती हो रही है, लेकिन तुमने कहा क्यों नहीं अब तक! मैं सूरज को बुलाकर बात कर लेता हूं। भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तू अंधेरे के पीछे क्यों पड़ा है? इसने क्या बिगाड़ा है तेरा? सूरज ने कहा, अंधेरा! मेरी तो अब तक मुलाकात भी नहीं हुई! अंधेरा है कहां? मेरी तो अब तक मुठभेड़ भी नहीं हुई, रास्ते पर कभी मिलना भी नहीं हुआ, कोई नमस्कार, कुछ भी नहीं हुआ! कहां है अंधेरा? मैं क्यों सताऊंगा उसे, जिसे मैं जानता भी नहीं हूं? क्योंकि शत्रु बनाने के पहले भी तो मित्र बनाना जरूरी रहता है। बिना मित्र बनाये तो किसी को शत्रु नहीं बनाया जा सकता। मेरी मित्रता ही नहीं है तो शत्रुता का सवाल ही नहीं है। कहां है? आप बुला दें, मैं क्षमा भी मांग लूं और उसकी शक्ल को ठीक से पहचान लूं, ताकि कभी भूल-चूक से कोई गलती न हो जाये।
इस बात को हुए, कहते हैं अरबों वर्ष बीत गये। वह भगवान की फाइल में मामला दबा है! वह अंधेरे को सामने नहीं ला सके अब तक सूरज के! वह कभी भी ला नहीं सकेंगे। क्योंकि अंधेरा सूरज का उलटा नहीं है। अंधेरा सूरज का अभाव है। अभाव और उलटे के फर्क को समझ लेना चाहिए।
अंधेरा अगर सूरज का उलटा हो तो हम एक बोरी भर अंधेरा एक दीये के ऊपर लाकर पटक सकते हैं। दीया फौरन बुझ जायेगा। लेकिन आप बोरी भर अंधेरा लाकर दीये के ऊपर नहीं पटक सकते हैं। अंधेरा अभाव है, एब्सेंस है, प्रकाश की गैर-मौजूदगी है, प्रकाश का न-होना है। अंधेरे का अपना कोई भी अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है प्रकाश का। और जब प्रकाश का अस्तित्व नहीं होता तो जो शेष रह जाता है, वह अंधेरा है। अंधेरे को दूर नहीं किया जा सकता है। अंधेरे के साथ सीधा कुछ भी नहीं किया जा सकता। अगर अंधेरा लाना है तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ेगा।
ठीक ऐसे ही जीवन में जो भी बुरा है, उसे मैं अंधेरा मानता हूं। चाहे वह क्रोध हो, चाहे काम हो, चाहे लोभ हो। जीवन में जो भी बुरा है, वह सब अंधकारपूर्ण है। उस अंधेरे से जो सीधा लड़ता है, उसको संयमी कहते हैं। मैं उसको संयमी नहीं कहता। मैं उसे पागल होने की तरकीब कहता हूं या पाखंडी

होने की तरकीब कहता हूं। और पाखंडी हो जाइये, चाहे पागल--दोनों बुरी हालतें हैं।
अंधेरे से लड़ना नहीं है, प्रकाश को जलाना है। प्रकाश के जलते ही अंधेरा नहीं है।
जीवन में जो श्रेष्ठ है, वही सत्य है।
उसका अभाव विपरीत नहीं है, उलटा नहीं है। उसका अभाव सिर्फ अभाव है।
इसलिए अगर कोई हिंसक आदमी अहिंसा साध ले, तो साध सकता है, लेकिन भीतर हिंसा जारी रहेगी। कोई भी आदमी ब्रह्मचर्य साध ले, साध सकता है; लेकिन भीतर वासना जारी रहेगी। यह संयम धोखे की आड़ होगी, यह संयम एक डिसेप्शन होगा। इस संयम के मैं विरोध में हूं।
मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जिसमें हम बुराई को दबाते नहीं, सत्य को, शुभ को जगाते हैं। जिसमें हम अंधेरे को हटाते नहीं, ज्योति को जलाते हैं। वैसा ज्ञान, वैसा जागरण व्यक्तित्व को रूपांतरित करता है और वहां पहुंचा देता है, जहां सत्य के मंदिर हैं।
जो शुभ में जाग जाता है, वह सत्य के मंदिर में पहुंच जाता है।
इन तीन दिनों में सत्य की यात्रा पर ये थोड़ी-सी बातें कही हैं। लेकिन मेरी बातों से आपकी यात्रा नहीं हो जायेगी। किसी की बातों से किसी की यात्रा नहीं होती। इसलिए अंतिम बात, यह यात्रा आप करेंगे तो ही हो सकती है। अगर मेरी बातें सुनकर आपकी यात्रा हो सके, तब बड़ी आसान है, तब तो दुनिया में सबकी यात्रा कभी की हो गयी होती।
हमने बुद्ध को सुना है, महावीर को सुना है। लेकिन सुनने से कभी किसी
की यात्रा नहीं होती है। लेकिन कुछ लोग यह सोचते हैं कि सुनने से ही यात्रा हो जाती है, तो वे भ्रम में भटक रहे हैं। यात्रा खुद करनी पड़ती है। कोई दूसरा किसी के लिए यात्रा नहीं कर सकता है।
न मैं आपके लिए श्वास ले सकता हूं, न आपके लिए प्रेम कर सकता हूं, न आपकी जगह चल सकता हूं, न आपकी जगह जी सकता हूं, न आपकी जगह मर सकता हूं। तो आपकी जगह सत्य को कैसे पा सकता हूं? कोई मनुष्य किसी दूसरे की जगह कुछ भी नहीं पा सकता।
और दूसरे की बात सुनकर कई बार यात्रा का भ्रम हो जाता है। कई बार ऐसा लगता है कि हम उसे सुनकर वहां पहुंच गये, जो हमने सुना। यह भ्रम बहुत खतरनाक है।
यह भगवान न करे कि मेरी कोई बात भी किसी आदमी के मन में यह भ्रम पैदा करे कि वह कहीं पहुंच गया है। कुछ लोगों को यह भ्रम पैदा हो जाता है। वे मुझे लिखते हैं कि हमने आपकी बात सुनी और बड़ी शांति मिली। बात सुनने से शांति नहीं मिल सकती, सिर्फ मनोरंजन हो सकता है। बात सुनने से सत्य नहीं मिल सकता, सिर्फ शब्द मिल सकते हैं। सत्य और शांति तो तब मिलेगी, जब आप चलेंगे।
तो जो मैंने कहा है, वह सुनने के लिए नहीं, वह चलने के लिए कहा है। अगर उसमें कोई बात भी ठीक मालूम पड़ती हो तो अपने विवेक का थोड़ा प्रयोग करना, एकाध कदम उठाना।
हजार-हजार शास्त्रों का उतना मूल्य नहीं है, जितना अपने द्वारा उठाये गये एक कदम का मूल्य है।
और इसकी फिक्र मत करना कि रास्ता बहुत लंबा है। क्योंकि लंबे से लंबे रास्ते भी एक-एक कदम उठाकर पूरे हो जाते हैं।
गांधीजी एक गीत पसंद करते थे। वह गीत बहुत अदभुत है। वह उनके आश्रम में रोज उसे गाते थे, गवांते थे। वह गीत हैः वन स्टेप इज एनफ फार मी, आई डू नाट लांग फार दी डिस्टेंट सीन--मैं दूर के दृश्य की कामना नहीं करता, मेरे लिए एक ही कदम पर्याप्त है।
लेकिन जो एक कदम चलता है, वह दूर के दृश्य पर पहुंच जाता है। एक कदम से ज्यादा तो एक साथ कोई भी नहीं चल सकता। दो कदम कभी किसी को एक साथ चलते देखा है? एक कदम ही कोई चल सकता है--बड़े से बड़ा आदमी और छोटे से छोटा आदमी। इस मामले में हम सब बराबर हैं। बड़े से बड़ा आदमी भी एक ही कदम चलता है और छोटे से छोटा भी। दुनिया का कोई बड़ा से बड़ा आदमी भी हो, वह दो कदम एक साथ

नहीं चल सकता। एक कदम ही चला जाता है एक बार में। लेकिन एक-एक कदम मिलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
एक गांव के बाहर एक युवक बैठा हुआ था, एक छोटी-सी लालटेन लिए हुए। उसे पहाड़ की यात्रा करनी थी, लेकिन पहाड़ दूर था, रात अंधेरी थी और उसके पास छोटी लालटेन थी, जिससे दो-तीन फीट के घेरे में प्रकाश पड़ता था। उसने सोचा, उसने गणित लगाया--कुछ लोग गणित में बड़े कुशल होते हैं। उसने गणित लगाया कि इतना बड़ा अंधकार है दस मील लंबा। इस दस मील के अंधकार को इस तीन फीट प्रकाश फेंकने वाली लालटेन से भाग दिया! अंधकार कभी दूर नहीं हो सकता है इतनी छोटी-सी लालटेन से! कैसे दूर होगा? इतना लंबा रास्ता कैसे प्रकाशित होगा? वह बैठ गया! उसने कहा, मेरा जाना फिजूल है, इतना अनाप अंधेरा है, इतनी-सी लालटेन है, एक कदम पर रोशनी पड़ती है, कैसे पहुंचूंगा? कैसे दस मील पार करूंगा?
उसके पीछे ही एक बूढ़ा भागता चला आ रहा है, वह भी छोटा-सा हाथ में कंदील लिए हुए है! उस बूढ़े ने पूछा कि बेटे, तुम बैठ क्यों गये हो?
उस जवान लड़के ने कहा, बैठ न जाऊं तो क्या करूं? दस मील लंबा अंधकार है
और दो-तीन फीट की रोशनी है मेरे पास। इस रोशनी से दस मील कैसे पार करूंगा? उस बूढ़े ने कहा, अरे पागल, दस मील पार करना किसे है एक साथ? तीन फीट पार
कर ले, तब तक तीन फीट आगे रोशनी चली जायेगी। फिर तीन फीट पार कर लेना। फिर तीन फीट पार कर लेना, फिर तीन फीट आगे रोशनी चली जायेगी। रोशनी सदा आगे चलती है न, तो बस फिर दस मील क्या, हजार मील का अंधकार भी कट जायेगा। लेकिन अंधकार चलने से कटता है।
एक छोटा-सा पैर उठायें और जिंदगी उन दूर के दृश्यों पर पहुंच जायेगी,
जो आज दिखाई नहीं पड़ते हैं। लेकिन चलने से दिखाई पड़ सकते हैं। जो आज सिर्फ शब्दों के जाल मालूम पड़ते हैं, वही कल जीवन के सत्य बन सकते है। जो आज सुनने में मधुर मालूम पड़ते हैं, काश, हम वहां पहुंच जायें तो वे कितने मधुर होंगे, इसे कहना कठिन है।
इन तीन दिनों में ये सारी बातें इतने प्रेम और शांति से आपने सुनीं, इसके लिए अनुग्रही हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रमाण करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नेति-नेति
बारहवां प्रवचन

विरामहीन अंतर्यात्रा

मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा राजमहल था। आधी रात उस राजमहल में आग लग गयी। आंख वाले लोग बाहर निकल गये। एक अंधा आदमी राजमहल में था। वह द्वार टटोलकर बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगा। लेकिन सभी द्वार बंद थे, सिर्फ एक द्वार खुला था। बंद द्वारों के पास उसने हाथ फैलाकर खोजबीन की और वह आगे बढ़ गया। हर बंद द्वार पर उसने श्रम किया, लेकिन द्वार बंद थे। आग बढ़ती चली गयी और जीवन संकट में पड़ता चला गया। अंततः वह उस द्वार के निकट पहुंचा, जो खुला था। लेकिन दुर्भाग्य कि उस द्वार पर उसके सिर पर खुजली आ गयी! वह खुजलाने लगा और उस द्वार से आगे निकल गया और फिर वह बंद द्वारों पर भटकने लगा!
अगर आप देख रहे हों उस आदमी को तो मन में क्या होगा? कैसा अभागा था कि बंद द्वार पर श्रम किया और खुले द्वार पर भूल की--जहां से कि बिना श्रम के ही बाहर निकला जा सकता था?
लेकिन यह किसी राजमहल में ही घटी घटना-मात्र नहीं है। जीवन के महल में
भी रोज ऐसी घटना घटती है। पूरे जीवन के महल में अंधकार है, आग है। एक ही द्वार खुला है और सब द्वार बंद हैं। बंद द्वार के पास हम सब इतना श्रम करते हैं, जिसका कोई अनुमान नहीं! खुले द्वार के पास छोटी-सी भूल होते ही चूक जाते हैं और फिर बंद द्वार पर रह जाते हैं! ऐसा जन्म जन्मांतरों से चल रहा है! धन और यश द्वार हैं--वे बंद द्वार हैं, वे जीवन के बाहर नहीं ले जाते। एक ही द्वार है जीवन के आग लगे भवन में बाहर निकलने का और उस द्वार का नाम"ध्यान" है। वह अकेला खुला द्वार है, जो जीवन की आग से बाहर ले जा सकता है।
लेकिन वह सिर पर खुजली उठ आती है, पैर में कीड़ा काट लेता है और कुछ हो जाता है और आदमी चूक जाता है! फिर बंद द्वार हैं और अनंत भटकन है।
इस कहानी से अपनी बात मैं इसलिए शुरू करना चाहता हूं, क्योंकि उस खुले द्वार के पास कोई छोटी-सी चीज को चूक न जायें। और यह भी ध्यान रखें कि ध्यान के अतिरिक्त न कोई खुला द्वार कभी था और न है, न होगा। जो भी जीवन की आग के बाहर हैं, वे उसी द्वार से गये हैं। और जो भी कभी जीवन की आग के बाहर जायेगा, वह उसी द्वार से ही जा सकता है।
शेष सब द्वार दिखायी पड़ते हैं कि द्वार हैं, लेकिन वे बंद हैं। धन भी मालूम पड़ता है कि जीवन की आग के बाहर ले जायेगा, अन्यथा कोई पागल तो नहीं है कि धन को इकट्ठा करता रहे-- लगता है कि द्वार है, दिखता भी है कि द्वार है! द्वार नहीं है, बंद है। दीवार भी दिखती तो अच्छा था, क्योंकि दीवार से हम सिर फोड़ने की कोशिश नहीं करते। लेकिन बंद द्वार पर तो अधिक लोग श्रम करते हैं कि शायद खुल जाये! लेकिन धन से द्वार आज तक नहीं खुला है, कितना ही श्रम करें। वह द्वार बाहर ले जाता है और भीतर नहीं ले आता है।
ऐसे ही बड़े द्वार हैं--यश के, कीर्ति के, अहंकार के, पद के, प्रतिष्ठा के। वे कोई भी द्वार बाहर ले जाने वाले नहीं हैं। लेकिन जब हम उन बंद द्वारों पर खड़े हैं, उन्हें देखकर, पीछे जो उन द्वारों पर नहीं हैं, उन्हें लगता है कि शायद अब भी निकल जायेंगे, अब भी निकल जायेंगे! जिसके पास बहुत-- बहुत धन है, निर्धन को देखकर लगता है कि शायद धनी अब निकल जायेगा जीवन की पीड़ा से, जीवन के दुख से, जीवन की आग से, जीवन के अंधकार से। जो खड़े हैं बंद द्वार पर, वे ऐसा भाव करते हैं कि जैसे निकलने के करीब पहुंच गये। एक और छोटी-सी कहानी से उनकी बात समझ लेनी जरूरी है।
एक अस्पताल है। उस अस्पताल में, जो ऐसे रोगी हैं, जिनके बचने की कोई उम्मीद नहीं है, केवल उनको ही भर्ती किया जाता है। एक ही दरवाजा है, दरवाजे के पास लंबी दालान है। लंबी दालान पर मरीजों की खाटें हैं। नंबर एक खाट का जो मरीज है, वह कभी-कभी सुबह उठकर कहता है, कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं, पक्षी कैसे गीत गा रहे हैं! और सारे लंबे वार्ड के मरीजों को कुछ

भी नहीं दिखायी पड़ता। वहां कोई द्वार नहीं, कोई खिड़की नहीं। वे मन ही मन जलते हैं कि यह मरीज कब मर जाये कि नंबर एक की जगह हम पहुंच सकें!
फिर उस मरीज को हृदय का दौरा आया है और सारे वार्ड के मरीज भगवान से प्रार्थना करते हैं कि यह मर जाये और उसकी जगह हमें मिल जाये। वहां से सूरज के दर्शन हमें भी हो जायें। फूल भी खिलते हैं, पक्षी गीत भी गाते हैं, चांद भी दीखता है, तारे भी दिखते हैं। धन्य है वह, उस द्वार पर सब दिखायी देता है। लेकिन वह आदमी बच जाता है और फिर सुबह उठकर कहने लगता है--कितनी सुगंध आती है, कैसी सूरज की किरणें हैं, कैसा आनंद है इस द्वार पर!
फिर दोबारा दौरा आता है उस आदमी को। फिर वे सब प्रार्थना करते हैं कि
मर जाये! बार-बार यह होता है, लेकिन वह मरीज मरता नहीं है! और बार-बार वह मरीज जब ठीक हो जाता है तो द्वार के बाहर झांककर द्वार के सौंदर्य की बातें करता है। सारे वार्ड के मरीज प्रतिस्पर्धा, र ईष्या, जलन से भरे हैं। अंततः वह मरीज मर जाता है। सारे मरीज कोशिश करते हैं कि हमें पहली जगह मिल जाये। रिश्वत देते हैं, सेवा करते हैं डाक्टरों की।
किसी तरह कोई एक मरीज सफल हो जाता है और पहली खाट पर पहुंच जाता है। झांककर बाहर देखता है, वहां भी दीवार है, द्वार के बाहर परकोटे की दीवार है! न वहां सूरज दिखायी पड़ता है, न वहां कोई फूल खुलते हैं, न वहां कभी चांद आता है, न वहां कभी किरणें आती हैं! धक से रह जाती है तबियत। लेकिन अब अगर यह कहे कि नहीं कुछ है तो सारे वार्ड के मरीज कहेंगे, मूर्ख बन गया। सो वह देखता है दीवार को और लौटकर मुस्कुराता है और कहता है, धन्य मेरे भाग्य, कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं! और सारे फिर वार्ड के मरीज उसी चक्कर में परेशान हैं कि कब यह मर जायेगा तो हमें वह जगह मिल जायेगी!
वे जो राष्ट्रपति की जगह खड़े हैं, ऐसे ही बंद दरवाजे पर खड़े हैं कि जहां आगे न कोई सूरज है, न कोई रोशनी है, न कोई फूल है। वे जो धन के दरवाजे पर खड़े हैं, ऐसे ही बंद दरवाजे पर खड़े हैं, जहां दीवार है! लेकिन पीछे लौटकर वे कहेंगे, बहुत फूल खिले हैं, सूरज दिख रहा है, चांद दिख रहा है, पक्षी गीत गा रहे हैं! अगर वे यह न कहें तो मूर्ख समझे जायेंगे।
लेकिन कभी-कभी उन द्वारों से भी कुछ लोग लौट पड़ते हैं हिम्मतवर, साहसी
और कह देते हैं, नहीं है कुछ। कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध लौट आता है उस द्वार से और कहता है, वहां कुछ भी नहीं है।
लेकिन अधिकतर लोग तो अपनी भूल को स्वीकार करने को राजी नहीं होते और उनका यह दंभ हजारों लोगों को पागल बना देता है कि कब हम वहां पहुंच जायें। लेकिन सब द्वार बंद हैं। एक द्वार खुला है, वह ध्यान का द्वार है। और मजे की बात है कि वे सब द्वार बंद हैं, जो बाहर की तरफ खुलते मालूम पड़ते हैं। वह द्वार खुला है, जो भीतर की तरफ खुलता मालूम पड़ता है।
ध्यान का द्वार भीतर की तरफ खुलता है, धन का द्वार बाहर की तरफ खुलता है।
बाहर की तरफ खुलने वाले सब द्वार धोखे के सिद्ध हुए हैं। कोई द्वार बाहर की तरफ नहीं खुलता है, खुल सकता ही नहीं है, बंद ही है। असल में बाहर की तरफ दीवार है, वहां कुछ है ही नहीं खोलने को। खुलता है वह द्वार, तो भीतर की तरफ खुलता है। लेकिन उस द्वार के पास से हम निकल जाते हैं और तब सब छूट जाता है।
भीतरी यात्रा में कठिनाई प्रारंभ हो जाती है, क्योंकि हमें बाहर जाने
की जन्म-जन्मांतरों से आदत है। उस रास्ते से हम भली-भांति परिचित हैं; वह पहचाना, जाना-माना है, वहां कोई भूल-चूक का डर नहीं है। यह यात्रा बिल्कुल अपरिचित है, यह जो भीतर की तरफ जाते हैं। और ध्यान का द्वार भीतर की तरफ खुलता है। उस द्वार पर स्वामी राम मजाक में कहते थे--उस द्वार पर लिखा है खींचो भीतर की तरफ, मत धकाओ बाहर की तरफ। बाहर की तरफ धकाने से वह और बंद होता है।
हम जो बाहर के दरवाजे के आदी हैं, अगर भीतर के दरवाजे पर पहुंच जाते हैं तो वहां भी धक्के देते हैं। आदत हमारी बाहर की तरफ है। इस भीतर के दरवाजे की जो यात्रा है, वह यात्रा अपने आप में कठिन नहीं है। कठिन इस कारण है कि हमारी आदत बाहर की है और आदतें इतनी खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं कि हमें पता ही नहीं चलता। हम अपनी आदत के अनुसार चलते चले जाते हैं। हम केवल

आदत में ही जीते हैं और हमारी समूची आदत बाहर की तरफ है। और वही कठिनाई है, अन्यथा कोई कठिनाई नहीं है भीतर की तरफ जाने में।
आदतें हमेशा खतरनाक, मजबूत और यांत्रिक होती हैं कि हमें पता भी नहीं चलता!
रास्ते पर आप चलते हैं। आपको पता भी नहीं कि दोनों हाथ क्यों हिल रहे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि दस लाख वर्ष पहले आदमी के जो पूर्वज थे, वे चारों हाथ-पैर से चलते थे। बहुत बाद में आदमी दो पैर से खड़ा हुआ। वह जो चार हाथ-पैर से चलने की आदत है, वह अब तक पीछा पकड़े हुए है। अब चलते तो दोनों पैर से हैं और साथ में दोनों हाथ हिलते हैं--बायें पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, दायें पैर के साथ बायां हाथ हिलता है! इससे चलने में कोई सहायता नहीं मिलती है, इससे चलने का कोई संबंध नहीं है। लेकिन दस लाख साल पहले आदमी की जो आदत थी, वह पीछा कर रही है, वह पीछा किये जा रही है, वह जड़-आदत अपना काम जारी रखे हुए है! कभी आपने ख्याल नहीं किया होगा कि जब हमारे हाथ हिलते हैं तो हम दस लाख साल पुराने आदमी की खबर दे रहे हैं, जो चार हाथ-पैर से चलता था। वह आदत कायम रह गयी। शरीर को पता ही नहीं चला आज तक कि आदमी दो पैर से चलने लगा है। शरीर को पता नहीं, शरीर दस लाख साल पुरानी आदत में ही जी रहा है!
मनुष्य साधारणतः आदत में जीता है और आदत को तोड़ने में कठिनाई मालूम पड़ती है। हमारी भी सब आदतें हैं, जो ध्यान में बाधा बनती हैं।
ध्यान में और कोई बाधा नहीं है, सिर्फ हमारी आदतों के अतिरिक्त।
अगर हम अपनी आदत को समझ लें और उनसे मुक्त होने का थोड़ा-सा भी प्रयास करें तो ध्यान में ऐसी गति हो जाती है, इतनी सरलता से जैसे झरने के ऊपर से कोई पत्थर हटा दे और झरना बह जाये। जैसे कोई पत्थर को टकरा दे और आग जल जाये। इतना ही सरलता से ध्यान में प्रवेश हो जाता है। लेकिन हमारी आदतें प्रतिकूल हैं। थोड़ा-सा इन आदतों के संबंध में प्राथमिक रूप से समझें, फिर कल से हम इनकी गहराइयों में उतरने की कोशिश करेंगे।
हमारी एक आदत है सदा कुछ न कुछ करते रहने की। ध्यान में इससे खतरनाक
और कोई दूसरी आदत नहीं हो सकती है।
ध्यान है न-करना। ध्यान है कुछ भी न करना।
और हमारी आदत है कुछ न कुछ करने की! हम जब भी खाली बैठते हैं तो कुछ न कुछ करते हैं! जिस आदमी को हम कहते हैं कि कुछ भी नहीं कर रहा है, उसकी भी खोपड़ी में हम झांकें तो पता चलेगा कि वह बहुत कुछ कर रहा है। आदमी अव्यस्त, खाली होता ही नहीं! जो आदमी खाली हो जाये, वह परमात्मा को पा जाता है। खाली करने की कला ही ध्यान है।
और हम जानते हैं भरे होने की कला, किसी भी तरह अपने को भरे रखने की कला! अगर कुछ भी नहीं तो आदमी रेडियो खोलेगा, अखबार उठायेगा, चारों तरफ झांककर देखेगा कि कोई मिल जाये और उससे बात करे!
मैं एक ट्रेन में यात्रा कर रहा था। मेरे डिब्बे में एक सन्न्न और थे। मैं आमतौर से यात्रा में सोया ही रहता हूं। जैसे ही कमरे के अंदर गया कि मैं सो गया। वह सन्न्न बड़े बेचैन दिखायी पड़े, क्योंकि इस इच्छा में होंगे कि मैं जागूं, वे कुछ बात करें। कोई आधे घंटे बाद मैं उठा तो वे तैयार थे। उनकी तैयारी देखकर मैंने फिर आंखें बंद कर लीं तो वे बहुत बेचैन हो गये। फिर मैं आंख बंद किये देखता रहा कि वे क्या कर रहे हैं। वे मुश्किल से जो अखबार लिए थे, उसको कई बार पढ़ चुके थे, उसको उन्होंने फिर से पढ़ना शुरू किया! कई बार पढ़कर भी उन्होंने फिर पढ़ना शुरू किया, फिर उसे नीचे पटक दिया! मैं आंख बंद करके बीच-बीच में देख लेता हूं कि वे क्या कर रहे हैं। उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही है, वे खिड़की खोलते हैं, फिर खिड़की बंद करते हैं, फिर सूटकेस से कुछ निकालते हैं, फिर अंदर कर देते हैं, फिर बाथरूम में जाते हैं, फिर बाहर जाते हैं!
फिर मुझे हंसी आ गयी। उन्होंने कहा, आप क्यों हंसते हैं? आप अजीब आदमी हैं। चौदह घंटे होने को आये, सोचा था कि कोई आ गया तो थोड़ा साथ होगा और आप हैं कि आंखें बंद किये पड़े हैं और मेरी जान घबरायी जा रही है! आप नहीं होते तो भी एक राहत थी, चलो अकेला हूं।

मैंने कहा, मैं भी अनुभव कर रहा हूं और बहुत आनंद ले रहा हूं, आपके काम देख रहा हूं। ये खिड़कियां क्यों बार-बार खोलते हैं? या तो खोलना हो तो खोल लीजिये, बंद करना हो तो बंद कर दीजिये। यह सूटकेस से आप क्या निकालते हैं बार-बार और अंदर रख देते हैं?
उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं कर रहा हूं। आप ठीक से पहचान गये, मैं किसी
भी तरह से कुछ करने की कोशिश कर रहा हूं, क्योंकि विरक्त मन बहुत घबराता है।
आप भी अपने संबंध में सोचेंगे तो ऐसी ही दशा पायेंगे, कुछ न कुछ। अगर तीन महीने आपके लिए सब कुछ व्यवस्था कर दी जाये और कहें कि खाली बैठे रहें तीन महीने। आप छत से कूद पड़ेंगे, फांसी लगा लेंगे। तीन महीने कह रहे हैं आप! तीन घंटे बहुत हैं।
कारागृहों में जो लोग बंद किये जाते हैं, उन्हें तकलीफ कारागृह की नहीं होती है। असली तकलीफ बेकाम हो जाने की होती है। इसलिए तो कारागृह में लोग गीता पर टीका लिखते हैं, गीता पर भाष्य लिखते हैं, न मालूम क्या-क्या करते हैं! कोई न कोई काम चाहिए। तो कारागृह में जो लोग चले जाते हैं-- किताबें पढ़ते हैं, लिखते हैं! कोई न कोई काम, खाली होना बहुत मुश्किल है! और जो खाली नहीं हो सकता, वह ध्यान में नहीं जा सकता।
ध्यान के नाम पर भी लोग काम करते हैं! कोई माला फेरता है, कोई राम-राम जपता है, कोई आसन करता है, कोई शीर्षासन करता है! ध्यान के नाम पर बहुत-कुछ करते हैं लोग, जिसका ध्यान से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि जब तक आप कुछ करते हैं, तब तक मन तनाव से भरा होता है।
जब आप कुछ भी नहीं करते, तब मन की झील बिल्कुल मौन हो जाती है।
जब तक आप कुछ करते हैं, तब तक मन की झील पर तरंगें उठती रहती हैं। जब आप कुछ भी नहीं करते तो झील सो जाती है शांति से। उसी शांति से द्वार खुलते हैं। जब तक आप कुछ करते हैं, तब तक धक्के जारी हैं। आप कुछ कर रहे हैं। ध्यान रहे, करना मात्र बाहर ले जाने का दरवाजा है, न-करना भीतर का दरवाजा है।
अदभुत है यह बात। अगर कोई एक क्षण को भी न-करने की हालत में रह जाये तो
पा लिया सब, जो पाने जैसा है। खुल गये वे द्वार, जो सच में खुल सकते हैं। और पहुंच गये हम वहां, जहां जीवन की संपदा है। एक क्षण कोई भी न-करने से आदमी वहां पहुंच जाता है, जहां जन्म-जन्मांतरों तक करने पर कोई नहीं पहुंचता। करने से आप सदैव दूसरे तक पहुंच सकते हैं। करने से अपने आप तक नहीं पहुंच सकते। अगर आपके पास मुझे आना हो तो चलना पड़ेगा, क्योंकि आपके और मेरे बीच में फासला है। अगर नहीं चलूंगा तो फासला
पूरा नहीं होगा। लेकिन मुझे मुझ तक ही जाना हो तो चलने की कहां जरूरत है--क्योंकि वहां कोई फासला नहीं है।
अगर दूसरे तक जाना हो तो चलना जरूरी है। अगर अपने तक जाना है तो रुक जाना जरूरी है।
अगर कुछ और पाना है तो कुछ करना जरूरी है। अगर खुद को ही पाना है तो करना जरूरी नहीं है। क्योंकि मैं हूं, मुझे करके पाने का कोई सवाल नहीं है। मैं हूं ही। जो है ही, उसे कुछ करके नहीं पाया जा सकता। जो नहीं है, उसे कुछ करके पाना होता है। अगर धन पाना है तो कुछ करना पड़ेगा। न-करने से धन नहीं मिल जायेगा। अगर यश पाना है तो कुछ करना पड़ेगा, न-कुछ करने से यश नहीं मिल जायेगा।
लेकिन अगर स्वयं को पाना है तो कुछ भी किया तो भटक जाइयेगा, क्योंकि
वह है, वह है ही। जब आपको लग रहा है कि वह नहीं है, तब भी वह है। उसे कुछ करके पाने का सवाल नहीं है, उसे न-करके पाना होगा। और यह राज की बात ठीक से समझ लेनी चाहिए। दुनिया की सब चीजें करके पायी जाती हैं, स्वयं को न-करके पाया जाता है।
धर्म न-करने से उपलब्ध होता है, अधर्म करने से उपलब्ध होता है।
अधर्म करने से उपलब्ध होता है। इसलिए कुछ भी करिए, अधर्म होगा। मंदिर बनाइए तो अधर्म होगा, धर्मशाला बनाइए तो अधर्म होगा, कुछ भी करिए, क्योंकि करना ही बाहर से जोड़ता है।

लेकिन एक बार न-करने की हालत मिल जाये तो वह मिल जाता है, जो धर्म है।
और यह और मजे की बात है कि जो न-करने को जान लेता है, वह कर्ता है तो भी अकर्ता है। फिर वह कुछ भी करता है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
महावीर भी चलते हैं, भोजन भी मांगते हैं, बोलते भी हैं, सोते भी हैं, उठते भी हैं, सब करते हैं; लेकिन अकर्ता बने रहते हैं, करने से कोई भी संबंध नहीं रहा।
न-करना ऐसे है, जैसे कोई अभिनेता किसी नाटक में काम कर रहा हो। वह सब करता है और भीतर-भीतर कुछ भी नहीं करता है। वह राम बनता है, और सीता के खो जाने पर छाती पीटकर रोता है! और भीतर--न वह छाती पीटता है, न वह रोता है! वह रावण बन जाता है और लंका के लिए लड़ता है और लंका जल जाती है और रात को मजे से सो जाता है! उसके भीतर कुछ नहीं छूता, अभिनय रह जाता है बाहर।
इसीलिए कृष्ण के चरित्र को हम चरित्र नहीं कहते, कृष्ण के चरित्र को कहते हैं लीला! सबके चरित्र को चरित्र कह देते हैं। राम के चरित्र को चरित्र को कहते हैं, लेकिन कृष्ण के चरित्र को नहीं कहते हैं! और लीला और चरित्र में कुछ अंतर है। लीला का मतलब है अभिनय। इसलिए कृष्ण जैसा अनूठा आदमी खोजना दुनिया में मुश्किल है। वह सब तरह के काम कर लेता है, क्योंकि चरित्र का प्रश्न ही नहीं है। उसमें सब मामला लीला का है, वह किसी नाटक का हिस्सा है, इससे ज्यादा नहीं है। वह ऐसे काम कर लेता है, जिसकी हम कभी कल्पना नहीं कर सकते। दस औरतें खड़ी होकर नाच रही हैं तो उनके बीच में खड़ा होकर नाच लेता है! हमारी कल्पना के बाहर हो जाता है, यह आदमी क्या कर रहा है!
लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह है लीला, इधर कोई चरित्र नहीं है। हम कुछ कर
ही नहीं रहे हैं। विकल्प न-करना कायम है, बाहर सब करना चल रहा है।
चरित्र जिस दिन लीला बन जाये, उसी दिन से धर्म शुरू होता है। जब तक चरित्र बना रहे, तब तक अधर्म का हिस्सा होता है। और चरित्र लीला उसी दिन बनता है, जिस दिन भीतर हम अकर्ता को अनुभव कर लेते हैं, जो बिना किये कुछ करने से मिलता है।
ध्यान इसलिए, करना नहीं है और हमारी आदत है करने की! हम कुछ भी पूछें
तो हम करने की आदत में हैं। जब कोई हमसे कहे कि कहां जा रहे हो तो हम यह कह सकते हैं कि ध्यान करने जा रहे हैं। हमारी आदत है वह। हम जब ध्यान भी करेंगे--ध्यान"करना" है। क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि ध्यान का करने से कोई भी संबंध नहीं है। ध्यान न-करना है।
जापान में एक फकीर था। उसका एक अच्छा-सा आश्रम था। उसके आश्रम की बड़ी ख्याति थी। जापान का सम्राट स्वयं उसके आश्रम को देखने गया था। वह फकीर आश्रम के एक-एक झोपड़े के सामने ले जाकर बताने लगा कि यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भिक्षु भोजन करते हैं, यहां भिक्षु विश्राम करते हैं। और सारे झोपड़े में हो आने के बाद--बीच में एक बड़ा भवन था--सम्राट बार-बार पूछने लगा उससे, ठीक है, मगर इस भवन में क्या करते हैं?
वह इस भवन की बात ही न करे, जैसे वह भवन है ही नहीं! फिर सम्राट घूमकर वापस द्वार पर आ गया और वह जो भवन था बीच में, उसकी बात ही न उठायी उस भिक्षु ने!
सम्राट क्रोध से भर गया। द्वार पर अपने घोड़े पर बैठते हुए उसने कहा कि
या तो तुम पागल हो या मैं पागल हूं। तुम्हारा आश्रम देखने आया था, तुमने झोपड़े दिखाये कि यहां भिक्षु खाना खाते हैं, यहां स्नान करते हैं--क्या जरूरत है इसको दिखाने की? और वह जो बड़ा भवन बीच में खड़ा है, मैंने तुमसे पच्चीस बार पूछा कि यहां क्या करते हैं और तुम ऐसे बहरे हो जाते हो, जैसे तुमने सुना ही नहीं!
वह भिक्षु फिर भी हंसने लगा। उसने कहा, नमस्कार!
सम्राट ने कहा, तुम्हें सुनायी नहीं पड़ता है, मैं पूछता हूं, इस भवन में क्या करते हैं?
उस भिक्षु ने कहा, माफ कीजिये, आप गलत प्रश्न पूछते हैं तो मैं उत्तर कैसे दूं, क्योंकि उत्तर गलत देने से प्रश्न गलत ही हो जाता है। आप प्रश्न ही गलत पूछते हैं। उस भवन में हम कुछ भी नहीं करते हैं। आप पूछते हैं, वहां क्या करते हैं तो मैं समझ गया कि यह आदमी करने की भाषा समझता है--तो मैंने

दिखाया कि यहां स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं। मैं समझ गया कि यह आदमी करने की भाषा समझने वाला आदमी है। न-करने की भाषा नहीं समझ सकता। वहां हम कुछ भी नहीं करते और तुम पूछते हो कि वहां क्या करते हो! मैं चुप रह जाता हूं कि अब मैं क्या कहूं।
उस सम्राट ने कहा, कुछ भी नहीं करते! कुछ तो करते होंगे? यह बनाया है किस लिए?
उसने कहा, आप माफ करिए। फिर आप कभी आना। वहां सच में ही कुछ नहीं करते। बनाया जरूर है। और अगर मैं आपसे कहूं तो आप शायद नहीं समझ पायेंगे। वह हमारा ध्यान भवन है, मेडिटेशन हाल है।
उस सम्राट ने कहा, ठीक है, तो यह क्यों नहीं कहते कि ध्यान करते हैं!
तो उस फकीर ने कहा, यही तो मुश्किल है। स्नान किया जा सकता है, भोजन किया जा सकता है, व्यायाम किया जा सकता है, लेकिन ध्यान नहीं किया जा सकता। "न-करने" का नाम ध्यान है।
हम भी स्नान करने की भाषा समझते हैं। हम सोचते हैं कि ध्यान करना भी कोई क्रिया होगी। कई नासमझ तो यह भी समझाते हैं कि वह भीतरी स्नान है, आत्मिक स्नान है! जैसी शीतलता नहाने से मिलती है, वैसी शीतलता ध्यान से भी मिलती है! लेकिन करने की भाषा में जब तक आप समझेंगे, आप नहीं समझ पायेंगे, क्योंकि करने की भाषा की आदत ही बाधा है।
इन तीन दिनों में इस बात पर खूब ख्याल कर लेना। ध्यान करना जिसे कह रहे हैं, वह न-करना है। उस वक्त कुछ भी नहीं करना है। सब करना छोड़ देना है। सिर्फ रह जाना है। यह समझ में नहीं आता! हम रास्ते पर चलते हैं, वह चलना हुआ; भोजन करते हैं, वह भोजन करना हुआ; सोते हैं, वह सोना हुआ; बैठते हैं, वह बैठना हुआ; उठते हैं, वह उठना हुआ--ये सब क्रियाएं हैं। इन सारी क्रियाओं को करने वाला भीतर कोई है।
जब हम क्रिया कर सकते हैं तो अक्रिया क्यों नहीं कर सकते हैं? अगर मैं हाथ खोल सकता हूं तो हाथ बंद क्यों नहीं कर सकता? अगर मैं आंख खोल सकता हूं तो आंख बंद क्यों नहीं कर सकता? जो भी हम कर सकते हैं, उससे उलटा भी हो सकता है।
अब तक हमने जीवन में करने की ही एकमात्र दिशा जानी है, न-करने की हमने कोई दिशा नहीं जानी। तो हमें पता ही नहीं! जब हम कहते हैं किसी से प्रेम की बात तो भी हम उससे कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूं! हालांकि जिनको भी कभी प्रेम का अनुभव हुआ होगा, उन्हें पता है कि प्रेम किया नहीं जाता। वह क्रिया नहीं है।
आप प्रेम कर ही नहीं सकते। प्रेम होता है, किया नहीं जा सकता।
लेकिन हम तो प्रेम को भी करने की भाषा में सोचते हैं! हमारी करने की आदत इतनी मजबूत हो गयी है कि हम जो भी सोच सकते हैं, वह करने की ही भाषा में सोच सकते हैं। हम तो यह भी कहते हुए सुने जाते हैं कि श्वास लेते हैं! हालांकि आपने कभी श्वास नहीं ली अपने जीवन में अभी तक और न कभी आप ले सकते हैं। श्वास चलती है। और अगर आप श्वास लेते होते तो मरना मुश्किल हो जाता और मौत दरवाजे पर खड़ी हो जाती और आप कहते कि खड़ी रहो, हम तो श्वास ले रहे हैं, हम श्वास लेते रहेंगे। लेकिन हमें पता है, मौत हो दरवाजे पर--फिर श्वास-बुआस लेते नहीं; गयी, गयी। श्वास किसी आदमी ने कभी नहीं ली। लेकिन हम ब्रीदिंग को भी क्रिया बनाये हुए हैं! कहते हम ऐसे ही हैं, जैसे श्वास-प्रश्वास भी एक क्रिया है! क्रिया नहीं है, एक घटना है। हम नहीं कर हैं उसे, हो रही है।
वह जो हमारे भीतर बैठा हुआ है, उसे करने की कोई जरूरत नहीं है। वह है।
और वह सदा से है। और उसके मिटने का भी कोई उपाय नहीं है। वह सदा होगा। उसका होना अगर जानना है तो करने से मुक्त हुए बिना जानना मुश्किल है। क्योंकि जब तक हम करने में उलझे होते हैं, तब तक होने का पता नहीं चलता। जो अपने करने में उलझा हुआ है, उसको पता नहीं चलता कि क्या है भीतर। जब सारी क्रिया छूट जायेगी एक क्षण को भी, सिर्फ होना रह जाता है--जैसे हवाएं चल रही हैं, और वह वृक्ष है, पत्ते हिल रहे हैं। वृक्ष पत्ते हिलायेंगे। हवाएं चल रही हैं, वृक्ष के पत्ते हिल रहे हैं, श्वास चल रही है--यह सब हो रहा है।

ध्यान की अवस्था का मतलब है होने में छूट जायें। जो हो रहा है, होने दें। विचार भी चल रहे हैं तो चलने दें। आप कौन हैं रोकने वाले? जो भी हो रहा है--पत्ते हिल रहे हैं, हवा चल रही है, आकाश में तारे निकले हैं; कोई बच्चा रो रहा है, कोई देख रहा है, चिल्ला रहा है; भीतर विचार चल रहे हैं, धड़कन चल रही है, श्वास चल रही है, खून बह रहा है--सब चल रहा है। इस सब चलने को होने दें। आप कुछ भी न करें, आप बस रह जायें। अगर एक क्षण को भी--यह नये क्षण का स्पंदन भी अनुभव हो जाये रह जाने का--तो ध्यान में गति हो गयी। वह जो भीतर खुलने वाला द्वार है, वह खुल गया। उसकी एक झलक मिल जाये, फिर कोई नहीं है फिर हम पहचान गये रास्ता, फिर तो हम जा सकेंगे और गहरे और गहरे। और गहरे।
करने की आदत से थोड़ा सावधान रहें। भूलकर भी न सोचें कि हम ध्यान करने
जा रहे हैं। बैठें तो वह भी क्रिया है, करें तो वह भी क्रिया है, आयें तो वह भी क्रिया है।
आदमी की सारी भाषा क्रिया है और परमात्मा की भाषा अक्रिया है।
और वह तो कुछ भी नहीं कर रहा है। वह जो लोग कहते हैं कि परमात्मा ने दुनिया को बनाया है, निहायत नासमझ हैं, क्योंकि वे अपनी भाषा में सोच रहे हैं--करने की भाषा में, कि परमात्मा ने दुनिया बनायी, जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है!
परमात्मा ने दुनिया कभी नहीं बनायी। परमात्मा से दुनिया बन रही है।
यह कोई क्रिया नहीं है कि परमात्मा बैठा है और दुनिया बना रहा है। दुनिया बन रही है। यह बनाने की घटना घट रही है। कोई बना नहीं रहा है कहीं बैठकर। जैसे आप श्वास ले रहे हैं, बस ऐसे ही जीवन का प्रवाह चलता है। करने का भ्रम आदमी को पैदा हो गया है! न पक्षियों को यह भ्रम है, न पौधों को यह भ्रम है, न आकाश के बादलों को यह भ्रम है, न चांदत्तारों को यह भ्रम है; किसी को यह भ्रम नहीं है। आदमी को यह भ्रम है कि हम करते हैं और यह करने का भ्रम जीवन में पत्थर की तरह बैठ जाता है!
इससे बड़ा कोई झूठ नहीं कि हम करते हैं। सब होता है। और जिस व्यक्ति को ध्यान में जाना है, उसे ठीक से समझ लेना चाहिए कि सब हो रहा है। तो यह भी प्रयत्न न करें कि मैं शांत हो जाऊं, क्योंकि शांत करने वाले प्रयत्न से ज्यादा अशांत करने वाली संसार में और कोई वस्तु नहीं है। यह भी प्रयत्न न करें कि मैं पवित्र हो जाऊं। यह भी प्रयत्न न करें कि मैं भगवान को उपलब्ध हो जाऊं। आपका कोई प्रयत्न कारगर नहीं होगा। वहां तो वे पहुंच जाते हैं, जो कुछ भी नहीं करते। जिनका यह भ्रम ही छूट जाता है कि हम कुछ कर सकते हैं। आगे इसी बात को ध्यान-पूर्वक बोध कराने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस बोध को जितना गहरा होने देंगे, उतना ध्यान में परिणाम होगा। ध्यान में तो हम सुबह बैठेंगे, रात बैठेंगे और इस प्रयोग में उसी द्वार पर परिश्रम करना है। इस प्रयोग काल में यह दरवाजा चूक न जायें, उसके लिए ख्याल रखें। चौबीस घंटे बोध रखें कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, हो रहा है। चल रहा हूं तो समझें कि चल रहा हूं, यह हो रही है क्रिया। श्वास ले रहा हूं, तो यह हो रही है। भूख लगी है तो हो रही है। प्यास लगी है तो हो रही है।
प्रयोग काल में सतत इस बात का स्मरण रहे कि ये चीजें हो रही हैं। मैं
कर नहीं रहा हूं। आप हैरान हो जायेंगे कि इतनी विश्राम की दशा चित्त को उपलब्ध हो जायेगी, इतनी शांति हो जायेगी, सब कुछ इतना ठहर जायेगा भीतर, इतनी गहराई पैदा होगी, जो कभी नहीं ख्याल में आयेगी कि इतनी गहराई हो सकती है। और फिर ध्यान के लिए हम बैठेंगे तो उसमें वह झलक शीघ्रता और गति से पैदा हो जायेगी।
लेकिन चौबीस घंटे जो भी हो रहा है, उसको इस तरह लें कि वह हो रहा है। और
सच में वह हो ही रहा है। वही है सत्य। कभी आपने भूख लगायी है आज तक? कभी नींद ला सके हैं आप? वह सब हो रहा है। कभी एकाध दिन नींद लाने की कोशिश करें--तो उस रात नींद नहीं आयेगी, जिस रात आप नींद लाने की कोशिश करेंगे! जिनको नींद नहीं आती, उनका यही कुल जमा कारण है कि वे नींद लाने की कोशिश में बुरी तरह दीवाने हैं। अब नींद लाने की कोशिश से नींद आ सकती है कभी? सब कोशिश नींद को तोड़ देगी, क्योंकि नींद विश्राम है और कोशिश श्रम है। कहीं भूख लग सकती है लगाने से? कि प्यास लग सकती है, कि प्रेम जग सकता है, कि

श्वास चल सकती है? कुछ भी नहीं हो सकता। जिंदगी में जो भी गहरा है, वह चुपचाप हो रहा है, वह अपने आप हो रहा है। फूल खिल रहे हैं अपने आप, कोई गुलाब फूल खिला नहीं रहा है। और गुलाब का अगर दिमाग खराब हो जाये और फूल खिलाने लगे तो समझ लेना कि उसमें फूल नहीं खिलेंगे। फूल खिलते हैं।
पूरी जिंदगी सहज एक धारा है, सिर्फ आदमी के दिमाग को छोड़कर। वहां एक पत्थर खड़ा हो गया है। और उस पत्थर ने सारी अड़चनें डाल दीं हैं। वह पत्थर यह है कि हम कर रहे हैं! हम ध्यान भी करते हैं और प्रार्थना भी करते हैं! और यह करने में लग जाते हैं और तब उलझ जाते हैं। कहीं भी हम भीतर नहीं पहुंच पाते हैं।
इस प्रयोग में नहीं कुछ कर रहे हैं, बस हैं, इसका भाव। इसका भाव जितना गहरा हो सके। अभी यहां से जाते वक्त भी, चलते वक्त भी ऐसा ही अनुभव करना कि चलना हो रहा है। होटल की तरफ आप जा नहीं रहे हैं! जाना हो रहा है। आपका सारा व्यक्तित्व जा रहा है। सोने के लिए बिस्तर पर जा रहा है, आपका सारा व्यक्तित्व--आप नहीं ले जा रहे हैं।
ये उतनी ही प्राकृतिक घटनाएं हैं, जैसे हवा चले और पत्ते हिल रहे हों। इसी तरह आप दिन भर में थक गये हैं और शरीर का रोआं-रोआं मांग कर रहा है कि बस, बस अब बस। वह पूरा शरीर मांग कर रहा है, सो जाओ। वह आपकी मांग नहीं है, वह उतनी ही प्राकृतिक मांग है, जैसे कोई फूल गिर गया हो, जैसे कोई पत्ता सूख गया हो और हवा में गिर गया हो। यह उतनी ही प्राकृतिक घटना है, यह उतनी ही सहज घटना है। जब पेट में भूख लगती है तो कोई कुछ कर रहा है? वह सब प्राकृतिक हो रहा है।
यह हम नहीं कहते कि पानी गर्म हो जाये और भाप बनकर उड़ने लगे। तो हम थोड़े ही कहेंगे कि पानी भाप बनकर उड़ रहा है! हम कहते हैं, पानी भाप बन गया है।
जिंदगी के जो नियम चारों तरफ हैं, वे ही नियम हम पर भी हैं। हम जिंदगी में कोई अपवाद नहीं हैं। आदमी प्रकृति का एक हिस्सा है। और जो व्यक्ति यह समझ लेगा कि हम प्रकृति के हिस्से हैं, वह इसी वक्त ध्यान में जा सकता है-- इसी क्षण। क्योंकि तब यह ख्याल मिट गया है कि कुछ हमें करना है। तब चीजें होंगी। ध्यान आयेगा, आप ला नहीं सकते।
और ध्यान आये, और उस द्वार से आप चूक न जायें तो उसके लिए कुछ स्मरण रख लेना है। पहला यह कर्तृत्व का, करने का ख्याल बिल्कुल जाने दें। कभी ध्यान की दुनिया में प्रवेश करना है, तो मैं कुछ कर सकता हूं, वह ख्याल जाने दें। प्रयोग काल में यह स्मरण रखेंगे तो बहुत अदभुत अनुभव होंगे। अगर चलते वक्त आपको यह ख्याल आ जाये कि चल नहीं रहा हूं, यह चलने की क्रिया उसी तरह हो रही है, जैसे चांद चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, तारे चल रहे हैं। ठीक यह उसी तरह चलने की क्रिया हो रही है।
यह समझें। यह सारा का सारा जगत जैसे चल रहा है, उसी में मेरा चलना भी
एक हिस्सा है। तो आप एकदम चौंकेंगे, कुछ नया ही अनुभव करेंगे, जो आपने कभी अनुभव नहीं किया था। आप अंदर से पायेंगे कि कुछ और ही बात है--कोई दूसरा आदमी खड़ा है, आप नहीं। खाना खाते वक्त खाने की क्रिया हो रही है, स्नान करते वक्त स्नान की क्रिया हो रही है।
चीजें हो रही हैं, आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
अनायास एक गहरी शांति चारों तरफ घेर लेगी, भीतर एक सन्नाटा छा जायेगा। और इस प्रयोग काल में कोई कारण नहीं कि जिस द्वार पर हम आमतौर से बचकर निकल जाते हैं, उस द्वार पर हम रुक जायें। वह द्वार हमें दिख जायेगा, हम बाहर हो जायेंगे। यह हो सकता है, यह हुआ है, यह किसी से भी हो सकता है। और इसके लिए कोई विशेष पात्रता नहीं चाहिए। बस एक मिटने की पात्रता चाहिए। होने का ख्याल बहुत ज्यादा है कि"मैं" हूं। वही बाधा डालता है और कोई बाधा नहीं डालता है। न कोई पाप रोकता है किसी को, न कोई पुण्य पहुंचाता है किसी को। पाप भी रोकता है, क्योंकि पापी का ख्याल है कि मैं कर रहा हूं। अगर पापी का यह ख्याल मिट जाये कि मैंने किया और पापी अगर यह जान ले कि हुआ तो पापी भी इसी रास्ते से जायेगा इसी क्षण। और पुण्यात्मा को अगर पता चले कि हुआ, तो पुण्यात्मा भी इसी क्षण पहुंच जायेगा।

न पाप रोकता है, न पुण्य पहुंचाता है। मैं कर रहा हूं--यह, यह अहंकार भर रोकता है।
पापी को भी यही रोकता है, पुण्यात्मा को भी यही रोकता है। वह कर्तृत्व
का ख्याल रोकता है। और हम कर्तृत्व के ख्याल से इतने भरे हैं कि हमें लगता है कि अगर हम थोड़ी देर कुछ न करेंगे तो हम मिट ही जायेंगे, मर ही जायेंगे! लेकिन बिना कुछ किये, कितना बड़ा संसार चल रहा है; बिना कुछ किये, कितना विराट आयोजन चल रहा है! बिना कुछ खबर दिये, बिना कोई इशारा किये, कितने तारे चल रहे हैं! कितनी पृथ्वियां आयेंगी तारों में, कितने जीवन रहेंगे-- अंतहीन है! कुछ पता नहीं, इतना सब चल रहा है बिना किसी के कुछ किये!
अगर भगवान कुछ करता तो भूलें-चूकें भी होतीं। करने में भूल-चूक होती है। कभी भगवान को नींद भी लग जाती है, कभी दो तारे टकरा जाते हैं, कभी गलत सूचना मिल जाती है। न मालूम क्या-क्या होता है! लेकिन भगवान कुछ नहीं कर रहा है, इसलिए कोई गलती नहीं होती। न-करने में गलती हो कैसे सकती है? चीजें हो रही हैं, चीजों का एक सहज स्वभाव होता है, उससे हो रही हैं।
धर्म का अर्थ है स्वभाव। और स्वभाव का अर्थ है जो होता है, किया नहीं जाता।
ध्यान स्वभाव में ले जाने का द्वार है। और इसलिए ध्यान, करने से नहीं होता है। इसलिए जहां-जहां लोग सिखाते हैं कि माला फेरो और ध्यान हो जायेगा; राम-राम जपो, ध्यान हो जायेगा; ओम जपो ध्यान हो जायेगा; गायत्री जपो ध्यान हो जायेगा--वहां किसी को कुछ भी पता नहीं कि ध्यान का मतलब क्या है!
ध्यान कुछ भी करने से नहीं होता है। ध्यान न-करने से होता है। कुछ न करो और ध्यान हो जायेगा।
कुछ कर रहे हैं हम, इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है। कुछ कर रहे हैं और करने में उलझे हैं, इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है।
बुद्ध के जीवन की घटना बहुत अदभुत है। बुद्ध ने छह वर्ष तक कठिन तपश्चर्या की। जो भी किया जा सकता था, वह बुद्ध ने किया। उपवास किये, शरीर का दमन किया। और ऐसी शरीर की हालत हो गयी कि नदी में नहाने उतर रहे थे तो घाट पकड़ कर चढ़ने की हिम्मत न थी! एक जड़ को पकड़कर लटक गये, बेहोशी आ गयी! इतनी ताकत न थी शरीर में! छह वर्ष जो भी किया जा सकता था, सब किया। और मजा यह कि छह वर्षों में कुछ भी नहीं मिला! कुछ मिला ही नहीं, कौड़ी भर कुछ नहीं मिला उनको। क्यों उस नदी में नहाते वक्त बेहोशी आ गयी? कमजोरी के कारण! शरीर बिल्कुल हड्डियां रह गया!
उस बेहोश हुए क्षण में बुद्ध ने सोचा कि नदी पार नहीं कर सकता हूं और भवसागर पार करने की कोशिश कर रहा हूं! कैसे होगा? नदी का पार करना मुश्किल हो गया है। छह वर्ष जो भी किया था, प्रतीत हुआ व्यर्थ गया। कुछ सार नहीं पाया, कुछ मिला नहीं। उस दिन थककर सब छोड़ दिया। निकलकर नदी के पार एक वृक्ष के नीचे बैठे थे तो सुजाता ने खीर दी। वह बुद्ध को नहीं दी थी खीर। उसने कुछ मनौती मानी थी उस झाड़ के देवता के लिए। और जब सांझ वहां आयी तो बुद्ध को देखकर समझी, देवता प्रसन्न हुआ है और झाड़ से निकला है। बुद्ध, दूसरे दिन कभी वह आयी होती तो उपवासे रहते। आज उन्होंने सब छोड़ दिया है। भूख लगी थी। भूख लगानी थोड़े पड़ती है। उपवास करना पड़ता है। भूख लगती है। ध्यान रहे, उपवास करना पड़ता है। और करने में मन को कभी भय नहीं हो सकता है, क्योंकि करना हमारा किया हुआ है। उससे अहंकार मजबूत होता है। इसलिए उपवास करने वाले अखबारों में खबर छपाते हैं कि फलाने महाराज ने इतने उपवास किये! लेकिन फलाने महाराज को इतनी भूख लग रही है, इसको छपवाने की कोई जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि भूख लगती है। उसमें महाराज के करने जैसा कुछ भी नहीं है, वह अपने आप आती है। वह भगवान से आती है। इसलिए भूख का कोई हिसाब नहीं रखता है, उपवास का हिसाब रखना पड़ता है।
उस दिन से बुद्ध ने करना छोड़ दिया। थक गये थे। अब कहा, छह वर्ष बहुत कर लिया! कुछ नहीं करना है। वृक्ष के नीचे बैठे थे, भूख लगी थी। उस लड़की ने कहा, लायी हूं खीर। तो पेट ने कहा कि लो--बुद्ध ने खीर ले ली।
यह पहला मौका था, जब उन्होंने भोजन के साथ सरल व्यवहार किया। सरल व्यवहार जीवन के साथ नहीं होता है, उसमें भी कठिनाई है! कोई आया। सुजाता तो

शूद्र है, बुद्ध ने नहीं पूछा कि कौन लाया, क्योंकि भूख बिल्कुल नहीं जानती कि शूद्र ने बनाया कि ब्राह्मण ने बनाया। वह सिर्फ आदमी का अहंकार जानता है, किसने बनाया। कौन लाया, क्या है, वह कोई भूख तो कुछ जानती नहीं। भूख के लिए न कोई शूद्र है। भूख के लिए भोजन चाहिए।
बुद्ध ने पूछा ही नहीं कि तू कौन है! सुजाता नाम था उसका। उससे पता चल जाता है कि वह शूद्र थी, नहीं तो सुजाता नाम नहीं रखती। हमेशा हमारे सब नाम उलटे होते हैं। जो हम नहीं होते, उसको नाम में बताने की कोशिश करते हैं। वह अच्छी जाति से पैदा नहीं हुई थी, इसलिए सुजाता नाम रहा होगा। अच्छी जाति वाला आदमी काहे के लिए सुजाता नाम रखेगा। वह जो भीतर है, उसको छिपाने की कोशिश चलती है!
सुबह पांच-छह बजे बुद्ध उठे। बुद्ध को भूख लगी थी, ठीक है, भोजन कर लिया! फिर नींद आयी, सो गये!
यह नींद के साथ भी पहला सदव्यवहार था। इसके पहले इतनी देर सोना चाहिए
और इतने वक्त सोना चाहिए और इतने वक्त उठना चाहिए, ये सब विचार थे!
आज नींद आयी तो बुद्ध सो गये! आज उन्होंने नहीं कहा कि अभी नहीं, अभी मेरा समय नहीं हुआ है। और अभी सो जाऊंगा तो फिर ज्यादा नींद हो जायेगी। साधु-संन्यासी के सब नियम होते हैं। इसलिए साधु-संन्यासी कभी कहीं नहीं पहुंचते। नियम वाला आदमी कभी कहीं पहुंच नहीं सकता, क्योंकि नियम वाला आदमी आदतें बनाता है।
स्वभाव के नियम होते हैं अपने। उसको हमें नहीं जानना पड़ता है। जब नींद आयी तो शरीर कह रहा है, प्राण कह रहे हैं, सो जाओ। और अगर जागने का वक्त आयेगा तो शरीर और प्राण कहेंगे, उठो। न अपनी तरफ से सोना, न अपनी तरफ से जागना। और तब वह नींद उपलब्ध होगी जो परमात्मा की है। जब शरीर कहे, भोजन कर लो तो कर लेना। जब भूख कहे, खा लो तो खा लेना; जब भूख कहे नहीं, तो उठ जाना। तब वह भूख मिलेगी जो परमात्मा की है। नहीं तो फिर हमारी कृत्रिम भूखे भी हैं!
जैसे हम घड़ी को देखकर कहते हैं, ठीक दस बज गये, समय हो गया भोजन का। वह हमारी भूख है। अगर घड़ी किसी ने एक घंटा पीछे कर दी और आपको पता न हो तो आपको जब दस बजेंगे तो भूख लग जायेगी! हालांकि अभी नौ बजे हैं या ग्यारह बज गये हैं। वह घड़ी देखकर भूख चलती है! यह भूख हमारी है!
बुद्ध को नींद आ गयी, सो गये। आज उन्होंने सब छोड़ दिया। सब--जो उन्होंने किया था, सब छोड़ दिया। आज उन्होंने तय कर लिया था कि अब कुछ करूंगा नहीं। छह साल बहुत कर लिया था। उन्हें पता भी नहीं था कि जो करने से नहीं हुआ, वह नहीं करने से हो सकता है! उस रात वे सो गये, नींद आयी। सुबह पांच बजे के करीब नींद खुली, आंख खुली, आखिरी तारे डूबने के करीब थे आकाश में। वे उसी वृक्ष के नीचे पड़े रहे और उन डूबते हुए तारों को देखते रहे--एक-एक तारा डूबता गया। सन्नाटा सुबह का, रात की गहरी नींद। सब करने का ख्याल छोड़ दिया, कुछ करने को न बचा।
राजा कोई थे वह, तो छोड़ चुके थे छह साल पहले। वह सब धन, यश जो कुछ था, छह साल पहले छोड़ दिया था। फिर नयी दौड़ पकड़ ली थी मोक्ष की, निर्वाण की! आज वह भी छोड़ दी। अब करने को कुछ भी नहीं था। कहना चाहिए बिल्कुल बेकार। यह जो बेकार है, वह बेकार नहीं है। कुछ न कुछ करता है।
बुद्ध अब बिल्कुल बेकार थे, जिसको कहना चाहिए--न कोई राज्य था, न कोई
यश था, न कोई धन था, न कोई मोक्ष था, न कोई परमात्मा था, न कोई आत्मा थी। कुछ पाना न था। खाली बैठे थे।
वह आखिरी तारा डूबा और बुद्ध खड़े हो गये और वह मिल गया! छह साल कोशिश करने से नहीं मिला! और जब लोग पूछने आये कि कैसे मिला
तो बुद्ध ने कहा, यह मत पूछें, कैसे मिला! क्योंकि वैसे तो बहुत कोशिश करने से नहीं मिला। आज कैसे मिला, कहना मुश्किल है, क्योंकि मैंने कुछ किया ही नहीं था। आज तो मैं था ही नहीं, क्योंकि मैं कुछ कर रहा ही नहीं था और हो गया। और तब बुद्ध बाद में कहने लगे, करने से नहीं मिलेगा, न-करने से मिलता है।
जब भी मिला है, न-करने से मिला है।

लेकिन बुद्ध को समझने वाले कोशिश करते हैं! तो वे कहते हैं कि क्या किया बुद्ध ने! वह जो छह साल तक उन्होंने किया, वे ही उनके भिक्षु कर रहे हैं! और वह जो आखिरी रात नहीं किया था, वह तो उनकी पकड़ में नहीं आता! क्योंकि न-करने का क्या मतलब?
वह जो छह साल किया था, वह चल रहा है सारी दुनिया में! उपवास किया था! यह किया था, वह किया था! लेकिन वह बात चूक गयी थी। जो हुई थी घटना, वह न-करने में हुई थी। वह करने में कभी नहीं हुई थी। चाहे छह साल करो या चाहे छह लाख साल करो, वह करने से कभी नहीं होती। वह हमेशा न-करने से होती है, क्योंकि जो भीतर है, वह तो है ही। तुम करने में उलझे रहते हो, इसीलिए वह दिखायी नहीं देता।
इस प्रयोग काल में न-करने की ओर कदम उठाना है और करने का ख्याल ही छोड़ देना है। कुछ करना ही नहीं, तीन दिनों में जो होता है, होने दें। भूख लगे तो खाना खा लेना, नींद आये तो सो जाना। अपनी तरफ से बुलाना भी मत, अपनी तरफ से मौन भी मत होना। जब बोलने का मन हो तो बोल लेना, जब मौन का मन हो मौन हो जाना। जब मौन का मन हो तो चाहे सारी दुनिया कहे कि बोलना तो मत बोलना। और जब बोलने का मन हो तो अगर कोई न बोलता हो तो दरख्तों से बोल लेना। जो हो, उसे होने देना। अपने को ऐसे छोड़ देना, जैसे सूखे पत्ते हवाओं में छोड़ देते हैं। हवाएं पूरब जाती हैं, पत्ते पूरब चले जाते हैं। हवाएं पश्चिम जाती हैं, पत्ते पश्चिम चले जाते हैं। हवाएं आकाश में उठा देती हैं, पत्ता ऊपर उठ जाता है। हवाएं नीचे गिरा देती हैं, पत्ता नीचे गिर जाता है।
लाओत्से से किसी ने पूछा, तूने कैसे पाया? उसने कहा, मैं सूखा पत्ता हो गया। हवाएं जहां ले जाने लगीं, हमने कहा, चलो। हमने अपनी जिद्द छोड़ दी कि इधर जायेंगे। हवाएं जहां जाने देंगी, हमने कहा, वहीं चलेंगे। और जैसे ही हमने छोड़ दी जिद्द, वैसे ही हमने पा लिया! प्रयत्न से नहीं, निष्प्रयत्न से; कर्म से नहीं, अकर्म से; चेष्टा से नहीं, निश्चेष्टा से; दौड़ने से नहीं, रुकने से; खोजने से नहीं, खड़े हो जाने से।
इस प्रयोग में तो धीरे-धीरे आखिरी तारे डूबते चले जायेंगे, फिर आखिरी तारा भी डूब जायेगा और मौन सन्नाटा रह जायेगा। फिर यहां तो हम विधिवत बैठेंगे। और विधि भी बड़ी गड़बड़ चीज है, उससे कोई संबंध नहीं है। आपका मन हो तो जहां आप हैं, बैठे रहें। नहीं मन हो तो कहीं भी उठकर चल दें। बिस्तर पर बैठ जायें। किसी वृक्ष के नीचे घंटे-दो घंटे, और रात भर भी हो तो क्या बिगड़ सकता है।
एक रात सुकरात रात भर एक पेड़ के नीचे खड़ा पकड़ा गया! घर भर के लोग परेशान हो गये कि सुकरात कहां है! सब जगह खोजा। मित्रों के घर खोजा, मित्रों के घर में नहीं था। उन्होंने कहा, सुकरात दिन भर दिखायी नहीं पड़ा, हम खुद भी चिंतित हैं कि वह कहां है। बाजार में खोजा। लेकिन दुकानें बंद होने के करीब आ गयी थीं। सुकरात कहीं भी नहीं था! फिर तो बहुत घबरा गये, रात भर लोग जागते रहे, सुकरात गया कहां?
सुबह-सुबह किसी ने खबर दी कि वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा है और उसकी आंखें ठहर गयी हैं! उसकी पलक झपकती नहीं और वह आकाश को देख रहा है! और हमें डर लगता है कि उसको छूना भी है कि नहीं। फिर वह उसी हालत में खड़ा है रात भर से! घर के लोग गये। उसे देखा लोगों ने और चुपचाप बैठ गये। किसी की हिम्मत
न पड़ी कि उसके पास जाकर उसे हिलायें, क्योंकि वह इतना शांत था।
अगर बहुत शांत आदमी के पास अशांत आदमी भी जाये तो स्वयं शांत होकर बैठ जाता है।
फिर सुकरात हिला, डुला। सुबह हो गयी, सूरज निकल आया, फिर वह घर की तरफ
चल पड़ा तो लोगों ने चिल्लाया कि तुम देख ही नहीं रहे हो, हम कैसे तुम्हारे पास यहां बैठे रहे! तुम कर क्या रहे थे? क्या हो गया तुम्हें?
सुकरात ने कहा, किया तो बहुत, रात न-करने की बात हो गयी। कल आकर खड़ा हुआ
था झाड़ के नीचे और फिर पता नहीं क्या हुआ, क्योंकि फिर मैंने कुछ नहीं किया। लेकिन जो करने से नहीं हो सका, आज रात हो गया।
आप अभी जायें और मन हो जाये तो झाड़ के नीचे बैठ जायें। वक्त पर सब होता रहेगा, वह सब होने पर छोड़ दें। आप कहीं भी बैठ जायें--सुबह, रात, दोपहर। और

इस तरह जीयें प्रयोगकाल में, जैसे कोई आदमी पानी में बह रहा हो। ध्यान रहे, तैरना नहीं है।
पानी में एक आदमी तैरता है, तैरने में उसे कुछ करना पड़ता है। वह कहता है, उसे पहुंचना है, तो वह तैरकर पहुंचने की कोशिश करता है। एक दूसरा आदमी कूद जाता है और बहता है, तैरता नहीं। वह कहता है, नदी जहां ले जाये, हम राजी हैं। हम नहीं हैं, नदी जहां ले जाये--बहता है। इस प्रयोगकाल में बहने की फिक्र रखें।
और रोज तो हम जिंदगी में तैरने की फिक्र करते हैं, तैर रहे हैं! किसी
को दिल्ली की तरफ तैरना है, और वहां तैरता चला जा रहा है! किसी को कहीं और तरफ तैरना है, वह वहां तैरता चला जा रहा है! हम जिंदगी में तैरते हैं। तैरना एक आदत है। तैरना एक काम है।
बहना--तैरना नहीं।
इस प्रयोगकाल में बहना है। एकदम हलके, उड़े जा रहे हैं। और जिंदगी में कुछ बोझ नहीं है, तो उस दरवाजे पर चूक नहीं पायेंगे, जहां कुछ भी किया हुआ बाधा बन जाता है। इस प्रयोगकाल में बहेंगे। जो हो रहा है, होने देंगे। और जो आ रहा है, उसे आने देंगे।

नेति-नेति
तेरहवां प्रवचन

चैतन्य का द्वार

मनुष्य की तरफ देखने पर एक बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य दिखाई पड़ता है--वह
यह कि मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व एक तनाव, एक खिंचाव, एक बोझ है। कौन-सा बोझ है मनुष्य के चित्त पर, किस पत्थर के नीचे आदमी दबा है? सिर्फ किरणों की तरफ देखें या वृक्षों के हरे पत्तों की तरफ या आकाश की तरफ आंखें उठायें--कहीं कोई बोझ नहीं है, सब जगह बोझहीनता है, कहीं कोई तनाव नहीं है। मनुष्य के मन पर एक तनाव है!
एक तेजी से दौड़ती हुई ट्रेन के भीतर एक आदमी बैठा हुआ था। जो भी उस आदमी के करीब से निकलता था, हैरानी से उसे देखता था। उसने काम ही ऐसा कर रखा था। वह अपना बिस्तर, अपनी पेटी अपने सिर पर रखे हुए था! कोई भी उससे पूछता कि क्या कर रहे हो मित्र?
वह कुछ स्वयंसेवक किस्म का आदमी था। कुछ आदमी स्वयंसेवक किस्म के होते हैं! उन्हें यह ख्याल होता है कि सब कुछ स्वयं ही कर लेना है।
उसने कहा, मैं अपना बोझ अपने ही सिर पर रखता हूं। मैं गाड़ी पर क्यों कोई बोझ रखूं?
वह खुद भी गाड़ी पर सवार था, अपने सिर पर बोझ रखे हुए! वह बोझ भी गाड़ी पर
ही सवार है। लेकिन जिस बोझ को वह नीचे रखकर आराम से बैठ सकता था, उस बोझ को वह सिर पर रखे हुए है, इस ख्याल से कि अपनी सेवा खुद ही करनी चाहिए! गाड़ी भाग रही है, वह उसको भी ले जा रही है, बोझ को भी ले जा रही है, लेकिन वह अपने बोझ को सिर पर ही रखे हुए है!
सारा जीवन चल रहा है, सारा जीवन चलता रहा है, सारा जीवन चलता रहेगा, लेकिन हम अपने-अपने बोझ को अपने सिर पर रखे हुए बैठे हैं! जिसे हम नीचे उतारकर रख सकते हैं, उसे हम अपने सिर पर रखे हुए हैं! और हम सबको भी वही ख्याल है, जो उस भागती हुई गाड़ी के आदमी को है कि अपना बोझ अगर नहीं रखूंगा तो कौन रखेगा। लेकिन वह बोझ प्रत्येक को दिखायी पड़ता है कि वह अपने सिर पर लिए हुए है, क्योंकि वह दिखने वाला बोझ था। और हम जो बोझ लिए हुए हैं, वह दिखने वाला बोझ नहीं है।
ऐसे बोझ हैं, जो दिखायी पड़ते हैं, वे बोझ बहुत खतरनाक नहीं हैं, उन्हें उतारकर बहुत आसानी से नीचे रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे बोझ भी हैं, जो दिखायी नहीं पड़ते हैं, वह भी हम रखे हुए हैं! और चूंकि वे दिखाई नहीं पड़ते दूसरे को भी और हमें भी, इसलिए जीवन भर हम उन्हें बढ़ाते चले जाते हैं, वे कभी कम नहीं होते!
बच्चे और बूढ़े में अगर कोई अंतर है तो सिर्फ एक--बच्चे के ऊपर अभी कोई बोझ नहीं है और बूढ़े जीवन भर का बोझ इकट्ठा करते हैं। बुढ़ापे का मतलब है इतने बोझ से दब जाना कि जीना असंभव हो जाये। शरीर तो बूढ़ा होगा, लेकिन मन अगर निर्भार है तो आत्मा कभी बूढ़ी नहीं होती। और आत्मा अगर निर्भार है तो मरते क्षण भी व्यक्ति वैसा ही बच्चा होता है, वैसा ही सरल, वैसा ही निर्दोष, जैसा उस दिन था, जिस दिन पृथ्वी पर आया।
एक बाजार में बहुत भीड़ थी और जीसस उस बाजार में उस भीड़ के बीच खड़े थे।
और किसी ने जीसस से पूछा कि तुम स्वर्ग के राज्य की बातें करते हो, कौन होगा अधिकारी उस राज्य को पाने का? तो जीसस ने उठाया एक छोटे बच्चे को अपने कंधे पर और कहा, वे, जो बच्चे की भांति होंगे!
लेकिन क्या मतलब है बच्चे की भांति होने का? जीसस ने यह नहीं कहा कि वे बच्चे होंगे, जीसस ने कहा, वे जो बच्चे की भांति होंगे।
बच्चे की भांति का मतलब यह है कि जो उम्र में आगे चले गये हैं, लेकिन आंतरिक बोझ जिन्होंने नहीं लादा है।
लेकिन बहुत अनजान-सा बोझ भी है, जो हम लिए बैठे हैं! और इन बोझों को लिए हुए अगर आप सोचते हों कि शांत हो जायेंगे तो असंभव है। उन बोझों को लिए हुए सोचते हों कि ध्यान के द्वार में प्रविष्ट हो जायेंगे तो असंभव है। उन बोझों को किसी ने आपके ऊपर रखा नहीं है। आपको पता ही नहीं है कि आप ही

उन्हें रखकर चल रहे हैं! आज भी रखते चले जा रहे हैं, रोज रखते चले जायेंगे! वे बोझ इतने पैदा हो जायेंगे कि आप दब जायेंगे, बोझ ही रह जायेंगे। अंततः मरते-मरते आदमी तो कभी का मर चुका है, बोझ ही रह जाते हैं!
इन बोझों को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। उस आदमी को जो गाड़ी में बैठकर सिर पर पेटी-बिस्तर लिए हुए है, अगर यह पता चल जाये कि नासमझी कर रहा है तो क्या उसे सिर पर से पेटी और बिस्तर उतार देने में कोई कठिनाई होगी? क्या वह यह पूछेगा कि मैं इसे उतारूं? उसे यह दिख भर जाये कि यह निहायत पागलपन है, फिर वह उतारने में देर नहीं लगायेगा, उतारकर नीचे रख देगा।
चित्त के बोझ हमारी समझ में आ जायें तो उन्हें उतारकर हमें नीचे रख देने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी। लेकिन हमें पता ही नहीं कि हम किस तरह के बोझ लिए हुए हैं! उन बोझों की थोड़ी-सी झलक हमारे विचार में आनी चाहिए। पहली तो बात, जो बीत गया, उसे हम इकट्ठा किये हुए हैं, वह बीत चुका है,
अब वह कहीं भी नहीं है। सिर्फ हमारी स्मृति को छोड़कर वह सब बह चुका है। अब वह कहीं खोजे से नहीं मिलेगा, लेकिन हमारी स्मृति में संचित है! वह सारा का सारा पत्थर की तरह हमारे सिर पर बैठा हुआ है!
कल हुआ था कुछ, वह हो चुका। जैसे पानी में पड़ी हुई रेखाएं बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं, वैसे ही इस जीवन की सतह पर बनी हुई रेखाएं बन भी नहीं पाती हैं और मिट जाती हैं। इन वृक्षों को कुछ भी पता नहीं कि कल यह हुआ था, न आकाश को कुछ पता है, न सूरज को कुछ पता है; सिर्फ आदमी को पता है! आदमी को जो कल हुआ था, वह उसको जकड़कर बैठ गया है, उसे उसने पकड़ लिया है!
कल किसी ने गाली दी और कल किसी ने प्रेम किया! कल किसी ने सम्मान किया था और कल किसी ने अपमान किया था! और भीतर ये सारे कल अंतहीन हैं! और हमें
तो याद है इस जन्म का, लेकिन जो जानते हैं, वे कहेंगे, अंतहीन जन्मों की कथाएं स्मरण में भीतर बैठी हैं, उन सबका बोझ है! एक आदमी पर अनंत जन्मों का बोझ है! अतीत का बोझ है। अतीत पत्थर बनता चला गया है, वह हमारी छाती पर है, वह हमारे सिर पर है, उसके नीचे हम दबे हैं, इसलिए निर्भार नहीं हो पाते। यह समझ लेना जरूरी है कि जो बीत गया, वह बीत गया, अब वह कहीं भी नहीं है, अब उसे मैं क्यों ढो रहा हूं।
एक सुबह एक आदमी बुद्ध के ऊपर आकर बहुत क्रोधित हुआ था, बहुत गालियां
दी थीं। फिर बुद्ध के ऊपर क्रोध में उसने थूक दिया था! बुद्ध ने चादर से उस थूक को पोंछ लिया और उस व्यक्ति से कहा और कुछ कहना है!
बुद्ध तो किसी का अपमान नहीं करते हैं, लेकिन उनका होना ही बहुत से लोगों के लिए पीड़ा और अपमान का कारण हो जाता है, क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्ति का खड़ा होना ही हमारे अंधकार को दिखाने लगता है। बुद्ध जैसे व्यक्ति के भीतर से बहती करुणा, हमारे भीतर क्रोध और अहंकार को बहुत घबराने लगती है। बुद्ध का व्यक्तित्व हमारे व्यक्तित्व की भूमिका को जाहिर करने लगता है। हम क्रोधित हो जाते हैं तो बुद्ध पर थूकने का मन होता है! बिल्कुल स्वाभाविक है।
समझ लें कि आप ही गये हैं, बुद्ध ने थूक को पोंछ लिया है, जैसे कुछ भी न हुआ हो! और क्या हो गया है! और बुद्ध ने पूछा है, और कुछ कहना है?
पास में बैठा हुआ भिक्षु आनंद बहुत क्रोधित हो उठा और कहने लगा, आप क्या कहते हैं,"कुछ कहना है"! उस आदमी ने थूका है! और हम आपकी वजह से सिर्फ चुप हैं, अन्यथा हमारे प्राणों में आग लग गयी है कि यह क्या किया है इस आदमी ने। आप पर थूकता है कोई, और आप यह कह रहे हैं कि और कुछ कहना है!
बुद्ध ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, इस आदमी के मन में इतना क्रोध है
कि शब्दों को कहने में असमर्थ है, इसलिए थूककर कहता है। थूकना भी एक भाषा है, एक ढंग है, एक विधि है!
और कभी जब हम कुछ अभिव्यक्त न कर पाते हों, कुछ शब्द असमर्थ हो जाते हों तो फिर इसी तरह से कहते हैं। किसी का प्रेम बहुत बढ़ जाता है तो गले से लगा लेता है! अब गले से लगा लेने का वैसे कोई मतलब नहीं है। शब्द नहीं मिलते हैं। और कोई आदर से भर जाता है तो पैरों पर सिर रख देता है!
बुद्ध ने कहा, शब्द नहीं खोज पा रहा है वह आदमी! भाषा कमजोर है, इसलिए कुछ कहता है। और मैं समझ गया उसके भाव को। और इसलिए पूछा कि कुछ कहना है मित्र? आप होते उस जगह--क्या कहने को बच गया था?

वह आदमी वापस लौट गया है, उसकी आंखों में आंसू भरे हैं, रात भर वह सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया है और बुद्ध से कहने लगा पैरों को पकड़कर, आंसू गिराकर, मुझे क्षमा कर दें! बुद्ध ने कहा, देखते हो आनंद, अब भी यह आदमी कुछ कहना चाह रहा है और शब्द नहीं मिल रहे हैं तो आंखों से आंसू गिराकर पैर पकड़ लेता है। आदमी की भाषा, आनंद, बहुत कमजोर है।
उस आदमी से कहा, मित्र, किस बात की क्षमा मांगते हो? उस कल की जो जा चुका! किससे क्षमा मांगते हो--मुझसे! मैं दूसरा आदमी हूं--बहती गंगा में बहुत धारा बह गयी है, बहुत पानी बह गया है।
कल तुम सुबह जिस गंगा के पास गये थे, अब वही गंगा वहां नहीं है। आज तुम जाओ और क्षमा मांगो तो गंगा कहेगी, किससे मांगते हो क्षमा? वह गया पानी, वह जिससे तुम कल मिल गये थे। अब वह कहां है, मैं जो कल था। न वृक्षों में पत्ते वही हैं, न आकाश में बादल वही हैं, न सूरज की किरणें वही हैं, कोई भी वही नहीं है, सब तो बह गया, सब तो बदल गया। किससे क्षमा मांगते हो?
लेकिन पागल हो, कल तुम नहीं बह पाये, तुम वहीं अटके, रुके हो। कल सुबह
जो थूक गये थे, वहीं खड़े हो। बुद्ध ने कहा, मैं कैसे क्षमा करूं, मैं तो कल नहीं था। जो था, वह मैं नहीं हूं।
सिर्फ मरी हुई चीजें वही होती हैं, जो कल थीं। जिंदा चीजें रोज बदल जाती हैं। जीवन का मतलब है बदल जाना। मरे हुए का मतलब है न बदलना।
सुबह फूल खिलता है, उसी के नीचे एक पत्थर पड़ा है, वह पत्थर मन में हंसता होगा उन लोगों को देखकर, जो फूल की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि वह कहता होगा कि पागल हो गये हो, अभी खिल भी नहीं पाया है, दोपहर मुरझा जायेगा, गिर जायेगा। मुझे देखो, मैं सुबह भी वही हूं, दोपहर भी वही हूं, सांझ भी वही हूं।
सिर्फ जो मरा हुआ है, वह वही होता है, जो था। असल में मरा हुआ अतीत में होता है, मरे हुए का कोई वर्तमान नहीं होता। अतीत का मतलब होता है मरा हुआ। मरे हुए का मतलब है दी पास्ट, बीत गया। सिर्फ अतीत नहीं बदलता है, वर्तमान प्रतिक्षण बदलता चला जाता है।
जो बदलता है, उसका नाम वर्तमान है। जो ठहरता नहीं, जो बदलता ही चला जाता है, उसी का नाम जीवन है।
लेकिन स्मृति बदलती नहीं, ठहर जाती है। हम जीवन हैं और हमारे सिर पर जीवन का बोझ है, जो नहीं बदलता! हम तो फूल की तरह हैं और स्मृति पत्थर की तरह है, जैसे एक फूल को पत्थर के नीचे दबा दिया हो, उससे आदमी विकृत हो जाता है। आदमी तो फूल है, जिंदगी तो फूल है। स्मृति पत्थर की तरह उस फूल को दबाये हुए है। सोचो, एक फूल पत्थर के नीचे दबा हो तो कैसे प्राण हो जायेंगे, वैसे ही आदमी की चेतना स्मृति के पत्थर के नीचे दब गयी है-- परेशान, पीड़ित और तनाव से भरे जा रहे हैं!
ध्यान में प्रवेश होता है उनका, जो स्मृति के पत्थर हटा देते हैं।
लेकिन हम तो संभालते हैं। हम तो कहते हैं, पता है कि मैं कल कौन था? आदमी कभी एम. ऐल. ए. रहा हो तो भी अपने पैड पर लिखे रहता है भूतपूर्व एम. ऐल. ए.! वह जो भूतपूर्व है, वह पीछा नहीं छोड़ रहा है! गंगा का पानी बह गया--जो था वह, अब नहीं है। आप कल तक जो थे, सुबह वही नहीं होंगे। घंटे भर में सब बह जायेगा।
जैसे सांझ कोई एक दीया जलाये और सुबह जाकर कहे कि अब मैं उसी दीये को बुझाता हूं, जिसे सांझ जलाया था। हमें लगेगा सही कहता है, वही दीया बुझाता है, जो सांझ जला था। लेकिन कहां है वह दीया, जो सांझ जलाया था? वह ज्योति तो प्रतिक्षण बदलती चली गयी, वह ज्योति तो धुआं होती चली गयी, नयी ज्योति आती चली गयी। रात भर दीया बदला। रात भर दीया बदलता रहा, रात भर धारा ज्योति की बहती रही, नयी ज्योति आती चली गयी। सांझ जो दीया जलाया, वह तो सांझ ही बुझ गया और बह गया। दूसरे दीये जलते चले गये। एक श्रृंखला थी परिवर्तन की। सुबह जिस दीये को बुझाते हैं, वह बिल्कुल और है। जिसे कभी नहीं जलाया था, उसे बुझाते हैं, श्रृंखला है, तेज धारा है, इसलिए पता नहीं चलता।
जो आदमी पैदा होता था, वही मरता है? आप जो पैदा हुए थे, क्या वही हैं? क्या वही रहेंगे?

ज्योति बदलती चली गयी, सब बदलता चला गया। एक बहाव है जिंदगी, लेकिन उस बहाव ने जो भी जाना, उस बहाव में जो भी अंकुर हुए, उस बहाव ने जो कुछ देखा, वह भी सभी स्मृति इकट्ठी करती चली गयी। जीवन की धारा है आगे की तरफ, स्मृति की पकड़ है पीछे की तरफ। स्मृति रुक जाती है अतीत पर। जीवन भागता है आगे, आगे और--अनजान, अज्ञात में। और स्मृति? स्मृति रुकती है ज्ञात पर। जीवन अज्ञात है।
और ज्ञात और अज्ञात के बीच जो खिंचाव है, वह मनुष्य का तनाव है। वह तनाव जब तक न उतरे, तब तक जीवन के द्वार में हम प्रवेश नहीं पा सकते। आप देखें अपनी तरफ, कितनी स्मृतियों को इकट्ठा किये बैठे हैं, क्या प्रयोजन है उन स्मृतियों का? क्या अर्थ है उन स्मृतियों का?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप यह भूल जायें कि किस घर में आप रहते हैं। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप भूल जायें कि आप किस गांव के रहने वाले हैं। यह काम-चलाऊ स्मृति है, जिसका कोई बोझ नहीं।
स्मृतियां दूसरी हैं मनोवैज्ञानिक। अगर कल मैंने आपको गाली दी थी तो क्या आज आप मुझसे मिल सकेंगे उस गाली को बीच में लिए? क्या यह संभव होगा कि आप मुझसे मिलें और मैं जो कल जैसा आपको दिखायी पड़ा था, वह तसवीर बीच में न आये, वह स्मृति बीच में न बने। अगर यह हो सकता है तो आप एक जिंदा आदमी हैं, जिसके मन पर बोझ नहीं, और अगर यह नहीं हो सकता तो फिर बहुत कठिनाई है।
एक मित्र मेरे आये और उन्होंने कहा, आपकी अभी की बातें सुनीं और पहले
की भी और इन बातों में थोड़ा विरोध मालूम पड़ा! लेकिन पहले की बातों को किस लिए पकड़कर बैठे हैं? वह सब बह गया। और अगर पहले की बातों को पकड़कर बैठे हैं तो जो मैं अभी कह रहा हूं, वह न आप सुन पायेंगे, न आप समझ पायेंगे। फिर विरोध दिखायी पड़ेगा, क्योंकि आप सुन ही नहीं पाये, समझ ही नहीं पाये। और जो मैं कह रहा हूं, उसे यदि ठीक से समझ लें तो कभी कोई विरोध नहीं दिखायी पड़ेगा। लेकिन मन में पकड़े हुए हैं कि कभी यह कहा था। न उसको सुना होगा कभी, क्योंकि तब पीछे का और कुछ पकड़े रहा होगा। मेरा नहीं तो कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का, गीता का, कुरान का पकड़े रहा होगा।
पीछे की तरफ स्मृति भागती रहती है और जीवन आगे की तरफ भागता रहता है।
इन दोनों में मेल नहीं हो पाता है, ठीक वैसे ही जैसे एक ही बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिये हों और वह दोनों तरफ बैलगाड़ी चली जा रही है! स्मृति के बैल पीछे की तरफ, जीवन-धारा के बैल आगे की तरफ। और वह बैलगाड़ी तकलीफ में पड़ गयी, पूरे समय कठिनाई में।
और पीछे के बैल मजबूत हैं, क्योंकि जीवन भर का बल उन्हें मिला है। वे
जो अतीत के बैल हैं, स्मृति के बैल हैं, मजबूत हैं, क्योंकि जीवन भर की ताकत उन्हें मिली है। मुर्दा है, लेकिन मजबूत है; पत्थर है, लेकिन वजनी है।
हर आगे की, जीवन की धारा बहुत कोमल है। अभी होने को है, जैसे छोटा-सा अंकुर निकलता है बीज से, कमजोर और कोमल। अभी जरा-सा पत्थर इस पर रख दें तो मर जायेगा।
अतीत के बैल पीछे की तरफ गाड़ी को खींचते रहते हैं। गाड़ी पीछे जा नहीं सकती, सिर्फ आप खींच सकते हैं।
और तब जिंदगी रुक जाती है, ठहर जाती है, धारा नहीं रह जाती है, एक बांध
बन जाती है, एक सरोवर बन जाती है। फिर हम सड़ते हैं, बोझ से मरते हैं। इसलिए आदमी की आंख में वह बात नहीं दिखायी पड़ती, जो झील में दिखायी पड़ती है। आदमी की आंख में वह बात भी नहीं दिखायी पड़ती है, जो एक गाय की आंख में दिखायी पड़ती है। आदमी की गति में वह बात दिखायी नहीं पड़ती, जो एक हिरन की गति में दिखायी पड़ती है। आदमी की जिंदगी में फूल जैसी प्रफुता दिखायी नहीं पड़ती! वैसी चीजें खिलती दिखायी नहीं पड़तीं, जैसी पौधों में दिखायी पड़ती हैं। और आदमी भी इस प्रकृति का उतना ही हिस्सा है, जितना पशु है, जितने पौधे हैं, जितने पक्षी हैं, जितने चांदत्तारे हैं।
लेकिन आदमी में तोड़ने वाली कौन-सी बात है? वह अतीत का बोझ एक भारी दीवार की तरह खड़ा होकर आज हमको जीवन से तोड़ रहा है। यह बात समझ लेना जरूरी है कि जो हो चुका, हो चुका है। उसे मैं क्यों ढो रहा हूं, उसे बिदा कर दें। एक फकीर खोजता हुआ निकला था, सत्य की खोज में। फिर वह एक संन्यासी के आश्रम में रुका। वह संन्यासी से मिला और उसको कहा कि मैं सत्य की खोज में

आया हूं। जानना चाहता हूं कि जीवन का सत्य क्या है? जिस संन्यासी को उसने यह पूछा, उस संन्यासी ने कहा, ये बातें पीछे हो जायेंगी। कहां से आये हो? उस आदमी ने कहा, मैं पीकिंग से आया हूं। उस संन्यासी ने कहा, पीकिंग में चावल के क्या क्या दाम चल रहे हैं?
वह जो फकीर था, वह कहने लगा, महाशय, पीकिंग में जरूर चावल के दाम चल रहे होंगे, लेकिन मैं पीकिंग छोड़ चुका हूं। और जहां से मैं छोड़ चुका हूं, वहां लौटकर नहीं देखता हूं। जिन रास्तों से मैं गुजर जाता हूं, उन्हें भूल जाता हूं, क्योंकि मुझे और आगे के रास्ते पार करने हैं। और अगर आंखें पिछले रास्तों से भरी रहें तो आगे के रास्ते सिर्फ धुंधले दिखायी पड़ते हैं। आंखें एक समय में एक ही बात देख सकती हैं--या तो पीछे के रास्ते या आगे के रास्ते। होंगे पीकिंग में कुछ भाव, लेकिन मैं पीकिंग में नहीं हूं।
वह संन्यासी हंसा, उसने कहा, मैंने जानकर पूछा, अगर तुम पीकिंग में चावल के भाव बता देते तो मैं सत्य की तुमसे बात नहीं करता। ठीक है, अब तुमसे कुछ बातें हो सकती हैं, क्योंकि सत्य केवल उन्हीं के अनुभव में आ सकता है, जो अतीत से मुक्त हो जाते हैं।। लेकिन हमें तो पीकिंग में चावल के भाव बहुत अच्छी तरह याद हैं! आदमी बचपन की बातें बताता है कि चावल इतने सेर का बिकता था, इतना प्रचुर घी मिलता था, इतना यह होता था! यह सिर्फ बताना नहीं है, यह इसके चित्त पर बोझ की तरह बैठा हुआ है! तो जिंदगी जो आज है, उसे देखने में बाधा पड़ती है, क्योंकि जिंदगी जो कल थी, इतने जोर से मन को पकड़ हुए है।
कभी आपने ख्याल किया है, मन दो तरह से काम करता है--एक तो फोटो- प्लेट
की तरह। कैमरे में हम फोटो-प्लेट लगा देते हैं, बहुत संवेदनशील होती है, लेकिन बस एक फोटो निकालकर व्यर्थ हो जाती है। एक फोटो, पकड़ लिया, फोटो- प्लेट खराब हो गयी। फिर अब दूसरी फोटो नहीं पकड़ी जा सकती उस पर। मर गयी। जिंदा न रही अब।
एक दर्पण भी होता है, दर्पण पर रोज तस्वीर बनती है। जब सामने कोई होता
है तो दर्पण उसकी पूरी तसवीर बना देता है। फिर वह बिदा हो जाता है, तसवीर भी बिदा हो जाती है। दर्पण फिर खाली हो जाता है। फिर कोई दूसरा सामने आता है। उसमें फिर तसवीर बनती है। फिर दर्पण यह नहीं कहता कि मैं बना चुका यह तसवीर। अब मैं दूसरी नहीं बनाऊंगा। दर्पण तसवीर पकड़ता नहीं है। दर्पण मरता नहीं है। तसवीर पकड़कर दर्पण जिंदा बनता है। तसवीर आती है, जाती है; बीत जाती है।
जो लोग स्मृति में जीने लगते हैं, वे लोग अपने चित्त का फोटो-प्लेट की तरह उपयोग कर रहे हैं। जहां एक के ऊपर दूसरी तसवीर इकट्ठी होती चली गयीं हैं। वहां बिदा नहीं होती तस्वीरें। खाली नहीं होतीं। फिर तस्वीरों पर तस्वीरें बैठती चली गयीं हैं, बोझ होता चला गया है।
लेकिन जो लोग ध्यान की दुनिया में गति करना चाहते हैं, वे मन को दर्पण
की तरह उपयोग करते हैं। मन पर आती हैं चीजें, जाती हैं। आप उसे देखते हैं तो ठीक है। आप नहीं देखते तो गया। फिर आप कहीं भी नहीं हैं। जिस स्टेशन पर सवार होते हैं, लोगों को नमस्कार करते हैं। फिर वे गये, फिर वह स्टेशन गया। वह दुनिया में है भी या नहीं, इससे कोई मतलब नहीं रहा। फिर आगे और दुनिया है, आगे और लोग हैं, उनकी तसवीर बना ली है।
तो पिछली तस्वीरों को बिदा हो जाना चाहिए, अन्यथा फिर नये के साथ न्याय नहीं हो सकता है। पुराने के साथ जो बहुत ज्यादा पकड़ हो तो नये के साथ न्याय नहीं हो सकता।
अतीत के साथ बहुत जकड़ हो तो वर्तमान के साथ न्याय कैसे हो सकता है? और बीते कल से जो बंध गया, वह आज में जीयेगा कैसे? अभी कैसे जीयेगा? इस क्षण कैसे जीयेगा? यह--यह क्षण तो कभी भी नहीं था। अतीत का बोझ हमारे चित्त को, चित्त के दर्पण को धूमिल कर देता है।
एका व्यक्ति, एक संन्यासी के आश्रम में दीक्षित हुआ। बरसों तक साधना
की उसने, लेकिन कुछ नहीं पा सका, वह जो पाने की इच्छा थी। फिर उसने अपने गुरु को कहा, वर्ष बीत गये, वह तो नहीं मिला, जिसे खोजने आया था। अब मैं कहां जाऊं?

तो उसके गुरु ने कहा कि एक सराय है नगर के बाहर, कुछ दिन वहां जाकर रह, सराय का वह जो मालिक है, वह जो रखवाला है, उसे ठीक से समझ, शायद जो यहां नहीं मिल सका, वह वहां मिल जाये।
वह युवा संन्यासी उस सराय में गया। आशा तो नहीं थी, क्योंकि एक बड़े संन्यासी से कुछ न मिला तो एक सराय के रखवाले से क्या मिलेगा? लेकिन कहा था गुरु ने तो चला गया।
सांझ जाकर जब वहां पहुंचा तो सराय का मालिक बरतन साफ कर रहा था। दिन
भर जो लोगों ने किया था, यहां ठहरे और गये थे। उसने बरतन साफ किये। कमरों में बुहारी लगायी। द्वार झाड़ें। वह देखता रहा। फिर उसने कहा, मेरे गुरु ने आपके पास कुछ सीखने को भेजा है।
वह पहरेदार, वह सराय का मालिक कहने लगा, मेरे पास सीखने को क्या है! लेकिन आये हो, तो ठहरो। मैं कुछ सिखा नहीं सकता। तुम खुद सीख सकोगे तो बात दूसरी है। और दुनिया में कोई किसी को कुछ नहीं सिखा सकता। कोई सीख सके, तो बात दूसरी है।
लेकिन उसने कहा, जो आदमी कहता है, मैं कुछ सिखा नहीं सकता, उससे सीखने
को क्या मिलेगा! लेकिन फिर आ गया हूं तो कम से कम रात रुक जाऊं और कम से कम एक दिन तो देख लूं कि यह आदमी क्या करता है।
दूसरे दिन सुबह से फिर वह देखता रहा। वह आदमी दिन भर लोगों की सेवाएं करता रहा। एक मेहमान आया, दूसरा मेहमान गया, तीसरा मेहमान आया। किसी के घोड़े बंधे, किसी के ऊंट ठहरे, किसी की गाड़ी बंधी। वह दिन भर काम करता रहा।
भोजन देता रहा। सांझ फिर बरतन मलता था।
फिर उसने कहा, अब मैं जाऊं? क्योंकि मुझे कुछ सीखने जैसा नहीं दिखायी पड़ता। दिन भर लोग आये, गये, मैंने देखा। तुमने सेवा की, वह मैंने देखा।
तुमने बरतन धोये, तुमने मकान साफ किया, वह मैंने देखा। सब मैंने देख लिया।
सिर्फ मुझे पता नहीं कि आज तुम सुबह उठे, कब उठे, वह मुझे पता नहीं। उस वक्त तुमने क्या किया, वह तो मुझे और बता दो।
उसने कहा, कुछ नहीं किया। रात जिन बरतनों को साफ करके रख दिया था, उन
पर थोड़ी धूल जम गयी थी। रात भर सोये रहा तो सुबह फिर उन्हें साफ किया।
उस आदमी ने कहा, अच्छा पागल है मेरा गुरु! किस आदमी के पास भेज दिया, जहां सीखने को कुछ भी नहीं! जो बरतन साफ करना, मकान साफ करना, लोगों की सेवा करना-- इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता!
वह वापस लौट गया अपने गुरु के पास और कहा, कहां मुझे भेज दिया? वहां मैंने कुछ भी नहीं पाया।
तो उसके गुरु ने कहा, अब तुम कहीं भी कुछ नहीं पा सकोगे। क्योंकि वह पाने वाला चित्त ही तुम्हारे पास नहीं है। मैंने तुम्हें वहां भेजा था, जानकर भेजा था। क्योंकि मुझे वही मिला था। एक रात मैं भी उस सराय में ठहरा था।
मैंने भी उस आदमी को देखा कि एक मेहमान के साथ उसने वही व्यवहार किया,
जो दूसरे मेहमान के साथ! मैंने देखा कि एक आदमी आया, तो जैसे वही आदमी दुनिया में उसके लिए सब कुछ हो गया! जैसे दुनिया मिट गयी, वही आदमी सब कुछ हो गया! वह उसकी इस तरह सेवा करने लगा, जैसे जीवन भर उसी की सेवा करता हो! फिर वह आदमी चला गया तो उसको लौटकर भी रास्ते पर नहीं देखा कि वह आदमी जा चुका है! दूसरा आ गया था, उसकी सेवा करने लगा!
मैंने देखा कि वह आदमी दर्पण की तरह है। उसके चित्त पर कोई तसवीर नहीं बनती। हजारों मेहमान आये और गये; वह सराय है, वहां कोई आता है, जाता है। लेकिन सराय का वह जो मालिक है, वह अदभुत है। वह किसी को पकड़ नहीं लेता। कोई पकड़ता नहीं, कोई जकड़ता नहीं। जब कोई सामने होता है तो ऐसे लगता है, जैसे इसका बड़ा प्रेम है! जीवन भर इसी को पकड़े बैठा रहेगा। जब कोई चला जाता है, तो वह लौटकर भी नहीं देखता! वे जो उसे छोड़कर जाते हैं, वे लौटकर देखते हैं, उस सराय के मालिक को? तूने देखा नहीं, वह दर्पण जैसा आदमी है? तूने उससे कुछ पूछा नहीं?
उसने कहा, मैंने पूछा था कि सुबह उठकर तुमने क्या किया? क्योंकि बाकी
तो सब मैंने देख लिया था। सुबह का मुझे पता नहीं था। सिर्फ इतना ही कहा कि

मैंने रात जो बरतन रख दिये थे साफ करके, उन पर थोड़ी धूल जम गयी थी, उन्हें सुबह फिर साफ कर दिया!
वही फकीर, वह गुरु हंसने लगा। उसने कहा, पागल, उसने ठीक कहा। रात को चित्त पर सपनों की धूल जम जाती है, रात भर सपने चलते हैं। सांझ साफ करके सो जाओ तो सपने चलते हैं। उनकी भी धूल जम जाती है। सुबह उसको भी साफ कर लिया है, यही उसने कहा है।
चित्त एक दर्पण है। और चित्त एक दर्पण हो जाये, तो बस, सब हो गया।
लेकिन चित्त पर तो हम धूल इकट्ठी करते हैं। इस धूल को समझ लेना जरूरी है। क्या प्रयोजन है अतीत की धूल का? बोझ को बांध रखने का क्या अर्थ है? कौन-सी सार्थकता है, उसके साथ बंधे रह जाने में? लेकिन हमें दिखायी ही नहीं पड़ता!
एक मित्र हैं, उनके घर मैं ठहरा था। आज से कोई सात साल पहले किसी युवती
से प्रेम था, उसे विवाह कर लाये थे। उनसे मेरी बात हो रही है। मैंने उनसे अचानक पूछा कि आज तुम्हारी पत्नी कौन-सी साड़ी पहने हुए है, बता सकोगे?
वे कहने लगे, कौन-सी साड़ी पहने है! नहीं, ख्याल नहीं किया! दिन भर पत्नी घर में है, दिन भर उन्होंने देखा है! लेकिन वह कौन-सी साड़ी पहने है, वह ख्याल में नहीं है!
पड़ोस की पत्नी कौन-सी पहने हुए है, यह ख्याल में हो सकता है। अब अपनी पत्नी को देखने की जरूरत नहीं रह गयी। उसको एक बार देख लिया था, वह सात साल पहले! तब से वही तसवीर काम कर रही है! सात साल में वह स्त्री रोज बदलती चली गयी। रोज नयी होती चली गयी, लेकिन फिर उसे नहीं देखा गया! मस्तिष्क जो है, फोटो-प्लेट की तरह काम कर रहा है।
मैंने उनसे पूछा, क्या तुम यह बता सकते हो कि जब तुमने पहली दफा इस लड़की को देखा था, तब यह कौन-सी साड़ी पहने हुई थी।
वे कहने लगे, वह तो तसवीर बिल्कुल जिंदा है। वह मैं बता सकता हूं, उसने क्या-क्या पहन रखा था पहली बार, मैंने जब उसे देखा था। लेकिन वह सात साल पहले की बात है। वह सात साल पहले की तसवीर बिल्कुल जिंदा है! और जब मैंने उन्हें याद दिलाया, तो उनके चेहरे की रोशनी बदल गयी! वे कुछ सोच में पड़ गये और ख्याल में पड़ गये और कहने लगे, उसने ये-ये कपड़े पहन रखे थे! उसकी चप्पल भी बता सकते थे! उसने कान में क्या पहन रखा था, वह भी बता सकते थे! लेकिन आज वह क्या पहने हुए है, उसका उन्हें कोई भी पता नहीं है!
आपको भी पता नहीं होगा, क्योंकि आज तो आपने देखा ही नहीं है। देख लिया
था एक दफे, वह तसवीर बैठ गयी है। वही उसी से रोज काम चला लेते हैं!
और किसी को रोज झंझट होती है। रोज जो झंझट है, वह इस बात की है कि पत्नी
भी बदल गयी, पति भी बदल गया! लेकिन पत्नी तो समझ रही है कि सात साल पहले जो आदमी मिला था, वह वैसा ही होना चाहिए! पत्नी को पति भी समझ रहा है--कि वही सात साल पहले की मांग चल रही है!
रोज कलह है, क्योंकि रोज कोई किसी को नहीं देख रहा है कि बदलाहट हो रही है!
सब कुछ बदल गया, धारा बह गयी। गंगा में बहुत-सा पानी बह गया। मांग जारी है। वह पत्नी यह कह रही है कि पहले दिन तुमने जिस भांति मुझे प्रेम किया था, वह तुम आज क्यों नहीं करते? वह तसवीर जिंदा है और उसी में तौले चल रही है! वह आदमी जा चुका। अभी बिल्कुल दूसरा आदमी है। यह वही आदमी नहीं है। लेकिन दोनों ठहरे हैं अपनी पुरानी स्मृतियों पर! हम सब वहीं ठहरे हुए हैं। बेटा जवान हो जाता है। बाप को कभी पता नहीं चलता कि बेटा जवान हो गया है! वह वहीं ठहरा हुआ है, जब बेटा छोटा था। वह उसके साथ वही बातें किये चले जा रहा है, जो अपने छोटे बेटे से की थी! और उसको मारने को भी तैयार है, जो बेटे की समझ के बाहर है, क्योंकि बेटे को लगता है कि वह जवान हो गया है। बाप को लगता है कि कैसे जवान है, वह बेटा ही है।
चीजें बढ़ गयी हैं, बदल गयी हैं, लेकिन बाप पुरानी तसवीर पर रुका हुआ है! सब पीछे रुका हुआ है। सब चीजें बदल जाती हैं, सब चीजें पीछे रुकी मालूम होती हैं।
मां है। उसका बेटा नयी शादी कर लाया है। उसको पता नहीं है कि लड़का जवान हो गया है, वह किसी स्त्री के प्रेम में गिरेगा! मां अपनी पुरानी ही

मांग जारी किये हुए है! वह समझती है, बेटा जब कभी आयेगा, उसकी गोद में सिर रखेगा! जब भी आये, उसके गले मिले! उसकी समझ के बाहर है कि वह किसी और स्त्री की गोद में सिर रखे। किसी और स्त्री को गले लगाये। यह उसकी समझ के बिल्कुल बाहर है।
इसलिए सास और बहू की नहीं बन पा रही है। मां रुकी हुई है अपने बेटे के साथ, जब वह छोटा था। वह अब भी चाहती है कि वह जो आज्ञा दे, बेटा वही करे। जहां वह कहे, जाओ, वह जाये। जहां वह रोके, वहां रुके! उसे पता नहीं कि बेटा बड़ा हो गया है। गंगा का पानी बहुत बह गया। अब दूसरा आदमी है वहां। वही नहीं, जो उसकी गोद में लेटा था। वही नहीं, जो उसके पेट में रहा था। वह अब भी वही बातें कर रही है कि मैंने तो तुझे नौ महीने पेट में रखा था!
माता से पूछो, वह अब भी कह रही है कि हमने तुम्हें नौ महीने पेट में रखा था। हमने इतने कष्ट सहे और तुम हमारे साथ यह कर रहे हो! उसे पता नहीं कि जिसको उसने पेट में रखा था, वह कोई और था। यह था ही नहीं कभी। यह बिल्कुल नया है। यह बिल्कुल दूसरा है। जिंदगी की धारा, जिंदगी की ज्योति कहीं और ले आयी है। यह वह दीया नहीं है, जो उसने पेट में जलाया था। वह ज्योति निरंतर बदलती चली गयी। बिल्कुल दूसरा आदमी है। लेकिन हम तो नये को नहीं देख पाते, वह पुराना हमारे चित्त को पकड़े हुए है!
दुनिया का एक ही कष्ट है, उसकी एक ही उलझन है--चाहे वह पति की हो, या पत्नी की, या चाहे मां की, चाहे बेटे की, चाहे मित्रों की जिंदगी की एक ही उलझन है कि हम सब पीछे रुक जाते हैं। आगे हम जाते ही नहीं! हम वहां नहीं हैं, जहां हम हैं। हम बहुत पहले कहीं रुक गये हैं। और जहां हम रुक गये हैं-- और जहां हम रुक गये हैं, वहीं कठिनाई शुरू हो गयी है। हमें होना चाहिए वहां, जहां हम हैं। फिर ध्यान में बाधा नहीं होती।
हमें होना चाहिए दर्पण की भांति असंग, चीजें बनें और मिट जायें। असंग
का मतलब, अनासक्ति मत समझ लेना। असंग का अर्थ बहुत अदभुत है।
असंग का अर्थ पूरी तरह जुड़े हुए और फिर भी नहीं जुड़े हुए।
जब किसी को प्रेम करो तो पूरा प्रेम करना, उस क्षण वह रह जाये, जिससे प्रेम किया है। और जितना प्रेम कर सको, पूरा कर लेना, क्योंकि जितना पूरा हो सकेगा, उतना ही मुक्त हो सकोगे। जितना अधूरा रह जायेगा, उतना ही अटका रह जायेगा। उतना ही पीछा करेगा। लौट-लौट कर पीछे की याद आयेगी उसे--और प्रेम कर लेता, और प्रेम कर लेता! और प्रेम कर लेता है। पूरा कर लो, जब प्रेम करो-- प्रेम के क्षण हैं। और फिर पार हो जाना, क्योंकि जिंदगी कहीं नहीं रुकती। सब चीजें पार हो जाती हैं। जब दुबारा वह सामने आ जाये तो फिर प्रेम जग जायेगा, और वह बिदा हो जायेगा। तो मन खाली हो जायेगा और दर्पण बन जायेगा। मन रोज-रोज खाली हो जाये और दर्पण बन जाये तो आदमी ने पा लिया जिंदगी
का राज, पा लिया उसने परमात्मा का राज।
परमात्मा रुका हुआ नहीं है। इसीलिए तो रोज नयी चीजें पैदा कर पाता है। नहीं तो रामचंद्रजी को पैदा करता चला जाये रोज-रोज, कृष्ण भगवान को पैदा करता चला जाये, आपको पैदा ही नहीं करता कभी। क्योंकि आप बिल्कुल नये हैं। वह तो पुरानी तसवीर ही पैदा करे कि देखो एक राम पैदा कर दिया है। जैसे फोर्ड की कारें आती हैं, बस वही कारें रोज निकलती चली जाती हैं! लाख कारें, एक-सी निकल आती हैं!
लेकिन लाख आदमी एक-से नहीं पैदा हो सकते। जो पौधा एक दफा हुआ, फिर दुबारा नहीं होगा। एक जैसे दो पत्ते भी नहीं खोजे जा सकते है। एक जैसे दो पत्थर भी नहीं खोजे जा सकते है। एक जैसे दो आदमी भी नहीं खोजे जा सकते हैं। आप यूं ही नहीं हैं; किसी दिन यह पता चलेगा, मैं अनूठा हूं। कोई मेरे जैसा न कभी था, न होगा। उस दिन कितना अनुग्रह मन को मालूम होगा। मैं अनूठा हूं। इस अंतहीन जगत में अनंत लोग पैदा हुए हैं, लेकिन मैं कभी नहीं। और अनंत-अनंत लोग पैदा होंगे, लेकिन मैं फिर कभी नहीं पैदा होऊंगा।
एक-एक आदमी अनूठा है। आप दोहराये नहीं गये हैं और न ही दोहराये जायेंगे। बस आप बिल्कुल आप हैं।
ईश्वर ने इतना सम्मान दिया है एक-एक आदमी को, जिसका कोई हिसाब नहीं! इस सम्मान के बदले में हम कुछ भी नहीं चुका सकते। कोई उपाय नहीं है इस सम्मान

को चुकाने का। एक-एक आदमी को बनाया है अद्वितीय! एक-एक पत्ते को, एक-एक फूल को बनाया है अद्वितीय! अद्वितीयता छायी हुई है सब तरफ।
लेकिन हम अपने को पुराने करने पर लगे हुए हैं! हम अपने को नया नहीं होने देते! हम कहते हैं, मैं तो वही हूं, जो कल था! हम तो कहते हैं, मैं वही हूं, जो परसों था! हम तो कहते हैं, मैं वहीं हूं, जो सदा था!
हम अपने को पुराना करने में लगे हुए हैं और भगवान नया करने पर लगा है! इसलिए विरोध पैदा हो गया है। इस विरोध से तनाव है, बोझ है, परेशानी है। नहीं, पुराना तो नहीं हुआ जा सकता है, नया ही हुआ जा सकता है।
और फिर क्यों पीछे की तरफ पड़े हुए हैं, क्यों नहीं नये हो जाते क्यों नहीं खुल जाते, उसके लिए, जो है! क्यों नहीं बंद हो जाते हैं, उसके लिए, जो हो चुका है?
जो अतीत के प्रति मरता है, वही वर्तमान में जीता है।
जो अतीत के प्रति नहीं मर सकता, वह वर्तमान में नहीं जी सकता।
अतीत के प्रति मर जाना, ध्यान की अदभुत प्रक्रिया है। कम से कम हम एक प्रयोग करें कि हम मर जायें अतीत के प्रति, भूल जायें उसको जो आप थे, और जानें उसको जो आप हैं। और ये दोनों चीजें बिल्कुल अलग हैं। और जो आप थे, वह आप नहीं हैं। और जो आप हैं, वह आप कभी नहीं थे। अतीत के प्रति प्रतिपल मरते चले जायें, एक-एक क्षण मरते चले जायें। जो बीत गया, बीत गया; जो"है", वह है। और उस"है" में पूरे जागें। उस"है" में पूरे जीयें तो बोझ हट जायेगा। ट्रेन में आप बोझा लादे बैठे हैं और ट्रेन लिए चली जा रही है आपको। अपने सिर पर आप किसलिए रखे हुए हैं? उसे उतार दें, नीचे फेंक दें, इतना बड़ा सब चल रहा है। आप ही क्यों इस फिक्र में पड़े हैं कि मैं इस बोझ को न ले जाऊंगा तो पता नहीं दुनिया का क्या हो जायेगा।
मैंने सुना है, वे जो छिपकली हैं मकान पर, उलटी लटकी रहती हैं। उनको यही ख्याल है कि मकान उन्हीं के सहारे थमा हुआ है! अगर वे हट गयीं तो मकान गिर जायेगा! पूछ लेना किसी छिपकली से, वह यही कहती पायी जाती है कि अगर हम हट गये तो मकान गिर जायेगा।
सुना है मुर्गी को, वे यही समझते हैं कि सुबह हम बांग देते हैं, इसलिए सूरज उगता है!
एक गांव में एक आदमी था। उसके पास एक मुर्गा था। उसी आदमी के पास! गांव
के लोगों से उसका झगड़ा हो गया! उसने कहा, कि मरो, हम अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चले जायेंगे। याद रखना, सूरज कभी नहीं निकलेगा।
वह आदमी अपने मुर्गे को लेकर चला गया दूसरे गांव। तो दूसरे गांव में उसके मुर्गे ने बांग दी। सूरज उगा, उसने कहा, अब सिर पीटते होंगे। सूरज इस गांव में उग आया है। अब रोयेंगे, पछतायेंगे, जो मुझसे झगड़ा करके मुसीबत ली। सूरज उस गांव में उगता है, जहां मेरा मुर्गा बांग देता है!
हम सब भी इसी ख्याल के लोग हैं। सारी दुनिया को उठाये हुए हैं अपने सिर पर! हर आदमी को यही ख्याल रहा है कि अगर मैं नहीं रहा तो न मालूम क्या हो जायेगा। कुछ भी नहीं होता है। कहीं कोई पत्ता भी नहीं हिलेगा। कितने लोग रहे हैं पृथ्वी पर? अब नहीं हैं। क्या हो गया? सबको यही भ्रम रहता है! सभी यह भ्रम पालते हैं, बहुत बोझ लेकर चलते हैं अपने होने का। अपने होने का जो बोझ लेकर चलता है, वह"होने" 6 को नहीं जान सकेगा।"होने" को जानने के लिए निर्बोझ होना जरूरी है। इसलिए पहला बोझ है अतीत का, उसे जाने दें।
दूसरा बोझ है इस बात का, जैसे मैं ही सारी दुनिया को चला रहा हूं! हर आदमी को ख्याल है कि सारी दुनिया को चला रहा हूं! हर आदमी अपने को सेंटर माने हुए है! सारी दुनिया उसी कील पर चल रही है!
कोई भी सेंटर नहीं है। कोई भी केंद्र नहीं है। कोई भी दुनिया को नहीं चला रहा है। दुनिया चल रही है, उसमें हम चल रहे हैं। ट्रेन भाग रही है, उसमें हम बैठे हुए हैं। लेकिन यह ख्याल कि मैं चला रहा हूं, पीछा नहीं छोड़ता!
मैंने एक पुरानी कहानी सुनी है। एक आदमी रोज-रोज भगवान के मंदिर में जाकर प्रार्थना करता था कि मुझे मोक्ष चाहिए, मुक्ति चाहिए! एक दिन भगवान घबरा गया। उस मंदिर के भगवान घबरा गये होंगे, आखिर भगवान भी मंदिर के घबरा

जाते हैं। तो भगवान प्रकट हो गये और उन्होंने कहा, तुझे मुक्ति चाहिए तो अभी ले ले।
उस आदमी ने कहा, अभी, एकदम! अभी कैसे ले सकता हूं, अभी मेरा बच्चा छोटा है। जरा जवान हो जाये, उसकी मैं शादी कर लूं।
भगवान ने कहा, इतने दिनों से तू तुझे परेशान किए हुए है कि मोक्ष चाहिए, मोक्ष चाहिए!
उसने कहा, चाहिए जरूर मुझे, लेकिन ठीक अभी नहीं चाहिए! आगे चाहिए! आप मुझे आश्वासन दे दें। मेरा लड़का बड़ा हो जाये, मैं उसकी शादी कर लूं, क्योंकि मेरे बिना कौन उसकी शादी करेगा।
भगवान वापस चले गये। फिर उस लड़के की शादी हो गयी। वह शादी करके लौटा
था घर और रात अपने कमरे में सोया था, भगवान प्रगट हुए और उन्होंने कहा, अब तेरे लड़के की शादी हो गयी?
उसने कहा, आप भी बड़ी जल्दी मचाये हुए हैं! कम से कम उसका बच्चा हो जाये, मैं थोड़ा उसके बच्चे को खिला लूं। उसका बच्चा होगा तो कौन खिलायेगा? अभी लड़का नासमझ है। बहू नासमझ है। घर में कोई अनुभवी नहीं है। मेरे बिना कैसे बच्चा उसका बड़ा होगा। जरा बच्चा उसका बड़ा हो जाये, मैं बिल्कुल तैयार हूं। भगवान वापस चले गये। निराश नहीं हुए, आशा बांधे रखी। फिर उसके लड़के का लड़का भी हो गया और वह लड़का बड़ा भी हो गया। फिर देखा कि अब तो वह लड़का स्कूल पढ़ने जाने लगा। भगवान फिर आये।
बुड्ढे ने कहा, आप तो मेरे बिल्कुल पीछे ही पड़ गये हैं! अब वह लड़का स्कूल जाने लगा है। पढ़ लिख ले, उसकी शादी कर दूं, शादी हुई कि फिर मैं चलूंगा।
भगवान ने कहा, लेकिन मामला बहुत मुश्किल है। फिर शर्त शुरू हो जायेंगी, उसकी शादी होगी, फिर उसका लड़का होगा।
तो उस बूढ़े ने कहा कि फिर क्षमा करिए, फिर वह मोक्ष रहने दीजिए। मैं ही आऊंगा, आपको आने की जरूरत नहीं है। मैं ही आकर बता दूंगा कि अब मुझे मोक्ष चाहिए।
हम सबको यही ख्याल है कि हम चला रहे हैं! क्यों है यह ख्याल? यह इसलिए
है कि हम चला रहे हैं, इसमें बड़ा मजा आता है। लगता है कि हम कुछ हैं। यह हमारे अहंकार का पोषण है कि हम चला रहे हैं। मैं चला रहा हूं। अहंकार को तृप्ति मिलती है। सच्चाई यह नहीं है कि मैं चला रहा हूं। सच्चाई सिर्फ इतनी है कि मैं चला रहा हूं, इस ख्याल से"मैं" मजबूत होता है! और जितना"मैं" मजबूत होता है, उतना ही ध्यान में प्रवेश असंभव है।
अतः दूसरी बात समझ लेना आवश्यक है कि आप कुछ चला नहीं रहे हैं। एक बड़ी चलती हुई दुनिया के आप सिर्फ एक हिस्से हैं। एक बड़े जगत के, एक बहुत बड़े चलते हुए ब्रह्मांड के, एक बहुत बड़ी गति के, आप सिर्फ एक हिस्से हैं।
अगर यह हाथ मेरा जानता हो, तो यह हाथ समझता होगा कि मैं हूं सब। जरूर समझता होगा, लेकिन इसे पता नहीं है कि यह एक बड़े शरीर का हिस्सा है। यह हाथ अगर जानता होगा तो सोचता होगा कि मैं उठा। ये आंखें अगर जानती होंगी तो सोचती होंगी कि हम देख रही हैं। लेकिन आंखों को पता नहीं कि आंखें नहीं देख रही हैं। ये एक बड़े शरीर का हिस्सा हैं। अगर पेट को पता होगा, तो वह सोचता होगा कि मैं भूख बना रहा हूं, भोजन पचा रहा हूं। लेकिन पेट कुछ भी नहीं पचा रहा है। वह एक बड़े शरीर का हिस्सा है।
यह जिंदगी इकट्ठी है। यह सारा जगत इकट्ठा है। इस इकट्ठे में हम टुकड़े
की तरह काम कर रहे हैं। लेकिन हमको यही ख्याल कि हम कर रहे है! इससे मुसीबत हो रही है। सब हो रहा है, हम उसके एक हिस्से हैं। अगर सूरज--दस करोड़ मील दूर है, वह ठंडा हो जाये तो हम यूं ही ठंडे हो जायेंगे, इसी वक्त। हमें पता ही नहीं चलेगा कि सूरज कब ठंडा हो गया है। क्योंकि पता होने के लिए तो हमें होना चाहिए। सूरज ठंडा हुआ कि हम ठंडे हुए। तब हमें पता चलेगा कि सूरज भी चला रहा था। वह सूरज चला रहा था, उसके साथ हम चल रहे थे। हमारे हृदय की धड़कन उस सूरज की धड़कन से जुड़ी थी। और कौन जाने कोई दूर का सूरज बड़े सूरज को चलाता हो।
सब जुड़ा हुआ है। उस सब जुड़े में यह ख्याल पैदा हो जाना कि मैं कर रहा हूं, मैं चला रहा हूं, बोझ लेना है। व्यर्थ बोझ लेना है। चलती गाड़ी में

क्यों अपना पेटी और बिस्तर सिर पर रखकर बैठ गये? जिंदगी चल रही है और हम भी उसमें चल रहे हैं। हम चला नहीं रहे हैं। वह है गति। उस गति के सिर्फ हम एक अणु मात्र हैं। ऐसी जो भाव दशा हो, उस भाव दशा में समर्पण हो जाता है। और समर्पण किया नहीं जाता। बस, यह समझ पैदा हो जाये, तो सरेंडर हो जाता है। समर्पण ही ध्यान है।
कुछ लोग कहते हैं कि मैं जाकर भगवान को समर्पण कर दूंगा। लेकिन भाषा समर्पण कभी नहीं कर सकती, क्योंकि अगर आपने कहा, कि मैं समर्पण कर दूंगा तो आपने समर्पण को भी एक कृत्य बना लिया है। कृत्य कभी समर्पण नहीं होता। वह चाहे तो कल कह दे, अच्छा वापस ले लिया। समर्पण कभी वापस लिया नहीं जा सकता। समर्पण हो जाता है। समझ का परिणाम है।
अगर हम समझें जीवन की व्यवस्था को तो समर्पण हो जायेगा। वह हमें करना नहीं पड़ेगा। और वह हो जाये तो ध्यान शुरू हो जायेगा।
ये दो तीन बातें कहीं। एक तो अतीत के बोझ को समझें। उसे व्यर्थ न उठाएं। दूसरा मैं कह रहा हूं, वहर कत्ता का बोझ, उसे समझें। चीजें हो रही हैं, हम कर नहीं रहे हैं।
और चीजों का कितना विराट जाल है होने का। उसके ओर-छोर का भी हमें कोई पता नहीं! पता हो भी नहीं सकता, कभी। उस सब होने की विराट व्यवस्था में अपने को छोड़ दें, भूल जायें करना, भूल जायें कर्तव्य, भूल जायेंर कत्ता, रह जाये वही, जो है।
और बस सब कुछ हो जायेगा। वह हो जाना, हमें"वहां" पहुंचा देता है, जहां
हम हैं। जहां से हम कभी नहीं हटे, जहां से हम कभी डिगे नहीं, जहां से हम कहीं गये नहीं। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए"करने की","होने की", सारी बोझ-स्थिति से मुक्त हो जाना जरूरी है।

नेति-नेति
चौदहवां प्रवचन

विपरीत ध्रवों का समन्वय संगीत

एक मित्र ने पूछा है कि यदि मेरे कहे अनुसार प्रत्येक व्यक्ति निष्क्रिय ध्यान में चला जाये तो दुनिया का काम और क्रियाएं बंद हो जायेंगी और तब बहुत असुविधा होगी?
इस संबंध में पहली तो बात यह समझ लेनी जरूरी है कि क्रिया उतनी ही सफल
और कुशल होती है, जितना व्यक्ति क्रिया में होता है। अक्रिया में जाने से क्रिया बंद नहीं होती, सिर्फर कत्ता मिट जाता है, सिर्फ यह भाव मिट जाता है कि मैं करने वाला हूं। और इस भाव के मिटने से दुनिया में असुविधा न होगी, बहुत सुविधा होगी। इसी भाव के कारण दुनिया में बहुत असुविधा है। प्रत्येक को ख्याल है कि मैं कर रहा हूं! करते हम बहुत कम रहे हैं, र कत्ता बहुत बड़ा खड़ा कर लेते हैं! उन कर्ताओं में, उनके अहंकार में संघर्ष होता है। दुनिया में जितनी असुविधा है, वह अहंकारों के संघर्ष से पैदा होती है।
दूसरी बात, जितनी ही भीतर शांति होगी, निष्क्रिय चित्त होगा, मौन आत्मा होगी, उतनी ही वह मौन आत्मा शक्ति का स्रात बन जाती है।
जितनी बेचैन, अहंकारग्रस्त, द्वंद्व में ग्रस्त, तनाव, अशांति से भरी आत्मा होगी, उतनी ही शक्तिहीन हो जाती है।
हम शक्ति के पुंज नहीं हैं, क्योंकि हमारे द्वंद्व में, मन की चिंता में, अहंकार में, हमारी सारी शक्ति व्यय हो जाती है। अगर कोई व्यक्ति भीतर बिल्कुल निष्क्रिय और शांत हो जाये तो शक्ति का जलता हुआ अंगारा बन जायेगा, शक्ति का पुंज होगा। इतनी शक्ति होगी उसके पास कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और चूंकि उसकेर कत्ता का अहंकार मर चुका होगा, इसलिए परमात्मा की सारी शक्ति उसकी शक्ति हो जायेगी। अब परमात्मा की या विश्व की सारी शक्ति उससे जुड़ गयी है। इस शक्ति के साथ और समग्ररूपेण समर्पित वह व्यक्ति परमात्मा के हाथ में क्रिया का स्रात बन जायेगा।
लेकिन तब उसको ऐसा नहीं लगेगा कि मैं कर रहा हूं, तब ऐसा ही लगेगा कि परमात्मा कर रहा है। ऐसा लगेगा कि हो रहा है, मैं कर नहीं रहा हूं। बैलगाड़ी को चलते हुए देखा है हमने। चाक चलता है बैलगाड़ी का, लेकिन बीच में एक कील होती है, जो चलती नहीं है। उस खड़ी हुई कील पर चलता हुआ चाक घूमता है। वह कील खड़ी है, इसलिए चाक घूम पाता है। अगर वह कील घूम जाये तो चाक गिर जाता है। वह चाक उतनी कुशलता से घूमता है, जितनी दृढ़ता से कील खड़ी हो। ये दोनों उलटी बातें मालूम पड़ती हैं--खड़ी हुई कील, घूमता हुआ चाक!
जितना मनुष्य भीतर निष्क्रिय होता है, उतना ही उसके जीवन की सक्रियता
का चाक कुशलता से घूमने लगता है। भीतर आत्मा की कील खड़ी होती है और व्यक्तित्व की क्रिया का चाक घूमता है। कील जानती है, चाक घूम रहा है, मैं खड़ी हूं।
ध्यानस्थ व्यक्ति जानता है, मैं ठहरा हुआ हूं। वह जो अंतरतम है, वह रुका हुआ है, वह नहीं चल रहा है, चलने का सारा प्रवाह बाहर है--चाक है, परिधि है। वह जो केंद्र है, वह मौन और चुप है।
जीवन में सबसे बड़ी कला यही है कि भीतर निष्क्रियता हो और बाहर सक्रियता हो। और जीवन का सबसे बड़ा सारसूत्र है कि जीवन विरोधी चीजों से निर्मित हो।
एक श्वास भीतर जाती है, तत्क्षण दूसरी श्वास बाहर जाती है। श्वास बाहर गयी नहीं कि फिर भीतर चली गयी है। हम कभी नहीं कहते कि बाहर श्वास चली गयी, हम भीतर क्यों ले जायें। जब बाहर निकल ही गयी तो निकल गयी, बार-बार भीतर ले जाने की क्या जरूरत है। लेकिन श्वास बाहर जाती है और भीतर जाती है और इन दो विरोधी आयामों में हमारा जीवन बाहर और भीतर चलता रहता है। दिन-भर हम जागते हैं, रात हम सो जाते हैं। हम नहीं कहते कि अगर हम सो गये तो सोना तो जागने से बिल्कुल उलटा है, तो फिर हम जागेंगे कैसे? हम यह

भी नहीं कहते कि हम जाग गये तो हम सोयेंगे कैसे, जागना तो सोने से बिल्कुल उलटा है।
जागना क्रिया है, सोना अक्रिया है।
लेकिन मजे की बात है, अगर रात भर ठीक से न सो पाये तो दूसरे दिन ठीक से जाग न पायेंगे। ठीक से जो सोता है, वह ठीक से जागता है। इसका मतलब हुआ, जो ठीक से निष्क्रिय हो जाता है रात में, दूसरे दिन सुबह उठते ही सक्रिय हो जाता है। और जो जितना सक्रिय होता है दिन में, उतनी गहरी निष्क्रियता में वह रात को चला जाता है।
जीवन विरोधों पर खड़ा है, जीवन का सारा खेल विरोध पर है। दो विरोधों के मिलन पर जीवन की सारी गति है।
जब यह कह रहा हूं कि ध्यान की निष्क्रियता में चले जायें तो उसका अर्थ
यह नहीं है कि आप मर जायेंगे, कि आपकी क्रिया खो जायेगी। नहीं, र कत्ता का अहंकार खो जायेगा। और जितनी गहरे ध्यान में जायेंगे, उतनी ही गहरी क्रिया बाहर हो जायेगी। जितनी गहरी श्वास भीतर ले जायेंगे, उतनी ही गहरी श्वास बाहर जायेगी। भीतर की गहराई और बाहर की गहराई, हमेशा अनुपात में बराबर होती है। जो जितनी निष्क्रियता में जा सकता है, वह उतना ही सक्रिय हो सकता है।
वृक्ष हम देखते हैं। ये वृक्ष जितने ऊपर दिखायी पड़ते हैं, उतनी ही गहरी इसकी जड़ें गयी हुई हैं। जो वृक्ष आकाश की तरफ जितना ऊंचा गया है, उतना ही पाताल की तरफ उसे नीचे भी जाना पड़ा। आप कहेंगे, नीचे! नीचे और ऊंचे तो उलटे ही आयाम हैं! अगर नीचे चले जायें तो फिर ऊपर कैसे आयेंगे? वृक्ष अगर कहे कि अगर मैं जड़ें नीचे ले जाऊंगा तो ऊपर कैसे आऊंगा? मुझे तो ऊपर जाना है तो मैं नीचे नहीं जाता हूं। तो फिर याद रखना, वह वृक्ष कभी ऊपर नहीं जा सकेगा। जितना वृक्ष नीचे जाता है, उतना ही ऊपर जा सकता है। जिस वृक्ष को आकाश छूना हो, उस वृक्ष को पाताल भी छूना पड़ता है।
जितना सक्रिय होना है, उतना ही निष्क्रिय होना जरूरी है। एक ही फर्क पड़ेगा, र कत्ता खो जायेगा। जितनी निष्क्रियता बढ़ेगी, जितना ध्यान बढ़ेगा, जितना मौन बढ़ेगा, उतना हीर कत्ता मिट जायेगा। क्रिया तो रहेगी, र कत्ता नहीं रहेगा।
और अगरर कत्ता नहीं रहेगा तो यह कहने का कारण न होगा कि मैं कर रहा हूं। तब ऐसा ही लगेगा कि हो रहा है। जैसे पानी गिरता है, बिजली चमकती है, नदी बहती है, ऐसा ही सब हो रहा है, ऐसा प्रतीत होगा। ऐसी प्रतीति जिस व्यक्ति को हो जाती है, जानना कि वह व्यक्ति परमात्मा को समर्पित हो चुका है।
परमात्मा को समर्पण का इतना ही अर्थ है कि अपना कर्तापन खो गया। अब जो विराट क्रिया का जगत है, जो विराट सृजन चल रहा है, जो विराट गति चल रही है, उस गति के हम एक भाव और अंश हो गये हैं, उससे हम पृथक नहीं हैं।
इसलिए यह मत सोचें कि अगर मेरी बात मानकर सब निष्क्रिय हो जायें तो क्या होगा। अगर मेरी बात मानकर कोई निष्क्रिय हो जाये तो जगत में इतनी क्रिया का जन्म होगा कि जिसका हमने अब तक अनुभव नहीं किया। भीतर जब मौन डगमगा जाता है तो क्रिया में कुशलता नहीं होती, क्रिया अकुशल हो जाती है। एक खलीफा था उमर। कुछ वर्षों से दुश्मन से युद्ध में लगा हुआ था। सात वर्ष हो गए थे, अनेक लड़ाइयां हुई उनकी। कोई जीत न हो सकी, कोई निर्णय न हो सका था। न उमर जीतता था, न दुश्मन जीतता था। आखिरी लड़ाई चल रही थी और ऐसा लगता था कि कुछ निर्णायक फैसला हो जायेगा। भरी दोपहरी है, उमर का दांव सफल हो गया है। दुश्मन का घोड़ा गिर गया और वह जमीन पर गिर पड़ा। उमर ने छलांग लगायी अपने घोड़े से और उसकी छाती पर सवार हो गया। निकाला भाला, उसकी छाती में छेदने को है कि उस नीचे पड़े दुश्मन ने--मरता आदमी अंतिम कुछ भी कर सकता है--उमर के मुंह पर थूक दिया!
एक क्षण जो उमर का भाला उठा था छाती में जाने को, ठहर गया! उसके थूकते
ही ठहर गया! फिर वापस भाला उसने अपने स्थान पर रख दिया! उठकर खड़ा हो गया और दुश्मन को कहा कि उठ आइए, फिर सुबह कल लड़ेंगे!

उसके दुश्मन ने कहा, पागल हो गये हो! सात बरसों से इसी की खोज में तुम थे, ऐसे अवसर की। और इसी अवसर की खोज में मैं था। आज तुम्हें मौका मिला है, आज तुम छोड़ते हो मुझे! भाले को घुस जाने दो। क्या कारण हो गया छोड़ने का? उमर ने कहा, छोड़ता हूं, क्योंकि एक संकल्प था, एक भाव था, एक योजना थी,
कि जब तक शांत हूं, तभी तक लडूंगा। अशांत हो गया कि फिर नहीं लडूंगा। तुमने थूक दिया और मैं अशांत हो गया। भीतर डगमगा गया और मन हुआ कि भौंक दूं, लेकिन मुझे लगा कि अब लड़ाई व्यक्तिगत हो गयी। अब"मैं" आ गया। अबर कत्ता आ गया। अब तक उसूलों की लड़ाई थी, अब तक लड़ते थे सत्य के लिए। लड़ते थे, जो ठीक था उसके लिए। अब तक मैं नहीं लड़ रहा था। अब तक एक विराट योजना का मैं एक अंग था। लेकिन तुमने थूका और"मैं" मौजूद हो गया, वह बात खत्म हो गयी! अब नहीं लड़ सकता हूं। कल सुबह फिर!
क्या मतलब हुआ इसका? फिर ऐसे आदमी से कोई लड़ता है? वह दुश्मन तो मित्र
हो गया। पैरों पर गिर गया। उसने कहा, मुझे पता भी नहीं कि तुम सात बरसों से शांति से लड़ते थे! तुम्हारे भीतर क्रोध न था, वैमनस्य नहीं था, र ईष्या नहीं थी!
यह हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि ऐसा आदमी भी लड़ सकता है। यह हम सोच ही नहीं सकते हैं कि ऐसा आदमी भी सक्रिय हो सकता है, जो निष्क्रिय हो। हमारे सोचने-समझने के ढंग बहुत गणित की लकीर पर चलते हैं! और जिंदगी गणित की लकीर पर नहीं चलती। वहां एकदम सीधा-सीधा कुछ भी नहीं होता। वहां बड़ी उलटी चीजें होती हैं।
असल में जिंदगी की पूरी क्रिया, जिंदगी का पूरा रसायन एक विरोध पर खड़ा है। देखा होगा कि बड़े भवन पर मेहराब बना होता है। वह मेहराब कैसे संभला होता है, कभी ख्याल किया है? दोनों तरफ की विरोधी ईंटें दबाव डालती हैं एक-दूसरे पर और मेहराब संभला रह जाता है! उस मेहराब को कोई नीचे से खंभा नहीं लगा हुआ है, लेकिन दोनों तरफ नीचे से आने वाली ईंटें दबाव डाल रही हैं। दोनों में विरोध पैदा किया है। और उस विरोध पर पूरे भवन को खड़ा किया हुआ है!
जिंदगी का पूरा भवन विरोध पर खड़ा है। नींद है, जागरण है; रात है, दिन है; क्रिया है, अक्रिया है; जन्म है, मृत्यु है। वह जन्म और मृत्यु ही जीवन के मेहराब के दो विरोधी छोर हैं, जिनके दबाव से जिंदगी खड़ी है। उधर जन्म है, उधर मौत है। दोनों उलटी चीजें हैं। हम कभी नहीं पूछते कि जो जन्मता है, वह मर कैसे जाता है! जन्म और मृत्यु तो दो विपरीत अवस्थायें हैं। लेकिन हम कहते हैं कि जो जन्मता है, वह मरेगा ही! क्योंकि जन्म एक छोर है तो उससे उलटा छोर भी होना चाहिए, अन्यथा यह मेहराब न बनेगी जिंदगी की
उजाला अंधेरे पर खड़ा है! अंधेरा न हो तो उजाला नहीं होगा। और रात दिन
पर खड़ी है। दिन न हो तो रात न होगी। स्वास्थ्य बीमारी पर खड़ा है। सारी चीजें बहुत उलटी चीजों पर खड़ी हैं। सारी जिंदगी उलटे दबाव से बना हुआ मेहराब है। और इसलिए मैं कहता हूं कि जो निष्क्रिय को जाता है भीतर--वह बाहर बड़ी सक्रियता को उपलब्ध हो जाता है।
लेकिन हमने ऐसे संन्यासी देखे हैं, जो निष्क्रिय हो गये और जिंदगी से भाग गये!
मेरा कहना है, ध्यान रखना, वे निष्क्रिय नहीं हुए। उन्होंने निष्क्रियता को भी ओढ़ा है। वे अगर निष्क्रिय हो गये तो फिर क्रिया से भाग नहीं जाते। क्रिया से सिर्फ वे ही भागते हैं, जो क्रिया से अधिक डरते हैं। क्रिया से वे ही भागते हैं, जिनकी निष्क्रियता झूठी है। जिनकी निष्क्रियता सच्ची है, उन्हें क्रिया का भय खत्म हो जाता है। क्रिया का तूफान चलता रहेगा और उनके भीतर कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। लेकिन जो डरते हैं कि क्रिया चली और उनकी निष्क्रियता टूटी, उनकी निष्क्रियता थोथी है, थोपी गयी है, कल्टीवेटेड है। और इस तरह के संन्यासियों ने दुनिया में एक गलत धारणा पैदा कर दी कि जो लोग शांत हो जाते हैं, वे जिंदगी से भाग जाते हैं!
ध्यान रहे, शांत आदमी कहीं नहीं भागता, सिर्फ अशांत भागते हैं।
अशांत डरते हैं, इसलिए भागते हैं। शांत आदमी को भागने का कारण नहीं रह जाता। शांत जहां भी खड़ा होगा, वहीं खड़ा रहेगा, क्योंकि शांत को कोई कारण

नहीं है, जो अशांत कर सके। अब अशांति के तूफान चलते रहें, बवंडर बाहर और भीतर की शांति अपनी जगह खड़ी रहेगी।
बल्कि शांत आदमी ऐसे बवंडरों को आमंत्रण दे देगा, ऐसे बवंडरों को बुलायेगा, बुलावा दे आयेगा कि आना, क्योंकि जब भीतर शांति है और बाहर तूफान चलते हों तो इन दोनों के विरोध में जो पुलक, जो अनुभूति उपलब्ध होती है, वह और किसी क्षण में उपलब्ध नहीं होती। इन दोनों के विरोध के बीच में जैसे अंधेरी रात में बिजली चमक जाये तो वह चमक भरे दिन में चमकी हुई बिजली की चमक बहुत भिन्न है। ठीक वैसे ही शांत चित्त हो जाये और बाहर की अशांति चारों तरफ हो तो कोई अंतर नहीं पड़ता। बल्कि उस अशांति के बीच वह शांति घनी और गहरी हो जाती है।
एक दूसरे मित्र ने भी इसी संबंध में पूछा है। पूछा है, ध्यान में गहरे
हो गये, शांत हो गये तो घर गृहस्थी, परिवार, दुकान इन सबका क्या होगा?
उन सबका अभी क्या हाल है? घर गृहस्थी का, पत्नी का, बच्चों का, दुकान
के धंधा--का अभी क्या हाल है? क्या अभी कोई बहुत अच्छी हालत है? इससे भी बुरी हालत हो सकती है। लेकिन हम बड़े भयभीत होते हैं। इस नर्क को जो हमने पैदा कर लिया है, कोई उसको परिवार कहता है, कोई उसको धंधा कहता है! कोई कुछ और कहता है, इस पूरे नर्क को! यह कहीं नर्क ही न मिल जाये, इससे बड़ी घबराहट होती है।
धंधा नहीं मिटेगा। न पत्नी मिटेगी, न परिवार मिटेगा। न बेटे और बेटी मिट जायेंगी। लेकिन जो नर्क हमने खड़ा किया है यह जरूरत क्या है?
लेकिन नये रूप प्रगट होते हैं। किसी स्त्री को प्रेम करना एक बात है
और पत्नी बनाकर घर में बांध लेना बिल्कुल दूसरी बात है। घर में बांधने की चेष्टा ही इसलिए चलती है कि प्रेम नहीं है। प्रेम हो तो घर में बांधने की चेष्टा नहीं चल सकती। वह डर है कि अगर नहीं बांधा तो और तो कोई भीतरी उपाय नहीं है कि जो होने वाला है तो बाहर से उपाय करने पड़ते हैं। समाज के सामने सात चक्कर लगाने पड़ते हैं और कानूनन अदालत में जाकर रजिस्ट्री करवानी पड़ती है। क्योंकि भीतर को जोड़ने वाला कुछ भी नहीं है तो बाहर के जोड़ उत्पन्न करने पड़ते हैं, फिर उनके सहारे जीना पड़ता है।
जिस दिन दुनिया में प्रेम होगा, उस दिन पति भी नहीं होगा, पत्नी भी नहीं होगी। पति और पत्नी प्रेम के न होने के कारण हैं।
प्रेम हो तो पति बड़े बेहूदे शब्द हैं, यह बरदाश्त योग्य नहीं है। इनसे कोई दुनिया अच्छी नहीं हो गयी है, बहुत गंदी हो गयी है। मित्र होंगे--पति- पत्नि की क्या जरूरत? मित्र होंगे, साथ रहने वाले सहयोगी होंगे, साथी होंगे--कानून की क्या जरूरत है? अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो बीच में कानून की क्या जरूरत है? कानून की जरूरत बताती है कि प्रेम संदिग्ध है। कानून के सहारे उसको रोकने की कोशिश की जाती है। प्रेम का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए कानून का सहारा लेना पड़ता है। जहां प्रेम संदिग्ध नहीं है, वहां कानून की क्या जरूरत है?
हम बड़े डरते हैं। वह डर ठीक है एक अर्थ में, क्योंकि शांत हो जायेंगे
तो बड़ी घबराहट लगती है कि सब जो नर्क का जाल हमने बुना है, वह टूट जायेगा। अभी जो धंधा कर रहे हैं, दुकान कर रहे हैं, नौकरी कर रहे हैं, वह सब बोझ है। एक आदमी को जिंदगी भर चालीस साल तक रोज एक दफ्तर में सुबह से सांझ तक जबरदस्ती बैठे रहना पड़ता है। अगर उसका दिमाग पत्थर हो जाता हो तो कोई आश्चर्य है? एक काम, जो उसका मन नहीं करने का चालीस साल तक एक आदमी लगातार एक काम को करता है, जो करने का उसका एक क्षण को मन नहीं है! लेकिन करता है, करना पड़ता है!
चालीस साल तक अगर किसी मस्तिष्क पर इस तरह की नासमझी और ज्यादती गुजरे, तो वह आदमी मरने के बहुत पहले ही मर चुका होगा। उसके मस्तिष्क के कोमल तंतु टूट चुके होंगे। उसके हृदय ने बहुत पहले पंखुडिय़ां बंद कर ली होंगी। उसके प्राण बहुत पहले मशीन हो गये होंगे। वह मशीन की तरह दफ्तर आता है, जाता है--वह यह कर रहा है चालीस साल से! जैसे कि एक पटरी पर रेलगाड़ी दौड़ती रहती है, वैसे ही बेचारा दफ्तर से घर, घर से दफ्तर दौड़ता रहता है! यह शंटिंग उसकी होती रहती है, और इसको वह कहता है कि धंधा कर रहे हैं! कहीं शांत हो गये तो यह चला न जाये।

शांत होने से जिंदगी की जरूरत दूसरी होगी। जरूर काम नहीं रह जायेगा, आनंद हो जायेगा। और जब काम आनंद हो जाता है तो जिंदगी में और तरह के फूल खिलने शुरू होते हैं। लेकिन हम तो जानते नहीं किसी काम को, जो आनंद हो! हम तो सब काम जानते हैं! हम काम ही जानते हैं। काम और आनंद में कोई संबंध नहीं है। आनंद बात ही अलग है, काम बात ही अलग है।
अभी यहां हमने जो दुनिया बनायी है, उसमें काम का आनंद से कोई संबंध नहीं! यह आदमी बरबाद होता चला गया है। आदमी की सारी की सारी आत्मा विघटित हुई है, पतित हुई है; पतित हो रही है, होती चली जायेगी। धीरे-धीरे हम एक मशीन पर आदमी को पहुंचाते हैं।
नहीं, अगर चित्त शांत होगा तो काम बोझ नहीं रह जायेगा, काम आनंद हो जायेगा। कबीर कपड़े बुनता है। फिर शांत हो गया है तो कपड़े बुनना बंद नहीं हो गया है, कपड़े बुनना जारी रहा। लेकिन कपड़े की बुनावट बदल गयी है, कपड़े के बुनने का ढंग बदल गया है। कपड़े को बुनने वाला आदमी बदल गया है, कपड़े को बुनने की वृत्ति बदल गयी है, कपड़े के बुनने के संबंध का भाव बदल गया है। और कबीर बुनता भी है, नाचता भी है, गीत भी गाता है! उसके मित्रों ने कहा, अब तुम बंद कर दो, अब अच्छा नहीं लगता कि तुम जुलाहे का काम करो।
कबीर ने कहा, अब जब मैं काम करने योग्य हुआ हूं, तब तुम कहते हो बंद कर दो! अब तक तो काम किया ही नहीं था, सिर्फ बोझ ढोया था, अब आनंद हो गया है काम। अब यह जो बुन रहा हूं, यह तुम्हें पता नहीं, किसके लिए बुन रहा हूं। यह राम के लिए बुन रहा हूं!
लेकिन लोगों ने कहा, राम आयेंगे कहां बाजार में, उनको बहुत वक्त हो गया!
कबीर ने कहा, अब राम के सिवाय कोई दिखायी नहीं पड़ता! अब तो जो भी आ जायेगा, वह राम है! और जो भी मेरे कपड़े पहन लेगा, मैं धन्यभागी हुआ। और भगवान की सेवा कैसे करूं?
तो कबीर बुनता है कपड़ा और भागता है बाजार की तरफ! और लोग पूछते हैं कि कहां जा रहे हो? तो वह कहता है कि राम की तलाश में जा रहा हूं। कपड़ा बना लिया, बहुत बढिय़ा बनाया है, राम पहनेंगे तो खुश होंगे। और वह बाजार में चिल्लाता है कि राम, कपड़े ले आया हूं, कोई राम को जरूरत हो तो ले जाये, बहुत अच्छा बनाया है।
अब यह बात और हो गयी, अब यह काम और हो गया। अब इस काम को और उस काम को, जिसे हम करते रहे, कोई संबंध नहीं है।
काम नहीं रुक जायेगा आदमी के शांत होने से--काम रूपांतरित होगा।
काम एक आनंद हो जायेगा, जोकि अभी काम एक नर्क है। अभी काम से किस तरह छूट जायें, इसी की चिंता में हम रहते हैं! काम से किस तरह हम बच जायें, इसी की चिंता में रहते हैं! और इसी काम के लिए बड़ी घबराहट भी रहती है। कहीं यह काम-धाम सब बंद न हो जाये? वह घबराहट क्यों है?
वह इसीलिए है कि काम-धाम हम बंद करना चाहते हैं। वह बंद करने योग्य है। लेकिन मजबूरी है। रोटी चाहिए, कपड़े चाहिए--पत्नी है, बच्चे हैं। यह भी सभी मजबूरियां हैं। उनको भी खिलाना है, उनके लिए भी मकान बनाना है। सब मजबूरियां हैं। पूरी जिंदगी मजबूरी है। वह एक पुलक नहीं, एक नृत्य नहीं। जरूर शांत आदमी की जिंदगी और ढंग की होगी। वह भी जीयेगा यहीं, लेकिन दूसरा आदमी हो जायेगा। वह भी काम करेगा, लेकिन उस काम करने में सब कुछ बदल जाएगा। वह काम भी उसका प्रेम हो जायेगा। वह काम भी उसकी सेवा बन जायेगी। वह काम भी उसकी पूजा और प्रार्थना हो जायेगा।
मुझे ऐसा नहीं लगता कि शांत आदमी दुनिया में बढ़ेंगे तो दुकानें कम हो जायेंगी, शांत आदमी बढ़ेंगे तो दुकानें नहीं रह जायेंगी। एक बात जरूर है, दुकानें तो कम नहीं होंगी, लेकिन शांत आदमी बढ़ जायें तो मंदिर, मस्जिद, गुरु, संन्यासी, साधु, ये कम हो जायेंगे। क्योंकि इनके पास अशांत आदमी जाते हैं। नहीं तो इनके पास शांत आदमी किसलिए जायेगा। गुरुओं की दुकान बंद हो जायेगी। और कोई दुकान बंद होने के कारण नहीं है। मंदिर-मस्जिद जरूर बंद हो जायेंगे। उनमें कोई नहीं जायेगा। क्योंकि जब पूरी तरह जिंदगी मंदिर मालूम पड़ने लगे तो कौन मंदिरों में जायेगा। वह तो पूरी जिंदगी नर्क मालूम पड़ती है तो वहां लोग मंदिर बनाते हैं।

वह गांव में मंदिर इस बात का सबूत है कि पूरा गांव मंदिर नहीं बन पाया। हम ऐसा समाज निर्मित नहीं कर पाये, जहां पूरा गांव मंदिर होता। वह अपने मन को समझाने के लिए मंदिर बनाया हुआ है। गांव पूरा नर्क है। नर्क में मंदिर बन सकता है? और नर्क में रहने वाले मंदिर बना सकते हैं? और नर्क में रहने वाले दान करके मंदिर खड़ा कर सकते हैं?
आखिर नर्क के रहने वाले जो बनायेंगे, वह नर्क ही होगा। इसीलिए हमारे मंदिर-मस्जिद भी तो नर्क के स्थान हैं। हमारे तीर्थ सब नर्क के स्थान हैं। हम बनाते हैं, और हम जो भी बनाते हैं, वह नर्क हो जाता है! हम जो भी छूते हैं, वह नर्क हो जाता है! जब हम अपने घर को भी स्वर्ग नहीं बना पाये, जब हम अपने बच्चे और पत्नी के संबंध को भी स्वर्ग नहीं बना पाये, तो हम इन सब नर्क बनाने वाले लोग मिलकर एक मंदिर बना लेंगे गांव में? वह बनायेगा कौन? हम ही बनायेंगे न? हमारी काली छाया उसको भी घेर लेगी।
नहीं, एक दिन ऐसा हो सकता है कि लोग शांत होते चले जायें तो पूरा गांव मंदिर हो जाये। और जब कोई पूछे उस गांव में आकर कि मंदिर कहां है, तो हमें हैरानी हो जायेगी कि कहां बतायें, क्योंकि पूरा गांव ही मंदिर है।
पूरा गांव मंदिर हो सकता है, इसलिए मैं मंदिरों के खिलाफ हूं।
लेकिन हमें ऐसी बातें समझायी गयी हैं कि जो आदमी शांत हो जायेगा--धंधा छोड़ देगा, पत्नी छोड़ देगा, भाग जायेगा। और भागकर क्या करेगा फिर? फिर एक आश्रम बनायेगा, फिर शिष्य इकट्ठे करेगा, बेटे-बेटियां जोड़ेगा, फिर एक नयी दुकान और एक नया घर बनायेगा! यह सब चल रहा है।
आखिर भागकर जायेगा कहां यह आदमी? जिस तरह का आदमी है, यह करेगा क्या?
एक दुकान छोड़ेगा, दूसरी दुकान बनायेगा। यह आदमी बनायेगा नहीं तो फिर जायेगा कहां? जंगल में जायेगा और वहां भी दुकान करेगा!
और हमने स्थान बदलने की चेष्टा की है आज तक! मनुष्य-जाति के इतिहास में हमने स्थान और परिस्थिति बदलने की फिक्र की है! आदमी नहीं बदलता। वह आदमी फिर जाकर दूसरी जगह, फिर वही स्थिति बना लेता है!
मैंने सुना है कि एक आदमी ने अपने जीवन में, अमेरिका में आठ विवाह किये। पहला विवाह करने के छह महीने बाद वह घबरा गया। छह महीने भी लंबा कहते हैं, छह दिन में भी घबराहट शुरू हो सकती है! छह महीने में वह घबरा गया और परेशान हो गया और उसने कहा, यह कहां से गलत औरत मिल गई! औरत ने सोचा होगा, कहां का गलत आदमी मिल गया!
फिर उसने तलाक दे दिया। फिर उसने दूसरी बार बहुत खोजबीन कर विवाह किया, बहुत जांच-पड़ताल की। अब वह पहली ही दृष्टि में प्रेम में नहीं पड़ गया। पहली दफा भूल हो चुकी थी। बहुत अनुभवी था, बहुत सोच-विचार करके खोजबीन करके उसने विवाह किया।
लेकिन दो महीने बाद पाया कि यह औरत भी वैसी ही औरत साबित हुई, जैसी पहली थी! बहुत परेशान हुआ, उसको भी तलाक दिया!
उसने आठ बार विवाह किये और आठवीं बार उसे यह समझ में आया कि हर बार विवाह तो मैं ही करता हूं। हर बार स्त्री तो मैं ही चुनता हूं। हर बार खोज तो मैं ही करता हूं। और मैं जैसा आदमी हूं--कि मैं फिर वही औरत ढूंढ लाता हूं, जैसी पहली थी! इसकी समझ, इसकी पसंद, इसकी पकड़ वही है! वह तो बदलता नहीं, वह सिर्फ उसी तरह की औरत को पकड़कर ले आयेगा!
जहां-जहां, जिन-जिन मुल्कों में तलाक विकसित हुए हैं, वहां एक अदभुत अनुभव हुआ। और वह अनुभव यह है कि हर बार आदमी फिर उसी तरह के संबंध जोड़ लेता है, जैसे उसने पहले जोड़ा था! इसलिए आप बहुत चिंतित मत होना कि हमारे यहां तलाक की सुविधा नहीं। नहीं, आप कोई बहुत नुकसान में नहीं हैं। एक-सा मामला है। स्त्री बदल जाती है, आदमी बदल जाता है। लेकिन फिर उसी तरह का आदमी खोज लाता है! वह आदमी खोजने वाला नहीं बदलता है! असली सवाल तो खोजने वाले की बदलाहट का है।
लेकिन हमेशा ऐसा हुआ है। तलाक वालों ने ही ऐसा नहीं किया, संन्यासी भी ऐसा ही करते हैं! एक घर छोड़कर भाग जाते हैं तो वह कभी नहीं पूछते कि मैं तो आदमी वही हूं, मैं जा रहा हूं, मैं जहां कहीं भी पहुंच जाऊंगा, मैं फिर वही पुरानी चीज खड़ी कर दूंगा, जो यहां से छोड़कर गया था। नाम बदल जायेगा, लेकिन फिर वही होगा! फिर वही होने वाला है! वह जो आदमी भागकर जा रहा है, वह जिस

तरह का मस्तिष्क है, जिस तरह का मन है--उसके पास वही मन फिर अपने चारों तरफ नये संसार रचेगा। अपने से बचना मुश्किल है, इसलिए भागकर जायेगा कहां? मेरा कहना है, अब तक जो धर्म दुनिया में विकसित हुए हैं, उन्होंने भागना सिखाया है, पलायन सिखाया है, लेकिन परिवर्तन नहीं। और असली सवाल हैं कि आदमी बदले। और वह बदल ध्यान से आती है, शांति से आती है, भीतर शून्य और मौन से आती है। वह बदल आ जाये तो जिस घर में आप हैं, वह घर और तरह का घर हो जायेगा, क्योंकि उसको बनाने वाला आदमी बदल गया है, उस घर को और होना ही पड़ेगा।
महावीर युवा हुए और उन्होंने अपनी मां से और अपने पिता से कहा कि मैं संन्यासी हो जाना चाहता हूं। महावीर की मां ने कहा कि मेरे जीते जी दोबारा अब यह बात मेरे सामने मत रखना। यह हमारे सुनने के सामर्थ्य के बाहर है। यह मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि मेरा बेटा संन्यासी हो जाये। जब मैं मर जाऊं, तब तुम इस तरह की बात सोच सकते हो, इसके पहले नहीं।
महावीर बड़े अदभुत आदमी रहे होंगे। अगर और संन्यासियों से जाकर पूछें
तो उनको हैरानी होगी कि वे कच्चे संन्यासी रहे होंगे। महावीर राजी हो गये, मां से बोले कि ठीक है।
हमको भी लगेगा कि आदमी कैसा है! अरे कहीं संन्यास ऐसे छोड़ा जाता है कि मां ने कह दिया तो कहीं नहीं गये! मां कहेगी, पत्नी कहेगी, बेटे कहेंगे, बाप कहेगा कि नहीं-नहीं, मत जाओ। ऐसे कहीं कोई संन्यासी हो सकता है? पहली तो बात यह कि संन्यासियों को पूछना नहीं चाहिए, चुपचाप भाग जाना चाहिए, क्योंकि पूछने का मतलब है, झंझट बढ़ेगी। और फिर ऐसा मान लेंगे तो संन्यास हो गया!
लेकिन महावीर मान गये! उन्होंने मां से कहा, ठीक है। भाग्य की बात, दो साल बाद मां और पिता दोनों की मृत्यु हो गयी। पिता को दफनाकर लौट रहे थे तो अपने बड़े भाई से महावीर ने कहा--रास्ते में ही अभी मरघट से लौटते हैं-- रास्ते में कहा, कि अब मैं संन्यासी हो जाऊं? क्योंकि मां और पिता का कहना था कि जब तक वे हैं, बात न करूं तो मैंने बात नहीं की।
भाई ने छाती पीट ली और कहा कि तुम पागल हो गये हो। हमारे ऊपर इतनी मुसीबत पड़ी है कि मां-बाप चल बसे और तुम्हें संन्यास की आज ही सूझी! मेरे जिंदा रहते बात मत करना और महावीर राजी हो गये कि ठीक है!
लेकिन महावीर अदभुत आदमी थे, राजी हो गये! एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, फिर महावीर ने नहीं कहा कि मुझे संन्यास मिले। बात खत्म हो गयी। भाई कहते हैं, जब तक वे हैं, तब तक ठीक है।
लेकिन दो वर्ष बीतते-बीतते घर के लोगों को ऐसा लगा कि महावीर हैं तो
घर में, लेकिन ना के बराबर हैं। वह घर में नहीं है! वह थे और नहीं थे! और घर के लोगों को लगा कि उनकी मौजूदगी पता पड़नी ही बंद हो गयी है। महीनों बीत जाते, ऐसा नहीं लगता कि वे घर में हैं! वह न किसी बात में दखल देते हैं, न कोई आग्रह करते हैं, न कोई मांग करते हैं। वह ऐसे हैं, जैसे एक छाया की तरह चुपचाप--कब निकल जाते हैं घर के बाहर, कब घर के बाहर आ जाते हैं, कब सो जाते हैं, कब उठ जाते हैं--उनका होना न-होना कोई सवाल ही नहीं रहा!
घर के लोगों ने उनके बड़े भाई को कहा कि महावीर तो संन्यासी हो गया। भाई ने कहा, मैं भी हैरान हूं, ऐसा लगता नहीं कि वे घर में हैं या नहीं। अब उसे रोकने से क्या फायदा? अब कोई मतलब नहीं रोकने का। हम सोचते थे कि हमने रोक लिया है, लेकिन वह तो जा चुका है! घर भर के लोगों ने इकट्ठे होकर महावीर से कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, अब हमें रोकने में कोई मतलब नहीं है, अब आपकी जैसी मर्जी। और महावीर घर से चल पड़े!
यह महावीर जीवन भर भी न जाते, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। यह घर से जाना, न-जाना बिल्कुल गौण बात थी, यह तो कोई अर्थ नहीं था। असली अर्थ अपने रूपांतरण का था, वह हो गया था। अब यह घर और बाहर बराबर था।
महावीर को मानने वाले कहते हैं कि महावीर ने घर छोड़ा! सरासर झूठ कहते हैं। महावीर ने घर कभी छोड़ा ही नहीं। महावीर को घर छोड़ने के पहले, घर और बाहर सब बराबर हो गया था। घर के लोग कहते थे, रहो, तो रहे थे। घर के लोगों ने कहा, चले जाओ तो चले गये! ऐसा हुआ।

महावीर को न जिद्द थी कि मैं जाऊं, न जिद्द थी कि मैं रहूं। ऐसे अनाग्रह का नाम ही अहिंसा है। यह भी हिंसा है कि मैं कहूं कि मैं जाऊंगा। और यह भी हिंसा है कि कहूं कि मैं यहीं रहूंगा। आत्मा जा चुकी है। क्या फायदा है, अब हम क्यों बाधा बनें। उन्होंने कहा, ठीक है, आप जायें। तो चल पड़े!
यह है संन्यास, यह है व्यक्ति का रूपांतरण।
अब यह आदमी कहीं भी चला जाये--अब इसे वेश्या के घर में ठहरा दें तो दिक्कत नहीं है, क्योंकि अब इसे कहीं कठिनाई ही नहीं रही। यह आदमी ही बदल गया है। यह आदमी स्थान नहीं बदल रहा है, यह आदमी ही बदल गया है!
मैं जो बात कर रहा हूं शांति की, मौन की, ध्यान की, वह व्यक्ति के रूपांतरण की कीमिया की बात है, उससे सब कुछ बदल जायेगा।
एक बदले हुए आदमी के आसपास सब बदल जायेगा, क्योंकि उसकी देखने की दृष्टि बदल जायेगी। वह करेगा काम; चलेगा, उठेगा, बैठेगा! नहीं, लेकिन अब यह दूसरा आदमी हो गया। इसलिए उस पुराने आदमी ने जो दुनिया बनायी थी, यह उस दुनिया में नहीं जीयेगा, यह नयी दुनिया बनायेगा। इसकी मौजूदगी--नयी दुनिया का निर्माण शुरू हो जायेगा। यह आदमी दुकान पर भी बैठ सकता है।
और जब तक ऐसे आदमी दुकान पर नहीं बैठेंगे, तब तक दुनिया स्वर्ग नहीं
बन सकती। यह आदमी पिता हो सकता है, यह आदमी भाई हो सकता है, बेटा हो सकता है। इस तरह का व्यक्तित्व पत्नी हो सकता है, मां हो सकता है। लेकिन जब तक इस तरह के लोग मां, बेटे, पत्नी और बाप नहीं बनेंगे, तब तक दुनिया स्वर्ग नहीं हो सकती।
हमने काफी उपद्रव मचा रखा है। हम अशांत हैं, इसलिए स्वाभाविक है कि उपद्रव मचायें। अशांत आदमी दुनिया बसाये हुए हैं! अशांत आदमी विवाह कर रहे हैं! अशांत आदमी अदालतें चला रहे हैं! अशांत आदमी राष्ट्रों के मालिक बने हैं!
हम रोगग्रस्त, अशांत लोगों ने जो जगत बनाया है, वह जगत बदल जाये, उतना
ही अच्छा है। लेकिन वह जगत बदलेगा ही ऐसे कि रोगग्रस्त व्यक्ति बदलें, अन्यथा फिर हम उसी तरह का जगत बना लेंगे। ऐसा ही हुआ है।
रूस ने बदलाहट की और कुछ बदलाहट न हुई। ऊपरी बदलाहट हुई, भीतर कोई बदलाहट न हुई, क्योंकि वही रोगग्रस्त व्यक्तियों ने बदलाहट की! फिर वे ही रोगग्रस्त ऊपर बैठे! फिर वही सबका सब सिलसिला शुरू हो गया, जो था! पुरानी हालत बदली, गरीब-अमीर के बीच का फासला कम हुआ, लेकिन नये फासले खड़े हो गये-- सत्ताधिकारियों के और गैर-सत्ताधिकारियों का फासला उतना ही हो गया, जितना फासला गरीब का और अमीर का था। जो कल मालिक था, वह आज मैनेजर हो गया! नाम बदल गये, बात वही रही!
लेकिन हम नाम बदल लेने को बहुत काम समझ लेते हैं! कोई अपना गृहस्थाश्रम छोड़कर आश्रम बना लेता है--हम कहते हैं, बदलाहट हो गयी! नाम सिर्फ बदले हैं, कहीं कुछ बदला नहीं। घर की जगह आश्रम लिख दिया और बदलाहट हो गयी!
हमारी बुद्धि ऐसी ही चीजों पर अटकती है! चीजें ऐसे ही हम बदल लेते हैं। एक आदमी सफेद कपड़े पहने है, हम कहते हैं गृहस्थ है! और वह कल गेरुआ वस्त्र पहनेगा तो हम कहेंगे स्वामी है, संन्यासी हो गया है! हम बिल्कुल पागल हैं, हमें बुद्धि में थोड़ा भी कुछ नहीं सूझता है कि हम क्या कर रहे हैं, हम क्या खेल किये जा रहे हैं! एक आदमी ने गेरुआ वस्त्र पहन लिया, वह संन्यासी हो गया!
पहली तो बात यह है कि जो आदमी वस्त्र बदलने को संन्यास समझता है, वह जड़ है। बुद्धि जैसी कोई चीज उसके पास नहीं है। क्योंकि बदलना था, तो कपड़े ही बदलने की सूझी उसको! इससे ज्यादा व्यर्थ बात बदलने की और कुछ नहीं हो सकती। वह तो जड़बुद्धि है। और हम जड़बुद्धि हैं--तो इसकी सूझ को हम भी नमस्कार करते हैं कि यह बहुत--बहुत बड़ा महान कार्य किया तुमने--कि गेरुआ वस्त्र पहन लिए! हम चीजें बदल रहे हैं, नाम बदल रहे हैं, स्थान बदल रहे हैं, यह सब हम कर रहे हैं! लेकिन वह जो व्यक्ति है भीतर, उसे बदलने की कोई चिंता ही नहीं! उसको बदलने का द्वार ध्यान है।
एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान की क्या कोई विधि नहीं है?

इसको थोड़ा समझना जरूरी है। ध्यान कोई विधि नहीं है। अभिव्यक्त करने में भाषा की अपनी सीमा और कठिनाई है, क्योंकि जो भाषा हमने विकसित की है, वह बहुत काम-चलाऊ बातों के लिए है, वह ध्यान जैसी बातों के लिए नहीं है। विधि तो हमेशा क्रिया की होती है। जब क्रिया करेंगे तो विधि होती है। अक्रिया की कोई विधि नहीं हो सकती। क्रियाओं की विधि हो सकती है--ऐसे करो, ऐसे करो। लेकिन जहां न-करने का सवाल है, वहां विधि कैसे होगी! यह ध्यान कोई विधि नहीं है। और इसलिए यह भी मत पूछें कि ध्यान के कितने प्रकार होते हैं। और यह भी मत पूछें कि फलां गुरु इस तरह की विधि सिखाता है और फलां गुरु दूसरे तरह की विधि सिखाते हैं। गुरुओं को रहना है तो विधियां सिखानी पड़ेंगी। उसकी वजह से ध्यान में गति नहीं होती, उसकी वजह से गुरुता मजबूत होती है।
ध्यान की कोई विधि नहीं है। ध्यान तो विधि-शून्यता है।
इस बात को चूंकि पीछे भी मैंने कहा--अक्रिया है, नो-एक्शन है। वहां कुछ करना नहीं है, सब करना छोड़ देना है।
इस समय मुट्ठी बांधे हुए हैं। और कोई मुझसे पूछे कि मुट्ठी खोलने की विधि क्या है? तो पूछता तो ठीक है, लेकिन मैं उससे कहूंगा कि मुट्ठी बांधने की विधि थी, खोलने की कोई विधि नहीं होती। वह जो बांधने की विधि कर रहे हैं, वह भर न करें, मुट्ठी खुल जायेगी। बांधना क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। खुला हुआ है स्वभाव, हाथ अपने आप खुला हुआ है। बांधते हम हैं, बांधना हमारा काम है। खुला हुआ होना, हाथ की स्वाभाविक दशा है।
किसी वृक्ष की शाखा को हम नीचे पकड़कर खींच लें और फिर मुझसे कोई पूछे
कि इसको इसकी जगह पर वापस पहुंचाने की कोई विधि है? तो कहेंगे, कोई विधि नहीं है। आप कृपा करके जो रोकने की इसकी विधि कर रहे हैं, वह भर न करें। आप छोड़ दें, वह अपनी जगह पहुंच जायेगी शाखा।
हालांकि भाषा में छोड़ना भी क्रिया मालूम पड़ती है, लेकिन छोड़ना क्रिया नहीं है। छोड़ने का मतलब है कि जो पकड़ने की क्रिया आप करते थे, अब नहीं कर रहे हैं। छोड़ना हो गया। छोड़ना निगेटिव है, पॉजिटिव नहीं है। पकड़ना पॉजेटिव है। पकड़ने में आपको कुछ करना पड़ता है। छोड़ने में आपको कुछ करना नहीं है, बल्कि जो आप कर रहे थे, वह भी नहीं करना है और शाखा अपनी जगह पहुंच जायेगी। बस एक चीज--अपने स्वभाव में पहुंचने को आता हो। प्रत्येक चीज अपने स्वभाव में होना चाहती है।
अगर ध्यान से समझें तो धर्म की जो प्यास है दुनिया में, उसका और कोई कारण नहीं है। धर्म की प्यास का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव में जाने को आतुर है। और जब तक दुनिया अपने स्वभाव में नहीं पहुंचती है, तब तक धर्म की जरूरत बनी रहेगी। जिस दिन लोग स्वभाव में पहुंच गये, धर्म बेमानी हो जायेगा। धर्म की जरूरत नहीं रहेगी।
हम अपने स्वभाव से च्युत हैं, हम अपने स्वभाव से कहीं इधर-उधर भटक रहे हैं और इसलिए बेचैन हैं। यह जो अशांति है, वह यही कि हम अपने स्वभाव में नहीं हैं। वह यही कि हम कुछ होने को हैं। हमें कहीं कुछ खींचा, ताना गया है। हम कहीं खिंचे हुए हैं।
शाखा को देखें। अपनी जगह होकर कैसी शांत हो गयी। इसे जरा खींचें और बेचैनी इसके सारे रग-रेशों में दौड़ जायेगी, इसके स्नायु खिंच जायेंगे। सारे वृक्ष के प्राण कंपकंपाने लगेंगे। दूसरी शाखाएं भी हिलने लगेंगी, खिंचेंगी--पूरे वृक्ष के प्राण कठिनाई में पड़ जायेंगे। जड़ों तक खबर पहुंच जायेगी कि कुछ गड़बड़ हो गयी है, कहीं कुछ खिंचाव, कहीं कुछ तनाव है! लेकिन छोड़ दें, शाखा अपनी जगह पहुंच जायेगी; ठहर जायेगी, वृक्ष निश्चिंत हो जायेगा, मौन हो जायेगा, ठहर जायेगा।
हम सब खिंचे हुए शाखाओं के लोग हैं, अलग-अलग तरफ खिंचे जा रहे हैं! लोग एक-दूसरे को खींच रहे हैं! वह जिनको हम संबंधी कहते हैं, उनसे एक ही संबंध है हमारा-- वह कि एक-दूसरे की शाखाएं खींचो! बाप बेटे को खींच रहा है, बेटे बाप को खींच रहे हैं, सब एक-दूसरे को खींच रहे हैं! यह जो खिंचा हुआ पूरा का पूरा समाज है, वहां हम सब एक-दूसरे को च्युत कर रहे हैं अपनी-अपनी जगह से! हम खुद भी च्युत हैं और इसलिए इतनी अशांति, इतना तनाव, चिंता है।

ध्यान से मतलब है अपने स्वभाव में होना, अपने में होना, अपने घर में लौट आना। यह बड़ी कठिनाई की बात है।
मैंने सुना है, एक आदमी एक दिन शराब पी लिया बाजार में जाकर। शराब पीकर लौटा अपने घर। किसी तरह टटोलता हुआ घर पहुंच गया, लेकिन नशे में था। घर पहचान में नहीं आता था तो सीढिय़ों पर बैठकर चिल्लाने लगा जोर-जोर से कि कोई मुझे मेरे घर पहुंचाओ। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये, उसे हिलाने लगे, कहने लगे कि क्या हो गया, पागल हो गये, घर में बैठे हो! पर वह आदमी चिल्लाने लगा--मुझे व्यर्थ मत समझाओ, मुझे घर पहुंचा दो, मेरी मां राह देखती होगी। नींद खुली मां की आधी रात, दरवाजा खोलकर बाहर आयी, उसके सिर पर हाथ रखकर कहने लगी, बेटा, घर के भीतर चलो, तुझे हो क्या गया है!
गांव में स्वयंसेवक भी था, वह गाड़ी ले आया। उसने कहा, बैठ जाओ इस पर, हम पहुंचा देंगे!
पड़ोस के लोगों ने कहा, पागल, अगर गाड़ी में बैठा तो घर से दूर निकल जायेगा; क्योंकि तू अपने घर में है, घर पर मां मौजूद है; अब कहीं भी गया तो घर से दूर चला जायेगा। तू कहीं जाना मत, किसी नेता के चक्कर में मत पड़ना, किसी गुरु के चक्कर में मत पड़ना, किसी गाड़ी वाले की बातों में मत आ जाना। क्योंकि गाड़ी में बैठा कि कहीं दूर निकल जायेगा। तू अपने घर पर ही है, तुझे कहीं जाना नहीं है, तुझे सिर्फ होश में आना है। और होश में आ जायेगा तो पायेगा कि तू अपने घर में है।
हम खिंचे भी नहीं है वस्तुतः, सिर्फ बेहोशी में खिंचे हुए का ख्याल है। होश आ जाये, हम पायेंगे, हम अपनी जगह हैं। हम वहीं है, जहां हम हैं और जैसे ही यह पता चलता है कि हम अपने घर में हैं, एक शांति सारे जीवन में छा जाती है।
इस संबंध में एक मित्र ने पूछा है कि सब अपने स्वभाव के अनुसार करें
तो चोर चोरी करेगा, हत्यारा हत्या करेगा, बेईमान बेईमानी करेगा! आपकी बात मान लेंगे तो दुनिया में नीति, धर्म, अनुशासन सब गड़बड़ हो जायेगा?
अभी पता ही नहीं है आपको कि चोर का स्वभाव चोरी करना नहीं है। कभी सोचा भी है कि चोर चोरी करता है, स्वभाव में न होने के कारण। स्वभाव में किसी ने कभी चोरी की है? स्वभाव में ही कोई व्यक्ति धर्म में जीता है। अगर चोर अपने स्वभाव में चला जाये तो चोरी नहीं कर पायेगा, क्योंकि चोरी करने के लिए स्वभाव के बाहर जाना जरूरी है। और स्वभाव तो भीतर पुकार-पुकार कर कहता है--मत कर, मत कर।
लेकिन वह कहता है, नहीं करूंगा! चोरी करनी पड़ती है। चोरी कर्म है। चोरी करना है। वहर कत्ता का भाव है कि मैं कर रहा हूं।
लेकिन जैसे ही यह भाव चला गया कि मैं करने वाला नहीं हूं--चोरी कर सकते हैं? जैसे ही यह पता चल गया कि करने वाला परमात्मा है, फिर चोरी कर सकते हैं आप? और अगर फिर चोरी भी की तो मैं कहता हूं कि वह चोरी भी धर्म होगी, क्योंकि फिर चोरी की ही नहीं जा सकती।
हमें पता ही नहीं है कि जो भी बुरा होता है बुरे का अर्थ इतना है कि स्वभाव के प्रतिकूल। बुरे का और कोई अर्थ नहीं होता है--जो मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। और जो स्वभाव के प्रतिकूल है, वह दुख लाता है। इसलिए बुरा दुख लाता है। बुरे का और कोई संबंध नहीं है। क्योंकि मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है, इसलिए दुख लाता है। मुझे खिंचना पड़ता है।
एक आदमी चोरी करता है। चोरी जैसे खींचती है। चौबीस घंटे वह खिंचा हुए होता है। चोरी करके कोई निश्चित हो सकता है? चोरी करके कोई शांत हो सकता है? हत्या करके कोई विश्राम कर सकता है? नहीं। उसका पूरा चित्त तन जाएगा। उसे स्वभाव के बाहर जाना पडेगा।
पाप की परिभाषा मेरी दृष्टि में इतनी ही है कि जो स्वभाव के बाहर है, विपरीत है, प्रतिकूल है, वही पाप है।
पुण्य का इतना ही अर्थ है, जो स्वभाव में रहते हो जाता है, वही पुण्य है।
जो स्वभाव के बाहर जाकर करना पड़ता है, वह पाप है। अगर ऐसा भी कोई पुण्य
आप करते हैं, जिसमें स्वभाव के बाहर जाना पड़ता है तो वह पाप है। अगर एक मंदिर के बनाने में चिंता आती हो चित्त पर तो पाप है। अगर किसी की सेवा में

दमन करना पड़ता हो, जबरदस्त करनी पड़ती हो तो वह पाप है। जो सहज होता हो, स्वभाव से होता हो, स्वभाव से होता हो, वही पुण्य है।
यह जिन मित्र ने पूछा है, ऐसे ठीक ही पूछा है, क्योंकि हम सबके भीतर चोर बैठा हुआ है। उन्होंने पूछा है कि अगर सब अपने स्वभाव के अनुसार छोड़ दें तो पर-स्त्री को चाहने वाला पर-स्त्री के पीछे पड़ जायेगा!
वे समझे नहीं, स्वभाव का अर्थ कि जहां स्वभाव है, वहां पर-स्त्री तो दूर, अपनी स्त्री के पीछे पड़ना भी मुश्किल है। वहां अपनी स्त्री भी पर-स्त्री के बराबर ही हो गयी। और ध्यान रहे, जब तक अपनी स्त्री अपनी मालूम हो रही है, तब तक पर-स्त्री का पीछा करता रहेगा वह--जो कहता है कि यह मेरी और यह मेरी नहीं!
और ध्यान रहे, जो मेरा नहीं है, उस पर अधिकार करने की हमेशा कामना बनी रहेगी। यह हो नहीं सकता कि जो मेरा नहीं है, उसका पता है हमें। और हमारे मन में उसके एकाधिकार का विचार पैदा न हो। जो मेरा है, उसके एकाधिकार का विचार नहीं रह जाता है। जो मेरा नहीं है, उसके एकाधिकार का विचार पुकारता है कि उस पर भी अधिकार कर लो! वह पर-स्त्री इसलिए पर-स्त्री है कि उधर एक अपनी स्त्री भी है। वह अपनी स्त्री की वजह से पर-स्त्री है। इस पर अधिकार मिल गया है, इसलिए अपनी है! उस पर अधिकार नहीं मिला, इसलिए परायी है!
और जिस पर अधिकार नहीं मिला है, मन कहेगा उस पर अधिकार करो। दूसरे की कार दिखायी पड़ती है उस पर, दूसरे का मकान दिखायी पड़ता है उस पर, दूसरे की इन्न्त दिखायी पड़ती है उस पर; दूसरे का पद, दूसरे का ज्ञान, दूसरे का त्याग दिखायी पड़ता है। इस सब पर अधिकार करो। जो भी दूसरे का है, वह भी मेरा होना चाहिए। ऐसा कुछ भी न बचे, जो मेरा न हो।
लेकिन वह पर-स्त्री किसी दूसरे की है, वह भी पहरा दिए हुए खड़ा है! और उसे यह भी डर है कि अगर मैंने दूसरे की स्त्री की तरफ देखा, तो मेरी स्त्री की तरफ कोई देखेगा तो फिर मैं क्या करूंगा? ये सब भाव हैं और इन सब भावों को बांधकर आदमी खड़ा हुआ है और चिल्ला रहा है कि पर-स्त्री की तरफ देखना पाप है! और क्यों चिल्ला रहा है? और क्यों साधु-संत समझा रहे हैं कि दूसरे की स्त्री को देखना पाप है? क्योंकि सबको पता है कि सब दूसरे की स्त्री को देख रहे हैं।
यह ध्यान रहे, जब तक अपनी स्त्री जैसा ख्याल है, तब तक पर-स्त्री पीछा करेगी। जब तक कोई कहता है कि मेरा धन है यह, तब तक वह आदमी चोर रहेगा, क्योंकि मेरे धन के दावे में चोरी छिपी है।
जीवन का रूपांतरण बहुत और ही बात है। वहां अपना पराया मिट जाता है, जैसे ही कोई अपने स्वभाव में आता है।
एक बहुत अदभुत घटना घटी है। वाचस्पति मिश्र की शादी हुई। शादी ही कहना ठीक है, क्योंकि उसने कुछ की नहीं, घर के लोगों ने कर दी। और कुछ अदभुत लोग होते हैं। घर के लोगों ने कहा, चलोगे, शादी करोगे? उसने कहा, जैसी मर्जी!
इस लड़के से आशा थी कि इंकार करेगा। मां-बाप को भी बड़ा मजा आता है, जब बेटे इंकार करते हैं--नहीं शादी करेंगे! बहुत मजा आता है, समझाते-बुझाते हैं! लेकिन भीतर मन में बहुत रस आता है कि यह हुआ बेटा अच्छा। कितना यह है चरित्रवान, कहता है नहीं करेंगे!
घर के लोग डरे हुए थे, क्योंकि वह आदमी ऐसा था कि कल को क्या करेगा, क्या नहीं; किसी को नहीं मालूम था, क्योंकि दिन-रात वह किसी और ही देश में खोया हुआ रहता था।
शादी हो गयी। पत्नी को ले आया घर पर। फिर बारह साल बीत गये और वाचस्पति अपने काम में लगे रहे।
शादी का काम खत्म हो गया, घर वालों को मजा आ गया। साथ ही वह पत्नी को भूल ही गया कि पत्नी घर में है!
ऐसी घटना शायद दुनिया में कभी नहीं घटी है। और पत्नी भी अदभुत रही होगी। वह वाचस्पति से कम मूल्य की नहीं थी। उसने एक बार जाकर उसे छेड़ा भी नहीं कि मैं घर बैठी हूं, मुझे किसलिए ले आये हो! उसने जाना कि जो इस तरह खोया है किसी दूर अज्ञात में, उसे बाधा दें तो फिर मेरा प्रेम बहुत कच्चा है। वह प्रतीक्षा करती रही अंधेरे में बैठकर बारह वर्ष तक! जागती थी वह

रातभर, वाचस्पति लिखता रहता! वह कुछ किताबें लिख रहे थे, वह कुछ उपनिषदों पर भाष्य लिख रहे थे, ब्रह्मसूत्र की टीका लिख रहे थे। वह बहुत काम कर रहे थे, वह खोये थे किसी दूर के लोक में! पत्नी छाया की तरह उनकी सेवा करती थी! बारह वर्ष बाद--वाचस्पति ने तय किया था, वह जो किताब लिख रहे थे-- ब्रह्मसूत्र का भाष्य--वह पूरा हो जायेगा जिस दिन, उसी दिन वह घर छोड़ देगा! वह ब्रह्मसूत्र का भाष्य पूरा होने को है। आखिरी पन्ना वह लिख रहा है कि दीया बुझ गया। उसकी पत्नी तो छाया की तरह उसकी सेवा करती थी। वह आयी और उसने दीया जलाया। पहली दफा वाचस्पति ने उस जले हुए दीये में उसका हाथ देखा और उसने कहा, तू कौन है यहां!
वाचस्पति की पत्नी ने कहा, धन्यभाग मेरे कि आज पूछा तो! बारह वर्ष से प्रतीक्षा थी, कभी पूछेंगे तो निवेदन कर दूंगी कि कौन हूं! बारह वर्ष पहले, शायद आप भूल गये होंगे, विवाह करके मुझे घर ले आये थे। तब से प्रतीक्षा करती हूं।
वाचस्पति रोने लगे। उसने कहा, यह तो बड़ी देर हो गयी। पागल, तूने बीच में ही क्यों न कहा? क्योंकि मैंने तो तय किया है कि यह किताब पूरी हो जायेगी--और किताब पूरी हो गयी है और कल सुबह सूरज उगा और मैं चला जाऊंगा, तूने क्यों नहीं कहा?
उसकी पत्नी ने कहा, लेकिन कुछ भी देर नहीं है। आपने इतनी चिंता जाहिर
की मेरे लिए--कि तूने देर कर दी, और आज सुबह चला जाऊंगा, तो तूने पहले क्यों न कहा--मुझे सब मिल गया और चाहिए भी क्या था!
उस पत्नी की याद में किताब का नाम"भामती" रखा। भामती पत्नी का नाम था। भामती का कोई संबंध नहीं है ब्रह्मसूत्र की टीका से, लेकिन किताब का नाम"भामती" रखा उसकी याद में!
जो बारह साल पीछे चुप था, अब ऐसे आदमी को पर-स्त्री दिखायी पड़ सकती है? इधर बारह साल अपनी स्त्री दिखायी नहीं पड़ी! अपनी स्त्री नहीं, तो पर-स्त्री कहां है? ऐसे आदमी को स्त्री दिखायी पड़ सकती है?
हां, दिखायी तो पड़ेगी, लेकिन, आंख में तस्वीरें बन रही हैं, वही दिखायी
पड़ रही हैं। ऐसे आदमी को क्या दिखायी पड़ता है! ऐसा आदमी अपने स्वभाव में जीता है।
ऐसे ही रामकृष्ण थे। रामकृष्ण गये--वे नये-नये कपड़े पहने हैं, लड़की को देखने जा रहे हैं! बहुत सोच-समझकर तैयार हो गए हैं। बार-बार आकर बाहर पूछते हैं, कब चलना है, कितनी देर है! वे बहुत खुश हैं कि आज नये कपड़े मिल गये हैं और तीन रुपये भी मां ने उनके खीसे में डाल दिये हैं, वह उनको बार-बार गिनकर अंदर रख देते हैं! ऐसा कभी नहीं हुआ था। वे बहुत ही खुश हैं।
फिर वे गये हैं उस लड़की को देखने। फिर वे थाली पर बैठे हैं। वह लड़की परोसने आयी है। उन्होंने तीन रुपये निकाले, उसके पैर पर रखे और उसके पैर पड़ लिए!
तो सब घर के लोग कहने लगे कि पागल, यह क्या कर लिया?
तो उन्होंने कहा, बिल्कुल मेरी मां जैसी है--उतनी ही भोली, उतनी ही सरल! मेरी मां हो गयी!
उन लोगों ने कहा, यह तेरी पत्नी है, तेरी मां नहीं हो सकती।
उन्होंने कहा, पत्नी का तो मुझे पता नहीं कि कैसी होती है, लेकिन मां
का मुझे पता है। मेरी मां तो हो ही गयी अब। अब क्या होगा! फिर वह स्त्री मां ही रही जिंदगी भर!
अब ऐसे आदमी की अपनी ही पत्नी नहीं होती तो क्या वह दूसरे की पत्नी देख सकता है? और अपनी पत्नी में जब मां दिख गयी तो अब किस स्त्री में मां नहीं दिखेगी? ठीक ऐसे ही लोग स्वभाव में जीते हैं।
और वह मित्र पूछते हैं कि अगर स्वभाव में चले गये और परायी स्त्री की चाह मन में है, तब तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। फिर परायी स्त्री के पीछे चले गये! स्वभाव में चले जाइये, फिर किसी के पीछे नहीं जायेंगे।
स्वभाव में जाने का मतलब है अपने पीछे चले जाना। और जो अपने पीछे चला जाता है, वह फिर किसी के पीछे नहीं जा सकता है।

जब तक हम अपने पीछे नहीं गये हैं, तभी तक हम दूसरे के पीछे भटकते हैं-- छायाओं के पीछे। लगता है कि इसके पीछे जाने से कुछ मिल जायेगा। उसके पीछे जाने से कुछ नहीं मिलेगा। इसीलिए दूसरे के पीछे भटकते हैं!
और जब अपने ही पीछे जाकर कोई पा लेता है तो फिर दूसरे के पीछे क्यों जायेगा? वह तो जब तक नहीं मिला है हमें, तब तक भटकन है। और जब मिल गये, खुद को खुद ही मिल गया, तब इसके पीछे किसको जाना है। वह सब जाना आना, वह सारी दौड़-धूप; वह चोरी, पाप, हत्या, और पर-स्त्री; वे सब के सब विभाव हैं, वे हमारे स्वभाव के बाहर घटने वाली घटनायें हैं।
इसीलिए यह मत कहें कि स्वभाव में आ जायें तो कोई अव्यवस्था फैल जायेगी। अव्यवस्था फैली हुई है। स्वभाव में आ जायेंगे तो व्यवस्था आ जायेगी। लेकिन वह ऐसी व्यवस्था नहीं होगी, जो ऊपर से आयोजित करनी पड़ती है। वह कोई ऐसी डिसिप्लिन नहीं होगी, वह कोई ऐसा अनुशासन नहीं होगा, जिसे ऊपर से थोपना पड़ता है। वह भीतर से आया हुआ होगा। अब रामकृष्ण को ऐसा समझाना नहीं पड़ेगा कि यह मेरी मां है, ऐसा देखो।
हम भी अपने बच्चे को समझाते हैं कि दूसरे की स्त्री, मां-बहन को अपनी मां-बहन समझना! अब समझने का मामला कभी सच हो सकता है? जब हम कहते हैं कि ऐसा समझना तो उसका मतलब साफ है कि जो समझना नहीं है, वह पहले ही समझ चुके हैं और अब यह समझना पड़ेगा!
कभी आप नहीं समझाते किसी को कि दूसरे को पत्नी को अपनी पत्नी समझना--
वह नहीं समझाते! क्योंकि वह हम समझते ही हैं। समझाना यह पड़ता है कि मां समझना, क्योंकि जो हम नहीं समझते हैं, वह हमें समझाना पड़ता है। सचाई औरों से हम समझते हैं, झूठ हम ऊपर से थोपते हैं कि ऐसा समझना!
और ऐसा समझाने का जो अनुशासन है, वह सरासर मिथ्या और झूठा है। और उसी मिथ्या पर खड़ा हुआ समाज है। और उसके ही हम गौरव गान किये चले जाते हैं कि बड़ी संस्कृति है, बड़ी सभ्यता है! और सब इसी तरह के झूठों पर खड़ी हुई सभ्यता है।
हम कहते हैं, हमारी सभ्यता बहुत ऊंची है! हम दूसरे की पत्नी को दूसरे
की मां-बहन को अपनी मां-बहन समझते हैं! समझने की बात हमेशा झूठी होती है। दिखायी पड़नी चाहिए। वह किसी के समझाने का सवाल नहीं होना चाहिए। दिखनी चाहिए। और जब देखते हैं, तब तो एक अनुशासन भीतर से आता है। उसे पैदा नहीं करना पड़ता है।
स्वभाव में जीने वाले व्यक्ति का एक अनुशासन होता है, जो आंतरिक होता है। और हम नहीं पहचान पाते अकसर, क्योंकि हम उसी अनुशासन को पहचानते हैं, जो ऊपर से थोपा जाता है! हम झूठ के इतने आदी हो गये हैं कि हम सत्य को देख भी नहीं पाते, पहचान भी नहीं पाते!
अतः हमें स्वयं को स्वीकारना है, स्वयं को पहचानना है। अपनी ही खोज करनी है। अपने को झूठे अपनत्व के तनाव से मुक्त करना है। और प्रकृति एवं ब्रह्मांड से जुड़ी उस सरल-सहज अक्रिया से एकाकार होना है।

नेति-नेति
पंद्रहवां प्रवचन

अपना-अपना अंधेरा

मनुष्य का मन एक बोझ है--बोझ है अतीत का। लेकिन मनुष्य का मन एक तनाव
भी है--भविष्य का। अतीत के बोझ को हटा देने के लिए कुछ बातें की हैं। भविष्य के तनाव से मुक्त हो जाना भी उतना ही आवश्यक है। भविष्य भी बहुत बड़े तनाव की तरह मनुष्य के मन पर सदा मौजूद है। भविष्य का तनाव बहुत रूपों में हमारे मन को पकड़े है।
एक तो, हम आज में जीते ही नहीं! हम सदा कल में जीते हैं! और कल में कोई
भी नहीं जी सकता। जीना सदा आज में है, अभी में है।
वनवास के दिनों में एक सुबह युधिष्ठिर अपने झोपड़े पर बैठे हैं और एक भिखारी ने भिक्षापात्र उनके सामने फैलाया है। युधिष्ठिर ने कहा, कल! कल ले लेना, कल आ जाना, कल दे दूंगा!
भीम बैठा हुआ सुनता था, वह जोर से हंसने लगा! पास में पड़े हुए घंटे को उठाकर वह बजाने लगा और गांव की तरफ भागने लगा!
युधिष्ठिर ने पूछा, क्या हुआ है तुझे, पागल हो गया?
भीम के कहा, पागल नहीं हुआ हूं। यह जानकर बहुत खुश हुआ हूं कि मेरे भाई
ने कल कुछ करने का वायदा किया है। जाऊं गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया है, क्योंकि मैंने आज तक सुना नहीं है कि कल कोई भी कुछ कर सका हो। तुमने कहा है, कल देंगे! जाऊं खबर कर आऊं गांव में, क्योंकि इतिहास में ऐसी घटना नहीं घटी है।
बहुत मजे की बात है। कल तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो भी किया जा सकता है--अभी और यहां; आज, इसी क्षण।
जिस कल की हम बात करते हैं, वह कल्पना के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं रहेगा। वह कभी नहीं रहेगा। कल कभी नहीं आता। जो आता है, वह आज है, अभी है। लेकिन हमारा मन जीता है कल में! जो अभी हो सकता है, उसे कल पर छोड़ते हैं! और कल कभी नहीं होगा। फिर यह कल की लंबी धारा, आने वाले कलों की लंबी कल्पना मन पर बैठती चली जाती है, मन को खींचती चली जाती है। इसका बोझ बहुत ज्यादा है, वह हमें पता नहीं! हमें उन्हीं बोझों का पता चलता है, जिनके हम आदी नहीं होते। और भविष्य के बोझ के हम पैदा होने के क्षण के साथ आदी हो जाते हैं! वह हमें पता नहीं चलता!
गागरिन जब पहली दफा अंतरिक्ष में गया तो उसने लिखा कि पहली बार मुझे पता चला कि पृथ्वी पर कितना बोझ था! लेकिन हमें कुछ पता नहीं चलता!
गागरिन जब लौटकर पृथ्वी पर आया तो लोगों ने उससे पूछा कि सबसे नया अनुभव क्या हुआ?
उसने कहा, सबसे नया अनुभव हुआ गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो जाने का। शरीर निर्भार हो गया! समझ में नहीं पड़ा कि यही मेरा शरीर है! और यह भी समझ में नहीं पड़ा कि इतना बोझ इस शरीर पर पृथ्वी पर था, इतना खिंचाव इस शरीर पर था! शरीर हल्का रुई की तरह हो गया--जैसे शरीर है ही नहीं, ऐसा अनुभव हुआ! हवा में जैसे ऊपर तैरने लगा शरीर। यान की छत से लग गया जाकर। कोई वजन नहीं रहा। हाथ उठायें तो मालूम नहीं पड़े कि उठाया कि नहीं उठाया। सारा शरीर निर्भार हो गया!
लेकिन हमारे शरीर पर कितना बोझ है, वह हमें पता नहीं चलता, क्योंकि जमीन पर ही हम पैदा होते हैं, जमीन पर ही हम बड़े होते हैं, जमीन पर ही मर जाते हैं। वह जिसको हम शरीर का वजन कहते हैं, शरीर का वजन नहीं है। अगर दो सौ पौंड शरीर का वजन है तो शरीर का कोई वजन नहीं होता। वह जमीन खींच रही है इतनी ताकत से कि शरीर पर दो सौ पौंड का भार पड़ रहा है। लेकिन हम उसमें जीते हैं। हमें इसका कोई पता नहीं है, क्योंकि हम उसमें ही जन्मते हैं, उसमें ही आदत बन जाती है।
ऐसे ही भविष्य का--न मालूम और कितना बड़ा बोझ है, कितनी कशिश है। जमीन
से भी ज्यादा, लेकिन हमें पता नहीं चलता! हम बचपन से ही कल में जीते हैं-- आगे! आगे और आगे!

और यह कल में जीने की जो हमारी मनोवैज्ञानिक भूल है, यह समझ लेना बहुत आवश्यक है। और तभी संभवतः हम आने वाले कल से मुक्त हो जायें। मुक्त हो जाने का यह मतलब नहीं है कि कल के लिए आप कोई योजना नहीं करेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि सुबह ट्रेन पकड़ने को है तो आज सुबह रिजर्वेशन नहीं करायेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कल के लिए कोई जीवन की योजना नहीं होगी। असल में हमने एक मनोवैज्ञानिक समय का आविष्कार किया हुआ है, जो कहीं भी नहीं है!
एक आदमी क्रोधी और हिंसक है। और वह आदमी कहता है, अगले जन्म में अहिंसक हो जाऊंगा, शांत हो जाऊंगा! वह यह कहता है मैं चेष्टा करूंगा, श्रम करूंगा, साधना करूंगा, योग करूंगा। मैं नीति का आचरण करूंगा, व्रत लूंगा, अहिंसक हो जाऊंगा! हिंसक है, लेकिन कल्पना करता है कि कल भविष्य में कभी अहिंसक हो जायेगा!
जो आदमी हिंसक है, वह कुछ भी योजना करे, वह कोई भी व्रत ले, वह कोई भी धारणा करे, वह कोई भी ध्यान करे, वह कोई भी योग करे; तप साधे, तपश्चर्या करे--हिंसक आदमी जो कुछ भी करेगा, उससे कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है, हिंसक ही रहेगा। व्रत भी हिंसक ही करेगा। उस व्रत के करने में भी उसकी हिंसा पूरी तरह निहित है। तपश्चर्या हिंसक ही करेगा, उस तप में भी उसकी हिंसा पूरी तरह निहित है।
कल तक वह दूसरे के शरीरों को सताता था, अब वह अपने शरीर को सतायेगा। हिंसा अब भी पूरी तरह प्रस्तुत है। कल तक वह रस लेता था किसी दूसरे की गर्दन दबाने में, अब वह अपनी ही गर्दन दबाने में रस लेगा। सोचेगा कल अहिंसक हो जाऊंगा तो वह जो हिंसा की पीड़ा है, वह जो हिंसा का दंश है, वह जो हिंसा का कांटा चुभ रहा है, वह हल्का हो जायेगा! वह कल की अहिंसा को सत्य मान लेगा, आज की हिंसा को झूठ कर लेगा! आज की हिंसा यथावत रहेगी, वह कभी अहिंसक नहीं होगा। लेकिन कल अहिंसक हो जायेगा इस भाव से, हिंसा की जो पीड़ा होनी चाहिए, वह कम हो जायेगी। और हिंसा की पीड़ा जितनी ही कम हो जायेगी, उतना ही हिंसा से मुक्त होना असंभव है।
लेकिन वह कल की कल्पना करेगा! वह कहेगा, मृत्यु के बाद मोक्ष चला जायेगा। वह चलता रहेगा इस तरह भविष्य पर और आज के तथ्य को नहीं देखेगा! इस तथ्य को ठीक से जान लेना होगा। जो भी आज के तथ्य को नहीं देखना चाहते हैं, वे भविष्य की योजनाओं और कल्पनाओं में, अंधेरे में, धुएं में अपने को छिपा लेते हैं!
आज का तथ्य ही सत्य है। उसे छिपाना और भुलाना भी नहीं है। वह पूरी तरह जानने से ही बदलेगा।
बदलाहट का कोई उपाय नहीं--भारतवर्ष कितने हजारों साल से अहिंसा की बातें करता है, कितने हजारों साल से हमने अहिंसा के गीत गाये हैं, अहिंसा के शास्त्र रचे हैं, अहिंसा की बात हम करते रहे हैं और एक भी आदमी अहिंसक नहीं है!
इधर बीस, पच्चीस, चालीस सालों से तो हम बहुत ही अहिंसा की बातें कर रहे हैं! लेकिन जब स्वयं पर मुसीबत आती है तो हम उतने ही हिंसक सिद्ध होते हैं, जितना कोई और! चीन ने देश पर हमला किया, फिर हमारी अहिंसा खो गयी! पाकिस्तान के साथ मुठभेड़ होते ही हमारी अहिंसा खो जाती है! फिर कोई अहिंसा की बात नहीं करता। फिर हम कहते हैं, अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत है!
अहिंसा की रक्षा के लिए भी हिंसा की जरूरत पड़ती है तो अहिंसा बहुत नपुंसक है। अगर अहिंसा की रक्षा हिंसा से की जा सकती है, तब तो फिर अमृत की सुरक्षा के लिए जहर का इंतजाम करना पड़ेगा, और प्रेम की रक्षा के लिए घृणा सीखनी पड़ेगी, और जिंदा रहने के लिए मरना पड़ेगा!
अहिंसा हमारी बातचीत है हजारों साल की और उससे सिर्फ एक बात घटी है कि हमने हिंसा को देखना बंद कर दिया है! अहिंसा की बातों में हिंसा का तथ्य भूल गये हैं और हमें दिखाई नहीं पड़ता!
चित्त अशांत है तो हम कहेंगे, कल हम शांत हो जायेंगे! कुछ विधि का उपयोग करेंगे, किसी जाप का उपयोग करेंगे! फिर कल भी आ जायेगा। कल तो आता

नहीं, वह आज होगा। और आप कहेंगे, आज अशांत हूं, कोई बात नहीं, कल शांत हो जायेंगे।
यह स्थिति करण आत्मवंचना है। इस स्थिति से फिर जिंदगी में कभी परिवर्तन नहीं होगा। फिर तने ही रह जायेंगे, तनाव ही रह जायेगा। पीछे लौटकर देखिये, जिंदगी में कितनी बार सोचा होगा, कल यह कर लेंगे, कल वह कर लेंगे। मनोवैज्ञानिक बात कहें तो भीतर वह"आज" आज तक नहीं हुआ। वह कभी नहीं होगा। वह उपाय तथ्यों को झुठलाने और पलायन का है।
किसी तथ्य को भूलने से कभी उसको बदला नहीं जा सकता।
अगर हिंसा बदलनी है तो अहिंसा की बातचीत बंद कर दें। हिंसा को देखें।
वह जो अभी है, उसे देखें, उसे पहचानें, उसे खोजें कि क्या है। और जितना उसे जानेंगे, जितना पहचानेंगे, जितना उसको देखने में समर्थ हो जायेंगे, वह हिंसा का तथ्य उतना ही बदलना शुरू हो जायेगा--अभी और यहीं, कल नहीं।
अगर भीतर घृणा है, चोरी है तो उसे देखें और पहचानें। यह मत कहें कि कल मैं चोरी छोड़ दूंगा। अगर चोरी गलत हो गई है तो कल की बात क्यों करते हैं? अभी सांप रास्ता काटता है तो आप ऐसा नहीं कहते कि कल मैं बच जाऊंगा। अभी छलांग लगाते हैं, क्योंकि सांप सामने खड़ा है फन फैलाये हुए। तो आप यह नहीं कहते, ठीक है, अभी खड़े रहो। सांप से कल हम बच जायेंगे। कल हम छलांग लगा लेंगे। सांप सामने खड़ा होता है तो आप अभी, इसी वक्त छलांग लगाते हैं। क्यों? क्योंकि सांप दिखाई पड़ता है। सांप के साथ मौत दिखाई पड़ती है। सांप का जहर दिखाई पड़ता है। एक छलांग में आप बाहर हो जाते हैं।
हिंसा सामने खड़ी है और आप कहते हैं, कल हम अहिंसक हो जायेंगे! तो फिर आपको हिंसा का जहर दिखाई नहीं पड़ता, हिंसा की मौत दिखाई नहीं पड़ती, हिंसा का पागलपन दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए आप कहते हैं, कल। अभी क्या जल्दी है, कल! अभी घर में आग लगी है, तब आप यह नहीं कहते हैं कि कल बाहर निकल जायेंगे। तब आप कहते हैं, अभी इसी क्षण मुझे बाहर निकलना है। आप यह कहते भी नहीं हैं, इसी क्षण बाहर निकलना है; आप निकलना शुरू हो जाते हैं, आप निकल ही जाते हैं!
जिंदगी के तथ्य भी आग लगे होने से या सांप के तथ्यों से ज्यादा खतरनाक हैं। लेकिन कल की तरकीब से आप झुठला जाते हैं और उनको नहीं बदल पाते!
जीवन की बदलाहट, जीवन की क्रांति, जीवन का रूपांतरण इस क्षण होगा, अभी होगा। कल कभी नहीं होगा।
लेकिन हमने, एक विचार, एक प्रत्यय बनाया हुआ है कि कल हम अहिंसक हो जायेंगे। और बस हम कल्पना कर लेते हैं कि कल से हम अहिंसक हो गये। और कल की अहिंसा जो कि बिल्कुल झूठी है, वह हमें सच मालूम लगने लगती है! हिंसा तो मौजूद रहती है और हम अहिंसक होने की कोशिश में लग जाते हैं! घृणा मौजूद रहती है, प्रेम करने की कोशिश में लग जाते हैं!
एक फकीर के पास किसी आदमी ने जाकर कहा। वह फकीर कभी-कभी उस आदमी के द्वार पर भीख मांगने आता था। कई बार उसने भीख दी थी। एक दिन उसके झोपड़े पर जाकर कहा कि आज मैं भी भीख मांगने आया हूं। मेरे भीतर बहुत घृणा है। मेरे भीतर बहुत हिंसा है और क्रोध है। मेरे भीतर बहुतर ईष्या है, बहुत जलन है। मैं कैसे इनसे छुटकारा पाऊंगा? मुझे कुछ रास्ता बता दो।
उस फकीर ने कहा, कल जब मैं भोजन मांगने आऊंगा तेरे द्वार पर, तभी रास्ता भी बता दूंगा।
वह फकीर दूसरे दिन फिर भोजन मांगने आया। भिक्षा का पात्र उसने उस घर
के सामने फैला दिया। उस आदमी ने आज बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाया था। आज उस फकीर को भिक्षा और ही ढंग से देनी थी। आज उससे कुछ लेना भी था। वह सारे फल और मिठाइयां लेकर भिक्षा के पात्र में डालने आया तो देखकर हैरान हो गया कि भिक्षा के पात्र में तो कंकड़, पत्थर, गोबर पड़ा हुआ था! उसने हाथ रोक लिया और कहा, महाशय, भिक्षु जी, इस पात्र में मैं कैसे ये मिठाइयां डालूं?
भिक्षु ने कहा, डाल दो, क्या हर्जा है?
उसने कहा, सब खराब हो जायेगा। यह पात्र तो गंदा है। पहले पात्र को धो लो।
संन्यासी ने पात्र धो लिया। फिर मिठाई दे दी। भिक्षु वापस लौटने लगा
तो उसने कहा, आपने कहा था, कुछ मुझे भी कहेंगे।

उस संन्यासी ने कहा, मैंने कह दिया है। वह इस पात्र में गंदगी पड़ी है, इसमें तुम मिठाई डालने को तैयार नहीं हो! और भीतर हिंसा पड़ी है तो अहिंसा कैसे डाली जा सकती है! भीतर क्रोध है तो क्षमा कैसे डाली जा सकती है! तुम्हें यह दिखता है कि थोड़े से कंकड़, पत्थर, गोबर, सब मिठाइयों को खराब कर देंगे। लेकिन तुम्हें यह नहीं दिखता कि तुम्हारे भीतर सब पड़ा है और तुम उसी में भगवान तक को डालने का प्रयत्न कर रहे हो!
लोग आते हैं, पूछते हैं कि भगवान को कैसे पायें? वे यह नहीं कहते कि अपने पात्र को कैसे साफ करें! वे कहते हैं, भगवान को कैसे पायें! वे कहते हैं, प्रार्थना कैसे करें! वे यह नहीं कहते कि यह घृणा और क्रोध!
जीवन के इन तथ्यों को हम देखते नहीं, जो अभी हैं! और उन तथ्यों को पाना चाहते हैं, जो कभी होंगे! तो उन्हें जान लेना चाहिए, वे कभी भी नहीं होंगे और मन एक खिंचाव में पड़ जायेगा। क्रोध भीतर होगा और प्रार्थना की चेष्टा चलेगी। यह कितना असंभव तनाव है। क्रोध करने वाला चित्त कैसे प्रार्थना कर सकता है? वह प्रार्थना में ही क्रोध से भरा रहेगा।
घरों में देखिये! जो प्रार्थना करते हैं, जो प्रार्थना भी कर रहे हैं
और चारों तरफ देख भी रहे हैं कि कब क्रोध का अवसर मिल जाये! पूजा और प्रार्थना करने वाले लोग अकसर क्रोधी हो जाते हैं। और उसका कारण है, वह अकारण नहीं। भीतर क्रोध है, ऊपर से प्रार्थना की कोशिश चल रही है! भीतर जो है, वही सच है।
ऊपर जो चल रहा है, वह सच नहीं है। वह झूठ है। लेकिन भविष्य की आशा है कि कभी प्रार्थना पूरी हो जायेगी, कभी क्रोध खत्म हो जायेगा। क्रोध कभी खत्म नहीं होगा। क्रोध को किसी प्रोसेस, किसी प्रक्रिया के द्वारा कभी खत्म नहीं किया जा सकता। क्रोध को, घृणा को, हिंसा को-- जो भी हमारे भीतर गलत है, उसको कभी भी हम धीरे-धीरे दूर नहीं कर सकते।
जिंदगी के परिवर्तन तर्क से नहीं, क्रांति से होते हैं।
अगर आपको अपने भीतर की हिंसा दिखाई पड़ जाये तो इसी क्षण एक छलांग लग जायेगी, जैसे सांप को देखकर लग जाती है। आप हिंसा के बाहर हो जायेंगे।
और यह कल कभी नहीं होगा। वह ऐसा नहीं है कि धीरे-धीरे हम सब ठीक कर लेंगे। हम करेंगे धीरे-धीरे ठीक और जितनी देर आप ठीक करेंगे, उतनी देर हिंसा मौजूद रहेगी। वह और मजबूत होती चली जायेगी।
एक आदमी एक बीज बो देता है। बीज प्रतिक्षण बड़ा हो रहा है। वह आदमी कहता है कि धीरे-धीरे हम इस वृक्ष को उखाड़कर फेंक देंगे। और तब तक पानी भी डाल रहा है, तब तक खाद भी डाल रहा है, क्योंकि वह कहता है, धीरे-धीरे, बाद में, कभी हम इसे उखाड़कर फेंक देंगे! वह कहता है कल; कल, फिर, आगे!
और इस देश में तो जहां हमें पुनर्जन्मों की बहुत लंबी बात बतायी गयी है, वहां हम कहते हैं, अभी भी क्या जल्दी है! अगले जन्म में, उसके आगे देखेंगे!
हिंदुस्तान के पास भविष्य की सबसे बड़ी योजना है! इतनी कि दुनिया के किसी मुल्क के पास नहीं है! हमारे लिए समय की कमी ही नहीं है! हम कहते हैं, अनंत-अनंत जन्म हैं, अनंत-अनंत आगे बीतेंगे! गलत नहीं कहते हैं हम, जिन्होंने कहा है, उन्होंने जानकर कहा है। लेकिन जिन्होंने सुन लिया है, उनके लिए घातक हुआ है। अगर यह जन्म भी खो गया तो नुकसान क्या है! आगे और जन्म हैं!
हिंदुस्तान के पास भविष्य का सबसे लंबा विस्तार है। और इसलिए हिंदुस्तान का वर्तमान सबसे ज्यादा निकृष्ट और नीचा हो गया है। भविष्य का इतना बड़ा विस्तार है कि उसकी वजह के वर्तमान को बदलने की जरूरत नहीं रहेगी।
और ध्यान रहे, जो भी होना है, वह अभी होना है, यहां होना है, इसी क्षण होना है, क्योंकि जिंदगी एक छलांग है।
जब हमें कोई चीज दिखाई पड़ती है, हम एकदम बदल जाते हैं। फिर ऐसा नहीं होता कि हम धीरे-धीरे बदलेंगे।
धीरे-धीरे बदलने की बात हमारे मोह को प्रकट करती है कि हम बदलना नहीं चाहते। इसीलिए हम कहते हैं, धीरे-धीरे बदलेंगे। और बदलना हम क्यों नहीं चाहते? क्योंकि हमने देखा ही नहीं है इस तथ्य को कि भीतर क्या है! अगर आपको

पता चल जाये कि भीतर कैंसर है, तब आप यह नहीं कहते कि धीरे-धीरे। आप अभी भागते हैं, कहते हैं, इसी वक्त कुछ करना पड़ेगा!
लेकिन यह कैंसर कुछ भी नहीं है। हिंसा और भी बड़ा कैंसर है, क्रोध और भी बड़ा कैंसर है, घृणा और बड़ा कैंसर है। कैंसर तो सिर्फ शरीर को खाता है। घृणा, हिंसा और क्रोध तो पूरी तरह आत्मा को खा जाते हैं। लेकिन वे हमें दिखाई नहीं पड़ते! हमने कभी देखा ही नहीं है। हम उन्हें देखने से बचते हैं! जब भी देखने का अवसर आ जाये, हम इधर उधर देखने लगते हैं! फिर हम किनारे देखने लगते हैं, सीधा नहीं देखते हैं!
और हमने ऐसी तरकीबें निकाली हैं अपने को झुठलाने की, प्रवंचना की! अगर भीतर क्रोध है तो हम चाहते हैं कि यह क्रोध तो दूसरे को सुधारने के लिए है! अगर भीतर हिंसा है तो हम कहते हैं कि हिंसा नहीं होगी तो लोग समझेंगे कि हम कायर हैं, कमजोर हैं! अगर भीतरर ईष्या है तो हम कहेंगे कि भीतरर ईष्या नहीं होगी तो प्रतिस्पर्धा कैसे होगी! प्रतिस्पर्धा नहीं होगी तो विकास कैसे होगा! हम अपने भीतर के सब जहर, सब रोगों की सुरक्षा के लिए बहुत आयोजन किये हुए हैं, बहुत दलीलें इकट्ठी किये हुए हैं! हम अपने भीतर की सब बुराइयों की रक्षा करते हैं और फिर कहते हैं कि धीरे-धीरे बदलेंगे! यह धीरे-धीरे बदलना भी, न बदलने की तैयारी है।
जो आदमी कहता है कि धीरे-धीरे बदलेंगे, वह नहीं बदलना चाहता है।
उसे शायद पता भी नहीं है कि जो है भीतर; वह कितना रुग्ण, कितना बीमार, कितना कुरूप, कितना गंदा है। लेकिन हम शास्त्रों को पढ़ लेते हैं कि भीतर तो परमात्मा का निवास है, भीतर तो आत्मा है! उस भीतर का हमें कोई पता ही नहीं है, जहां आत्मा है और जहां परमात्मा है।
अगर हम भीतर गये तो मिलेगी घृणा, आत्मा नहीं। अगर हम भीतर जायेंगे तो मिलेगा क्रोध, आत्मा नहीं। अगर हम भीतर जायेंगे तो मिलेगीर ईष्या, मिलेंगे सब तरह के जहर, आत्मा नहीं। किताबों में लिखा है कि आत्मा भीतर है। जब ये सब भीतर नहीं होंगे, तब वह मिलेगा, जो आत्मा है, जो परमात्मा है। लेकिन अभी तो यह सब दूषित है और इसको हम देखने से बचना चाहते हैं! हम कहते हैं, देखने की क्या जरूरत है, धीरे-धीरे हम बदल लेंगे!
आत्म-साक्षात्कार का पहला कदम भीतर के कुरूप का साक्षात्कार है।
आत्मा-साक्षात्कार उसे देख लेता है, जो भीतर है और तब उस क्षण बदलाहट शुरू हो जाती है। एक क्षण रुकना नहीं पड़ता। देखा और बदलाहट शुरू हो जाती है। निरीक्षण की, देखने की, इतनी बड़ी क्षमता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्रांति का एक सूत्र है भीतर जो है, उसके प्रति जाग जाना।
लेकिन हम तो भविष्य के प्रति जागे हुए हैं। जो है, उसके प्रति नहीं जागते हैं! हम चूके हुए हैं उस बिन्दु से जहां हम हैं। और भागेंगे वहां, जहां हम नहीं हैं! भागते रहते हैं, भागते रहते हैं, जहां हम नहीं हैं! और जहां हम हैं, वहां हम आंख भी नहीं उठाकर देखते कि कहां हम हैं, हम क्या हैं! अच्छे-अच्छे सिद्धांतों की बातें हमें कंठस्थ हो गयी हैं, उनको हम दोहराये चले जाते हैं! और हमने हर चीज को न्याययुक्त ठहराने की व्यवस्था कर ली है! हम कहते हैं हिंसा है, क्योंकि पिछले जन्म में बुरे काम किये थे, इसलिए हिंसा बाकी रह गयी थी। वह तो भोगनी पड़ेगी! क्रोध है, क्योंकि पीछे जो किया था, वह क्रोध पैदा कर गया है! जो हमारे भीतर हैं, उसके लिए हम दलीलें खोजते हैं कि वह क्यों है! दलीलें खोजकर हम निश्चिंत हो जाते हैं!
हमें पता चल गया है कि वह सब क्यों है! और हम पूछते हैं कि इसे मिटायें कैसे! हमें विधियां बताने वाले लोग भी हैं। वे कहते हैं कि अगर क्रोध को मिटाना है तो क्षमाभाव ग्रहण करो! अगर सेक्स को मिटाना है तो ब्रह्मचर्य का व्रत लो! अगर हिंसा मिटानी है तो अहिंसा का पालन करो! इससे ज्यादा खतरनाक शिक्षा नहीं हो सकती है, और नहीं है। वे हिंसक को समझाते हैं कि तुम अहिंसा का भाव ग्रहण करो!
अब हिंसक अहिंसा का भाव कैसे ग्रहण कर सकता है? यह असंभावना है। हिंसक कैसे अहिंसक का भाव ग्रहण कर सकता है, यह कभी आपने सोचा? क्रोधी कैसे क्षमा की धारणा कर सकता है, यह कभी आपने सोचा? और कामी कैसे ब्रह्मचर्य का व्रत ले सकता है, यह कभी आपने सोचा? हालांकि, कामी ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं, और हिंसक अहिंसक का व्रत ग्रहण करते हैं, और लोभी अलोभ की बात

करते हैं, आसक्त अनासक्त के भाव लेते हैं! और हम कभी सोचते नहीं कि यह क्या हो रहा है?
इससे सिर्फ तनाव पैदा होता है। जो है और जो होना चाहिए, उसमें तनाव पैदा होता है। वह तनाव मस्तिष्क की सारी शक्तियों को, प्राण की सारी ऊर्जा को नष्ट करता है, और कुछ भी नहीं करता है।
हर आदमी तना हुआ है, क्योंकि हर आदमी जो है, उसे देखने को राजी नहीं है!
और जो नहीं है, वह होने की कोशिश कर रहा है! हर आदमी तना हुआ है, क्योंकि वह जो है, उसे देखता नहीं। और जो नहीं है, उसे होने की चेष्टा में संलग्न है! कितना तनाव पैदा नहीं हो जायेगा? इसी तनाव में मनुष्य की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर मनुष्य शक्ति का एक अंबार नहीं रह जाता, फिर उसके पास कुछ भी शक्ति नहीं होगी।
और एक दुष्परिणाम और घटित होता है कि जब बार-बार सोचता है कि यह हो जाऊं, यह हो जाऊं और बार-बार पाता है कि वह नहीं हो पाता, तब आत्मविश्वास क्षीण होता चला जाता है।
मैं कलकत्ता में था। एक बहुत अदभुत वृद्ध आदमी, जो चल बसे, उनसे मैं बात कर रहा था। उन्होंने खड़े होकर सभा में यह कहा कि मैंने अपनी जिंदगी में चार बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। सुनने वालों ने सोचा, बहुत गजब का काम किया, चार बार जीवन में व्रत लिया!
लेकिन वह बूढ़ा हंसने लगा और उस बूढ़े ने कहा, समझ लो चार बार व्रत रखा, उसका मतलब क्या होता है? और पांचवीं बार नहीं लिया तो यह मत समझना कि व्रत पूरा हो गया। पांचवीं बार नहीं लिया, क्योंकि समझ में आ गया कि व्रत पूरा नहीं हो सकता है। और चार बार व्रत के असफल होने से जो आत्मग्लानि पैदा हुई, वह अलग, जो आत्महीनता पैदा हुई वह अलग, जो अपने पर विश्वास खो गया वह अलग। दुनिया में नियम और व्रत देने वाले लोगों ने मनुष्य की आत्मा को हीनता एवं ग्लानि से भर दिया है। एक-एक आदमी की आत्मा ग्लानि से भर गयी है। उसे लगता है कि इससे कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि कितनी बार व्रत लिया और कुछ भी नहीं होता है। हर बार हार जाते हैं तो हारने की धारणा मजबूत हो जाती है। हिंसा नहीं छूटती, सेक्स नहीं छूटता। लेकिन सेक्स नहीं छूट सकता है, क्योंकि व्रत लेने वाले को बार-बार व्रत लेने से स्पष्ट हो जाता है।
और तब वह सोचता है कि महावीर का छूट गया होगा तो वह तीर्थंकर थे। हम साधारण आदमी हैं, यह हमारे वश की बात नहीं है। फिर वह सोचता है, पिछले जन्मों में दुष्कर्म किये होंगे, उनके कारण नहीं छूटता! फिर वह सोचता है कि भविष्य में कोशिश करते रहेंगे, जन्मों-जन्मों में छूटने वाली चीज है, धीरे-धीरे छूट जायेगी! और इस तरह आदमी जैसा है, वैसा ही रह जाता है और उसके जीवन में कोई क्रांति नहीं हो पाती।
नहीं, सब छूट सकता है--इसी क्षण। लेकिन कल कभी नहीं छूट सकता है। फिर क्या करें?
पहली बात है कि कल को छोड़ने की धारणा से छुटकारा चाहिए। यह ख्याल ही भूल जायें कि कल कुछ हो सकता है, क्योंकि आप अभी हैं--समय अभी है, घृणा अभी है। कल की बात क्यों करते हैं? और कल भी आप होंगे--यही घृणा होगी, यही समय होगा। फिर कल क्या करेंगे? कल कुछ नया हो जाने वाला है?
आज से आप कल और कमजोर होंगे। और आज से कल घृणा और मजबूत होगी। क्योंकि
एक दिन घृणा ने और यात्रा कर ली होगी, और आपको और कमजोर कर दिया होगा। कल आप कमजोर होंगे। आपका क्रोध कल और भी मजबूत होगा, क्योंकि कल तक क्रोध ने और यात्रा कर ली होगी, जड़ें फैला दी होंगी। कल तक क्रोध कई बार हो चुका होगा। फिर आप कहेंगे कि आगे, कल करूंगा!
और यह यात्रा जारी रहेगी। मरते वक्त आप क्रोधी मरेंगे, कामी मरेंगे, हिंसक मरेंगे। फिर आप सोचेंगे, अगले जन्म में होगा! अगले जन्म में आप और कमजोर हो जायेंगे! भविष्य आपको मजबूत नहीं करता है। भविष्य आपको कमजोर करता चला जायेगा, क्योंकि जिन चीजों से आप कमजोर हो रहे है, उनकी यात्रा जारी रहेगी।
अगर टूटना है कुछ तो आज टूटेगा, कल नहीं। अगर बदलना है कुछ तो अभी, कल नहीं।

लेकिन बदलने की चेष्टा में कुछ नहीं बदल जाता है, क्योंकि बदलने की चेष्टा आप करते हैं। आप, जो कि हिंसक हैं, क्रोधी हैं--कैसे अहिंसक हो जाइएगा? फिर क्या किया जा सकता है? कल बदला जा सकता है? और मैं फिर कह रहा हूं कि बदला ही नहीं जा सकता है। फिर क्या किया जा सकता है?
जागा जा सकता है। जो स्थिति है अभी, यहीं, उसके प्रति पूरी तरह जागा जा सकता है।
क्या है मेरे भीतर? एक-एक पल, रोआं-रोआं अहंकार से भरा हुआ है। उठना, बैठना अहंकार से भरा हुआ है। आंख के इशारे में घृणा है। चलते होते हैं-- हिंसा है, घृणा है। जिंदगी की पूरी-पूरी व्यवस्था में वह सब छिपा है, जो कभी-कभी प्रकट होता है। हम सोचते हैं, कभी-कभी मुझे क्रोध आता है! ऐसी भूल में मत पड़ना। क्रोध सदा रहता है, कभी-कभी प्रकट होता है। जो नहीं है, वह प्रकट कैसे हो जायेगा?
एक बिजली के तार में बिजली दौड़ रही है। बटन दबाते हैं तो बल्ब जल जाता
है, बटन नहीं दबाते तो बल्ब बुझा रहता है। लेकिन बिजली दौड़ रही है। बटन दबाइयेगा अभी तो बल्ब जलेगा--बिजली अगर दौड़ती होगी। अगर नहीं दौड़ती होगी तो बल्ब क्या जलेगा--बटन कोई कितना ही दबाये?
अगर मुझे आकर कोई गाली दे गया और भीतर क्रोध की करेंट दौड़ रही है तो क्रोध निकलेगा कहीं से। वह देता रहे गाली, बटन दबाता रहे, लेकिन भीतर अगर करेंट दौड़ रही है तो बल्ब जल जायेगा। लेकिन हम सोचेंगे कि कभी-कभी क्रोध होता है! कभी-कभी क्रोध नहीं होता है! क्रोध प्रतिपल पूरे वक्त है। घृणा कभी-कभी नहीं होती, वह मौजूद है। वह बिल्कुल मौजूद है, हमेशा। हिंसा पूरे क्षण मौजूद है।
हम हिंसा ही हैं, क्रोध ही हैं, घृणा ही हैं--और इसको जानना पड़ेगा, इसको पहचानना पड़ेगा, इसको भीतर खोजना पड़ेगा, इसके पूरे के पूरे दर्शन करने पड़ेंगे, और यह दर्शन तो अभी करने पड़ेंगे, क्योंकि हम अभी मौजूद है; वह सब भी मौजूद है, जिसका दर्शन करना है। खोलें अपने भीतर और अपने को पूरा देखें कि यह मैं हूं।
और जैसे ही यह दिखाई पड़ जाये कि यह मैं हूं--आप हैरान हो जायेंगे कि बदलाहट शुरू हो गयी। वह आपको करनी नहीं पड़ेगी। वह बदलाहट वैसे ही हो जाती है, जैसे सांप रास्ते पर खड़ा है और छलांग लगा जाते हैं। एक क्षण भी नहीं लगता छलांग लगाने में! सोचना भी नहीं पड़ता! अपने भीतर भी नहीं सोचना पड़ता कि मैं बचूं। छलांग हो जाती है।
अगर घृणा का पूरा तथ्य दिखाई पड़ जाये, आप इसी क्षण घृणा के बाहर हो जायेंगे--इसी क्षण। न कोई पिछला जन्म रोकेगा, न कोई पिछला कर्म रोकेगा। कोई रोकने वाला नहीं है। लेकिन दर्शन हो जाये तथ्य का--नग्न तथ्य का। वह जो नग्न तथ्य है हमारे भीतर जिंदगी का, वह दिख जाये, छलांग हो जाती है।
यह पहली बात मैंने कही--अतीत का बोझ छोड़ दें और भविष्य की मानसिक योजना भी कि मैं यह हो जाऊंगा, मैं यह हो जाऊंगा। नहीं, जो हम हैं, उसे जानना है; जो मैं हूं, उसे जानना है। बहुत कष्टपूर्ण है, नहीं तो हम भविष्य की योजना ही नहीं करते। बहुत कष्टपूर्ण है; जो हूं, उसे जानना, क्योंकि वह बहुत कुरूप है। वह बहुत कुरूप है, जो मैं हूं।
मैंने सुना है एक स्त्री थी, वह कभी दर्पण के सामने नहीं आती थी। और अगर कोई उसके सामने दर्पण ले आये तो वह दर्पण तोड़ डालती थी, क्योंकि वह कहती थी कि दर्पण बड़े गंदे हैं! इन दर्पणों के कारण मैं कुरूप दिखाई पड़ने लगती हूं! वह कुरूप थी। लेकिन जब तक दर्पण सामने नहीं आता था, तब तक तो कुरूप नहीं थी; तब तक वह सुंदर थी, क्योंकि तब तक कल्पना की बात थी। दर्पण सामने उसे बताता था कि वह क्या है। और दर्पण सामने नहीं होता था तो वह सुंदर थी। वह अपनी किसी कल्पना में थी। फिर किसी के देखने का तो सवाल नहीं था। तो वह दर्पण देखती ही नहीं थी, वह दर्पण तोड़ डालती थी और वह मानती थी कि दर्पण के कारण ही मैं कुरूप हो जाती हूं! और जब तक दर्पण नहीं होता है, मैं सुंदर होती हूं! वह औरत पागल रही होगी!
लेकिन हम सब भी वैसे ही पागल हैं। हम सब भी उसे देखने से बचते हैं, जो
हम हैं! और उसे देखने से बचने के लिए हमने भी कल्पना में एक इमेज बना रखी है। हर आदमी ने अपनी प्रतिमा बना रखी है कि मैं यह हूं। वह प्रतिमा

बिल्कुल झूठी है। वह प्रतिमा वही नहीं है, जो हम हैं। उसे छिपाने के लिए हमने प्रतिमा बना रखी है कि हम यह हैं।
हर आदमी अपने को कुछ और समझता है, उससे जो वह है। और आप इसे सोचेंगे तो
वह बहुत साफ दिखाई पड़ जायेगा कि जो मैं हूं, वह मैं कभी नहीं हूं। कभी स्वीकार नहीं करता कि मैं यह हूं! अगर कोई स्वीकार करने के लिए मजबूर करे तो झगड़ा करूंगा, लडूंगा, अपनी प्रतिमा को बचाने की कोशिश करूंगा कि मैं यही हूं।
लेकिन ध्यान रहे, ये सारी प्रतिमायें मेरे व्यक्तित्व को रूपांतरित होने से रोकेंगी। ये क्रांति में नहीं जाने देंगी, ये बदलने नहीं देंगी। एक नये आदमी का भीतर जन्म नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैंने एक झूठी प्रतिमा बना रखी है। मैं उसी प्रतिमा को मानकर जीता रहूंगा। और जो मैं हूं, वह मैं कुछ और ही हूं, उसका मुझे पता भी नहीं चलेगा! हमने इतना भीतर दबाया हुआ है कि हम पहचान भी नहीं पाते कि हम क्या हैं! फिर हम नये-नये वस्त्रों में, नये-नये मुखौटों में, नयी-नयी ओढ़नियों में छिपा लेते हैं, जो हम हैं।
मेरी दृष्टि में स्वयं की जो स्थिति है, उसको देखने से बड़ी और कोई तपश्चर्या नहीं। धूप में खड़ा होना बहुत आसान है, भूखे बैठ जाना भी बहुत आसान है। और अगर भूखे रहने की आदत डाल ली जाये, तब तो खाना खाना कहीं ज्यादा कठिन है, भूखा रहना ही फिर ज्यादा आसान है। नग्न खड़ा हो जाना भी बहुत आसान है। ये सब छोटी बातें हैं, जो कोई भी कर सकता है। इसमें तपश्चर्या का कोई भी संबंध नहीं है। असली तपश्चर्या--मैं जैसा हूं, उसे जानने से शुरू होती है, क्योंकि असली कष्ट वहीं से शुरू होते हैं, जैसा मैं हूं।
हम सब समझते हैं कि हम सत्य बोलते हैं। और हम सब अगर कोई झूठ बोलता हो
तो उसकी भारी निंदा करते हैं। और हम हैरान होते हैं कि इतना अच्छा आदमी इतनी छोटी-सी बात पर झूठ बोल गया! लेकिन हम कभी नहीं सोचते कि हमारा सारा व्यक्तित्व झूठ से खड़ा हुआ है। हम चौबीस घंटे झूठ में हैं। झूठ न केवल बोल रहे हैं, झूठ में जी भी रहे हैं! और यहां तक हालत पहुंच गयी है कि हमें पता भी नहीं होता है कि हम झूठ बोल रहे हैं!
मेरे एक अध्यापक थे। मैंने कई बार ऐसा अनुभव किया कि किसी भी किताब का नाम लिया जाये और वह जरूर कहते थे कि मैंने पढ़ी है! ऐसी कभी नहीं हुआ कि कोई किताब ऐसी हो, जो उन्होंने न पढ़ी हो! फिर मुझे शक हुआ। मैं एक दिन गया और मैंने एक ऐसी किताब का नाम लिया, जो है ही नहीं। और वह बोले, मैंने पढ़ी है! वह तो मैंने मैंने कोई पंद्रह-बीस साल पहले पढ़ी है। अब उसका मुझे ख्याल नहीं है, लेकिन किताब मैंने पढ़ी है! छोटी-सी बात थी, अब उनको झूठ बोलने से फायदा भी न था। लेकिन शायद उन्हें पता भी नहीं, शायद उन्हें ख्याल भी नहीं कि वह क्या कह रहे हैं! आदत का हिस्सा हो गया है, सहज बोल रहे हैं। उन्हें कहीं ख्याल भी नहीं है कि यह जो मैं बोल रहा हूं, उसमें क्या प्रयोजन है! एक आदमी झूठ बोलता हो, कुछ लाभ होता हो तो भी समझ में आता है। हम ऐसे झूठ भी चौबीस घंटे बोल रहे हैं, जिनसे कोई लाभ भी नहीं! लेकिन हमारा व्यक्तित्व ही, जिसको कहें झूठ हो गया है, वह झूठ बोल रहा है, वह बोलता चला जा रहा है! यह जो ऐसा झूठ है, इसे पहचानेंगे तो मन को बड़ी पीड़ा होगी। वह जो हमने अपनी सत्य बोलने वाले की प्रतिमा बना रखी है, एकदम खंड-खंड होकर नीचे गिर जायेगी। गिर जानी चाहिए।
वह जिसको भी आत्यंतिक सत्य की खोज है, जिसको भी जान लेना है कि क्या गहरे से गहरा जीवन का सत्य है, जिसको भी पहचान लेना है, उसे जिसे परमात्मा कहें, जिसे भी मुक्त हो जाना है, उसे सबसे पहले अपनी झूठी प्रतिमा को तोड़ना पड़ेगा। अपने हाथों से अपनी ही मूर्ति का भंजन करना होता है।
हम सोचते हैं कि शायद हिंसा का मतलब यह है कि किसी आदमी की छाती में छुरा मार दो तो हिंसा हो गयी। शब्द से भी छुरे की मार मार सकते हैं, आंख के इशारे से भी छुरे की मार मार सकते हैं।
जब आप अपने नौकर को देखते हैं, तब आपने ख्याल किया, वह आंख वही नहीं होती है, जब आप अपने मित्र को देखते हैं। और मित्र को जब आप देखते हैं तो आंख वही नहीं होती है, जब आप नौकर को देखते हैं! दृष्टि का यह भेद बहुत सूम हिंसा है।

हम सोचते हैं, पानी को छानकर पी लेते हैं, हम अहिंसक हो गये! हम सोचते हैं, हम मांसाहार नहीं करते! हम अहिंसक हो गये, ठीक है। हिंसा इतनी ही होती तो ठीक था। हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बहुत-बहुत रोयें-रोयें में समा गयी है। आदमी चलता है तो पता चल सकता है कि आदमी हिंसक है कि नहीं। उसकी चाल में हिंसा हो सकती है, उसके उठने-बैठने में हिंसा हो सकती है, उसके माथे के बालें में हिंसा हो सकती है और उसे पता भी नहीं होगा! वह सब उसमें जीते- जीते इतने पक गये हैं कि उसे भी पता नहीं चलेगा कि वह किस तरह की हिंसायें कर रहा है! वह हंसना हो सकता है और हंसने में हिंसा हो सकती है। वह किसी का व्यंग्य कर सकता है और व्यंग्य करने में हिंसा हो सकती है। वह मजाक कर सकता है और मजाक में हिंसा हो सकती है।
अगर भीतर हिंसक चित्त है तो हम जो भी करेंगे, उसमें हिंसा होगी।
यह भी हो सकता है, वह आदमी सारी दुनिया से छूटकर भाग जाये, वह जंगल में अकेला बैठ जाये तो भी हिंसा जारी रहेगी। हिंसा हमारे व्यक्तित्व के भीतर होने का सवाल है। वह हमारे भीतरी यौगिक का सवाल है। और उसको पहचानना पड़ेगा। हम उठते-बैठते, बात करते, चलते, सोते हिंसक तो नहीं हैं?
महावीर एक ही करवट सोते थे। बुद्ध एक ही करवट सोते थे। आनंद उनका भिक्षु वर्षों तक उनके साथ सोया था। वह बहुत हैरान हुआ कि वे रात में करवट क्यों नहीं बदलते! एक दिन आनंद ने बुद्ध को पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि आप रात भर करवट क्यों नहीं बदलते? मैंने कल पूरी रात जागकर देखा कि आप करवट बदलते हैं कि नहीं, आपने जहां हाथ रखा, जहां पैर रखा, फिर आप रात भर वैसा ही सोते रहे हैं!
बुद्ध ने कहा, अकारण करवट बदलने में हिंसा हो सकती है। कोई कीड़ा-मकोड़ा
आ गया हो, पीछे विश्राम करता हो, रात के अंधेरे में करवट बदलूं, अकारण--क्या जरूरत है? जीवन में एक बार करवट बदली थी और तब ख्याल आया कि बिना करवट बदले भी सोना हो सकता है तो क्यों बदलूं।
तो आनंद ने पूछा, क्या होश से सोते हैं पूरी रात, क्योंकि हमसे तो करवट बदल जाती है, हम बदलते थोड़े ही हैं।
बुद्ध ने कहा, होश से नहीं, मन जितना शांत हो गया है, उतनी करवट बदलनी
कम हो गयी है।
आप हैरान होंगे, मन जितना अशांत होगा, रात उतनी करवट ज्यादा बदली जायेंगी। वह जो करवट बदलना है, मौन हिंसा का हिस्सा है। एक अशांत आदमी बैठेगा तो बैठे टांग हिलाता रहेगा! कोई पूछे कि ये टांगें किसलिए हिल रही हैं, यह क्या हो गया है टांगों को? कुर्सी पर बैठ हैं लोग--टांगें क्यों हिलती हैं? भीतर वायलेंस है, वह वायलेंस कंपा रही है, उन टांगों को! हिला रही है! वह तो हमारे पूरे व्यक्तित्व की अंतर-धारा पहचाननी पड़ेगी कि ये पैर क्यों हिल रहे हैं अकारण। जैसे-जैसे आदमी शांत होगा, उसका शरीर भी शांत होता चला जायेगा, उसके कंपन कम हो जायेंगे, क्योंकि कंपन भीतर की हिंसा से पैदा होती है।
यह व्यक्तित्व की एक-एक पर्त को उघाड़कर देखना होगा। जैसा व्यक्तित्व है, उसे पहचानना होगा।
रास्ते पर आप जा रहे हैं, दो आदमी लड़ रहे हैं, आप खड़े होकर देख रहे हैं! आपने कभी भी नहीं सोचा होगा कि यह हिंसा है! दो आदमी लड़ रहे हैं, आप खड़े होकर क्यों देख रहे हैं? आपको खड़े होकर देखने में रस आ रहा है कि नहीं? और अगर झगड़े बिना मारपीट हुए ही समाप्त हो जायें तो आप थोड़ा-सा दुखी लौटेंगे कि नहीं? सोचेंगे व्यर्थ ही खड़े रहे, कुछ निकला नहीं! लेकिन अगर तेजी से झगड़ा हो जाये, छुरेबाजी हो जाये और लहू बह जाये तो आप थोड़े-से हल्के होकर लौटेंगे! मन थोड़ा निश्चिंत हो गया होगा। ऐसा लगेगा कि कुछ हुआ, कुछ देखा! आखिर ये फिल्में डिटेक्टिव, खूनी और हत्यारों की कहानियां--क्यों पढ़ी जाती हैं? ये हिंसक चित्त के कारण हैं। जितना दुनिया में हिंसक चित्त बढ़ता चला जायेगा, उतने हिंसक चित्र, हिंसक कथायें रस देती हैं। क्यों? क्योंकि हिंसक कथा देखते-देखते आप भूल जाते हैं कि आप कथा के हिस्से नहीं हैं--आप कथा के हिस्से हो जाते हैं! अगर आप एक जासूसी फिल्म देख रहे हैं तो आप भूल जाते हैं कि आप किसके साथ आत्मलीन हो जाते हैं! नायक के साथ आप एक हो जाते हैं! आप देखेंगे कि जब नायक घोड़े पर भागा जा रहा है तेजी से तो आप भी कुर्सी

पर अकड़कर बैठ गये हैं! आप क्यों अकड़कर बैठ गये हैं? यह आपकी रीढ़ में क्या हो गया है? यह आकस्मिक नहीं है, यह भीतर की हिंसा है! आप भी किसी घोड़े पर बैठकर इसी तरह, इसी गति से यात्रा करना चाहते हैं। किसी की छाती में इसी तरह भाला भोंकना चाहते हैं, वह भोंक नहीं सके हैं आप, कहानी को देखकर रस ले रहे हैं, तृप्त हो रहे हैं!
स्पेन में भैंसों के साथ आदमियों को लड़ाया जाता है! लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं! भारी धूप है, आग बरस रही है और वे बैठे हुए हैं कि एक आदमी भैंस से लड़ रहा है! और भैंस के सींग उसकी छाती में घुस गये हैं और लाखों लोग उत्सुकता और आतुरता से उसके गिरते हुए खून को देख रहे हैं? उनको क्या हो गया है? इन आदमियों को क्या हो गया है? कुश्ती देखने हजारों लाखों लोग इकट्ठे होते हैं, क्यों, किसलिए? भीतर की हिंसा को रस मिलता है!
यह रस पहचानना पड़ेगा, तो हमें अपनी प्रतिमा का पता चलेगा कि प्रतिमा कैसी है? यह हम कैसे आदमी हैं? यह हमारे भीतर क्या हो रहा है?
जो अखबार जितनी हत्याओं की, आत्महत्याओं की, स्त्रियों को भगाने की; जितनी ही खबरें छापता है, वह उतना ही ज्यादा बिकता है! कौन पढ़ता है? जो लोग पढ़ते हैं, उनके भीतर की किसी हिंसा को, किसी बात को रस उपलब्ध होता है। वे इसको पढ़कर सुखी होते हैं, कहीं उन्हें कुछ आनंद आता है! यह आनंद हिंसक है! और इसे पहचानना पड़ेगा, और यह तथ्य है। और किसी भविष्य में आप अहिंसक नहीं हो जाने वाले हैं। इन तथ्यों को आज और यहीं देखना पड़ेगा।
गांधीजी के आश्रम में एक दिन सुबह रामायण की कथा पढ़ी जा रही थी। एक प्रकरण में एक बहुत अदभुत प्रसंग आया कि सीता को रावण चुराकर ले गया है तो सीता अपने हाथ के, पैर के, गले के जो आभूषण थे, फेंकती गयी, ताकि पीछे राम खोजने आयें तो उन्हें रास्ते का पता हो सके कि सीता किस रास्ते से ले जायी गयी है। राम आये और उन्हें वे आभूषण भी मिल गये।
लेकिन राम आभूषण नहीं पहचान सके! उन्होंने लक्ष्मण को कहा कि सीता के आभूषण तुझे पहचान में आते ही होंगे, क्योंकि मैं तो कभी उन्हें देख ही नहीं पाया और कभी उनका ख्याल ही नहीं किया!
तो लक्ष्मण ने कहा कि मैं केवल पैर के आभूषण पहचान सकता हूं, क्योंकि मैंने पैर के ऊपर कभी आंख उठाकर नहीं देखा! तो गांधीजी ने कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है कि लक्ष्मण इतने दिन साथ था! तीनों थे--राम थे, सीता थी, लक्ष्मण थे। तीनों वर्षों जंगल में साथ हैं! और लक्ष्मण ने कभी आंख उठाकर नहीं देखा! यह बड़ी हैरानी की बात है! इसका क्या मतलब?
तो विनोबा ने कहा, इसका मतलब है कि लक्ष्मण ब्रह्मचारी थे और ऊपर आंख उठाकर उसने कभी नहीं देखा! उसने सिर्फ पैर देखे हैं!
गांधीजी तृप्त हुए और उन्होंने कहा, विनोबा की व्याख्या अदभुत है और बिल्कुल सही है।
लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि विनोबा की व्याख्या एकदम गलत है।
और अगर यह व्याख्या सही है तो लक्ष्मण एकदम व्यभिचारी चित्त का आदमी था, क्योंकि लक्ष्मण सीता को भी देखने में डरे, यह ब्रह्मचर्य का सबूत नहीं हो सकता, यह व्यभिचारी चित्त का सबूत हो सकता है। लक्ष्मण ब्रह्मचर्य की स्थिति में हो तो सीता को देखने में, न-देखने में क्या फर्क पड़ता है? ऐसे नजर नीचे ही नीचे रखनी पड़े, पैर ही पैर पर वर्षों तक, और नजर ऊपर जाने में डर लगे तो यह बहुत घबराएं हुए चित्त का लक्षण है। विनोबा ने लक्ष्मण की प्रशंसा नहीं की--इससे बड़ी कोई निंदा नहीं हो सकती।
लेकिन गांधी को विनोबा की बात जंची! वह जंची उनको, इसलिए नहीं कि वह बात सही है, वह जंची इसलिए कि उनके ब्रह्मचर्य की धारणाएं यही हैं।
यह ब्रह्मचारी चित्त का नहीं, अबह्मचारी चित्त का लक्षण है। यह हमें पहचानना पड़ेगा, यह हमें अपने भीतर की खोज करनी पड़ेगी। किसी स्त्री के चेहरे को हम इसलिए नहीं देख सकते कि भीतर काम है, वासना है। और किसी स्त्री के चेहरे को देखने से हम आंख इसलिए भी बचा सकते हैं कि भीतर काम है और वासना है। अगर भीतर काम और वासना नहीं है तो चेहरे को देखने की कोई विशेष चेष्टा होती है, न नहीं देखने की चेष्टा होती है। देखने की, या न देखने की विशेष चेष्टा भीतर के काम का सबूत है।

सहज आप वृक्ष को देख लेते हैं, ऊपर भी देखते हैं, नीचे भी देखते हैं।
और अगर वृक्ष सुंदर होता है तो आप कहते हैं, बहुत सुंदर है। लेकिन कोई नहीं कहता है कि यह आदमी कामी है। फूल है, खिला है। आप देख लेते हैं, अपने रास्ते पर बढ़ जाते हैं और कहते हैं, बहुत सुंदर हैं, और कोई नहीं कहता है, यह कामी है! और अगर एक स्त्री का चेहरा बहुत सुंदर है और देखते हैं, और आगे बढ़ जाते हैं और कहते हैं कि बहुत सुंदर हैं तो लोग कहेंगे कि यह आदमी कामी है!
यह आश्चर्यजनक बात है। अगर एक पुरुष का चेहरा सुंदर है और एक स्त्री खड़ी होकर देखती है और कहती है, सुंदर है तो हम कहेंगे, यह स्त्री कामी है! अगर सरलता जीवन में हो तो जैसे फूल सुंदर है, जैसे चांद सुंदर है, वैसे आदमी के चेहरे भी सुंदर होते हैं। और जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और भली होगी, उस दिन किसी अजनबी को रास्ते पर रोककर कह सकेंगे कि बहुत सुंदर आंखें हैं तुम्हारी, बहुत आनंद हुआ।
लेकिन आज अगर किसी को ऐसा रोककर कहें तो झगड़ा भी हो सकता है, क्योंकि चित्त कामुक है! अगर किसी स्त्री को रोककर कहें कि बहुत सुंदर आंखें हैं, बहुत खुश हुआ, तो झंझट हो जायेगी, क्योंकि स्त्री पूछेगी, तुम मेरे कौन हो-- पति हो, बेटे हो? पहले यह सिद्ध करो। अगर यह कोई भी नहीं हो तो तुमने अजनबी, राह चलते मेरी आंखों के सौंदर्य की बात कैसे की? ब्रह्मचारी को पैर पर नजर रखनी चाहिए। तो तुमने आंखें देखी ही कैसे?
लेकिन हमें पता नहीं है कि पूरी सभ्यता कामुक है! हमारे सारे प्रतिमान कामुकता के हैं! और हम पहचान भी नहीं पाते। और जब हम इस तरह की व्याख्याएं कर लेते हैं तो कामुकता को जानना मुश्किल हो जाता है। नहीं, भीतर एक-एक पर्त उघाड़कर देखनी है कि मैं जो कर रहा हूं, जो सोच रहा हूं, जो जी रहा हूं, वह क्या है? अपनी नग्नता में वह सीधा और सच्चा है। वह सीधा और सच्चा जो है, अगर देखा जा सके तो उससे तत्क्षण छुटकारा हो सकता है।
धर्म क्रांति है, धर्म विकास नहीं है। लेकिन क्रांति होती है तथ्य में, दर्पण में।
इसलिए मैंने आपसे यह कहा। मत सोचें कि कल आप ऐसे हो जायेंगे। आज क्या हैं, उसे देखें। भविष्य के तनाव को बिल्कुल छोड़ दें। वह प्रारंभ का ख्याल कि मैं यह हो जाऊंगा, बिल्कुल छोड़ दें और जो है, उसे जानें।
और आश्चर्य की घटना घटती है कि जो है, उसे जानते ही जो गलत है, वह विसर्जित हो जाता है; जो श्रेष्ठ है, वह प्रकट हो जाता है। जो है, उसे जानते ही, भीतर और भीतर प्रवेश शुरू हो जाता है, क्योंकि निकृष्ट गिरने लगता है, व्यर्थ गिरने लगता है, कुरूप विसर्जित होने लगता है, सुंदर खिलने लगता है, शिव प्रकट होने लगता है, सत्य की निकटता बढ़ जाती है। और एक दिन वह जो वस्तुतः हम हैं भीतर, वह प्रकट हो जाता है। एक दिन का मेरा मतलब कल से नहीं; एक दिन से मेरा मतलब--अभी, यहीं, इसी क्षण। जितनी तीव्रता होगी तथ्य को जानने की, सत्य के हम उतने ही निकट पहुंच जाते हैं।
लेकिन हमारे मन की जो आदत है, वह कहेगी, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। हम इसका प्रयोग करेंगे, बस बात खत्म हो गयी, वह सब व्यर्थ हो गया। आपका मन कह रहा होगा कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, करेंगे। करेंगे नहीं; करना है--अभी, आज, यहीं। सारा जोर मेरा इस क्षण पर है, क्योंकि इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं। जो होगा, इस क्षण में ही हो सकता है। नहीं करना हो, तो फिर कल के क्षण की बात सोची जा सकती है। न करना हो तो सोचना चाहिए, कल करेंगे। जो भी न करना हो उसे कल पर छोड़ देना चाहिए, जो भी करना हो--उसे अभी। अगर हम अतीत के बोझ और भविष्य की योजना से मुक्त हो जायें तो जीवन बदल जाता है। ऐसा जीवन, जिस पर अतीत का बोझ नहीं, भविष्य का तनाव नहीं, ऐसे जीवन को भागवत जीवन कहता हूं। ऐसा जीवन भगवान को उपलब्ध हो जाता है।
यह जो मैंने कहा, इसे आप इसी तरह मत सोचना कि मैं जो कह रहा हूं, वह ठीक
है या गलत; वह किसी किताब में लिखा है, कि नहीं लिखा है। इन्हें आप इस तरह से मत सोचना, क्योंकि इस तरह सोचने से कोई भी अर्थ, प्रयोजन नहीं है। इसे आप इस तरह सोचना कि जो मैंने कहा है, वह आपके भीतर सही है या गलत।
इस तरह मत सोचना, जैसा मैंने गांधी की बात कही, विनोबा की बात कही। न मुझे गांधी से मतलब, न विनोबा से। इस तरह मत सोचना कि गांधी ने ऐसा क्यों कहा, कहा कि नहीं कहा; या दूसरी बात कही विनोबा ने, कुछ और मतलब रहा होगा।

सवाल यह है कि जब आप किसी स्त्री के पैर पर ही आंख रखें और ऊपर आंख उठाने की हिम्मत न पड़े तो खोज करनी है कि बात क्या है! मैं डरा हुआ क्यों हूं? यह आंख मैं सरलता से क्यों नहीं उठाता? उससे मेरे कौन से संबंध हैं?
जब रास्ते पर रुक जाएं आप, किसी को लड़ते देखें तो उस वक्त देखना कि चित्त कोई प्रसन्नता अनुभव कर रहा है? चित्त चाहता है कि झगड़ा हो जाये? अपनी इस चित्त-दशा को खोजना, तो जो मैं कह रहा हूं, उसका कोई परिणाम निश्चित ही हो सकता है। और क्रांति भी हो सकती है।

नेति-नेति
सोलहवां प्रवचन

धारणाओं की आग

एक मित्र ने पूछा है कि क्रोध को हम जानते हैं, पहचानते हैं, लेकिन फिर
भी क्रोध मिटता नहीं! और आपने कहा कि यदि हम देख लें, जान लें, पहचान लें, तो क्रोध मिट जाना चाहिए!
इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लें। पहली बात यह है कि क्रोध के विरोध में हमें इतनी बातें सिखायी गयी हैं कि उन विरोधी बातों के कारण क्रोध को हम कभी भी सरलता से देखने में समर्थ नहीं हो पाते।
जिससे हमारा विरोध है, उसे देखना मुश्किल हो जाता है।
जिसके संबंध में हमने पहले से निर्णय ले रखा है कि वह पाप है, बुरा है, नरक का द्वार है, उसे हम देख कैसे सकेंगे? देखते ही हमारे भीतर विरोध दौड़ जाता है। विरोध के कारण हमारे और क्रोध के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है, वह दीवार देखने नहीं देती।
आपने कभी अपने दुश्मन के चेहरे पर गौर से देखा है? जिससे दुश्मनी हो, उसे देखने का मन ही नहीं करता। और फिर जिससे दुश्मनी है, उसे आप देखना भी चाहें तो नहीं देख सकते हैं। आप वही देख लेंगे, जो आपने दुश्मनी में मान रखा है। दुश्मन को देखना बहुत कठिन है, क्योंकि दुश्मन के संबंध में हमने निश्चित धारणा बना रखी है कि बुरा आदमी है। वह जो हमारी धारणा है, उसके ही हमें दर्शन हो जायेंगे। उसके नहीं, जो दुश्मन असलियत में है, जैसा है। क्रोध के, काम के, लोभ के, भय के संबंध में हमें इतनी बातें दिखायी गयी हैं कि हमारा पूरा चित्त धारणाओं से भर गया है!
क्रोध को हम नहीं जानते, क्रोध के संबंध की धारणा को ही जानते हैं। हमने क्रोध को कभी आमने-सामने एनकाउंटर नहीं किया। हमने कभी उसे वैसा ही नहीं देखा, जैसा वह है। हमें बताया गया है। और जो हमें बताया गया है, वह हम देख लेते हैं!
पहली बात है, निष्पक्ष मन से सोचें कि क्रोध क्या है? लेकिन आप कहेंगे, हमें मालूम है कि क्रोध क्या है। हम जानते ही हैं, सब किताबों में लिखा है, सब शिक्षाएं कहती है कि क्रोध आग है, नरक है, जहर है--क्रोध मत करना। वह हम मानते हैं।
यह हमने मान रखा है क्रोध को बिना जाने! क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है? जैसे किसी आदमी को हमने कभी नहीं देखा है और उसके संबंध में कोई धारणा बना लें और वह धारणा हम मजबूत करते चले जायें। और अगर वह आदमी कभी हमारे सामने भी आ जाये तो भी फिर देखना मुश्किल हो जायेगा। धारणा हमारे और उस आदमी के बीच में खड़ी हो जायेगी एक चश्मे की तरह। और जो हमारी धारणा का रंग होगा, वही हमें दिखाई पड़ जायेगा।
यह खेल सूम है। और इसलिए हम क्रोध के विरोध में तो बहुत बातें कहते हैं, लेकिन क्रोध से मुक्त नहीं हो पाते। हम मुक्त हो ही नहीं सकते, क्योंकि हम क्रोध को जान ही नहीं पाते। जिसे हम जानते नहीं, उससे मुक्त हम कैसे हो सकते हैं? मैं आपसे कहूंगा कि आप क्रोध को नहीं जानते। क्रोध के संबंध में जो आपने सुन रखा है, वही आप जानते हैं, वही आप पहचानते हैं। क्रोध की सीधी और नग्न अवस्था बिना किसी धारणा के, निष्पक्ष आपने नहीं जानी। उसे जानना जरूरी है।
पहली बात, मन की सारी वृत्तियों के संबंध में पूर्व निर्धारित विचार छोड़ दें। और मन के भीतर इस तरह जायें, जैसे हम अनजान दुनिया में जाते हों; जहां हम कुछ भी नहीं जानते, जहां सब अपरिचित है। हम एक भी चीज नहीं जानते हैं--मन के भीतर क्या है, क्या नहीं है! हम सिर्फ देखने जा रहे हैं, परिचित होने जा रहे हैं। सिर्फ क्रोध देखेंगे, ऐसे ही जैसे रास्ते के किनारे किसी वृक्ष पर फूल खिला है या किसी वृक्ष पर कांटे लगे हैं। ऐसे ही किसी रास्ते के किनारे से चित्त में प्रवेश होते क्रोध दिखेगा, घृणा दिखेगी, लोभ दिखेगा।

और आज सीधा मुकाबला होगा। आज हम बीच में कोई धारणा नहीं लिए हुए हैं। शास्त्र क्या कहता है, उससे हमें प्रयोजन नहीं। संत क्या कहते हैं, उससे हमें प्रयोजन नहीं। क्रोध मेरे पास है, मैं खुद क्यों न देख लूं। इसमें संतों से उधार सीखने की क्या जरूरत है? लेकिन हमारा पूरा दिमाग उधार है। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं! अपने पास जो है, उसकी पहचान भी अपनी नहीं! वह भी हम किसी और से पूछने जाते हैं!
रामकृष्ण एक दिन बहुत हंसने लगे, बहुत लोग इकट्ठे थे। और कहने लगे, आज बहुत मजा आया। एक आदमी उनसे मिलने आया था। उसके पड़ोस के मकान में रात आग लग गयी थी। मैंने उसने पूछा, तेरे पड़ोस के मकान में सुना है, आग लगी थी? उसने कहा, नहीं! मैंने तो अखबार देखा, अखबार में तो कोई खबर नहीं! पड़ोस के मकान में लगी आग, उसे सुबह अखबार लगी है आग! आग लगती तो अखबार में खबर होती। रामकृष्ण कहते हैं कि उस आदमी से यह सुनकर मुझे बहुत ही हंसी आयी। पड़ोस के मकान की आग भी उसने खुद नहीं देखी, वह भी अखबार से उधार देखेगा! पड़ोस का मकान फिर भी दूर है, लेकिन अपने भीतर जो है, वह भी हम दूसरे से सीखने जाते हैं--कि क्रोध कैसा है, प्रेम कैसा है, घृणा कैसी है! वह भी हम पूछते हैं शास्त्रों से! वे पुराने अखबार हैं, हजार साल पहले! वह आदमी तो फिर भी नया अखबार देखता था। और जितना पुराना शास्त्र हो, हम कहते हैं, उतना ही श्रेष्ठ है! उतनी ही पुरानी खबर हम पढ़ने जाते हैं! और उसमें से हम जांच करेंगे, हमारे भीतर क्या है!
क्या सब पुराने आदमी हैं, कोई नया आदमी नहीं है? क्या अपने भीतर जो है, उसे भी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत है? लेकिन ऐसा ही हुआ है। पूरी मनुष्यता पुरानी हो गई है। कोई आदमी मौलिक नहीं है। जब कोई आदमी मौलिक होगा, तभी क्रांति हो जायेगी; क्योंकि वह चीजों को जानेगा, वह क्या है। हमने शब्द सीख रखे हैं! हम कहते है, क्रोध बुरा है! न हम क्रोध को जानते हैं, न हम बुरा क्या है, इसको जानते हैं। बस सीख लिए हैं शब्द तोते की तरह और हम उन्हीं शब्दों पर जीते चले जाते हैं! अगर कोई अच्छे शब्द दे दिये जायें क्रोध को तो हो सकता है, हम उसे बुरा कहना भी बंद कर दें! कहते हैं, कुछ क्रोध ऐसे होते हैं, जो अच्छे होते हैं! फिर क्रोध में बुराई नहीं रह जाती।
धार्मिक क्रोध भी होते हैं! क्रोध कैसे धार्मिक हो सकता है? और नरक भी धार्मिक हो सकता है! धर्मयुद्ध भी होता है! धार्मिक क्रोध भी होते हैं, धार्मिक हिंसा भी होती है! फिर हम शब्द नया दे देते हैं, फिर हम लड़ लेते हैं, फिर हमें कोई फिक्र नहीं है।
1952 में वहां हिमालय की तराई में, नीलगाय नामक जानवर ने खेतों में बहुत नुकसान किया हुआ था। पार्लियामेंट तक बात उठी कि क्या करें! तो लोगों ने कहा कि गाय है, उसको गोली तो मारी नहीं जा सकती। नाम ही है उनका नीलगाय। नाम वह नहीं है। लेकिन नाम में गाय जुड़ा होना चाहिए तो धार्मिक उपद्रव, दंगे हो जायेंगे! तो एक समझदार सदस्य ने सलाह दी कि पहले उसका नाम नीलघोड़ा रख दिया जाये। फिर उसका नाम पार्लियामेंट ने नीलघोड़ा रख दिया! फिर उस नीलघोड़े को गोली मारी गयी और हिंदुस्तान में किसी शंकराचार्य ने नहीं कहा कि हमारी गाय को गोली मार दी! वह नीलघोड़ा हो गयी! वह बेचारी वही की वही रही। वह जो थी, वही रही, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। लेकिन नीलघोड़े को गोली मार दी तो हिंदुस्तान में क्या नुकसान होने वाला है! नीलगाय को गोली लगती तो झंझट खड़ी हो सकती थी!
हम शब्द और लेबल से जीते हैं! बड़ी होशियारी की बात है। नाम बदल दें तो
सब खत्म हो जाता है!
क्रोध, बस एक नाम हमने सीख रखा है। हिंसा, एक नाम हमने सीख रखा है। लोभ,
एक नाम हमने सीख रखा है। और उस नाम के साथ हजारों साल का प्रचार है। और हमारा मस्तिष्क सिर्फ प्रचार से जी रहा है! और यह आपको पता नहीं! शायद प्रचार के द्वारा कुछ भी सत्य मालूम पड़ने लगता है। जो भी प्रचारित किया जाये, वही सत्य मालूम पड़ने लगता है! और जब सत्य मालूम पड़ने लगता है, तो जो सत्य है, उसको देखना मुश्किल हो जाता है। प्रचार से बचना जरूरी है, अगर क्रोध को देखना हो, जानना हो, पहचानना हो।

तो प्रचारित जो दिमाग में संस्कार बिठा दिया गया है कि पाप है, बुरा है, उसको दोहराये चले जाते हैं! फिर जैसे ही क्रोध आ जाता है, तो क्रोध को तो जानते नहीं हैं, वह हमें पकड़ लेता है! क्रोध हम पर सवार हो जाता है! हम दुखी होते हैं! दूसरे को दुख दे लेते हैं। जब क्रोध चला जाता है तो तोतों की रटी बात फिर पीछे लौट आती है और वही कहने लगते हैं कि क्रोध बहुत बुरा है, क्रोध नहीं करना चाहिए! क्रोध करके बहुत पाप किया! फिर हम कसम खाते हैं, पश्चात्ताप करते हैं कि अब नहीं करेंगे!
और हमें पता नहीं कि जिसको हम कह रहे हैं, नहीं करेंगे, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है! जब वह आ जायेगा तो हम एकदम हार जायेंगे, क्योंकि जिसे हम पहचानते ही नहीं, उससे जीत कैसे संभव है? इसलिए रोज आदमी तय करता है, अब क्रोध नहीं करेंगे और रोज क्रोध करता है! फिर और जोर से तय करता है, फिर और जोर से कसम खाता है, संकल्प लेता है, भगवान के मंदिर में जाकर प्रण करता है, साधु-संन्यासियों के सामने प्रतिज्ञा और व्रत लेता है--और फिर वही होता है!
नहीं, ये व्रत और प्रतिज्ञाएं और यह संकल्प दो कौड़ी के हैं। इनसे कुछ होने वाला नहीं है। असली सवाल है कि जिसे आप बदलना चाहते हैं, उससे आप परिचित हैं।
पहली बात, ये सारी धारणाएं छोड़ दें। कौन कहता है, क्रोध बुरा है? कौन कहता है, सेक्स बुरा है? हमें जब पता ही नहीं है तो हमारे भीतर हम खुद ही जायेंगे। हम दूसरे से पूछने क्यों चले जायें? भीतर प्रवेश करें निष्पक्ष मन लेकर। लेकिन ऐसे मत सोचना।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमने आपकी पद्धति से भी कोशिश की, लेकिन अभी तक छुटकारा नहीं हुआ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि चाहना कठिन है। छुटकारा चाहने में वह मानी हुई बात बैठी हुई है कि क्रोध बुरा है। मैं आपसे कहता हूं कि जानिये क्रोध को, छुटकारा हो जायेगा। छुटकारा पाने के लिए अगर जानने गये तो निर्णय पहले से मौजूद है कि बुरा है, उससे छूटना है; फिर नहीं छुटकारा होगा।
वे कहते हैं, आपकी बात भी हम मान लेते हैं, लेकिन छुटकारा कब होगा? आपने फिर मेरी बात समझी ही नहीं। छुटकारे की जो बात आप कहते हैं, वह दूसरे की माने हुए बैठे हैं कि बुरा है क्रोध, इसलिए छुटकारा चाहिए। फिर अगर मेरी बात सुनते हैं तो कहते हैं, अच्छी बात है। अगर इस तरकीब से छुटकारा होता हो तो हम यह तरकीब भी करते हैं, लेकिन छुटकारा होगा कि नहीं? हम धारणा भी छोड़ने को राजी हैं, लेकिन छुटकारा होगा कि नहीं?
अब कैसे धारणा छोड़ रहे हैं आप! अगर धारणा छोड़ रहे हैं तो छुटकारे का सवाल समाप्त हो जाता है। हम जानने जाते हैं, क्या है। और जानने से जो होगा, वह होगा। जानने से छुटकारा होता है। छुटकारा पाने के लिए जान नहीं सकते हैं आप। छुटकारा पाने के लिए--जानने की प्रक्रिया में बाधा पड़ेगी, जान नहीं सकेंगे। क्योंकि जिससे छूटना है जल्दी, जिससे मुक्त होना है, उसे जानने का धीरज, जानने की सरलता कैसे हम बरत पायेंगे?
अगर कोई आदमी आपके घर आये और आप चाहते हैं कि जल्दी चला जाये, जल्दी चला जाये। फिर आपने कभी ख्याल किया है कि आप उसकी बात नहीं सुन पाते हैं। ऐसा दिखता है कि आप सुन रहे हैं, लेकिन भीतर चल रहा है कि यह आदमी कब जाये। वह भी कहता है कि आप जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। लेकिन भीतर यही होता है कि आदमी जल्दी चला जाये। भीतर कुछ नहीं सुनाई पड़ रहा है! न वह आदमी दिखाई पड़ रहा है! बार-बार घड़ी देख रहे हैं और लग रहा है कि कितनी देर हो गयी! कब चला जाये। और यह सारा चल रहा है और ऊपर से यह भाव चल रहा है! हम देख रहे हैं, हम सुन रहे हैं, हम स्वागत कर रहे हैं--और भीतर? भीतर एक दीवार खड़ी हो गयी है, क्योंकि उस आदमी को सहन नहीं कर पा रहे हैं।
क्रोध को जानना है, सेक्स को जानना है, हिंसा को जानना है। छुटकारे का क्या सवाल है! अभी हम जानते नहीं, इसलिए पहले से निर्णय न करें कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है, वह बुराई से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि अच्छा वह दूसरे के अनुभव के आधार पर तय कर रहा है! और दूसरे के अनुभव के आधार पर पक्षपात कर रहा है।

और पक्षपात स्वयं का ज्ञान पैदा नहीं होने देता। वह एक चक्र में पड़ा है, जिसमें पूरा जीवन नष्ट कर लेगा और कहीं भी नहीं पहुंच सकता है।
नहीं, जानना है। और जानने से मुक्ति आती है। सारी धारणा छोड़ दें। क्रोध क्या है--मत कहें कि वह बुरा है, मत कहें कि अच्छा है, मत कहें कि मैं जानता हूं। इतना ही कहें कि मैं नहीं जानता हूं। मैं जानना चाहता हूं। इतनी सरलता से कि मैं नहीं जानता हूं और जानना चाहता हूं। अगर आपका मन तैयार है तो आप क्रोध को जान लेंगे। और जानते ही क्रोध से मुक्त हो जायेंगे। जानने के बाद एक क्षण भी कोई बंधन नहीं है किसी बात का।
यह ऐसा ही है, जैसे एक मकान के भीतर मैं बैठा हूं और मैं कहूं कि मुझे दरवाजे से बाहर निकलना है। और आपसे मैं कहूं, आप आंख खोलकर गौर से देखिये, दरवाजा कहां है! आपको दिख जायेगा और आप निकल जायेंगे। वह आदमी कहे कि ठीक है, हमें दरवाजा दिख गया, तो भी हम निकलेंगे कैसे! और आदमी कहे कि दरवाजा तो दिखाई पड़ता है, लेकिन मैं निकल नहीं पाता! निकलता हूं तो दीवार से टकरा जाता हूं!
तो हम कहेंगे कि वह दरवाजा कहीं की सुनी हुई खबर होगी कि यहां दरवाजा है। आपको नहीं दिखाई पड़ता है, नहीं तो फिर कैसे दीवार से टकरा जाते? लेकिन दरवाजा मुझे मालूम है! तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे दरवाजा मालूम नहीं होगा, अन्यथा निकल गये होते, दीवार से क्यों टकराते? सुना होगा, यहां दरवाजा है। वह सुनी हुई बात पकड़ ली है, इसलिए टकराहट होती है। और जिसे दरवाजा दिखाई पड़ता है, वह नहीं पूछता कि मैं कैसे निकलूं। दिखाई पड़ना और निकल जाना, एक ही साथ हो जाते हैं।
पहली बात, अंतःवृत्तियों के तथ्य का सीधा ज्ञान, उधार ज्ञान नहीं।
अभी हम क्या करते हैं? अगर मैं आप पर क्रोधित हो जाऊं तो आप क्या करेंगे, पता है आपको? अगर मैं आपको गाली दूं और अपमानित करूं और मैं आप पर क्रोधित हो जाऊं तो आपके भीतर क्रोध जगेगा। उस क्रोध में आप क्या करेंगे, आपको पता है? आज तक आपने क्या किया है, आपको पता है? उस क्रोध में आप अपने को भूल जायेंगे और मेरे बाबत विचार करेंगे कि इस आदमी ने ऐसा क्यों कहा? यह आदमी बुरा है, इस आदमी से कैसे बदला लूं? जब आप क्रोध से भरेंगे तो आपका पूरा ध्यान उस पर चला जायेगा। और क्रोध आपके भीतर होगा और ध्यान मुझ पर होगा। आप क्रोध को जानने से वंचित हो जायेंगे, क्योंकि ध्यान मुझ पर है और क्रोध भीतर चल रहा है।
अब दोबारा क्रोध आये तो उसकी फिक्र छोड़ दें। गाली दी है अब--तो भीतर पहुंच जायें, कमरा बंद कर लें और भीतर झांकें। और बैठ जायें, देखें, जहां भीतर क्रोध है। जिसने क्रोधित किया है, उस पर हमारा ध्यान होता है। जो क्रोधित हो गया है, उस पर हमारा ध्यान नहीं होता है! इसलिए हम क्रोध को कभी नहीं जान पाते। आग यहां भीतर जलती है और नजर हमारी लगी होती है उस आदमी पर! और हम विचार कर रहे होते हैं कि क्या करें, कैसे बदला लें। सारा चित्त वहां है और यहां भीतर आग लगी है! इस हालत में कैसे आप जान पायेंगे?
एक युवक खेल रहा है हाकी। पैर में चोट लग गयी है, खून बह रहा है। उसे पता नहीं, जब तक वह खेल रहा है! खून बह रहा है, पैर में चोट लग गई है, नाखून टूट गया है। दूसरे को खून बहता हुआ दिखाई पड़ रहा है। उसे पता नहीं, उसका सारा ध्यान खेल पर लगा हुआ है! वहां ध्यान नहीं है उसका! खेल बंद होगा और उसे ध्यान आयेगा कि अरे! यह तो पैर में चोट लग गयी! कब से खून बह रहा है, कितना खून गिर गया है, लेकिन मुझे पता ही नहीं है!
पता हमें उन्हीं चीजों का होता है, जहां हमारा ध्यान होता है। पता का अर्थ है जहां ध्यान है।
जब आपको क्रोध होता है तो आपका ध्यान कहां होता है? क्रोध ऊपर होता है। अगर क्रोध ऊपर होगा तो आप क्रोध को जान लेंगे। लेकिन क्रोध ऊपर नहीं होता है। जिसने क्रोध को जगाया है, वह निमित्त भर होता है। हमारी आंखें वहां अटकी होती हैं। हो सकता है वह आदमी यहां न हो, वह लंदन में बैठा हो। लेकिन क्रोध हमारा उस पर होगा।
एक आदमी ने लंदन से आपको चिट्ठी लिख दी और गालियां लिख दीं। और आप चिट्ठी को फाड़कर फेंक देंगे! ध्यान लंदन के उस आदमी पर चला जायेगा! और वह आदमी जो भीतर बैठा है, वह क्रोध में जल रहा है, आग में भुन रहा है, इस पर

ध्यान नहीं होगा! जहां ध्यान होगा, वहां पता चलेगा। जहां ध्यान नहीं है, वहां कैसे पता चलेगा?
लेकिन आप कहेंगे कि मैंने अनेक बार क्रोध किया है, मुझे क्रोध का पता नहीं है? मुझे क्रोध का पूरा पता है, क्योंकि मैंने जिंदगी भर क्रोध किया है। लेकिन हमेशा आपका ध्यान क्रोध के क्षण में वहां चला गया है, जहां क्रोध नहीं है। वहां से लौट गया है, जहां क्रोध है। और इसलिए ध्यान और क्रोध का मिलन कभी नहीं हो पाया है।
जब क्रोध चला जायेगा। वह जायेगा आगे, आप वापस लौट आयेंगे लंदन के दुश्मन से। तब आप कहेंगे, अरे! मकान गिर गया, जगह-जगह दीवारें गिर गयीं, यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो पश्चात्ताप हो गया। अब मैं निर्णय करता हूं, क्रोध कभी नहीं करूंगा। फिर क्रोध, फिर वही दोहरायेंगे बात, फिर नजर वहां चली जायेगी, जहां क्रोध चूक जायेगा। नहीं, क्रोध पर करना है ध्यान, तब आप जान सकेंगे। जिस पर ध्यान होता है, उसे हम जान पाते हैं। लेकिन आप कहेंगे क्रोध पर कैसे ध्यान करेंगे, क्योंकि क्रोध में हम होश में नहीं रहते। ध्यान-व्यान कौन करेगा। वहां तो हम बेहोश हो जाते हैं।
निश्चित ही अब तक ऐसा ही हुआ है। और इसलिए आप क्रोध को जान नहीं पाये। आपको सिर्फ गये हुए क्रोध की स्मृति है। मरे हुए क्रोध की, अतीत के क्रोध की स्मृति है। वर्तमान क्रोध को आपने कभी नहीं जाना। भविष्य के क्रोध के लिए निर्णय है और अतीत के क्रोध की स्मृति है! वर्तमान क्रोध की कोई अनुभूति, वर्तमान क्रोध का कोई साक्षात्कार नहीं है। और वर्तमान क्रोध का साक्षात्कार हो जाये तो न अतीत की स्मृति की जाती है, न भविष्य की योजना की। वर्तमान में क्रोध को जो जान लेते है, उनकी हालत वैसी ही हो जाती है, जैसे आग लगे हुए मकान में आदमी छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है। और जान लेता है कि यह आग मैं ही लगाता हूं अपने ही मकान में।
बुद्ध ने कहा है कि जब मैंने जाना तो मैंने पाया है कि अदभुत हैं वे लोग, जो दूसरों की भूल पर क्रोध करते हैं! क्यों? तो बुद्ध ने कहा कि अदभुत इसलिए कि भूल दूसरा करता है, दंड वह अपने को देता है। गाली मैं आपको दूं और क्रोधित आप होंगे। दंड कौन भोग रहा है? दंड आप भोग रहे हैं, गाली मैंने दी! क्रोध में जलते हम हैं, राख हम होते हैं, लेकिन ध्यान वहां नहीं होता! इसलिए धीरे-धीरे पूरी जिंदगी राख हो जाती है। और हमको भ्रम यह होता है कि हम जान गये हैं! हम जानते नहीं-- क्रोध की सिर्फ स्मृति है और क्रोध के संबंध में शास्त्रों में पढ़े हुए वचन हैं और हमारा कोई अनुभव नहीं।
जब क्रोध आ जाये तो उस आदमी को धन्यवाद दें, जिसने क्रोध पैदा करवा दिया, क्योंकि उसकी कृपा, उसने आत्म-निरीक्षण का एक मौका दिया; भीतर आपको जानने का एक अवसर दिया। उसको फौरन धन्यवाद दें कि मित्र धन्यवाद, और अब मैं जाता हूं, थोड़ा इस पर ध्यान करके वापस आकर बात करूंगा। द्वार बंद कर लें और देखें कि भीतर क्रोध उठ गया है। हाथ-पैर कसते हों, कसने दें; क्योंकि हाथ-पैर कसेंगे। हो सकता है कि क्रोध में, अंधेरे में, हवा में, घूंसे चलें; चलने दें। द्वार बंद कर दें और देखें कि क्या-क्या होता है। अपनी पूरी पागल स्थिति को जानें और पागलपन को पूरा प्रकट हो जाने दें अपने सामने। तब आप पहली बार अनुभव करेंगे कि क्या है यह क्रोध। जब आप इस पागलपन की स्थिति को अनुभव करेंगे तो कांप जायेंगे भीतर से, कि यह है क्रोध। यह मैंने कई बार किया था, दूसरे लोगों ने क्या सोचा होगा!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, क्रोध संक्षिप्त रूप में आया हुआ पागलपन है, थोड़ी देर के लिए आया हुआ पागलपन है, क्षणिक पागलपन है। क्षण भर में आदमी उसी हालत में हो गया, जिस हालत में कुछ लोग सदा के लिए हो जाते हैं। क्रोध में जलते हुए आदमी में और पागल आदमी में मौलिक अंतर नहीं है। अंतर सिर्फ लंबाई का है। पागल आदमी स्थायी पागल है, क्रोधी आदमी अस्थायी पागल है। दूसरे ने आपको क्रोध में देखा होगा, इसलिए दूसरे कहते है कि यह बेचारा कितना पागल हो गया है, यह क्या करता है? आपने कभी देखा है अपने को? अतः द्वार बंद कर लें। और अपनी पूरी हालत को देखें कि यह क्या हो रहा है। और रोकें मत, प्रकट होने दें, जो हो रहा है। और उसका पूरा निरीक्षण करें, तब आप पहली दफा परिचित होंगे, यह है क्रोध।

लेकिन ऐसा न सोचना कि कोई क्या कहेगा--कहीं पत्नी न देख ले! पत्नी बहुत दफा देख चुकी है आपके पागलपन को। और आप भी अपनी पत्नी के पागलपन से भली- भांति परिचित हैं। और बेटे भी आपको जानते हैं अच्छी तरह और आप भी बेटों को जानते हैं। लेकिन कोई चिंता मत करना, बल्कि उनसे कह देना, क्रोध का निरीक्षण करता हूं और पागल हो जाता हूं, अभी उसको जानना चाहता हूं। हो सकता है जोर से आवाजें निकलने लगे, गाली निकलने लगे। दीवार पर घूंसा पड़ने लगे आपका, पड़ने दें। एक बार पूरी तरह क्रोध को पूरी स्थिति में देख लेना, उसके बाद दोबारा वह नहीं होगा, क्योंकि तब आप पूरा परिचित होंगे ही। यह स्थिति है! दर्पण लगा लेना और उसमें देखते जाना क्या-क्या होता है? यह क्या हो रहा है?
और एक बार भी पूरा नग्न दर्शन भीतर का, क्रोध के पूरे वर्तुल का, पूरे बवंडर का हो जाये तो आप पहली दफा अनुभव करेंगे, क्या है क्रोध। और उसके बाद कसम लेने की जरूरत नहीं होगी कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। उसके बाद कोई आयेगा और कहेगा कि अपनी जायदाद आपके नाम लिखता हूं, आप फिर से पागल हो जायें एक मिनिट के लिए। और कोई कहेगा, दुनिया आपको देते हैं। तो आप कहेंगे, क्षमा करें, मैंने जान लिया कि क्या है क्रोध।
जो मैं क्रोध के लिए कह रहा हूं, वह सारी चीजों के लिए है--चाहे लोभ हो, चाहे सेक्स हो, चाहे कुछ भी हो।
जिंदगी में जो हमें पकड़े हुए है, उसको जानना है, उसको जानने से उसका परिवर्तन है। ऐसा आपने जाना है तो फिर दोबारा नहीं होगा।
मगर बचपन से ही हमने दबाया है। छोटा-सा बच्चा भी क्रोध करने लगता है
तो हम कहते हैं, अभी नहीं! अभी दूसरा मौजूद है, मेहमान घर में आया हुआ है, अभी नहीं! वह बेचारा पी जाता है! बचपन से ही पीये हैं क्रोध को, वह हमारी नस, नाड़ी में भर गया है, सब तरफ फैल गया है। फिर जिंदगी भर पीते ही चले गये हैं, कभी प्रकट ही नहीं किया!
अगर मेरा वश चले तो मैं आपको कहूं, बच्चे को रोकना मत। जब बच्चे क्रोध में भर जायें तो रोकना मत। और आईना लेकर सामने कर देना। और कहना कि करो जोर से और देखो, कैसी हालत में हो तुम, और क्या हो गया है--इसे तुम देखो। हम सब भी घर के लोग बैठकर तुम्हारा निरीक्षण करेंगे, क्योंकि तुम्हारे निरीक्षण से हो सकता है हमको भी लाभ हो जाये। रोकना मत उसे।
सारी शिक्षा गलत है। पूरे व्यक्तित्व का, मनुष्य को बनाने का विज्ञान गलत है। इसलिए गलत आदमी पैदा होगा। अगर बचपन से बच्चे को उसके क्रोध की पूरी की पूरी झलक मिलनी शुरू हो जाये, जवान होते-होते वह क्रोध के बाहर हो जायेगा। आज वह गंदगी के बाहर है। वह गंदे कपड़े नहीं पहनता, लेकिन गंदी आत्मा को पहने रहता है! यह कैसे संभव है! यह संभव इसलिए हो सका है कि हमने कभी पहचान भी नहीं की है कि आत्मा की गंदगी क्या है? ऊपर से मुस्कुराहट थोप ली है, भीतर से क्रोध जल रहा है! वह जलता रहा है। क्रोध बढ़ता रहा है। वह उसके प्राणों को घेरे हुए है।
हर आदमी एक ज्वालामुखी है, जिसमें चारों तरफ वह किसी तरह अपने को संभाले हुए है। जब रास्ते पर आप निकलते हैं, तब ख्याल करना अपने मन पर आप, कि क्या-क्या करने का मन नहीं होता है! घर बैठे हैं, तब भी क्या-क्या करने का मन नहीं होता है! कितनी बार कितने लोगों की हत्या नहीं की है! कितनी बार जरा-सी बात में किसी की गर्दन काट दी! भीतर काटी, मन में काटी! कितनी बार नहीं सोचा, जहर पिला दें इस आदमी को। वह किया या सोचा बराबर है, उसमें कोई फर्क नहीं है। कमजोर हैं, इसलिए कर नहीं सके। लेकिन जहां कर सकते थे, वहां पूरी तरह से कर लिया है। कितनी दफे खुद की आत्महत्या नहीं कर ली है! मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जिंदगी में अपने आप दो चार बार अपने को खत्म करने का विचार न किया हो। खोजना ही मुश्किल है ऐसा आदमी, जिसने दस पच्चीस दफा नहीं सोचा कि खत्म कर दो अपने को। ऐसा बेटा खोजना मुश्किल है, जिसने बाप को खत्म करने की बात न सोची हो। ऐसा पति खोजना मुश्किल है, जिसने पत्नी की गर्दन कई दफे न दबाने की सोची हो। यह सब चल रहा है भीतर, 1 बाहर से कोई कहता नहीं! इसलिए तो दुनिया संभली हुई है।

अगर भीतर के राज सब आदमी खोल दें तो आज पता चल जाये कि दुनिया की क्या हालत है। अगर पांच आदमी तय कर लें कि हम अपनी सब असलियत की बातें, जैसी होंगी, वैसी कह देंगे। तब आपको पता चलेगा कि दुनिया की हालत क्या है। दिन में पच्चीस दफा वह आदमी एक दूसरे से आकर कहेगा कि अभी मैंने तुम्हारी गर्दन में आकर छुरा मारा है। वह हम सब कर रहे हैं!
मैंने सुना है कि नियाग्रा जलप्रपात के पास एक पत्थर ऐसा है कि उस पत्थर पर खड़ा होकर जो भी भाव किया जाये, वह पूरा हो जाता है। कई लोग जाकर वहां भाव करते हैं। एक जोड़ा वहां खड़ा हुआ है पति और पत्नी का। दोनों आंख बंद करके प्रयोग कर रहे हैं। एकदम पत्नी को चक्कर आया और पत्थर के नीचे नियाग्रा में गिर पड़ी!
उस पति ने कहा, हे भगवान, मालूम होता है भाव पूरे हो जाते हैं! वह बेचारा यहां भाव कर रहा था खड़े होकर कि कहीं ऐसा हो जाये और पत्नी नियाग्रा में चक्कर खाकर गिरे।
यह हमारे भीतर है सब, इसको हम छिपाये हुए हैं, इस ज्वालामुखी पर बैठे हुए हैं! और फिर हम पूछने जाते हैं, ध्यान कैसे होगा! और नीचे देखते नहीं कि ज्वालामुखी पर बैठे हैं, जो पूरे वक्त हिल रहा है। नीचे से धक्के लग रहे हैं और पूछ रहे हैं कि ध्यान कैसे हो! शांति कैसे मिले! मोक्ष का रास्ता क्या है!
पहले इस ज्वालामुखी का निपटारा करिये, इस ज्वालामुखी को जानिये, समझिये जो हम हैं। यह हमारी असलियत है। न भगवान से कोई लेना-देना है, न भगवान से कोई संबंध है, न सत्य से कोई मतलब है। हमारी यह जलती हुई आग, यह हमारा व्यक्तित्व असली सवाल है। और इसको हमने कभी देखा नहीं है और ज्वालामुखी इसलिए इकट्ठा हो गया है! बिना देखे दबाये चले गये हैं, बहुत इकट्ठा हो गया है। इससे मुक्त होने के लिए एक ही मार्ग है--और वह है ज्ञान का, वह है सत्य का। जो सत्य है, उसे जान लेना है उसकी परिपूर्णता में।
एक बहुत बड़े बुद्धिमान आदमी हैं। बुद्धिमान आदमी बस किताबों से बुद्धिमान होते हैं। वे मेरे पास आये। बड़ी ख्याति है, हजारों लोग उन्हें मानते हैं। और हजारों लोगों के मानने से जितना अहित किसी व्यक्ति का होता है, उतना शायद ही किसी बात से होता होगा। क्योंकि वे हजार नासमझ मिलकर किसी को भी समझदार का भाव पैदा करवा देते हैं कि वह समझदार है! अब जरा बुढ़ापे में वह इधर आये हैं, क्योंकि थोड़ा डर पैदा हुआ है कि बहुत कम समझदारी किताबों की है, बातचीत की है! तो वह मुझसे कहने लगे कि क्या करूं, कैसे शांत होऊं, कैसे ध्यान करूं?
तो मैंने उनसे कहा, कि पहले तुम एक काम कर लो। एक महीने के लिए एकांत में चले जाओ और व्यक्तित्व को पूरी तरह प्रकट हो जाने दो। एक महीने में चिल्लाने का मन हो तो चिल्लायें, नाचने का मन हो तो नाचें, गाली देने का मन हो तो गाली दें। पत्थर फेंकने का मन हो तो पत्थर फेंकें। एक महीने अपने को बिल्कुल छोड़ दें। जो होता है, वह होने दें। फिर एक महीने बाद आयें। उन्होंने कहा, एक महीने बाद फिर मैं आऊंगा ही नहीं। क्यों? तो उन्होंने कहा, मैं तो पागल हो चुका होऊंगा, क्योंकि आप जो कह रहे हैं, वह सब मेरे भीतर है। और अगर मैंने जारी किया तो रुकूंगा कैसे? फिर रुकना मुश्किल है। और मैं यह नहीं कर सकता हूं। मैं डरता हूं मुझे तो शांत होने की तरकीब बताइए!
शांत होने की कोई तरकीब नहीं होती। सिर्फ अशांत होने की तरकीबें होती हैं। और अशांत होने की तरकीबें समझ में आ जायें तो आदमी शांत हो जाता है। शांत होने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। अशांत होने की तरकीबों के हम बड़े अभ्यासी हैं और उन सबका भार इकट्ठा हो गया है। और ज्ञानी भी हैं साथ में, क्योंकि हमको पता है कि क्रोध बुरा है, काम बुरा है! सब हमको पता है! सब अच्छी बातें पता है। और अच्छी बातों का पता होना, नर्क का रास्ता बनाना है!
नहीं, सच में हमें पता नहीं है। इसलिए इसका प्रयोग करके देखें। अगर क्रोध हो तो क्रोध की दशा में, लोभ हो तो लोभ की दशा में, काम हो तो काम की दशा में पूरा प्रयोग करके देखें और पूरा ध्यान करके देखें। सारी स्थितियों को निकाल लें, उघाड़ लें, साफ करें नंगेपन को, बाहर कर लें और

देखें। और एक बार जिस दिन आप पोर-पोर अपने शरीर के और अपने मन के और अपनी आत्मा के रोयें-रोयें में जो छिपा है, उसको नग्नता में देख सकेंगे, उस दिन के बाद दुबारा नहीं होगी वह बात। दुबारा नहीं पायी जायेगी।
जिसने जाना लिया है, मुक्त हो गया है। और नहीं मुक्त है, जानना कि नहीं जाना।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैंने कहा, कि सीता के पैर के गहने लक्ष्मण को दिखाई पड़े और कोई गहने दिखाई नहीं पड़े, तो विनोबा ने जो व्याख्या की है कि लक्ष्मण नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, ब्रह्मचर्य की साधना करता है, इसलिए सीता के चेहरे की तरफ नहीं देखता है!
तो मैंने कहा कि यह व्याख्या गलत है और यह लक्ष्मण का सम्मान नहीं है, अपमान है। क्योंकि इससे पता चलता है कि लक्ष्मण ब्रह्मचारी बिल्कुल नहीं है, अन्यथा सीता के चेहरे की तरफ देखने से डरता नहीं। तो उन मित्र ने पूछा है कि अगर विनोबा की व्याख्या गलत है तो आपकी क्या व्याख्या है? लक्ष्मण को पैर के गहने ही क्यों दिखाई पड़े?
दो-तीन कारण हैं। एक तो कारण यह है कि लक्ष्मण रोज सुबह सीता के पैर पड़ता था। सीधी-सीधी बात है। उससे ज्यादा कुछ उलझाव नहीं है। रोज-रोज पैर पड़ते-पड़ते सीता के, वे पैर के गहने उसे रोज-रोज दिखाई पड़े होंगे। वह उनको पहचानता होगा। सीता के शरीर पर दूसरे गहनों पर उसकी नजर कभी नहीं गयी। इसका कारण यह नहीं था कि वह ब्रह्मचारी था। इसका कुल कारण इतना है कि अगर स्त्री सुंदर हो तो उसके गहने पर नजर जाती ही नहीं। सिर्फ स्त्री कुरूप हो तो उसके गहने पर नजर जाती है। और कुरूप स्त्री को ही गहने पहनने का शौक होता है। सुंदर स्त्री को होता ही नहीं। वह सौंदर्य की कमी पूरी होती है। सीता जैसी सुंदर स्त्री दुनिया में मुश्किल से कभी होती हैं। उस जमाने के दो सबसे अदभुत आदमी राम और रावण उसको प्रेम करते थे। उससे ज्यादा महिमा-मंडित, उससे ज्यादा सुंदर स्त्री को खोजना मुश्किल है। सीता का चेहरा दिखे और किसी को उसके गले का हार दिखे तो वह सुनार होगा, लक्ष्मण नहीं। सीता जैसी सुंदर और अदभुत स्त्री को देखकर गहने दिखाई पड़ सकते हैं? वह दिखाई नहीं पड़े होंगे। इसका कारण यह नहीं है कि वह ब्रह्मचारी है। इसका कारण यह नहीं हैं कि ब्रह्मचारी नहीं है। लक्ष्मण ब्रह्मचारी था। लेकिन ब्रह्मचर्य इतना भयभीत, बलहीन नहीं होता; इतना कमजोर नहीं होता कि चेहरे की तरफ देखने से डर जाये। और ऐसा ब्रह्मचर्य बिल्कुल झूठा होता है। सीता के चेहरे को बहुत देखा होगा उसने, लेकिन गहने दिखाई पड़ना--यह ऐसी ही बात है, जैसे सड़क पर आप निकलते हैं तो आपके जूते को सिवाय चमार के और कोई नहीं देखता। और आप सोच रहे हों कि दूसरे भी आपके जूते को देखकर बहुत प्रभावित हो रहे होंगे तो आप बहुत गलती में हैं। सिवाय चमारों के और कोई प्रभावित नहीं होगा।
सच तो यह है कि चमार शक्ल-सूरत देखते ही नहीं, सिर्फ जूते ही देखते रहते हैं। और जूते ही देखते रहते हैं दिन-रात सड़कों पर और जूतों से आदमी को पहचान लेते हैं! अपने-अपने मापदंड है। चमार जूता देख करके पहचान लेता है कि आदमी मिनिस्टर है, हार गया कि जीत गया! वह जूता सब बता देता है! जूते की हालत सब बता देती है कि आदमी के खीसे में कुछ है कि नहीं। जूता बता देता है कि आदमी सड़क पर चलता है कि हवाई जहाज में उड़ता है। जूता बता देता है, किसका जूता है, वह आदमी कैसा होगा! वह चमार जूते को देख लेता है और आदमी को पहचान लेता है! लेकिन चमारों के सिवाय जूते कोई नहीं देखता तो ऐसा मत समझना कि चमार बड़े ब्रह्मचारी होते हैं, जो सिर्फ जूता ही देखते हैं, चेहरा नहीं देखते। लक्ष्मण को वह पैर का गहना, सिर्फ इसलिए याद रह गया कि रोज-रोज सिर रखा होगा उन पैरों पर। रोज-रोज निरंतर वे गहने उसकी नजर में आ गये होंगे, वे ख्याल में थे। फिर सीता जैसी सुंदर स्त्री के गहने किसी को याद नहीं रहते; लक्ष्मण को ही नहीं, किसी को नहीं याद रहते। इसी वजह से राम को भी याद नहीं थे। राम तो ब्रह्मचारी नहीं थे। उनको क्यों याद नहीं था? उन्होंने चेहरा देखा होगा सीता का, लेकिन उनको भी याद नहीं था।
सच तो यह है कि जहां चेहरे का सौंदर्य होता है, वहां कौन गहने के सौंदर्य को देखने जाता है। दुनिया जितनी सुंदर होती चली जायेगी, गहने उतने विसर्जित होते चले जायेंगे। गहने कुरूपता का लक्षण हैं। आदमी अपने

को सजाता है तब, जब जानता है, अनुभव करता है कि कहीं कुछ कमी रह गयी है; नहीं तो नहीं सजाता है।
महावीर जैसे लोग बहुत सुंदर लोग थे, इसलिए नंगे खड़े हो गये। फिर कपड़े पहनने की जरूरत नहीं रही। यह मत सोच लें कि त्यागी, तपस्वी हैं। महावीर जैसी सुंदर काया दुनिया में मुश्किल से होती है। तो उतनी सुंदर काया को कपड़े लगाना नासमझी है। उतनी सुंदर काया को कपड़ों से ढांकना गलती है। कपड़ों से उस काया को ढांकना पड़ता है हिसाब से कि काया की सारी कुरूपता कपड़ों में ढंक जाये। और काया के सिर्फ वे हिस्से दिखाई पड़ते रहें, जो कुरूप नहीं हैं। और तब काया को सौंदर्य का एक भ्रम पैदा होता है।
महावीर अदभुत सुंदर आदमी रहे होंगे। वे कपड़े खोलकर नंगे खड़े हो गये होंगे। उस नग्नता में ही वे अप्रतिम रहे होंगे। और वे इतने सुंदर थे कि उनकी नग्नता किसी को दिखाई नहीं पड़ती होगी। उस सौंदर्य के सामने कौन नग्नता को देखेगा।
मैं नहीं मानता कि इससे ब्रह्मचर्य वगैरह का कोई संबंध है। लेकिन विनोबा जी और उस तरह के लोगों को इसमें ब्रह्मचर्य दिखाई पड़ सकता है, क्योंकि ये सारे लोग ऐसा सोचते हैं कि आंख बंद कर लेने का अर्थ ब्रह्मचर्य है! भाग जाने का नाम ब्रह्मचर्य है! स्त्री और पुरुष के बीच फासला बनाने का नाम ब्रह्मचर्य है! यह ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्मचर्य सतेज इतना निर्वीर्य नहीं होता है।
ब्रह्मचर्य बहुत सतेज होता है, शक्तिशाली होता है, तेजस्वी होता है। जहां ब्रह्मचर्य है, वहां चोरी नहीं होती, भागना नहीं होता।
जो ब्रह्मचारी स्त्री से भागता हो, वह बहुत कमजोर है, ब्रह्मचारी बिल्कुल नहीं है। कामुकता कमजोर होती है, ब्रह्मचर्य तो बहुत वीर्यवान होता है। वह भागेगा नहीं, डरेगा नहीं। डरने का सवाल वहां नहीं है कोई! मैं वैसा नहीं मानता। और व्याख्या करने जैसी कोई खास बात नहीं है। मुझे इतना ही लगता है कि जो मैंने कहा, इससे भिन्न, इससे ज्यादा, कुछ मालूम नहीं।
एक मित्र ने पूछा है। आप जिस साधना की बात करते हैं, उससे स्वयं की ऊंचाई तो पायी जा सकती है, लेकिन उससे दूसरों का कल्याण कैसे होगा?
हमें यह पता ही नहीं है कि स्वयं की ऊंचाई से बड़ा और दूसरे का कोई कल्याण नहीं है। और जो आदमी स्वयं ऊंचा नहीं है, वह दूसरे का कल्याण कैसे कर सकता है? हां, कल्याण के नाम पर अकल्याण जरूर कर सकता है। और अकसर जो सेवक, जो सुधारक, जो तथाकथित क्रांतिकारी दूसरों का कल्याण करना चाहते हैं, उनसे कल्याण नहीं होगा। क्योंकि खुद की कोई ऊंचाई नहीं है तो दूसरे में ऊंचाई कैसे आप ला सकते हैं?
सच तो यह है कि खुद की ऊंचाई विकसित हो तो उस ऊंचाई के साथ आसपास की सारी हवायें ऊंची उठने लगती हैं। खुद की ऊंचाई विकसित हो तो उस ऊंचाई की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं और दूसरों को ऊंचा उठाने लगती हैं। दूसरे का क्या कल्याण करना है आपको? एक तो दूसरे के कल्याण करने की बात में ही बहुत गहरा अहितकर अहंकार छिपा हुआ है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। अपना ही कल्याण कितना मुश्किल है। लेकिन अपने कल्याण से बचने के लिए कई लोग दूसरे के कल्याण में लग जाते हैं! उनको वह झंझट का काम मालूम पड़ता है अपना कल्याण! वह जरा कठोर रास्ता मालूम पड़ता है। दूसरे का कल्याण बिल्कुल सरल मालूम पड़ता है।
और दूसरे के कल्याण में सबसे बड़ी फायदे की बात यह है कि अगर परिणाम न निकले तो दूसरा जिम्मेवार होगा! दूसरे के कल्याण में चित्त की हिंसा को बड़ा आनंद मिलता है। असल में दूसरे को बदलने में, दूसरे को बनाने में चित्त की हिंसा को बड़ा रस आता है!
चित्त की हिंसा के बड़े अदभुत रूप हैं। जब बाप बेटे से कहता है कि मैं जैसा कहूं, वैसा ही करो, क्योंकि यह ठीक है, इसी में तुम्हारा कल्याण है। तो वह कभी सोचता भी नहीं है कि वह जो कह रहा है, न तो उसे कल्याण की फिक्र है, न उसे इस बात की फिक्र है कि क्या ठीक है। उसे फिक्र इस बात की है कि जो मैं कहता हूं, वह माना जाता है कि नहीं माना जाता है। बहुत बुनियाद में उसका रस इस बात का है कि मेरा लड़का मेरी मानता है कि नहीं मानता है! उसे मनवाने के वह सब उपाय करेगा, वह सब तरह की व्यवस्था करेगा कि वह मान जाये,

क्योंकि दूसरे व्यक्ति को अपने ढांचे में ढालने में जो मजा आता है, वह मजा हीनता का मजा है, वह दूसरे व्यक्ति को मिटाने का मजा है।
गुरुओं को जो मजा आता है शिष्यों को मिटाने में, उसमें और कोई अर्थ नहीं है। उसमें सिर्फ एक अर्थ है कि दूसरे आदमी को हमने सिर्फ मिट्टी का लोंदा सिद्ध कर दिया है। हम उसको बनाने में लगे हैं। हम जैसा बनायेंगे, वह वैसा बनेगा। इसलिए गुरु एक से कपड़े पहना देते हैं। कतार खड़ी कर देते हैं नकली आदमियों की, एक से ढोंग सिखा देते हैं और यह व्यवस्था करते हैं कि इतने आदमी हमने बना दिये!
कौन बनाने वाला है, कौन किसको बना सकता है? जो बनने को राजी हो जाते हैं, वे कमजोर और डरे हुए लोग होते हैं और जो बनाने को राजी हो जाते हैं, वे खतरनाक लोग हैं। और खतरनाक लोग कहते हैं, हम बनायेंगे! और डरे हुए लोग राजी हो जाते हैं कि ठीक है भाई, हम तो अपने को बना नहीं सकते हैं। यह आदमी कहता है, चलो तुम हमें बना दो! हम तुम्हारा पैर पकड़ लेते हैं!
दुनिया को गुरुओं और शिष्यों ने जितना नुकसान पहुंचाया है, उतना किसी
और ने नहीं पहुंचाया है। क्योंकि जो आदमी किसी दूसरे के हाथ से बनने को राजी होता है, उस आदमी ने अपनी आत्मा खो दी। क्योंकि उस आदमी ने यह कह दिया कि मैं व्यक्ति होने का अधिकार खोता हूं! मैं दूसरे के हाथ में कठपुतली बनने को तैयार हूं! उस आदमी को परमात्मा ने मौका दिया था कि तू"तू" होना, पर वह किसी गुरु के चरण पकड़कर"और" होने में लग गया है और स्वयं होने की कोशिश उसने बंद कर दी है!
धार्मिक आदमी वह है, जो स्वयं होने की कोशिश में लगा है। वे सारे लोग अधार्मिक हैं, जो किसी और जैसे होने की कोशिश में लगना चाहते हैं। अधार्मिक आदमी गुरु बनायेगा, शिष्य बनेगा। धार्मिक आदमी न शिष्य बनता है, न गुरु। क्योंकि धार्मिक आदमी यह कहता है कि परमात्मा ने एक मौका खुद होने का दिया है, वह मैं होना चाहता हूं। आप कृपा करें गुरुजन, आप जरा दूर रहें। मैं वही होना चाहता हूं, जो भगवान ने मुझे मौका दिया है।
शिष्य लोभ में पीछे चलते हैं, गुरु अहंकार में आगे चलते हैं और इसके अतिरिक्त उनके बीच और कोई संबंध नहीं होता है।
शिष्य लोभ में होते हैं कि गुरु हमें ऐसा बना देगा। गुरु दावा करता है
कि हम ऐसा बना देते हैं। और गुरु को मजा होता है बनाने का, कल्याण करने का! भूलकर किसी का कल्याण मत करना, क्योंकि कल्याण नहीं होता है, सिर्फ टार्चर होता है। जिस आदमी के कल्याण के पीछे आप पड़ गये, उसकी मुसीबत हो गयी। और बड़ी कठिनाई यह है कि वह कुछ कह भी नहीं सकता, क्योंकि आप उसी के हित में कार्य कर रहे हैं।
तो किसी को अगर पूरा सताना हो तो बंदूक से वह सताने का मजा नहीं आता है, क्योंकि आदमी मर ही जाता है। पूरा मजा इसमें आता है कि उस आदमी को बनाओ, बदलो! जिंदा भी रखो और जिंदा भी मत रहने दो! मरा हुआ भी कर दो और मरने भी मत दो, क्योंकि उसको बदलते रहो!
कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता है--न मां बेटे का कर सकती है, न बाप बेटे का कर सकता है। कल्याण प्रत्येक व्यक्ति अपना कर ले, पर्याप्त है। और जब कोई व्यक्ति अपना कल्याण करता है, अपने जीवन को ऊंचाइयों पर ले जाता है तो उसके चारों तरफ के जीवन अचानक, अनायास उन ऊंचाइयों की प्रेरणा से भर जाते हैं। यह प्रेरणा दी गई नहीं होती है, यह प्रेरणा अनायास वितरित होती है। यह ऐसे ही है, जैसे रास्ते के किनारे का एक फूल खिल जाता है तो वह चिल्लाता नहीं है कि मुझे देखो। राह से जो भी निकलता है, सुगंधें छू जाती हैं। फूल पर आंखें टिक जाती हैं, क्षण भर को आदमी के हृदय में भी फूल खिल जाता है। वह जो राह के किनारे रुक जाता है, उसके मन में भी फूल खिल जाता है। एक बड़ा वृक्ष है, उसकी घनी छाया है, राह चलता आदमी उसके नीचे रुक जाता है। छाया बुलाती नहीं है कि आ जाओ, छाया कहती नहीं है कि मैं तुम्हारा कल्याण करूंगी। छाया बस है। कोई राह निकलता है और रुक जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति के भीतर की आत्मा का वृक्ष बड़ा होता है, एक बहुत अनजान छाया उसके चारों तरफ पड़ने लगती है, तो राहगीर उसके नीचे रुक जाते हैं, चले जाते हैं। न राहगीर कभी धन्यवाद देता है छाया को, वृक्ष को और न वृक्ष कहता है कि

देखो, जा रहे हो, दक्षिणा देते जाओ। बात खत्म हो गयी है। वृक्ष को आनंद मिला है कि कोई उसके नीचे रुका। यह भी बड़ा सौभाग्य है।
जैसे ही व्यक्ति के भीतर का वृक्ष बड़ा होता है, वह आत्मा का वृक्ष, उसमें शाखाएं और फूल आने शुरू होते हैं, उसके नीचे बहुत लोग विश्राम करते हैं। लेकिन वह कोई गुरु नहीं बन जाता, उसे धन्यवाद की अपेक्षा भी नहीं होती कि कोई धन्यवाद भी दे जायेगा। वह तो अनुगृहीत होता है।
ध्यान रहे, वह आदमी अनुगृहीत होता है कि आपने कृपा की और दो क्षण उसके पास में विश्राम किया। कौन कब, किसके पास विश्राम करता है? आपने मौका दिया कि उस वृक्ष को पता चले कि उसकी छाया काम में आ गई तो धन्यवाद।
जब किसी व्यक्ति की आत्मा ऊंचाई पर उठती है तो धन्यवाद उनसे नहीं मांगा जाता है, वे जो उसके नीचे ठहर गये होते हैं कभी। धन्यवाद उन्हें देता है, क्योंकि उन्होंने मौका दिया। उसको आनंद दिया, उसके पास ठहरने का अनुग्रह किया।
खुद की ऊंचाई जितनी बढ़ती है, उस ऊंचाई के आकस्मिक परिणाम आने शुरू हो जाते हैं, लेकिन वे सुनियोजित नहीं होते, अनायास होते रहते हैं!
अमरीका में एक अदभुत आदमी था। वह इस पर कुछ प्रयोग करता था कि बिना कहे भी भाव संवेदित होते हैं। एक अभिनेता उससे मिलने आया था और उस अभिनेता से उसने कहा कि बिना कहे भी भाव का संवेदन होता है। उस अभिनेता ने कहा, बिना कहे बहुत मुश्किल है। बिना कहे कैसे--कुछ कहना पड़ेगा! अगर क्रोध प्रकट करना हो तो मुट्ठी बांधनी पड़ेगी, आंख मिचनी पड़ेगी। कुछ शब्द बोलने पड़ेंगे, कुछ करना पड़ेगा?
लेकिन उसने कहा, आंख भी मत बंद रखो, हाथ भी मत बांधो, बोलो भी मत, लेकिन भीतर क्रोध से भर जाओ तो भी पड़ोस तक क्रोध की किरणें पहुंचती हैं। उस अभिनेता ने कहा, मुझे विश्वास नहीं पड़ता। तभी फोन की घंटी बजी और वह अपने आफिस में चला गया। अभिनेता कमरे में अकेला रह गया। आधे घंटे तक फोन पर वह जरूरी कोई बात करता रहा। आधा घंटा बाद वापस लौटा तो एकदम खड़ा हो गया चौंककर!
उसने उस अभिनेता से कहा कि मालूम होता है, आप मुझ पर नाराज हो गये हैं-- क्या बात है? मैंने तो आपको कुछ कहा नहीं, मैं नाराज नहीं हुआ, लेकिन आधा घंटा मैं प्रयोग कर रहा था, आप पर क्रोधित होने का। और आप जो कहते हैं, मालूम होता है ठीक है। पूरा कमरा जैसे क्रोध से भर गया था। क्रोध की तरंगें--जैसे पानी में हम पत्थर फेंकते हैं, उठती हैं और दूर तक फैलती चली जाती हैं! यहां हम पत्थर पटकेंगे और मीलों दूर तक तरंगें फैलती चली जायेंगी!
ऐसा ही मनोआकाश है। ऐसा ही हमारे मन का एक जगत है। और वह मनका जगत संयुक्त है, कलेक्टिव है, समष्टिगत है। वह फैला हुआ है। और जब एक आदमी उसमें जोर से क्रोध का पत्थर डालता है तो उसकी किरणें, उसकी हवाएं, चारों तरफ फैलती चली जाती हैं। और फिर जितने लोग भी क्रोध के प्रति रिसेप्टिव होते हैं, संवेदनशील होते हैं, उनके चित्त में भी क्रोध की किरणें पहुंच जाती हैं। उनके भीतर का क्रोध भी हिलने लगता है, कंपने लगता है।
अगर कोई व्यक्ति भीतर बहुत प्रेम से भरा होता है तो उसके चारों तरफ प्रेम की घटनाएं घटने लगती हैं। अगर कोई व्यक्ति परिपूर्ण शांत होता है तो उसके आसपास शांति की किरणें फैलने लगती हैं।
लेकिन यह कम से कम हो जाता है। अभी भी हो रहा है, हर वक्त हो रहा है। जब
आप अशांत हैं, तब भी हो रहा है। कभी आप प्रयोग करके देखना इस बात को कि आप बहुत अशांत हैं।
तो एक चौबीस घंटे प्रयोग करके देखना, कि चौबीस घंटे अशांत से अशांत होते चला जाना। लेकिन किसी से कहना मत, मैं अशांत हूं। कोई भाव प्रकट मत करना। और आप चौबीस घंटे में अनुभव करेंगे कि जो आदमी आपके पास आयेगा, वह अशांत हो जायेगा।
आप इससे उलटा करके देखना। कभी चौबीस घंटे इस तरह से शांत हो जाना, जैसे कोई जीवन में अशांति नहीं है, सब तनाव छोड़ दिया है। चौबीस घंटे ऐसे जीना कि जैसे जिंदगी में कुछ चिंता नहीं, दुख नहीं, पीड़ा नहीं; कोई अशांति नहीं। पूरे वक्त शांति से भरे रहना; कुछ कहना मत, शांति के अंबार बन जाना।

आप चौबीस घंटे में जानकर हैरान होंगे कि जो भी आया है, उसने शांति प्रकट की है!
लेकिन हमें इसका कोई साफ-साफ बोध नहीं है, क्योंकि हमें भीतर के जगत
के किन्हीं भी आयामों का कोई अनुभव नहीं, कोई खबर नहीं। हमें पता ही नहीं कि हम सब जो अनुभव करते हैं, जो सोचते हैं, जो करते हैं, जो मन में भाव लेते हैं, उन सबके परिणाम चारों तरफ होते चले जाते हैं।
जब कोई आदमी भीतर ऊंचाई पर उठता है तो वह ऐसी लहरें पैदा करने लगता है,
जो दूसरे को ऊंचाई पर ले जाने का कारण होती हैं।
आप अगर साधना से ऊंचे उठते हैं तो इस चिंता में मत पडिय़े कि इससे दूसरे का क्या कल्याण होगा। इसके अतिरिक्त कल्याण के लिए हम कोई हवा कभी पैदा कर ही नहीं सकते।
दूसरे का कल्याण नहीं करना है, अपना मंगल साध लेना है।
उस साधे हुए मंगल के साथ दूसरे के मंगल के सधने का अवसर उपस्थित होता है।
आज हर आदमी दूसरे का कल्याण कर रहा है! एक जाति, दूसरी जाति का कल्याण
कर रही है! सभ्य लोग आदिवासियों का कल्याण कर रहे हैं! ऊपर के वर्णों के लोग नीचे के वर्णों के लोगों का कल्याण कर रहे हैं! पुरुष स्त्री का कल्याण कर रहे हैं! सब कल्याण में लगे हुए हैं! और देखें दुनिया की हालत कैसी है! अकल्याण बढ़ता जा रहा है और कल्याण का कोई भी पता नहीं! नहीं, इस तरह नहीं होगा। कुछ विपरीत है मार्ग।
प्रत्येक को लग जाना है अपने कल्याण में और उसी कल्याण में लगने के परिणाम से उसके व्यक्तित्व में, उसके मन में, उसकी चेतना में, उसके शरीर में, उसके कामों में, वह सब प्रकट होना शुरू हो जायेगा, जिससे कल्याण का अवसर उपस्थित होता है। वह अनायास हो जाता है, उसका पता भी नहीं चलता।
कोई आदमी किसी का कल्याण करने जाये तो समझना कि यह आदमी खतरनाक है। वह किसी न किसी आदमी को सताने का उपाय खोज रहा है। कल्याण उनका होता है, जिन्हें पता भी नहीं।
एक फकीर था, उस फकीर के चित्त में अदभुत घटनायें घटीं। वह उस लोक में पहुंच गया, जहां कभी ही कोई सौभाग्यशाली पहुंचता है। वह वहां पहुंच गया है, जहां अमृत है, जहां आलोक है। जब अचानक वह वहां पहुंच गया तो कहानी कहती है कि देवताओं ने उससे कहा कि हम बहुत खुश हुए, हम तुझे कुछ वरदान देना चाहते हैं।
उस फकीर ने कहा, लेकिन अब मैं क्या मांगूं, क्योंकि अब तो मेरी मांग ही मिट गयी। वह मिल गया, जिसको मिलने से मांग नहीं रह जाती, धन्यवाद।
लेकिन देवता उन्हीं के पीछे पड़ जाते हैं, जो कहते हैं, हमें नहीं चाहिए! जो कहते हैं, हमें चाहिए, उनके पीछे भूत-प्रेत भी नहीं पड़ते हैं! वह कहता है मुझे नहीं चाहिए, क्योंकि मुझे जो चाहिए, वह मिल गया है। लेकिन देवताओं ने कहा कि नहीं, यह तो हमारा अपमान हो जायेगा। हमसे तो कोई मांगने आता है, तब हम नहीं देते। हम खुद देने आये हैं।
उस फकीर ने कहा, अगर अपमान हो जायेगा तो फिर जो भी तुम देना चाहो दे दो। मैं उसे अंगीकार कर लूंगा।
उन देवताओं ने कहा कि तुम दूसरे का कल्याण करो, ऐसी सामर्थ्य दे दें?
उस फकीर ने कहा, क्षमा करना, दूसरों के कल्याण करने वाले लोगों को मैं भली-भांति जानता हूं। उन्होंने दुनिया में बहुत अकल्याण कर दिया है, यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा।
देवताओं ने कहा, नहीं, यह काम तुमसे हो सकेगा, क्योंकि तुम उस जगह आ गये हो, जहां दूसरे का कल्याण हो सकता है।
उस फकीर ने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन मुझे कोई दूसरा दिखाई नहीं पड़ता
तो मैं किसका कल्याण खोजने जाऊंगा। नहीं, यह काम बहुत दुष्कर और कठिन है।
यह मुझसे मत करवायें।
देवताओं ने कहा कि तुम जहां से निकलो, तुम्हारी छाया जिन पर पड़ जाये, उनका कल्याण हो जाये।
उसने कहा, यह तो ठीक है, लेकिन इतना ध्यान रहे कि मेरी जब छाया पीछे पड़ती हो तो मुझे पता न चले कि किसका कल्याण हो गया। मुझे पता चल जाये तो

मुझे भी नुकसान हो सकता है, क्योंकि यह अहंकार आ जायेगा कि देखो, मैंने यह कर दिया। तो छाया कर ले, मुझे कोई पता भी न चले!
यह होता रहा। कहानी कहती है कि वह फकीर जहां से निकलता है और उसकी छाया जहां पड़ जाती है, वहां फूल प्रसन्नता से झूम उठते हैं, कलियां खिल जाती हैं। मुर्झाये हुए पौधे होते है, वे हरे जाते हैं। बीमार पर छाया पड़ जाती है, वह स्वस्थ हो जाता है। अंधे को आंख हो जाती है, बहरे को कान मिल जाते हैं, कहानी कहती है, जहां उसकी छाया पड़ जाती है! लेकिन उस फकीर को कभी पता नहीं चला, क्योंकि उस फकीर से कभी कुछ नहीं हुआ। वह तो छाया पीछे करती रही।
इस कहानी का मुझे पता नहीं। लेकिन इस जगत में जितने लोगों से भी कल्याण हुआ है, वह सदा उनकी छाया से हुआ है; उनसे नहीं हुआ है। और जितने लोग कहते हैं, हम कल्याण करते हैं, ये सारे लोग अकल्याण करते हैं। इनसे कोई कल्याण नहीं होता है।
ये ऊंचे उठ जायें उन गहराइयों में, उन ऊंचाइयों पर, जहां प्रभु का प्रकाश है। उन शिखरों पर यात्रा करें, जहां वह सूरज है, जो हम घाटियों में, अंधेरे में रहने वाले लोगों को दिखाई नहीं पड़ता है। और जिस दिन वह रोशनी भीतर भर जायेगी, आप भी एक प्रकाश-पुंज हो जायेंगे।
और उस प्रकाश-पुंज से भी किरणें फैलने लगेंगी, और बहुत से बुझे पुंजों
को आलोकित कर देंगी। बहुत से लोगों के जीवन के रास्ते पर फूल बिछा देंगी, बहुत से लोगों के भटके हुए मार्ग मंदिर की तरफ आ जायेंगे, बहुत से लोगों के प्राण प्रभु की तरफ प्यासे हो उठेंगे, बहुत से लोगों के जीवन में दुख और पीड़ा क्षीण होगी, बहुत से लोगों के जीवन में शांति के राज्य का द्वार खुलेगा। लेकिन वह आपकी छाया से हो जायेगा, उसका आपको पता भी नहीं पड़ेगा। जबसे दुनिया में सचेतन सेवा शुरू हुई है, तब से बहुत अहित हो रहा है। फिर वापस वह अचेतन सेवा, जो सहज हो जाती है, उसका कोई पता नहीं चलता, उसकी पुनःस्थापना जरूरी हो गयी है।

नेति-नेति
सत्रहवां प्रवचन

अंधे मन का ज्वर

जीवन में दो भ्रम हैं। दोनों ही सत्य मालूम होते हैं! एक भ्रम तो पदार्थ का है और दूसरा भ्रम अहंकार का है। एक भ्रम बाहर है, एक भ्रम भीतर है। दोनों भ्रम एक साथ ही जीते हैं और साथ ही मरते हैं--वे एक ही भ्रम के दो छोर हैं!
पदार्थ दिखाई पड़ता है और ख्याल में भी नहीं आता कि ऐसा भी हो सकता है
कि पदार्थ न हो। बहुत ठोस मालूम होता है। पदार्थ कितना ठोस है?
एक बहुत बड़ा विचारक जॉन्सन, बर्कले के साथ घूमने निकला था। और बर्कले कहता था, बाहर जो भी दिखाई पड़ता है, सब भ्रम है। तो जॉन्सन ने पत्थर उठाकर बर्कले के पैर पर पटक दिया। बर्कले पैर पकड़कर बैठ गया है! बहुत चोट लग गई है, खून बहने लगा है! जॉन्सन ने कहा, यह पत्थर भ्रम है, जिससे चोट लगी और खून बहता है?
शायद जॉन्सन ने सोचा होगा कि उसने बहुत बड़ी दलील दे दी है पत्थर के पक्ष में। लेकिन पत्थर भ्रम है। अब तो विज्ञान कहता है कि मैटर है ही नहीं--पदार्थ नहीं है।
बहुत पहले कुछ लोगों ने कहा था, पदार्थ माया है, तब हंसी योग्य बात मालूम हुई होगी। पदार्थ और माया! पदार्थ ही तो सत्य है। जो दिखाई पड़ता है, वही तो सत्य है। और शौक से हम कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है, वही तो सत्य है! जो दिखाई नहीं पड़ता, वह सत्य कैसे हो सकता है? अब विज्ञान कहता है कि जो दिखाई पड़ता है, वह बिल्कुल सत्य नहीं है! पदार्थ--उसका ठोसपन, उसका होना, सभी असत्य है!
लेकिन कैसे हम मानें? पदार्थ पैर पर गिरता है तो चोट लगती है। दीवार
से निकलने की कोशिश करें तो सिर टूट जाता है। इस दीवार को सत्य न मानें, जिससे सिर टूट जाता हो? सिर जरूर टूट जाता है, फिर भी दीवार जैसी दिखाई पड़ती है, वैसी नहीं है। हमें जो दिखाई पड़ रहा है बाहर का जगत--यह वृक्ष, आकाश,
सूरज; यह पृथ्वी, यह पत्थर! यह चारों तरफ जो फैलाव है, इस फैलाव में जो हमें दिखाई पड़ता है--एक ठोसपन, एक पदार्थ, एक मैटीरियल!
लेकिन जैसे गहरी खोज की गयी और पदार्थ तोड़ा गया तो पता चला, वहां कुछ ऊर्जा है, एनर्जी है, शक्ति है; पदार्थ नहीं है। पदार्थ अणुओं का जोड़ है, और अणु पदार्थ नहीं है। पदार्थ परमाणुओं का संग्रह है और परमाणु केवल ऊर्जा के कण हैं, शक्ति के कण हैं।
पदार्थ दिखाई कैसे पड़ता है? पदार्थ दिखाई पड़ता है ऊर्जा की तीव्रगति से। एक पंखा है, इसमें तीन पंखुडिय़ां हैं। पंखा रुका हुआ है, तो तीन पंखुडिय़ां दिखाई पड़ती हैं। पंखा तेज चलता है, तब पंखुडिय़ां तीन नहीं दिखाई पड़ती हैं, सिर्फ बीच की खाली जगह दिखाई पड़ती है, फिर पूरा घूमता हुआ वृत्त मालूम होता है। अगर बहुत तेज चले पंखा तो हमें दिखाई पड़ेगा कि तीनों का एक गोल घेरा घूम रहा है, जो कि नहीं है! बीच की खाली जगह दिखनी बंद हो जायेगी--तीव्र गति!
पदार्थ के जो अणु हैं, ऊर्जा के जो अणु हैं, वे इतनी तीव्र गति से घूम रहे हैं कि उनके तीव्र गति से घूमने के कारण ठोस होने का भ्रम पैदा हो रहा है। उनके बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती। खाली जगह ठोस हो जाती है! वे इतनी तेजी से घूम रहे हैं, उनकी गति बहुत तीव्र है, उतनी ही जितनी सूरज की किरणों की गति है! सूरज की किरणें एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलती हैं। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की सीधी गति है सूरज की किरणों की। और जो अणु छोटी-सी जगह में उसी गति से घूमते हैं, वे एक सेकेंड में कितने चक्कर लगा लेते होंगे एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की गति से!
और अणु इतने छोटे हैं कि अगर हम अपने बाल के किनारे परमाणुओं को खड़ा करें तो एक बाल की मोटाई में एक लाख परमाणु सीधे खड़े हो जायेंगे। इतने

छोटे परमाणु हैं, इतनी छोटी उनकी परिधि है घूमने की। और परिधि के घूमने की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड है। इसलिए ठोस दिखाई पड़ती हैं चीजें। कोई चीज ठोस नहीं है। सब पदार्थ बिल्कुल भ्रम हैं।
एक भ्रम बाहर है और दूसरा इसी भ्रम का छोर भीतर है। यहीं"मैं" का अहंकार भीतर दिखाई पड़ता है कि"मैं" है। यह"मैं हूं", बिल्कुल झूठा है। यह"मैं" भी एकदम माया है, यह"मैं" भी एकदम भ्रम है!
लेकिन आप कहेंगे, पदार्थ ऊर्जा का परिभ्रमण है, लेकिन यह"मैं" कैसे झूठा है? मेरा जन्म नहीं हुआ? मैं बच्चा नहीं था? मैंने शिक्षा नहीं ली? बड़ा नहीं हुआ? मैं आज जवान नहीं हूं? मैं कभी बीमार पड़ता हूं, कभी स्वस्थ होता हूं! फिर अगर मैं नहीं हूं तो यह सब कहां होता है? किस पर होता है? ये चारों अनुभव किस पर गुजरते हैं? मैं हूं--मेरी प्रतिष्ठा है, मेरा मान है, मेरा सम्मान है, मेरा ज्ञान है, मेरा त्याग है। मैं नहीं हूं--अगर मैं ही नहीं हूं तो फिर सब मिट गया।
इस"मैं" के भीतर भी अगर हम प्रवेश करें, जैसे वैज्ञानिक ने परमाणु के भीतर प्रवेश किया--पदार्थ के भीतर और उसने कहा, पदार्थ नहीं है। ऐसे ही अगर कोई व्यक्ति"मैं" के भीतर प्रवेश करे और"मैं" के परमाणुओं को जाने तो उसे पता चलेगा कि"मैं" भी एक भ्रम है। मैं के परमाणु हैं सब अनुभव। जैसे पदार्थ के परमाणु हैं, वैसे"मैं" के परमाणु हैं बुद्धि के कण, अनुभव के कण। ये अनुभव के कण इकट्ठे हो रहे हैं और तेजी से घूम रहे हैं। इसकी गति के कारण यह शक पैदा होता है, यह लगता है कि"मैं" हूं।
जैसे कोई एक मशाल जला ले और तेजी से मशाल को घुमाये तो एक फायर सर्किल
बन जायेगा। दिखाई पड़ने लगेगा एक अग्नि का गोल घेरा, जो है नहीं कहीं भी! सिर्फ एक मशाल घूम रही है और एक वृत्त बन रहा है! मशाल नहीं दिखेगी, सिर्फ एक वृत्त दिखाई पड़ेगा! मशाल बुझ जाये तो दिखाई नहीं पड़ेगा--वृत्त झूठा था, वह फायर सर्किल झूठा था, वह अग्नि-वृत्त नहीं था, सिर्फ एक मशाल तेजी से घूमती है।
जब कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश करेगा तो पता चलेगा, उसके अनुभव के कण, स्मृति के कण जो हो चुके हैं, उसके कण इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि इन तेजी से घूमते हुए कणों के कारण एक सर्किल पैदा होता है, एक वृत्त पैदा होता है, ईगो-सर्किल पैदा होता है और लगता है कि"मैं हूं"! यह"मैं हूं" लगता है, इसलिए हम कहते हैं, मेरा जन्म हुआ!
लेकिन सच बात यह है कि मेरा जन्म नहीं हुआ। जन्म हुआ है--मेरा या आपका? आपका जन्म कब हुआ? जन्म हुआ। आप बड़े हुए। लेकिन आप कहते हैं, मैं बड़ा हुआ! बड़े हुए, बड़े होने की क्रिया हुई। बीमारी आई। लेकिन हम प्रत्येक घटना के साथ जोड़ते हैं कि"मैं" बीमार हुआ,"मुझे" भूख लगी,"मैं" स्वस्थ हुआ,"मैं" गया!
लेकिन हम एक-एक अनुभव के भीतर प्रवेश करें तो पता चलेगा कि घटनाएं घटीं। हमारी सारी भाषा भ्रांत है। हम कहते हैं, आकाश में बिजली चमकी! भाषा से ऐसी भूल पैदा होती है कि बिजली कोई अलग चीज है और चमकना कोई अलग चीज है! बिजली चमकी। हम कहते हैं, बिजली है, जो चमकी। वैज्ञानिक कहेगा, बिजली चमकी यह गलत है। चमकने का नाम बिजली है। बिजली कभी नहीं चमकी। जब चमकी है, उसी को ही हम बिजली कहते हैं। चमकना और बिजली एक ही चीज के दो नाम हैं। दो चीजें नहीं हैं कि बिजली कहीं अलग है और चमकना कहीं अलग है।
आप कहते हैं कि मैं गया। अगर भीतर प्रवेश करेंगे तो पायेंगे, जाना हुआ है, मैं नहीं गया हूं। मैं और जाना एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन हमारी भाषा कहती है कि मैं गया!
हम कहते हैं, मुझे प्यास लगी। सच बात यह है कि प्यास लगी। और प्यास लगते वक्त मैं और प्यास दो चीजें नहीं थे। मैं ही प्यास था।
लेकिन भाषा दो में कर देती है! वह कहती है, मुझे दुख हो रहा है! अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो सिर्फ दुख हो रहा है। दुख हो रहा है, यही तथ्य है। लेकिन भाषा दो हिस्से में तोड़ देती है! भाषा कहती है, मुझे दुख हो रहा है! मैं कहीं भी नहीं हूं, लेकिन यह निर्माण बचपन से लेकर जीवन भर चलता है। और एक असत्य का भ्रम धीरे-धीरे पुंजीभूत हो जाता है, खड़ा हो जाता है, ठोस हो जाता है। और इसी ठोस"मैं" का बोझ हमारे ऊपर सर्वाधिक है।

मैंने दो बोझों की बात की आपसे--अतीत का बोझ और भविष्य का बोझ। और अंतिम बोझ--"मैं" का बोझ,"अहंकार" का बोझ।
यह अहंकार का बोझ, जब तक चित्त पर है, तब तक हम सत्य में प्रवेश नहीं पा सकते; क्योंकि यह है असत्य, यह है झूठ।
कभी अपने भीतर प्रवेश करें। अब हमारी सारी भाषा गड़बड़ है! जब हम प्रवेश करेंगे अपने भीतर तो वह"मैं" मजबूत हो रहा है। कहना चाहिए भीतर! लेकिन भीतर भी"मैं" मजबूत होता है, और लगता है भीतर"मैं हूं"! और"मैं नहीं हूं"! और सच्चाई यह है कि बाहर और भीतर दोनों--सब झूठ हैं। ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि कुछ बाहर और भीतर है। एक ही चीज फैलती है बाहर और भीतर। बाहर और भीतर दो चीजें नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही चीज के फैलाव हैं, एक ही चीज के एक्सटेंशन हैं। वही भीतर है, वही बाहर है। लेकिन हमारे देखने में ऐसा लगता है कि भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है!
हम कहते हैं, बाहर कुछ भी नहीं है, भीतर सब कुछ है! हम कहते हैं बाहर छोड़ो, भीतर जाओ! उस सबसे"मैं" मजबूत होता है। लेकिन बहुत गौर से देखें-- क्या है बाहर, क्या है भीतर? कोई भी चीज भीतर है, कोई भी चीज बाहर है? श्वास भीतर है कि बाहर? श्वास बाहर भी जाती है और भीतर भी। श्वास कहां है? श्वास बाहर भीतर का जोड़ है, सेतु है।
यह सूरज तुमसे बाहर है या भीतर? सूरज की गर्मी हमें भीतर पूरे वक्त मिल रही है। हम इसी से जी रहे हैं। सूरज बाहर हो या भीतर, सूरज मेरा हिस्सा है, वह मुझसे अलग नहीं है। अगर सूरज बुझ जाये तो मैं भी बुझ जाऊंगा कि नहीं बुझ जाऊंगा? अगर सूरज बुझ जाये, हम सब यहीं बुझ जायेंगे। तो फिर सूरज बाहर था या भीतर था?
यह वृक्ष बाहर है कि भीतर? हम कहेंगे कि वृक्ष हम से बाहर है। वृक्ष बाहर दिखाई पड़ रहे हैं। दिखाई पड़ रहे हैं, यह सच है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया, गेहूं आप कहां से ले आये? वृक्षों से। भोजन कहां से ले आये? वृक्षों से। वृक्ष पूरे वक्त आपके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। आप मिट्टी नहीं खा सकते हैं, लेकिन गेहूं बो देते हैं। गेहूं मिट्टी खाता है। पौधा बड़ा होता है, एक गेहूं की जगह हजार गेहूं लग जाते हैं। वह सब मिट्टी से खींचा है उस गेहूं ने। उस गेहूं ने सूरज की किरणें पी ली हैं। उस गेहूं में वह सारी प्रक्रिया हो गयी है कि अब प्रक्रिया के द्वारा गेहूं आपके शरीर का हिस्सा बन सकता है। अब यह गेहूं आपके भीतर जायेगा, आपका खून बनेगा, आपकी हड्डी बनेगा, आपका मांस बनेगा।
अगर सारे पौधे भोजन बनाना बंद कर दें, आप एक क्षण भी जीयेंगे? आप इसी क्षण विदा हो जायेंगे। तो पौधे आपके बाहर हैं या भीतर? या उसी जीवन की बड़ी प्रक्रिया के हिस्से हैं। वही जीवन की प्रक्रिया एक तरफ गेहूं पैदा कर रही है और एक तरफ आपको पैदा कर रही है। फिर वही गेहूं आपको पोषण दे रहा है। और कल आप फिर गिर जायेंगे और मिट्टी में मिल जायेंगे!
मिट्टी और आप अलग-अलग कैसे हैं? उसी मिट्टी में पैदा होते हैं, उसी मिट्टी में विदा हो जाते हैं। उसी मिट्टी से जीते हैं, फिर वही मिट्टी बन जाते हैं। कितनी बार पौधे बन चुके हैं आप, और कितनी बार पौधे आदमी बन चुके हैं। और कितनी बार आदमी फिर मिट्टी बन चुका है, फिर पौधा बन चुका है! ये किसी एक ही वृक्ष के हिस्से हैं या अलग-अलग? क्या है बाहर, क्या है भीतर? जो बाहर है, वह प्रतिक्षण भीतर जा रहा है; जो भीतर है, वह प्रतिक्षण बाहर जा रहा है!
बाहर भीतर एक ही जीवन-ऊर्जा की लहरें है। जब भीतर की तरफ लहर आती हैं
तो हम कहते हैं"मैं" और जब बाहर की तरफ जाती है तो हम कहते हैं"तू"। लेकिन तू और मैं एक ही जीवन-ऊर्जा की लहर के दो छोर हैं।
यह दिखाई पड़ना जरूरी है, यह मेरा भ्रम है। वह भीतर का भाव ही भ्रम है।
और जब तक दिखाई न पड़ जाये, तब तक बोझ से मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि जब तक मैं मानता हूं कि मैं हूं पृथक, तब तक एक बोझ रहेगा। क्योंकि तब तक एक संघर्ष रहेगा उससे, जो मैं नहीं हूं। जब तक मैं"मैं" हूं, तू"तू" है, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। जब तक वृक्ष अलग है, मैं अलग हूं, तब तक एक अंतर्द्वंद्व जारी रहेगा। वह अंतर्द्वंद्व ही मनुष्य के ऊपर सबसे बड़ा बोझ है, क्योंकि संघर्ष में शांति कहां, द्वंद्व में शांति कहां?

हम लड़ रहे हैं प्रतिक्षण! सबसे लड़ रहे हैं, चारों तरफ लड़ रहे हैं! और लड़ने का यह बिल्कुल भ्रम है कि मैं अलग हूं। अगर यह ज्ञात हो जाए कि मैं अलग नहीं हूं, अगर मैं इसी विराट जीवन प्रक्रिया का एक अंग हूं तो किससे है लड़ना, किससे है संघर्ष, कौन है शत्रु?
यह सारा विराट जीवन एक है।
ऐसा ही समझें कि अगर मेरे हाथ को ख्याल पैदा हो जाये कि मैं अलग हूं।
और मेरी आंख को ख्याल पैदा हो जाये कि मैं अलग हूं। और आंख लड़ने लगे हाथ से, पेट लड़ने लगे सिर से, हाथ लड़ने लगे पैर से तो क्या गति होगी उस व्यक्ति की? सारा व्यक्तित्व अंतर्द्वंद्व और संघर्ष में नष्ट हो जायेगा। सारा व्यक्तित्व एक कलह बन जायेगा। फिर जीवन आनंद नहीं हो सकता। भीतर सब एक है। आंख और पैर का अंगूठा अलग-अलग नहीं, दोनों एक ही जीवन प्रक्रिया के हिस्से हैं। गौर से देखेंगे, समझेंगे, पहचानेंगे--समझेंगे तो समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया मालूम होगी।
और जिस दिन ऐसा मालूम होता है कि समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया है, उसी दिन ईश्वर का अनुभव हो जाता है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है। ईश्वर का अर्थ है सब एक है। ईश्वर का अर्थ अनेक नहीं है। ईश्वर का अर्थ है खंड-खंड नहीं है। सब अखंड है। और यह अखंड, इकट्ठा जीवन है।
लेकिन हमने उस अखंड से अपने को अलग तोड़ा हुआ है! और भक्त भी कहता है, मैं अलग हूं! भक्त कहता है, हे भगवान, मुझ पर दया करना! वह कहता है कि मैं अलग हूं! ईश्वर दया करने वाला है, मैं दया पाने वाला हूं! तू पतित पावन है, मैं पतित हूं! भक्त भी कहता है कि मेरा उद्धार करना!
किससे कह रहे हो? किससे मांग रहे हो? तुम जिससे भीख मांग रहे हो, वही हो। वहां कोई भी नहीं है सुनने को। क्योंकि मांगने वाला ही पाने वाला है। देने वाला ही लेने वाला है। लेकिन सारे भक्त हाथ जोड़ खड़े हैं--किसके सामने! और मैं कहता हूं, सारे भक्त नास्तिक हैं। किसी भक्त को ईश्वर का कोई पता नहीं है। किसके हाथ जोड़ रहे हो? हाथ जोड़ने का मतलब है कि कोई दूसरा है। और जहां दूसरा है, वहीं सब उपद्रव शुरू हो गया है। वहां हमने तोड़ लिया है अपने को। किससे कर रहे हो प्रार्थना? किसके चरणों में हाथ जोड़कर सिर टेक रहे हो? कौन है वहां दूसरा?
कोई भी नहीं है। जीवन एक अंतहीन विस्तार है एक ही ऊर्जा का, एक ही जीवन शक्ति का। लेकिन भक्त भी कहता है कि भगवान अलग है! भगवान को पाने की कोशिश कर रहा हूं! भगवान को पाने की कोशिश भ्रम है। भ्रम इसलिए है कि भगवान को पाने की कोशिश में यह निर्णय हुआ है कि मैं हूं और मैं भगवान को पाऊंगा! नहीं, धर्म नहीं मानता, नहीं जानता ऐसा कि कोई और है। धर्म का ज्ञान, धर्म का जानना यह है कि मैं नहीं हूं। और तब सब एक हो जाता है।
फिर कुछ तो करनी है प्रार्थना! फिर अपने ही हाथ को अपने ही सिर पर जोड़े हुए हैं! अपने ही पैर पर अपने ही सिर रखे हुए हैं! सारी प्रार्थना, सारी पूजा, सारी अर्चना एक गंभीर मूढ़ता है, क्योंकि किससे कर रहे हैं यह?
वह जो मौलिक भ्रम कायम है कि दूसरा अलग है और मैं अलग हूं! भीतर यह जो छोर है बाहर का, उसमें प्रवेश करके खोजें"मैं हूं"? जायें और खोजें कि"मैं हूं"? और एक-एक जगह पूछें कि मैं यह हूं--मैं शरीर हूं?
हम कहेंगे, साधक पूछते हैं। साधक पूछते हैं, मैं शरीर हूं? और उसका उत्तर तैयार है कि मैं शरीर नहीं हूं! वह उत्तर कहीं से आता नहीं, वह किताब से पढ़ा हुआ है। उत्तर पहले से मालूम है, पूछता पीछे है! पूछना झूठा है। उत्तर पहले से मालूम है, जैसे कि बच्चे नकल करते हैं। गणित करने के पहले किताबें उठाकर देख लेते हैं, उत्तर क्या है! उत्तर पहले से मालूम है, फिर गणित कर रहे हैं!
ऐसे ही धार्मिक लोग करते हैं। उत्तर पहले से पता है कि हम आत्मा हैं! फिर अपने से पूछ रहे हैं कि मैं शरीर हूं? मैं और फिर खुद ही कह रहे हैं कि शरीर नहीं हूं! क्या पागलपन है! किससे पूछ रहे हो? किसको उत्तर दे रहे हो? और जब पूछना ही शुरू किया है तो अंत तक पूछो, फिर इतना जल्दी मत रुक जाओ। फिर पूछो कि मैं शरीर हूं? और उत्तर किताब से निकला है, क्योंकि किताब से आया हुआ उत्तर आपके लिए झूठा होगा। किसी के लिए सत्य होगा, जिसे मिला था। आपको किताब से मिला है। आपको नहीं आया है।

पूछो, मैं शरीर हूं? पूछो, मैं मन हूं? लेकिन यहीं मत रुक जाओ। रुक जाता है जो, वह पूछता ही नहीं। यह भी पूछो, मैं आत्मा हूं? और हर जगह उत्तर मिलेगा, नहीं। शरीर पर भी मिलेगा, मन पर भी मिलेगा, आत्मा पर भी मिलेगा! असल में जो हम पूछ सकते हैं, वही उत्तर मिलेगा--यह मैं नहीं हूं। पूछते चले जाओ, खोजते चले जाओ और अंत में पाओगे कि मैं हूं नहीं। उत्तर मिलेगा ही नहीं। अंततः पता चलेगा कि मैं हूं ही नहीं। सब हैं, मैं नहीं हूं।
जैसे कोई प्याज को चीरना शुरू करे, एक पर्त निकाल ले। पूछे, अब प्याज कहां है? यह पर्त तो प्याज नहीं है। फेंक दे, दूसरी पर्त निकाल ले। दूसरी पर्त प्याज नहीं है। और प्याज, और प्याज, और खोजता चला जाये और एक-एक पर्त को फेंकता चला जाये। आखिर में क्या मिलेगा? आखिर में शून्य मिलेगा और पता चलेगा प्याज है ही नहीं, सब पर्त ही पर्त थी।
ऐसे ही अगर कोई खोजता चला जाये तो पर्त ही पर्त मिलेगी और"मैं" कहीं
भी नहीं मिलेगा। अंततः सब पर्तें शांत हो जायेंगी और मैं का भाव भी शांत हो जायेगा। लेकिन जहां मैं शांत हो जाता है, वहां मैं तो नहीं मिलता है, सब मिल जाता है!
पूछो, मैं कौन हूं? और आखिर में पता चले मैं हूं ही नहीं। और तब जिसका पता चलेगा--वही है। उसका ही नाम सत्य है, उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन जो कहता है, मैं आत्मा हूं, वह परमात्मा को कभी नहीं जान पाता, क्योंकि वह यह मानकर चल रहा है कि मैं हूं। वह जिसको हम आत्मवादी कहते हैं, वह भी परमात्मवादी नहीं है। क्योंकि आत्मवादी कहता है,"मैं हूं"। और यह जिद्द उसकी कायम है कि मैं अलग हूं! वह कहता है कि मुझे मोक्ष चाहिए! और वह कहता है कि मोक्ष में भी"मैं" रहूंगा!
सब छोड़ने को राजी हो जाता है आत्मवादी, लेकिन"मैं" को छोड़ने को राजी नहीं है! वह कहता है, धन मैं छोड़ दूंगा। वह कहता है, पत्नी-बच्चे मैं छोड़ दूंगा। वह कहता है, संसार मैं छोड़ दूंगा, मर जाऊंगा। लेकिन वह यह कहता है कि मैं"मैं" को नहीं छोडूंगा! मैं को"मैं" रखूंगा!"मैं" मोक्ष में रहूंगा!"मैं" आनंद को, मोक्ष को अनुभव करूंगा!"मैं"--"मैं" बचूंगा!
लेकिन बड़े मजे की बात है, असली संपत्ति"मैं" है, धन असली संपत्ति नहीं है। और धन में जो मजा आता है, वह"मैं" के मजबूत होने का मजा है और कोई मजा नहीं है। मेरे पास कुछ है, इसका जो मजा है, वह उसके"मैं" को मजबूत करने का मजा है! आपके पास एक बड़ा मकान है तो उसी अनुपात में आपके पास एक बड़ा"मैं" होगा। छोटा मकान है,"मैं" छोटा हो जायेगा। छोटे मकान से तकलीफ नहीं होती, तकलीफ"मैं" के छोटे हो जाने से होती है। अगर आप एक बड़ी कुर्सी पर सवार हैं तो आपके पास एक बड़ा"मैं" है। कुर्सी से नीचे उतरें,"मैं" छोटा हो गया! तकलीफ कुर्सी से नहीं होती है। बड़े तख्त पर बैठने से कौन-सा सुख मिलता होगा? लेकिन बड़े तख्त पर बैठने से"मैं" बड़ा हो जाता है!
वह"मैं" बिल्कुल काल्पनिक है। बड़े तख्ते का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है! बड़े धन और बड़े पद का सहारा लेकर बड़ा होता है! और हम कहते हैं, पद छोड़ दो, धन छोड़ दो। लेकिन वह"मैं" बहुत होशियार है। वह छोड़ने से भी बड़ा हो जाता है! वह कहता है,"मैंने" धन छोड़ दिया! देखो"मैंने" मिनिस्ट्री को लात मार दी,"मैंने" पद छोड़ दिया! लेकिन वह"मैं" कहता है,"मैंने" सब छोड़ दिया! वह फिर नये चेहरों या रूपों में खड़ा हो जाता है! इसलिए धन छोड़ना आसान है, क्योंकि धन छोड़ने से"मैं" मरता नहीं, और मजबूत हो जाता है। धन को चोर भी चुरा सकते हैं, लेकिन त्याग को कोई नहीं चुरा सकता। इसलिए अगर तिजोरी मजबूत बनाना हो, तो त्याग की तिजोरी बनानी चाहिए। लोहे की तिजोरी तोड़ी जाती है, टूट जाती है।
संन्यासी बहुत होशियार हैं। संन्यासी के अहंकार भर की चोरी नहीं होती! गृहस्थ के अहंकार की चोरी होती है, गृहस्थ नासमझ है। संन्यासी होशियार है, ज्यादा कनिंग है, ज्यादा चालाक है। वह ऐसा"मैं" मजबूत कर रहा है, जिसको कोई चुरा नहीं सकता। उसके"मैं" को आप कैसे चुराइयेगा? अगर आप उससे कपड़े छीनकर ले जाओगे तो वह कहेगा, मैंने कपड़े भी त्याग किये। चलो यह झंझट मिटी, कपड़े भी अब नहीं रहे! हम और भी मुक्त हो गये! अब वह"मैं" और मजबूत हो गया--वह कहता है, मैंने कपड़े भी छोड़ दिये!
गृहस्थ नासमझ अहंकारी है, संन्यासी समझदार अहंकारी है।

इसलिए गृहस्थ की जब नासमझी टूटती है तो वह भी संन्यासी होना शुरू हो जाता है! समझ में आ जाता है कि हम कहां के पागलपन में पड़े हैं! इसमें कोई सार नहीं। धन चोरी चला जाता है। सरकार बदल जाये, सारा गड़बड़ हो जाता है। कम्युनिज्म आ जाये, सब गड़बड़ हो जाता है।
संन्यासी से कोई कुछ नहीं छीन सकता है। उसके पास कुछ है ही नहीं कि छीने। जिसके पास शुद्ध"मैं" बच गया है, जिसके पास कुछ भी नहीं है छोड़ने को, लेकिन असली"मैं" है। सवाल"मैं" के छोड़ने का है--न धन छोड़ने का सवाल है; न मकान छोड़ने का, न पद छोड़ने का। सवाल"मैं" छोड़ने का है। लेकिन वह तो मोक्ष की खोज करने वाला भी नहीं छोड़ता! वह कहता है,"मैं" तो रहूंगा, शुद्ध रूप में रहूंगा! प्राण छूट जायेंगे, लेकिन मैं तो रहूंगा! सब छूट जायेगा, मैं रहूंगा!
यह बहुत अदभुत बात है। जो सबसे ज्यादा भ्रामक है, उसी को बचाने की चेष्टा चलती है। नहीं, जब तक"मैं" है, तब तक कुछ नहीं छूटता। जिस दिन"मैं" छूट जाता है, उसी दिन कुछ छूटता है। और जिस दिन"मैं" छूट जाता है, उस दिन मोक्ष है।"मैं" का कोई भी मोक्ष नहीं,"मैं" से मुक्ति का नाम मोक्ष है।"मैं" की कोई मुक्ति नहीं होती कि मैं मुक्त हो जाऊंगा। मुक्त होने से मतलब कि"मैं" तो मरा,"मैं" तो गया। मुक्ति में कोई"मैं" नहीं बचा रहता है। मुक्ति का अर्थ है परमात्म-जीवन।"मैं" नहीं रहा, समग्र की सत्ता रह गयी।"मैं" सबके साथ एक है और एकमय मैं है।
मुझे होना नहीं है, सिर्फ जानना है कि सत्य क्या है। क्या मैं अलग हूं? क्या मैं पृथक हूं? क्या पृथक होकर एक क्षण भी जीया जा सकता है? क्या जीवन का पृथक होना संभव है? क्या एक व्यक्ति को हम कैप्सूल में बंद कर दें, सब तरफ से तोड़ दें, वह जीयेगा? एक क्षण भी जीयेगा?
जीवन अंतर्संबंध है। जीवन विराट अंतर्संबंध है।
सोचें कि एक व्यक्ति को हमने एक शून्य डिब्बे में बंद कर दिया है। उसका संबंध नहीं रहा दुनिया से। वह एक क्षण भी जी नहीं सकता है वहां। एक क्षण भी हो सकता है वहां? वह नहीं होगा, नहीं हो सकता।
लेकिन हम सबने अहंकार का कैप्सूल बनाया हुआ है! और अहंकार में हम सब अलग-अलग खड़े हो गये हैं! और कहते हैं,"मैं हूं"! जबकि हम जुड़े हुए हैं। लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि"मैं हूं" अलग और पृथक! जीवन है संयुक्त। अहंकार की खोज करनी जरूरी है कि यह भ्रम तो नहीं? कहीं एकांत में बैठकर देखा है भीतर की तरफ--कहां है अहंकार, कहां है मैं? पूछते चले जायें-- यह हूं मैं? और उत्तर आयेगा, नहीं। और एक उत्तर आयेगा--नहीं, नहीं, यह भी नहीं।
लेकिन अगर किताब से उत्तर सीख लिया तो उत्तर आयेगा--हां! शरीर तो नहीं हूं, लेकिन आत्मा हूं! आत्मा तो नहीं हूं, लेकिन परमात्मा हूं! उत्तर सीखा हुआ है तो व्यर्थ हो जायेगा।
सिर्फ पूछें--अन्वेषण चाहिए कि यह हूं मैं? और फौरन पता चलेगा कि यह मैं नहीं हो सकता। हाथ मैं नहीं हो सकता, क्योंकि मैं तो हाथ को जान रहा हूं, पहचानता हूं। शरीर हूं मैं? शरीर मैं नहीं हो सकता हूं, क्योंकि शरीर को मैं पहचानता हूं, शरीर को मैं जानता हूं। जिसको मैं जान रहा हूं, वही मैं नहीं हो सकता हूं, मैं जानने वाला हूं। फिर तो और पूछें--विचार हूं मैं? विचारों को भी जान रहा हूं। मन हूं मैं? मन को भी जान रहा हूं। पूछते चलिये, पूछते चलिये। आत्मा हूं मैं? असल में जिसको भी हम पूछ सकते हैं, यह हूं मैं? वही हम नहीं होंगे। और पूछते-पूछते वह घड़ी आयेगी कि पता चलेगा कि अब तो पूछने को कुछ नहीं बचा कि क्या हूं मैं। और उत्तर भी नहीं मिला! उत्तर भी खो जायेगा, पूछने की वृत्ति भी खो जायेगी, साथ ही"मैं" भी खो जायेगा।
तब शेष रह जायेगी एक अनंत शांति, तब शेष रह जायेगा अनंत मौन। न वह प्रश्न है, न वह उत्तर है। तब शेष रह जायेगा अनंत विस्तार। तब शेष रह जायेगा जीवन और जीवन का एक स्पंदन। और तब दिखाई पड़ेगा, यह वृक्ष भी मैं हूं, यह शरीर भी मैं हूं, यह चांद भी मैं हूं, यह तारा भी मैं हूं। वह जो सामने दूसरी आंखें दिखाई पड़ रही हैं, उनसे भी मैं ही झांक रहा हूं। मैं ही बोल रहा हूं और वह जो सुन रहा हूं, वह भी मैं ही हूं। मैं ही बोल रहा हूं,

दूसरे कोने से मैं ही सुन रहा हूं! वह जिसको मैं प्रेम कर रहा हूं, वह भी मैं हूं। और वह जो प्रेम कर रहा है, वह भी मैं हूं।
जिस दिन दिखाई पड़ेगा,"मैं नहीं हूं", उसी दिन एक क्रांति हो जायेगी।
और दिखाई पड़ेगा,"मैं नहीं हूं"। इन दोनों बातों का एक ही अर्थ है। चाहे यह कहें, मैं नहीं हूं, सब है। और चाहे यह कहें, कुछ भी नहीं है, मैं ही हूं। ये दोनों एक ही बातें हैं। इन दोनों का एक ही अर्थ है कि जीवन है, जीवन का अंतहीन अनंत विस्तार है। ऊर्जा का अनंत सागर है, जो स्पंदित हो रहा है अनंत-अनंत रूपों में। लेकिन एक का ही स्पंदन है। और जब तक यह बोध स्पष्ट न हो जाये, तब तक बोझ से मुक्ति नहीं मिल सकती।
अहंकार सबसे बड़ा बोझ है।
लाओत्से के पास एक आदमी गया और उस आदमी ने पूछा कि मैं मोक्ष चाहता हूं! लाओत्से हंसने लगा। उसने कहा, पागल, तू मोक्ष चाहता है? उसने कहा, हां मैं मोक्ष चाहता हूं, मैं मोक्ष को कैसे पाऊं?
लाओत्से ने कहा, पहले समझकर आ कि"मैं" है? अगर हो तो मैं मुक्त करने का रास्ता बता दूंगा। और अगर"मैं" ही है नहीं, तो किसको मुक्त होने का रास्ता बताऊंगा!
वह आदमी वापस गया। वर्षों बाद वापस लौटा है, चरणों पर सिर रख दिया है। लाओत्से ने कहा, खोज लिया"मैं"?
उस आदमी ने कहा, आपने भी क्या आश्चर्यजनक बात कही।"मैं" को खोजने गया,"मैं" खो गया!
लाओत्से ने कहा, तो मोक्ष का इरादा?
उसने कहा, बात खत्म हो गयी।"मैं" ही नहीं है तो मुक्त किसको होना है!
और जब"मैं" ही नहीं है तो मुक्त हो गया।"मैं" ही बंधन था।
लेकिन हम सब मुक्ति खोज रहे हैं! हम कहते हैं, मुझे शांत होना है! ध्यान रहे, जब तक"मैं" है, तब तक शांति नहीं हो सकती। लेकिन हम पूछते हैं,"मैं" शांत कैसे हो जाऊं! हम पूछते हैं, लोग शांत कैसे हो जायें!
यह ऐसे ही है, जैसे कैंसर पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं! अगर कैंसर
आ जाये और आपसे पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं, तो हम उससे कहेंगे, इतनी ही तो बीमारी है। कोई स्वस्थ नहीं होता, तू न रहे तो स्वास्थ्य आ जायेगा। कैंसर स्वस्थ नहीं हो सकता, कैंसर का न होना, स्वास्थ्य होगा।
"मैं" कभी शांत नहीं हो सकता। लेकिन हम सब"मैं" को शांत करने में पड़े हैं! हम कहते हैं, दुनिया से हमें कोई मतलब नहीं, मैं कैसे शांत हो जाऊं! और मैं ही अशांत हूं, मैं ही द्वंद्व हूं, मैं ही कष्ट हूं, मैं ही बंधन हूं! और हम पूछते हैं, मैं मुक्त कैसे हो जाऊं?
और बताने वाले लोग हैं, वे कहते हैं--जप करो, तप करो और मुक्त हो जाओगे!
और वह"मैं" कहता है--अच्छी बात! अब मैं उपवास करूंगा। और मैं उपवास करता हूं। और उपवास के बाद मैं बाजार में आता है और कहता है, मैंने इतने उपवास किये, मैंने इतनी जाप की! एक लाख माला फेर चुका हूं! मैंने राम-राम लिखकर हजारों किताबें भर दीं!
मैं एक गांव में गया। वहां एक मंदिर बना हुआ है--राम मंदिर। उस मंदिर में एक ही काम है। उसमें हजारों पुस्तकें हैं। और हर आदमी बैठकर वहां राम-राम लिखता रहता है किताबों में! और वे किताबें रखते जाते हैं! वे कहते हैं, बस करोड़ों बार राम नाम! और राम-राम लिखकर भेजते रहते हैं और वहां किताबें इकट्ठी होती जाती हैं!
और हर आदमी हिसाब रखता है कि मैंने कितने लाख राम लिख दिये, मैंने कितने लाख नाम ले लिए, मैंने कितनी मालाएं फेरी, मैंने कितने उपवास किये! वह मैं बहुत प्रसन्न होता है! वह मैं कहता है कि चलो, ठीक है। मैं को करने के नये उपाय मिल गये। यह मैं पहले गिनती करता था कि मेरी तिजोरी में कितने रुपये हैं! अब मैं कहता है, मेरी तिजोरी में कितने राम हैं, कितने राम मैंने लिख दिये! वह पहले कहता था, मेरे पास कितने मंजिल के मकान हैं। अब वह कहता है, मेरे पास कितने मंजिल का उपवास है--मैंने कितने उपवास किये-- मंजिल पर मंजिल! अब वह मैं कहता है, मैंने यह-यह छोड़ दिया, मैंने यह-यह कर लिया! मैंने इतने नमोकार पढ़ डाले, मैंने इतनी नमाज पढ़ ली, मैंने यह किया! मैंने यह किया, मैंने वह किया! और वह मैं नये-नये मकान बनाना शुरू कर देता

है। और फिर वह मैं कहता है, मुझे मोक्ष चाहिए! मोक्ष कहां है, मोक्ष कैसे मिलेगा!
यह बुनियादी भ्रम है, जिसमें साधक भटक जाता है। मैं भटकता है और कोई नहीं भटकता है। फिर वह मैं न मालूम कितने उपाय खोजता है! वह इस मैं को समझना जरूरी है कि जिसे हम शांत करना चाहते हैं--कहीं वही तो अशांत नहीं है?
अभी आपने ख्याल किया, अशांति क्या है? अगर इस वक्त"मैं" छूट जाये तो कौन-सी अशांति है, एक क्षण को सोचा है? कभी सोचा था इसे कि अगर"मैं नहीं हूं", इससे क्या अशांति है? कभी यह भी सोचा कि मेरी अशांति के पैदा होने के,"मेरे ईगो" के अतिरिक्त,"मैं" के अतिरिक्त और कोई कारण है?
एक आदमी ने रास्ते पर नमस्कार भी नहीं किया और मन अशांत हो जाता है! और
एक आदमी ने ऐसी आंख से देख लिया कि मन अशांत हो जाता है! और एक आदमी ने कह दिया कि तुम कुछ भी नहीं हो और मन अशांत हो जाता है! और बेटे ने आज्ञा नहीं मानी और बाप अशांत हो गया! और पति पत्नी की आज्ञा अनुसार नहीं चला और पत्नी अशांत हो गयी!
कभी सोचा कि अशांति का कारण क्या है? अशांति का कारण पति का मानकर न चलना है? अशांति का कारण बेटे की बात न मानना है? या अशांति का कारण बाप का"मैं" है, पत्नी का"मैं" है, बेटे का"मैं" है? कौन है अशांति का कारण? कौन कर रहा अशांत--किसको?
वह मेरा"मैं"। वह कहता है, मेरा नहीं माना,"मैं" बाप हूं।"मैं" बाप बना बैठा है! वह"मैं" मां बने बैठा है, वह"मैं" पति बने बैठा है! वह कहता है,"मैं"। उसने हजार शक्लें बना रखी है! जगह-जगह पुकार कर कह रहा है, उसकी तृप्ति होनी चाहिए, जो"मैं" कहूं!
यह जो"मैं" का सारा जाल है, यही अशांति है। सिर्फ यह अशांति बहुत बढ़ जाती है, तो अशांति बोझ हो जाती है। तब अशांति में रहना असंभव हो जाता है। यह असहनीय हो तो वह"मैं" पूछता है कि शांति कैसे मिले? फिर वह"मैं" शांति की तलाश में जाता है!"मैं" जाता है, शांति की खोज में! गुरुओं के चरण पकड़ता है और कहता है, हमें शांति का रास्ता बताइये, हम शांत होना चाहते हैं!"मैं" शांत होना चाहता हूं!
और गुरु! उनके पास भी अपना"मैं" है, क्योंकि"मैं" न हो तो कोई गुरु बनकर बैठेगा? वह कहेगा, हम शांति देंगे! और जो कहता है,"मैंने" शांति दी, उस बेचारे के पास खुद ही शांति नहीं हो सकती, क्योंकि जहां"मैं" है, वहां शांति कैसे हो सकती है? वह कहता है, मैं शांति दूंगा!
ऐसे अशांत मन उसके आसपास इकट्ठे होते हैं। और फिर संप्रदाय खड़े होते हैं, गुरुडम खड़ी होती है, आश्रम खड़े होते हैं, पंथ चलते हैं! सब"मैं" का उपद्रव है!
गुरु भी"मैं" का उपद्रव है, शिष्य भी!
और शिष्य बड़े गुरु खोजता है और सिद्ध कर लेना चाहता है कि गुरु पक्का, बड़ा है कि नहीं! क्योंकि बड़े गुरु के पास बड़े शिष्य का"बड़ा मैं" मजबूत होता है। और लगता है कि"मैं" कोई साधारण गुरु का चेला नहीं हूं,"बड़े गुरु" का चेला हूं,"बड़ा चेला" हूं! इधर"मैं" मजबूत होता है।
अगर उससे कहो कि"तुम्हारा" महावीर कोई"बड़ा गुरु" नहीं है, तुम्हारा"बुद्ध" कोई"बड़ा गुरु" नहीं है, तुम्हारा"महात्मा" आधा महात्मा है तो उसको पीड़ा लगती है! उसको पीड़ा इसलिए नहीं लगती है कि महावीर को चोट लगती है। वह कहता है,"मेरा गुरु"!"मेरा गुरु" कमजोर हो गया है!"आधा गुरु" है--कभी नहीं हो सकता।"मेरा गुरु" हमेशा"पूरा गुरु" है।"मेरा गुरु" तीर्थंकर है,"मेरा गुरु" अवतार है,"मेरा गुरु" भगवान है! तो फिर कहता है, तलवारें चल जायेंगी!
महावीर को हुए ढाई हजार साल हो गये, मोहम्मद को मरे चौदह सौ साल हो गये, जीसस को मरे जमाना गुजर गया। उनकी मृत्यु बहुत बड़ी राख में मिल गयीं। वे बहुत पहले खो चुके उसमें, जो सबमें है। लेकिन तलवार चलाने वाला पीछे खड़ा है! कहता है, हम तलवार चला देंगे, अगर मोहम्मद को कुछ कहा! क्यों? तुम्हें क्या तकलीफ होती है?

अगर महात्मा छोटा है तो बेचारे का"मैं" छोटा होता है। यह मुसलमान है।
और मुसलमान के"मैं" का मजा तभी तक है, जब तक मोहम्मद"बड़े" हैं। यह जैन है। जैन का मजा तभी तक है, जब तक महावीर"तीर्थंकर" हैं। अगर पता चल जाये कि महावीर"तीर्थंकर" नहीं हैं, तो बेचारे का"मैं" मरा! फिर यह किसी छोटे गुरु को पकड़कर चल रहा था। गया, सब खो गया! उसको जो पीड़ा होती रही है, वह"मैं" की पीड़ा है!
इस ख्याल को समझ लेना है। इस जगत की सारी अशांति"मैं" की अशांति है।"मैं" के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है।
लेकिन मजा देखें कि वह"मैं" कहता है कि"मुझे" शांत होना है! वह आखिरी तरकीब है"मैं" की। फिर वह शांत होने के बहाने भी करता है। आंखें बंद करके बैठ जाता है, आसन लगा लेता है और कहता है कि मैं शांत हो रहा हूं! और बीच-बीच में आंखें खोलकर देखता रहता है कि कोई देखने वाला निकला कि नहीं! देखा किसी ने कि नहीं--कि कितनी शांति से हम आसन लगाये बैठे हैं! मंदिर में बड़ी देर से बैठे हुए हैं--और भी आराधक आये कि नहीं, गांव में खबर पहुंची कि नहीं! वह मैं देख रहा हूं, आंख खोल-खोलकर कि कौन कितना मानता है! यह"मैं" बीच-बीच में झांककर देख लेता है कि"मैं" जब इतनी साधना कर रहा है तो जनता को पता चल गया है कि नहीं! किस-किस को खबर मिल गयी? लोग आना शुरू हो गये हैं कि नहीं!
एक संन्यासी के आश्रम में मैं गया था। एक बड़े मजे की बात हो गयी! सभी आश्रमों में वैसी मजे की बात होती है। संन्यासी एक बहुत बड़े तख्त पर विराजमान हैं। उस तख्त के नीचे और एक छोटा-सा तख्त है, उस पर एक दूसरा संन्यासी विराजमान है! उस तख्त के नीचे और एक छोटा-सा तख्त है, उस पर तीसरे संन्यासी विराजमान हैं!
मैं गया, उन संन्यासी ने मुझसे कहा, आप जानते हैं, बगल में कौन बैठा हुआ है?
मैंने कहा, मैं नहीं जानता, आप बताने की कृपा करें।
उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, यह आदमी हाईकोर्ट का जज था, संन्यासी हो गया है! सब छोड़ दिया है, बहुत विनम्र है! देखते हैं, यह कभी मेरे बराबर आसन पर नहीं बैठता है, आसन छोटा रखता है।
मैंने कहा, महाराज, वह आपसे तो आसन छोटा रखे हुए हैं, लेकिन आपके मरने
की प्रतीक्षा करता है, क्योंकि उससे भी नीचे तीसरा बैठा हुआ है! वह उससे बड़ा आसन रखे हुए है! और आप मरे तो वह उस आसन पर बैठेगा, और वह जो नंबर की सीढ़ी लगी हुई है, वह दूसरा आदमी उसके आसन पर बैठेगा। इसमें भी पद है, प्रतिष्ठा है!
और इस आदमी को क्यों मजा आ रहा है कि एक हाईकोर्ट के जज को नीचे बिठा दिया है। अब बताने की क्या जरूरत है कि हाईकोर्ट का जज है। मामला खत्म हो गया। फिर हाईकोर्ट में जज ही नहीं रहा अब। अब गेरुआ वस्त्र पहनकर आया है तो अब कैसा जज है?
लेकिन यह बताता है कि यह आदमी हाईकोर्ट का जज है, कोई साधारण आदमी नहीं है। यह मुझसे नीचे बैठा है, यह कोई साधारण आदमी नहीं। लेकिन इसको बताता क्यों है? यह बताता इसलिए है कि मैं किसी साधारण आदमी के ऊपर नहीं बैठा हुआ हूं, हाईकोर्ट का जज बैठा हुआ है नीचे! अपने हाथ में हाईकोर्ट के जज भी संन्यासी हो गये! वह नीचे बैठा हुआ है और यह आदमी विनम्र है। ठीक है। क्योंकि मेरे बराबर नहीं बैठा। लेकिन यह आदमी विनम्र है और आप क्या है? और आपको इसमें मजा आ रहा है कि मेरे बराबर नहीं बैठता! आप बड़े खुश हैं!
गुरु के पैर तो बहुत बार छुए हैं। एक बार पैर जरा उनके सिर पर रखकर देख लो, तब असलियत पता चलेगी कि मामला क्या है। तब गुरु गर्दन पकड़ लेगा, तब पता चलेगा कि वहां भी"मैं" बैठा हुआ है। पैर छूकर वह तृप्त होता है! पैर मत छुओ तो नाराज हो जाता है! और अगर सिर से पैर लगा दो तो पागल हो उठेगा! और जो हैं उनके पीछे, वे भी पागल हो उठेंगे! क्योंकि उनके गुरु का सारा जाल पूरे"मैं" का है!
और इस"मैं" के जाल के धार्मिक रूप भी हैं, अधार्मिक रूप भी हैं; राजनीतिक रूप भी हैं, सांस्कृतिक रूप भी हैं, साहित्यिक रूप भी हैं, कलात्मक रूप भी हैं! हजार-हजार रास्ते से वह"मैं" आदमी को पकड़ेगा।

इसे पहचानना पड़ेगा, इसे भीतर खोजना पड़ेगा। एक-एक इंच तलाश करनी पड़ेगी
कि यह कहां बैठा है। और जहां-जहां आप पहुंच जायेंगे, जहां-जहां आपकी दृष्टि पहुंच जायेगी, वहीं-वहीं वह तिरोहित हो जायेगा। जहां-जहां आप देख लेंगे कि यहां-यहां बैठा हुआ है, वहीं-वहीं से विलीन होता चला जायेगा। खोजें, और भीतर एक इंच न छोड़ें, जहां खोज न की हो। सारे इट-इट खोज डालें भीतर और आखिर में आप पायेंगे, वह कहीं भी नहीं है!
जैसे कोई दीया लेकर किसी अंधेरे घर में जाये। तो अंधेरे को खोजने लगे
और दीया ले जाये और देखे कोने-कोने में कि अंधेरा कहां है। जहां-जहां दीया जायेगा, वहीं-वहीं अंधेरा नहीं होगा। आखिर में वह घर के बाहर आकर कहेगा, अंधेरा नहीं है! मैंने दीया ले जाकर देखा, वह कहीं नहीं है! लेकिन दीया मत ले जायें भीतर तो अंधेरा है और दीया ले जायें तो नहीं है।
जब तक हमने खोज नहीं की, तब तक"मैं" है। जब हम खोजेंगे, तब"मैं" नहीं होगा।
इसलिए"मैं" को बदलने से बचें,"मैं" की बदलाहट से बचें।"मैं" बदलने के लिए हमेशा तैयार है! वह कहता है कि इस शक्ल में प्रसन्न नहीं हो, फिर मैं दूसरी शक्ल में राजी हूं! तुम कहते हो, धन में अब मुझे मजा नहीं आता, तो अब मैं त्याग में राजी हूं! कोई कहता है, पाप करने में अब मजा नहीं होता, अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती, तब हम पुण्य करने में राजी हैं! एक कहता है कि शराबघर में जाने में अब मेरे अहंकार को तृप्ति नहीं मिलती!
अब ध्यान रखें, शराब पीने वाला, सिगरेट पीने वाला और सब--भीतर एक तृप्ति चाह रहे हैं! छोटा बच्चा भी अकड़कर सिगरेट पी लेता है, क्योंकि वह देखता है कि लोग सिगरेट पीते हैं अकड़कर, अहंकार मालूम पड़ता है। छोटा बच्चा सिगरेट के लिए नहीं पीता है। सिर्फ पीता है--कि सिगरेट पीने से बड़प्पन मिलता है। लगता है कि हम भी कुछ हैं! हम कोई साधारण नहीं हैं! वह जो सिगरेट पीने का रस है, सिगरेट का नहीं है,"मैं" का रस है।
सिगरेट में रस क्या हो सकता है? पागलपन के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक आदमी धुआं भीतर ले जाये और बाहर निकाले! यह क्या कर रहे हो? धुआं भीतर बाहर किसलिए कर रहे हो? क्या हो गया है तुम्हारे दिमाग में? लेकिन चूंकि सारी दुनिया पागल है, इसलिए कोई किसी से नहीं कहता कि यह कर क्यों रहे हो? धुआं जाये बाहर भीतर! और यह क्यों करते हो? इससे खांसी आ सकती है। तकलीफ हो सकती है। रस तो कुछ भी नहीं है।
लेकिन रस है और रस बिल्कुल दूसरा है। इसलिए जब कोई सिगरेट पीने वाले
को समझाता है कि स्वास्थ्य खराब हो जायेगा तो उस पर कोई असर नहीं होता। क्योंकि रस है ही नहीं उसमें। रस बिल्कुल दूसरा है। सिगरेट पीने वाला एक अकड़ में आ जाता है!"मैं" को लगता है कि हम हैं कुछ! सिगरेट पीने में भी ब्रांड हैं, वे सब"मैं" के ब्रांड हैं। सस्ती वह एक गरीब आदमी का"मैं" पीता है। अमीर आदमियों का"मैं" ऐसी सिगरेट पीता है, जिसको बहुत थोड़े लोग पी सकते हैं! फिर वह उसको बार-बार नहीं पीता है, सिर्फ हाथ में लगाकर धुआं उड़ाता है! बार-बार पीने की जरूरत नहीं है, लेकिन वह कीमती सिगरेट को वैसे ही उड़ा देता है! वह सब"मैं" है। वह कश लेता है और फेंक देता है! कुछ मिलने का सवाल नहीं, असल में सवाल दिखाने का है कि देखो।
यह जो सारा का सारा हमारा जाल है--चाहे हम सिगरेट पीते हों, चाहे हम शराबघर में जाते हों और चाहे हम कपड़े पहनते हों, उस सबके पीछे असलियत बहुत दूसरी हो गयी है। उस सारे के पीछे"मैं" काम करता है। उसकी खोज करनी पड़ेगी, उनकी पहचान करनी पड़ेगी कि वह कहां-कहां पकड़े हुए है। मैं कहीं"मैं" के आधार पर तो नहीं जी रहा हूं?
अगर"मैं" के आधार पर जी रहा हूं तो अशांति ही संभव है, शांति संभव नहीं है। और हम जी रहे हैं, इसकी खोज करनी पड़ेगी। इसकी इंदृयरी जरूरी है। इसके भीतर जासूसी करनी पड़ेगी, इसके भीतर जाना पड़ेगा, इसका पीछा करना पड़ेगा कि कहां-कहां वह छिपा हुआ है। जन्मों-जन्मों से वह पकड़े हुए है!
और जब मेरी पहचान पूरी होती है, जब वह रिकग्नाइज कर लिया जाता है, जब पहचान लिया जाता है कि यह रहा"मैं"; और जब रत्ती-रत्ती पहचान हो जाती है, और कण-कण और सूम से सूम उसकी तरंगें पहचान में आ जाती हैं तो वह विदा होने लगता है, विलीन होने लगता है। एक घड़ी आती है कि"मैं" विदा हो जाता है।"मैं"

के साथ ही आत्मा विदा हो जाती है। तब जो शेष रह जाता है तब क्या शेष रह जाता है--वही शेष सत्य है, वही शेष शांति है। उसे कोई भी नाम दो--सत्य कहो, मोक्ष कहो, परमात्मा कहो, नाम से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। कोई भी नाम कहो, सब नाम सत्य हैं उसके लिए। कोई भी नाम दे दें। और कोई भी नाम न दें, तब भी चल जायेगा। लेकिन"मैं" का मिटना जरूरी है।
विज्ञान तो पहुंच गया पदार्थ के मिटने पर। इधर धर्म को भी पहुंचना पड़ेगा--मैं, आत्मा के मिटने पर। जब दोनों मिट जायेंगे--पदार्थ भी और आत्मा भी, तब जो शेष रह जायेगा, तरंगायित, वह सागर है। वही सागर है--एक तरफ पदार्थ की तरह ठोस होकर दिखायी पड़ रहा है, वही सागर दूसरी तरफ तरंग होकर दिखायी पड़ रहा है।
और वह सागर ठोस नहीं है, जीवंत तरंगों का सागर है। जिस दिन यह लगेगा,
उस दिन रास्ते पर चलना, ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं चल रहा हूं, लगेगा, ऊर्जा जा रही है। ऐसा नहीं लगेगा, मैं बोल रहा हूं; लगेगा, ऊर्जा बोल रही है, वही बोल रहा है।
ये वेदों के, उपनिषदों के ऋषि अगर यह कह सके कि हम नहीं बोलते, उसी की वाणी है, तो उसका कारण यह नहीं था-- कि जो दावा कर रहे थे कि हम जो बोलते हैं, वह इसलिए ही है--उसका कुल कारण इतना था कि हम हैं ही नहीं, बोल कैसे सकते हैं! वही बोल रहा है, वही चल रहा है, वही खा रहा है, वही पी रहा है, वही उठ रहा है, वही जी रहा है, वही जा रहा है, वही जन्म लेता है, वही मरता है--हम हैं ही नहीं।
और अगर यह बोध स्पष्ट होता चला जाये तो फिर कैसी अशांति है, कैसा दुख है। फिर कैसी मृत्यु, फिर कैसा अज्ञान, फिर कैसा अंधकार। फिर सब गया! व्यक्ति मिट जाये, सब मिट जाता है, जो भी दुखपूर्ण है। और हम सब"मैं" गठरी बने हुए हैं!
मैंने सुना है बंगाल के गांव में एक छोटा-सा लोकनाटय है। उस लोकनाटय में एक आदमी भगवान के मंदिर पर वृंदावन पहुंचा है। वृंदावन के मंदिर में वह प्रवेश करने लगा। उसके हाथ में कुछ नहीं है, उसके पास कोई व्यक्ति नहीं है। जूता उसने बाहर रख दिया, छड़ी उसने बाहर छोड़ दी। लेकिन द्वारपाल उसे रोकता है कि ठहरो, ठहरो! सामान बाहर निकालकर आओ!
वह आदमी कहता है कि लेकिन सामान तो मैं बाहर रख आया हूं, हाथ देखते नहीं खाली हैं? मैं बिल्कुल खाली हूं, मुझे जाने दो। मैं भगवान की प्रार्थना में आया हूं।
द्वारपाल कहता है, ऐसे नहीं, सब सामान बाहर रख आओ!
वह कहता है, आप पागल हो गये हैं, सामान है कहां?
वह द्वारपाल कहता है, जो सामान तुम बाहर रख आये, उसे भी ले आओ तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन यह जो"मैं" है--"मैं" भीतर जायेगा?"मैं" भगवान के दर्शन करूंगा,"मैं" पूजा करूंगा! इस"मैं" को बाहर रख आओ, क्योंकि इस"मैं" को लेकर कोई भी आज तक भगवान के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हुआ है।
लेकिन वह आदमी कहता था कि जो सामान दिखाई पड़ता था, वह तो मैं रख आया हूं, यह"मैं" को कैसे निकालकर रख दूं।
द्वारपाल कहता है, जाओ खोजो। अगर नहीं पा सको तो आ जाना। क्योंकि रख दिया बाहर, अगर नहीं मिला तो। और मिल जाये, तो रख आना।
रूमी ने एक गीत गाया है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर जाकर दरवाजा खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है कि कौन हो--कौन हो तुम?
और वह कहता है, मैं हूं, पहचानी नहीं तू! आवाज नहीं पहचानी, पैर के कदम नहीं पहचानी! मैं हूं तेरा प्रेमी।
और भीतर सन्नाटा हो जाता है! वह फिर दरवाजा बंद कर लेती है, जैसे घर में कोई है नहीं!
वह चिल्लाता है, क्या हो गया तुझे, बोलती क्यों नहीं! द्वार क्यों नहीं खोलती, मैं हूं तेरा प्रेमी!
भीतर से सिर्फ इतनी आवाज आती है कि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। इधर मैं पहले से ही"मैं" हूं। अब तुम एक"मैं" और आ गये! तो बड़ी तकलीफ होगी।

और सब जानते हैं कि प्रेमी के घर में दो"मैं" समा गये हैं, बड़ी मुश्किल है। हर प्रेमी के घर में"दो-दो मैं" बैठे हुए हैं और वहां एक नर्क पैदा हो गया है।
उसने कहा, एक"मैं" हूं, अब दूसरे"मैं" की इस घर में जगह नहीं है। अभी तुम लौट जाओ। और उसने यह भी कहा जाते वक्त, ध्यान रखना कि जो प्रेम कहता है"मैं", वह प्रेम कैसे हो सकता हूं?
वह प्रेमी वापस लौट गया। वर्ष पर वर्ष बीते। फिर वह नहीं लौटा--न मालूम कितनी बरसातें, कितनी धूप, कितनी रातें, अंधेरा गुजरा!
वह आया, फिर उस द्वार पर दस्तक दी। फिर पीछे से पूछा गया, कौन हो तुम?
उसने कहा, अब तो मैं नहीं हूं, तू ही है। और रूमी की कविता कहती है कि द्वार खुल गये!
लेकिन रूमी को मरे बहुत दिन हो गये। वैसे मन होता है कि जाकर उसको उठाकर कहूं, कविता तुमने आधे में रोक दी। यह कविता पूरी नहीं है। ठीक है-- अब उसने कहा, मैं नहीं हूं, तू ही है! लेकिन जिसका"मैं" मिट जाता है, उसका"तू" भी मिट जाता है। क्योंकि"तू" तभी तक दिखाई पड़ता है, जब तक"मैं" है। तो वह कहने लगा"मैं" नहीं हूं! लेकिन अगर तुम नहीं हो तो कहने वाला भी कौन होता है कि मैं नहीं हूं? और अगर तुम नहीं हो तो यह कैसे कहते हो कि"तू" ही है। रूमी ने जल्दी दरवाजा खोल दिया!
मैं अभी दरवाजा खोलने को राजी नहीं होता। मैं तो कहता हूं, वह प्रेमिका फिर खो गयी। और उसने कहा, अभी लौट जाओ, क्योंकि जब तक"तू" है, तब तक"मैं" कैसे मिट सकता है? लेकिन तब आगे कविता को बढ़ाना बहुत मुश्किल है। शायद इसीलिए रूमी ने कविता रोक दी हो। आगे कविता बढ़ानी बहुत मुश्किल है, क्योंकि कविता को बढ़ने के लिए भी दो चाहिए।
सब नाटक के लिए कम से कम दो चाहिए। और जब एक ही रह जाये तो कैसी कविता।
और जब एक ही ही रह जाए तो कैसा आना। और जब एक रह जाये तो किसके द्वार पर दस्तक? फिर कौन पूछेगा, कौन उत्तर देगा?
फिर मैं कहता हूं, कविता आगे बढ़ती है। प्रेमी फिर चला जाता है। फिर बरसात, फिर धूप। लेकिन फिर वह कभी नहीं लौटता है, क्योंकि लौटने वाला ही नहीं रह गया है। लेकिन तब वह तो नहीं लौटता, लेकिन जिसकी तलाश थी, वह खुद ही उसके पास पहुंच जाता है! क्योंकि जब मैं ही मिट गया है तो फिर लौटने की बात ही क्या रह गयी! फिर तो प्रेमी मिट ही जाता है।
लेकिन मैं कहता हूं, आप कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते। लेकिन परमात्मा आप तक आ जायेगा उस दिन, जिस दिन आप नहीं हैं। आज तक कोई आदमी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। और आज तक कोई आदमी मोक्ष तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। जिस दिन आदमी मिट जाता है, मोक्ष पा जाता है, परमात्मा को पा जाता है। वह आया ही हुआ है। वह"मैं" के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। वह मौजूद ही है। वह चारों तरफ खड़ा है, यहीं है। लेकिन इस"मैं" के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। यह"मैं" एकमात्र अंधापन है, ब्लाइंडनेस है। और यह"मैं" चला जाये, आंख खुल जाती है। इस अनुभव में ही जीवन की सार्थकता और धन्यता उपलब्ध होती है। इस अनुभव में ही वह घड़ी आती है, जो आनंद की है। वह घड़ी, जिसमें दुख का सवाल नहीं, क्योंकि गया वह। वह गया कि चली गयी ग्रंथि, जो दुख की थी। वह ग्रंथि चली गयी, जो दुखती थी। वही दुखता था, वही चला गया। अब कैसा दुख, अब कैसी पीड़ा, अब कैसी मृत्यु? क्योंकि वह"मैं" ही था, जो मरता था। जो है, वह तो कभी नहीं मरा है। जो है, वह कभी मरता ही नहीं है। वह"मैं" ही बार-बार जन्मता है और बार-बार मरता है। इसलिए भूलकर भी यह मत कहना कि कभी आत्मा का पुनर्जन्म होता है, आत्मा का कोई पुनर्जन्म नहीं है। सिर्फ"मैं" बार-बार जन्मता है। सब पुनर्जन्म ईगो के हैं।
और जिस दिन"मैं" नहीं, उस दिन कोई पुनर्जन्म नहीं। फिर जीवन है। न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। फिर अंतहीन अनादि जीवन है। उस अनादि जीवन का नाम परमात्मा है; उसका नाम मोक्ष है, वही सत्य है।
हम असत्य हैं, इसलिए उस सत्य को नहीं खोज पाते। इस सत्य को खोजें, इस असत्य में।"मैं" की सत्य में खोज नहीं की जा सकती। इस असत्य को खोजें। खोजें--खोज में असत्य मिल जायेगा, गिर जायेगा, शून्य हो जायेगा। इसके

शून्य होते ही सत्य प्रकट हो जाता है।"मैं" को मिटाना है।"मैं" को मिटते हुए जानना है। ऐसा जानते ही"मैं" मिट जायेगा।
और जहां"मैं" नहीं है, वहीं ध्यान है, वहीं द्वार है।
जिस द्वार से हमने बात शुरू की थी, वह बहुत बंद द्वार है। एक खुला द्वार चाहिए। सब द्वार जो बंद हैं,"मैं" के द्वार हैं। और एक खुला द्वार जो है, वह"ना-मैं" है। वह जो"आई" का द्वार है, वही अज्ञान है। ध्यान, यानी ज्ञान--आप नहीं है। गैर-ध्यान यानी जहां आप हैं। अपने को, स्वयं को, आत्मा को, अहंकार को, आत्मीयता को सबको विदा दे दें। और जिस दिन सबको विदा दे देंगे, उस दिन बस वही है।

नेति-नेति
अठारहवां प्रवचन

संकल्पों के बाहर

एक मित्र ने पूछा है, यदि हम पूछें कि कौन हो तो पूछने वाला और प्रश्न दोनों एक ही तो हैं, अलग नहीं हैं। जो प्रश्न बनकर खड़ा है, वही तो उत्तर बनेगा। और तब कैसे कभी जाना जा सकता है कि मैं कौन हूं?
सच है यह बात। जो पूछ रहा है, वही उत्तर भी है। लेकिन पूछने के कारण उत्तर का पता नहीं चलता। पूछना है। पूछने से उत्तर नहीं मिलेगा, लेकिन पूछते रहें, पूछते रहें। पूछते जायें, फिर उत्तर व्यर्थ होते चले जायेंगे। अंततः जब कोई उत्तर नहीं बचेगा तो प्रश्न ही व्यर्थ हो जायेगा। और जब प्रश्न भी गिर जाता है--उत्तर तो मिलता ही नहीं! जब प्रश्न ही गिर जाता है और चित्त निष्प्रश्न होता है, तब हम उसे जान लेते हैं। यह प्रश्न भी पूछना है। और यह उत्तर भी है!
प्रश्न पूछने का प्रयोजन उत्तर खोज लेना नहीं है। प्रश्न पूछने का प्रयोजन है, सब बंधे, सीखे उत्तरों को व्यर्थ कर देना है। और उस जगह पहुंच जाना है, जहां प्रश्न भी अंततः व्यर्थ हो जाता है।
प्रश्न जहां गिर जाता है, वहां ज्ञान है।
उत्तर जहां मिल जाता है, वहां ज्ञान नहीं है। यह थोड़ी समझने जैसी बात है। हम सोचते हैं, ज्ञान है उत्तर का मिलना। और मैं आपसे कहता हूं, ज्ञान है प्रश्न का गिर जाना!
एक युवा खोजी बुद्ध के पास गया। और उसने जीवन भर में बहुत से प्रश्न खोजे थे, जिनके उत्तर मिले थे। उसने जाकर दो प्रश्न बुद्ध के सामने रखे। और कहा, चाहता हूं इनके उत्तर।
बुद्ध ने कहा, पहले भी और किसी से ये प्रश्न पूछे हैं?
उस युवक ने कहा, बहुतों से पूछे हैं। तीस वर्ष इन्हीं पर श्रम किया है,
अब तक की जिंदगी इन्हीं में गंवायी है।
बुद्ध ने कहा, इतनों से पूछे, मिला कोई उत्तर या नहीं? जिनसे पूछा था, उन्होंने उत्तर दिये या नहीं?
उस व्यक्ति ने कहा, मुझे उत्तर मिल जाता तो मैं आपसे पूछने नहीं आता। मुझे उत्तर नहीं मिला।
बुद्ध ने कहा, इतने लोगों से पूछने के बाद, उत्तर नहीं मिला, फिर भी तू पूछे चले जा रहा है! तुझे यह ख्याल नहीं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि पूछते- पूछते मिलेगा भी नहीं! मैं भी तुझे उत्तर दूंगा, उससे भी तुझे उत्तर नहीं मिलेगा, क्योंकि आज तक उत्तर देने से उत्तर मिला ही नहीं!
वह आदमी पूछने लगा, फिर मैं क्या करूं?
बुद्ध ने कहा, तू एक वर्ष यहां रुक जा और इतना शांत हो कि प्रश्न भी गिर जायें। और फिर वर्ष भर बाद, जब तेरा चित्त पूर्ण शांत हो, अगर तूने पूछा तो उत्तर दूंगा, और तुझे उत्तर मिल जायेगा।
एक भिक्षु वृक्ष के नीचे सुनता था, जोर से खिलखिलाकर हंसने लगा! उस नये आये आगंतुक ने पूछा, आप हंसते क्यों हैं? उस भिक्षु ने कहा, धोखे में पड़ जायेगा। मैं भी कुछ वर्ष पूर्व बुद्ध के पास इसी तरह पूछने आया था। उन्होंने मुझसे कहा, एक वर्ष रुक जाओ और चुप हो जाओ। और फिर पूछना तो मैं उत्तर दूंगा। यह बड़े धोखे की बात है। तू इस बात में पड़ना मत, क्योंकि मैं जब चुप हो गया, वर्ष भर बाद वह मुझसे कहे, पूछना है? तो मैंने कहा, पूछना मुझे कुछ नहीं है, मेरे पास पूछने को ही कुछ नहीं है! मैंने पूछा नहीं, उन्होंने उत्तर दिया नहीं! मैं तुझसे कहता हूं, अगर पूछना हो तो अभी पूछ लेना, क्योंकि वर्ष भर बाद तेरे पास पूछने को ही नहीं होगा! और यह मेरे साथ ही नहीं हुआ है, यह सैकड़ों लोगों के साथ मैं रोज-रोज देखता हूं। वे आते हैं, पूछते हैं। बुद्ध कहते हैं, पहले चुप हो जाओ, फिर पूछना, मैं उत्तर दूंगा। वे चुप ही रह जाते हैं, वे फिर पूछते ही नहीं हैं! और बुद्ध के उत्तर का पता ही नहीं चलता है कि उत्तर क्या है!

बुद्ध ने कहा, मैं अपनी बात पर कायम रहूंगा। अगर वर्ष भर बाद तूने पूछा तो मैं उत्तर दूंगा। अब तू ही पूछने से इंकार कर दे तो मैं क्या कर सकता हूं!
वह आदमी रुक गया। उस आदमी का नाम मौलुंकपुत्त था। वर्ष भर बाद, ठीक वर्ष बीतने पर, बुद्ध ने उससे कहा, मौलुंकपुत्त खड़े हो जाओ, और पूछो।
वह मौलुंकपुत्त हंसने लगा और उसने कहा, नहीं पूछना है। नहीं पूछना है! बुद्ध ने कहा, फिर क्यों नहीं पूछना है?
उसने कहा, पूछने को कुछ बचा ही नहीं। मन इतना शांत हो गया है कि प्रश्न
ही नहीं है। और अब मैं उत्तर की झंझट में पड़ने वाला नहीं हूं। जब प्रश्न ही नहीं है--तो उत्तर की झंझट में पड़ने वाला नहीं हूं। जब प्रश्न ही नहीं है, तो उत्तर की झंझट कौन लेगा!
प्रश्न गिर जाते हैं एक दिन, वहीं उत्तर मिलता है। उत्तर मिलने से कोई
भी उत्तर नहीं मिलता है।
सब उत्तर सीखे हुए होते हैं। सब उत्तर दूसरों के--उधार, किताबों और शास्त्रों के होते हैं। अपने उत्तर तो उसी दिन मिलते हैं, जिस दिन सब प्रश्न गिर जाते हैं। लेकिन वह उत्तर, जो मिलता नहीं है, वह स्वयं उत्तर हो जाता है, जब प्रश्न गिर जाते हैं।
जैसे किसी आदमी को सन्निपात हो, बुखार चढ़ा हो, होश खो दिया हो और वह पूछता हो कि मेरी खाट आकाश में उड़ गयी है--यह खाट पूरब की तरफ उड़ रही है या पश्चिम की तरफ? आप उसे उत्तर देंगे या आप भागेंगे वैद्य को बुलाने? आप बतायेंगे कि उत्तर में इस जगह कि पश्चिम में?
आप जानते हैं, खाट उड़ ही नहीं रही है, यह आदमी सन्निपात में है। इसको उत्तर की जरूरत नहीं है, उपचार की जरूरत है। जायेंगे वैद्य को बुलाने।
वह आदमी कहेगा, पहले मेरा उत्तर चाहिए--खाट पूरब में उड़ती है या पश्चिम में? आप कहेंगे, ठहरो, अभी थोड़ी देर बाद उत्तर देंगे। थोड़ी चिकित्सा होने दो, फिर होश में आ जाओ, फिर पूछ लो। तब हम उत्तर देंगे।
और उसकी चिकित्सा होती है, वह होश में पुनः आ जाता है। अब आप उससे कहते हैं कि पूछो, खाट कहां उड़ रही है तो हम उत्तर देंगे। तो आदमी कहता है, खाट उड़ ही नहीं रही थी, पूछें हम क्यों! वह बात खत्म हो जाती है।
मनुष्य के सारे प्रश्न सन्निपात में पूछे गये प्रश्न हैं और सारी फिलासफी सन्निपात में लिखी गई है। सारा शास्त्र और सारा दर्शन और सारी हजार तरह की सिस्टम, सब सन्निपात में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं। "जानना" वहां है, जहां कि सन्निपात मिट जाता है, पूछने का ज्वार ही चला जाता है।
मैं कोई उत्तर नहीं दे रहा हूं। और मैं आपसे कह रहा हूं कि आप पूछें कि"मैं कौन हूं।" आपको उत्तर नहीं मिल जायेगा, इस तीव्र जिज्ञासा की आग में पूछते-पूछते सब प्रश्न, सब उत्तर गिर जायेंगे। अंत में रह जायेगा वही, जो है। और वही उत्तर है। लेकिन वह उत्तर आता नहीं है। आप ही बच जाते हैं, आप ही उत्तर हो जाते हैं।
अब यह रुग्ण है चित्त, इसलिए आप ही प्रश्न हैं। चित्त होगा स्वस्थ, आप
ही उत्तर होंगे। उत्तर और प्रश्न का मिलन कभी नहीं होता है, क्योंकि रुग्ण चित्त और स्वस्थ चित्त का मिलन नहीं होता है। जब रुग्ण चित्त चला जाता है, तब स्वस्थ चित्त आता है। इसलिए जब तक कोई प्रश्न पूछता है, तब तक उत्तर नहीं है। और जब उत्तर आता है, तब प्रश्न बहुत पहले ही विदा हो जाते हैं! इनका मिलना ही कभी नहीं हुआ।
तो ध्यान में रख लेना, उत्तर और प्रश्न इन दोनों का मिलन ही कभी नहीं हुआ। जब तक प्रश्न है भीतर, तब तक जानना उत्तर नहीं हो सकता। जिस दिन उत्तर होगा, उसके बहुत पहले प्रश्न जा चुका होगा।
यह जो जिज्ञासा और खोज के लिए कहा जा रहा है, वह सब इसीलिए है कि सब उत्तर गिर जायें। सब उत्तर गिर जायें, नेति-नेति हो जाये। नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं--सब गिर जाये, सब निषेध हो जाये। सब उत्तर गिर जायें, फिर अकेला प्रश्न रह जाये--अकेला प्रश्न कैसे जीयेगा? प्रश्न जीता है, उत्तर मिलता है इसलिए, यह कभी आपने ध्यान नहीं किया होगा! एक प्रश्न पूछिये, एक उत्तर दिया जायेगा। उस उत्तर के बाद दस प्रश्न खड़े हो जायेंगे! दस

प्रश्नों के दस उत्तर और हजार प्रश्न खड़े हो जायेंगे! हर उत्तर नये प्रश्न खड़ा करेंगे!
अगर गौर से देखा जाये तो पता चलेगा कि प्रश्नों का जो उत्तर है, जब तक उत्तर मिलता है, प्रश्न नयी संतति पैदा कर लेता है। वह नयी संतान पैदा कर लेगा। अब तक दुनिया में जितने उत्तर दिये गये, सबने नये प्रश्न खड़े किये हैं! कोई उत्तर, उत्तर नहीं है!
जैसे अंडे से मुर्गी निकलती है और मुर्गी से फिर अंडे निकलते हैं; वैसे प्रश्न से उत्तर निकलता है, उत्तर से फिर प्रश्न निकलते हैं, प्रश्न से फिर उत्तर निकलते हैं! वह अंडे मुर्गी का संबंध प्रश्न और उत्तर का संबंध है। और अंत नहीं आता है! जिस उत्तर का अंत नहीं आता है, वह उत्तर हो सकता है? खोज हमारी उसकी है, जो अंतिम है, आत्यंतिक है, अल्टीमेट है, जिसके आगे पूछने को नहीं बचता है।
लेकिन ऐसा उत्तर पूछने से नहीं आ सकता है। ऐसे उत्तर के लिए पूछना भी छूटना चाहिए। लेकिन पूछना भी उन्हीं का छूट सकता है, जिन्होंने पूछा है। जिन्होंने पूछा ही नहीं है, उनका छूटेगा कैसे? यह तीव्र जिज्ञासा चाहिए अपने भीतर कि पूछते जायें--कौन हूं मैं--कौन हूं, कौन हूं। पूछते चले जायें, पूछते चले जायें। जल्दी से बीच-बीच में उत्तर चले आयेंगे। मन कहेगा, अरे मालूम है कि कौन हूं। उन उत्तरों को मत स्वीकार करना, क्योंकि उत्तरों के स्वीकार करने से प्रश्न कभी नहीं मरेगा, फिर नये प्रश्न खड़े हो जायेंगे। मन कहेगा, आत्मा हो तुम! और अगर स्वीकार कर लिया तो हम पूछेंगे कि आत्मा मरती है कि नहीं? आत्मा कहां से आयी? भगवान ने आत्मा क्यों बनायी? भगवान कौन है?
उत्तर तो नये प्रश्न बनाते चले जायेंगे। नहीं, पूछना है उस सीमा तक। उत्तर तो स्वीकार ही नहीं करना है। सिर्फ कमजोर लोग उत्तर स्वीकार करते हैं, बलशाली लोग उत्तर स्वीकार नहीं करते। वे प्रश्नों को पूछते चले जाते हैं। कमजोर और आलसी उत्तर स्वीकार करते हैं, क्योंकि उत्तर स्वीकार करने से, वे कहते हैं, अब खोज की कोई जरूरत नहीं। हमने मान लिया कि यही होगा। अब आगे और क्या पूछना है, बस खत्म करो!
लेकिन जो अंतिम तक पूछने को राजी है, वह आखिर में सारे उत्तरों के ऊपर चला जाता है, और फिर अंत में प्रश्न के भी। एक दीया जलाइए। एक दीया जलाया, दीया की बाती जलनी शुरू हुई। लेकिन बाती नहीं जलती, तेल जलता है। बाती पर तेल चढ़ता जाता है, तेल जलता जाता है। रात भर बाती द्वारा तेल जलाते हैं। फिर तेल जल जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जब तेल खत्म हो जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जिस बाती ने सारे तेल को जलाया, उसे पता भी नहीं होगा कि तेल को जलाकर वह अपनी मौत बुला रही है। जब तेल जल जायेगा तो फिर उसे जलना पड़ेगा।
इस बाती को पता भी नहीं है कि मैं तेल को जलाकर अपनी ही मौत का आयोजन
कर रही हूं। आत्महत्या हो जायेगी, क्योंकि तेल जैसे ही खत्म हुआ, फिर बाती जलेगी। अभी बाती अपनी रक्षा कर रही है और तेल को जला रही है। रात भर तेल जलकर समाप्त हो जायेगा। दीया खाली हुआ, फिर बाती जलेगी और राख हो जायेगी। लेकिन बाती जलेगी, बाती तेल को जलायेगी और अंत में खुद जल जायेगी।
ठीक ऐसे ही प्रश्न पहले उत्तरों को गिराते हैं--यह भी उत्तर ठीक नहीं,
यह भी उत्तर ठीक नहीं, यह भी उत्तर ठीक नहीं! लेकिन प्रश्न को पता नहीं, जब सभी उत्तर ठीक नहीं रह जायेंगे, आखिर में जब सभी उत्तर जल जायेंगे, तो बाती भी जलने के क्षण तक पहुंच जायेगी। आखिर में जब सब उत्तर गिर जाते हैं तो फिर प्रश्न किसके सहारे खड़ा रहे? फिर प्रश्न भी गिर जाता है। पहले पता चलता है, उत्तर गलत है; फिर पता चलता है, प्रश्न भी व्यर्थ है! और जब प्रश्न नहीं रहते और उत्तर नहीं रहते तो वही रह जाता है, जो है। और सभी उत्तर अनुभव हैं, इसलिए जिज्ञासा और खोज के लिए मैंने कहा।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं, क्रोध, लोभ इत्यादि का कोई नियम, कोई नियंत्रण, कोई संकल्प, कोई व्रत नहीं लेना चाहिए--कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा। उन्होंने पूछा है कि एक तरफ तो आप यह कहते हैं कि ऐसा संकल्प नहीं करना चाहिए और दूसरी तरफ आप कहते हैं कि संकल्प की शक्ति होनी चाहिए!

इन दोनों बातों में उन्हें विरोध मालूम पड़ा। इन्हें समझना ठीक होगा। पहली बात, जो आदमी यह कहता है कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा, वह ऐसा क्यों कहता है? उसे पता है कि वह क्रोध करेगा, इसीलिए कहता है न? उसे मालूम है कि वह करेगा, इसीलिए संकल्प लेगा। अगर उसे पता है कि कल से क्रोध होना ही नहीं है तो वह व्रत नहीं लेगा।
आपने कभी कसम खायी है कि आज से अब दीवार से नहीं निकलूंगा, दरवाजे से
ही निकलूंगा! आपने कभी कसम नहीं खायी है, क्योंकि आप जानते हैं कि दीवार से कभी निकलते ही नहीं। दरवाजे से ही निकलते हैं। और अगर एक आदमी मंदिर में खड़ा हुआ है मैंने जो कहा है--कि कल से मैंने बिल्कुल पक्का कर लिया है, चाहे कुछ भी हो जाये, दीवार से नहीं निकलूंगा तो आप सब चौंककर देखेंगे कि क्या यह आदमी दीवार से निकलता रहा है? और कल भी उसको दीवार से निकलने की आशा है, कल्पना है, आकांक्षा है?
जब एक आदमी कहता है कि मैं कल से क्रोध नहीं करूंगा, तब वह आदमी जानता
है कि कल मैं क्रोध करने वाला हूं, उसी के खिलाफ वह संकल्प लेता है! संकल्प किसके खिलाफ ले रहे हैं? किसी दूसरे के खिलाफ? नियंत्रण, व्रत, नियम सब अपने ही खिलाफ किये जाते हैं! मुझे पता है, मैं कल भी क्रोध करूंगा। भली- भांति पता है। और जितने जोर से मुझे पक्का विश्वास है कि कल क्रोध करूंगा, उतने ही जोर से मैं कसम खाता हूं कि कल नहीं करूंगा क्रोध! किसके खिलाफ कर रहा हूं? अपने ही खिलाफ!
और अपने खिलाफ, जो आयोजन होता है, उसमें व्यक्तित्व टूट जाता है। एक व्यक्तित्व कहता है, नहीं करूंगा और दूसरा व्यक्तित्व कहता है कि करूंगा! अब इसको भी थोड़ा ध्यान से समझ लेना कि मैं क्रोध करूंगा, यह संकल्प कभी आपने लिया था जिंदगी में? कभी आपने यह व्रत लिया था कि मैं क्रोध करूंगा? यह आपने कभी नहीं लिया था, यह नैसर्गिक था। और यह आप ले रहे हैं कि मैं क्रोध नहीं करूंगा, यह नैसर्गिक नहीं है, यह कृत्रिम है। जो नैसर्गिक होगा, वह मजबूत सिद्ध होगा। जो कृत्रिम होगा, यह मजबूत सिद्ध नहीं होगा। नैसर्गिक और कृत्रिम की लड़ाई जब होगी तो कृत्रिम हारेगा और नैसर्गिक जीतेगा। आप अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहे हैं। आपका निसर्ग, आपकी प्रकृति कुछ कह रही है, कि करेंगे क्रोध और आपकी सीखी हुई बुद्धि, आपका कांशस माइंड, चैतन्य चित्त कह रहा है कि नहीं, अब हम क्रोध नहीं करेंगे! आपको पता नहीं है कि प्रकृति बहुत बलवान है और आपके ये संकल्प बहुत ना-कुछ हैं। इसका कोई मूल्य नहीं है। कल जब क्रोध का झंझावात आयेगा, तब संकल्प पता नहीं कहां उड़ जायेगा सूखे पत्तों की तरह। जैसे एक सूखा पत्ता जमीन पर पड़ा है। अभी हवा नहीं चल रही है और वह सूखा पत्ता कहता है, कसम खाते हैं, अब नहीं उड़ेंगे। अब कसम खाते हैं, कल से चाहे कुछ भी हो जाये, उड़ेंगे नहीं! सूखा पत्ता सड़क पर कसम खा रहा है। अभी हवा नहीं चल रही है। पत्ते को पक्का लग रहा है। ठीक है, जमीन पर पड़ा है, कसम खाते हैं, अब नहीं उड़ेंगे। लेकिन पत्ता कसम क्यों खा रहा है कि नहीं उड़ेंगे?
पत्ते को पुराना अनुभव है, जब भी हवा चली है, उड़ना पड़ा है। उन्हीं के खिलाफ कसम खा रहा है। लेकिन कसम पत्ता खा रहा है। और पत्ते को पता नहीं है कि सूखा पत्ता है, इसकी ताकत कितनी है! अगर प्रकृति का झंझावात और आंधी उठेगी और हवाएं चलेंगी, तब कहां इसकी कसम रहेगी। सूखे पत्ते की कोई कसम रहने वाली है? जरा आयेगी हवा, पत्ता उड़ने लगेगा! जब हवा चली जायेगी, पत्ता गिर जायेगा। फिर हवा चलेगी, फिर मन में कहेगा, आज टूट गया; लेकिन कल से अब पक्का
करते हैं। कल चलेंगे किसी संन्यासी के पास, किसी मुनि के पास और जाकर हाथ जोड़कर मंदिर में प्रार्थना करके कसम खायेंगे कि अब नहीं, अब हम अणुव्रत लेते हैं कि अब नहीं उड़ेंगे। इस पत्ते का क्या मतलब है?
जिस चेतन मन में हमने सारी बातें कही हैं, उसकी ताकत क्या है? वह जो अचेतन प्रकृति हमारे भीतर खड़ी है--ताकत है मेरी? आपके व्रत का, आपके मन में पता भी नहीं रह जायेगा। अभी आपने कसम खा ली कि कल से क्रोध नहीं करेंगे। और आज आपका व्रत खंडित हो गया! आपको नींद में व्रत का पता होगा? आप कहेंगे, व्रतों का पता रहेगा? लेकिन नींद में पता क्यों नहीं रहेगा? क्योंकि जिस मन ने कसम खायी है, वह बहुत छोटा-सा मन है। और जिस मन ने कसम नहीं खायी है,

वह बहुत बड़ा मन है। वह नींद में भी जागा होगा। नींद में भी क्रोध चलेगा, नींद में भी छुरा मारा जायेगा, नींद में भी हत्या होगी।
मनुष्य की प्रकृति के रूपांतरण का सवाल है, मनुष्य के निर्णय का नहीं।
प्रकृति बड़ी है, निर्णय हमेशा कमजोर है।
तो मैं कहता हूं, निर्णय मत लेना। समझ लो प्रकृति को कि क्या है मेरी प्रकृति? क्रोध क्या है? और जिस दिन प्रकृति की पूरी समझ आ जायेगी-- प्रकृति की समझ, प्रकृति से ज्यादा शक्तिशाली है, क्योंकि समझ भी प्रकृति की गहनतम, और गहरे से गहरा रूप है। समझ भी प्रकृति की है। वह आपकी नहीं है समझ भी! वह भी प्रकृति से जन्मती है, विकसित होती है और फैलती है।
जो व्यक्ति अपने चित्त की पूरी प्रकृति को समझ लेता है, जागरूक हो जाता है, पूरे चित्त को पहचान लेता है, वह कसम नहीं खाता है। वह यह नहीं कहता कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। वह यह कहता है कि क्रोध गया, अब क्रोध कैसे करूंगा! अगर मौका आ जायेगा तो क्रोध कैसे करूंगा! जो भी अपने भीतर क्रोध को समझ लेता है, वह यह कहेगा, अब बड़ी मुश्किल हो गयी--कल अगर मौका आ गया तो क्रोध कैसे करूंगा! क्योंकि समझने के बाद क्रोध करना असंभव है। वह ऐसे ही है, जैसे जानते हुए गड्ढे में गिरना। आंखें खुली हैं और कांटों में चले जायें, वह वैसा ही है। आंखें खुली हैं और दीवार से टकरायें, यह वैसा ही है। जानना है, संकल्प नहीं लेना है।
फिर उन्होंने पूछा है कि लेकिन आप कहते हैं, संकल्प-शक्ति चाहिए? तो उसका क्या मतलब है?
उसका मतलब ही यह है कि जितना आप संकल्प लेंगे, उतनी ही संकल्प-शक्ति क्षीण होती है। संकल्प-शक्ति विकसित नहीं होती है संकल्प लेने से। असल में जब सब संकल्प-विकल्प गिर जाते हैं, तब मनुष्य के भीतर संकल्प शुरू होता है, तब उसे संकल्प लेना नहीं पड़ता है। संकल्प शक्ति होती है उसके भीतर। और जो भी उसके पूरे प्राण चाहते हैं, वह हो जाता है, उसके निर्णय नहीं लेने पड़ते हैं कि ऐसा हो, ऐसा मैं करूं। उसका पूरा काम--जो चाहता है, वह हो जाता है! उसके भीतर संकल्प का अर्थ है जिसके भीतर विकल्प नहीं रह गये।
जिस आदमी के चित्त में विकल्प उठते ही नहीं, उसके भीतर संकल्प है। विकल्पों से विदा होने पर संकल्प रह जाता है।
संकल्प का मतलब है वही ऊर्जा, वही शक्ति, जो परमात्मा की है। वही काम करने लगती है।
फिर आदमी ऐसा नहीं कहता है कि मैं ऐसा करूंगा। वह कहता है कि ऐसा हो रहा है। वैसा आदमी च्वाइस भी नहीं करता, चुनाव भी नहीं करता। वह यह कहता है कि मैं युक्त होता हूं और यह करता हूं। उसके पूरे प्राणों को जो ठीक लगता है, वह वही करता है। चुनाव भी नहीं करता! वह यह भी नहीं कहता कि मैं फलां चीज छोड़ता हूं! क्योंकि हम छोड़ते उसी चीज को हैं, जिसके पीछे हमारा कोई लगाव होगा।
जब एक आदमी कहता है कि मैं बांये जाऊं कि दांये, तो उसके भीतर जो निर्णय होता है वह माना कि मेजार्टी का निर्णय है, डेमोक्रेटिक निर्णय है। पचास प्रतिशत दिमाग कहता है कि चलो, बांये चले चलो, उनचास प्रतिशत दिमाग कहता है कि दांये चलो। फिर वह बांये चला जाता है। क्योंकि उनचास प्रतिशत दिमाग में रहा कि दांये चलो--दस पच्चीस कदम गया है, तो लगता है कि कहीं भूल तो नहीं हो गयी है--दो प्रतिशत! दांये ही चले जायें! उनचास प्रतिशत कहने लगता है कि गलती हुई जा रही है, इसी पर चलते तो बहुत अच्छा था! यह आदमी डोलता है। यह कभी तय नहीं कर पाता है।
ऐसे लोग हैं कि घर में ताले लगाकर निकलते हैं, दस कदम के बाद ख्याल आता
है कि फिर से लौटकर देख लें कि ताला ठीक से लगा है कि नहीं! क्योंकि दिमाग कहता है, देखा था कि नहीं देखा था? एक हिस्सा कहता है कि देखा तो था। लेकिन दूसरा हिस्सा कहता है कि संदिग्ध है, चलें लौटकर देख लें! लेकिन वह आदमी यह नहीं जानता कि लौटकर देखकर फिर दस कदम बाद यही हालत हो जायेगी! कुछ लोग जिंदगी भर लौट-लौट कर ताला ही देखते रह जाते हैं! और निरंतर विकल्प करते रहते हैं--यह करो, यह करो। उनके दिमाग में यही चलता रहता है!

एक बहुत बड़ा विचारक था कीर्कगार्ड। वह जिस गांव में रहता था, उस गांव
के लोगों ने उसका नाम"ईदर-आर" रख छोड़ा था। चौरस्ते पर खड़ा है और सोच रहा है कि इस रास्ते जाऊं कि उस रास्ते जाऊं! उसने एक किताब लिखी है, जिसका नाम"ईदर-आर" है--यह या वह! सारा गांव चिल्लाता था, वह"ईदर-आर" जा रहे हैं--हर छोटी चीज में!
एक लड़की से प्रेम हो गया। और"ईदर-आर" खड़ा हो गया--शादी करूं या न करूं!
दस साल तक सोचता रहा! तब तक लड़की की शादी हो गई, उसके लड़के-बच्चे शादी योग्य हो गये! तब वह पक्का कर पाया कि कर लेनी चाहिए शादी! फिर वह गया। तब पता चला कि लड़की का तो विवाह भी हो चुका है, उसके बच्चे भी बड़े हो चुके हैं। तुम बहुत देर करके आये, तुम गये कहां? उसने कहा, मैं हिसाब लगाता रहा कि करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए!
यह जो मस्तिष्क है, विकल्प से भरा हुआ--मस्तिष्क हमेशा कहता है-- यह या वह! और हमेशा डोलता है दोनों तरफ! हर वक्त डोलता रहता है, हर चीज में डोलता रहता है! कमीज तक पहनता है आदमी तो एक निकालता है, उसको रखता है; फिर दूसरी निकालता है, फिर पहनकर आईने के सामने खड़ा होता है, फिर उसे भी निकालता है! वह"ईदर-आर" पूरे वक्त दिमाग को खाये जा रहा है! ऐसा आदमी कैसे संकल्प को उपलब्ध हो सकता है?
पति बाहर हार्न बजा रहा है कि गाड़ी चूकी जाती है। पत्नी कहती है, सवाल गाड़ी का नहीं, स्टेशन पर इतने लोग हैं, साड़ी का सवाल है! और वह तय नहीं कर पा रही है, क्योंकि बहुत साडिय़ां हैं पेटी में--नीचे से ऊपर तक! तो वह तय नहीं कर पा रही है कि कौन सी साड़ी पहने!"ईदर-आर" है दिमाग में, हर छोटी चीज पर! अगर आप भी यह तय कर लें कि मैं पक्का निर्णय करके ही कुछ करूंगा, तो जिंदगी भर कुछ नहीं कर पायेंगे, क्योंकि पक्का निर्णय होने वाला नहीं है। कुछ हिस्सा भीतर का कहता रहेगा, यह भी कर लो, शायद वह ठीक हो। वह तो मौत आपसे पूछती नहीं, आती है। आप मरना चाहते हैं कि नहीं? नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाये। आदमी अधमरे मुद पड़े रहेंगे, वर्षों, सैकड़ों वर्षों तक और तय नहीं कर पाये कि मरें कि नहीं! तो मौत आती है। वह पूछती नहीं और ले जाती है। सिर्फ मौत आपको कोई विकल्प नहीं देती है। और इसलिए मौत का सबसे ज्यादा डर लगता है, क्योंकि वह हमसे पूछती नहीं। इसलिए हम उससे भयभीत रहते हैं, क्योंकि वह हमसे पूछती नहीं कि आपको क्या करना है!
मैंने सुना है, एक लकड़हारा जंगल से लकड़ी काटकर लौटता था, तब रोज-रोज कई बार कहता था, हे भगवान, मुझे तुम मार डालो, उठा लो दुनिया से! यह क्या लकड़ी ढोते-ढोते जिंदगी खराब हो गयी! जिंदगी भर यही करता रहूंगा? आज भी लकड़ी ढोते चला आया--सिर पर भार है, पसीना चू आया है, बूढ़ा आदमी है, एक जगह आकर लकडिय़ों का गट्ठा टेककर उसने कहा, हे भगवान, अब तो मुझे उठा ले, अब मुझे रहने की जरूरत नहीं!
भाग्य की बात कि मौत उस रास्ते से गुजरती थी। उसने सुन ली, कहा, यह बेचारा बहुत दिन से बुलाता है, चलो इसको लेते चलें। तो मौत उसके पास आयी उसने कहा, मैं आ गयी हूं!
लकड़हारे ने कहा, तू कौन है?
उसने कहा, मैं मौत हूं, तू बहुत दिन से बुलाता था, आज रास्ते पर मिल गये, मैं जा रही थी दूसरी जगह, चलो तुम्हें ले चलती हूं।
उस बूढ़े ने कहा, मर गये! ठहर-ठहर, मैंने तुझे बुलाया जरूर, लेकिन बुलाया इसलिए कि रास्ते पर कोई दिखाई नहीं पड़ता था। यह जो गट्ठा दिखाई दे रहा है, यह उठा दे मेरे सिर पर! और कोई काम नहीं है, सिर्फ यह गट्ठा उठा दे मेरे सिर पर। और जिंदगी में आइंदा ऐसी बात नहीं करूंगा। मैंने तो तुझे इसे उठवाने के लिए बुलाया था!
वह हमारा जो चित्त है, उस चित्त की चंचलता का कोई अर्थ नहीं है। चित्त
की चंचलता का हमेशा एक ही अर्थ है कि चित्त हमेशा"ईदर-आर" में सोचता है--यह या वह! और दोनों पर डोलता है! ऐसा डोलने वाला चित्त, विकल्प चित्त कहलाता है--विकल्पवान।
जब चित्त ऐसी दशा में पहुंचता है, जहां यह-वह दोनों समाप्त हो जाते हैं। जो है, वही परिपूर्ण टोटल, इंटिग्रेटेड। एक ही प्राण का उत्तर होता

है। कि यह और वह, इसमें कोई विरोधी स्वर नहीं होता। ऐसा चित्त संकल्पवान होता है।
संकल्प उन्हें उपलब्ध होता है, जो विकल्प से मुक्त हो जाते हैं।
लेकिन आप कहते हो कि मैं सिगरेट छोड़कर रहूंगा, मैं कसम खाता हूं, सिगरेट नहीं पीयूंगा! आप विकल्प खड़ा कर रहे हैं। एक मन कह रहा है कि मैं सिगरेट पीयूंगा, उसी के खिलाफ आप दूसरा विकल्प कर रहे हैं कि नहीं पीयूंगा! आप विकल्प खड़ा कर रहे हैं। आपकी संकल्प शक्ति कम होगी, बढ़ेगी नहीं। आप यह मत समझना कि इससे संकल्प बढ़ जायेगा, इससे संकल्प शक्ति क्षीण होगी, क्योंकि रोज-रोज आप कसम लेंगे और रोज-रोज कसम टूटेगी। और अंततः आप पायेंगे कि व्यक्तित्व सारा टूट गया है। संकल्प का अर्थ है जहां विकल्प नहीं है, जहां कोई अल्टरनेटिव नहीं है, जहां एक ही स्वर उठता है कि बस यही। बंगाल में बुत्तौ एक बहुत बड़ा व्याकरण का ज्ञाता हुआ। उसके बाप ने उसकी जब साठवीं वर्षगांठ हुई तो उससे कहा कि तू अपने इस व्याकरण में उलझा रहेगा? यह धंधा तू छोड़ और भगवान का स्मरण कर!
उस बेटे ने--साठ वर्ष का बूढ़ा वह भी था, बाप अस्सी साल का होगा--उस बूढ़े बेटे ने कहा, कि करूंगा एक दिन, एक बार; बार-बार नहीं! क्योंकि बार-बार स्मरण करने से मतलब क्या है? तुम्हें मैं देख रहा हूं वर्षों से, सुबह से शाम तक भगवान का स्मरण करते हो! कुछ हुआ तो नहीं!
और तुम बड़े अजीब हो! तुमने जब पहली दफा स्मरण किया था और जब पहली दफा नहीं हुआ तो उसी स्मरण को बार-बार करने से फायदा क्या है? जब होना था तो पहली बार ही हो गया होता। वही तो कर रहे हो न? दो बार, फिर तीन बार, वही कर रहे हो! जब पहली बार नहीं हुआ--करने वाले भी तुम्हीं हो, स्मरण भी वही है और रोज-रोज कर रहे हो, और नहीं हो रहा है--फिर भी किये चले जा रहे हो! मैं एक बार करूंगा। एक बार सिर्फ! दोबारा नहीं करूंगा।
पांच साल बाद उसकी पैंसठवीं वर्षगांठ थी। वह पैंसठ वर्ष का बूढ़ा उठा। अपने पिता के चरण छुए और कहा कि मैं मंदिर जा रहा हूं। शायद आज स्मरण का दिन आ गया है, आपके चरण छूता हूं।
बाप ने कहा, इसमें चरण छूने की क्या बात है?
उसने कहा, लौटना मुश्किल है, क्योंकि जा रहा हूं।
बाप ने कहा, मतलब क्या है तेरा?
उसने कहा, मतलब साफ है। जब मंदिर जा रहा हूं तो घर कैसे लौटूंगा!
बाप ने कहा, पागल हो गये हो? मैं रोज लौटता हूं। कोई मंदिर जाने से लौटने में बाधा होती है?
उस बेटे ने कहा, आप मंदिर गये ही नहीं। नहीं तो लौटते कैसे?
बाप हंसा कि पागल है! कभी गया नहीं मंदिर और आज क्या बातें करता है!
लेकिन उस दिन और रात गांव के लोगों ने दौड़कर खबर दी कि तुम्हारा लड़का मरा हुआ पड़ा है मंदिर में!
बाप ने कहा, यह क्या हो गया!
सारा का सारा गांव इकट्ठा हो गया। मंदिर के पुजारी ने कहा, न मालूम आज पहली दफे तो आया और हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और उसने कहा, एक बार पुकारता हूं, सुनते हो तो सुन लो। नहीं सुनते हो तो बात खत्म। फिर दोबारा मैं तेरी तरफ लौटकर देखूंगा भी नहीं। और उसने एक बार आंख बंद की और उसकी श्वास जो बाहर गयी तो पीछे नहीं लौटी!
इसको कहते हैं संकल्प। संकल्प का मतलब क्या होता है? संकल्प का मतलब होता है इंटिग्रेटेड माइंड। पूरा का पूरा, टोटल, समग्र चित्त। जब कोई एक स्वर से भरता है, तब संकल्प की स्थिति है। और संकल्प जो चाहता है, वही हो जाता है। संकल्प के लिए कोई बाधा नहीं है।
हम तो विकल्पों में जीते हैं। और एक विकल्प को पकड़ते हैं, और दूसरे के खिलाफ कहते हैं कि मैं संकल्प कर रहा हूं! यह संकल्प नहीं है।
तो दूसरी बात, इन छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने मन को खंड-खंड में मत तोड़ना। क्योंकि खंडित मन कमजोर मन है। जितने खंड टूट जायेंगे, मन उतना ही अशक्त और निर्वीर्य हो जाता है। मन चाहिए अखंड। अखंड चित्त ही विराट खंड से जुड़ने में समर्थ हो पाता है।

लेकिन यह मत समझ लेना कि मैं कहता हूं, क्रोध करो। जो भी करना हो, करो। क्योंकि संकल्प करने में ही व्रत लेना नहीं है।
साधु-संन्यासी समझाते हैं पूरे मुल्क में कि मैं लोगों को क्रोध करने की, वासना में उतरने के--इन सबके लिए प्रयोग कर रहा हूं। तो मैं लोगों से कह रहा हूं, व्रत मत लो, नियम मत लो और जो ठीक लगे करो! मैंने कभी नहीं कहा। मैं यह कह रहा हूं कि व्रत और नियम लेने के बाद तुम क्रोध ही करते रहोगे। काम में ही उलझे रहोगे। व्रत और नियम से कभी कोई क्रोध, लोभ, काम से मुक्त नहीं हुआ है।
मैं यह कह रहा हूं, व्रत मत लो। क्रोध को, काम को समझो। समझते ही मुक्त
हो जाओगे। समझ से ही कभी कोई मुक्त हुआ है। नियम सिर्फ नासमझ लेते हैं। समझदार आदमी कभी नियम नहीं लेता, समझ को विकसित करता है। समझ नियम बन जाती है। नियम समझ नहीं बन पाते। सिर्फ जड़-बुद्धि, मंद-बुद्धि व्रत लेते हैं! बुद्धिमान कभी व्रत नहीं लेता। क्योंकि बुद्धिमानी स्वयं व्रत है। बुद्धिमान लोगों को इसलिए अलग से व्रत नहीं लेने पड़ते। बुद्धिमानी स्वयं संयम है। बुद्धिमान को संयम की, नियम की, कसमें नहीं खानी पड़ती हैं।
धर्म के नाम पर मंद-बुद्धि का प्रयोग चल रहा है। और जो अभी व्रत लेता है, कसम खाता है, संघर्ष करता है कि ऐसा नहीं करूंगा, ऐसा करूंगा; ऐसे आदमी अपने मस्तिष्क को, अपनी बुद्धि को, मंद करने की दिशा में ले जाते हैं। अगर बिल्कुल ही जड़ता पानी हो तो नियम, व्रत आदि बड़े सहयोगी हैं।
अगर सारा गौरव खोना हो; विवेक का, बुद्धि का सारा प्रकाश खोना हो; अगर
वह ऊर्जा, वह गरिमा, जो मनुष्य के भीतर छिपी है विवेक की, अंडरस्टैंडिंग की, वह सब नष्ट करनी हो तो व्रत लेना, संयम लेना, नियम लेना।
और ध्यान रखना, संयम, नियम और व्रत कभी भी संयमी नहीं बना सकेंगे। न नियमी बना सकेंगे, न व्रती बना सकेंगे।
यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। यही तो हमें दिखाई पड़ता है चारों तरफ। महावीर को देखें, बुद्ध को देखें, जीसस को या कृष्ण को, तो ऐसा मालूम पड़ता है कि बड़े नियम के आदमी हैं। नियम के आदमी बिल्कुल नहीं हैं। महावीर से ज्यादा बिना नियम का आदमी खोजना मुश्किल है।
लेकिन हम कहेंगे कि महावीर तो इंच-इंच नियम का पालन करते हैं! बुद्ध इंच-इंच नियम का पालन करते हैं! हर रोज पांच बजे सुबह उठते हैं ब्रह्म-मुहूर्त में, तो हमको भी कसम खानी चाहिए कि रोज पांच बजे ब्रह्म-मुहूर्त में उठेंगे।
लेकिन कभी आपको पता है, महावीर ने ब्रह्म-मुहूर्त में उठने की कसम नहीं खायी। महावीर इतने गहरे सोते हैं कि ब्रह्म-मुहूर्त में उठ जाते हैं। ब्रह्म-मुहूर्त में उठने की कोई कसम उन्होंने नहीं ली है। लेकिन इतना गहरा सोते हैं कि ब्रह्म-मुहूर्त तक नींद पूरी हो जाती है और उठ जाते हैं!
और आप खायेंगे कसम कि हम पांच बजे उठेंगे। वह कसम पांच बजे उठा देगी, लेकिन दिनभर सोये हुए रखेगी। दिन भर झपकियां आती रहेंगी। क्योंकि महावीर की नींद कहां है आपके पास। महावीर की नींद तो ब्रह्म-मुहूर्त में खुलती है। और महावीर की नींद न हो तो ब्रह्म-मुहूर्त में नींद खोलनी होती है। और खोलनी पड़े तो नींद झूठी है। और इससे बेहतर है, सो जाना। सात बजे ही उठना, कोई हर्जा नहीं है। कम से कम दिन भर तो जागे हुए होंगे।
मैं चाहता हूं कि पांच बजे नींद खुले, इसकी समझ विकसित होनी चाहिए। और नींद खुल जाये अपने आप। जो नींद अपने आप खुलती है, वही नींद सम्यक नींद है। जिस नींद को खोलना पड़ता है, वह नींद गड़बड़ हो जाती है, विकृत हो जाती है। लेकिन एक आदमी कसमें खा लेता है कि हम तो तीन बजे उठेंगे!
एक पंजाबी महिला मेरे पास आयी और उसने मुझसे कहा कि किसी भांति मेरे पति को थोड़ा कम धार्मिक बनाइए! वह मेरे पास आई, क्योंकि वह जानती है कि मैं लोगों को कम धार्मिक बनाता हूं। किसी तरह थोड़ा इनका रिलीजन कम हो जाये तो हम पर बड़ी कृपा होगी! हमारा पूरा घर पागल हुआ जा रहा है!
और एक घर में एक आदमी धार्मिक हो जाये तो पूरा घर पागल होने लगता है! तथाकथित धार्मिक अगर एक आदमी हो गया पूरे घर में, तो पूरे घर का दुर्भाग्य समझें। वह पूरे घर को दिक्कत में डाल देगा। उसके नियम, उपवास, व्रत आदि का

ऐसा चक्कर चलेगा कि उस घर में शांति से रहना, किसी का भी संभव नहीं है। तो मैंने पूछा, तकलीफ क्या है उन्हें?
तो उसने कहा, वह दो बजे रात उठते हैं, और जपुजी का पाठ करते हैं इतने जोर-जोर से कि मुहो के सब लोग आकर कहते हैं कि हमारी नींद हराम कर डाली। घर में न बच्चे सो सकते हैं, न हम सो सकते हैं। दिन भर स्कूल में बच्चों को नींद आती है, क्योंकि इनके जपुजी के मारे मुसीबत हो गयी है! आप मेरे पति को समझा दें कि थोड़ा कम धार्मिक हो जायें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।
उनके पति को मैंने बुलाया। मैंने कहा, कब उठते हो? उन्होंने कहा, दो बजे सुबह! और बहुत प्रसन्नता में मुस्कराकर बोले कि आप तो मेरी बात को शाबाशी देंगे! मेरी पत्नी जान खाये जा रही है। लेकिन ऐसा सदा होता रहा है, धार्मिक पुरुषों की पत्नियां हमेशा पीछे खींचती हैं। पत्नियां ही संसार की तरफ लाती हैं लोगों को भगवान की तरफ से! फिर यह तो होता रहा है, मैं सुनने वाला नहीं। और कोई बुरा काम तो करता नहीं हूं, जपुजी का पाठ करता हूं।
मैंने कहा, धीरे करते हो कि जोर से?
उन्होंने कहा, मैं तो जोर से करता हूं, क्योंकि पत्नी, बच्चे सबको अनायास लाभ हो जाता है! वह तो अनायास कई लोगों को लाभ दे रहे हैं! माइक, लाउड-स्पीकर लगाकर अखंड रामायण चलाते हैं, अखंड राम-नाम चलाते हैं! वह सारे मुहो वालों को राम-नाम का फायदा देते हैं! सारा मोहल्ला गाली देता है। बच्चे परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं। और वह राम-नाम को अखंड चला रहे हैं, वह सबका कल्याण कर रहे हैं! मैंने उनसे कहा कि तुम तो माइक लगाकर जपुजी का पाठ करो तो मोहो वालों को बहुत फायदा होगा! लेकिन एक बात ध्यान रखना, आजकल जो माइक वगैरह लगाकर अखंड रामायण करते हैं, सबको नर्क जाना पड़ता
है, क्योंकि इतने लोगों को तकलीफ पहुंचा देते हैं! यह क्या पागलपन मचा रखा है? दिन भर क्या हालत है?
उन्होंने कहा, दिन भर तामसी प्रवृत्ति है, इसलिए दिन भर नींद आती है!
अब दो बजे रात जागेंगे! और दिन भर नींद आयेगी तो शास्त्रों में लिखा है कि जिसको दिन में नींद आती है, वह तामसी प्रवृत्ति का आदमी होगा! तो मेरी तामसी प्रवृत्ति है और उससे ही लड़ रहा हूं। आज नहीं कल, जीत जाऊंगा। और काफी मैं काबू पा लिया हूं।
यह जो इस तरह के नियम लेने वाले लोग हैं, वे किसी भी चीज में नियम लेंगे। उससे वे अपने को भी नुकसान पहुंचायेंगे, पड़ोस में भी सबको नुकसान पहुंचायेंगे।
नियम नहीं लिए जाते, समझ होनी चाहिए।
और समझ विकसित हो तो आदमी ठीक समय पर सोयेगा, ठीक समय पर उठेगा; ठीक खायेगा, ठीक पीयेगा, ठीक बोलेगा, ठीक बैठेगा। लेकिन समझ से। यह मेरी समझ से आया हुआ अनुशासन होगा, यह थोपा हुआ अनुशासन नहीं होगा।
लेकिन हम थोपे हुए अनुशासन को अब तक मानते रहे हैं! और इसलिए सारी मनुष्य-जाति को विकृत, कुरूप, अपंग, भटका हुआ कर दिया है।
नहीं, ऊपर से थोपा हुआ कोई अनुशासन नहीं चाहिए। समझ से, भीतर से आया हुआ अनुशासन चाहिए। वह अनुशासन बहुत और तरह का है। उसमें उतना ही फर्क होता है, जैसे कोई बाजार से कागज के फूल खरीद लाये और किसी के घर में गुलाब के फूल खिले हों। बाजार में भी गुलाब के फूल कागज के मिलते हैं, वे अच्छे भी होते हैं--कई कारण हैं। एक तो अच्छाई उनकी यह होती है कि उनमें कांटे नहीं होते हैं, दूसरी अच्छाई यह होती है कि वे मुरझाते नहीं, तीसरी अच्छाई यह होती है कि कितने ही दिन रखे रहो, वैसे ही बने रहते हैं! लेकिन एक ही भर उनमें खराबी होती है, वे कागज के होते हैं, फूल नहीं होते हैं!
वह असली फूल आता है पौधे के भीतर से। जमीन की गहराइयों से आता है, जड़ों
से आता है। अनजान, अज्ञान लोक से आता है और प्रकट होता है, खिलता है। वह भीतर से आया हुआ फूल है। कागज के फूल लाये गये, लगाये गये फूल हैं।
नियम और व्रत लेने वाले लोग कागजी किस्म के लोग हैं, जापानी किस्म के, ऊपर से सब लगाया हुआ। उनके भीतर से कुछ भी नहीं आया है। सब बाजार से खरीदकर

लाया गया है, और ऊपर से चिपका लिया है, बिठा लिया गया है। भीतर उनके कुछ भी नहीं है।
मैं बात कर रहा हूं, उस धर्म की, जो भीतर से फूलों की तरह आये और सारे व्यक्तित्व में खिल जाये। लेकिन उन फूलों को लाने में श्रम करना पड़ता है। श्रम इस अर्थ में कि बहुत-सी नासमझी छोड़नी पड़ती है, बहुत-सा अज्ञान तोड़ना पड़ता है, बहुत-सी व्यक्तित्व की पर्तों की खोज करनी पड़ती है, भीतर जाना पड़ता है, उघाड़ना पड़ता है, अपने को नग्न करना पड़ता है, इसलिए मेहनत उठानी पड़ती है।
कागज के फूलों को कोई दिक्कत नहीं है। वे बाजार में मिल जायेंगे, उनको
ले आओ और लगा दो!
मंदिरों में व्रत लिए जाते हैं, कसमें खायी जाती हैं। वहां तुम चले जाओ, कसमें खाओ, व्रत लो, लेकिन उनसे एक झूठा आदमी पैदा होता है, सच्चा आदमी पैदा नहीं होगा।
इस पृथ्वी पर इतना असत्य है, इतना झूठ, इतना पाखंड, इतनी हिपोक्रेसी है; इसका कुल कारण इतना है कि लोगों ने ऊपर से धर्म थोपा है, वह भीतर से नहीं आया है। अगर भीतर से न आये तो बड़ी तकलीफ होती है और बड़ी पीड़ा होती है। एक सुधारक मेरे पास मेहमान हुए। दो चार दिन मेरे करीब रहे तो मुझसे परिचित हो गये और मेरे प्रति वे सरल और साफ हो गये। मुझसे कहने लगे कि आपसे मैं अपने हृदय की कुछ सच्ची बातें कह सकता हूं, जो मैंने कभी किसी से नहीं कहीं। और मेरी कुछ सहायता करें तो मेरा बड़ा लाभ हो। तो मैंने कहा, क्या मैं कर सकता हूं, बोलो।
तो उन्होंने कहा कि सबसे पहला तो यह कि मुझे सिनेमा देखना है!
मैं भी बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा, मतलब?
तो उन्होंने कहा, जब मैं नौ साल का था, तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दिलायी थी। मेरी पिता भी दीक्षित हो गये थे। और वे इसलिए दीक्षित हो गये कि मेरे मां मर गयी थी। मेरी मां के मरने की वजह से पिता बेकार हो गये और वे दीक्षित हो गये। मैं अकेला नौ साल का बच्चा था, तो उन्होंने मुझे दीक्षा दिलायी। मेरी बुद्धि नौ साल के ऊपर अटकी हुई है, उससे आगे विकसित नहीं हुई है। कैसे विकसित होगी? दीक्षित आदमी की बुद्धि कभी विकसित नहीं होगी। क्योंकि विकास के लिए चाहिए अनुभव, विकास के लिए चाहिए विराट अनुभव। दीक्षित आदमी को अनुभव नहीं होता है--बंधा हुआ होता है, एक घेरे में जीता है। अब नौ साल का बच्चा, उसने कभी फिल्म नहीं देखी थी! अब वह हो गया ज्ञानी, वह हो गया मुनि, वह अपने हाथों में कमंडल और पट्टी-बट्टी बांधकर घूमने लगा! वह लोगों को आत्मा और मोक्ष का ज्ञान देने लगा! अब भीतर एक अटकाव है कि जब वह टाकीज के सामने से निकलता है, वहां भीड़ लगी हुई देखता है! उसके मन में होता है, भीतर न जाने क्या होता होगा। भीतर तो कुछ होता होगा? इतने लोग भीड़ लगाये हुए हैं खिड़कियों पर! भीतर होता क्या है?
वह आपको अंदाजा नहीं हो सकता है--उस बेचारे की तकलीफ! क्योंकि आप भीतर
हो आये। आपको पता नहीं हो सकता कि नौ साल में जो दीक्षित हो गया है, उसकी तकलीफ क्या हो सकती है? वह कितनी मुश्किल में पड़ा होगा?
उसने मुझसे कहा, मेरी बड़ी मुसीबत हो गयी है। मैं रहता तो मंदिरों में हूं, लेकिन मेरा चित्त टाकीज के पास घूमता है! मैं तो मोक्ष की बातें ही कर सकता हूं। यही करता हूं। और देखना मुझे फिल्म है! एक दफे कोई तरकीब से आप मुझे दिखा दें।
मैंने एक मित्र को बुलाया। पड़ोस के एक मित्र थे। मैंने उनको कहा कि आप जाकर इनको फिल्म दिखा लाइये। उन्होंने कहा, मैं हाथ जोड़ता हूं। मैं इनको ले जाऊंगा और किसी ने मुझे देख लिया कि मैं इस साधु को फिल्म दिखाने लाया हूं तो यह ठीक नहीं है। मेरी भी मरम्मत हो सकती है। मैं इस झंझट में नहीं पड़ता। बहुत उनको समझाया तो वह बोले कि कैंटोनमेंट एरिया में अंग्रेजी फिल्म की एक टाकीज है। वहां ले जा सकता हूं, क्योंकि वहां जैनी वगैरह नहीं है। ये जैनियों के गुरु हैं। वहां अंग्रेजी फिल्म दिखा सकता हूं इनको। बस्ती में नहीं ले जा सकता हूं इनको। लेकिन यह गुरु अंग्रेजी नहीं जानते हैं! वह कहने लगे, अंग्रेजी तो मैं जानता नहीं।

तो मैंने कहा, यह तो अंग्रेजी फिल्म ही दिखा सकते हैं। यह उनको मैंने कहा कि ये हिंदी चित्र दिखाने को राजी नहीं हैं। आप अंग्रेजी नहीं समझते हैं, क्या किया जा सकता है। फिर आप मत जाइये। वह बोले, कोई हर्जा नहीं, भाषा नहीं समझूंगा, लेकिन देख तो लूंगा। चले गये!
नौ वर्ष में व्रत दिलवा दिया जिंदगी के प्रति आंख बंद रखने का! उससे जिंदगी मिट नहीं जायेगी और उससे जिंदगी आकर्षण हो जायेगी। मन और जोरों से पुकार करने लगता है कि यह जानूं, यह जानूं!
व्रत भूलकर मत लेना। व्रत से समझ विकसित नहीं होती है, कुंठित होती है।
दीक्षा कभी भूलकर मत लेना। दीक्षा से आदमी मंद-बुद्धि होता है।
समझ को स्वीकार कर लेना चाहिए। समझ से एक दिन नियम आते हैं फूलों की तरह। समझ से अंततः संन्यास आता है फूलों की तरह। तब वह संन्यास बिल्कुल दूसरा हो जाता है। यह वर्दीधारियों का संन्यास नहीं होता है। वर्दीधारी संन्यासी में और वर्दीधारी मिलटरी के सैनिक में कोई फर्क नहीं है। सब सीखा हुआ है ऊपर से। लेफट-राइट करने वाले लोग हैं, इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। लिया हुआ संन्यास झूठा होगा। संन्यास आना चाहिए।
जीवन की समझ से धीरे-धीरे संन्यास आता है।
सारा व्यक्तित्व बदल जाता है। उस बदले हुए व्यक्तित्व के लिए--सारी बातें जो मैंने कही हैं, उसके लिए एक सहज फ्लावरिंग, एक सहज खिल जाना है। थोपा हुआ, जबरदस्ती खींचात्ताना, चेष्टा से लाया, जड़--और इस तरह प्रलोभन के मार्ग से आया हुआ कोई भी ढंग, ढांचा मनुष्य के हित में नहीं है, वह मनुष्य की हत्या करता है।
और बहुत से प्रश्न रह गये हैं। उन पर तो बात संभव नहीं हो पायेगी। जिन मित्रों के प्रश्न छूट गये हों, वे भी जिन प्रश्नों के मैंने उत्तर दिये हैं, अगर उन्होंने गौर से सुना होगा, समझा होगा, तो उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि उनके प्रश्न छूट गये हैं।
लेकिन हमारे मन में बड़ा मुश्किल होता है। जो आदमी प्रश्न पूछता है, उसे प्रश्न से ज्यादा इस बात का ख्याल होता है कि उसका प्रश्न! तो मैं जब फिर निकलता हूं तो मुझे रास्ते में याद दिला देते हैं कि सब तो ठीक है, लेकिन मेरे प्रश्न का क्या हुआ! वह प्रश्न उतना मूल्यवान नहीं है। वह मैंने पूछा है, उसका उत्तर जरूरी है!
ये सारभूत प्रश्न थे, जो सबके प्रश्नों में समान थे। जो मुझे लगा कि आपकी साधना में उपयोगी होंगे, उनके मैंने उत्तर दिये हैं। कुछ और भी प्रश्न उपयोगी हो सकते थे, लेकिन वे समय के अभाव में संभव नहीं हैं। जिनके प्रश्नों के उत्तर न मिल पाये हों, वे अपने प्रश्नों को संभालकर रखेंगे, दुबारा जब कभी उनको उत्तर मिल सके। हालांकि लोग प्रश्न भी भूल जाते हैं, क्योंकि प्रश्न भी उधार होते हैं। ऐसा मैं रोज-रोज अनुभव करता हूं।
एक आदमी आता है मेरे पास और पूछता है कि आत्मा के संबंध में कुछ बताइए?
और मैं देखता हूं कि उस बेचारे को आत्मा से क्या मतलब है! आत्मा से किसी को क्या मतलब हो सकता है!
तो मैं उससे पूछता हूं, कैसी तबीयत है, क्या हाल है, कैसा काम चलता है?
बस दो मिनट मैं दूसरी बात करता हूं। फिर वह घंटे भर बैठता है, फिर वह हजार बातें करता है और चला जाता है!
फिर वह भूलकर दुबारा याद नहीं दिलाता कि वह आत्मा का क्या हुआ! वह बात गयी। वह कहीं उसके भीतर से आयी हुई बात नहीं है कि उसे पूछने से कोई संबंध था बहुत। पूछना था, पूछ लिया। सुना था, ख्याल आ गया कि मन में हवा उड़ गयी। ख्याल आ गया, चलो आत्मा के संबंध में पूछो, लेकिन कहीं कोई गहरा लगाव नहीं था।

नेति-नेति
उन्नीसवां प्रवचन

कर्म, ज्ञान, भक्तिः मन के खेल

मेरे प्रिय आत्मन्,
अंधेरी रात हो तो सुबह की आशा होती है। आदमी भी एक अंधेरी रात है और उसमें भी सुबह की आशा की जा सकती है। कांटों से भरा हुआ पौधा हो तो उसमें भी फूल लगते हैं। आदमी भी कांटों से भरा हुआ एक पौधा है, उसमें भी फूल की आशा की जा सकती है। बीज हो तो अंकुरित हो सकता है, विकसित हो सकता है। आदमी भी एक बीज है और उसमें भी विकास के सपने देखे जा सकते हैं।
लेकिन साधारणतः मनुष्य बीज ही रह जाता है और वृक्ष नहीं हो पाता! साधारणतः मनुष्य कांटों से भरा हुआ एक पौधा ही रह जाता है और फूल नहीं खिल पाते! साधारणतः मनुष्य बीज ही रह जाता है और वृक्ष नहीं हो पाता! अंधेरी रात ही रह जाता है और प्रभात कभी नहीं हो पाता! एक सपना ही रह जाता है और सत्य कभी भी नहीं बन पाता!
इसलिए प्रत्येक मनुष्य के सामने सवाल है कि मार्ग क्या है? कैसे हम पहुंचे उस तक, जिसे हो जाने के बाद कुछ और हो जाने की आकांक्षा शेष नहीं रह जायेगी? कैसे उसे पा लें, जिसे पा लेने के बाद फिर कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता? कैसे वह मंदिर मिल जायेगा, जहां हम अपने पूरे स्वरूप को उपलब्ध हो सकेंगे, जो हम होने को पैदा हुए हैं, वह हो सकेंगे? कहां है रास्ता? कौन-सा है रास्ता?
सबसे बड़ी कठिनाई जो है, वह यह है कि जीवन आकाश की तरह है, जमीन की तरह नहीं। काश! जीवन जमीन की तरह होता तो महावीर चलते हैं, बुद्ध चलते हैं, कृष्ण चलते हैं, क्राइस्ट चलते हैं, रास्ते बन गये होते, उनके पदचिकृ बन गये होते। लाखों लोग चले हैं और पहुंचे हैं। पगडंडियां बन गयी होतीं। और कोई कारण नहीं था, हम पक्के रास्ते भी बना लेते उस मंदिर तक!
लेकिन यह नहीं हो सका, क्योंकि जीवन आकाश की तरह है, जिसमें पक्षी उड़ते हैं और उनके पदचिकृ नहीं बनते। पक्षी उड़ जाता है, पीछे कोई चिकृ नहीं छूट जाते। पक्षी पहुंच जाते हैं, रास्ता नहीं बन पाता। और जब दूसरे पक्षी को उडऩा हो तो फिर नये सिरे से शुरुआत करनी होती है--बंधे हुए रास्ते से नहीं। आकाश फिर खाली का खाली रह जाता है!
यह दुर्भाग्य भी है और सौभाग्य भी। दुर्भाग्य इसलिए कि बंधा हुआ रास्ता नहीं है। सौभाग्य इसलिए कि अगर बंधा हुआ रास्ता होता तो उस मंदिर तक पहुंचने का सारा आनंद नष्ट हो जाता, क्योंकि उस मंदिर तक पहुंचने का जो आनंद है, वह पहुंचने में कम, पहुंचने की यात्रा में ज्यादा है। उस मंदिर का जो सौंदर्य है, वह उस मंदिर तक पहुंचने की खोज से ही पैदा होता है। उस सत्य की जो उपलब्धि है, वह उस सत्य को जन्म देने की जो प्रसव पीड़ा है, उससे ही मिलती है।
तो मेरी दृष्टि में तो दुर्भाग्य ही होता, अगर रास्ता बन जाता, क्योंकि बंधे हुए रास्ते रेल की पटरियों की तरह हमें भी वहां पहुंचा देते--भगवान के द्वार तक, सत्य तक, सौंदर्य तक, प्रेम तक। लेकिन तब वह मंदिर बासा और उधार होता। उसकी ताजगी और नयापन खो गया होता।
परमात्मा की बड़ी कृपा है कि जीवन जमीन की तरह नहीं, आकाश की तरह है, जहां कोई पदचिकृ नहीं बनते।
लेकिन आदमी मार्ग खोजना चाहता है! कैसे पहुंचे? और जैसे ही कोई सोचना शुरू करता है, उसे दिखायी पड़ने लगता है कि जीवन अर्थहीन है! कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता! सब तरफ अंधेरा है, कोई प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता! क्यों जी रहे हैं? क्यों पैदा हुए हैं? इसके पीछे भी कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता। सब मीनिंगलेस, एब्सर्ड, न कोई अर्थ, न कोई संगति! जो भी सोचता है, उसे ऐसे ही दिखायी पड़ना शुरू होता है। स्वाभाविक ही है कि वह पूछे कि रास्ता है कोई? तीन रास्तों के संबंध में हजारों साल से आदमी ने विचार किया है। उन तीन रास्तों में दुनिया के सभी रास्ते समाहित हो जाते हैं। उन तीन रास्तों के नाम हमने भी सुन रखे हैं। तीन ही रास्ते क्यों इतने

महत्वपूर्ण हो गये? रास्ते होने के कारण? नहीं, आदमी का मन तीन पर्तों में बंटा है, इसलिए आदमी के मन के तीन केंद्र, तीन पर्तें हैं, तीन वर्तुल हैं। अगर आदमी के मन में हम प्रवेश करें तो उसकी पहली परिधि कर्म की है। बिना काम के रहना बहुत मुश्किल है। मन बिना काम के एक क्षण भी नहीं जीना चाहता! इसलिए अगर कोई काम न हो तो आदमी बेकार काम खोज लेता है! कभी मैं देखता हूं, सफर में मेरे साथ--एक ही यात्री मेरे साथ होता है। तो मैं देखता हूं कि जिस अखबार को वह दो दफे पढ़ चुका है, उसे फिर तीसरी बार पढ़ना शुरू कर दिया! उस अखबार को वह दो बार पढ़ चुका है, वह तीसरी बार उस अखबार को क्यों पढ़ता है? मन बिना काम के एक क्षण नहीं जी सकता। मन को काम चाहिए।
यद्यपि हम सभी सोचते हैं कि काम से मुक्ति हो जाये तो कितना अच्छा है। लेकिन अगर काम से मुक्ति हो जाये तो हम जितनी परेशानी में पड़ेंगे, उतनी परेशानी हमें काम में कभी भी नहीं थी। फिर निरे, व्यर्थ काम खोजने पड़ेंगे। आदमी ताश खेलेगा और अगर कोई दूसरा खेलनेवाला न मिले तो आदमी अकेला भी ताश खेलता है--दोनों तरफ से चलता है! वह विरोधी की तरफ से भी पत्ते चलता है, अपनी तरफ से भी पत्ते चलता है! उस विरोधी की तरफ से, जो है ही नहीं! कोई काम चाहिए।
मन की पहली जो परिधि है, वह कर्म की मांग करती है कि काम दो। इसलिए एक रास्ता कर्म का रास्ता बन गया है। वह मन की मांग है। तो हमने रिचुअल पैदा किया है, कर्म-कांड पैदा किया है--पूजा है, तपश्चर्या है, आसन है, योग है! हमने पच्चीस तरह के काम विकसित किये हैं, परमात्मा तक पहुंचने के लिए! लेकिन कोई काम परमात्मा तक नहीं पहुंचा सकता, क्योंकि सब मन की आकांक्षाओं की तृप्ति करते हैं--सब काम! और मन के ऊपर उठे बिना कोई सत्य तक नहीं पहुंच सकते, न प्रभु तक पहुंच सकते। मन कहता है--काम चाहिए!
हमने कहानियां सुनी हैं कि अगर कोई भूत-प्रेत की दोस्ती बना ले तो वह काम मांगता है। उसे काम चाहिए। मैंने सुना है एक आदमी ने एक प्रेत को जगा दिया। उस प्रेत ने जगते समय उससे एक शर्त कर ली थी--मुझे काम चाहिए, मैं बिना काम के न रह सकूंगा। अगर कहीं प्रेत होते हैं तो जरूर उसने यह शर्त की होगी, क्योंकि प्रेत के पास शरीर नहीं रह जाता, सिर्फ मन ही रह जाता है। उसे काम चाहिए। विश्राम की उसे जरूरत ही नहीं रही।
शरीर को विश्राम भी चाहिए, मन को विश्राम की जरूरत ही नहीं। इसलिए जब शरीर भी सो जाता है रात, तब भी मन सपनों में काम करता रहता है। सपने मन के काम की दुनिया है। जब शरीर भी थक कर गिर पड़ा है, तब भी मन थकता नहीं! वह तो सपने देखना शुरू कर देता है। और जो काम दिन में न किये हों, उनको रात सपने में कर लेता है!
आदमी के रात के सपने देखकर हम बता सकते हैं कि इस आदमी ने दिन में किन-किन कामों से अपने को रोका। अगर किसी ने उपवास किया है तो उसके सपने से पता चल जायेगा, क्योंकि रात वह भोजन करेगा। अगर किसी ने संयम साधा है तो रात वह भोग करेगा। और किसी ने अगर दिन में क्रोध रोका है तो रात वह क्रोध कर लेगा। जब शरीर विश्राम करेगा, तब मन ने जो-जो मांगें दिन में की थीं और किन्हीं कारणों से रुक गयी थीं, उन्हें हम पूरा करते हैं।
प्रेत के पास सिर्फ मन ही है। उसने अगर मांग की हो तो कोई आश्चर्य नहीं! उसने कहा, मुझे काम चाहिए। जिस आदमी ने जगाया था प्रेत को, उसने कहा, काम के लिए ही तो हम तुम्हें जगा रहे हैं, काम हम बहुत देंगे। लेकिन काम बहुत जल्दी चुक गये, क्योंकि प्रेत क्षण भर में काम कर लाया! उसने फिर आकर मांग की कि काम दो। सांझ होते-होते वह आदमी घबरा गया, क्योंकि कोई काम बचा नहीं!
हम भी घबरा जायेंगे, अगर कोई काम न बचे।
हम भी घबरा जायेंगे, अगर कोई काम न बचे। प्रेत भी मुश्किल में पड़ गया! उसने कहा, मुझे जगा लिया! मैं सोता था तो ठीक था, अब जागकर मुझे काम चाहिए। अब वह आदमी घबरा गया, क्योंकि उसके पास काम न था।
उसने कहा ठहरो, गांव में एक फकीर है, मैं उससे पूछ आता हूं। जब भी मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं, उसने मेरी सहायता की है। आज एक नयी तरह की मुश्किल पड़ गयी। अब तक हमेशा यही मुश्किल थी कि कोई काम कैसे हल हो। आज यह एक मुसीबत हो गया--बेकाम कैसे रहा जाये?

आज अमरीका उस हालत में पहुंच रहा है। टेक्नॉलॉजी ने एक प्रेत जगा लिया है, जो आदमी को काम से मुक्त कर दे। अमरीका का विचारक, एक ही परेशानी में है आज, वह यह कि बीस-पच्चीस साल में टेक्नॉलॉजी हर आदमी को काम से छुटकारा दिला देगी, फिर क्या होगा? आदमी कहेगा, काम दो। काम हमारे पास नहीं होगा। हम कहेंगे भोजन लो, कपड़े लो, मकान लो, लेकिन काम मत मांगो! जो आदमी राजी हो जायेगा कि हम काम नहीं करेंगे, उसको ज्यादा तनख्वाह मिल सकेगी! पच्चीस साल बाद--बजाय उस आदमी के जो कहेगा, हमको तो काम चाहिये ही, उसको कम तनख्वाह देनी पड़ेगी, क्योंकि वह काम भी मांगता है और तनख्वाह भी मांगता है! दोनों बातें नहीं दी जा सकतीं।
वही मुसीबत उस आदमी के सामने खड़ी हो गयी तो वह फकीर के पास गया। उसने फकीर से पूछा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। एक प्रेत को सुबह मैंने जगा दिया, सांझ होते-होते सारे काम चुक गये हैं। अब काम मेरे पास नहीं है और वह मेरी जान लिए लेता है?
उस फकीर ने कहा, तुम एक काम करो। वह सामने एक बर्तन पड़ा है, उसे ले जाओ। उसने कहा, मैं क्या करूंगा? फकीर ने कहा, उस प्रेत को कहना, उसको भरते रहो। उस बर्तन में पेंदी नहीं थी! वह बाटमलेस था।
उसने कहा, इस बर्तन में तो पेंदी नहीं है, वह बेचारा भरेगा कैसे?
तो उस फकीर ने कहा, अगर वह भर लेगा तो फिर मुसीबत शुरू हो जायेगी। तुम उसे भरने दो, यह बर्तन कभी भरेगा नहीं। वह भरता रहेगा और भरता रहेगा और उसे काम मिलता रहेगा। वह उस बर्तन को ले आया और उस प्रेत को दे दिया। तब से प्रेत ने दुबारा लौटकर उससे नहीं कहा कि काम चाहिए, क्योंकि वह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ है!
जब आदमी के पास कोई काम नहीं रह जाता तो वह इस तरह के काम चुन लेता है,
जो कभी पूरे नहीं होते! वह इस तरह के बर्तन भरने लगता है, जो कभी पूरे नहीं होते!
इसलिए जैसे ही किसी आदमी के जीवन की सामान्य जरूरतें पूरी हो जायें, उसके सामने सबसे बड़ा सवाल होता है कि वह कोई ऐसा बर्तन ले आये, जो कभी पूरा न हो। वह पदों की दौड़ में लग जाये, जो कभी पूरी न हो। वह किसी भी बड़े पद पर पहुंच जाये, आगे और पद होगा। उस बर्तन के नीचे पेंदी नहीं है। वह धन की दौड़ में लग जायेगा, वह कितना ही धन कमा ले, तब भी गरीब रहेगा, क्योंकि आगे और धन कमाने को सदा शेष है।
एंड्रू कानगी मरा, अमरीका का एक अरबपति। मरते वक्त उसके पास दस अरब रुपये थे, लेकिन मरते वक्त वह बहुत उदास था! तो उसके मित्र ने उससे पूछा कि तुम्हें उदास नहीं होना चाहिए, तुमने तो जीवन में जो चाहा था, वह पा लिया। शायद पृथ्वी के तुम सबसे बड़े अमीर आदमी हो। दस अरब रुपये तुम छोड़कर जा रहे हो।
एंड्रू कानगी ने कहा, मत करो ये बातें, मेरे चित्त को दुखाओ मत। सिर्फ
दस अरब से मन बड़ा दुखता है। मेरे इरादे सौ अरब रुपये छोड़ने के थे! यह तो मौत करीब आ गयी। मैं एक गरीब आदमी मर रहा हूं, क्योंकि सौ मेरी इच्छा थी और दस ही कुल कमा पाया! नब्बे के हिसाब से गरीब हूं! नब्बे अरब रुपये मेरे पास नहीं हैं, जो होने चाहिए थे!
और ध्यान रहे, उसको अगर सौ अरब भी मिल जाते तो भी कोई फर्क न होता, क्योंकि संख्या रुक नहीं जाती सौ पर, संख्या आगे बढ़ जाती। हजार अरब हो जाते, लाख अरब हो जाते!
कितना ही मिल जाये तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। धन और पद और यश की दौड़ आदमी खोज लेता है! जैसे ही उसकी काम की दुनिया पूरी हुई, फिर वह ऐसे काम चुन लेता है, जिसमें पेंदी नहीं होती। फिर भरता चला जाता है। फिर वह छोटे मिनिस्टर से बड़ा मिनिस्टर होता है! फिर वह बड़े मिनिस्टर से दिल्ली की तरफ जाता है! और फिर वह और बड़ा होता जाता है। और वह दौड़ अंतहीन है। उस दौड़ का कोई अंत नहीं है। यह सारी दौड़ आदमी चुनता इसलिए है कि उसके मन को काम चाहिए।
मन कहता है, काम न मिलेगा तो हम मर जायेंगे। और जिसे सत्य को खोजना हो, उसे सत्य खोजने के लिए मन का मर जाना जरूरी है। मन मर ही जाये, क्योंकि जो

मर सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता। मन के मर जाने के बाद भी जो शेष रह जाता है, जो नहीं मरता, वही सत्य है। अमृत भी है हमारे भीतर।
लेकिन मरण से भरा हुआ मन अपने को बचाने के लिए काम की मांग करता है!
तो एक तो मार्ग कर्म का खोजा है लोगों ने। धार्मिक कर्म कहेंगे उसे-- रिचुअल है, क्रियाकांड है! एक आदमी हवन कर रहा है, एक आदमी माला फेर रहा है! एक आदमी भगवान के सामने आरती घुमा रहा है! यह पुराना रिचुअल था, पुराना क्रियाकांड था--यज्ञ थे, हवन थे, पूजा थी, पाठ था। ये क्रियाएं थीं, जिनसे आदमी सोचता था कि सत्य को पा लेंगे, आनंद को पा लेंगे!
लेकिन क्रियाओं से कभी सत्य नहीं पाया जा सकता। इन क्रियाओं से सिर्फ
मन ही तृप्त होता है और कुछ तृप्त नहीं होता। यह पुराने कर्म की दुनिया थी। लेकिन पुराने कर्म से आदमी ऊब जाता है। सब काम ऊबा देते हैं। फिर वह नये कर्म खोजता है! सेवा नया कर्म है, नया रिचुअल है।
एक आदमी कहता है, गरीब की सेवा करने से सत्य मिल जायेगा! एक आदमी कहता है, कोढ़ी के हाथ-पैर दबाने से सत्य मिल जायेगा! एक आदमी कहता है, भूखे को रोटी देने से सत्य मिल जायेगा! नहीं, भूखे को रोटी देना अच्छा है, कोढ़ी के पैर दबाना भी बहुत अच्छा है, गरीब की सेवा करना भी बहुत अच्छा है, लेकिन सत्य नहीं मिल जायेगा। कोढ़ी को ही नहीं मिल गया तो उसके पैर दबाने से आपको कैसे मिल जायेगा? नहीं तो कोढ़ी को तो मिल ही गया होता।
उसने आपसे बड़ा काम किया है। अच्छा काम है, पुराने रिचुअल से बेहतर है, पुराने क्रियाकांड से बेहतर है। वह बिल्कुल व्यर्थ था। एक पत्थर की मूर्ति के सामने एक आदमी थाली घुमा रहा था! वह बिल्कुल पागलपन की बात थी। अब कम से कम थाली एक भूखे के सामने आप ले गये हैं। इसमें कुछ समझदारी है। लेकिन सत्य इससे नहीं मिल जायेगा। क्योंकि मन काम की मांग कर रहा है, वह इससे भी अपनी तृप्ति पा लेगा।
इसलिए जितने लोग सेवा करते दिखाई पड़ते हैं, अगर इनको सेवा से रोका जाये तो ये पागल हो जायें। कोई पदयात्रा कर रहा है! उसे अगर रोक लो तो वह मुश्किल में पड़ जाये। पदयात्रा करके काम करने का जो पागलपन उनके सिर पर सवार है, वह उसको निकाले चला जा रहा है। अगर दुनिया में कोई गरीब न हो, दुनिया में अगर कोई कोढ़ी न हो तो कुछ लोग बड़ी मुश्किल में पड़ जायें, क्योंकि फिर वे किसकी सेवा करें? उनको बहुत मुश्किल हो जाये, उनको बहुत कठिनाई हो जाये।
मैंने सुना है, एक आदमी अपने बेटे को समझा रहा था कि भगवान ने तुम्हें इसलिए बनाया है कि तुम सबकी सेवा करो। उस बेटे ने कहा, यह मैं समझ गया, लेकिन भगवान ने दूसरों को किसलिए बनाया है? मेरी सेवा के लिए? या बस इसलिए बनाया है कि दूसरे उनकी सेवा करें?
उस बेटे ने बाप को मुश्किल में डाल दिया। जब तक बेटे सवाल नहीं करते, तभी तक बाप मुश्किल से बाहर हैं। जब वे सवाल करने लगते हैं, तब मुश्किल शुरू हो जाने वाली है।
उस बेटे ने यह पूछा कि यह तो मैं समझ गया कि मुझे इसलिए बनाया है कि मैं दूसरे की सेवा करूं, लेकिन दूसरों को किसलिए बनाया है? मेरी सेवा के लिए? और अगर सबको ही सेवा के लिए बनाया है तो सेवा किसकी की जाये?
और अगर सेवा करना पुण्य है तो सेवा करवाना पाप हो जाये! और जो पुण्य किसी के पाप करने पर निर्भर रहता हो, वह पुण्य कैसे हो सकता है? पुराने क्रियाकांड तो समाप्त हुए हैं, नये क्रियाकांड पैदा हो गये हैं।
लेकिन कर्म की पकड़ की जो हमारी वृत्ति है, वह वृत्ति मन की एक बहुत गहरी जरूरत से पैदा होती है। इसलिए एक तरह के मार्ग हैं, जो कर्म पर जोर देते हैं। और हमारे बीच जो एक्सट्रोवर्ट, बहिर्मुखी व्यक्तित्व है, जो भीतर की तरफ नहीं देख सकते, बाहर की तरफ ही देख सकते हैं। जिनकी जिंदगी बाहर की तरफ जीने में ही जा सकती है, उन सारे लोगों के लिए कर्म का रास्ता बड़ा ही अपीलिंग, बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है!
सेवा करने वाले लोग, हवन करने वाले लोग, यज्ञ करने वाले लोग एक्सट्रोवर्ट हैं, बहिर्मुखी हैं। वे भीतर नहीं देख सकते। उनकी आंखें बाहर की तरफ ही देख सकती हैं, उन्हें बाहर की तरफ कुछ चाहिए। बाहर कुछ होता रहे तो ठीक है। अगर बाहर कुछ न हो तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे, क्योंकि

भीतर जाने की उनकी वृत्ति नहीं है। जो बहिर्मुखी है, उन्होंने कर्मयोग जैसी धारणाओं को विकसित किया है!
दूसरे, मन की जो भीतर की--कर्म के बाद की, जो पर्त है, वह विचार की पर्त है। आदमी पूरे समय विचार कर रहा है, सोच रहा है, चिंतन कर रहा है। वह भी मन की एक जरूरत है। मन बिना सोचे जिंदा नहीं रह सकता; विचार चाहिए!
ज्ञानयोग या ज्ञान का जो मार्ग है, वह मन की दूसरी जरूरत की पूर्ति है। शास्त्र हैं, वेद हैं, कुरान है, बाइबिल है; गुरु हैं, ज्ञानी हैं। उन सबसे इकट्ठा करो विचारों को और उनकी जुगाली करो! मन कहता है, पूरे समय जुगाली करते रहो। कुछ न कुछ सोचते ही रहो, खाली मत हो जाना, क्योंकि मन अगर एक क्षण भी सोचने से मुक्त हो जाये, एक क्षण भी सोचना बंद हो जाये तो वह अंतराल पैदा हो जाता है, जहां से मन के बाहर निकलने का द्वार है। इसलिए मन एक क्षण भी सोचने के बाहर नहीं जाने देता।
अगर आप यह भी कहें कि नहीं, मुझे सोचने से बाहर जाना है। तो वह कहेगा, नहीं, इस संबंध में सोचो कि सोचने के बाहर कैसे जाया जा सकता है? लेकिन सोचते रहो! निर्विचार होना है तो चलो निर्विचार के संबंध में विचार करें! लेकिन विचार जारी रहे, विचार को बंद नहीं करना है!
अगर धन के संबंध में सोचने से ऊब गये हों तो धर्म के संबंध में सोचो! अगर पृथ्वी अब आकर्षक नहीं मालूम होती तो स्वर्ग के संबंध में सोचो। अगर आदमी का चेहरा अब बहुत सोचने जैसा मालूम नहीं पड़ता तो अपने मन के चेहरे बनाओ--भगवान के--कृष्ण के, राम के, बुद्ध के! उनके संबंध में सोचो! लेकिन सोचना जारी रखो! सोचना मत छोड़ देना। मन कहता है, बिना सोचे रहा ही नहीं जा सकता।
तो जो लोग कर्म से बचना चाहें, उनके लिए मन सोचने का मार्ग देता है। वह कर्म में जितनी हमारी ऊर्जा व्यय होती है, वह सब सोचने में लगा देते हैं। इसलिए कर्म करने वाले लोग बहुत सोचने वाले लोग नहीं होते, बहुत सोचने वाले लोग कर्म करने वाले लोग नहीं होते।
विचारक अकसर कर्म की दुनिया का आदमी नहीं होता और कर्म की दुनिया के लोग अकसर विचारक नहीं होते, क्योंकि ऊर्जा हमारे पास सीमित है, एनर्जी सीमित है। अगर वह कर्म में लग जाये तो विचार की तरफ प्रवाहित नहीं हो पाती। अगर विचार में प्रवाहित हो जाये तो कर्म की तरफ प्रवाहित नहीं हो पाती। लेकिन मन का काम पूरा हो जाता है, क्योंकि विचार भी बहुत सूम अर्थों में कर्म का ही एक रूप है, वह भी काम है, वह भी एक सूम क्रिया है।
आदमी धन के लिए सोच रहा है, मकान के लिए सोच रहा है, मित्रों के लिए सोच रहा है, संबंधियों के लिए सोच रहा है। फिर इससे ऊब जाता है तो परमात्मा के लिए सोचता है, आत्मा के लिए सोचता है, मोक्ष के लिए सोचता है! सोचना जारी रहता है!
और ध्यान रहे, मन की इस दूसरी जरूरत को पूरा करने के लिए ज्ञानयोग है।
वह कोई मार्ग नहीं है सत्य का। वह मन का ही भोजन है, वह मन की ही तृप्ति का एक रास्ता है। उससे भी कभी कोई कहीं नहीं पहुंचा है। हां, मन लंबी यात्रा पर भटका देता है।
ये जो मार्ग पैदा हुए हैं, ये मार्ग कोई सत्य तक पहुंचने से पैदा नहीं हुए हैं। ये हमारे मन की आकांक्षाएं हैं, जिनकी तृप्ति के लिए हमने इन्हें ईजाद किये हैं।
न तो कर्म से कभी कोई पहुंचा है, न ज्ञान से कभी कोई पहुंचा है।
लेकिन ज्ञान का काफी प्रभाव है। क्योंकि यह तो हमारी समझ में भी आ जाये कि कर्म से कैसे पहुंचेंगे? अगर एक आदमी माला फेर रहा है तो माला फेरने से कैसे पहुंच जायेंगे। कितनी ही फेरे माला, माला फेरने से कैसे पहुंचेगा? और एक आदमी अगर पूजा का थाल लिए भगवान के सामने आरती कर रहा है तो वह कैसे पहुंचेगा? यह हमारी समझ में भी आ जायेगा।
लेकिन यह हमारी समझ में और भी आना कठिन होता है कि विचार से भी नहीं पहुंचेगा। इसे थोड़ा सोच लेना जरूरी है। विचार कर क्या सकता है? जिसे हम नहीं जानते हैं, विचार उसके संबंध में सोच नहीं सकता। जिसे हम जानते ही हैं, उसी के संबंध में सिर्फ सोच सकते हैं।

विचार नये के संबंध में कुछ भी नहीं सोच सकता। अज्ञात, अननोन के संबंध में विचार की कोई उड़ान नहीं है। आपने कभी कोई चीज सोची है, जो आप जानते ही नहीं? आप सोच ही नहीं सकते। शायद आप कहेंगे; हां, मैं एक ऐसा घोड़ा सोच सकता हूं, जो सोने का बना है, जिसके पंख हैं और जो आकाश में उड़ता है। सोच सकते हैं, लेकिन यह कोई नयी बात न हुई। सिर्फ पांच-छह पुरानी बातों का जोड़ हुआ। आपने पंख से उड़ते हुए पक्षी देखे हैं, सोना देखा है, घोड़ा देखा है, तीनों को जोड़ सकते हैं। सोने का घोड़ा बना सकते हैं विचार से। पंख लगा सकते हैं, उड़ा सकते हैं। लेकिन यह तीन पुरानी बासी चीजों का जोड़ है। इसमें नया कुछ भी नहीं है।
विचार नये को सोच ही नहीं सकता, विचार मात्र बासा होता है, बारोड, उधार होता है।
मौलिक विचार जैसी कोई चीज होती ही नहीं, जिसको हम कहते हैं ओरिजनल थाट, ऐसी कोई चीज होती ही नहीं। कोई विचार मौलिक नहीं होता, हो ही नहीं सकता। विचार के मौलिक होने का कोई उपाय ही नहीं है। विचार सदा बासा होता है, कहीं से लिया होता है। हां, दस-पांच विचारों को तोड़कर आप नया योग बना सकते हैं। वह नया संयोग आपको सत्य तक ले जाने वाला नहीं है।
सत्य है अज्ञात, अनजान, अपरिचित। उसे विचार से कैसे जान सकेंगे? जिसका मुझे पता ही नहीं, उसको मैं सोचूंगा कैसे? उसे सोचने का उपाय नहीं। सत्य को सोचा नहीं जा सकता।
लेकिन लोग बैठे हैं, आंखें बंद करके! वे कहते हैं, हम सत्य का विचार करते हैं! विचार कर रहे होंगे। सत्य का नहीं हो सकता कोई विचार। जब सब विचार क्षीण हो जाते हैं, तब जो शेष रह जाता है, वह सत्य है। विचार की दीवार ही सत्य से नहीं जुड़ने देती। चाहे वे विचार हमने किसी शास्त्र से लिए हों, चाहे वे विचार किसी गुरु से लिए हों, चाहे वे विचार हमने अपने जीवन के अनुभव से ही इकट्ठे किये हों। लेकिन विचार की जो पर्त है, वही हमारे और सत्य के बीच बुनियादी बाधा है।
लेकिन ज्ञानी कर्म की निंदा करेंगे। वे कहेंगे, क्या होगा कर्म से? सोचो। सोचना भी कर्म का सूम रूप है। असल में कर्म में और सोचने में फर्क क्या है? कर्म में शरीर भागीदार होता है। सोचने में सिर्फ कर्म भागीदार होता है। सोचना मन का कर्म है। एक काम में अगर आप शरीर का उपयोग करें तो वह कर्म हो जायेगा। और अगर सिर्फ मन का उपयोग करें तो वह सोचना और विचारना हो जायेगा। मैं भोजन करूं और शरीर का उपयोग करूं तो कर्म हो जायेगा। और मैं आंख बंद करके भोजन का विचार करूं तो विचार हो जायेगा। वह भी कर्म है--सिर्फ मानसिक कर्म।
जिसे हम ज्ञानयोग कहते हैं, वह कहां ले जा सकता है? कहीं भी नहीं ले जा सकता। वह मन की गहरी पर्त को तृप्त कर देता है। इसलिए दूसरा रास्ता ज्ञानयोग का रहा है, लेकिन वह भी रास्ता नहीं है।
तीसरा रास्ता है, भाव का। वह मन की केंद्रीय ताकत है। इमोशनल, वह सबसे गहरा है।
कर्म सबसे ऊपर है, उसके बाद विचार है, उसके बाद भाव है।
भाव अति सूम है। भाव को पहचानना ही मुश्किल होता है। जब तक वह विचार न
बन जाये, हम उसको पहचान भी नहीं पाते। और जब तक वह कर्म न बन जाये, तब तक दूसरे नहीं पहचान पाते। भाव जब विचार बनता है तो हम पहचान पाते हैं। और भाव जब कर्म बन जाता है, तब दूसरे पहचान पाते हैं। भाव अति सूम मन है।
तो कुछ लोग कहते हैं, यह विचार से नहीं होगा, तर्क से नहीं होगा, सोचने
से नहीं होगा; वह भावना से होगा, भक्ति से होगा। वे कहते हैं--सोचना भी छोड़ो, कर्म भी छोड़ो, भाव में लीन हो जाओ।
लेकिन भाव भी मन की ही गहरी पर्त है। चाहे वह भाव प्रेम का हो, चाहे वह भाव क्रोध का हो; चाहे वह भाव मित्रता का हो, चाहे शत्रुता का हो; चाहे वह भाव समर्पण का हो। भाव भी मेरे मन की भाव-दशा है। मेरा ही मन भाव कर रहा है। ये जो भाव हैं, इनसे भक्ति का जन्म हुआ कि हम भाव करें। भाव करके हम इल्यूजंस पैदा कर सकते हैं, भाव करके हम बड़े भ्रम पैदा कर सकते हैं। भाव से हम जो चाहें, वह सपना भीतर सच मालूम हो सकता है।

भाव की बड़ी शक्ति है। अगर कोई पूरे मन से भाव करे, तो जो भी भाव करेगा, वही हो जायेगा।
हिप्नोसिस में, सम्मोहन में यही हो रहा है। अगर एक आदमी को सम्मोहित करके कहा गया है कि अब तुम आदमी नहीं रहे, तुम कुत्ते हो गये हो! सम्मोहन की अवस्था में उसका कर्म भी बंद हो गया है, विचार भी बंद हो गया है, सिर्फ भाव रह गया है। विचार थोड़ी-बहुत बाधा डाल सकता है। विचार कह सकता है कि कौन कहता है कि कुत्ता हो गया हूं, मैं आदमी हूं। लेकिन विचार भी सुला दिया गया। अब सिर्फ भाव रह गया है।
भाव बिल्कुल अंधा है। अगर एक आदमी के मन में सिर्फ भाव रह गया है और उसे यह सुझाव दिया जाये कि तुम कुत्ते हो। और फिर उस आदमी से कहा जाये, बोलो, तो वह बोलेगा नहीं, भौंकना शुरू कर देगा! क्योंकि उसने पकड़ लिया कि वह कुत्ता है!
अभी एक युनिवर्सिटी में, अमरीका में, एक बहुत अदभुत घटना घट गयी। और घटना के बाद अमरीका में सम्मोहन के ऊपर कानूनी पाबंदी लगानी पड़ी। चार विद्यार्थी एक होस्टल में हिप्नोटिज्म पर एक किताब पढ़ रहे थे। सम्मोहन के ऊपर एक किताब पढ़ रहे थे। किताब में उन्होंने पढ़ा कि जिस तरह का भाव किया जाये, वही हो सकता है। तो उन चार में से एक ने तय कि यह असंभव है, यह हो नहीं सकता है। फिर भी प्रयोग करके देखा जाये। एक युवक को उन्होंने कमरे में लिटाकर, दरवाजे बंद करके, तीनों ने उसे सुझाव देने, सजेशन देने शुरू किये कि तुम बेहोश हो गये, तुम बेहोश हो गये। वे आधे घंटे तक उसको सुझाव देते रहे! धीरे-धीरे, उन्होंने देखा कि वह युवक बेहोश हो गया! मजाक में--एक ने उनमें कहा, ठीक है, बेहोशी तो आ गयी। एक ने मजाक में--उससे कहा कि तुम मर गये हो! वह युवक वापिस नहीं लौटा! उसकी सांस बंद हो गयी!
वह मुकदमा चला, लेकिन वह अनजाने में अपराध हो गया था, उनमें से कोई भी उसे मारना नहीं चाहता था। लेकिन अगर पूरा मन जोर से उस बात को पकड़ ले कि मैं मर गया हूं तो इस दुनिया में कोई ताकत नहीं बचा सकती। भाव अगर इतना तीव्र हो जाये तो शरीर से तत्काल संबंध छूट जायेगा। भाव की बड़ी शक्ति है, लेकिन भाव मन की शक्ति है। तो अगर भाव के हम प्रयोग करना चाहें तो बहुत प्रयोग कर सकते हैं।
क्राइस्ट का भक्त क्राइस्ट को देख सकता है। यूरोप में ईसाई फकीर हैं,
आज भी जिंदा हैं, जिनके शरीर पर स्टिगमैटा है। जीसस को सूली लगी थी तो हाथ में कीलें ठोके गये थे और शुक्रवार के दिन ही ठोके गये थे। शुक्रवार के दिन आज भी यूरोप में ऐसे फकीर हैं, जो ऐसे हाथ फैलाकर बैठे रहते हैं! हजारों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। जिस समय कीले ठोके गये थे जीसस के हाथ में, उस समय उनके हाथ में अपने आप छेद हो जाता है, खून बहना शुरू हो जाता है! वे इतना तादात्म्य कर लेते हैं, भाव में जीसस के साथ एक हो जाते हैं और तब वे ऐसा नहीं सोचते कि जीसस को सूली लगी, तब वैसा सोचते हैं कि मुझे सूली लगी, और मैं मरियम का बेटा जीसस हूं! मेरे हाथ में कीले ठोक दिये गये हैं। और अगर पूरे भाव से यह बात सोच ली जाये कि हाथ में कीले ठुक गये हैं! लोग अंगारों पर चल लेते हैं! वह सिर्फ भाव की बात है। अगर भाव ने पूरा पक्का तय कर लिया कि आग नहीं लगी तो बहुत कठिन है आग का लग जाना।
भाव अगर तीव्रता से कुछ बात ग्रहण कर ले तो वह संभव है। लेकिन वह हमारा ही पैदा किया हुआ है, हमारे ही मन का प्रोजेक्शन है। वह हमने ही पैदा किया हुआ है।
कृष्ण के दर्शन हो सकते हैं, बांसुरी बजाते कृष्ण के साथ खेल भी हो सकता है, लीला भी हो सकती है! नहीं, लेकिन वह कृष्ण, हमारे मन का प्रतिबिंब है, हमारे ही भाव का।
इसलिए भक्त जो है, भक्ति पर चलने वाला जो आदमी है; उस मार्ग को पकड़ने में जो लगा है, वह कहेगा, संदेह मत करना। क्योंकि संदेह किया तो भाव पूरा न हो सकेगा। वह कहेगा, विचार मत करना, क्योंकि विचार अगर किया तो विरोधी विचार भी हो सकता है। वह कहेगा, अपने को पूरी तरह समर्पण कर दो भगवान के लिए!

और भगवान कौन? वह भी मेरे मन का भाव है। भगवान का ही पता होता, तब तो ठीक था। उसका तो पता नहीं। अपने ही मन के एक भाव के प्रति पूरा समर्पण कर दो! फिर जैसी हमारी कल्पना होगी, वैसा होना शुरू हो जायेगा।
तुलसी ने कहा है कि जिसने जैसी उसकी मूर्ति की कल्पना की, वैसे ही उसके दर्शन मिले। उसके दर्शन नहीं मिले--जिसने उसकी जैसी कल्पना की! अपनी ही कल्पना के दर्शन कर लिए! हम अपनी ही कल्पना के दर्शन कर सकते हैं। लेकिन कल्पना का दर्शन सत्य तक ले जाने वाला नहीं है।
इसलिए जो जितना कल्पना में प्रगाढ़ होगा, उतना भक्ति के रास्ते पर आसानी हो सकती है। पुरुष के बजाय स्त्री को ज्यादा आसानी हो सकती है। इसलिए मंदिरों में, भजन-कीर्तन में पुरुष की बजाय स्त्री की भीड़भाड़ है! उसका कारण है, उसके पास भाव की शक्ति ज्यादा तीव्र है। इसलिए आज की दुनिया के बजाय दो हजार साल पहले भक्ति ज्यादा आसान थी, क्योंकि भाव ज्यादा सुलभ था और दस हजार साल पहले और आसान था।
आज से दस हजार साल पहले देवी-देवताओं को बहुत दूर नहीं रहना पड़ता था, यहीं जमीन पर रह जाते थे! अब उनको बहुत दूर रहना पड़ता है, क्योंकि आदमी बहुत सोच-विचार करने लगा है और उनके और आदमी के बीच फासला हो गया है। देवी- देवता उतरकर, उनको चढ़ाया गया भोजन ग्रहण कर लेते थे! बातचीत भी होती थी! तालमेल भी होता था! देवताओं से आदमियों की स्त्रियों का प्रेम भी हो जाता था, बच्चे भी हो जाते थे, सब होता था!
देवता बहुत पास थे, क्योंकि आदमी के पास तर्क बहुत कम था, भाव बहुत था। भाव इतना था कि किसी भी तरह के देवता का निर्माण करने की क्षमता आदमी के पास थी। वह क्षमता चली गयी। नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि वे देवता हमारी कल्पनाओं से ज्यादा न थे। वे देवता दिवा-स्वप्न थे, डे-ड्रीम्स थे, जो हमने ही देखे थे! इसलिए वे खो गये। वे हमारे सपने थे। हम जागे तो वे सो गये।
आने वाली दुनिया में भक्त के बचने की बहुत कम संभावना है, क्योंकि भाव
अब बिना तर्क के जिंदा नहीं रह पाता तर्क बीच में खड़ा हो जाता है। तर्क बीच में खड़ा हो जाता है, तो भाव पूरा नहीं हो पाता है। कल्पना टूट जाती है। अगर इतना भी शक आ जाये कि कहीं यह मेरी कल्पना तो नहीं है तो यह सब गया--और बात खत्म हो गयी। इतना शक भी आने से भाव बिदा हो जायेगा।
भाव पूरी मांग करता है। वह कहता है, पूरा दे दो अपने को। जरा भी, इंच भर
भी बचाना मत, पूरा अपने को दे दो। लेकिन न तो भाव से, न ज्ञान से, न कर्म से आदमी मन के ऊपर उठ पाता है।
मन के ऊपर उठना हो तो तीनों बातों के ऊपर उठना पड़ता है। कर्म के ऊपर उठना पड़ता है, ज्ञान के ऊपर उठना पड़ता है, भाव के भी ऊपर उठना पड़ता है। सब तरह की कल्पना भी छोड़ देनी पड़ती है। सब तरह के विचार भी छोड़ देने पड़ते हैं। सब तरह की आंतरिक क्रिया भी छोड़ देनी पड़ती है।
इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी कुछ न करेगा। नहीं, करने से वह जानेगा कि करने से सत्य नहीं मिलने वाला है। करने से वस्तुएं मिल सकती हैं। अगर मैं चलूंगा तो राजकोट आ सकता हूं, मोक्ष नहीं पहुंच सकता। चलने से मोक्ष नहीं पहुंच सकता--चलने से राजकोट पहुंच सकता हूं।
इसका यह मतलब नहीं है कि विचार करना छोड़ देना होगा। विचार से बहुत कुछ जाना जा सकता है। सारा विज्ञान विचार की खोज है। लेकिन विज्ञान सत्य पर नहीं पहुंच पाता, सदा एप्रोक्सिमेट ट्रुथ पर होता है, सदा"करीब-करीब सत्य" पर होता है। सत्य पर कभी नहीं होता।
और ध्यान रहे, करीब-करीब सत्य का कोई मतलब ही नहीं होता। करीब-करीब सत्य का कोई मतलब होता है? मैं आपको कहूं, मैं आपसे करीब-करीब प्रेम करता हूं, उसका कोई मतलब होता है? जब मैं कहूं, मेरी बात करीब-करीब सत्य है--उसका मतलब है असत्य। करीब-करीब, एप्रोक्सिमेट ट्रुथ जैसी कोई चीज नहीं होती। या तो सत्य होता है या असत्य होता है। सत्य के कितने ही करीब हो तो भी असत्य होगा, जब तक कि सत्य नहीं है।
इसलिए विज्ञान में रोज करीब-करीब होता है। न्यूटन भी करीब-करीब था, आइंस्टीन भी करीब-करीब था। आगे भी वैज्ञानिक करीब-करीब ही होगा। कभी नहीं कह सकता कि यह रहा सत्य। वह इतना ही कहेगा कि जितना हम अभी जानते हैं। उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यह सत्य है। कल और जानना पड़ता है, तब पता लगता है कि

वह सत्य नहीं है। फिर और जानना पड़ता है, पता लगता है, वह भी सत्य नहीं है। आज तो विज्ञान की बड़ी किताब लिखना भी मुश्किल हो गया, क्योंकि बड़ी किताब लिखनी हो तो दो साल लग जाते हैं और दो साल में तो सब सत्य बदल जाते हैं! विज्ञान आगे पहुंच जाता है। विज्ञान कभी भी सत्य के पास नहीं होता, सदा आसपास होता है! आसपास का कोई मतलब ही नहीं है। और वह कभी भी पास नहीं पहुंचेगा।
लेकिन विचार का उपयोग है। विज्ञान की अपनी ताकत है, विज्ञान की अपनी सामर्थ्य है। तो मैं यह नहीं कहता कि विचार छोड़ देना है। मैं यह कहता हूं, विचार विज्ञान के करीब-करीब सत्यों तक ले जायेगा, धर्म के सत्य तक नहीं। और कर्म? कर्म परमात्मा के मंदिर तक नहीं ले जायेगा। हां, आदमी के मकानों तक जाना हो तो कर्म करना पड़ेगा। और आदमी के मकानों तक जाने का अपना अर्थ है। इसलिए कर्म छोड़ देने को नहीं कहता हूं। अगर पेट भरना है, रोटी कमानी है तो कर्म करना पड़ेगा। लेकिन सत्य को अगर आत्मा में लाना है तो कर्म का कोई अर्थ नहीं है। कर्म की अपनी उपादेयता है, अपनी युटिलिटी, उसका अपना डायमेंशन, अपना आयाम है। वहां कर्म का अर्थ है।
इसलिए मैं यह नहीं कहता कि कर्म छोड़कर भाग जायें। इतना ही कहता हूं कि कर्म से सत्य तक जाने की चेष्टा न करें। कर्म जहां ले जा सकता है, वहां जाना हो जाये। विचार जहां ले जा सकता है, विचार ले जायेगा। जैसे उदाहरण के लिए अगर मैं आंख से सुनने की कोशिश करूं तो मुश्किल खड़ी हो जायेगी। आंख सुनने का साधन नहीं। और अगर मैं आपसे कहूं कि आंख से नहीं सुना जा सकता तो इसका मतलब यह नहीं कि मैं कह रहा हूं, आंख से देखा नहीं जा सकता। आंख से देखा जा सकता है। देखना हो तो आंख से देखना। और सुनना हो तो आंख से मत सुनना। सुनना हो तो कान से सुनना पड़ेगा।
हमारे पास मन के जो साधन हैं, उनका उपयोग है; उनकी अपनी उपादेयता है। कर्म से मनुष्य बाहर के जगत से संबंधित होता है। बाहर के जगत में जो भी निर्माण हैं, जो भी विध्वंस हैं, वे सब कर्म हैं। विचार से मनुष्य जगत के जो नियम हैं, जगत के पीछे कार्य-कारण की जो व्यवस्था है, उसको समझने में वह सफल होता है और उसको समझकर उसके कर्म की शक्ति बढ़ जाती है। इसलिए बेकन ने कहा, नालेज इज पावर। बेकन ने कहा, ज्ञान शक्ति है। और यह ठीक कहा कि ज्ञान शक्ति है। लेकिन सत्य नहीं। ज्ञान शक्ति है। फिर शक्ति का भी क्या करियेगा? फिर कर्म में लगाइयेगा, क्योंकि शक्ति का एक ही उपयोग है कि कर्म में लगे। इसलिए जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना कर्म बढ़ता है।
ज्ञान का करियेगा क्या? ज्ञान का उपयोग है कि कर्म बढ़े। इसलिए पूरब में कर्म कम और पश्चिम में ज्यादा है। इतना ज्यादा है कि फुरसत ही नहीं खड़े होने की! ज्ञान बढ़ गया, उसने कर्म को बढ़ा दिया। कर्म इतनी तेजी से घूम रहा है कि आदमी को ठहरने का भी मौका नहीं! अगर वे एक जल-प्रपात को भी देखने जाते हैं तो कार में से भागते हुए; खिड़की में से झांकते देख लेगा और निकल जाता है! अगर वह एक मुल्क को देखने जाता है तो हवाई जहाज के ऊपर से देख लेता है कि मुल्क है! और निकल जाता है! इतना भागा हुआ है! क्योंकि कर्म को ज्ञान ने शक्ति दे दी। शक्ति कर्म में रूपांतरित होगी, नहीं तो शक्ति जान ले लेगी। शक्ति कहेगी, काम चाहिए। शक्ति कहेगी, मुझे काम दो; नहीं तो मुश्किल हो जायेगी। तो शक्ति काम मांगती है, कर्म में बदल जाती है।
भाव का अपना--अपना उपयोग है। भाव का जिंदगी में अपना अर्थ है। अगर आप अपनी पत्नी से जुड़ते हैं तो भाव से जुड़ते हैं। लेकिन परमात्मा से नहीं जुड़ सकते भाव से। और अगर अपने बेटे से जुड़ते हैं तो भाव से जुड़ते हैं। अगर अपने मित्र से जुड़ते हैं तो भाव से जुड़ते हैं, परमात्मा से नहीं। अगर एक कोढ़ी के पैर दबाते हैं तो भाव से दबाते हैं। गरीब की सेवा करते हैं तो भाव से करते हैं। लेकिन उससे परमात्मा का कोई लेना-देना नहीं। भाव का अपना अर्थ है। और वह आदमी बहुत अधूरा है, जिसमें भाव न हों। वह आदमी भी बहुत अधूरा है, जिसमें विचार न हो। वह आदमी भी बहुत अधूरा है, जिसमें कर्म न हो। इन सबके अपने आयाम हैं, लेकिन सत्य इनमें से किसी आयाम से उपलब्ध नहीं होता। भाव से भाव का जगत उपलब्ध होता है, विचार से विचार का, कर्म से कर्म का।

और एक ऐसा भी जगत है, जो इन तीनों के पार है, बियॉन्ड है, जो तीनों के आगे है। जो ट्रांसेंड करता है। जहां न भाव रह जाता है, न विचार रह जाता है, न कर्म रह जाता है। जहां सिर्फ अस्तित्व रह जाता है।
अस्तित्व की तीन शाखायें हैं। अस्तित्व के बीज में तीन शाखायें निकली हैं--कर्म की, भाव की, विचार की। लेकिन अगर इन शाखाओं पर हम भटकते रहें तो जो जड़ है अस्तित्व की, उसका हमें पता न लगेगा। इन शाखाओं से उतरकर जड़ पर आ जाना होगा। परमात्मा या सत्य अस्तित्व है, एक्जिसटेंस है। वहां उतरने के लिए तीनों को छोड़ देना पड़ेगा।
ये तीनों मार्ग नहीं हैं, ये तीनों भटकाव हैं। इन तीनों से हम भटक सकते हैं, पहुंच नहीं सकते हैं। और अगर पहुंचना हो तो तीनों से हट जाना पड़ेगा। आने वाले तीन दिनों में इस संबंध में बात करूंगा कि ये भटकाव क्यों है? एक-एक के संबंध में गहरी आपसे बात करना चाहूंगा कि भटकाव क्यों है? यह भटकाव कैसे हो जाता है?
निश्चित ही आप पूछेंगे कि मार्ग? चौथा कोई मार्ग होगा? चौथा भी नहीं, पांचवां भी नहीं। असल में मार्ग है ही नहीं। और जो आदमी सब मार्गों से नीचे उतर जाता है, वह वहां पहुंच जाता है, जहां पहुंचना है।
कोई मार्ग वहां नहीं ले जा सकता, उसके कारण हैं। कुछ थोड़ी-सी बातें कहूं। पहली तो बात, अगर वह हमसे दूर होता तो हम किसी रास्ते से उस तक पहुंच जाते। लेकिन वह हमसे दूर नहीं; इसलिए सब रास्ते हमें दूर ले जायेंगे। अगर मुझे आपके पास पहुंचना हो तो रास्ते चाहिए। लेकिन अगर मुझे अपने ही पास पहुंचना हो तो रास्ता कैसे होगा? और अगर मैंने अपने ही पास पहुंचने के लिए कोई रास्ता चुन लिया तो मैं भटका। क्योंकि मेरे पास पहुंचने के लिए रास्ता कैसे होगा? मैं अपने पास हूं ही। इसलिए जब तक मैं रास्तों पर रहूंगा, तब तक मैं अपने को भी दूर सोचता रहूंगा। जिस दिन मैं रास्ते से उतर जाऊंगा, उस दिन मैं पाऊंगा कि मैं तो वहां था ही।
बुद्ध को जिस दिन बोध हुआ, लोगों ने उनसे पूछा, आप पहुंच गये? पा लिया? बुद्ध ने कहा, अब मत पूछो ऐसी बातें, क्योंकि अब मैं कैसे कहूं कि पा लिया! क्योंकि जिसे पाया ही हुआ था, आज उसे पहचाना। पा नहीं लिया।
किस रास्ते से पहुंचे, लोगों ने पूछा? बुद्ध ने कहा कि कोई रास्ते से नहीं पहुंच सका, क्योंकि सब रास्ते वहां पहुंचाते थे, जहां मैं नहीं था। और मुझे पहुंचना वहां था, जहां मैं था ही! रास्ते वहीं पहुंचा सकते हैं, जहां मैं नहीं हूं। अगर मैं वहां हूं ही तो रास्ते की क्या जरूरत है! कोई रास्ता नहीं पहुंचने का--हम वहां हैं ही।
जैसे मैं राजकोट में सो जाऊं और सपना देखूं कि कलकत्ता में हूं, और सपने में परेशान होने लगूं कि मुझे सुबह तो राजकोट पहुंचना है! बड़ी मुश्किल हो गयी, मैं अब कैसे वापिस लौटूं? रास्ता कहां है? लोगों से पूछने लगूं, रास्ता बताओ, कैसे जाऊं? ट्रेन से जाऊं, प्लेन से जाऊं, बैलगाड़ी पकडूं, पैदल यात्रा करूं? क्या करूं--मुझे राजकोट पहुंचना है?
और अगर कोई मुझे रास्ता बता दे और मैं उस रास्ते पर चल पडूं तो क्या आप सोचते हैं, मैं राजकोट पहुंच जाऊंगा? मैं किसी भी रास्ते से चलूं और किसी भी वाहन का उपयोग करूं, मैं राजकोट नहीं पहुंचूंगा, क्योंकि राजकोट में मैं हूं ही। राजकोट कैसे पहुंचूंगा?
सुबह जब मेरी नींद खुले, जब मैं नींद खुलते देखूं, कोई मुझसे पूछे कि पहुंच गये राजकोट? तो कहना मुश्किल है कि पहुंच गया। आश्चर्य तो यह है कि वहां होते हुए, कैसे भटक गया था? कहां भटक गया था? कैसे मुझे यह ख्याल आ गया था कि मैं राजकोट से दूर कलकत्ता चला गया!
परमात्मा वहां है, जहां हम हैं। सत्य वहां है, जहां हम सदा से हैं। सत्य वहां है, जहां से अलग होने का कोई उपाय नहीं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा को कैसे खोजें? तो मैं उनसे पूछता हूं कि तुमने खोया कैसे? अगर तुम मुझे बता दो कि हमने इस भांति खोया तो मैं तुम्हें बता दूं कि इस भांति तुम उसे पा लो।
वे कहते हैं, खोने का तो हमें कुछ पता नहीं! कि हमने खोया है, यह पता नहीं! मैंने कहा, जिसे खोया ही नहीं है, जिसके खोने का भी पता नहीं है, उसे खोजने के पागलपन में क्यों पड़ते हो? उसे खोजो ही मत। तुम सब खोज छोड़ दो।

लाओत्से ने दो-तीन छोटे-छोटे वचन कहे हैं। उसका एक वचन है सीक एंड यू विल नाट फाइंड, खोजो और तुम नहीं पा सकोगे! डू नाट सीक एंड फाइंड, खोओ मत और पा लो!
बड़ी उलटी बात कह रहा है, लेकिन आज तक दुनिया में जो भी जानते हैं, उन्होंने अनिवार्य रूप से उलटी बात कही। क्योंकि अगर सपने में आप मुझसे पूछें कि मैं राजकोट कैसे पहुंचूं? तो मैं आपसे कहूंगा कि पहुंचना बंद कर दो, तुम राजकोट में हो। तुम पूछो ही मत रास्ता।
लेकिन आप कहें, बिना गुरु के मैं कैसे पहुंचूंगा? मुझे कोई गुरु बता दो, कोई रास्ता बता दो, कोई मार्ग बता दो, जिससे मैं पहुंच जाऊं!
और मैं आपसे कहूं कि तुम्हें कोई गुरु मिल गया तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। सब गुरु मुश्किल में डाल देते हैं, क्योंकि वे रास्ता बता देते हैं! वे कहते हैं, यह रहा रास्ता, ऐसे चले जाओ! बस यहां से पहुंच जाओ! गुरु कहता है, रास्ता है।
और जब कोई गुरु कहता है, रास्ता है, तब वह यह कहता है कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह खो दिया गया है! तब वह यह कहता है कि जहां हमें पहुंचना है, वहां वह है नहीं! तब वह कहता है कि जहां हमें पहुंचना है, वहां हम हैं नहीं! तब वह यह कहता है, परमात्मा और हमारे बीच फासला है, डिस्टेंस है, जिसको रास्ते से पूरा करना है! सब गुरु परमात्मा के दुश्मन हैं, क्योंकि परमात्मा वहां है, जहां हम हैं।
परमात्मा हमारा स्वभाव है। उसे हम खो नहीं सकते। उसे खोने का कोई रास्ता नहीं। हम कहीं भी भागें और दौड़ें; और हम कहीं भी जायें, वह हमारे साथ है। हम ही हैं वह। वही सांस ले रहा है, वही चेतन हुआ है, वही झांक रहा है आंखों से, वही बोल रहा है, वही सुन रहा है। उसे हम खो नहीं सकते। हम सो जायें तो वही सो रहा है, हम जाग जायें तो वही जाग रहा है।
रास्ते की संभावना नहीं है। आदमी ने रास्ते बनाये हैं। क्योंकि आदमी
का मन--जिसने सारा भटकाव पैदा किया है, रास्ते भी बनवा देता है। आदमी का मन--गुरु भी पैदा करवा देता है। आदमी का मन--साधनाएं भी करवा देता है, योग भी सधवा देता है। आदमी का मन--सब कुछ करवा देता है। और आदमी का मन, जब तक करवाता रहता है, तब तक हम सपने में पड़े रहते हैं। मन सपना है। मन जो है, वह ड्रीम है। मन जो है, नींद है। और नींद से जागना हो तो मन को भोजन देना बंद करना पड़ेगा। अगर एक क्षण के लिए भी मन को भोजन मिलना बंद हो जाये, उसको फ्यूल मिलना बंद हो जाये तो मन के सारे खेल समाप्त हो जायेंगे!
जैसे कार है, आप फ्यूल दे रहे हैं, पेट्रोल दे रहे हैं--वह चल रही है। अगर मैं आपसे कहूं कि एक मिनिट भी कार को पेट्रोल न मिले! तो आप कहेंगे कि एक मिनिट से क्या फर्क पड़ता है? एक मिनिट से क्या होता है? मैं आपसे कहता हूं, एक मिनिट भी फ्यूल न मिले तो कार रुक जायेगी। हां, कार बेचने वालों की बातों में पड़ जायें तो झंझट है।
मैंने सुना है, फोर्ड की एक दुकान पर एक एजेंट फोर्ड की गाडिय़ां बेचता था। वह एक आदमी को गाड़ी में लेकर गया। कोई पांच-सात मील जाकर। गाड़ी दिखाने गया था, पसंद पड़ जाये। पांच-सात मील जाकर गाड़ी उसकी रुक गयी तो उस आदमी ने पूछा, अरे, नयी गाड़ी और यह क्या होता है? उसने कहा, मालूम होता है, मैं पेट्रोल डालना भूल गया। उसने देखा तो टंकी खाली है, बिना पेट्रोल डाले चला आया। उस आदमी ने कहा, बिना पेट्रोल डाले सात मील कैसे चले आये? उसने कहा, इतना तो फोर्ड के नाम पर चल जाती है! इतने के लिए पेट्रोल की कोई जरूरत नहीं!
एजेंटों की बात अलग है। जो फ्यूल के बिना चलाते हैं। वे फोर्ड के एजेंट हों, राम के एजेंट हों, महावीर के एजेंट हों, कृष्ण के एजेंट हों, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दुकानदारों की, एजेंटों की बात अलग है। वे चला सकते हैं। वे कहते हैं, रामनाम के सहारे ही चल जायेगी, उसमें क्या है! अगर रामनाम के सहारे चलती है तो फोर्ड के नाम से क्यों नहीं चल सकती है? इसमें क्या बात है!
लेकिन एक मिनिट पेट्रोल न हो तो गाड़ी वही खड़ी हो जायेगी। मन के लिए अगर एक मिनिट भी फ्यूल न मिले तो मन टूट जाता है। एक सेकेंड को भी टूट जाये

तो आपको झलक मिल जाती है मन के बाहर की। एक मिनिट के लिए नींद खुल जाये तो आप दूसरी दुनिया को जान लेते हैं, जिसको आपने नींद में नहीं जाना।
तो मैं नहीं कहता कि आप अपने कर्म को छोड़कर भाग जायें, मैं नहीं कहता
कि आप विचार करना बंद कर दें, मैं नहीं कहता कि आप भाव न करें। मैं यह कहता हूं कि आप इन तीनों की पूरी प्रक्रिया को समझ लें और चौबीस घंटे में क्षण भर के लिए भी अगर भाव, कर्म और विचार तीनों शांत हो जायें, तो उस क्षण में ही आप हैरान होंगे कि किसको खोज रहे हैं? जिसको मैं खोज रहा हूं, वह तो मैं ही हूं! मैं किसकी तलाश में हूं? जिसकी मैं तलाश कर रहा हूं, वह तलाश करने वाला मैं नहीं हूं! मैं कहां जाना चाहता हूं? जहां मैं जाना चाहता हूं, वहां मैं सदा से खड़ा हूं! एक क्षण को यह बोध हो जाये, तब आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो गये। इसके बाद आप कर्म करिये तो भी आप भीतर जानते हैं कि कुछ है, जो नहीं कर रहा है! इसके बाद आप विचार करिये, फिर भी आप जानते हैं कि कुछ है, जो विचार के बाहर है। फिर आप प्रेम करिये और प्रेम के गहरे से गहरे क्षण में भी आप जानते हैं कि कोई है, जो प्रेम करने को भी देख रहा है--साक्षी। फिर आप कुछ भी करिये, फिर इस जगत में आप एक अभिनेता से ज्यादा नहीं।
अभी एक नया-नया हुआ अभिनेता मेरे पास आया था। उसने मुझे कहा कि मेरी डायरी में कोई एक वाक्य लिख दें, जो मुझे काम पड़ जाये। मैं नया-नया आया हूं अभिनय की दुनिया में। दो फिल्मों में काम कर रहा हूं, लेकिन अभी मेरी कोई समझ नहीं है। आपके पास आया हूं, पता नहीं आप बुरा तो न मानेंगे? क्योंकि मैं अभिनय के संबंध में सलाह लेने आया हूं।
मैंने कहा, बुरा मानने की जरूरत नहीं, मैं इसी के संबंध में सभी को सलाहें दे रहा हूं। मैंने उसकी डायरी में एक वाक्य लिख दिया। वह मैं चाहूंगा, आपकी डायरी में भी आप लिख लेंगे।
मैंने उसकी डायरी में लिख दिया कि"अगर ठीक अभिनेता होना हो तो अभिनय ऐसे करना, जैसे कि यह जिंदगी है। और अगर ठीक जिंदगी पानी हो तो जीना ऐसे जैसे कि यह अभिनय है।"
अगर अभिनेता इस तरह अभिनय कर पाये कि समझ ले कि यह जिंदगी है तो सफल हो जाता है। और अगर कोई जिंदगी में इस तरह जी पाये कि देख ले कि यह अभिनय है, तो जिंदगी के रहस्य को और सत्य को पा जाता है।
मेरे लिए कोई मार्ग नहीं है--क्योंकि मैं आपको सिर्फ सपने में देखता हूं। कहीं आप भटक नहीं गये हैं, सिर्फ सो गये हैं।
इसलिए इन तीन दिनों में तीन मार्गों को तोड़ने की कोशिश करूंगा। अगर
ये तीनों टूट जायें तो आप बिना मार्ग के हो जायेंगे। और धन्यभागी हैं वे, जिसके पास कोई मार्ग नहीं, क्योंकि तब उनको जाने का उपाय न रहा। तब वह खड़ा हो जायेगा। करेगा क्या? रास्ता नहीं है, खड़ा ही होना पड़ेगा। जो खड़ा हो जाता है, ठहर जाता है, उसे वह दिखायी पड़ जाता है, जो सदा से मौजूद है। लेकिन हम दौड़ रहे हैं, हम भाग रहे हैं, हम नये-नये रास्ते खोज रहे हैं।
हम उसे देख ही नहीं पाते, जो चारों तरफ मौजूद है! क्योंकि उसे देखने के लिए क्षण भर तो कम से कम खड़ा होना जरूरी है।
अगर मार्ग की भाषा में ही पूछना हो तो मैं कहूंगा कि मार्गों को छोड़ देना मार्ग है, दौड़ बंद कर देना मार्ग है, रुक जाना मार्ग है, ठहर जाना मार्ग है। लेकिन निश्चित ही कोई मार्ग ठहरने के लिए नहीं होता। मार्ग चलने के लिए होता है।
मार्ग कहता है, चलो।
और धर्म कहता है, ठहरो। इसलिए धर्म का कोई मार्ग नहीं हो सकता।
मार्ग कहता है, चलो। मार्ग कहता है, दौड़ो। मार्ग कहता है, तेजी से दौड़ो। मार्ग कहता है, दूसरे मार्ग पर मत चले जाना, नहीं तो भटक जाओगे। यह मेरा मार्ग ठीक है। इसलिए सब मार्गी भटकाते हैं, सब पंथी भटकाते हैं। धर्म का कोई मार्ग नहीं है, कोई पंथ नहीं है। धर्म कहता है, ठहरो। धर्म कहता है, रुक जाओ। धर्म कहता है, दौड़ो मत।
लेकिन"दौड़ो मत" के लिए भी कोई मार्ग होता है? ठहरने के लिए भी कोई मार्ग होता है? रुक जाने का भी कोई मार्ग होता है? नहीं, रुक जाने का तो मतलब ही यह होता है कि कोई मार्ग नहीं है। और जब आपको पता चलेगा कि कोई मार्ग नहीं, तभी आप रुक सकते हैं, नहीं तो आप दौड़ते ही रहेंगे।

एक मार्ग से ऊब जायेंगे तो दूसरा मार्ग पकड़ लेंगे! ईसाई हिंदू हो जाता है! हिंदू ईसाई हो रहे हैं! कोई कुरान बदलकर गीता पकड़ लेता है! गीता बदलकर कोई कुरान पकड़ लेता है! कोई इस गुरु को छोड़कर उस गुरु के पास चला जाता है! इस गुरु से उस गुरु के पास चला जाता है!
कब वे दिन आयेंगे, जब आप कहेंगे, कोई गुरु नहीं, कोई मार्ग नहीं, कोई शास्त्र नहीं? जिस दिन यह क्षण आ जायेगा, उस दिन चलने का उपाय नहीं रहेगा-- आप खड़े हो जायेंगे। जिस दिन आप, जिस क्षण आप खड़े हो जाते हैं, उसी क्षण, वहीं क्रांति घटित हो जाती है, जिसका नाम धर्म है।
इन तीन दिनों में, तीनों मार्गों को तोड़ने की कोशिश करूंगा और आशा रखूंगा कि चार दिन के बाद, जब मैं जाऊं तो आपके पास कोई मार्ग न हो, आप खड़े रह जायें।
ध्यान रहे कि परमात्मा आपको बहुत खोज रहा है, लेकिन आप मिलते नहीं! आप इतने भागे रहते हैं कि जब तक वह पहुंचता है, तब तक आप आगे निकल जाते हैं! कितना ही दौड़ें, आप उससे तेज दौड़ लगाते हैं, आप आगे निकल जाते हैं! जब तक वह पता लगाकर पहुंचता है, तब तक पाता है कि आप कहीं और, किसी और मार्ग पर चले गये हैं!
आदमी को भगवान को नहीं खोजना है, भगवान निरंतर आदमी को खोज रहा है। लेकिन आदमी घर पर तो मिल जाये कम से कम। वह जब भी आता है, दरवाजा खटखटाता है, पता चलता है, और कहीं है! जब तक वहां पहुंचता है, तब पता लगता है, वह और कहीं चले गये! इससे मुलाकात नहीं हो पाती। एक छोटी-सी कहानी, और यह बात मैं पूरी करूंगा।
मैंने सुना है, एक बहुत शक्की आदमी था। ऐसे तो सभी आदमी शक्की होते हैं। वह अपने घर में ताला भी लगाता था, तो वह उसे चार बार हिलाकर लौट-लौट कर देख जाता था! पता नहीं लगाया कि नहीं लगाया! कहीं भूल न हो गयी हो। वह एक दिन सुबह-सुबह एक दुकान पर बाल बनवाने गया। नाई ने उसके बाल बना दिये तो उसने रुपया दिया। नाई से कहा आठ आने हुए। लेकिन बाकी आठ आने मेरे पास अभी हैं नहीं, कल ले जाना।
उसने सोचा, कल पता नहीं यह आदमी बदल जाये। और इतने जोर से बदलाहट हो रही है दुनिया में। किसी का कोई भरोसा ही नहीं, कौन कब कहां हो? आज नाई है, कल ब्राह्मण हो जाये; कुछ पक्का पता नहीं! आज यह दुकान कर रहा है, कल दुकान बदल दे! कुछ पक्का है ही नहीं, चीजें इतनी जोर से बदल रही हैं। किसी का कोई ठिकाना नहीं कि कोई कल वहीं मिलेगा, जहां कल सुबह आपने उसे पाया था।
उसने सोचा, कुछ पक्का कर लेना चाहिए, नहीं तो आदमी बदल जाये। उसने सोचा, बोर्ड ठीक से पढ़ लूं। उसने कहा, बोर्ड का क्या भरोसा, दो मिनिट में बदल जाता है। कांग्रेसी है, कम्युनिस्ट हो जाता है! कम्युनिस्ट, कांग्रेसी हो जाता है! कुछ पक्का पता नहीं, इस बोर्ड का क्या है। उसने सोचा आदमी की शक्ल-सूरत देखूं। लेकिन शक्ल-सूरत का क्या भरोसा है। गृहस्थ संन्यासी हो जाता है। सब शक्ल-सूरत बदल देता है। रात भर में क्या, क्षण में सब हो जाता है! उसने सोचा, कुछ ऐसा इंतजाम करूं कि इसको पता ही न हो, जिसको वह बदल न सके। आखिर वह इंतजाम करके चला गया।
वह दूसरे दिन सुबह आया और उसने जाकर अंदर दुकान में गरदन पकड़ ली! उसने कहा, यही तो मैंने सोचा था!
वहां एक भैंस बैठी थी बाहर, उसको देखकर चला गया। उसने कहा, इस भैंस का क्या पता होगा इसको कि भैंस बाहर बैठी है। जहां कल भैंस होगी, वहीं उसको पकड़ लेंगे। भैंस रात भर में चली गयी। भैंस का कोई भरोसा है क्या? आदमी का भरोसा नहीं, तो भैंस का भरोसा तो बहुत मुश्किल है। भैंस चली गयी!
दूसरे दिन वह सुबह पहुंचा तो एक मिठाई वाले की दुकान के सामने बैठी थी। उसने जाकर मिठाई वाले की गरदन पकड़ ली! और उसने कहा, धन्य हो, हद कर दी, आठ आने के पीछे इतनी बदलाहट! कह देते कि नहीं देना। इतनी परेशानी उठायी और सब काम ही बदल दिये! मगर हम भी इंतजाम पक्का करके गये थे। वह भैंस बाहर छोड़ गये थे। वह वहीं बैठी है, जहां हम छोड़ गये थे! सब बदल गया, लेकिन भैंस वहीं है!
परमात्मा हमें खोज भी रहा हो तो कैसे खोज पायेगा? सब तो बदल जाता है रोज। जो कल सुबह हम थे, वह आज सांझ नहीं है। जो आज सांझ हैं, वे कल सुबह नहीं

होंगे। सब बदल जाता है। उस जगह नहीं होते, जहां थे। सब भाग जाता है, सब दौड़ जाता है! और तेजी से भाग रहे हैं!
एक क्षण को भी अगर हम खड़े हो जायें तो उससे मिलने में बाधा नहीं है। वह
है ही सब जगह मौजूद। सिर्फ हमारे खड़े होने की प्रतीक्षा है। परमात्मा प्रतीक्षा में है उसकी, जो खड़ा हो जाता है। जो खड़ा हो जाता है, वह उसे उपलब्ध हो जाता है।
रास्ता नहीं है, मार्ग नहीं है, पंथ नहीं है। कोई गुरु नहीं है। आप हैं
और परमात्मा है।
और आप भी दौड़ रहे हैं, इसलिए"हैं", अगर ठहर जायें आप तो फौरन मिट जायेंगे और परमात्मा ही रह जायेगा।
जब तक दौड़ रहे हैं, तब तक आप हैं और परमात्मा है, क्योंकि दौड़ आपको भ्रम पैदा कर रही है कि"मैं" हूं। दौड़ गयी, फ्यूल न मिला, कि आप भी गये, आपका मन भी गया; जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा ही है। परमात्मा करीब है। हम मिट जायें और वही रह जाये, जो है। हमारा होना नितांत झूठ है। लेकिन इस झूठ को यह ख्याल पैदा हो गया कि हम सत्य को मिलकर रहेंगे! अब यह झूठ सत्य से कैसे मिलेगा?
हम कहते हैं कि मुझे दर्शन करने हैं--परमात्मा के। मैं और दर्शन करूंगा? मैं कैसे उसके दर्शन करूंगा?"मैं" ही तो झूठ हूं।"मैं" न रह जाऊं तो उसके दर्शन हो जायें। लेकिन मैं कहता हूं,"मैं" दर्शन करूंगा।"मैं" मिलकर रहूंगा,"मैं" उसको खोजकर रहूंगा! और"मैं" इस सब खोज और मिलने और दौड़ने में मजबूत होता चला जाता है और बाधा बन जाता है।
एक-एक--कल ज्ञान पर, फिर भक्ति पर, फिर कर्म पर, तीनों पर बात करूंगा।
एक दम निषेधात्मक, विध्वंसक, तोड़ देने वाली। रास्ते टूट जायें तो वह द्वार पर खड़ा है।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रमाण स्वीकार करें।

नेति-नेति
बीसवां प्रवचन

ज्ञानः मार्ग नहीं, भटकन है

मेरे प्रिय आत्मन्,
मनुष्य को खंडों में तोड़ना और फिर किसी एक खंड से सत्य को जानने की कोशिश करना, अखंड सत्य को जानने का द्वार नहीं बन सकता है।
अखंड को जानना हो तो अखंड मनुष्य ही जान सकता है।
न तो कर्म से जाना जा सकता है, क्योंकि कर्म मनुष्य का एक खंड है। न ज्ञान से जाना जा सकता है, क्योंकि ज्ञान भी मनुष्य का एक खंड है। और न भाव से जाना जा सकता है, भक्ति से, क्योंकि वह भी मनुष्य का एक खंड है।
अखंड से जाना जा सकता है। और ध्यान रहे इन तीनों को जोड़कर अखंड नहीं बनता। इन तीनों को छोड़कर जो शेष रहता है, वह अखंड है। जोड़ने से कभी अखंड नहीं बनता। जोड़ में खंड मौजूद ही रहते हैं।
जैसे उदाहरण के लिए, हिंदू मुसलमान को जोड़कर कभी हम एकता स्थापित नहीं कर सकते। हिंदू मुसलमान जुड़ जायें तो भी खंड सदा मौजूद रहते हैं। लेकिन हिंदू हिंदू न रह जाये, मुसलमान मुसलमान न रह जाये, तब जो शेष रह जाता है, वह एकता है। हिंदू मुसलमान को जोड़ने से एकता नहीं होने वाली।
हिंदू मुसलमान दोनों ही हिंदू मुसलमान न रह जायें, तब जो शेष रह जायेगी आदमियत, वह एक होगी।
बुद्धि को, भाव को, कर्म को, जोड़ने के भी प्रयास किये गये हैं। किन-किन
को भी जोड़ लें, लेकिन इन तीनों को जोड़कर जो बनता है, वह अखंड नहीं है। क्योंकि जो जोड़कर बनता है, वह अखंड हो ही नहीं सकता। उसमें खंड मौजूद रहेंगे ही। जुड़े हुए होगे, लेकिन मौजूद होंगे। अखंड तो खंडों से मुक्त होकर ही मिलता है। ट्रांसेंडेंस से मिलता है, अतिक्रमण से मिलता है। जब हम खंडों के ऊपर उठ जाते हैं, तब मिलता है। जब हम खंडों के ऊपर उठ जाते हैं, तब मिलता है।
अखंड जोड़ नहीं है, अखंड खंड से मुक्त हो जाना है।
मनुष्य का मन खंडन की प्रक्रिया है। मनुष्य का जो मन है, वह चीजों को खंड-खंड करके देखता है! जैसे आपने सूरज की किरण देखी है, सूरज की किरण अगर कांच के प्रिज्म के टुकड़े में से निकाली जाये तो खंड-खंड हो जाती है। सात टुकड़ों में टूट जाती है। सात रंग पैदा हो जाते हैं। सूरज की किरण सिर्फ शुभ्र है। शुभ्र कोई रंग नहीं है। जब प्रिज्म से किरण टूटती है, तब सात रंग दिखायी पड़ने शुरू होते हैं।
बुद्धि का जो प्रिज्म है, बुद्धि का जो टुकड़ा है, बुद्धि का जो देखने
का ढंग है--वह चीजों को तोड़कर दिखाने का ढंग है! बुद्धि सदा तोड़कर ही देख सकती है! बुद्धि कभी इकट्ठे को नहीं देख सकती। बुद्धि सदा खंड को देख सकती है। अखंड को नहीं देख सकती।
बुद्धि जीवन के सत्यों को कई खंडों में तोड़ देती है। वे खंड बुद्धि के द्वारा तोड़े गये हैं और ऐसे ही झूठ हैं, जैसे पानी में लकड़ी को डाल दें और लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगे! तिरछी हो नहीं जाती, सिर्फ दिखाई पड़ती है। बाहर निकाल लें पानी से, सीधी हो जाती है। सीधी हो नहीं जाती, सीधी थी ही। सिर्फ वह तिरछा दिखायी पड़ना, जो पानी की वजह से पैदा होता था, माध्यम की वजह से पैदा होता था, वह विदा हो जाता है। पानी में डाल दें, फिर वह लकड़ी तिरछी दिखायी पड़ने लगती है।
क्या लकड़ी पानी के भीतर तिरछी हो जाती है? अगर आप अपना हाथ डालकर लकड़ी
को देखें पानी के भीतर तो भी पता चलेगा कि वह तिरछी नहीं हुई। लेकिन हाथ तिरछा मालूम पड़ने लगेगा! पानी के माध्यम में सभी चीजें तिरछी हो जाती हैं, दिखायी पड़ने लगती हैं।
बुद्धि के माध्यम में सभी चीजें टूट जाती हैं, टुकड़ों में हो जाती हैं। और बुद्धि के तीन टुकड़े हैं। विचार है, भाव है, कर्म है। इसलिए बुद्धि जब भी देखेगी तो तोड़कर देखेगी। फिर बुद्धि एक काम और भी कर सकती है कि इन तीनों को जोड़ ले, मगर वह जोड़ भी अखंड नहीं होगा। बुद्धि का जोड़ एकदम भ्रांत

होगा। बुद्धि जोड़ सकती है ऊपर से, लेकिन खंड फिर भी मौजूद रह जायेंगे। जिन्हें जोड़ेंगे हम, वे मौजूद रहेंगे। जुड़े हुए भी मौजूद रहेंगे।
अखंड सत्य को जानना हो तो मन को पार करना जरूरी है। और उसे पार करने के लिए कर्म भी सहयोगी नहीं, भाव भी सहयोगी नहीं, ज्ञान भी सहयोगी नहीं। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है, फिर आपके, कल के संबंध में कुछ प्रश्न हैं, उनकी बात करूं।
अखंड को जानने के लिए मुझे भी अखंड ही खड़ा होना पड़ेगा, क्योंकि मैं वही जान सकता हूं, जो मैं हूं। मैं उसे नहीं जान सकता, जो मैं नहीं हूं। आपके पास आंख है, इसलिए आप सूरज की किरण को जान पाते हैं। अगर आपके पास आंख नहीं है तो आप सूरज की किरण को नहीं जान पाते। सूरज को जानना हो तो आंख का होना जरूरी है। अंधा सूरज को नहीं जान पायेगा। आप ध्वनि को सुन पाते हैं, तो उसके लिए कान होना जरूरी है। आपके पास कुछ होना जरूरी है, तभी आप कुछ जान सकते हैं।
अगर अखंड को जानना हो तो आपके पास क्या होना जरूरी है? अगर अखंड को जानना है तो आपके पास एक अखंड चेतना होनी जरूरी है। इंटीग्रेटेड कांशसनेस होनी जरूरी है। जिसमें कोई तोड़ न हो, कोई खंड न हो।
लेकिन अभी हमारे पास जो मन है, वह खंड-खंड ही होता है। मन खंड-खंड ही होता है। मन के होने का ढंग ही यही है। मन के होने की व्यवस्था ही यही है। और मन के होने की व्यवस्था किसी दिशा में उपयोगी भी है। जरूरी है कि किन्हीं आयामों में, किन्हीं दिशाओं में मन खंड-खंड देखे। और उसका उपयोग भी है। जब कोई आदमी सोच रहा हो, अगर उसी समय भाव करे तो सोचना मुश्किल हो जायेगा। जैसे एक वैज्ञानिक विचार करता है तो उसे उस समय समस्त भाव से मुक्त हो जाना जरूरी है। अगर वह भाव भी भीतर रखता है तो फिर वह वैज्ञानिक न हो सकेगा। भाव का मतलब होगा उसका प्रिज्युडिस, पक्षपात।
एक डाक्टर बनर्जी हैं। उनका नाम शायद आपने सुना हो, वे जयपुर विश्वविद्यालय में पुनर्जन्म के संबंध में खोजबीन करते थे। वह मुझे मिलने बंबई आये। दस-बीस लोग इकट्ठे हो गये थे, हम दोनों की बात सुनने को। उन डाक्टर बेनर्जी ने कहा कि मैं यह सिद्ध करना चाहता हूं वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म होता है!
मैंने उनसे कहा कि यह जो बात आप कह रहे हैं, यह बात ही अवैज्ञानिक हो गयी है।
उन्होंने कहा, क्या मतलब?
मैंने उनसे कहा, वैज्ञानिक कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता। और अगर सिद्ध करना चाहता है तो उसका मतलब है सिद्ध करने के पहले ही उसने मान रखा है, सिद्ध क्या करना है। आप कहते हैं,"मैं सिद्ध करना चाहता हूं वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म है," यह बात ही अवैज्ञानिक हो गयी। अभी सिद्ध नहीं हुआ और आपने सिद्ध मान रखा है मन में! उसी को आप सिद्ध करना चाहते हैं! वैज्ञानिक यह कहता है कि मुझे पता नहीं कि पुनर्जन्म है या नहीं। जो
भी होगा, उसे मैं जानना चाहता हूं। उसका अपना कोई भाव नहीं होना चाहिए अन्यथा वह अपने भाव के अनुरूप सिद्ध कर लेगा। वैज्ञानिक के पास भाव होगा तो वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता। उसे सब भाव छोड़ देने पड़ेंगे। उसे सिर्फ विचार करना पड़ेगा। उसके पास कोई पक्षपात नहीं होना चाहिए। अगर उसके पास जरा-सा भी पक्षपात है तो वह जो खोज करेगा, वह खोज वैज्ञानिक नहीं रह जायेगी।
मन को तो खंड करना जरूरी है। मन का खंड होना बहुत आवश्यक है, नहीं तो विचार असंभव हो जायेगा। इसलिए बहुत भावुक लोग विचार नहीं कर पाते। उसका भाव बाधा देता है।
इसलिए जो कौमें बहुत भाव से भरी हैं, वे वैज्ञानिक नहीं हो पायीं। जैसे हमारी ही कौम है। वह भाव से अति प्रेरित है, इसलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया। विज्ञान के जन्म के लिए भाव का बिल्कुल हट जाना जरूरी है। और अगर कोई बहुत भावुक हो और बीच-बीच में विज्ञान और विचार उसमें प्रवेश करें तो भी मुश्किल में पड़ जायेगा। अगर आपको किसी का चेहरा सुंदर लगता है। और आपका विचार बीच में आ जाये और कहने लगे, क्यों सुंदर लगता है? तो आप मुश्किल में पड़ जायेंगे, क्योंकि सुंदर लगना विचार की बात नहीं,

सिर्फ भाव की बात है। उसके लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं। और अगर तर्क बीच में आया तो आप थोड़ी देर में ही मुश्किल में पड़ जायेंगे। पता लगाना मुश्किल हो जायेगा कि क्यों सुंदर लगता है?
अगर मुझे किसी से प्रेम हो गया, और मैं विचार करने लगूं वैज्ञानिक रूप
से कि मेरा प्रेम क्यों हो गया? तो प्रेम खो जायेगा। प्रेम नहीं बचेगा। क्योंकि प्रेम के लिए वैज्ञानिक विचार की कोई भी जरूरत नहीं है, इसलिए जो लोग बहुत वैज्ञानिक ढंग से चिंतन करेंगे, वे प्रेम करने में असमर्थ हो जायेंगे।
जो लोग बहुत वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं, वे कविता नहीं लिख सकते, क्योंकि काव्य में विचार की कोई जरूरत नहीं। वहां तो विचार जितना कम होगा, उतनी ही काव्य की गति होगी। अगर एक वैज्ञानिक से जाकर मैं कहूं कि मेरी जो एक प्रेयसी है, उसका चेहरा मुझे चांद जैसा मालूम पड़ता है। तो वह कहेगा, आपका दिमाग खराब हो गया--कहां चांद और कहां स्त्री का चेहरा! इसके बीच तालमेल ही नहीं है। अगर इनको तराजू पर रखकर तौलें तो कोई तौल नहीं। कहां चांद, कहां स्त्री का चेहरा! चांद से स्त्री के चेहरे का क्या संबंध। वह मुझे मुश्किल में डाल देगा और मैं सिद्ध न कर पाऊंगा कि किसी स्त्री का चेहरा चांद जैसा हो सकता है। हो भी नहीं सकता। लेकिन भाव में हो सकता है, गणित में नहीं हो सकता। गणित और भाव की अलग दुनिया है, उनकी अलग यात्रायें हैं।
मन तीन आयाम में काम करता है। और जिसे कर्म करना हो, उसे भी बहुत भावुक नहीं होना चाहिए, अन्यथा कर्म में बाधा पड़ेगी। जिसे कर्म करना हो, उसे भी बहुत विचार में नहीं पड़ना चाहिए। नहीं तो विचार बाधा डालेगा।
मैंने सुना है कि एक विचारक पहले महायुद्ध में भर्ती हो गया था। युद्ध था जोर पर और वह विचारक युद्ध में भर्ती हो गया। लेकिन वह विचारक था। जब उसे मिलिट्री में ट्रेनिंग दी गयी और कहा गया बांये घूम जाओ तो सारे लोग तो बांये घूम गये और वह खड़ा ही रहा!
उसके प्रधान ने उससे कहा, आप घूमते क्यों नहीं? तो उसने कहा, मैं बिना विचारे कुछ भी नहीं कर सकता हूं। मैं सोच रहा हूं कि बांये क्यों घूम जाऊं?
प्रधान ने कहा कि अगर इस तरह सोच-विचार चलेगा तो आप हमारे काम के नहीं। मिलिट्री में सोच-विचार से काम नहीं चल सकता--आज्ञा परम है। उसमें सोच-विचार की आपको जरूरत नहीं। कहा, बांये घूम जाओ तो बांये घूम जायें। लेकिन उस आदमी ने कहा, पहले मैं सोच तो लूं कि क्यों घूम जाऊं? उसे बहुत दिन सिखाया गया, लेकिन वह बांये-दांये भी घूम न सका! न सोचे, तो कर न सके। लेकिन भर्ती हो गया था तो उसके प्रधान ने उसे मिलिट्री का जो मेस था, भोजनालय था, वहां भेज दिया। और कहा, तुम वहीं कुछ काम करो।
मटर बनने आये थे सब्जी के लिए तो उससे कहा कि तुम छोटे मटर अलग कर लो
और बड़े मटर अलग कर लो। घंटे भर बाद जब उसका प्रधान गया तो वह थाली में मटर जैसे थे, वैसे ही रखे हुए बैठा था--आंख बंद किये हुए! उसके प्रधान ने कहा, तुम क्या कर रहे हो? अभी तक यह भी न कर पाये!
उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। आप ठीक कहते हैं, छोटे और बड़े अलग कर दूं। लेकिन कुछ मटर ऐसे भी हैं, जो बिल्कुल बीच के हैं--न छोटे हैं, न बड़े हैं, उनको मैं कहां करूं? और जब तक यह तय न हो जाये, तब तक कुछ भी करना मेरे लिए संभव नहीं है! मैं पहले सोच लूं, तब कुछ करूं!
मन विभाजित है, मन के काम के लिए जरूरी है कि मन विभाजित हो। मन के कंपार्टमेंट आवश्यक हैं, कि वहां खंड-खंड हों। और इसलिए मन सत्य को नहीं जान पाता। क्योंकि सत्य कोई उपयोगिता नहीं है।
सत्य तो, अखंड जो है, उसे जानने की बात है। शायद"जानना" कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जानने से ज्ञान का ख्याल आता है। इसलिए सत्य को जब हम कहते हैं"जानना" तो ज्ञान का ख्याल मत ले लेना आप। सत्य को जानने का मतलब है, सत्य के साथ एक ही हो जाना। लेकिन शायद"हो जाने" से भाव का ख्याल आता है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसके साथ एक हो जाते हैं। लेकिन सत्य के साथ"एक हो जाने" का भी वही अर्थ नहीं है, जो भाव का अर्थ है।

इसलिए सच बात तो यह है कि सत्य को हम जानना कहें, होना कहें, करना कहें--कोई भी शब्द कारगर नहीं है। क्योंकि हमारे सारे शब्द मन की तीन चीजों के लिए, काम के लिए बनाये गये है--या तो कर्म के लिए, या भाव के लिए, या ज्ञान के लिए। हमारी सारी भाषा मन की बनायी भाषा है। इसलिए तो जो सत्य को जानते हैं, वे कहते हैं कि कहना मुश्किल है, क्योंकि उसे कहने के लिए मन ने कोई भाषा विकसित नहीं की है।
मन ने जो भाषा विकसित की है, वह तीन कामों के लिए की है। मन काम कर सकता है, उसकी भाषा है उसके पास। मन प्रेम कर सकता है, उसकी भी भाषा है उसके पास। मन विचार कर सकता है, उसकी भी भाषा है। 10 लेकिन मन जब तीनों नहीं करता है, तब उसके लिए उसके पास कोई भाषा नहीं। और उसका कारण है। भाषा हो भी नहीं सकती, क्योंकि तब मन ही नहीं रह जाता। तब जो रह जाता है, वह मन नहीं है।
इसलिए उसकी भाषा भी नहीं है।
और फिर भाषा के लिए जरूरी है कि दो हों। बोलने वाला हो, सुनने वाला हो। जहां तक मन है, वहां तक भाषा है। क्योंकि जहां तक मन है, वहां तक मैं हूं और आप हैं।
लेकिन जहां मन नहीं रह गया, वहां न कोई सुनने वाला है, न कोई बोलने वाला है। वहां न मैं हूं, न आप हैं। वहां तो जो है, वही रह गया। वहां मैं तू का भेद भी गिर गया। वहां कौन बोले, कौन सुने? इसलिए वहां भाषा नहीं विकसित हो सकी। सत्य को बताने वाली कोई भाषा विकसित नहीं हो सकी। इसलिए जितने भी शास्त्र हैं, वे सत्य को कहने की कोशिशें हैं--असफल कोशिशें, सफल कोशिशें नहीं। अभी तक कोई कोशिश सफल नहीं हो पायी। और ऐसा नहीं है कि आगे सफल हो जायेगी। आगे भी सफल नहीं हो सकती। उसका कारण सिर्फ यही है कि मन के बाहर भाषा का उपाय नहीं। 8 लेकिन आदमी तो भाषा से ही समझेगा। आदमी भाषा के बाहर कैसे समझेगा? क्योंकि आदमी कहता है, भाषा में ही समझेंगे। तो फिर तीन रास्ते हैं। फिर कर्मयोग है, भक्तियोग है, ज्ञानयोग है। वे भाषा के भीतर कहने के उपाय हैं। लेकिन जो कहा जा रहा है, वह सत्य नहीं रह जाता। क्योंकि जो कहा जा रहा है, वह मन के खंडों से कहा जा रहा है। वह उतना ही झूठा होगा, जैसे पानी के माध्यम में लकड़ी तिरछी हो जाती है। ऐसे ही मन के माध्यम से सत्य जो है, तीन खंडों में बंट जाता है और बंटते ही झूठ हो जाता है। वह अखंड होकर ही सत्य हो सकता है।
ऐसे ही जैसे मैं फूल को देखूं और फूल के पचास टुकड़े कर डालूं। और मैं कहूं कि फूल का जो सौंदर्य है--उन पचास टुकड़ों में से एक-एक टुकड़ा आपको दे दूं और आपको कहूं कि जो सौंदर्य मैंने जाना था, न सही पूरा, लेकिन पचासवां हिस्सा तो आप भी जान लेंगे।
नहीं, पचासवां हिस्सा भी आप नहीं जान सकेंगे, क्योंकि फूल का जो सौंदर्य था, वह अखंड फूल में था। पचास टुकड़े करके भी पचासवां हिस्सा आपके पास नहीं आयेगा। आपके पास कुछ भी नहीं आयेगा। जो पचासवां हिस्सा आयेगा, उसमें उसके सौंदर्य का कोई हिस्सा नहीं आयेगा। बल्कि आप थोड़े हैरान भी होंगे कि यह आदमी पागल मालूम होता है। कहता है, फूल बड़ा सुंदर था! मेरे हाथ में टूटी हुई पंखुड़ी आयी है, उससे कुछ भी पता नहीं चलता कि सुंदर क्या था? अगर मैं कहूं कि यह पचासवां टुकड़ा है, तो आप सोचेंगे, जो मेरे पास है, अगर पचास का गुणा मैं कर दूं तो शायद सब कुछ ठीक हो जायेगा। आप अपनी पंखुड़ी में पचास का गुणा भी मन में कर लेंगे, तब भी आप कहेंगे, सौंदर्य नहीं बनता। फूल पचास गुना नहीं था। फूल बात ही अलग थी। वह अखंड था।
एक आदमी है जिंदा। हम उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालें। हड्डी-मांस फैला दें। कोई उसे प्रेम करता रहा हो, और कहता रहा हो कि बहुत सुंदर है, बहुत प्यारा आदमी है। फिर हम उसे ले आयें कि यह रहा तुम्हारा सुंदर और प्यारा आदमी। तो वह कहेगा कि यह वह आदमी नहीं है। इन हड्डियों को मैंने प्रेम नहीं किया। इस चमड़े को मैंने कभी प्रेम नहीं किया। इस मांस-मन्न को मैंने कभी प्रेम नहीं किया। मैंने तो जिसे प्रेम किया था, वह यह नहीं है।
और हम कहें कि वह पूरा का पूरा है, आप तराजू पर तौल लें, क्योंकि जितना वजन उस आदमी का था, उतना ही वजन इनका भी है। आप जाकर लेबोरेटरी में जांच करवा लें। उस आदमी में जितना एल्युमोनियम था, उतना एल्युमोनियम अब भी हड्डी में है। जितना फास्फोरस था, उतना फास्फोरस अब भी है। आप सारी जांच

करवा लें। जितना खून था, वह सब खून मौजूद है। जितना मांस था, वह सब मांस मौजूद है।
फिर वह प्रेम करने वाला कहे कि क्षमा करिये, यह वही आदमी नहीं है, क्योंकि वह आदमी एक अखंड इकाई था और ये खंड-खंड, टुकड़े हैं! और कुछ चीजें हैं, जो अखंड में ही प्रगट होती हैं और खंड में खो जाती हैं। वे खंड में होती ही नहीं।
मन खंड करने की प्रक्रिया है। मन खंडन की प्रक्रिया है। मन जो है, वह चीजों को तोड़ता है।
उपयोगिता है उसकी इस जगत में, लेकिन उस जगत में नहीं। इस जगत में जहां
हम आदमियों के बीच जीते हैं, और दूसरे मनों के साथ जीते हैं, वहां इसकी उपयोगिता है। लेकिन जहां हमें परमात्मा के साथ जीना हो, वहां उसकी कोई उपयोगिता नहीं। वहां मन एकदम छोड़ देना पड़ता है।
जगत के लिए मन एक सार्थक साधन है, सत्य के लिए मन एक बाधा है। जगत के लिए मन सहयोग है, सत्य के लिए मन एक हिंडरेंस है, एक अवरोध है।
और हमारी कठिनाई यह है कि हम सोचते हैं कि मन से जगत का काम चल जाता है,
तो सत्य का काम क्यों न चले? हम उसी तरह की भूल कर रहे हैं, जैसे कि एक बैलगाड़ी जमीन पर चलती है, लेकिन बैलगाड़ी आकाश में नहीं उड़ सकती। हम अगर सोचें कि बैलगाड़ी जब जमीन पर चल जाती है, तब आकाश में क्यों न उड़ेगी? हमारा सोचना गलत है। असल में बैलगाड़ी जमीन पर चलती है, इसलिए आकाश में नहीं उड़ सकती। आकाश में उड़ने के लिए दूसरा ही वाहन होगा, क्योंकि आकाश का डायमेंशन बदल जाता है। बैलगाड़ी को चलना पड़ता है--अ से ब की तरफ, सीधी रेखा में, होरीजॉन्टल, क्षितिज-रेखा में चलना पड़ता है। हवाई जहाज को उड़ना पड़ता है--नीचे अ से ब की तरफ, वर्टिकल, ऊपर की तरफ। बैलगाड़ी को जाना पड़ता है आगे की तरफ। जहाज को जाना पड़ता है ऊपर की तरफ। वह यात्रा बिल्कुल भिन्न है। हवाई जहाज का वाहन बिल्कुल भिन्न है।
संसार में जाना पड़ता है बाहर की तरफ, सत्य में जाना पड़ता है भीतर की तरफ।
संसार में संबंधित होना पड़ता है दूसरों से, सत्य में संबंधित होना पड़ता है अपने से।
सत्य में मन का कोई उपयोग नहीं है। और हमारे जो तीन मार्ग हैं--ज्ञान के, भक्ति के, कर्म के; वे मन के ही मार्ग हैं। इसलिए उन मार्गों से कोई भी सत्य तक न पहुंचा है, न पहुंच सकता है।
एक मित्र ने पूछा है कि विचार मौलिक नहीं होता, आप कहते हैं! ज्ञान मौलिक नहीं होता। तो फिर जो जो आप बातें कह रहे हैं यानी मैं बातें कह रहा हूं, वे मौलिक हैं? उधार हैं? वे कैसी हैं?
जब मैंने यह कहा कि विचार मौलिक नहीं होता, तब मैंने यह नहीं कहा कि मौलिक कुछ भी नहीं होता। मैंने कहा, विचार मौलिक नहीं होता। दृष्टि मौलिक हो सकती है। दृष्टि विचार नहीं है, दर्शन विचार नहीं है, अनुभूति विचार नहीं है। वही तो मैं कह रहा हूं, सत्य का अनुभव मौलिक होता है। सत्य का विचार मौलिक नहीं होता। जब आप सत्य को जानेंगे, तो वह जानना बिल्कुल ओरिजिनल है, बिल्कुल मौलिक है। वह उधार नहीं है, बासा नहीं है। इस बात को थोड़ी-सी बारीकी से समझ लेना चाहिए।
जब आप सत्य को जानेंगे तो वह जानना तो मौलिक होगा, लेकिन जब आप सत्य के संबंध में जानते हैं, तब वह मौलिक नहीं होता। सत्य के संबंध में जानना, विचारों को ही जानना है। सत्य को जानना, विचारों को जानना नहीं है। सत्य की अनुभूति तो सदा मौलिक होती है, लेकिन सत्य के शास्त्र कभी मौलिक नहीं होते।
लेकिन दो बातें हैं। अगर मैं सत्य को जान लूं और आपसे कहने आऊं, तो मेरी प्रतीति तो मौलिक होगी, लेकिन मेरी भाषा मौलिक नहीं होगी। भाषा तो मुझे वही उपयोग करनी पड़ेगी, जो आप उपयोग करते हैं। और इसीलिए तो कठिनाई है सत्य को कहने की, क्योंकि सत्य है सदा ताजा और भाषा है सदा बासी। इसलिए ताजे को जब हम बासी में डालते हैं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब कहने में बड़ी मुश्किल होती है। फिर जरूरी नहीं है कि ताजा आप तक पहुंचे। आप तक कैसे पहुंचेगा? आप तक तो बासे शब्द ही पहुंचेंगे। इसलिए तो कहता हूं, मुझे

सुनने से या किसी और को सुनने से सत्य नहीं मिल जायेगा, सिर्फ बासे शब्द ही मिलेंगे।
सत्य अगर खोजना हो तो आपको ही उस जगह खड़ा होने पड़ेगा, जहां सत्य मिलता है।
फिर मैं किसलिए बोल रहा हूं? कोई किसलिए बोल रहा है? कोई किसलिए लिख रहा है? लिखने और बोलने का उपयोग यह नहीं है कि आपको सत्य मिल जायेगा। लिखने और बोलने का एक ही उपयोग है कि अगर आपको तड़प और प्यास भी मिल जाये तो बस काफी है। अगर आपको यह ख्याल भी आ जाये--मेरी सारी परेशानी से--बोलने की, समझाने की, मेरी आंखों से, मेरे उठने-बैठने से, मेरी चुपकी से--अगर इतने से सिर्फ प्यास भी जग जाये तो हो सकता है कि यह आदमी कहीं पहुंच जाये। शायद कोई ऐसी जगह हो, यह ख्याल भी आ जाये। और आप उस ख्याल से, उस प्यास से किसी खोज में चले जायें तो बात काफी हो गयी।
अब तक जो भी कहा गया है, उससे सत्य नहीं मिला। सत्य की प्यास भी जग जाये तो काफी है। प्यास जग सकती है। मैं जो बोल रहा हूं, वह तो भाषा होगी। वही भाषा होगी, जो हम हजारों साल, लाखों साल से, उपयोग कर रहे हैं। वह बासी है। भाषा कैसे ताजी हो सकती है? लेकिन यह हो सकता है कि यह भाषा मैंने किताबों से इकट्ठी की हो और मेरे पास कोई अनुभव न हो, तब उस भाषा के पीछे भी कोई मौलिक अनुभव न होगा। तब वह भाषा मुर्दा होगी, वह लाश होगी।
एक लाश और जिंदा आदमी में क्या फर्क होता है? लाश और जिंदा आदमी में बस इतना ही फर्क होता है कि लाश सिर्फ लाश होती है। उसके पास और कुछ नहीं होता। जिंदा आदमी की भी लाश होती है, लेकिन और कुछ भी होता है, भीतर एक प्राण भी है। अगर मैं शास्त्रों से शब्दों को उठाकर आपसे कह दूं तो वे लाश होंगे--मरे हुए।
लेकिन अगर मेरा भी अनुभव हो तो उनके भीतर एक प्राण भी होगा, एक जिंदा बात भी होगी। लेकिन वह जिंदा बात आप तक पहुंचेगी? बहुत मुश्किल है। हो सकता है, आप तक सिर्फ शब्द ही पहुंचें।
बहुत कठिनाई है, सदा की कठिनाई है। कभी भी हल नहीं होगी। और कृपा है बड़ी परमात्मा की कि हल नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अगर मेरे शब्दों से आपको सत्य मिल जाये तो वह सत्य इतना सस्ता होगा कि उसकी कोई कीमत नहीं रह जायेगी। नहीं, वह सत्य आपको ही खोजना पड़ेगा, क्योंकि उसको खोजने में, उसकी यात्रा में, उसमें डूबने में, उस तक जाने में, जाने की यात्रा में, मिटने में--उस सबमें जो होगा, वही बहुमूल्य है। अगर सत्य उठाकर हाथ में दिया जा सके तो बेईमानी हो जायेगी, अर्थहीन हो जायेगा।
एक मां अपने बच्चे को पैदा करती है और एक मां किसी दूसरे के बच्चे को गोद ले लेती है। कभी फर्क अनुभव किया है कि दोनों में क्या फर्क है? मां जब बच्चे को पैदा करती है, प्रसव की पीड़ा से गुजरती है। असल में उधार बच्चा ले लेना ज्यादा आसान है। प्रसव की पीड़ा से बच जाते हैं। लेकिन उधार बच्चा उधार ही है। और मां कभी मां नहीं बन पाती। बस दिखावा पैदा होता है। बेटा उसे मां कहने लगता है, वह भी अपने को मां मानने लगती है!
लेकिन, एक बहुत बहुमूल्य अनुभव जो मां होने का है, वह उसे कभी नहीं मिल सकता। कैसे मिल सकता है? क्योंकि मां होना, बेटे को उधार लेने से कैसे फलित हो सकता है? मां होने में वह नौ महीने की पीड़ा भी सम्मिलित है, वह प्रसव भी सम्मिलित है, बच्चे को जन्म देने का कष्ट भी सम्मिलित है। उस सारे कष्ट के आधार के बिना मां के होने की स्थिति का जन्म ही नहीं हो सकता। ध्यान रहे, जब बेटा पैदा होता है, तब सिर्फ बेटा ही पैदा नहीं होता, साथ में मां भी पैदा होती है। मां को भी पैदा होना पड़ता है। इधर बेटा पैदा होता है, उधर पीछे मां पैदा होती है। यह घटना एक साथ घटती है, हम आमतौर से समझते हैं कि बेटा ही पैदा हुआ है, इसलिए भूल हो जाती है। तो हम समझते हैं कि बेटे को तो उधार भी लिया जा सकता है--मां बन जायेगी। मां कैसे पैदा होगी? बेटे के पैदा होने के क्षण में मां भी पैदा होती है। इसलिए उधार बेटे से काम नहीं चलता। धोखा हो सकता है।
सत्य उधार नहीं लिया जा सकता। सत्य को पैदा करने की प्रसव पीड़ा से गुजरना जरूरी है।
अनुभूतियां मौलिक ही होती हैं।

सिर्फ अनुभूतियां ही मौलिक होती हैं, विचार मौलिक नहीं होते। लेकिन अनुभूति को भी कहना हो तो विचार का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन अनुभूति को भी कहना हो तो विचार का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन तब विचार केवल वाहन है। वाहन के भीतर जो बैठा है, उसे अगर आप पहचानेंगे तो मौलिक का पता चलेगा। और अगर वाहन को ही पहचानेंगे और भीतर को नहीं पहचान पायेंगे तो आपको भी पता चलेगा कि यह वाहन बहुत बार देखा है, इस वाहन में कोई बात नहीं है। शब्द तो बहुत बार सुने हैं, और बहुत बार पढ़े हैं।
वही तो कहा जा रहा है, जो कहा गया था। गीता में भी वही है, कुरान में भी वही है, बाइबिल में भी वही है, तब आप खो गये। जब मैं कह रहा हूं, जो कह रहा हूं, जिन शब्दों से, जिन विचारों से कह रहा हूं, वे तो मौलिक नहीं हो सकते। वे कभी मौलिक नहीं हो सकते। अगर वे मौलिक हों तो आप समझ ही न पायेंगे। मैं एक ऐसी भाषा बोल सकता हूं, जो बिल्कुल मौलिक हो। मौलिक भाषा का एक ही मतलब होगा कि जिसको मैं ही समझ सकता हूं--और कोई न समझ सके। क्योंकि अगर कोई और समझता है, तो बासी हो जायेगी, क्योंकि किसी और को भी पता है।
मौलिक भाषा तो सिर्फ पागल ही बोल सकते हैं। पागल मौलिक भाषा बोलते हैं, इसलिए तो उसे पागलखाने में बंद करना पड़ता है, क्योंकि वे अपनी भाषा को अकेले ही समझते हैं। कोई और नहीं समझता मौलिक भाषा बोलनी हो तो पागल होना जरूरी है, क्योंकि उसको आप ही समझेंगे। और जिस भाषा को आप ही समझेंगे, उसे बोलने की भी क्या जरूरत है? उसके बिना बोले भी चल सकता है। उसे कोई समझेगा भी नहीं?
भाषा तो बासी होगी, क्योंकि भाषा हमारे बीच का संबंध है। हम सबको समझनी चाहिए। तभी उसका कोई अर्थ है, अन्यथा वह व्यर्थ है। लेकिन अनुभूति मौलिक हो सकती है और होनी चाहिए। अनुभूति ही मौलिक होती है। लेकिन अनुभूति और विचारों में ऐसी ही भूल होती है, जैसे अपने बेटे में और उधार बेटे में भूल होती है।
मैं एक घर में मेहमान होता हूं। उस घर की जो महिला है, उसको बेटा नहीं हुआ। तो उसने, थोड़े-बहुत नहीं--करोड़पति महिला थी--उसने सत्तर अनाथ बच्चे पाल रखे थे! थोड़े-बहुत नहीं, बच्चे बढ़ाती ही चली जाती! कोई भी अनाथ बच्चा आ जाये, तो उसको पालना शुरू कर देती। पूरा घर जो है उनका, एक अनाथालय हो गया! लेकिन फिर भी वह औरत अभी मां नहीं हो पायी! सत्तर बच्चे भी मां नहीं बना पाये!
जब मैं उनके घर मेहमान हुआ तो मैंने कहा कि कब रुकेगी यह यात्रा? सात
सौ बच्चे ले लो तो भी मां नहीं बन पाओगी। मैंने कहा, जब तुमने एक बच्चा लिया, तब तुम मां नहीं बन पायीं, तब तुमने दूसरा ले लिया! अब सत्तर बच्चे इकट्ठे हो गये हैं घर में, लेकिन तुम अभी भी मां नहीं बन पायीं! तुम सात सौ भी ले लो तो भी मां नहीं बनोगी।
उस महिला की आंख में आंसू आ गये, उसने कहा, यह आप क्या कहते हैं! यह तो मुझे भी अनुभव होता है। बच्चे तो मैंने इतने ले लिए, लेकिन मां होने का सुख मुझे नहीं मिल पाया।
मां को जन्म लेना पड़ता है। वह बेटे के साथ ही पैदा होती है। उधार बेटे काम नहीं कर सकते। उधार सत्य भी काम नहीं कर सकता। और विचार और ज्ञान उधार हैं। इसलिए मैं कहता हूं, ज्ञान मार्ग नहीं है। इसे थोड़ा और समझ लें।
सब ज्ञान उधार हैं। जानना उधार नहीं है, ज्ञान उधार है। जानने और ज्ञान में थोड़ा फर्क है। ज्ञान का मतलब नालेज है और जानने का मतलब नोइंग है। जानने की जो मेरी शक्ति है, वह तो मौलिक है। लेकिन जो मैंने ज्ञान इकट्ठा कर लिया है, वह सब उधार है। जानने की शक्ति तो प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी है, लेकिन ज्ञान जो उसने इकट्ठा किया है, वह अपना नहीं है।
और मजे की बात तो यह है कि जानने की शक्ति उतनी ही कम हो जाती है, जितना ज्ञान हम इकट्ठा कर लेते हैं। इसलिए पंडित का ज्ञानी होना असंभव है। इतना वह जान लेता है दूसरों से, इतना उधार--इतना उधार कर लेता है; वह इतना इकट्ठा कर लेता है कि उसकी अपनी जानने की क्षमता दब जाती है। फिर कभी वह जान ही नहीं पाता, क्योंकि जानने के पहले ही उसे बहुत कुछ पता होता है! उसे अपनी तरफ से जानने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती! वह सदा दूसरों की आंख से जान लेता है!

अगर कोई सवाल उसकी जिंदगी में उठता है तो उसके पास उत्तर पहले से होते हैं, सवाल पीछे उठता है! अगर उससे कोई पूछे आत्मा है? तो उसे जानना नहीं पड़ता। वह कहता है,"है"। क्योंकि उपनिषद में लिखा है, क्योंकि गीता कहती है, क्योंकि कृष्ण कहते हैं, महावीर कहते हैं--आत्मा है। यह उत्तर उसका अपना नहीं है। ये उत्तर उधार और बासे हैं। और मजा यह है कि कभी उसने कोई प्रश्न ही ईमानदारी से नहीं पूछा, नहीं तो अपना उत्तर भी आ सकता था। उसने पूछा ही नहीं! उसने पूछा, आत्मा है? यह पूछने के पहले भी वह जान रहा है कि आत्मा है, क्योंकि गीता कहती है, क्योंकि बुद्ध कहते हैं! बुद्ध गलत कहेंगे? गीता झूठ कहेगी? मैं भी नहीं कहता कि वे गलत कहते हैं। लेकिन वह बुद्ध कहते हैं। वे जो भी कहते हैं, अपने लिए कहते हैं। वह तुम्हारे लिए सही नहीं, मेरे लिए सही नहीं। वह उनके लिए सही है, वे जानकर कहते हैं।
बुद्ध के पास एक आदमी आया, वह गाय चरने वाला एक चरवाहा था। उसने बुद्ध
से कहा कि मुझे भी दीक्षा दे दो। बुद्ध ने कहा, तेरी मर्जी है तो आ जा, लेकिन मैंने तेरे संबंध में एक खबर सुनी है। मैंने सुना है कि तू नदी के किनारे बैठकर दूसरों की गाय-भैंसें गिना करता है। उसने कहा, हां, यह मेरी सदा की आदत है। मुझे गांव भर की गाय-भैंसें की संख्या मालूम है।
बुद्ध ने कहा, तेरी अपनी भी कोई गाय-भैंस है?
उसने कहा, वह तो मुझे ख्याल ही नहीं आया! दूसरों की गिनती में मैं इतना उलझा रहा कि यह सवाल ही नहीं उठा कि अपनी भी कोई गाय-भैंस है। और सारे गांव की गाय-भैंस गिनते-गिनते मुझे तो ऐसा लगने लगा है कि ये सभी गाय-भैंसें मेरी हैं। आप भी कैसे सवाल उठाते हैं? यह तो मेरे मन में सवाल ही नहीं उठा। बुद्ध ने कहा, दूसरों की गाय-भैंसें कितना ही गिन ले, उससे तेरी गाय-भैंस नहीं हो जायेंगी। हां, इतना हो सकता है कि दूसरों की गाय-भैंसें गिनते-गिनते तुझे सवाल ही भूल जाये कि अपनी भी कोई गाय-भैंस है!
बुद्ध ने कहा, दीक्षा तो तू ले ले, लेकिन ध्यान रख, दूसरों के सत्यों
को मत गिनता। नहीं तो पुरानी आदत गाय-भैंस गिनने की यहां ले आये और गिनता रहे कि बुद्ध क्या कहते हैं? कृष्ण क्या कहते हैं? और राम क्या कहते हैं? इसकी गिनती में मत पड़ जाना। तू क्या कहता है? तेरा भी कुछ कहना है इस जगत में? तू भी पैदा हुआ है तो कुछ कहने योग्य तेरे पास है?
अगर हम अपने से पूछें कि मेरे पास भी कुछ कहने योग्य है, जो मैंने जाना? तो हम एकदम दीन-दरिद्र मालूम पड़ेंगे। हमारे पास कहने योग्य कुछ नहीं होता। हमने कुछ जाना नहीं। इस दरिद्रता को छिपाने के लिए हम दूसरों के शब्दों को दोहराये चले जाते हैं, रोज सुबह उठकर गीता पढ़ लेते हैं, कंठस्थ कर लेते हैं, श्लोक दोहराये चले जाते हैं! और धीरे-धीरे यह भूल ही जाते हैं कि हम दूसरों की गाय-भैंस गिन रहे हैं! कृष्ण की गाय-भैंस गिनने से क्या फायदा हो सकता है? कृष्ण को हुआ होगा, मुझे क्या हो सकता है? हां, इतना हो सकता है कि मैं भूल जाऊं कि अपना भी सवाल है, और अपना ही उत्तर चाहिए।
ध्यान रहे, सवाल मेरा और उत्तर आपका, काम नहीं चलेगा। सवाल मेरा है तो उत्तर भी मेरा चाहिए। एकाध ऐसा सवाल है, जिसका मेरा उत्तर हो; जो मेरी जिंदगी से आ गया हो, जो मेरे भीतर से उठा हो, जो मेरे प्राणों से निकला हो, जिसका बीज मेरे भीतर अंकुर बना हो, जो मेरा हो? अगर मेरे पास अपना कोई उत्तर नहीं है तो सारी दुनिया के उत्तर इकट्ठे करके भी कुछ भी नहीं होने वाला। मैं दीन ही रहूंगा, दीन ही मरूंगा--गरीब, भिखमंगा।
और ध्यान रहे, धन के संबंध में भिखमंगा होना, इतना बुरा नहीं। क्योंकि भिखमंगा आखिर अगर आपके द्वार पर हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है तो ज्यादा से ज्यादा अपना पेट ही भरता है, दो रोटी ले लेता है। लेकिन ज्ञान के संबंध में जो भिखमंगे हैं, वे अपनी आत्मा को भी भर लेते हैं!
हम सड़क पर भीख मांगते आदमी को तो कहते हैं, बुरा है। तेरे पास हाथ-पैर मजबूत हैं, क्यों भीख मांगता है? लेकिन कभी हम अपने संबंध में नहीं सोचते कि मेरी चेतना पूरी ठीक है--मैं क्यों भीख मांग रहा हूं? क्यों कृष्ण के, राम के, बुद्ध के दरवाजे पर खड़ा हूं?
और ध्यान रहे, पेट भर लेना इतना बुरा भी नहीं है, क्योंकि पेट यहीं छूट जायेगा। आत्मा भर लेना बहुत बुरा है, क्योंकि वह आगे भी साथ आने वाली है।

मैंने भीख मांगकर शरीर में खून बनाया था, कि कमाकर खून बनाया था, मरघट पर दोनों शरीर एक से जल जायेंगे। लेकिन जो आत्मा, मैंने भीख मांगकर भर ली है, वह तो मेरे साथ होगी। लेकिन सरल दिखता है वह उपाय।
ज्ञान मार्ग बहुत सरल दिखता है। दिखता यह है कि ज्ञान इकट्ठा कर लो। दूसरों ने जान लिया है, तो हमें जानने की जरूरत नहीं! हम उनको याद कर लें, कंठस्थ कर लें, और मान लें कि हमने भी जान लिया! उस ज्ञान में जो दब जायेगा, उसकी जानने की, नोइंग की क्षमता धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है।
जो आदमी दूसरों के पैरों से चलेगा, वह अपने पैरों से अगर चलना भूल जाये तो आश्चर्य तो नहीं! और जो आदमी दूसरों की आंखों से देखेगा, अगर उसकी अपनी आंखें देखना बंद कर दें तो उसमें कोई हैरानी की बात नहीं। अगर अपनी आंखों से देखना है तो अपनी ही आंखों से देखना पड़ेगा। और अगर अपने पैरों में चलने की ताकत बनाये रखनी है तो अपने ही पैरों से चलना पड़ेगा। और अगर अपनी चेतना को यात्रा पर ले जाना है तो अपनी ही चेतना को ले जाना पड़ेगा। ज्ञान ने बड़ा धोखा दिया है। और आश्चर्य तो यह है कि ज्ञान का धोखा इतना सूम है कि पता नहीं चलता। ज्ञानी और पंडित में फर्क ही नहीं कर पाते हम! पंडित अकसर ज्ञानी होने का धोखा दे जाता है। ऐसा नहीं कि दूसरों को दे जाता है। दूसरों को दे दे, तो कोई हर्ज नहीं है, अपने को भी दे जाता है! उसको सबसे बड़ा धोखा खुद को हो जाता है! उसको लगता है कि मैंने तो जान लिया! कितने लोग मेरे पास आते हैं, उन्हें देखकर मेरा हृदय रोने लगता है। वे
जो बातें कर रहे हैं, वे सारी की सारी बातें उन्होंने कहीं से सीख ली हैं। और उन्हें इस भांति कह रहे हैं कि जैसे ये बातें उनकी है! और फिर उसको झिंझाड़ो, हिलाओ, उनसे कहो कि ये बातें आपकी नहीं हैं तो उनका मन बड़ा नाराज होता है! नाराज होगा ही। अगर किसी आदमी को यह ख्याल हो कि मैं अमीर हूं, और हम बात दें कि तुम्हारे खीसे खाली हैं तो यह नाराज होगा।
और वे गुरुओं के पास जा रहे हैं--इसलिए कि उनका ज्ञान और बढ़ जाये; और एक्युमुलेट कर लें, और संग्रह कर लें; और कुछ जान लें। एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जा रहे हैं। दूसरे गुरु से तीसरे गुरु के पास जा रहे हैं! गुरुओं को खोजते फिर रहे हैं! कहां से क्या मिल जाये, उसे इकट्ठा कर लें! और फिर सब कचरे को इकट्ठा करके सोचेंगे कि अपने पास भी कोई संपत्ति है! कल वे भी एक गुरु हो जायेंगे! और उसके पास भी लोग आने लगेंगे! और यह वीसियस सर्किल, दु-ष्टचक्र बहुत लंबा है। नहीं, ज्ञान इकट्ठा कर लेने से कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता।
और बुद्धि सिर्फ इकट्ठा कर सकती है, जान नहीं सकती। बुद्धि सिर्फ स्मृति बन सकती है, जान नहीं सकती। इसलिए बुद्धि सिर्फ एक यंत्र है, एक मैकेनिकल डिवाइस है। और बहुत आश्चर्य नहीं है कि अब तो कम्प्यूटर बन गया। अब तो बहुत जल्दी आपको अपने भीतर बुद्धि रखने की जरूरत न होगी, खीसे में कम्प्यूटर भी रख सकते हो। जरूर नहीं होगा कि भीतर याद करें चीजों को। एक कम्प्यूटर को फिट कर देंगे और वह जवाब दे देगा!
जब भी सवाल उठे कि आत्मा है? अपने कम्प्यूटर को खीसे से निकालकर पूछ लेना--आत्मा है? वह कहेगा, आत्मा है! गीता में यह लिखा है, उपनिषद में यह लिखा है! वह सब बता देगा। आप प्रसन्न होकर कम्प्यूटर को खीसे में रख लेना और अपनी यात्रा पर निकल जाना।
बुद्धि भी यही कर रही है। बुद्धि कम्प्यूटर है। बुद्धि स्मरण का एक उपाय है, जिसमें आपने सब स्मरण कर रखा है। कभी अपने ख्याल किया कि आप बुद्धि नहीं हैं? आप बुद्धि से बहुत अलग हैं। बहुत बार ऐसा हो जाता है, सुबह आप मुझसे मिलने आये, और आप मुझसे पूछते हैं, पहचाना? मैं सोचता हूं, देखा तो है कहीं। कहां देखा होगा? मैं अपने कम्प्यूटर से पूछता हूं, अपनी बुद्धि से पूछता हूं--कहां देखा होगा?
मैं तो अलग हूं--जो इस चक्कर में पड़ गया कि इस आदमी को कभी देखा कि नहीं देखा! अब मैं अपने कम्प्यूटर से, अपनी मशीन से पूछता हूं, जल्दी खोजो इस आदमी को, कहीं देखा है? और वह आदमी कह रहा है, पहचाना नहीं अभी तक आपने मुझे! अब मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं अपनी बुद्धि से कहता हूं, जल्दी पहचानो। यह आदमी कहीं देखा है, यह चेहरा ख्याल में आता है--यह बाल, यह शक्ल, यह नाक। बुद्धि कहती है, हां, कहीं देखा है, मैं खोज करती हूं।

वह बुद्धि एक अलग यंत्र है, जो जल्दी से खोजबीन करेगा। और आपने बहुत जल्दी की तो वह घबरा जायेगा। यंत्र के साथ जल्दी नहीं करनी चाहिए, नहीं तो गड़बड़ हो जाती है। मगर आपने बहुत जल्दी की और कहा कि जल्दी पहचानिये तो सब गड़बड़ हो जायेगा। अगर आपने थोड़ी-सी मुझे फुरसत दी--और मैं कहूं कि बैठिये- बैठिये, जल्दी क्या है? पहचानता हूं, चाय पी लीजिए। दूसरी बातों में आपको लगाया, तब तक अपना कम्प्यूटर काम कर ले! क्योंकि उसके पास हजार स्मृतियों का जाल है, उसको खोजना पड़ेगा। लाखों चेहरे हैं, लाखों नाम हैं, उसको जल्दी से खोजना पड़ेगा कि यह कौन आदमी है? जल्दी-जल्दी शक्ल का मिलान करो। वह यंत्र काम करेगा।
इसलिए अकसर ऐसा होता है कि आपको किसी का नाम न याद आये तो एकदम से नाम याद मत करिये, नहीं तो बड़ी दिक्कत हो जायेगी। थोड़ी देर के लिए कुछ और काम करने लगिये। बुद्धि थोड़ी देर में काम करके जबाब दे देगी कि यह रहा नाम! आप बगीचे में चले जाइये, गड्ढा खोदने लगिये, चाय पीने लगिये, सिगरेट पीने लगिये, कुछ भी करिये। बुद्धि को थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिये, ताकि यंत्र जल्दी से अपना काम पूरा कर ले। उसको वक्त लगेगा, समय लगेगा। मशीन है, मशीन को वक्त लगता है--वह एकदम से कैसे उत्तर दे दे! वह थोड़ी देर में बता देगा कि यह नाम रहा। अकसर ऐसा होता है कि दिन में हम याद नहीं कर पाते, रात सोते वक्त याद आ जाता है! दिन भर याद नहीं कर पाते, रात नींद में याद आ जाता है! सुबह होने पर पता चलता है, सब ठीक हो गया!
मैडम क्यूरी, जिसको नोबल प्राइज मिला, जिन सवालों को हल करने में उसे बड़ी प्रसिद्धि मिली, वे सवाल उसने सब नींद में हल किये! क्योंकि जब वह सवाल हल करने के लिए वह बहुत उत्सुक हो जाती तो मशीन गड़बड़ा जाती है! क्योंकि अति तीव्रता के साथ मशीन मुश्किल में पड़ जाती। आप कहते, जल्दी करो! मशीन तो अपनी व्यवस्था से काम कर सकती है।
तो वह सो जाती थककर रात। जब उसे एक दफा तरकीब मालूम पड़ गयी तो उसने पूरी जिंदगी उपयोग किया। वह रात, शाम तक थक जाती, सवाल हल करते। सवाल हल न होता तो कागज-कलम बिस्तर के किनारे रखकर सो जाती। रात नींद में उठती और सवाल लिख देती और फिर सो जाती!
आपको जानकर हैरानी होगी कि दुनिया के बहुत कठिन सवालों का जवाब आपकी बुद्धि खोज ला सकती है, अगर उसको फिट किया गया हो। अगर उसको पहले से भोजन दे दिया गया है तो वह सवाल खोज लायेगी। भोजन ऐसा है, जैसे हम बच्चों को सिखा रहे हैं, जो हम स्कूल में सिखा रहे हैं--वह भोजन है! हम बच्चे को सिखा रहे हैं--कि एक से नौ तक की गिनती होती है, एक से दस तक गिनती होती है। दो और दो चार होते हैं। तीन और तीन का गुणा करने से नौ होता है। ये सब हम फिट कर देते हैं। फिर कल हम उनसे पूछते हैं कि 300 और 300 का गुणा करने से कितना होता है? और वह फौरन उत्तर निकाल लाता है, क्योंकि उसके पास सारा यंत्र तैयार है। कम्प्यूटर भर दिया गया है। वे सब उत्तर उसके पास तैयार हैं। वह उत्तर खोज लाता है।
बुद्धि एक यंत्र है। और आप बुद्धि से बिल्कुल अलग हैं।
मेरे एक मित्र हैं, ट्रेन से गिर पड़े। सिर को चोट लग गयी और सारी स्मृति खो गयी। यंत्र खराब हो गया। वे अब भी ठीक हैं, लेकिन हम उनको अब ठीक नहीं मानते। अब उनको कोई ठीक नहीं मानता। मैं उनके पास गया, बचपन में मेरे साथ पढ़े थे। उनके गांव गया, उनके घर गया। वह मुझे देखने लगे, जैसे उन्होंने मुझे कभी न देखा हो, क्योंकि वह यंत्र टूट गया, जिसमें रिकार्ड है। स्मृति उनकी खराब हो गयी। वह मुझे पूछने लगे, आप कौन हैं? मैंने कहा, मुझे पहचाना नहीं? उन्होंने कहा, मैं किसी को भी नहीं पहचानता?
राहुल सांकृत्यायन एक बड़े पंडित थे, महापंडित थे। आखिरी-आखिरी वक्त दिमाग का कम्प्यूटर खराब हो गया। दिल्ली के अस्पताल में बंद थे। बड़े पंडित थे। बड़े पंडितों के कम्प्यूटर कभी भी खराब हो सकते हैं, क्योंकि ज्यादा काम लेना पड़ता है। इतना काम लिया, इतनी किताबें लिखीं--इतना काम लिया कि दिमाग जवाब दे गया। फिर उसकी सीमा के बाहर बात चली गयी। आखिर में हालत उनकी यह हो गयी थी कि उन्हें अ, ब, स, फिर से सीखने पड़े! क, ख, ग; एक और एक दो, दो और दो चार--ये आखिर में मरते वक्त फिर से सीख रहे थे! लेकिन वे थे। क्योंकि सब भूल गये, वह स्मृति जबाब ही दे गयी! मशीन ने काम ही बंद कर दिया!

आप इस बात को ठीक से समझ लेना कि आप जिसको अपना ज्ञान कहते हैं, वह यांत्रिक संग्रह है आपके पास, जिसका आपको उपयोग करना पड़ता है। वह जरूरी है। जिंदगी के काम के लिए बहुत जरूरी है। अभी मुझे घर वापिस लौटना है तो मुझे पता होना चाहिए कि मैं कहां ठहरा हुआ हूं, नहीं तो मैं वापिस कैसे लौट सकूंगा। बिल्कुल जरूरी है, लेकिन परमात्मा के पास पहुंचने के लिए उस यंत्र की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि परमात्मा के पास पहुंचने के लिए-- इसलिए जरूरत नहीं है उस यंत्र की, क्योंकि ना तो कोई पता है, ना तो कोई ठिकाना है, ना तो कोई मकान है! और परमात्मा के पास से जब हम आये हैं, तो हम उससे पहले हैं। कम्प्यूटर बाद में विकसित हुआ है। वह जो हमारा दिमाग है, वह बहुत बाद का विकास है। वह जिंदगी की जरूरत के लिए विकास है।
लेकिन हमें पीछे लौटना है, ओरिजिनल सोर्स पर लौट जाना है, जहां से हम आये हैं। परमात्मा वहां है। सब छोड़कर लौट जाना है। वहां कोई इस यंत्र की जरूरत नहीं। फिर यह यंत्र वहां काम भी नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा की हमारी कोई स्मृति नहीं, उससे हमारा कभी मिलन नहीं हुआ। यह यंत्र तो वही काम कर सकता है, जिससे हमारा कभी मिलन हुआ हो, पहचान हुई हो।
अगर परमात्मा आज आपको मिल जाये और कंधे पर हाथ रखकर कहे कि भाई जान! पहचाने? तो आप कहेंगे, नहीं पहचाने! आप अपने कम्प्यूटर से पूछेंगे, पहचाना? वह कहेगा नहीं, यह आदमी कभी मिला नहीं है, यह कौन है? हां, अगर कृष्ण भगवान मिल जायें तो आप पहचान लेंगे, क्योंकि वह कम्प्यूटर में भरे हुए हैं। उसे हम मंदिर में देख रहे हैं, बांसुरी बजाते हुए खड़े हैं। अगर वह ऐसी बांसुरी बजाते मिल जायें तो आप पहचान लेंगे। हां, यह आदमी पहचाना मालूम पड़ता है। कम्प्यूटर उत्तर दे देगा। हां, यह आदमी ठीक लग रहा है, जरा मोरपंख तिरछा लगाया है, बाकी ठीक है।
लेकिन क्राइस्ट को मानने वाला न पहचान पायेगा! वह कहेगा, यह कौन आदमी है? कैसा मोरपंख लगाया है? यह क्या मामला है? यह कौन है?
आपको अगर जरथुस्त्र मिल जायें तो आप नहीं पहचान पायेंगे, लेकिन जरथुस्त्र को मानने वाले पहचान जायेंगे।
नहीं, जिसको आप पहचान लें, वह भगवान नहीं है, क्योंकि भगवान की हमारे पास कोई स्मृति ही नहीं है। हमारे कम्प्यूटर ने तो भगवान जाना
नहीं है। हमारी स्मृति के यंत्र के पास भगवान की कोई स्मृति नहीं, जिसको कि बता दें, हां, यह रहा भगवान। और अगर आप पहचान लें, रिकग्नाइज कर लें कि ठीक है, यही है, तो आप समझ लेना कि यह भगवान नहीं है। यह आपकी स्मृति का, आपके ज्ञान का ही कुछ मिला-जुला खेल है। जिसको आप बिल्कुल न पहचान पायें, जिसके सामने खड़े होकर कम्प्यूटर जवाब दे दे कि बिल्कुल नहीं पहचान में आता। इसको तो कभी जाने नहीं, यह कौन है? भीतर आप खोजें और कोई उत्तर न आये, जिसको रिकग्नाइज न कर सकें आप, पहचान न सकें। तब आप समझना कि किसी दरवाजे पर आ गये, कहीं पहुंचे, किसी मंदिर पर, जहां कि अनजान, अज्ञात, अननोन खड़ा है। जिसको हम पहचानते ही नहीं।
भगवान को पहचाना नहीं जा सकता, क्योंकि भगवान को हम जानते नहीं। इसलिए अगर आदमी आपके पास आये और कहे कि मैंने भगवान को पा लिया है तो आप समझना कि उसने उन्हीं भगवानों को पा लिया होगा, जो उसकी स्मृति पहचान लेती है। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, भगवान की पहचान के लिए स्मृति, बुद्धि और ज्ञान का कोई यंत्र काम नहीं देगा। वह अज्ञान है। वह सदा अज्ञात है। इसलिए तो रहस्य है।
रहस्य और मिसटरी का मतलब क्या होता है? मतलब यह होता है कि जिसको हम न पहचान पायें। जिसके सामने हम खड़े हो जायेंगे अवाक--आंखें खुली रह जायेंगी, झपकना मुश्किल हो जायेगा। मन कहेगा, नहीं पहचानते। बुद्धि कहेगी, नहीं जानते। भाव कहेंगे, कोई संबंध नहीं। कर्म कहेगा, हमारी कोई सामर्थ्य नहीं। सारा व्यक्तित्व कहेगा--कुछ भी नहीं; हम कुछ जानते नहीं--पहचानते नहीं, यह कौन है? यह क्या है? यह कैसा है? जब आपका अहंकार कहेगा, अपनी तो कोई गति नहीं, तभी आपका सिर झुक जायेगा उन चरणों में। उस अज्ञात के चरणों में आप गिर पड़ेंगे।
समर्पण आपके करने से नहीं होगा। आपके सब यंत्र जवाब दे देंगे, आपका कोई यंत्र सहयोगी नहीं होगा, तब आप अचानक पायेंगे कि चरणों में गिर गये

हैं--अज्ञात के। खो गया वह आदमी, जो आप थे--यंत्रों का जोड़। और बच गया सिर्फ वही, जो सारे यंत्रों के पीछे छिपा है। वही बच गया।
इसलिए जो जान लेता है परमात्मा को, वह कहेगा नहीं कि मैंने जान लिया। नहीं कहेगा! और अगर कहता हो तो उसने जाना नहीं होगा। अगर आप उसे पूछने जायें कि बताओ, परमात्मा को जान लिया? तो हो सकता है, वह हंस दे। हो सकता है, चुपचाप आपकी तरफ देखे। लेकिन यह न कह सकेगा कि हां, जान लिया, क्योंकि हां कहने की भी तो स्थिति हमारी नहीं। हां कौन कहेगा उसके लिए? कौन सेंकशन देगा? कौन सर्टीफिकेट देगा उसके लिए कि हां यही है। नहीं, वह भी नहीं। जीसस को सूली पर लटकाने के पहले जिस गवर्नर, वाइसराय के द्वारा सूली
दी गयी उसे--पायलट के द्वारा। उस पायलट ने आकर जीसस को सूली लगने के पहले, पास में आकर पूछा कि एक सवाल मुझे भी पूछना है, मरने के पहले जवाब दे जाओ। जीसस ने कहा, क्या सवाल है?
पायलट ने पूछा, व्हाट इज ट्रुथ? सत्य क्या है?
उस पायलट ने सोचा कि यह आदमी मर रहा है, आखिरी वक्त है, और लोग कहते हैं, इसे पता है, इससे पूछ लेना चाहिए। जीसस चुप रह गये!
उस आदमी ने कहा, जवाब दो, व्हाट इज ट्रुथ?
फिर भी जीसस चुप रह गये! शायद उन्होंने आंख से कहा होगा, होठों के भीतर बिना शब्दों के कहा होगा, प्राणों में कहा होगा। लेकिन पायलट तो सिर्फ आदमी की भाषा समझता था। कम्प्यूटर उसका जो पहचान ले, वही भाषा समझता था। उसने कहा, नहीं बोलता यह आदमी, कुछ भी जानता नहीं मालूम पड़ता। सूली दे
दी गयी!
जीसस ने उत्तर नहीं दिया! हां, कोई पंडित होता, जीसस का कोई पादरी होता--वह भी उत्तर दे देता! वह भी कह देता कि बाइबिल में ऐसा लिखा है। सत्य यह है। जीसस ने उत्तर नहीं दिया और जीसस का पादरी उत्तर दे देता है! जरूर कहीं कोई फर्क है। जीसस जानते हैं और पादरी नहीं जानते।
सत्य क्या है--यह आदमी की सामर्थ्य है कि कह सके? परमात्मा क्या है--यह आदमी की सामर्थ्य है कि पहचान सके?
वहां तो हमारी सारी व्यवस्था गिर जाती है, क्यॉस हो जाती है, अराजकता
हो जाती है। सब पहचान गिर जाती है, सब शब्द खो जाते हैं। भाषा खो जाती है। वह आदमी भी खो जाता है, जो कल तक खोज रहा था। सन्नाटा और शून्य रह जाता है। वहां कौन पहचाने? किसको पहचाने? पहचान भी ले तो कहां स्मरण करे? कहां उत्तर दे? किसको बताये? वहां सब खो जाता है। नहीं, ज्ञानी वहां नहीं पहुंचते।
और वहां अज्ञानी पहुंच जाते हैं। अज्ञानी से मेरा मतलब? अज्ञानी से मेरा मतलब है--जो ज्ञान ही व्यर्थ हो गया; ऐसा जान लेता है। जो ज्ञान से भी ऊब जाता है। जो देखता है, ज्ञान में भी कुछ सार नहीं। जो ज्ञान को भी कहता है, ठीक है, स्मृति ही संभाल ले। ठीक है। ऐसा ज्ञान काम-चलाऊ है। जिंदगी की जरूरतें पूरी करता है, लेकिन कहीं ले नहीं जाता। ज्ञान कोई मार्ग नहीं है। लेकिन ज्ञान से भटकना जरूरी है। जरूरी इसलिए है कि यह पता भी न चलेगा। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि वे सौभाग्यशाली हैं कि उन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े। और मैं कहता हूं कि मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैंने शास्त्र पढ़े। क्योंकि शास्त्र पढ़कर मुझे पक्का पता लग गया कि वहां कुछ भी नहीं। बिना पढ़े पक्का पता नहीं लग सकता।
शास्त्र पढ़ लेना जरूरी है, ताकि पता चल जाये कि कुछ भी नहीं है। ज्ञान
को भी खोज लेना जरूरी है, ताकि पता चल जाये कि यहां कुछ भी नहीं है, ताकि वह दिशा समाप्त हो जाये। मेरे लिए ज्ञानमार्ग का एक ही उपयोग है। पढ़ना आप जरूर--पढ़ लेना ठीक से, ताकि मन में कहीं यह सवाल न रह जाये कि पता नहीं शास्त्र में कुछ होता है। उसे देख लेना ठीक से। वहां कुछ भी नहीं है। शास्त्रों का एक ही उपयोग है--शास्त्र पढ़ने से शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन वह व्यर्थ हो जाना बड़ा भारी उपयोग है। क्योंकि तब वह झंझट समाप्त हो जाती है। तब आप ज्ञान के चक्कर में नहीं रहते। तब आप जानने की दिशा में बढ़ते हैं। तब आप ज्ञान की फिक्र छोड़ देते हैं। तब आप एक बात जान लेते हैं कि दूसरे से नहीं हो सकेगा, दूसरा नहीं दे सकेगा, दूसरे से नहीं मिल सकेगा।

यह इतनी बड़ी घटना है कि अगर मुझे यह पक्का ही पता चल जाये कि दूसरे से नहीं मिल सकता है तो मैं थ्रोन बैक, अपने पर ही फेंक दिया गया। अब तैरना है, डूबना है, मरना है--मुझे ही। अब कुछ रास्ता नहीं, कोई दूसरा नहीं दे सकता। कोई दूसरा नहीं दे सकता। और जिस दिन मुझे यह पक्का ख्याल हो जाये कि कोई दूसरा देने वाला नहीं है, उस दिन मेरे भीतर इतनी ऊर्जा का जन्म होता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं! वह तभी तक रुकी रहती है--जन्म से--जब तक मैं दूसरों के कंधे का, हाथ का सहारा लेता हूं।
अगर आपको समुद्र में फेंक दिया गया हो। कोई बचाने वाला न हो, कोई नाव न हो, कोई सहारा न हो--क्या करियेगा? हाथ-पैर नहीं तड़फड़ाइयेगा? तैरने का मतलब क्या है? तैरने का मतलब सिर्फ हाथ-पैर फेंकना है। और अब आदमी हाथ-पैर फेंकता है तो थोड़ी व्यवस्था से फेंकने लगता है। पहले अव्यवस्था से फेंकता था, फिर व्यवस्था से फेंकने लगता है।
लेकिन तैरने की एक शर्त जरूरी है कि दूसरे का सहारा नहीं। अगर दूसरे
का सहारा हो तो कोई तैरना नहीं सीख सकता है। जो तैरना सिखाते हैं, वे कुछ भी नहीं सिखाते। वे सिर्फ एक काम करते हैं कि आपको उठाकर पानी में फेंक देते हैं। सहारा नहीं देते हैं और खड़े होकर किनारे पर देखते रहते हैं। कोई डूबना नहीं चाहता--हाथ-पैर फेंकने लगता है। और तैरना सबको मालूम है। एक दफे हाथ-पैर फेंकने की सिचुएशन पैदा होनी चाहिए। सिर्फ स्थिति आ जानी चाहिए कि हाथ-पैर फेंकना पड़े। सब आदमी तैरना जानते हैं।
तैरना कोई कला है? तैरना सबका स्वभाव है। पटक दो पानी में, सभी लोग हाथ-पैर फेंकने लगेंगे। फर्क इतना ही पड़ता है कि जैसे-जैसे हाथ-पैर फेंकते हैं, वैसे-वैसे हाथ-पैर ढंग से फेंकने लगते हैं। चार-छह दिन बाद व्यवस्था से फेंकने लगते हैं और कोई फर्क नहीं पड़ता।
धर्म सिर्फ उन्हें उपलब्ध होता है, जो जीवन के सागर में सब सहारे छोड़कर डूबने की तैयारी कर लेता है, फिंक जाता है।
मैं गुरु उसको कहता हूं, जो आपको फेंक दे और घर की तरफ चला जाये! फिर लौटकर भी न देखे कि आपका क्या हुआ। और अगर गुरु आपका हाथ पकड़ कर चलाये तो वह गुरु आपका दुश्मन है। वह आपको मार डालेगा, क्योंकि आप कभी तैरना न सीख पायेंगे, क्योंकि कभी आप अपने ऊपर न फेंके जायेंगे।
ज्ञान इतना ही कर दे अगर, कि आपको फेंक दे पानी में और आपको पता चल जाये कि कोई शास्त्र न बचायेगा, कोई ज्ञान न बचायेगा। कुछ भी नहीं हो सकता इससे, तब आपकी जिंदगी में एक क्रांति शुरू हो जायेगी।
इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं--ज्ञान मार्ग नहीं है। ज्ञान एक भटकन है। जब दिखायी पड़ जाता है तो आप उसके बाहर हो जाते हैं। और ऐसा नहीं है कि ज्ञान की भटकन जब दिखायी पड़ जाती है तो आपको फिर मीलों पीछे लौटना पड़ता है, क्योंकि आप मीलों चले गये! ऐसा नहीं है। जिस दिन आपको दिखायी पड़ता है कि ज्ञान का मामला बेकार है, आप तत्क्षण बाहर हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि मैं हजार मील चला आया ज्ञान के रास्ते पर--मैंने गीता सीख ली, कुरान सीख लिया, उपनिषद सीख लिया तो अब मुझे भूलना पड़ेगा। नहीं, भूलने का सवाल नहीं, भूलने की जरूरत भी नहीं। सिर्फ इतना ही जानना काफी है कि यह जो याद मैंने कर लिया है, यह ज्ञान नहीं, यह सिर्फ स्मृति है। बात खत्म हो गयी। यह मेरा जानना नहीं है, यह किसी और का जानना है। यह उधार है, बासा है। मेरा नहीं है, मेरी अनुभूति नहीं है, मौलिक नहीं है, इतना जान लेना काफी है। कोई गीता को भूलने की जरूरत नहीं है।
एक सन्न्न मेरे पास आते थे। वे मेरी बातें सुनते थे। एक दिन वे आये और उन्होंने कहा कि आपकी बातें मुझे इतनी जंच गयीं कि मैं गीता और उपनिषद वगैरह जो भी मेरे पास थे, उन सबको बांधकर कुएं में फेंक आया।
मैंने कहा, कुएं ने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा? अब कुंआ दिक्कत में पड़ेगा, जितनी दिक्कत में तुम पड़े थे। अब वह गीता और उपनिषद पढ़ने लगा तो मरा! अब उस कुएं का क्या होगा? वह कहां फेंकेगा? उसके पास तो हाथ-पैर भी नहीं! तुमने कुएं को क्यों दिक्कत में डाला?
उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! मैं तो सोचता था कि आप बड़े खुश होंगे। मैंने कहा यह खुश होने का सवाल नहीं, अगर तुम गीता और उपनिषद को कुएं में फेंककर आते हो, इससे भी पता चलता है कि तुम अभी उससे मुक्त नहीं हुए।

अभी रोग मौजूद है। अभी तुमको पहले ऐसा लगता था कि गीता के ऊपर सिर रखो तो ज्ञान मिलेगा! अब तुमको ऐसा लगता है कि गीता को कुएं में फेंको तो ज्ञान मिलेगा! लेकिन मिलेगा गीता से ही! अभी कुएं में फेंको या सिर पर रखो! शास्त्रों को जला नहीं डालना है। वे बड़े उपयोगी हैं। उनको फेंक नहीं आना कुओं में, क्योंकि कुओं का कोई कसूर ही नहीं है। ये आदमी ने पैदा किये हैं तो आदमी को ही ढोना पड़ेंगे। कुएं क्या करेंगे? कुओं को क्या मतलब है? नहीं, न फेंक आना है, न जला देना है। शास्त्र बड़े कीमती हैं। और उनकी सबसे बड़ी कीमत यह है कि उनको आप पढ़ेंगे तो आप उनसे मुक्त हो जायेंगे। जानेंगे कि नहीं कुछ मिला। तो शास्त्र पढ़ें, ज्ञान की खोज करें, लेकिन पूरे वक्त जांच करते रहें कि कुछ मिला? कुछ पाया? शब्द ही शब्द, शब्द ही शब्द--सत्य कुछ भी नहीं! और जब शब्दों का जाल घेर ले और दिखायी पड़ जाये कि सत्य तो कुछ भी नहीं मिला--शब्द ही शब्द मिल गये!
एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
एक आदमी था, अदभुत आदमी था--लारेंस। वह अरेबिया में, बहुत दिन तक अरब में आकर रहा। अरब की क्रांति में उसने भाग लिया। और धीरे-धीरे अरब लोगों के साथ उसका इतना प्रेम हुआ कि करीब-करीब वह अरबी हो गया। फिर अपने कुछ अरब मित्रों को लेकर पेरिस गया दिखाने। पेरिस में एक बड़ा मेला भरा हुआ था तो उसने कहा कि चलो तुम्हें पेरिस दिखा लाऊं। एक बड़े होटल में ठहराया। जाकर पेरिस घुमाया--एफिल टावर दिखाया, म्युजियम दिखाया, सब बड़ी-बड़ी चीजें दिखायीं! लेकिन अरबों को किसी चीज में रस न था! उनको रस एक अजीब चीज में था, जिसको आप सोच ही नहीं सकते! वे कहते, जल्दी करें, जल्दी होटल वापस चलें! मेले में दिखाने ले गया। एग्जीबीशन दिखायी--बड़ी-बड़ी चीजें थीं। एफिल टावर दिखाया। वे कहते कि जल्दी वापस चलो और जल्दी से जाकर बाथरूम में घुस जाते! उसने कहा, मामला क्या है!
सिनेमा में ले जायें तो वे बीच में कहें कि जल्दी वापस चलो और जाकर सबके सब, जो आठ-दस साथी थे, वे सब अपने-अपने बाथरूम के अंदर हो जाते! उसने कहा कि मामला क्या है!
पता चला कि मामला यह था--उनके लिए सबसे चमत्कार की चीज थी--टोंटी नल की! रेगिस्तान में रहने वाले लोग थे, उनके लिए इतना बड़ा मिरेकल था वह कि टोंटी खोलो और पानी बाहर! वहां तो बाथरूम इतना बड़ा चमत्कार था--क्योंकि अरब में पानी की बड़ी तकलीफ थी और उनकी समझ में नहीं आता था कि यह हुआ कैसे! कि यह होता कैसे है? वे तो दिन में बार-बार बाथरूम में जाकर टोंटी खोलकर देखते कि पानी गिर रहा है!
जिस दिन जाने का वक्त आया, सब वापिस लौटने को थे। कार बाहर आ गयी। सामान रखा गया, लेकिन सब अरब एकदम गायब हो गये! तो उसने पूछा कि कहां गये? मैनेजर से पूछा कि सब साथी कहां गये? अभी तो यहां थे, कहीं बाहर तो नहीं निकल गये? होटल के आसपास दिखाया, कहीं भटक न जायें, भाषा ज्ञान मार्ग नहीं, भटकन है नहीं जानते! लेकिन वे कहीं न निकले! फिर उसको ख्याल आया कि कहीं वे बाथरूम में न चले गये हों, जाने का वक्त है!
वह गया। अंदर जाकर देखा तो सब अपने-अपने बाथरूम में नल की टोंटी निकालने की कोशिश करते थे! उसने पूछा, तुम क्या कर रहे हो पागलो?
तो उन्होंने कहा, इन टोंटी को हम घर ले जाना चाहते हैं। ये बड़ी अदभुत हैं। बस खोलो और पानी!
उसने कहा, पागलो, टोंटी ले जाने से कुछ भी न होगा, क्योंकि टोंटी के पीछे बड़ा जाल है, बड़ा रिजर्वायर है पानी का। उधर से यहां तक आती हुई नालियां पड़ी हैं, उनसे पानी आ रहा है। टोंटी से कोई मतलब नहीं है।
और वे बिचारे यही समझते थे--इतनी-सी टोंटी, इसको खोलकर ले चलें घर, अरब में मजा आ जायेगा! जो भी देखेगा, वही चमत्कृत हो जायेगा। खोली टोंटी और पानी निकल आयेगा!
शास्त्र सिर्फ टोंटी है। उसके पीछे बड़ा जाल है। शास्त्र की टोंटी खोलने से कोई ज्ञान नहीं निकल आयेगा। इसके पीछे बड़ा जाल है। कृष्ण की गीता सिर्फ टोंटी है, पीछे कृष्ण का बड़ा जाल है, बड़ा रिजर्वायर है। आप गीता को दबाये फिर रहे हैं! आप बड़ी गलती कर रहे हैं। वही, जो अरब नासमझी से करते थे। शास्त्रों को दबाये फिरने से कुछ भी न होगा। वे सिर्फ टोंटियां हैं, उनसे

कुछ भी नहीं निकल सकता। उनके पीछे बड़ा जाल है। उस बड़े जाल पर पहुंचना होगा, ताकि आप भी शास्त्र बन जायें। तब आप जो बोलेंगे, वह शास्त्र बन जायेगा। लेकिन उसके पीछे के रिजर्वायर पर परमात्मा का, सत्य का जल-स्त्रोत है, वहां पहुंचना पड़ेगा। टोंटी ले जाने से कुछ भी नहीं होगा।
टोंटियां बिक रही हैं, मुफ्त भी बिक रही हैं! वह गीता प्रेस गोरखपुर टोंटियां छापता है! सब अपने घर में टोंटी रख लो! दो-दो पैसे में, चार-चार पैसे में रख लो! खोलो टोंटी और ज्ञान की धारा बहने लगेगी! नहीं, टोंटियों से कुछ भी नहीं हो सकता है--ज्ञान नहीं, जानने की क्षमता। और प्रश्न रह गये हैं, उन पर कल बात करूंगा।
मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नेति-नेति
इक्कीसवां प्रवचन

भक्तिः भगवान का स्वप्न-सृजन

मेरे प्रिय आत्मन्,
मनुष्य के मन की बड़ी शक्ति है--भाव। लेकिन शक्ति बाहर जाने के लिए उपयोगी है, भीतर जाने के लिए बाधा। भाव के बड़े उपयोग है, लेकिन बड़े दुरुपयोग भी हैं।
गहरे अर्थों में भाव का मूल्य होता है--स्वप्न देखने की क्षमता। वह भावना है, जो हमारे भीतर स्वप्न निर्माण की प्रक्रिया है।
स्वप्न देखने के उपयोग हैं। स्वप्न देखने का सबसे बड़ा उपयोग तो यह है
कि स्वप्न हमारी नींद को सुविधापूर्ण बनाता है, बाधा नहीं डालता। इसे थोड़ा समझना उपयोगी है।
साधारणतः हम सोचते हैं कि रात में स्वप्न आता है तो उससे नींद में बाधा पड़ती है। यह बात गलत है। स्वप्न से नींद में बाधा नहीं पड़ती। स्वप्न नींद को चलाने का ढंग है। अगर स्वप्न न हों तो नींद में बहुत जल्दी बाधा पड़ सकती है।
जैसे आप भूखे सो गये है तो भूख बार-बार नींद तोड़ने की कोशिश करती है कि उठो, भूख लगी है। स्वप्न इंतजाम करता है--स्वप्न कहता है, भोजन कर लो, उठने की क्या जरूरत है? स्वप्न भोजन का इंतजाम करा देता है! स्वप्न झूठे भोजन का इंतजाम करा सकता है। आप स्वप्न में भोजन करने लगते हैं और नींद अपने रास्ते पर चलती रहती है। आपको प्यास लगी है और अगर स्वप्न न हो तो नींद टूट जाये। लेकिन स्वप्न इंतजाम करता है कि यह सरिता बह रही है, मन भरकर पानी पी लो।
आपने एलार्म घड़ी लगा रखी है और चार बजे सुबह उठना है। अब वह एलार्म घड़ी नींद को तोड़ देगी। स्वप्न एलार्म घड़ी नहीं सुनता--सुनता है कि मंदिर की घंटियां बज रही हैं, पूजा हो रही है! स्वप्न नींद को बचाने की तरकीब है, सेफ्टी मेजर है। नींद टूट न जाये, इसका इंतजाम है। साधारणतः नींद को बचाता है स्वप्न।
एक और बड़ी नींद है, जिसको आध्यात्मिक नींद कहें, जिसमें हम चौबीस घंटे सोये हुए हैं! उसको बचाने के लिए बहुत स्वप्नों की जरूरत है। भविष्य के स्वप्न हम इसीलिए देखते हैं। आज दुख है तो मैं कल के सपने देखता रहता हूं कि कल सब ठीक हो जायेगा। आज नौकर हूं तो कल के सपने देखता रहता हूं कि कल मालिक हो जाऊंगा। थोड़ी देर की बात है, थोड़ी प्रतीक्षा की बात है।
मैंने सुना है, एक फकीर मर गया था। और जब वह भगवान के सामने पहुंचा तो उसने भगवान से पूछा कि मैं बहुत हैरान हूं कि लोग जिंदा क्यों हैं? उनके जिंदा रहने का कारण क्या है? क्योंकि लोग इतने दुखी हैं, मर क्यों नहीं जाते?
तब भगवान ने कहा, आशा के कारण! आज दुख है तो कल सब ठीक हो जायेगा!
जिंदगी में एक गहरी नींद भी है। जो हम रोज सोते हैं, वह तो बहुत साधारण नींद है। शरीर की जरूरत है। एक और गहरी नींद है, जिसमें हम जन्म से ही सोये रहते हैं! और बहुत कम सौभाग्यशाली हैं, जो मृत्यु के पहले उस नींद से जागते हैं। उस नींद को चलाने में भी सपने बड़े महत्वपूर्ण हैं। वे आशा बंधाये रखते हैं।
एक बार ऐसा हुआ कि इजिप्त की एक मॉनेस्ट्री में, एक आश्रम में--फकीरों
के आश्रम में एक आदमी मर गया, एक फकीर मर गया। उस आश्रम में नियम था कि आश्रम के नीचे ही कई मील की खंदक खोद रखी थी, जिसमें मुर्दों को नीचे डाल देते थे। फकीर मर गया था, चट्टान खोली गयी और फकीर को मरघट में नीचे डाल दिया गया। चट्टान बंद कर दी गयी।
लेकिन भूल हो गयी। वह फकीर मरा न था, सिर्फ बेहोश था! चट्टान बंद हो गयी। और फकीर होश में आ गया!
ऐसी भूल बहुत बार हो जाती है। जिंदा आदमियों को बहुत बार हम मरे हुए समझ लेते हैं और बहुत बार मरे हुए आदमी को जिंदा समझ लेते हैं!

हम सब मरे हुए आदमी हैं और अपने को जिंदा समझते हैं!
अभी सुबह ही मैं कह रहा था कि हम मरते कभी हैं और दफनाया कभी जाते हैं!
मर तो जाता है आदमी बहुत जल्दी--कोई बीस साल में, कोई पंद्रह साल में, कोई दस साल में, कोई पांच साल में! और दफनाया जाता है सत्तर साल में, पचहत्तर साल में, अस्सी साल में! बाकी का जो अंतराल है बीच का--मरने और दफनाया जाने का, उसमें हम मरे हुए जीते हैं! तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि मरे हुए लोगों को हम जिंदा समझते हैं और जिंदा आदमी को मरा हुआ समझते हैं!
वह आदमी होश में आ गया, उसकी मुसीबत हम समझें। वहां सिवाय लाशों के और कोई भी न था। अंधेरा था, कीड़े-मकोड़े थे। जो लाशों में पलते थे, ऐसे छोटे कीड़े-मकोड़े पैदा हो गये थे। बदबू थी, दुर्गंध थी। उस आदमी ने आत्महत्या कर ली होगी? नहीं की! आशा ने उसे जिलाये रखा! उसने सोचा, हो सकता है, कल कोई मर जाये! उसने सोचा, हो सकता है कि कोई मर जाये और चट्टान खुले! चट्टान तो तभी खुलती थी, जब कोई मरता था। वह बहुत चिल्लाया! मालूम था उसे की चट्टान के बाहर आवाज नहीं जायेगी, लेकिन फिर भी चिल्लाया!
आशा सब कुछ करवा देती है--शायद कोई सुन ले!
जानता था कि कोई नहीं सुनेगा। आश्रम दूर था चट्टान से। और चट्टान सख्ती से बंद हो जाती थी। कई बार उसने चट्टान बंद की थी। जब कोई आदमी मर जाता था तो नीचे जाकर दफनाकर बंद कर देते थे। जानता था कि नहीं कोई सुनेगा, लेकिन आशा ने कहा, चिल्ला लो, शायद कोई सुन ले! कोई निकलता हो, कोई गुजरता हो, कोई पास आया हो! नहीं किसी ने सुना, लेकिन तब भी आशा ने उसे जिंदा रखा-- कि हो सकता है कि कल कोई मर जाये, सांझ कोई मर जाये, परसों कोई मर जाये!
वह आदमी सात साल तक वहां जिंदा रहा! कैसे जिंदा रहा होगा?
पहले एक दो दिन तो उसने भूख में गुजार दिये। लेकिन भूखा आदमी कब तक रह सकता था--फकीर था--कभी मांस नहीं खाया और कभी सोचा भी नहीं था कि मांस खा लूंगा। और वह भी मरे हुए मुर्दों का मांस खा लूंगा, यह तो कभी सोचा नहीं था! असल में सुविधा में कभी भी पता नहीं चलता कि हम क्या कर सकते हैं? वह तो असुविधा में पता चलता है।
कब उसने मांस खाना शुरू कर दिया--सड़ी हुई लाशों का, पता भी नहीं चला! उसने कीड़े-मकोड़े खाने शुरू कर दिये, क्योंकि जिंदा रहना जरूरी था! मरघट की दीवारों से नालियों का पानी रिस-रिसकर भीतर आता था, वही वह चाट-चाटकर पीने लगा, क्योंकि जिंदा रहना जरूरी था! दो-चार दिन की ही तो बात है। कभी न कभी तो कोई मरेगा, चट्टान खुलेगी और बाहर निकल जाऊंगा!
और वह फकीर, जिसने सबके लिए प्रार्थना की थी--भगवान, सबको लंबी उम्र दे। वह फकीर अब भी प्रार्थना करता था, लेकिन वह यही कहता है कि आश्रम में कोई एक आदमी मर जाये, नहीं तो यह कब्र कैसे खुलेगी! हे भगवान, किसी तरह एक आदमी को मार!
सात साल बहुत लंबा वक्त था, उस अंधेरे में, उस मरघट में सात साल बाद कोई मरा, वह चट्टान खुली। वह आदमी बाहर आ गया!
लोग तो भूल चुके थे। लोग तो पहचान नहीं सके पहले, तो लोग भाग खड़े हुए। समझे कि कोई भूत-प्रेत है! कौन निकला इस मरघट से? इस आदमी के बाल बड़े हो गये थे। उसकी आंख की पलकें इतनी बड़ी हो गयी थीं कि आंख नहीं खुलती थीं! और आश्चर्य यह कि अपने साथ वह आदमी सामान लेकर बाहर निकला!
इजिप्त में रिवाज है कि मुर्दों को नये कपड़े पहना देते हैं। और एक-दो जोड़ी कपड़े भी रख देते हैं। उनके साथ कुछ पैसे भी रख देते हैं! उसने सब मुर्दों के पैसे, सब मुर्दों के कपड़े इकट्ठे कर लिए! इस आशा से कि कभी बाहर निकलूंगा तो काम पड़ जायेंगे! और जब उसने कहा, भागो मत, मैं वही आदमी हूं, जिसे तुम सात साल पहले दफना गये थे। और डरो मत, मैं मर नहीं गया था, मैं जिंदा था।
उन्होंने कहा कि तुम मर नहीं गये थे, तुम जिंदा थे, यह इतना आश्चर्य नहीं। सात साल इस मरघट में जिंदा कैसे रहे?
उस आदमी ने कहा, आशा के सहारे! सोचा कल, सोचा कल और दिन गुजरते गये। और
जो गुजर गया, वह मैं भूल गया। और कल की आशा फिर बंधी रही कि कल और देखो।
मेरी आशा सफल हो गयी। आखिर मरघट खुल गया और मैं बाहर आ गया।

जिंदगी भर हम सपने देखते रहते हैं, कल के। और कल का सपना, हमें आज जिंदा रहने में सहयोगी हो जाता है। और कल का सपना, आज की नींद नहीं टूटने देता। आज के दुख को हम झेल लेते हैं और सोये रहते हैं!
भाव की शक्ति का, कल्पना की शक्ति का, स्वप्न की शक्ति का उपयोग है, लेकिन आध्यात्मिक उपयोग नहीं है। अत्यंत गैर-आध्यात्मिक उपयोग है। इस शक्ति का कुछ लोग उपयोग करते हैं! भगवान को खोजने के लिए! इसी शक्ति का, यह जो कल्पना की प्रगाढ़ शक्ति है, इसी शक्ति का उपयोग करते हैं! और वे इसे भक्ति कहते हैं! वे कहते हैं, हम अपनी कल्पना से ही भगवान में जीयेंगे! हम भगवान की इतनी कल्पना करेंगे, इतना भाव करेंगे तो वह कैसे न आयेगा?
वह आ जाता है। लेकिन वह असली भगवान नहीं होता, वह हमारी कल्पना का रूप होता है। कल्पना प्रगाढ़ हो तो हम अपने भगवान को निर्मित कर सकते हैं। जैसे भगवान को चाहें, वैसे निर्मित कर सकते हैं। और कल्पना की इतनी शक्ति है कि जितनी वस्तुतः आदमी सामने खड़ा हो, वह आदमी भी फीका मालूम पड़े और कल्पना का आदमी ज्यादा सच्चा मालूम पड़े! रोज ही जिंदगी में हम ऐसा करते हैं।
मजनूं किसी स्त्री के प्रति मोहित हो गया। सारा गांव कहता है कि वह पागल हो गया है! वह स्त्री साधारण है। लेकिन उस आदमी को दिखायी नहीं पड़ता है! उसे कुछ और ही दिखाई पड़ता है। उसने अपनी कल्पना की स्त्री को उस स्त्री के ऊपर उढ़ा दिया है! वह स्त्री जिसे गांव वाले पहचानते हैं, सिर्फ खूंटी का काम कर रही है। वह असली स्त्री नहीं है। असली स्त्री तो उसके दिमाग की है, जिसको उसने उस खूंटी के ऊपर उढ़ा दिया है।
मजनूं को बुलाया उसके गांव के राजा ने। और उसने कहा कि तू पागल हो गया है! क्योंकि जानकर आपको हैरानी होगी कि लैला एक बदशक्ल औरत थी! उस राजा ने कहा, तू पागल हो गया, एक बदसूरत औरत के लिए? उससे बहुत सुंदर लड़कियां हम तुझे दे सकते हैं, छोड़ उसकी बात। उसने गांव की दस-बारह सुंदर लड़कियां बुलायी थीं और मजनूं से कहा, देख, इन लड़कियों को देख?
मजनूं ने देखा और उसने कहा,"मुझे लैला के सिवा और कोई दिखायी ही नहीं पड़ती।
उस राजा ने कहा, "तू पागल तो नहीं हो गया है!
मजनूं ने कहा,"हो सकता है, लेकिन अभी तो मुझे आप पागल मालूम पड़ते हैं,
जो लैला को कह रहे हैं कि वह बदशक्ल है! लैला को देखा है आपने?
उस राजा ने कहा, पागल! भली-भांति देखा है। मेरे दरवाजे से रोज निकलती है। सारे गांव ने देखा है। सारा गांव हंस रहा है। सारा गांव कह रहा है कि मजनूं पागल हो गया है एक साधारण-सी औरत के लिए! उसे बहुत अच्छी स्त्री मिल सकती है। राजा कहता है, छोड़ तू उसकी फिक्र।
मजनूं ने कहा, मेरी आंख से आपने लैला को नहीं देखा! आप लैला को नहीं जानते। लैला को जानना हो तो मजनूं की आंख चाहिए। मेरी आंख ही सिर्फ उसको देख सकती है!
असल बात यह है कि लैला जो है, वह मजनूं का क्रिएशन है, मजनूं का सृजन है। उसने अपनी कल्पना की स्त्री को लैला के ऊपर थोप दिया है। इसलिए प्रेयसी जितनी सुंदर दिखायी पड़ती है, उतनी पत्नी नहीं दिखायी पड़ती। प्रेयसी ही पत्नी हो जाये तो भी दिखायी नहीं पड़ती, क्योंकि पत्नी होने से वह जो कल्पना की स्त्री थी, वह धीरे-धीरे खूंटी से उतरती चली जाती है। फिर खूंटी ही रह जाती है। और तब पता चलता है, कोई बड़ी भूल हो गयी, यह तो बड़ी गलती हो गयी!
वे प्रेमी सुखी रहते हैं, जिनको उनकी प्रेयसी कभी नहीं मिलती, क्योंकि उनकी कल्पना सदा जागी रहती हैं। लेकिन जिनको प्रेयसी मिल जाती है, उनकी कल्पना टूट जाती है।
मैंने सुना है, एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक गया था, पागलों का अध्ययन करने। पागलखाने का जो प्रधान था, उसने एक पागल को दिखाते वक्त कहा, देखते हो इस आदमी को, जो सींकचे में बंद है? यह एक यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर था।
यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर को सदा सावधान रहना चाहिए, वह कभी भी पागल
हो सकता है। यूनिवर्सिटी पागलखाने की तैयारी है। वहां से खतरा सदा है। आन दी वर्ज, वहां बिल्कुल किनारे पर खड़े हैं लोग, जरा-सा धक्का लगे तो जायें।

यह एक विश्वविद्यालय का अध्यापक है, यह पागल हो गया है। उस अध्ययन करने वाले आदमी ने पूछा, इसके पागल होने का कारण?
उसने कहा, देखिये वह हाथ में जो तस्वीर लिए हुए है, वह औरत उसके पागल होने का कारण है। यह इस औरत को प्रेम करता था, और नहीं पा सका और पागल हो गया!
फिर वे आगे बढ़े। दूसरे सींकचे में बंद एक दूसरे आदमी को बताते हुए, उस प्रधान ने कहा, देखते हैं इस आदमी को? यह भी पागल हो गया, उसका ही मित्र है! इसके पागल होने का क्या कारण है?
उसने कहा, वह जो फोटो दिखायी थी तुम्हें उस पागल के पास, यह भी उस औरत
को प्रेम करता था। यह औरत इसको मिल गयी! उसका विवाह हो गया, उसकी वजह से यह पागल हो गया!
एक आदमी न मिलने से पागल हो गया, एक आदमी मिलने से पागल हो गया!
फिर भी उसने कहा कि वह जो न मिलने से पागल हुआ, वह बड़ा सुखी है, क्यों
कि अभी वह सोचता है, कभी मिलना होगा! और यह जो मिलने से पागल हो गया, वह बड़ा दुखी है, क्योंकि अब इसको कोई आशा नहीं है।
पुरुष स्त्रियों पर कल्पनायें थोप रहे हैं, स्त्रियां पुरुषों पर कल्पनायें थोप रही हैं! बाप अपने बेटों पर कल्पनायें थोप रहे हैं, बेटे अपने बापों पर कल्पनायें थोप रहे हैं! इसलिए ये सब पीछे परेशान हो जाते हैं। क्योंकि जब असली आदमी प्रगट होता है तो लगता है, यह कैसा बेटा! इसको मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया? जिसको पाल-पोसकर बड़ा किया था, वह आपकी इमेजिनेशन थी, वह आपकी कल्पना थी। वह असली आदमी नहीं था। जो अब सामने प्रगट हुआ, यही असली आदमी है।
मां कहती हैं, मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा! जिसको उसने पेट में रखा था, वह कभी पैदा नहीं होगा, वह उसकी कल्पना थी। जो पैदा होता है, वह कोई और है। और जब वह पैदा होता है, तब भी मां कल्पना थोपती जाती है! अभी छोटा बच्चा है। रोक भी नहीं सकता कि कल्पना मत थोपो। मां थोपे चली जाती है-- नेपोलियन बनोगे, विवेकानंद बनोगे, कृष्ण बनोगे! न मालूम क्या-क्या बना लेती है कल्पना में! जब वह लड़का बड़ा होकर खुद बनता है, तब सब कल्पनाएं टूट जाती हैं। खूंटी सामने आ जाती है। मां बहुत दुखी हो जाती है। इस बेटे को तो जन्म न दिया होता तो अच्छा होता! यह बेटा कहां से आ गया?
हम चौबीस घंटे कल्पनाओं में जी रहे हैं! इन्हीं कल्पनाओं के आधार पर कुछ लोग भगवान को भी पाना चाहते हैं! कुछ ने पा भी लिया है! लेकिन वह भगवान हमारी कल्पनाओं के भगवान हैं। फिर व्यवस्थित रूप से अगर कोई कल्पना करे तो कोई भी कल्पना साकार हो सकती है।
टॉल्सटॉय के संबंध में मैंने सुना है कि वह एक सीढिय़ों पर चढ़ रहा था,
एक लाइब्रेरी में। संकरी सीढिय़ां थीं और उसके साथ एक औरत चल रही थी! असली औरत नहीं थी! कवियों के साथ असली औरत अकसर नहीं होतीं! उनके साथ तो उनकी कल्पना की औरत होती है!
टॉलस्टॉय के साथ एक औरत चल रही थी, जो उसके किसी उपन्यास की पात्र थी।
वह उपन्यास लिख रहा था, उसमें वह एक पात्र थी। वह उसके साथ चल रही थी। वह उससे बातचीत करता हुआ सीढिय़ां चढ़ रहा था! टॉल्सटॉय को ही पता था उस स्त्री का और किसी को पता नहीं था! रास्ता संकरा था। ऊपर से एक आदमी उतर रहा था। वहां सिर्फ दो की ही जगह थी। और वह तीसरी औरत, बीच में जो थी, कहीं उसको धक्का न लग जाये! 1917 के पहले की बात है। अब रूस में कोई स्त्री के धक्के से न डरता है, न चिंता करता है। कहीं उसको धक्का न लग जाये, टॉल्सटॉय सरका और सीढिय़ों से नीचे गिर पड़ा!
उस दूसरे आदमी ने नीचे आकर टॉल्सटॉय को कहा कि आप क्यों सरके? हम दो के लिए काफी जगह थी। टॉल्सटॉय ने कहा, दो होते तो मैं भी क्यों सरकता? यह तो घुटना टूटने पर पता चला कि दो ही थे। मैं तीन का सोच रहा था! एक औरत से बातें कर रहा था। उसने कहा, कौन औरत? कोई औरत दिखायी नहीं पड़ती!
टॉल्सटॉय ने कहा, अब तो मुझे भी दिखायी नहीं पड़ती। लेकिन इसके लिए पैर टूट जाना जरूरी था। पैर टूटा, तब पता चला कि गलती हो गयी।

अब टॉल्सटॉय अगर भगवान का दर्शन करना चाहे तो उनको कोई कठिनाई नहीं।
तब इस औरत की जगह भगवान चलने लगेंगे, बांसुरी बजाने वाले भगवान से बातें होने लगेंगी! धनुर्धारी भगवान से बातें होने लगेंगी!
यह टॉल्सटॉय के लिए बिल्कुल सरल है। क्योंकि वह जो फैकल्टी, वह जो दिमाग की व्यवस्था है, वह जो स्वप्न देखने की व्यवस्था है, यह उसका खेल है। हम इतना तीव्र स्वप्न देख सकते हैं कि जो मौजूद नहीं है, वह हमारे पास मौजूद मालूम होने लगे! हम उससे बात करने लगें! उसके साथ जीने लगें!
यह जो भाव की सामर्थ्य है--इस भाव की सामर्थ्य का नाम भक्ति है। यह भाव
की सामर्थ्य, जब भगवान की तरफ लगा दी जाती है तो उसका नाम भक्ति है! यह भाव की सामर्थ्य, यह स्वप्न देखने की क्षमता, जब हम भगवान के प्रति लगा देते हैं तो भक्ति बन जाती है! भक्त चौबीस घंटे भगवान के साथ रहने लगता है! लेकिन ध्यान रहे, भाव सपना पैदा करता है और सपने सदा प्राइवेट होते हैं। सपने कभी पब्लिक नहीं होते। सपने का एक गुण है कि मैं और आप कितनी ही कोशिशें करें, एक ही सपना दोनों नहीं देख सकते। सपने की एक पहचान है। जिस चीज को पब्लिक न किया जा सके, जिस चीज को दो आदमी भी साथ न देख सकें, वह स्वप्न है। जिस चीज को दस आदमी साथ देख लें, वह सत्य है।
सपना जो है, मैं अपना ही देखूंगा, आप अपना ही देखेंगे। सपने के संबंध में समाजवाद कभी नहीं लाया जा सकता। कभी ऐसा नहीं हो सकता कि सब एक से सपने देखें। सब एक-सा सपना देखें, यह कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि सपना मेरी निजी बात है, आपकी अपनी निजी बात है। और अगर मैं आपके सामने मौजूद भी हो जाऊं तो वह सपने में ही रहूंगा, मैं मौजूद नहीं हो सकूंगा।
भगवान भी भक्तों के बिल्कुल निजी अनुभव हैं--एकदम प्राइवेट! वे भी पब्लिक नहीं हैं!
अगर हम एक ही मकान में मीरा को, फ्रांसिस को और तुलसीदास को बंद कर दें
तो उस कमरे में बड़ा उपद्रव हो जायेगा रात को। क्योंकि मीरा अपने कृष्ण को देखती रहेगी, तुलसीदास अपने राम को देखते रहेंगे, फ्रांसिस जीसस को देखता रहेगा। और सुबह तीनों में विवाद हो जायेगा। गलत कह रहे हो आप, कहां थे कृष्ण यहां? फ्रांसिस कहेगा, कोई कृष्ण की खबर नहीं मिली, रात भर जीसस खड़े रहे! और मीरा कहेगी, किस जीसस की बातें कर रहे हैं! आपको सुनायी नहीं पड़ी बांसुरी की आवाज! रात भर नृत्य होता रहा! तुलसीदास हंसेंगे कि तुम दोनों पागल तो नहीं हो गये हो? न यहां नृत्य हुआ है, न कोई सूली पर लटका है, यहां तो राम धनुष बाण लेकर पहरा देते रहे!
हम अपने भगवान पैदा कर लेते हैं! हम अपने भगवान पैदा कर सकते हैं और पूरा जीवन गंवा सकते हैं! बहुत जीवन गंवा सकते हैं, स्वप्न के भगवान के साथ! वैसे स्वप्न के भगवान में एक सुविधा है कि आप जैसे हैं, वैसे ही बने रहते हैं! भगवान आपमें कुछ रद्दोबदल नहीं कर सकता है, क्योंकि आपके ही मन से पैदा हुए हैं! भगवान आपमें कोई फर्क नहीं ला सकता। असली भगवान की तरफ जाना हो तो आपको मिटना पड़ेगा और नकली भगवान की तरफ जाना हो तो भगवान को बनाना पड़ेगा।
इस फर्क को समझ लें कि असली भगवान की तरफ जाना हो तो मुझे मिटना पड़ेगा। जैसा भी मैं हूं, मुझे मिट जाना पड़ेगा। तभी मैं असली भगवान को जान सकूंगा। और अगर नकली भगवान को जानना हो तो मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा और भगवान को बनाना पड़ेगा। मैं उसको बना लूंगा। जैसा मुझे बनाना है, वैसा मैं उन्हें बना लूंगा और मैं उन्हें देख लूंगा!
भक्ति भगवान का सृजन है--स्वप्न-सृजन! क्योंकि भगवान का सृजन हम कैसे
कर सकते हैं? भगवान तो वह है, जिसने हमारा सृजन किया है। और भक्त का भगवान वह है, जिसका भक्त ही सृजन करता है।
भगवान तो वह है, जो जब हम नहीं थे, तब भी था; जब हम नहीं होंगे, तब भी होगा।
भक्तों का भगवान वह है, जो भक्त ने पैदा किया है। वह भक्त के साथ ही है,
और भक्त के विदा होते ही विदा हो जायेगा। भक्त का भगवान, भगवान नहीं है, लेकिन सुखदायी हो सकता है, आनंददायी हो सकता है।
सुखद सपने होते हैं। और भगवान तो व्यवस्थित सपना हैं भक्त का! वह अपने सुख की कल्पना कर लेता है। वह जब चाहता है भगवान को, तब उन्हें मुस्कुराना

पड़ता है! जब चाहता है, उन्हें नाचना पड़ता है! जब चाहता है, तब उसके ऊपर रोशनी डालनी पड़ती है! भगवान से वह जो चाहता है, करवा लेता है!
और बड़ा प्यारा सपना है, क्योंकि वहां खूंटी है ही नहीं, सिर्फ सपना फैला हुआ पड़ा है। इसलिए कभी कठिनाई नहीं आती। सिर्फ सपना ही है और सपना अपने हाथ में है। भगवान को नचाना भी अपने हाथ में है! तो भक्त अपने भगवान को नचाये फिरता है! भक्त भागते हैं आगे-आगे, पीछे उनके भगवान उनको मनाने के लिए भी भागते हैं! वह अपने ही भगवान हैं, अपनी ही कल्पना से पैदा हुए। भक्ति से कोई कभी भगवान तक नहीं पहुंचा। भक्ति के कारण जितने लोग भगवान तक पहुंचने से रुके हैं, उतने शायद ही किसी और बात से रुके हों। लेकिन सुखद है। और आदमी भगवान को कम चाहता है, सुख को ज्यादा चाहता है। भगवान को चाहना किसको है?
एक मित्र ने पूछा है। एक प्रश्न पूछा है उन्होंने। उन्होंने लिखा है, हमें क्या मतलब है भगवान से, अगर हमें कल्पना का भगवान भी सुख दे सकता हो! तो हम सुख चाहते हैं। हमें क्या मतलब है भगवान से? हम सुख चाहते हैं!
यह सवाल महत्वपूर्ण है। यह महत्वपूर्ण इसलिए है कि यह किसी एक व्यक्ति का सवाल नहीं है। हजारों लोगों का यही सवाल है। सुख मिलना चाहिए। लेकिन ध्यान रहे, जो सुख हमने निर्मित किया है, वह सुख झूठा है। वह आनंद नहीं है। आनंद वह है, जो हमने निर्मित नहीं किया। इसलिए जो सुख हमने निर्मित किया है, वह खोता रहेगा। बार-बार खोता रहेगा।
रामकृष्ण को समाधि लग जाती थी। जब समाधि टूट जाती थी तो छाती पीट-पीटकर रोते थे कि अब मुझे फिर समाधि दे, हे मां! मुझे समाधि दे! अब फिर दर्शन दे! तू कहां खो गयी?
असल में सपने को कितनी देर तक पकड़कर रखियेगा! सपना बीच-बीच में खोयेगा
और सपना जब खोयेगा, तब दुख होगा ही। तो यह सपने का जो सुख है, शराब जैसा सुख है। एक आदमी शराब पी लेता है--फिर होश आता है, फिर वह कहता है, शराब दो, क्योंकि मैं दुख में पड़ गया! फिर और शराब पीता है! फिर जब तक होश नहीं रहता, तब तक ठीक। फिर होश आता है, फिर वह कहता है, मुझे और शराब दो! बेहोशी में उसे सुख मालूम पड़ता है, होश में उसे दुख मालूम पड़ने लगता है!
जो सपने में सुख पाता रहेगा, वह बार-बार दुख भी पाता रहेगा, क्योंकि सपना टूटता रहेगा। सपना बार-बार टूटेगा। सपना स्थायी नहीं हो सकता। सपना शाश्वत नहीं हो सकता। सपना तो टूटेगा। और जब टूटेगा तो बहुत दुख दे जायेगा। फिर सपने को बनाना पड़ेगा।
सपने से सुख मिल सकते हैं, लेकिन वे सुख वास्तविक नहीं हैं, क्योंकि उसके पीछे निरंतर दुख प्रतीक्षा कर रहा है। नहीं, आनंद कुछ बात और है। आनंद हमारे द्वारा पैदा किया हुआ सुख नहीं है।
आनंद वह क्षण है, आनंद वह स्थिति है, जब सुख और दुख दोनों जा चुके हैं।
जो हमने बनाया था, वह सब जा चुका--दुख भी गया, सुख भी गया। हमने बनाये थे नर्क, वे भी गये। हमने बनाये थे स्वर्ग, वे भी गये। अब तो सिर्फ वही रह गया, जो सदा है। वहां आनंद है।
भक्त आनंद को उपलब्ध नहीं होता, सुख को उपलब्ध होता है। क्योंकि सपने सुख के बाहर नहीं ले जाते। और जो सपना सुख देता है, उसके पीछे ही दुख देने वाला सपना प्रतीक्षा करता है। वह कहता है, ठीक है, तुम चुक जाओ, तब मैं आ जाऊं। तो सब भक्त रोते हुए भी दिखायी पड़ेंगे! जब उन्हें भगवान की झलक मिल जायेगी, तब वे बड़े प्रसन्न होंगे! और जब झलक नहीं मिलेगी, सपना नहीं बन सकेगा, तब वे छाती पीटेंगे, रोयेंगे और विरह की अग्नि उनको सतायेगी! वह प्रेमियों की ही पुरानी कथा है। सिर्फ प्रेम का ऑब्जेक्ट, विषय बदल गया। भगवान को उन्होंने प्रेम का विषय बना लिया! लेकिन इससे फर्क नहीं पड़ जाता है।
जिन मित्र ने पूछा है कि हमें सुख की जरूरत है! अगर आपको सुख की ही जरूरत है तो आप दुख से कभी छुटकारा नहीं पा सकते। सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो सुख की आकांक्षा करता है, वह दुख में बार-बार गिरता रहेगा। क्योंकि जब वह सुख के सिक्के को उठायेगा तो उसी सिक्के का दूसरा पहलू भी साथ चला आयेगा। थोड़ी देर में सिक्का बदलेगा और जो नीचे था, वह ऊपर हो जायेगा। इसलिए हर सुख के पीछे दुख छिपा है, हर दुख के पीछे सुख छिपा है।

यह वैसे ही है, जैसे हर दिन के बाद रात है और हर रात के बाद दिन है। यह ठीक ऐसा ही बदलता रहता है। जो सुख मांगता है, वह दुख से कभी बाहर नहीं हो सकता। लेकिन आनंद कुछ बात और है। आनंद परमात्मा या सत्य को पाने का अनुभव है। फिर उसका कोई अंत नहीं है, फिर वह अनंत है। फिर उसमें दूसरा कोई पहलू नहीं है। फिर उसके पीछे कोई भी नहीं छिपा।
आनंद से विपरीत शब्द कभी सुना है? यह बड़े आश्चर्य की बात है, आनंद के विपरीत कोई शब्द ही नहीं है! सुख के विपरीत तो दुख है। शांति के विपरीत अशांति है! लेकिन आनंद के विपरीत कोई भी शब्द नहीं है! आनंद का दूसरा पहलू नहीं है। आनंद को बदलने का उपाय नहीं है। आनंद बस आनंद है। उसके पीछे तो कुछ भी नहीं है। उसमें कितने ही गहरे जायें तो बस आनंद ही आनंद है। जैसे हम समुद्र के पानी को कहीं से भी चखें तो खारा है। खारा ही खारा है। और कितने ही गहरे जायें, वह खारा है। ऐसे ही आनंद के सागर को हम कहीं से भी चखें, हम किसी दिशा से जायें, कितने ही गहरे जायें तो वहां सिर्फ आनंद है। आनंद ही आनंद है।
लेकिन सुख की बात ऐसी नहीं है। सुख को अगर हमने ठीक से चखा तो दुख मिल जायेगा। दुख को भी अगर ठीक से गहराई में खोजो तो सुख मिल जायेगा, क्योंकि वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। सुख की आकांक्षा में जो डूबा है, वह निश्चित ही उसी भगवान को पैदा करेगा, जो सपने का भगवान है, क्योंकि सपने का भगवान सुख दे सकता है। लेकिन सपने का भगवान दुख भी देगा।
भक्ति सपने के ऊपर नहीं उठ पाती।
और भी एक बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि सपने में सदा द्वैत है।
सपने में सदा दो हैं। और सत्य में सदा अद्वैत। सत्य में सदा एक है। सपने में दो हैं--सपना देखने वाला और सपना।
भक्ति में भी सदा दो है--भक्त है और भगवान है। देखने वाला है और दिखायी पड़ने वाला है।
लेकिन सत्य की अनुभूति में दो नहीं हैं। अनुभूति और अनुभोक्ता एक हैं। वहां कोई देखने वाला और दिखायी पड़ने वाला, ऐसे दो नहीं हैं। इसलिए भक्त सदा डरा रहता है। वह भगवान से प्रार्थना करता रहता है कि कभी छोड़कर मत चले जाना! मुझे छोड़ मत देना! वह सदा यही प्रार्थना करता है कि तुम्हारा सत्संग बना रहे, तुम्हारे पास बैठा रहूं, तुम्हारे चरण दबाता रहूं। भक्त कभी द्वैत के बाहर नहीं उठ पाता। द्वैत के बाहर उठ भी नहीं सकता है, क्योंकि द्वैत के बाहर तभी उठ सकता है, जब भक्ति टूटे, भाव टूटे, मन टूटे। तब द्वैत के बाहर उठ सकता है।
भक्त सदा द्वैत में जीता है।
भक्त कभी यह सोच भी नहीं सकता कि एक ही रह जाये, क्योंकि एक ही रह जाये
तो भगवान कहां होगा, भक्त कहां होगा? इसलिए भक्त की आकांक्षा एक के रह जाने की नहीं है! लेकिन जो है, वह एक ही है। फिर व्यवस्थित स्वप्न, प्लांट ड्रीमिंग देखने की प्रक्रिया है--योग है, साधना है। उसके दो-तीन सूत्र ख्याल में ले लेना चाहिए तो भक्ति की पूरी बात साफ हो सकेगी।
अगर आपको व्यवस्थित स्वप्न देखना है... क्योंकि भक्त व्यवस्थित सपने देखता है। ऐसे साधारणतः स्वप्न तो हम रोज ही देख रहे हैं, लेकिन वे अव्यवस्थित हैं, अराजक हैं। हमें पता नहीं कौन-सा सपना हमारे भीतर उतर आयेगा। भक्ति जो है, वह व्यवस्थित स्वप्न है, प्लांट है। हमें जो सपना देखना है, वही हमें देखना है। और फिर की अंतिम आकांक्षा यह है कि आंख बंद करके ही नहीं देखना है, खुली आंख से देखना है! तो भक्त को फिर स्वप्न के लिए व्यवस्था करनी पड़ती है।
स्वप्न की व्यवस्था के लिए तीन सूत्र बड़े जरूरी हैं। पहला सूत्र, तो
यह जरूरी है... पहला सूत्र कि संदेह न हो! जरा भी संदेह होगा, स्वप्न भंग हो जायेगा। श्रद्धा हो, पूर्ण श्रद्धा हो। जरा भी संदेह हुआ तो स्वप्न भंग हो जायेगा। संदेह स्वप्न तोड़ने वाली बहुत अदभुत चीज है। इसलिए संदेह जरा भी भक्ति की दुनिया में प्रवेश नहीं पा सकता। संदेह के लिए वहां उपाय नहीं। वहां अंधी श्रद्धा चाहिए। बिल्कुल अंधी श्रद्धा चाहिए। अंधी श्रद्धा का मतलब, जहां संदेह का कोई उपाय ही नहीं छोड़ा। मेरे पास आंखें हैं, तो मैं

कितनी ही आंखें बंद करूं, यह डर है कि कहीं थोड़ा-सा खोलकर देख न लूं? आंखें होनी ही नहीं चाहिए। तब डर बिल्कुल समाप्त हो जायेगा।
अंधी श्रद्धा, ब्लाइंड बिलीफ भक्ति का पहला सूत्र है।
आंख बंद करके स्वीकार कर लो, तब सपना पूरा हो सकता है। तब सपने पर संदेह नहीं आयेगा। कि जो मैं देख रहा हूं, यह कहीं सपना तो नहीं है? इतना भी आ गया तो सब बात खंडित हो जायेगी। इसलिए भक्ति का पहला सूत्र हैः पूरी तरह विश्वास।
और अगर भगवान खड़े न हों तो भक्ति के समझने वाले लोग कहेंगे, तुम्हारा विश्वास पूरा नहीं है! तुम्हारे विश्वास में कभी है।! विश्वास पूरा हो जाना चाहिए। विश्वास पूरा होने का मतलब यह है कि सपने पर भी... सपना है, ऐसा संदेह नहीं रह जाना चाहिए। तभी सपना सत्य मालूम पड़ सकता है।
इसलिए भक्त हजारों साल से लोगों को समझा रहे है--श्रद्धा करो। पूरी श्रद्धा, पूरा समर्पण करो। जरा भी अपने को पीछे मत रखना सोचने के लिए कि मैं भी हूं। सब सोच-विचार, सब संदेह, सब तर्क छोड़ दो, तब भक्ति पूरी हो सकती है निश्चित ही।
अगर किसी सपने को सत्य मानना हो तो अंधी श्रद्धा पहला सूत्र है।
अगर किसी सपने को तोड़ना हो तो आंख खोलना पहला सूत्र है।
संदेह पहला सूत्र होगा। अंधी श्रद्धा से शुरू होती है भक्ति। फिर अगर अपने को पूरी तरह देखना हो, पूरी तरह देखना हो तो उसमें जरा भी असलियत में और सपने में फर्क न रह जाये। तो थ्री डायमेंशनल, तीन आयामी सपना देखना हो तो उसमें लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई सब दिखाई पड़ने लगें, वह बिल्कुल पूरा दिखाई पड़ने लगे, तो उसके लिए चित्त कमजोर चाहिए और चित्त स्त्रैण चाहिए। इसलिए पुरुष-चित्त के भक्त होने की बड़ी कठिनाई है।
पुरुष-चित्त--पुरुष की नहीं कह रहा हूं। क्योंकि बहुत से पुरुष हैं, जिनके पास स्त्री का चित्त है और बहुत-सी स्त्रियां हैं, जिनके पास पुरुष का चित्त है। पुरुष-चित्त सपना नहीं देख सकता ठीक से, क्योंकि पुरुष-चित्त में पुरुष की जो मनःस्थिति है, उसमें आक्रमण है। वह एक्टिव, सक्रिय है। और सपने के लिए जरूरी है पैसिव, निष्क्रिय होना, ग्रहण करने वाला होना। स्त्री-चित्त सपना देखने में ज्यादा समर्थ है। वह सिर्फ स्वीकार करती है। इसलिए भक्तों ने सब स्त्रैण उपाय स्वीकार कर रखे हैं! अगर कोई ठीक भक्त आपको मिल जाये तो आपको लगेगा कि वह कुछ पुरुष से स्त्री की यात्रा पर निकल गया है। उसमें सब स्त्रैण बातें प्रकट होने लगेंगी! उसने चित्त पैसिव--स्त्री का पकड़ लिया है!
ऐसे भक्त भी हैं, जो अपने को स्त्री ही मानने लगे हैं। वे कहते हैं, हम
तो सखियां हैं कृष्ण की! और साधारणतः वहीं मानते हैं वे! अगर उसकी पूरी व्यवस्था समझेंगे तो बड़ी हैरानी होगी। लेकिन वह व्यवस्था बिल्कुल ठीक है। उसके बिना हो भी नहीं सकता। वे इतने दूर तक निकल गये उस यात्रा पर कि रात कृष्ण को लेकर सोते भी हैं बिस्तर पर!
और यहीं तक मामला नहीं है। वे जो असली भक्त हैं इस तरह के, जिन्होंने सभी स्त्री-भाव स्वीकार कर रखे हैं कि कृष्ण ही वह पुरुष है; हम स्त्री हैं, या उसकी स्त्रियां हैं। उनको मासिक-धर्म भी होता है! चार दिन वे उससे भी रुकते है! हो तो नहीं सकता मासिक-धर्म। पर कुछ आश्चर्य भी नहीं कि अगर बहुत आटो-हिप्नोसिस हो तो हो भी जाये। ऐसे वह भी बहुत आश्चर्य नहीं। लेकिन चार दिन, जैसे स्त्रियां सब चीजों से दूर रहेंगी, वैसे वे भी दूर रहेंगे! चार दिन उनका मासिक-धर्म आ जायेगा! ये असली भक्त हैं, जो कि लाजिकल, तर्कगत अंत तक पहुंच गये बिल्कुल! जिन्होंने अपने को बिल्कुल स्त्री मान रखा है! लेकिन भक्त होने के लिए स्त्रैण चित्त अनिवार्य शर्त है। उसका कारण
यह है उसका कारण यह है कि स्त्री का जो चित्त है-- स्त्रैण-चित्त, वह भावनापूर्ण है, पैसिव है। वह तर्कपूर्ण नहीं है।
इसलिए स्त्रियों ने कोई बहुत बड़े पंडित पैदा नहीं किये। जैसे मैंने कहा, ज्ञानयोगी स्त्रियों ने पैदा नहीं किये। उनके मन का वह हिस्सा उतना बलशाली नहीं है। स्त्रियों ने मीरा पैदा की है, थेरेसा पैदा की है और कुछ लोग पैदा किये हैं। लेकिन स्त्रियों में पंडित और शास्त्र निर्माण करने वाले--शास्त्र-निर्माता और सिस्टम मेकर्स, और दार्शनिक नहीं पैदा किये!

कपिल, कणाद या महावीर या बुद्ध इस तरह के लोग स्त्रियां पैदा नहीं कर सकतीं। स्त्रियों ने पैदा किये हैं भक्त। और पुरुष में भी जो लोग स्त्रैण-चित्त के हैं वे भी, ज्ञान उनके लिए मार्ग नहीं रह जाता है। भक्ति उनके लिए मार्ग है। वे भगवान को पति मानकर उसके आसपास जीने लगते है!
दूसरी शर्त है स्त्रैण-चित्त, कमजोर संकल्पहीनता। संकल्प पूरा छूट जाना चाहिए। आक्रमण का भाव छूट जाना चाहिए। बस सिर्फ जस्ट ए पैसिव अवेटिंग, एक प्रतीक्षा निष्क्रिय--कि आओ, आओ। पुकारना, रोना, छाती पीटना-- कि आओ! अगर कोई आदमी ज्यादा दिन नहीं, आप प्रयोग करके देखें, सिर्फ इक्कीस दिन काफी हैं। इस तरह के भगवान का दर्शन करने के लिए। इससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। इक्कीस दिन के लिए पूरे अंधे होकर स्वीकार कर लें और इक्कीस दिन के लिए--सिर्फ प्यास, पुकार, चिल्लाना, रोना, गाना, छाती पीटना जारी रखें। सुबह से सांझ हो जाये, सांझ से सुबह हो जाये। बस एक ही धुन लगाये रखें कि हे भगवान दर्शन दो, हे भगवान दर्शन दो! भगवान की मूर्ति स्पष्ट कर लें। मन में मूर्ति को लेकर बैठ जायें। उसी के साथ-साथ--उसी के साथ जागें। उस मूर्ति को खाना खिलायें, भोजन करवायें, स्नान करवायें! उस मूर्ति को जिंदा मान लें और उस मूर्ति के आसपास अपने भावों को रचते चले जायें। और श्वास-श्वास उसी में रंग जाये तो इक्कीस दिन से ज्यादा जरूरत नहीं। इक्कीस दिन काफी हैं।
और इक्कीस दिन में आप पायेंगे कि भगवान के दर्शन होने शुरू हो गये! उसका मतलब है, आप पागल होने की सीमा पर पहुंच गये। आप पागल हो गये। आपका दिमाग खराब हो गया। इससे खराब करना हो तो, और जल्दी करना हो खराब तो उपवास कर लेना बहुत अच्छा है। इक्कीस दिन उपवास भी कर लें, क्योंकि जितने कमजोर हो जायेंगे, उतने ही सपने प्रबल हो जायेंगे! उपवास कर लें। बहुत आसानी हो जायेगी नींद खो जायेगी उपवास करने से। इसलिए नींद में जो वक्त चला जाता है और रटन नहीं हो पाती भगवान की, वह भी जारी हो जायेगी। तो नींद में भी रटन होनी चाहिए। नींद में भगवान-भगवान--जो भी आपके भगवान हों, उनकी रटन जारी रहनी चाहिए। नींद कम हो जायेगी--रटन जारी रखें भूखे! उपवास में भूख को भुलाने के लिए भी रटन जारी रखनी पड़ेगी!
जिस दिन कोई उपवास करता है, वह मंदिर में बैठ जाता है, क्योंकि घर में
हो तो भूख की याद आ जाती है! मंदिर में भूख की याद नहीं आती! वहां लगते हैं झांझ-मंजीरा पीटने तो वहां भूख का पता नहीं चलता! भूख दब जाती है! और भूखा जो मन है--भूखा जो मन है, जितना भूख मन है जितना भूखा मन है, उतनी ही कल्पना प्रबल हो जाती है! उतनी ही कल्पना हो जाती है, उसकी ही कल्पना की शक्ति बढ़ जाती है। और एकांत में चले जायें। भीड़-भाड़ सपने देखने में बाधा डालती है। एकांत में चले जायें। एकांत में हमारे स्वप्न देखने की क्षमता में स्फुरणा होती है।
जैसे हम यहां इतने लोग बैठे हैं। अगर रात हम सारे लोग यहां सो जायें
तो कोई बात नहीं। लेकिन इस जगह एकाध आदमी, इधर रात अंधेरे में सो जाये जरा- सा पत्ता खड़कता है तो उसे लगता है कोई जाता है, किसी के पैर की आवाज सुनायी पड़ी! खुद ही शाम को स्नान करके पैंट टांग दिया है रस्सी पर और रात में घर में अकेला है तो ऐसा लगता है कि कोई आदमी खड़ा है! दो टांगें मालूम पड़ रही हैं! खुद ही टांगा है शाम को यह पैंट!
अकेला आदमी रह जाये तो उसकी कल्पना प्रगाढ़ हो जाती है। वह कल्पना काम करने लगती है। दूसरा आदमी मौजूद हो तो कल्पना पर रुकावट होगी। इसलिए भक्त को एकांत चाहिए। एकांत मिल जाये और वह रह जाये, उसका भगवान रह जाये तो बस फिर ठीक है। बहुत जल्दी मस्तिष्क रुग्ण हो सकता है।
भक्तों ने और भी इस तरह के उपाय किये हैं, जिनसे मस्तिष्क की, भाव की क्षमता तीव्र हो जाये--गांजा पिया है, अफीम खायी है, चरस पिया है। और अब अमेरिका में नये वैज्ञानिक साधन खोज लिए हैं। एल. एस. डी. मेस्कलीन, मारीजुआना--और भी नयी चीजें खोज ली हैं! वे चीजें और भी अच्छी हैं। अगर किसी को भक्ति में जल्दी जाना हो तो वैज्ञानिक विधियां और अच्छी हैं, क्योंकि वैज्ञानिक विधि का इतना ही मतलब होता है-- अवैज्ञानिक विधि बैलगाड़ी के ढंग से चलती है, वैज्ञानिक विधि जेट प्लेन की तरह चलती है, तेजी से चलती है।

एल्डुअस हक्सले ने एक किताब लिखी है--"डोर्स आफ न्यू परसेप्शन","नये दर्शन के द्वार" या"दर्शन के 9 द्वार" और उसमें उसने एक सलाह दी है कि अब कोई मीरा और कबीर की तरह मेहनत करने की जरूरत नहीं है। एल.एस.डी.का. उपयोग कर लेने से, लाइसर्जिक एसिड डायथेलामाइड को ले लेने से फौरन आदमी भक्ति की अवस्था में पहुंच जाता है! फिर जो भी देखना चाहे, वह देख लेता है! जो भी देखना चाहे! और जो भी मान ले, वह सत्य हो जाता है! क्योंकि ये जो केमिकल ड्रग्ज हैं, ये मस्तिष्क में जाकर तत्काल उसे आक्रांत कर देते हैं। समस्त तर्कबुद्धि श्रद्धापूर्ण हो जाती है! ये परिवर्तन समस्त विचार को क्षीण कर देते हैं। संदेह नष्ट हो जाता 8 है। और जैसे रात में हम सपना देखते हैं, ऐसा ही मन उस हालत में आ जाता है, जब वह चित्र पैदा करने लगता है।
जिस लोगों ने एल. एस. डी. लिया है--अब तो लाखों लोगों ने, करोड़ों लोगों
ने लिया है--उनकी अगर बात आप सुनें, अगर पढ़ें तो हैरानी होगी। उन्हें ऐसे रंग दिखायी पड़ने लगते हैं, जो हमें कभी दिखायी नहीं पड़े! उन्हें ऐसी प्रतिमाएं दिखायी पड़ने लगती हैं, जो हमें कभी दिखायी नहीं पड़ती! उन्हें ऐसे पक्षी उड़ते मालूम होने लगते हैं, जो कभी नहीं उड़े! उन्हें ऐसी ध्वनियां सुनायी पड़ने लगती हैं, जो हमने कभी नहीं सुनीं! अनाहद नाद वगैरह बहुत सुनायी पड़ता है, एल. एस. डी. लेने से! बड़े अदभुत संगीत सुनायी पड़ने लगते हैं! अदभुत फूल खिलने लगते हैं! और अगर कोई भगवान का भक्त हो तो, भगवान तत्काल मौजूद हो जाते हैं। एल. एस. डी. पूर्ण श्रद्धा दे देता है। चित्त को स्त्रैण बना देता है, और समस्त विचार की शक्ति को छीन लेता है। यह केमिकल ड्रग है।
लेकिन अब जो खोजबीन हो रही है, वह यह बताती है कि लंबे उपवास से भी मनुष्य के मन में भी इसी तरह का रासायनिक परिवर्तन होता है।
लंबे उपवास से भी मनुष्य में रासायनिक परिवर्तन होता है। और एल. एस.
डी. लेने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। ब्रह्मचर्य को बहुत जोर से, जबरदस्ती से साधने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। और प्राणायाम करने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। उस पर जो खोजें चल रही हैं, वे बहुत घबराने वाली हैं। वे यह कहती हैं कि ये सब केमिकल चेंजेस हैं, रासायनिक परिवर्तन हैं।
एक आदमी जो बहुत जोर से श्वास लेकर प्राणायाम करता है तो उसके शरीर का पूरा केमिकल बैलेंस, रासायनिक संतुलन बदल जाता है, क्योंकि आक्सीजन ज्यादा हो जाती है और कार्बन-डाय-आक्साइड कम हो जाती है। और उसके व्यक्तित्व का भीतर से सारा रासायनिक संतुलन बिगड़ जाता है। वह रासायनिक संतुलन बिगड़ जाये तो चित्त के सपने देखने की क्षमता बहुत तीव्र हो जाती है।
यह जो नयी केमिकल रिवोल्यूशन, रासायनिक क्रांति हो रही है, सारी दुनिया में--क्रांति की एक नयी धारणा आ रही है कि भगवान से मिलने के लिए एल. एस. डी. का इंजेक्शन ले लेने की जरूरत है, या एक गोली खा लेनी की जरूरत है, या मारीजुआना ले लेने की जरूरत है! कोई जरूरत नहीं है साधना करने की!
अगर भक्ति साधना है तो अब भविष्य में भक्ति कोई नहीं करेगा। भविष्य में तो केमिकल्स की टेबलेट मिल जायेगी केमिस्ट की दुकान से, जिसको लेकर आप खा लेंगे और भक्त हो जायेंगे! नाचने लगेंगे, गाने लगेंगे! और एकदम भगवान दिखायी पड़ने लगेंगे! अपने-अपने भगवान दिखायी पड़ेंगे। ईसाई को क्राइस्ट दिखायी पड़ेगा, कृष्ण वाले को कृष्ण दिखायी पड़ेगा, राम वाले को राम दिखायी पड़ेगा!
अभी एक आदमी ने न्यूयार्क में एल. एस. डी. लिया। अपनी चालीसवीं मंजिल
के मकान में सोया। उसको सदा सपना आता था कि वह आकाश में उड़ता है।
कई लोगों को आते हैं। जमीन पर रहने वालों को आकाश में उड़ने का सपना आये, यह कोई आश्चर्यजनक नहीं, आयेगा ही। किसके मन में इच्छा नहीं होती कि उड़ जाये। महत्वाकांक्षी चित्त को उड़ने का सपना आता है! वह एम्बीशन का प्रतीक है। वह इस बात का प्रतीक है कि हम सब नीचे की चीजों से ऊपर उड़ गये! सब नीचे छूट गये, हम ऊपर उड़ रहे हैं!
उसको भी सपना आता था कि वह आकाश में उड़ता है। एल. एस. डी. लेकर बड़ी मुश्किल हो गयी। एल. एस. डी. लेकर उसकी आंखों में फौरन दिखायी पड़ा कि मैं

पक्षी हो गया हूं। और वह अपनी चालीसवीं मंजिल के मकान से निकलकर उड़ गया! हड्डी-पसली नहीं मिली! क्योंकि एल. एस. डी. इतना भ्रम दे देता है कि जो भी मालूम पड़ता है, वह सच मालूम पड़ता है। उसमें संदेह होता ही नहीं, क्योंकि चित्त बिल्कुल संदेह से मुक्त हो जाता है। उसे एक बार भी ख्याल नहीं आया कि मैं पक्षी कैसे हो सकता हूं!
सपने में आपको ख्याल आया है? जब आप सपने में पक्षी हो जाते हैं, तब आपको ख्याल आया है कि यह मैं क्या देख रहा हूं! सपने में मैं पक्षी कैसे हो सकता हूं? नहीं, सपना पूर्ण विश्वास से भरा होता है। सपने में कभी शक नहीं आता कि मैं पक्षी कैसे हो सकता हूं? हां, जागने पर आता है। सुबह जागकर आप सोचते हैं कि क्या फिजूल की बात मैंने देखी कि मैं पक्षी हो गया था! कि घोड़ा हो गया था! कि यह हो गया था, कि वह हो गया था!
और मजा यह है कि सपने में, इतनी असंदिग्ध अवस्था होती है कि अगर पक्षी
से एकदम घोड़ा हो जाये तो भी ख्याल नहीं आता कि अभी पक्षी था तो घोड़ा कैसे हो गया? नहीं, सपने में संदेह होता ही नहीं। इसलिए मैंने कहा कि सपना देखने के लिए संदेह छोड़ना पहली शर्त है। पूर्ण श्रद्धा पहली शर्त है। एल. एस. डी्र श्रद्धा पैदा कर देती है!
वह आदमी उड़ गया। उड़ तो गया, लेकिन पक्षी तो वह था नहीं, आदमी था। गिरा
और मर गया! लेकिन हो सकता है कि मरते वक्त वह यही समझ रहा हो कि पक्षी ही मर रहा हूं, क्योंकि वह तो एल. एस. डी. की हालत में था।
साधुओं ने, भक्तों ने, बहुत पुराने जमाने से, वेद के युग से लेकर आज तक--वेद में जिसे सोमरस कहते हैं, वह आज के वैज्ञानिक एल. एस. डी. मेस्कलिन से भिन्न नहीं है! सोमरस से लेकर एस. एस. डी. तक भगवान को खोजने वाले ने सब तरह के नशों का उपयोग किया है! और सब तरह के नशों में उसने और सूक्ष्मतम नशे जोड़े हैं, सूक्ष्मतम नशे जोड़ता गया है!
संगीत भी नशा लाने में उपयोगी है!
अगर जोर से झांझ-मंजीरा पीटा जाये, बीस घंटे आपके चारों तरफ, तो आपका सिर घूमने लगेगा। उसको तो करके देख सकते हैं। इसे करने में कोई कठिनाई नहीं। और अगर बीस आदमी नाच रहे हों तो इक्कीसवां आदमी कितनी देर तक बिना नाचे बैठा रहेगा? थोड़ी देर में उसके हाथ-पैर फड़फड़ाने लगेंगे। उस आदमी में केमिकल चेंज, रासायनिक परिवर्तन होना शुरू हो गया! उसको नशा पकड़ने लगा! जहां बीस आदमी झांझ-मंजीरा पीट रहे हों, उसके कानों में झांझ-मंजीरा पड़ रहा हो तो बुद्धि कुंठित हो जाती है, तर्क खो जाता है! वह आदमी भी नीचे लग गया और तब पैर फड़कने लगते हैं, और नाच शुरू हो जाता है! और सपने दिखायी पड़ने लगते हैं और सब शांत हो जाता है!
संगीत का उपयोग किया गया है। भक्तों ने बड़ा उपयोग किया है संगीत का, क्योंकि संगीत बहुत मादक है! संगीत बहुत शराब के निकट है! ध्वनियों के निरंतर आघात से कान पर नशा पैदा किया जा सकता है।
भक्तों ने सौंदर्य का उपयोग किया है! सौंदर्य भी बहुत मादक हो सकता है!
सुगंध का उपयोग किया है, भक्तों ने! वह भी बहुत मादक हो सकता है!
भक्तों ने उन सब चीजों का उपयोग किया है, जो चित्त को नशे में ले जाये
और चित्त की तर्क-प्रतिभा को नष्ट कर दे! सोचने-विचारने को मिटा दे! और ऐसी हालत आ जाये कि जहां जो हो रहा है, उस पर पक्का भरोसा और विश्वास हो जाये! बस फिर भगवान के दर्शन होने में कठिनाई नहीं।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, भक्ति से कोई कभी भगवान तक नहीं पहुंचा। भक्ति से उस भगवान तक लोग पहुंच गये हैं, जिस तक उन्होंने पहुंचना चाहा था! उस भगवान तक नहीं, जो है।
भाव छोड़ देना पड़ेगा। भक्ति भी छोड़ देनी पड़ेगी, क्योंकि भक्ति और भाव
मन का ही एक हिस्सा है।
मन के पार जाना पड़ेगा। मन के ऊपर उठना पड़ेगा। मन को ट्रांसेंड किए बिना, मन के ऊपर उठे बिना, सत्य का कोई अनुभव नहीं हो सकता।
एक मित्र ने पूछा कि आप कहते हैं, सत्य को शब्द में नहीं कहा जा सकता?

नहीं कहा जा सकता। उसको जिसे हम मन के ऊपर उठकर जानें, उसे कहने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि कहने के लिए मन की जरूरत पड़ती है। मन के माध्यम से जिसे नहीं जाना, उसे मन के माध्यम से कहना भी संभव नहीं है।
लेकिन उन्होंने पूछा है कि दो ओर दो चार होते हैं, यह तो सत्य है, यह तो
आप कह ही सकते हैं?
उनको पता नहीं है कि दो ओर दो चार सत्य नहीं है, सिर्फ मान्यता है। सत्य नहीं है, सिर्फ हमारी मान्यता है। दो और दो पांच भी हो सकते हैं। और दो और दो छह भी हो सकते हैं। हमारी मान्यता की बात है। उनको शायद पता नहीं है गणित का बहुत। आइंस्टीन तीन ही संख्या का उपयोग करता था--एक, दो, तीन! वह कहता था कि दस तक की संख्या मानने की कोई जरूरत नहीं है।
है भी नहीं कोई जरूरत। आपने कभी सोचा है कि दस तक की संख्या ही क्यों होती है? फिर दस का ही फैलाव है! शायद आपको ख्याल ही न हो। दस तक की संख्या का कारण बहुत अदभुत है। कोई बहुत गणित का कारण नहीं है। आदमी के हाथ में दस उंगलियां हैं, इतना ही कारण है! और कोई कारण नहीं है, क्योंकि आदमी ने उंगलियों से गिनना शुरू किया तो पहले उसने दस की गिनती पकड़ ली! इसलिए सारी दुनिया में दस की संख्या चलती है! क्योंकि सारी दुनिया में दस उंगलियां होती हैं। दस उंगलियां होना कोई लेकिन उससे दस की संख्या बन गयी! दस की संख्या बनने की वजह से दो और दो चार होते हैं!
आइंस्टीन कहता था एक, दो, तीन काफी हैं! अगर तीन की संख्या मान ली जाये
तो दो और दो चार कैसे होंगे? क्योंकि चार का तो अंक ही न रहा। एक, दो, तीन। तीन के बाद आयेगा; दस, ग्यारह, बारह, तेरह! तेरह के बाद आयेगा बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस! दो और दो कितने होंगे? दस होंगे, अगर तीन की संख्या मान ली जाये! यह सब मान्यता की बात है। इनका सत्य से कुछ लेना-देना नहीं।
गणित बिल्कुल मान्यता है। हमारा माना हुआ खेल है। संख्याओं का खेल है। हमने मान लिया है, वैसा चल रहा है।
भाषा हमारा माना हुआ खेल है। लैंग्वेज बिल्कुल ही खेल है। हमने मान रखा है, खेल चल रहा है। अगर एक आदमी भी इनकार कर दे तो हम उसको राजी नहीं कर सकते। हम कहते हैं कि यह हाथ है। अगर एक आदमी उसे कहे कि हम हाथ इसे क्यों मानें? तो दुनिया की कोई ताकत उसे नहीं समझ सकती कि हाथ उसे मानना जरूरी है? वह कहता है कि हम हैंड मानते हैं तो हैंड मानना पड़ेगा।
और वह कहे कि हम यह भी नहीं मानते तो दुनिया में कोई हजारों भाषायें हैं। जिसमें हाथ के लिए अपना-अपना खेल है। हजारों खेल हैं। सब भाषायें खेल हैं। कोई जबरदस्ती नहीं है कि यह हाथ ही क्यों है? यह जो है, वह है। बाकी सब आपका खेल है। आप जो चाहें, वह लगा दें। इसमें कोई झंझट नहीं आती। हाथ कभी कहता नहीं कि मैं कौन हूं? आपकी जो मरजी, वह कहें। हम दस आदमी तैयार हो जाते हैं कि हम इसको हाथ कहेंगे। हम दस के लिए यह भाषा कारगर हो जाती है। भाषा मान्यता है, सत्य मान्यता नहीं है।
इसलिए जहां तक भाषा है, वहां तक सत्य का पता नहीं चलता। लेकिन मन के छूटते ही भाषा भी छूट जाती है। जहां तक गणित है, वहां तक सत्य का पता नहीं चलता। लेकिन मन से छूटते ही गणित भी छूट जाता है। मन गया कि सब गया। और तब जो शेष रह जाता है, वह क्या है? इसे जानने के सिवा और कोई उपाय नहीं।
मेरे कहने से कुछ पता नहीं चलेगा। किसी से कहने से कुछ पता नहीं चलेगा। हां, इतना ही पता चल सकता है कि शायद कुछ है, जो हमारे घर की दीवारों के बाहर भी है। आप जायें घर के बाहर दीवार की तरफ--बाहर खड़े हो जायें। मैं इतना ही कह सकता हूं, घर की दीवारों के भीतर नहीं है। इसलिए परमात्मा के संबंध में जो भी कहा गया है, वह सदा निषेधात्मक, निगेटिव है। वह नेति-नेति है। इतना ही कहा जा सकता है--यह भी नहीं है, वह भी नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है--नाट दिस, नाट दैट।
तो आप पूछेंगे, क्या है? वह नहीं कहा जा सकता। इतना ही कहा जा सकता है
कि इस मकान की दीवार में भी नहीं है--इस दीवार में भी नहीं है।
इस दीवार में भी नहीं है! आप पूछेंगे, तो फिर किस दीवार में है? तो मुझे चुप रह जाना पड़ेगा। दीवार में नहीं है। दीवार के बाहर है। और आप सब दीवारों के बाहर चले जायें तो मिल जाये।
इसलिए सत्य की सारी खोज निषेध की खोज है।

परमात्मा की सारी खोज निषेध की खोज है।
जो आदमी सबको इंकार कर पाता है, अंततः उसे उपलब्ध हो जाता है,"जो है"।
लेकिन अगर आप इंकार करने में कमजोर हैं और आपने कहा, कैसे इंकार करूं? भक्ति को कैसे इंकार करूं? ज्ञान को कैसे इंकार करूं? कर्म को कैसे इंकार करूं? पूजा को, पंडित को कैसे इंकार करूं? तो आप 8 पंडित, पूजा, भक्ति, ज्ञान की दीवारों के भीतर खड़े रह जायेंगे। सत्य के पास नहीं पहुंच सकते।
और ये सब खेल हैं।
भक्ति खेल है भाव का।
और ज्ञान खेल है विचार का।
और कर्म खेल है मन के कर्म की पर्त का।
कल हम उस तीसरी पर्त के बारे में विचार करेंगे कि यह कर्म का खेल क्या है? अगर आप सारे खेलों के बाहर हो जायेंगे। हो सकते हैं। हैं ही। लेकिन आपको पता नहीं, ख्याल नहीं, स्मरण नहीं। अगर बाहर हो जायें तो जिसे आप जानेंगे--जिसके लिए कोई शब्द बताने वाला नहीं है। जिसके लिए कोई चित्र बताने वाला नहीं है। जिसके लिए कोई मूर्ति बताने वाला नहीं है। जिसके लिए कोई इशारा नहीं किया जा सकता कि वह रहा, क्योंकि इशारे में बड़ी गड़बड़ है। अंतिम बात कहूं। इशारे में बड़ी भूल है। अगर मैं कहूं, वह रहा, तो इशारा सदा सीमित कर देता है, क्योंकि इशारे के बाहर जो है, फिर वह कौन है? हम किसी सीमित चीज के संबंध में इशारा कर सकते हैं कि वह रहा। कह सकते हैं, वह रहा, लेकिन फिर बाकी जो इशारे के बाहर रह गया, वह क्या?
परमात्मा के संबंध में इशारा नहीं हो सकता उंगली बताकर। उसके संबंध में इशारा हो सकता है, मुट्ठी बांधकर कि यह रहा। यह रहा का मतलब यह है कि हम कहीं इशारा नहीं कर सकते उसके लिए। इशारा करेंगे तो गड़बड़ हो जायेगा। अगर हमने कहा,"सम व्हेयर", तो फिर वह"एवरी व्हेयर" नहीं हो सकता। अगर हमने कहा,"वहां है" तो"सब जगह" कैसे होगा? जिसे सब जगह होना है, जिसे"एवरी व्हेयर" होना है, उसे"नो व्हेयर" होना पड़ेगा। जिसे"सब जगह" होना है, उसे"कहीं भी नहीं" होना पड़ेगा। इसलिए कोई इशारा काम नहीं करता। कोई संकेत काम नहीं करता। लेकिन फिर क्या रास्ता है?
सब संकेतों को गिरा दें, सब इशारों को गिरा दें।
एक मित्र ने पूछा है। आप कहते हैं, ज्ञान भी मार्ग नहीं, भक्ति भी मार्ग नहीं। कर्म भी मार्ग नहीं, तो आपका मार्ग क्या है?
मैं यह कह रहा हूं, मार्ग ही नहीं है।
मेरा मार्ग मत पूछें, क्योंकि मैं अपना मार्ग बता दूं तो वह चौथा मार्ग हो जायेगा। वह भी नहीं है। मार्ग ही नहीं है। और जो आदमी समस्त मार्गों के बाहर खड़ा हो जाता है, वह"वहां" पहुंच जाता है। मार्ग के बाहर होने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।
मेरी बातें इतनी शांति और प्रेम से सुनीं, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नेति-नेति
बाईसवां प्रवचन

कर्मः सबसे बड़ा भ्रम

मेरे प्रिय आत्मन्,
कर्म के योग पर आज थोड़ी बात करनी है।
बड़ी से बड़ी भ्रांति कर्म के साथ जुड़ी है। और इस भ्रांति का जुड़ना बहुत स्वाभाविक भी है।
मनुष्य के व्यक्तित्व को दो आयामों में बांटा जा सकता है। एक आयाम है--बीइंग का, होने का, आत्मा का। और दूसरा आयाम है--डूइंग का, करने का, कर्म का। एक तो मैं हूं। और एक वह मेरा जगत है, जहां से कुछ करता हूं।
लेकिन ध्यान रहे, करने के पहले"होना" जरूरी है। और यह भी ख्याल में ले लेना आवश्यक है कि सब करना,"होने" से निकलता है। करना से"होना" नहीं निकलता। करने के पहले मेरा"होना" जरूरी है। लेकिन मेरे"होने" के पहले करना जरूरी नहीं है।
कर्म जो है, वह परिधि है। अस्तित्व जो है, वह केंद्र है।
अस्तित्व आत्मा है।
कर्म हमारा जगत के साथ संबंध है।
ऐसा समझें, एक सागर पर बहुत लहरें हैं। सतह पर बहुत हलचल है। लहरें उठती हैं, गिरती हैं। इन लहरों का जो फैला हुआ जाल है, यह कर्म का जाल है।
सागर सतह पर बड़ा कर्मरत है, लेकिन नीचे उतरें तो सन्नाटा है। और नीचे जायें तो बिल्कुल सन्नाटा है। और नीचे जायें तो कोई लहर नहीं, कोई हलचल नहीं। गहरी चुप्पी है। सागर की लहरों के नीचे सागर का"होना" है।
"होना" गहरे में है। कर्म का जाल, लहरों का जाल ऊपर परिधि पर है।
प्रत्येक व्यक्ति की परिधि पर, सर्कमफरेंस पर, कर्म का जाल है। और प्रत्येक व्यक्ति के केंद्र पर होने का सागर है।
लेकिन जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं तो उसका"होना" दिखायी नहीं पड़ता, उसका करना ही दिखायी पड़ता है!"होना" दिखायी पड़ भी नहीं सकता।
सागर के पास जब आप जाते हैं तो आप कहते हैं कि सागर दिखायी पड़ रहा है। सागर दिखायी नहीं पड़ता, दिखायी पड़ती हैं सिर्फ लहरें। सागर आपको कभी दिखायी नहीं पड़ा होगा। लहरें ही दिखायी पड़ी होंगी। लहरें सागर नहीं हैं, क्योंकि कोई लहर सागर के बिना अस्तित्व में नहीं हो सकती। अगर हम लहर को सागर से अलग बचाना चाहें तो लहर मर जायेगी। लेकिन सागर बिना लहर के हो सकता है। सागर बिना लहर के मर नहीं जायेगा। इसलिए मूल सागर है, लहर बाइ-प्रोडक्ट है, लहर उप-उत्पत्ति है। इसलिए लहर नहीं हो सकती सागर के बिना। सागर बिना लहर के हो सकता है।
कर्म नहीं हो सकता बिना आत्मा के। लेकिन आत्मा बिना कर्म के हो सकती है। अगर मैं नहीं हूं तो मेरे सब कर्म खो जायेंगे। लेकिन मेरे सब कर्म खो जायें तो भी मैं नहीं खो जाता हूं।
इस बुनियादी भेद को सबसे पहले समझ लेना जरूरी है। लेकिन फिर भी जो मैं हूं, वह आपको दिखायी नहीं पड़ता। आप जो हैं, वह मुझे दिखायी नहीं पड़ते। आप जो करते हैं, वही दिखायी पड़ता है! मैं जो करता हूं, वही दिखायी पड़ता है! करना दिखायी पड़ता है।"होना" छिपा है। करना दृश्य है,"होना" अदृश्य है। करना ज्ञात है,"होना" अज्ञात है।
हमारे भीतर ये दो दिशाएं हैं एक"करने" की, दृश्य की, लहरों की--जो दूसरों को दिखायी पड़ सकेगा, ज्ञात हो सकेगा। और एक"होने" की, जो किसी को ज्ञात नहीं हो सकेगा, किसी को भी दिखायी नहीं पड़ सकेगा, जो सदा छिपा है, सदा पीछे है गहरे में, दी हिडेन, वह सदा पीछे छुपा है--गूढ़।
ये दो हमारी दिशायें हैं"होने" की, अस्तित्व की; और"करने" की। इन दोनों दिशा में कौन मूल है, इसे अगर हम न पहचान पायें तो बहुत भूल हो जायेगी। क्योंकि यह बड़े नियम की बात है कि गौण के द्वारा मूल को नहीं पाया जा सकता। मूल के द्वारा गौण को पाया जा सकता है।

जैसे कि हम गेहूं को बो देते हैं। फिर गेहूं की फसल आती है और गेहूं के साथ भूसा भी आता है। भूसा मूल नहीं है, परिधि है, बाहर का खोल है। गेहूं मूल है--भीतर का छिपा हुआ हिस्सा है। गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है। लेकिन आप भूसा बो दें तो गेहूं पैदा नहीं होगा। गेहूं बो दें, भूसा आ जायेगा। अपने आप आ जायेगा। लेकिन भूसा बो दें तो गेहूं आयेगा ही नहीं, भूसा भी नष्ट हो जायेगा।
मनुष्य का कर्म जो है, वह भूसे की तरह है। और मनुष्य का"होना" जो है, वह गेहूं की तरह है। अगर भीतर"होना" है तो कर्म बदल जायेगा। जैसा"होना" होगा, वैसा कर्म हो जायेगा। लेकिन बाहर से कर्म बदलता है तो वैसा"होना" नहीं बदल जाता।
मेरा जोर"होने" पर है, बीइंग पर। लेकिन कर्मयोग का जोर"कर्म" पर है,"होने" पर नहीं, बीइंग पर नहीं। कर्मयोग कहता है करो--ऐसा करो! ऐसा करोगे तो ऐसे हो जाओगे। गलत है यह बात।
"ऐसे" हो जाओगे तो"ऐसा कर्म" हो सकता है। लेकिन ऐसा न करोगे तो ऐसे नहीं हो जाओगे। लेकिन दिखायी कर्म पड़ता है, इसलिए भ्रांति हो जाती है। कोई महावीर हमारे बीच से निकलें तो दिखायी पड़ेगा कि महावीर नग्न हो गये! कर्म है। वस्त्र पहनना एक कर्म है। नग्न हो जाना एक कर्म है। महावीर नग्न हो गये, ऐसा हमें दिखायी पड़ेगा। और फिर दिखायी पड़ेगी महावीर की शांति और महावीर का आनंद और उनके चारों तरफ रहस्य की बहती हुई हवायें और उनकी आंखों में गहराई। वह सब दिखायी पड़ेगा। और दिखायी पड़ेगा यह कर्म कि महावीर नग्न हो गये! हमारे मन में भी ख्याल हो सकता है कि अगर मैं भी नग्न हो जाऊं तो जो महावीर को मिला था, वह मुझे भी मिल जायेगा!
हम भूसे से गेहूं की तरफ चले। पकड़ लिया हमने कर्म को। महावीर क्या खाते हैं, क्या पीते हैं--यह कर्म है। देखा कि क्या खाते हैं, क्या पीते हैं? कब खाते हैं, कैसे खाते हैं? कब नहीं खाते हैं? कैसे चलते हैं? कैसे उठते हैं? ये कर्म हैं। कैसे बोलते हैं? कैसे नहीं बोलते हैं? यह सब हमने देखा। हमने परिधि को पूरा जांच लिया। हमने कहा कि यह परिधि हम भी पूरी कर लें तो जो इस आदमी के भीतर घटा है, वह हमारे भीतर भी घट जायेगा!
तो हम भी उठने लगें ब्रह्ममुहूर्त में! हो जायें नग्न। यह खायें, यह न खायें। ऐसे चलें, ऐसे न चलें। यह हम सब कर लें पूरा। ठीक महावीर जितना करते थे, उतना कर लें। पूरा, इंच भर भी कमी न रह जाये। तो भी भीतर वह पैदा नहीं होगा, जो महावीर के भीतर पैदा हुआ, क्योंकि हम उलटे चल पड़े। घटना को हमने उलटा देखा। महावीर के भीतर--पहले कुछ भीतर भरा हुआ है, तब फिर बाहर फैला है। हमने बाहर से पकड़ा और भीतर चले! भीतर से बाहर की तरफ आ सकते है, बाहर से भीतर की तरफ नहीं जा सकते। बाहर भूसा है, भीतर गेहूं है।
महावीर की आंखों में जो शांति दिखायी पड़ती है, महावीर के अस्तित्व में जो निर्मलता दिखायी पड़ती है उनके होने में जो एक इनोसेंस--एक निर्दोष साधक है, वह पहले है। क्योंकि भीतर एक निर्दोष होने का जन्म हो गया है, इसलिए बाहर वे नग्न हो सके। भीतर की निर्दोषता बाहर की नग्नता बन सकी। लेकिन बाहर की नग्नता भीतर की निर्दोषता नहीं बन सकती।
इसे जितना हम ठीक से समझ लें, उतना ही सत्य की दिशा में गति करना आसान
हो जाये। बड़े से बड़े उलझाव इससे पैदा होते हैं। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हम क्या करें? कभी भी नहीं पूछते कि हम क्या हो जायें! वे पूछते हैं, हम क्या करें?
मैं अभी एक गांव में ठहरा था। गांव का कलेक्टर मुझसे मिलने आया और उसने कहा, अगर मैं भी आप जैसी चादर पहन लूं तो कुछ लाभ होगा? कुछ भी लाभ नहीं होगा। चादर को थोड़ा-बहुत नुकसान हो जायेगा!
वह कहने लगे, नहीं, आप मजाक करते हैं। मुझे ठीक से बतायें। आप उठते कब हैं? आप खाते क्या हैं? मैं भी वैसा ही करूं!
वह आदमी जिज्ञासु है, खोजता है। गलत छोर से खोजता है।
लेकिन हजारों साल से मनुष्य-जाति गलत छोर से खोज रही है। वही आदमी कसूरवार नहीं है। और स्वाभाविक ही है यह भूल। यह इसलिए स्वाभाविक है कि कर्म दिखायी पड़ता है, होना दिखायी नहीं पड़ता। करे भी क्या कोई! जो दिखायी

पड़ता है, उसी से चलने की बात ख्याल में आती है। जो नहीं दिखायी पड़ता, वहां से चलें कैसे?
लेकिन मैं आपको कहना चाहता हूं कि अगर यह हमारी समझ में आ जाये कि जो दिखायी पड़ता है, वे तरंगें हैं--बाहर की। और भीतर सागर है, जहां तरंग ही नहीं, निस्तरंग है। वहां से ही सारी गति है, वहां से ही सारा होना है। हमारा सारा व्यक्तित्व भीतर से फैलता हुआ है। हम निरंतर भीतर से फैलते चले जाते हैं। एक छोटा-सा बीज हम बोते हैं, फिर वह अंकुरित होता है। बड़ा वृक्ष होता चला जाता है। एक छोटा-सा बीज भीतर से बाहर की तरफ फैलता है-- फैलता है, फैलता चला जाता है। मां के पेट में एक छोटा-सा अणु आता है, जिसे आंख से देखा नहीं जा सकता। फिर वह अणु फैलता है फैलता है--फैलता है और एक व्यक्ति निर्मित हो जाता है! सब भीतर से बाहर की तरफ फैल रहा है।
अभी वैज्ञानिकों ने एक नवीनतम खोज की है, वह बड़ी महत्वपूर्ण है। वह है एक्सपैंडिंग यूनिवर्स! पहले हम सोचते थे, जगत जैसा है, वैसा ही है। वही है। ठहरा हुआ है। लेकिन नवीनतम अनुभव ने बड़ी हैरानी कर दी। जगत फैल रहा है, जैसे की कोई गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा बड़ा होता जाता हो! फैलता जा रहा हो, फैलता जा रहा हो। जगत फैल रहा है! और प्रतिपल करोड़ों मील की रफ्तार से तारे दूर भागे जा रहे हैं--परिधि की तरफ फैलते जाते हैं, केंद्र से हटते जा रहे हैं!
जगत जो है, एक्सपैंडिंग है। आज से दो करोड़ वर्ष पहले जगत छोटा था। तारे करीब-करीब थे। आज जगत बड़ा है, कल और बड़ा होगा! और अंतहीन फैलाव है! हमारे पास एक शब्द है ब्रह्म। ब्रह्म बहुत कीमती शब्द है। और आज नहीं कल, विज्ञान को इस शब्द को स्वीकार कर लेना होगा। इसको इसलिए स्वीकार कर लेना होगा कि ब्रह्म का मतलब होता है दी एक्सपैंडिंग, जो फैल रहा है, फैल रहा है, फैलता ही जा रहा है! ब्रह्म का मतलब होता है, जो विस्तीर्ण हो रहा है, जो फैलता जा रहा है! जिसके फैलाव का कोई अंत नहीं है! जो कहीं रुकेगा नहीं, फैलता ही चला जायेगा!
इस बात को समझा जा सकता है कि कभी सारा जगत जैसे एक छोटा-सा बच्चा मां
के पेट में एक अणु होता है, और एक छोटा-सा बीज एक बड़े वृक्ष का एक जरा-सा बीज होता है! आश्चर्य नहीं, निश्चित ही ऐसा हुआ होगा। कभी यह सारा, इतना बड़ा जगत एक छोटा-सा बीज रहा होगा। फैलता गया, फैलता गया। आज इतना बड़ा है, कल और बड़ा-- कल और बड़ा! भीतर से बाहर की तरफ फैलाव है। भीतर से शक्ति के स्त्रोत हैं, वे फूटते जाते हैं और बाहर की तरफ फैलते जाते हैं।
लेकिन मनुष्य के जीवन में एक भूल हो जाती है। और वह भूल यह हो जाती है,
हम बाहर देखते हैं और सोचते हैं कि बाहर से भीतर की तरफ चलें!
कर्मयोग बाहर से भीतर की तरफ चलने की भ्रांति है।
कर्मयोग की मान्यताएं हैं कि कुछ करो। करोगे तो हो सकोगे। कर्मयोगी कहता है, बैठ मत जाना, विश्राम मत करना। बैठ जाओगे, विश्राम करोगे, तो पहुंच न सकोगे। कुछ करो और ठीक करो, क्योंकि गलत किया तो भटक जाओगे। इसलिए कर्मयोग गहरे में शुभ और अशुभ का चुनाव है, एक च्वाइस है--यह है ठीक, यह है गलत! गलत को छोड़ो और ठीक को करो। गलत को छोड़ते जाओ और ठीक को करते जाओ। एक दिन ऐसा आयेगा कि गलत छूट जायेगा और ठीक ही ठीक शेष रह जायेगा। जिस दिन ठीक ही ठीक शेष रह जायेगा, उसी दिन परमात्मा उपलब्ध हो जायेगा। ऐसा कर्मयोग मानता है।
यह मानना बिल्कुल ही गलत है। बिल्कुल ही गलत इसलिए है कि इसमें बहुत
से इंप्लीकेशन्स हैं, बहुत-सी छिपी हुई बातें हैं। उसे खोलकर देख लेनी चाहिए। पहली तो बात यह है कि क्या है शुभ और अशुभ?
जब तक किसी ने स्वयं को नहीं जाना, तब तक वह यह जान ही नहीं सकता कि क्या है शुभ और क्या है अशुभ?
असंभव है जानना--शुभ क्या है? किस चीज को ठीक कहें? महावीर कहते हैं कि चींटी न मर जाये! चींटी मर गयी तो बहुत अशुभ हो जायेगा! कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, बेफिक्री से मार, क्योंकि कोई मरता ही नहीं! तू मारेगा भी तो भी कोई मरने वाला नहीं! क्या है शुभ?
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, मार। बेफिक्री से मार। कोई चिंता मत कर। क्योंकि कभी कोई मरता ही नहीं। आत्मा अमर है। तू तलवार चला। कुछ कटता ही

नहीं है। शस्त्र से कटता ही नहीं है कुछ। तू काट, तू भ्रम छोड़ दे कि कोई मरता है। कोई मरता ही नहीं। आत्मा अमर है।
महावीर कहते हैं, फूंककर पैर रखना, चींटी न दब जाये, हिंसा न हो जाये, अन्यथा पाप हो जायेगा!
क्या है शुभ? महावीर कहते हैं, वह शुभ है! कि कृष्ण कहते हैं, वह शुभ है!
महावीर के मानने वालों ने कृष्ण को नर्क में डाल रखा है, इसी शुभ-अशुभ
की झंझट की वजह से, क्योंकि कृष्ण तो बड़ी अशुभ बात कह रहे हैं। वह कह रहे हैं, काटो!
महाभारत शायद बच भी जाता, अर्जुन अगर भाग जाता और संन्यासी हो जाता। होने की स्थिति पैदा हो गयी थी! भागने की तैयारी पूरी थी! लेकिन कृष्ण ने कहा, कहां भागकर जायेगा?
तो महावीर को मानने वाले ने कृष्ण को डाल दिया नर्क में। इस कल्प में नर्क से उनका छुटकारा नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने इतनी हिंसा कर डाली। लेकिन कृष्ण के मानने वाले कहते हैं, कृष्ण से पूर्ण अवतार कभी भी नहीं हुआ है! कौन है शुभ? कौन है अशुभ? नहीं, कर्म की परिधि पर तय ही नहीं किया जा सकता।
लेकिन आप कहेंगे कि अगर आत्मा की परिधि पर महावीर पहुंच गये और कृष्ण
भी पहुंच गये तो फिर यह फर्क क्यों है? वे आत्मा में पहुंच गये, होने में पहुंच गये तो फिर यह फर्क क्यों है? जिस दिन आप पहुंचेंगे, तब आप पायेंगे, फर्क नहीं है। वे दोनों एक ही बात को दो तरफ से कह रहे हैं।
महावीर कहते हैं, पैर फूंककर रख कि चींटी न दब जाये। महावीर भी जानते हैं कि कुछ नहीं मरेगा, चींटी भी नहीं मरेगी। कुछ मरने वाला नहीं है। आत्मा अमर है, इसे वे भी जानते हैं। फिर वे कहते हैं, मार मत! यह क्यों कहते हैं? वे इसलिए कहते हैं कि मरेगा तो कुछ भी नहीं, लेकिन तेरा यह ख्याल कि मैंने मारा, वह बहुत कठिनाई में डाल देगा। मरेगा तो कुछ भी नहीं। सवाल मरने का है ही नहीं। सवाल तेरे इस ख्याल का है कि मैंने मार डाला। यह ख्याल तुझे दिक्कत में डाल देगा। तुझे तो पता नहीं कि कुछ नहीं मरेगा।
वे एक छोर से बात कर रहे हैं। जिनसे वे बात कर रहे हैं वे उन्हीं लोगों
से बात कर रहे हैं, जो मारने में उत्सुक हैं। वे अर्जुन से बात नहीं कर रहे हैं, जो न मारने में उत्सुक हो। महावीर उनसे बात कर रहे हैं, जो मारने में उत्सुक हैं! जो चाहते हैं कि कोई समझा दे कि कुछ भी नहीं मरता, तो अच्छी तरह मारे। महावीर उनसे बोल रहे हैं, जो मारने में उत्सुक हैं। तो महावीर कहते हैं, फूंककर पैर रखना, क्योंकि जो तेरी मारने की उत्सुकता है, वह तुझे दिक्कत में डाल देगा। मरेगा कुछ भी नहीं, लेकिन तूने मारा, यह ख्याल तेरे लिए उपद्रव का कारण हो जायेगा।
कृष्ण बिल्कुल दूसरे आदमी से बात कर रहे हैं। वे उस आदमी से बात कर रहें हैं, जो न मारने में उत्सुक हो गया है। वह कहता हैं, मैं न मारूंगा। वह क्यों उत्सुक हो गया है? वह कहता है, मारने से पाप लग जायेगा!
महावीर जिसको समझा रहे हैं, उसका गलत ख्याल यह है कि मैंने मारा, मैं मार रहा हूं! यह उसका गलत ख्याल है।
अर्जुन का गलत ख्याल यह है कि कोई मर जायेगा तो मुझे पाप लग जायेगा! उसका यह ख्याल नहीं है कि मेरे मारने से पाप लग जायेगा। उसका ख्याल है, कोई मर जायेगा तो मुझे पाप लग जायेगा! कृष्ण उसे कहते हैं, कोई मरता ही नहीं, तू बेफिक्री से मार।
ये दोनों आदमी एक ही बात कहते हैं! ये दोनों अलग बातें नहीं कहते! लेकिन परिधि पर देखने से ये बातें इतनी अलग हैं, जितनी हो सकती हैं। इनके बीच कोई मेल नहीं हो सकता।
असल में अगर हम एक बिंदु रखें, फिर बिंदु के ऊपर परकाल रखकर एक वृत्त खींचें, एक सर्कल बनायें, सर्कल पर पचास बिंदु बनाकर बीच के बिंदु की तरफ रेखायें खींचें, तो परिधि पर दो रेखाओं में फासला होगा और जैसे-जैसे केंद्र की तरफ चलने लगेंगे तो फासला कम होगा। और जब दो रेखायें--जबकि परिधि पर बहुत दूर-दूर थीं, जब केंद्र पर आयेंगी तो एक ही बिंदु पर खड़ी हो जायेंगी।

जो लोग बीइंग पर पहुंचे हैं, जिन लोगों ने आत्मा को जाना हो, वहां कोई फर्क नहीं रह जाता। लेकिन परिधि पर बहुत फर्क हैं, क्योंकि सारे धर्म परिधि को देखकर बने हैं, इसलिए धर्म में फर्क हैं!
अगर किसी दिन आत्मा को देखकर धर्म का जन्म होगा तो दुनिया में एक ही धर्म हो सकता है, बहुत धर्म नहीं हो सकते।
लेकिन मोहम्मद की परिधि अलग है, महावीर की परिधि अलग है, कृष्ण की परिधि अलग है। होगी ही। हर लहर अलग होगी। एक ही सागर पर उठने वाली दो लहरें भी एक जैसी नहीं होंगी। सब लहरें अलग होंगी। लहरें अलग होंगी ही।
लेकिन लहरों के नीचे एक ही सागर है और वहां हमारा ध्यान नहीं जाता। फिर हम लहरों को पकड़कर चलना शुरू कर देते हैं! कोई महावीर का आचरण देखकर चलता है तो जैन हो गया! कोई बुद्ध का आचरण देखकर चलता है तो बौद्ध हो गया! कोई कृष्ण का आचरण देखकर चलता है तो हिंदू हो गया! कोई जीसस का आचरण देखकर चलता है तो ईसाई हो गया! सब आचरण को देखकर चलने वाले लोगों के बनाये हुए धर्म हैं!
सारी दुनिया में कर्मवाद है। कर्म को देखकर हम चल रहे हैं, इसीलिए इतना उपद्रव है। शुभ और अशुभ का निर्णय कैसे करियेगा? कैसे जानियेगा कि क्या शुभ है, और क्या अशुभ है? नहीं जान सकते। जिसने अभी अपने को ही नहीं जाना, वह नहीं जान सकता कि शुभ क्या है, अशुभ क्या है? लेकिन कर्मयोग कहता है कि शुभ और अशुभ को देखकर चलो! कौन तय करेगा? कैसे तय करियेगा कि क्या शुभ और क्या अशुभ?
कबीर के घर बहुत लोग इकट्ठे होते थे और जब लोग जाने लगते थे--सुबह भजन-कीर्तन समाप्त होता, मिलना-जुलना बंद होता--तो कबीर कहते, भोजन करते जाना! कबीर का लड़का परेशान हो गया, क्योंकि कहां से लाये इतना? कभी दो सौ लोग इकट्ठे होते, कभी पांच सौ लोग इकट्ठे होते! इन सबको भोजन कहां से हम कराये रोज-रोज? कबीर से उसने बहुत बार कहा कि अब कल से कभी मत कहना लोगों से जाते वक्त कि भोजन कर लो, क्योंकि मैं कहां से लाऊंगा इतना? मैं कैसे यह इंतजाम करूं? हम गरीब आदमी हैं, आप भूल क्यों जाते हैं?
कबीर बार-बार भूल जाते! क्योंकि जिसको भीतर की संपत्ति दिख गयी हो, उसको गरीबी का ख्याल नहीं रह जाता। वह रोज भूल जाता है।
बेटा रोज सांझ गरदन पकड़ लेता है कि तुम आदमी कैसे हो! हम गरीब आदमी हैं, हम भूखे मर रहे हैं। हम कहां से लोगों को खिलाये? कर्ज हुआ जाता है। लोगों से मांग-मांग कर परेशान हो गये। अब गांव में कोई देने को भी तैयार नहीं! सुबह जब लोग आते तो कबीर कहते, कहां चले, भोजन तो करते जाओ!
वह जिसको भीतर की संपत्ति दिख गयी हो, उसको बाहर की दरिद्रता को याद रखना मुश्किल हो जाता है। कितनी ही कोशिश करे, छूट-छूट जाता है। जिसको भीतर की संपदा नहीं मिली, उसको बाहर की कितनी ही संपदा मिल जाये, उससे दरिद्रता नहीं मिटती। वह भीतर का दरिद्र कह देता है कि अभी कुछ नहीं है, अभी कुछ नहीं है। अभी कुछ मिला ही क्या है? अभी तो और मिल जाये! वह भीतर आदमी दरिद्र बना रहता है। बाहर की संपत्ति दरिद्रता नहीं मिटा पाती। इसलिए अकसर ऐसा होता है, जितनी संपत्ति उतना दरिद्र आदमी, उतना भीतर दीन-हीन!
आखिर एक दिन कबीर के लड़के ने कबीर से कहा, बहुत हो गया, अब अंतिम, जिसको अल्टिमेटम कहते हैं, आखिरी निर्णय हो जाना चाहिए, कल से इस घर में मैं नहीं रहूंगा। क्या मैं चोरी करने लगूं? उसने तो क्रोध में कहा था कि कबीर को कोई बुद्धि आ जाये! लेकिन जो निर्बिद्ध के बाहर चले गये हों, वे बड़े निर्बिद्ध हो जाते हैं। एक तो नीचे जो रहते हैं, वे भी निर्बिद्ध हैं। और बुद्धि के ऊपर जो चले जाते हैं, वे भी निर्बिद्ध हो जाते हैं। लेकिन दोनों में बड़ा फर्क होता है। करीब-करीब एक जैसे होते हैं। एकदम से पहचानना मुश्किल है।
कबीर ने कहा, मूर्ख, तुझे पहले क्यों नहीं सूझा? अरे चोरी करनी थी तो मुझे इतने दिन से परेशान क्यों करता रहा? कर लें!
लड़का तो बहुत चौंका। उसने कहा, आप यह कह रहे हैं कि चोरी कर लूं! आप यह
कह रहे हैं! शुभ-अशुभ का कोई ख्याल नहीं? चोरी अशुभ है। कबीर ने कहा, चोरी

अशुभ है! वह आंख बंद करके कुछ सोचने लगे। कहने लगे कि कुछ समझ में नहीं आता।
लड़के ने कहा कि परीक्षा पूरी ही कर लेनी चाहिए। उसने कहा, उठिये फिर। मैं ही चोरी क्यों करूं, आप भी साथ चलिये।
कबीर ने कहा, चलता हूं, लेकिन देख ज्यादा सामान मैं नहीं उठा पाऊंगा, बुड्ढा आदमी हूं! कबीर पीछे, बेटा आगे--वे चोरी करने गये!
लड़के ने भी बड़ी हिम्मत की। कमाल, उनका लड़का बहुत हिम्मतवर था। उसने कहा, आखिरी क्षण तक देख लेना चाहिए--यह आदमी क्या बात कर रहा है, जिसको शुभ-अशुभ का भी बोध नहीं है! सुरंग, लगायी, दीवार तोड़ डाली। कबीर से कहा, क्या इरादा है?
कबीर ने कहा, घुसो! उसने सोचा कि क्या अब चोरी करनी ही पड़ेगी! लडका भीतर घुस गया। एक बोरा गेहूं खींचकर लाया। कबीर से कहा, सहायता करिये। कबीर ने सहायता की। लड़के ने कहा, अब क्या इरादा है-- ले चलें घर?
कबीर ने कहा, इतनी मेहनत किसलिए की? लेकिन घर के लोगों को बता आये न? कबीर ने कहा, घर के लोगों को बता आये न!
उस लड़के ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, चोरी कर रहे हैं, यह भी घर के लोगों को बताने की बात है?
कबीर ने कहा, नहीं, यह ठीक नहीं मालूम होता है। जरा घर के लोगों को कह
आओ कि हम चोरी कर रहे हैं! एक बोरी गेहूं ले जा रहे हैं!
उस लड़के ने कहा, तो यह कैसी चोरी हुई! तुम्हें समझ में नहीं आता कि चोरी बुरी चीज है?
कबीर ने कहा कि अब मैं सोचता हूं, जब तुम नहीं कह आये घर के लोगों से तो कुछ गड़बड़ बात है। लेकिन मुझसे इसलिए भूल हो गयी कि बहुत दिनों से मुझे अपने-पराये का भेद नहीं रहा। मेरी समझ में ही नहीं आया कि चोरी किसकी! चोरी किसकी? कौन करेगा? और किसकी होगी? सभी"उसका" है। हम भी उसके हैं, वे भी उसके हैं, सामान भी उसका है। सब परमात्मा का है। नहीं--नहीं, लेकिन खबर करके आओ। खबर तो कर दो, क्योंकि वे बिचारे सुबह खोजें घर में और बोरा न मिले तो तकलीफ में पड़ेंगे। कहां खोजें?
उस लड़के ने कहा, हो गयी चोरी। वापस चलिये। ऐसे चोरी नहीं होती। अगर खबर करनी ही है तो घर वापस चलिये।
यह जो कबीर है--क्या है शुभ? क्या है अशुभ--वह कह रहा है कि सब"उसका" है। कैसी चोरी! चोरी के लिए अपने-पराये का भेद होना तो जरूरी है।
संपत्ति किसकी है? मेरी नहीं है। जिसको यह बोध है, उसको यह भी बोध होगा
कि यह संपत्ति मेरी है किसी की नहीं। जिसको यह बोध होगा कि किसी की चोरी न करूं, उसको यह भी बोध होगा कि मेरी कोई चोरी न कर ले। लेकिन एक जगह है, जहां संपत्ति किसी की नहीं--जहां हम ही नहीं रह गये। जहां सब"उसी"का रह गया। वह क्या होगा, कैसे तय करियेगा? शुभ क्या है, अशुभ क्या है? शुभ और अशुभ का निर्णय परिधि पर नहीं हो सकता, गहरे में होगा।
मैं मानता हूं, कि कबीर का बेटा जब कह रहा था कि चोरी अशुभ है, तब वह इसलिए कह रहा था, क्योंकि संपत्ति की मालकियत को वह मानता था। तभी अहंकार जिंदा था। और अहंकार अशुभ है, चोरी अशुभ नहीं। अहंकार ही वजह से चोरी अशुभ मालूम पड़ेगी।
और कबीर का अहंकार ही खो गया। उनको पता ही नहीं चलता कि कौन किसका है? क्या कौन है? यह आदमी अशुभ है? क्या आप कहेंगे कि कबीर का चोरी करने जाना अशुभ था? मैं नहीं कह सकता। मेरे लिये कहना मुश्किल है, क्योंकि कबीर चोरी करने को गये ही नहीं। क्योंकि चोरी को तो तभी जाया जा सकता है, जब संपत्ति किसी की हो और अहंकार में हमने जगत को बांटा है।
कबीर चोरी करने को गये ही नहीं। कबीर किसी दूसरी दिशा में यात्रा कर रहे हैं। बेटा किसी और दिशा में यात्रा कर रहा है। वे दोनों साथ गये ही नहीं! साथ दिखायी पड़े। कर्म की दुनिया में, इसलिए दिक्कत हो जाती है। वे साथ गये ही नहीं। वे कहीं और जा रहे थे। वे भगवान के घर जा रहे थे। जैसा यह घर है वह वैसा, घर है। उधर से उठा लाओ! लेकिन घर में जो लोग पहरा देते हैं, उनको खबर कर दो कि चोरी करके जा रहा हूं!

कबीर चोरी करने को गये ही नहीं, सिर्फ बेटा ही चोरी करने गया! और बेटे
को शुभ अशुभ का बोध है। और कबीर को उसका बोध ही नहीं! परिधि पर निर्णय करेंगे?
अगर हम सारे जगत में नीति के, शुभ कैसे निर्णय करियेगा? अशुभ के भेद देखें तो बहुत हैरान हो जायेंगे। जो यहां शुभ है, वह पचास मील बाद में अशुभ हो सकता है! जो पचास मील दूर अशुभ है, वह यहां शुभ हो सकता है!
मेरे एक प्रोफेसर, पेशावर में प्रोफेसर थे। विभाजन के पहले वे पेशावर थे। मैं उनसे एक दिन बात करता था। तो उन्होंने मुझसे कहा कि तुम जो कहते हो शायद--एक घटना मेरे जीवन में घटी--उससे तुम्हारी बात मुझे ठीक लगती है। मैं पेशावर में था और मेरे पास पहली दफे एक पख्तून लड़का ग्रेजुएट हुआ। मैंने ही मेहनत करके उस पख्तून को पढ़ाया। पख्तूनों में पहला ग्रेजुएट था, पहला ही स्नातक था। बड़ी मुश्किल से तो पढ़ पाया। थर्ड क्लास में बड़ी मुश्किल से पास हुआ। लेकिन पख्तूनों में बड़ी खुशी फैल गयी! जिस दिन उसके पास होने की खबर आयी तो आठ-दस पख्तून सरदार, बूढ़े--बड़े भोले और सरल लोग, नंगी तलवार लेकर मेरे पास आये। मैं तो डर गया कि यह क्या मामला है! उन्होंने आकर तलवार मेरे सामने रख दी और मेरे पैर छुए और कहा कि आपका कोई दुश्मन हो तो नाम बता दें!
मेरे दुश्मन का क्या करियेगा?
उन्होंने कहा, हम गरीब पख्तून और क्या सेवा कर सकते हैं--गर्दन काटकर
ला देंगे! आपने बड़ी कृपा की, हमारा पहला लड़का स्नातक हो गया। हम बड़े गरीब लोग हैं, हम और क्या कर सकते हैं? आप देर न करिये, नाम दीजिये। सांझ होने के पहले गर्दन दरवाजे पर लटकेगी!
और वे बड़े भोले लोग हैं, एकदम भोले लोग हैं। भले लोग नहीं हैं, हम कहेंगे! कि गर्दन काटने वाले लोग भले लोग होंगे? इतने भोले लोग हैं, वे इतनी सरलता से पैर पकड़कर कहने लगे कि नहीं नहीं आप कृपा करके नाम दीजिये। एकाध नाम बता दीजिये, सांझ होने के पहले गर्दन दरवाजे पर लटकेगी! हम गरीब पख्तून और क्या कर सकते हैं! हम कैसे धन्यवाद दें!
उन्होंने कहा, इतनी ही कृपा करना कि कभी मेरी ही गर्दन न कटवा देना। तुम जाओ, कोई हमारा ऐसा दुश्मन नहीं, जिसकी गर्दन कटवानी हो! लेकिन वे बार-बार आते रहे! वे कई बार आये और कहा कि आप हम पर खुश नहीं? आप नाम तो बता दें। नाम ही तो बताने की जरूरत है, बाकी सब हम कर लेंगे, कुछ देर नहीं लगेगी!
वे मुझसे कहते थे, उनकी आंखों में मैं देखता हूं तो बड़े सरल लोग हैं।
और वे जो कह रहे थे कि गर्दन काट लायेंगे, वह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है! लेकिन पख्तून में गर्दन काटना अशुभ नहीं है, गर्दन कटवा देना अशुभ है। गर्दन काटने से भागना या कटवाने से भागना अशुभ है!
ऐसी कौमें हैं सारी जमीन पर कि अगर उनके शुभ-अशुभ का निर्णय करने जायें तो बहुत हैरानी हो जाये कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है?
अंग्रेज हिन्दुस्तान में आये, तब हिमालय के पास ढेर आदिवासियों के कबीले थे--कि उनके घर में अगर मेहमान हो, तो सारी सेवा करेंगे और रात अपनी पत्नी भी दे देंगे! क्योंकि घर मेहमान आया है, उसको पत्नी भी दिजियेगा! कैसा अतिथि-सत्कार होगा! वे अपनी पत्नी भी दे देंगे रात में।
बड़े सीधे लोग थे अंग्रेज उनके घर जाकर ठहरने लगे, क्योंकि उनकी सुंदर पत्नियों ने उन्हें बहुत आकर्षित किया!
अब पूछने जैसा है कि अशुभ कौन कर रहा है? वे अशुभ कर रहे थे, जो कि इतने भोले थे, जो कहते थे कि जब घर में मेहमान आये और रात में उसको पत्नी की याद आये, स्त्री की याद आये तो वह क्या करेगा? इसलिए कि वह हमारे घर मेहमान हुआ तो हमारी पत्नी मिलनी चाहिए! और पत्नी सरलता से रात उसके पास जाकर सो जायेगी, क्योंकि घर मेहमान आया है--देवता है!
वे गलत कर रहे थे, अशुभ कर रहे थे? या वह आदमी जो सिर्फ इसलिए घर में आकर मेहमान हो गया था कि उसकी औरत पर नजर थी उसकी? इसलिए आज वह घर में मेहमान हो गया!
फिर धीरे-धीरे उस कबीले को समझ लानी पड़ी, कबीला चालाक हुआ, कनिंग हुआ, फिर उसने कहा कि यह बात गलत है! मेहमान को पत्नी देना गलत है। यह अशुभ है।

लेकिन चालाक हुआ तब। चालाकी अशुभ है? या उसका वह निर्दोष भाव अशुभ था? तय करना मुश्किल है।
परिधि पर कुछ भी तय नहीं होता। परिधि पर कुछ भी तय नहीं हो सकता। लेकिन कर्मवादी कहता है, परिधि पर निर्णय कर लो--यह ठीक और यह गलत! और ठीक डिवीजन कर लो, कंपार्टमेंट बांट लो! दीवारें खड़ी कर दो कि यह हम करेंगे और यह हम न करेंगे! इसलिए कर्मवादी जड़ हो जाता है। जड़ हो जाता, है इसलिए, क्योंकि उसकी यह जो फ्लेग्जेबिलिटि है व्यक्तित्व की, यह जो तरलता है, वह खो जाती है। यह ठीक और यह गलत--बस वह ऐसा करेगा!
लेकिन जिंदगी बहुत तरल है। उसमें ठीक--सुबह जो ठीक था, वह सांझ गलत हो जाता है! जो सांझ गलत था, वह सुबह ठीक हो जाता है। जो घड़ी भर पहले ठीक था, वही घड़ी भर में गलत हो जाता है। इसलिए सवाल ठीक और गलत तय करने का नहीं है। सवाल ठीक और गलत को हर एक स्थिति में पहचानने का है। लेकिन वह कौन पहचानेगा? वह बीइंग पहचानेगा। वह भीतर की आत्मा जाग्रत हो तो पहचान सकती है कि क्या है ठीक और क्या है गलत।
ठीक और गलत की कोई निर्णायक स्थिति नहीं है कि हम लेबल लगा दें कि यह ठीक और यह गलत। किसी क्षण में अहिंसा ठीक हो सकती है। किसी क्षण में गलत हो सकती है। किसी क्षण में हिंसा ठीक हो सकती है। किसी क्षण में अहिंसा ठीक हो सकती है। लेकिन ये जो कर्मवादी हैं, वे कहते हैं, अहिंसा सदा ठीक और हिंसा सदा गलत!
जिंदगी इतनी पथरीली नहीं है, जिंदगी बहुत तरल है। जैसे नदी बहती है-- कभी बांये बहती तो कभी दांये बहने लगती। कभी इधर जाती, कभी उधर जाती। जिंदगी ऐसी ही है। रेल की पटरियों की तरह नहीं कि बस चली जा रही है। इसलिए जिंदगी के मामले में जिसने ऐसे सख्त नियम लिए, वे बहुत मुश्किल में पड़ जाते हैं।
अगर अहिंसा सदा सही है तो फिर बहुत-सी गलत बातें सही हो जायेंगी। अगर अहिंसा सदा सही है तो कोई मुझे गुलाम बनाने आये, आपको गुलाम बनाने आये तो अहिंसा क्या करेगी? फिर अहिंसा सदा सही है तो गुलामी भी सही हो जायेगी! लेकिन गुलामी कैसे सही हो सकती है? और गुलाम अहिंसक हो सकता है? जो आत्मा बेचने को तैयार हो गया, वह अहिंसा को कितने दिन तक बचायेगा? अहिंसा भी बिक जायेगी, इसलिए कहना मुश्किल है।
एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। एक फकीर हुआ नसरुद्दीन। उसके गांव
के राजा ने तय कर लिया कि हम अपने राज्य से असत्य को उखाड़कर फेंक देंगे! उसने फकीर को बुलाया और उससे कहा कि तुमसे मैं सलाह लेना चाहता हूं। मैंने तय किया है कि असत्य को मैं उखाड़ फेंक दूंगा। फकीर ने कहा, पहले पक्का पता लगाओ कि असत्य क्या है? क्योंकि असत्य रोज अपने को सत्य में बदल लेता है। उसने कहा, इसीलिए तो आपको बुलाया कि आप मुझे बता दें कि असत्य क्या है? मैंने यह तय किया है कि कल से राज्य में एक आदमी को हर रोज सूली पर लटकाऊंगा--चौरस्ते पर राजधानी के। जो झूठ बोलेगा, वह सूली पर लटकेगा, ताकि बाकी लोग देख लें और समझ जायें कि यह हालत है झूठ बोलने वालों की।
उस फकीर ने पूछा, किस जगह सूली बनवायी है?
राजा ने कहा, गांव का जो बड़ा द्वार है उस पर।
तो उस फकीर ने कहा, कल सुबह द्वार पर मिलूंगा और वहीं पर मुलाकात होगी।
राजा ने कहा, मतलब क्या है? मैंने तुम्हें पूछने को बुलाया है!
वहीं बता देंगे, उसने कहा, सूलीपर तैयार रखना!
सूली तैयार रखी गयी। सुबह जब दरवाजा खुला नगर का तो फकीर ने पहला प्रवेश किया। अपने गधे पर बैठा हुआ, वह अंदर घुसा।
राजा ने पूछा, कहां जा रहे हो?
उस फकीर ने कहा, सूली पर चढ़ने!
राजा ने कहा, सरासर झूठ बोल रहे हो। तुम्हें कौन सूली पर चढ़ायेगा।
उस फकीर ने कहा, अगर झूठ बोल रहा हूं तो सूली पर चढ़ा दो--सूली तैयार है।
उस राजा ने कहा, बड़ी मुश्किल में डाल दिया। अगर मैं तुम्हें सूली पर चढ़ा दूं तो लोग कहेंगे, एक सच बोलने वाले, को सूली पर चढ़ा दिया क्योंकि जो

कह रहा था कि सूली पर चढ़ने जा रहा हूं, उसको सूली पर चढ़ा दिया! और अगर मैं तुम्हें छोड़ दूं तो सूली पर नहीं चढ़ोगे, तो झूठ हो जायेगा।
तो उस फकीर ने कहा कि मैं रुका हूं, तुम तय कर लो, क्या करना है? अगर तय
हो जाये तो सूली पर चढ़ा दो, अगर तय हो जाये तो छोड़ दो।
राजा ने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया।
उस फकीर ने कहा, जिंदगी सभी को मुश्किल में डाल देती है। उन सभी को, जो जिंदगी में तय कर लेता है कि बस यह सच है और यह झूठ है।
जिंदगी बहुत तरल है। परिधि पर तय नहीं हो सकता कि क्या ठीक है और क्या गलत है? और जो आदमी परिधि पर तय करने में लगेगा, वह नष्ट हो जायेगा। वह ज्यादा से ज्यादा धोखा पैदा कर सकता है नैतिक होने का, लेकिन कभी धार्मिक नहीं हो सकता। उसे जिंदगी में रोज मौके आयेंगे, जो मुश्किल में डालते रहेंगे कि क्या करूं, क्या न करूं? फिर धीरे-धीरे वह जिंदगी की तरलता को देखना बंद कर देगा। अपने ठोस और सख्त ढांचे में, पैटर्न में जीने लगेगा कि बस यही ठीक है! वह आंख बंद करके वही करता रहेगा! और वह आदमी तो गलत ही होगा, क्योंकि भीतर तो कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ है!
गलत आदमी पर ठीक बात जुड़ जाती, तो ठीक बात भी गलत का सहारा बन जाती है। जैसे कि महावीर को लोगों ने देखा और लोगों ने समझा कि अहिंसा ठीक है।
तो महावीर को मानने वालों ने खेती बंद कर दी! इसलिए जैन खेती नहीं करता रहा है। उसने खेती बंद कर दी, क्योंकि खेती में हिंसा मालूम पड़ी। पौधे काटने पड़ेंगे, पौधों में प्राण हैं।
महावीर को एक अनुभव हुआ है कि पौधों में प्राण हैं। प्राण हैं! महावीर
ने जो जाना है, वह फिर जगदीशचंद्र ने बहुत बार सिद्ध किया विज्ञान से कि पौधों में प्राण है, आत्मा है! अब तो महावीर की बात बहुत वैज्ञानिक है कि पौधे में प्राण हैं। एक आदमी गेहूं की फसल काटेगा, हजारों पौधे काटेगा तो हजारों प्राण कट जायेंगे, हजारों की हत्याएं हो जायेंगी। तो जैनों ने खेती बंद कर दी!
लेकिन खेती बंद करने से क्या हो सकता था। कोई तो खेती करेगा, गेहूं तो खाना पड़ेगा। मैं खेती न करूं तो आप खेती करेंगे। गेहूं मैं खाऊंगा, हिंसा आपको लगेगी! बहुत मजेदार नियम हुआ--गेहूं मैं खाऊंगा और हिंसा आपको लगेगी! तो खेती दूसरों पर छोड़ दी! लेकिन वह अहिंसक आदमी भीतर तो हिंसक ही रहा!
यह बड़े मजे की बात है कि किसान कम हिंसक होते हैं। कम हिंसक इसलिए होते हैं कि काटने-पीटने काटने-पीटने की बहुत-सी वृत्ति तृप्त हो जाती है। एक आदमी वृक्ष काट रहा है, लकड़ी काट रहा है, कुल्हाड़ी चला रहा है, तलवार चला रहा है। तो जिस आदमी ने सुबह तीन घंटे वृक्षों पर कुल्हाड़ी मारी है, उस आदमी को किसी की गरदन पर कुल्हाड़ी मारने में रस नहीं आयेगा। उसकी तृप्ति हो गयी--काटने की, मारने की।
किसान कम हिंसक होता है। लेकिन जब किसानी बंद कर दी महावीर के मानने वालों ने--और लड़ तो सकता नहीं था युद्ध के मैदान में, इसलिए क्षत्रिय तो नहीं हो सकता था। और क्षत्रिय ही थे मानने वाले! महावीर तो खुद क्षत्रिय थे! मानने वाले सब क्षत्रिय थे! तो वे लड़ भी नहीं सकते थे युद्ध के मैदान में। उन्होंने युद्ध भी बंद कर दिया और किसानी भी बंद कर दी! तो अब दो ही विकल्प थे--या बनिये हो जायें या भंगी हो जायें। भंगी होना नहीं चाहा उन्होंने, तो वे बनिये हो गये!
लेकिन ध्यान रहे, बनिया बहुत हिंसक हो सकता है। और हुआ। इसलिए उसने बहुत संपत्ति इकट्ठी कर ली। संपत्ति, बिना हिंसा के इकट्ठी नहीं हो सकती! लेकिन तब उसने काटना-पीटना बंद कर दिया था। उसने फिर सूम तरकीबें काटने- पीटने की निकालीं! एक आदमी की गर्दन मत काटो, जेब काटो! जेब काटने से गर्दन कट जाती है! बल्कि एक दफा गर्दन काटना शायद ज्यादा दयापूर्ण हो, जेब काटना ज्यादा हिंसापूर्ण हो जाता है। क्योंकि गर्दन कट जाती तो निपट गया मामला। जेब कट जाये तो गर्दन भी रहती है! जेब भी कट गयी और जिंदा भी रहना पड़ता है! और मरे हुए जिंदा रहना पड़ता है!
तो वह जिन लोगों ने गर्दन काटने से अपने को परिधि पर रोक लिया, उन्हें फिर उन्होंने काटने की नयी तरकीबें ईजाद कीं! इसलिए हिंदुस्तान में महावीर के मानने वालों के पास सबसे ज्यादा पैसे इकट्ठे हुए। उसका कारण था

कि उनकी सारी हिंसा कान्सनट्रेटिड हो गयी! उनकी सारी हिंसा सब तरफ से रुक गयी। लड़ना, हिंसा सब तरफ से रुक गयी। एक ही दिशा रह गयी--पैसा! तो पैसे के लिए उन्होंने पूरी--पूरी हिंसा कर दी!
बहुत थोड़ी संख्या है महावीर के मानने वालों की। पच्चीस लाख से ज्यादा नहीं होगी। लेकिन संपत्ति बहुत ज्यादा है! यह संपत्ति कैसे आयी? अगर भीतर से यह बोध आया होता, अगर प्राणों में यह बात लिखी होती तो यह असंभव था कि यह नयी तरह की हिंसा विकसित होती। लेकिन भीतर से कुछ नहीं आया। यह किसी एक की बात नहीं है, सबकी ही बात है। सब तरफ ही यही बात है।
मैंने सुना है एक पादरी है जीसस का। उसने बाइबिल में पढ़ा है कि दुश्मन
एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल सामने कर दो। दुश्मन किसके नहीं हैं? एक दुश्मन ने उसको चांटा मारा। और दुश्मन ने चांटा इसलिए मारा कि दुश्मन ने उसी दिन चर्च में उसका भाषण सुना था। और चर्च के भाषण में उसने कहा था कि जीसस कहते हैं कि जो तुम्हारे बांये गाल पर चांटा मारे तो दांया गाल सामने कर दो!
चर्च के बाहर वह पादरी निकला तो दुश्मन ने उसके बांये गाल पर जोर से चांटा मारा! भीड़ इकट्ठी थी, पादरी एकदम से गड़बड़ भी नहीं कर सकता था, क्योंकि अभी चर्च के भीतर से आया था। और कहा था कि दांया गाल सामने कर दो तो पादरी ने दांया गाल सामने कर दिया! उसने उस पर भी एक करारा चांटा मारा। तब पादरी ने उठाकर लकड़ी, उसका सिर फोड़ दिया! तब उस आदमी ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो?
पादरी ने कहा कि जीसस ने कहा है कि बांये गाल पर कोई मारे तो दांया सामने करो। लेकिन दांये पर कोई मारे तो कुछ भी करने को नहीं कहा है! दांये पर कोई मारेगा तो निर्णय हम करेंगे! उसके आगे कुछ लिखा हुआ नहीं है। तुम बांये को मारकर चले गये होते तो बात खत्म हो गयी होती।
तब तो फिर जीसस भी क्या करते? क्या कर सकते हैं? उसने कहा, दांया और बांया दो ही तो होते हैं। एक मारा तो दूसरा कर दिया, तीसरा तो है नहीं! अब तीसरा तो आपके पास है।
होता यह है, और होने वाला ही यह है! परिधि पर जो निर्णय होते हैं, वे ऐसे ही होंगे। कर्म से जो नीति और धर्म पैदा हुआ, वह परिधि पर ही पैदा हुआ है। लेकिन क्या करें? हमारी तकलीफ यह है कि परिधि हमें दिखायी पड़ती है। क्या करें, क्या न करें--वही हमारे सवाल हैं।
मेरी अपनी समझ है कि करने की बात की फिकर मत करें। फिकर उसकी करें कि करने वाला कौन है। वह कौन है भीतर, जो बांये गाल की तरह दांया गाल करता है? वह कौन है, जो हाथ उठाकर तीसरे गाल पर मारता है? वह कौन है, जो खेत पर हिंसा करता है? वह कौन है, जो दुकान पर बैठकर गर्दन काटता है? वह कौन है भीतर? करने वाला कौन है? कर्म नहीं, करने वाला कौन है--उसकी तलाश। र कत्ता कौन है--उसकी तलाश।
जब मैं उठता हूं तो उठने की फिक्र छोड़ दें। उठता कौन है? जब मैं भोजन करता हूं तो उसकी फिक्र छोड़ दें कि क्या भोजन करता हूं? इसका सवाल है कि भोजन करता कौन है? जब मैं बोल रहा हूं तो यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि मैं क्या बोल रहा हूं? सवाल महत्वपूर्ण यह है कि कौन बोल रहा है? कौन है भीतर? प्रत्येक कर्म के भीतर कौन है? हर कर्म के भीतर कौन है?
और ध्यान रहे, कर्म के भीतर जो छिपा है, वह बिल्कुल अकर्म है। वह कर्ममुक्त है। और तभी कर्म के भीतर हो सकता है।
बैलगाड़ी का चाक चलता है। चाक चलता है, एक कील बीच में खड़ी रहती है, वह नहीं चलती! उसी कील पर चाक चलता है!
कर्म का जो चाक है, वह अकर्म आत्मा पर चलता है! लेकिन कर्म स्वयं चल नहीं सकता। कर्म के चलने के लिए अकर्म का होना जरूरी है केंद्र में।
भीतर उस केंद्र को पकड़ने की कोशिश करें। चाक नहीं, कील। कर्म नहीं, अकर्म। करना नहीं, होना। वह मैं कौन हूं, जो उठते वक्त उठता है, चलते वक्त चलता है, खाते वक्त खाता है, बोलते वक्त बोलता है, चुप होने के वक्त चुप हो जाता है?
और अगर उसकी थोड़ी-सी भी फिक्र की--आंख बंद कर, आंख खोल कर, ऐसे थोड़ा खो जायें तो एक अदभुत आनंद आपको उपलब्ध होगा। तभी आप उठते हैं। तभी आपके भीतर

कोई है, जो उठता नहीं है। जब आप चलते हैं, तब कोई आपके भीतर है, जो चलता नहीं है। जब आप भोजन करते हैं, तब कोई आपके भीतर है, जो भोजन करता ही नहीं है। जब आप बोलते हैं, तब भी कोई आपके भीतर निरंतर अबोला है। जब आप जीते हैं, तब भी आपके भीतर कोई जीवन के बिल्कुल पार खड़ा है। जब आप मरते हैं, तब भी कोई आपके भीतर नहीं मरता है।
आपके सारे कर्मों के भीतर बिल्कुल अकर्म में ठहरा हुआ एक बिंदु है। वही बिंदु बीइंग, वही बिंदु आत्मा है। उस बिंदु की पहचान करनी जरूरी है। कर्मयोग नहीं, अकर्म। वह जो अकर्ता, सब कर्म के बीच में खड़ा है।
रास्ते पर चल रहे हैं, जरा भीतर झांककर पता लगायें कि कोई है भीतर, जो
चल रहा है? तो बहुत हैरान हो जायेंगे कि बाहर कोई चल रहा है और भीतर कोई भी नहीं चल रहा है! भीतर सन्नाटा है। भीतर कभी कोई चला ही नहीं!
जन्म से लेकर बूढ़े हो जायें आप--जवान होंगे, बीमार होंगे, स्वस्थ होंगे, बूढ़े होंगे, जन्मेंगे। और भीतर कोई है, जो न जन्मता है, न बूढ़ा होता है, न जवान होता है; न बीमार होता है, न स्वस्थ होता है, न मरता है!
वह जो भीतर का बिंदु है, जो सारी लहरों के भीतर शांत सागर है, उसकी पहचान एक क्षण को भी हो जाये तो जीवन दूसरा हो जाये। फिर दुबारा भूल असंभव है--बिल्कुल असंभव है।
इन चार दिनों में मैंने तीन बातें कहने की कोशिश की है। ज्ञान नहीं-- भीतर वह जो ज्ञान नहीं है, ज्ञाता है। भक्ति नहीं, भाव नहीं--भीतर वह जहां कोई भाव नहीं, सब निर्भाव है। कर्म नहीं--भीतर जहां कोई कर्म नहीं, सब अकर्म है।
निर्विचार, निर्भाव, अकर्म--अगर ये तीन बातें एक सेकेंड में इकट्ठी घट जायें, एक साथ। तो एक सेकेंड में आपके जीवन में वह बिंदु आ जायेगा-- बुआइलिंग प्वाइंट, जहां पानी भाप हो जाता है।
मनुष्य की जिंदगी में भी वह बिंदु है, जो इन तीनों की जोड़ से फलित होता है। तब मनुष्य वाष्पीभूत हो जाता है। जहां पानी नहीं रह जाता, भाप रह जाती है। जहां हम नहीं रह जाते, परमात्मा रह जाता है। हम तो उड़ जाते हैं, एवोपरेट हो जाते हैं।"हम" तो फिर पाया ही नहीं जाता। पाया जाता है बस परमात्मा।
न तो ज्ञान ले जायेगा, न भक्ति ले जायेगी, न कर्म ले जायेगा। ज्ञान, भक्ति, कर्म तीनों मन के ही खेल हैं।
इन तीनों के पार जो जायेगा--वही अ-मन, नो-माइंड वही आत्मा, वही परमशक्ति, उसकी अनुभूति में ले जाता है।
तब मुझसे मत पूछें कि मार्ग क्या है? सब मार्ग मन के हैं। मार्ग छोड़ें, क्योंकि मन छोड़ना है।
कर्म छोड़ें, वह मन की बाहरी परिधि है। विचार छोड़ें, वह मन के बीच की परिधि है। भाव छोड़ें, वह मन की आखिरी परिधि है। तीनों परिधियों को एक साथ छोड़ें।
और उसे जान लें, जो तीनों के पार है, दी बियॉन्ड। वह जो सदा पीछे खड़ा है, बाहर खड़ा है, उसे जानते ही वह सब मिल जाता है, जो मिलने योग्य है। उसे जानते ही वह सब जान लिया जाता है, जो जानने योग्य है। उसे मिलने के बाद, मिलने को कुछ शेष नहीं रह जाता। उसे पाने के बाद, पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता।
सब शास्त्र जिसके लिए रोते हैं, चिल्लाते हैं! सब ज्ञानी जिसकी तरफ इशारे उठाते हैं और इशारे नहीं हो पाते! सब शब्द जिसे कहते हैं और नहीं कह पाते। सब आंखें जिसे तलाशती हैं और नहीं देख पातीं! सब हाथ जिसको टटोलते हैं और नहीं पकड़ पाते हैं! वह इन तीनों के पार सदा मौजूद है। इन तीनों से जरा-सा द्वार खुल जाये तो वह उपलब्ध ही है।
मार्ग नहीं है--क्योंकि वह दूर नहीं है। क्योंकि वह निकट है, निकटतम है, निकट से भी निकटतम है। वही है।
मार्ग नहीं है, क्योंकि वह वहां नहीं है--यहां है। मार्ग नहीं है।
मार्ग नहीं है--क्योंकि वह कल नहीं है, अभी है--हियर एंड नाउ, अभी और यहीं।
इसलिए मार्ग में मत भटकें। सब मार्ग भटकाते हैं।

सब मार्ग छोड़ दें। खड़े हो जायें, एक सेकेंड को सिर्फ। खड़े होने का प्रयास करते रहें।
भाव के, विचार के, कर्म के--तीनों के ऊपर उठने का प्रयास करते रहें, करते रहें, करते रहें। आपके करने से ऐसा नहीं होगा कि धीरे-धीरे आप उठते जायेंगे। न, करते रहें। लेकिन करते-करते कभी वह टघनग-प्वाइंट आ जायेगा कि तीनों चीजें एक सेकेंड को ठहर जायेंगी और आप अचानक पायेंगे कि आप उठ गये। 99 डिग्री तक भी पानी भाप नहीं बनता। बस कुनकुना गर्म होता है। गर्म होता है, गर्म होता रहता है--98 डिग्री पर भी गर्म, 97 डिग्री पर भी गर्म, 90 डिग्री पर भी गर्म, 99 पर भी गर्म, 99.5 पर भी गर्म--गर्म ही होता रहता है। ठीक 100 डिग्री पर पहुंचा कि एक सेकेंड में सब बदल जाता है! पानी नदारद, पानी गया और भाप हो गयी!
ठीक ऐसे ही करते रहें। भाव के बाहर, विचार के बाहर, कर्म के बाहर-- खोजते रहें, खोजते रहें। अनजान है वह क्षण, कब आ जाये। किसी भी दिन अचानक आप पायेंगे कि सौ डिग्री पूरी हो गयी!
और अभी तक कोई थर्मामीटर नहीं है कि बाहर से बताया जा सके कि आपकी सौ डिग्री कब पूरी हो गयी। नहीं, आगे भी आशा नहीं है कि कोई थर्मामीटर हो सके। आपको भी पता नहीं है, मुझे भी पता नहीं है, किसी को भी पता नहीं है कि कब किस आदमी की सौ डिग्री पूरी हो जायेगी? किस क्षण में? और जिस क्षण पूरी हो जायेगी, उसी क्षण आप खो जायेंगे। और जो हो जायेगा, वही सत्य है, वही परमात्मा है।
मनुष्य परमात्मा से नहीं मिल पाता। पानी कभी भाप से नहीं मिल पाता? पानी कैसे भाप से मिलेगा? पानी जब मिटेगा, तब भाप होगा। इसलिए पानी कभी भाप से नहीं मिलता।
आदमी कभी परमात्मा से नहीं मिल पाता। आदमी जब राख हो जाता है, मिट जाता है, तब जो रह जाता है, वही परमात्मा है।
मिटें ताकि पा सकें, खो जायें ताकि खोज सकें।
बीज मिटता है तो वृक्ष हो जाता है, बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है।
मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नेति-नेति
तेईसवां प्रवचन

सूर्य की ओर उड़ान

अभी-अभी आपकी तरफ आने को घर से निकला। सूर्य का किरण-जाल चारों ओर फैल गया है और वृक्ष पक्षियों के गीतों से गूंज रहे हैं। मैं सुबह के इस संगीत में तल्लीन था कि अनायास ही मार्ग के किनारे खड़े सूर्यमुखी के फूलों पर दृष्टि गयी। सूर्य की ओर मुंह किये हुए, वे बड़े गवान्नत खड़े थे। उनकी शान देखने ही जैसी थी! उनके आनंद को मैंने अनुभव किया और उनकी अभीप्सा को भी पहचाना। मैं उनके साथ एक हो गया और पाया कि वे तो पृथ्वी के आकाश को पाने के स्वप्न में हैं। अंधकार को छोड़कर वे आलोक की यात्रा पर निकले हैं। मैं उनके साहस का गुणगान करता-करता ही यहां उपस्थित हुआ हूं और उनकी सफलता के लिए हजार-हजार प्रार्थनायें मेरे हृदय में घनीभूत हो गयी हैं।
और अब मैं सोच रहा हूं कि क्या मनुष्य भी ऐसे ही सूर्य को नहीं पाना चाहता है? क्या उसके प्राण भी आलोक के मूल-स्रात से एक होने को नहीं छटपटाते हैं? क्या वह भी एक बीज नहीं, जो पृथ्वी के अंधकार भरे गर्भ को छोड़ विराट आकाश को पाने के लिए लालायित है?
बीज वृक्ष होना चाहता है। अणु विराट होना चाहता है। विकास ही जीवन है।
और जब बीज वृक्ष नहीं हो पाता है, तो स्वाभाविक ही है कि उसके प्राणों में रुदन हो और उसकी आत्मा आकाश न पाने की पीड़ा अनुभव करे। क्या मनुष्य का दुख भी ऐसा ही दुख नहीं है?
मनुष्य का मूल संताप यही है कि वह सूर्य की ओर अपना मुंह नहीं उठा पाता है। और उसकी आत्मा अपने पंखों को खोल अनंत आकाश के लिए उड़ान नहीं भर पाती है। यही है उसकी पीड़ा, चिंता और रुग्णता। यही है उसकी अशांति।
आकाश की स्वतंत्रता को उपलब्ध न कर पाना ही संसार है, बंधन है।
परंतु इसी संताप में सत्य की यात्रा का शुभारंभ छुपा हुआ है। जीवन जैसा है, उससे संतुष्ट हो जाना, शुभ नहीं है। जो उससे संतुष्ट हो जाता है, वह विकसित ही नहीं होता। विकास तो है असंतोष में। कली, कली होने से ही संतुष्ट हो, तो फिर फूल का जन्म कैसे होगा?
गहरे असंतोष और उत्कट अतृप्ति में ही प्राण सजग होते हैं और उनमें प्रसुप्त ऊर्जा जागती है और आत्म-सृजन में संलग्न होती है।
इसलिए, स्मरण रहे कि असंतोष की अनुभूति दिव्य अनुभूति है। और जीवन को उसके केंद्र तक ले जाने वाली आधारभूत शक्ति भी वही है।
परिधि के जीवन से संतुष्ट हो जाने को ही मैं अधर्म कहता हूं। इसके अतिरिक्त कोई पाप नहीं है।
परमात्मा की उपलब्धि के पूर्व, जो भी जीवन-पथ पर मनुष्य को रोकने में सर्वाधिक समर्थ है--वह है, आलस्य। और यही आलस्य संतोष के रूप में प्रकट होता है।
पुरुषार्थ तो जन्मजात असंतोष है।
और जहां पूर्ण असंतोष है, वहीं पूर्ण पुरुषार्थ है।
जीवन के प्रति पूर्ण असंतोष को जो अनुभव करता है, वही अपनी यात्रा को परमात्मा तक ले जाने में समर्थ होता है।
बीज की यात्रा वृक्ष तक है। मनुष्य की यात्रा परमात्मा तक है।
मैं आपमें भी इस प्यास को देख रहा हूं। आपकी मौन आंखों में वह सब मेरे समक्ष स्पष्ट हो उठा है, जो कि आप में अंकुरित होना चाहता है। आपकी प्यास ही आपके हृदयों को पारदर्शी बना रही है। और जिस दिन से मैंने स्वयं में देखा है, उस दिन से ही सबमें देखने की आंख भी उपलब्ध हो गयी है। भीतर"स्व" और"पर" में कोई भेद नहीं है।
वृत्त की परिधि पर बिंदु-बिंदु में कितनी दूरी हो, किंतु केंद्र पर तो कोई भी दूरी नहीं रह जाती है। और इससे ही ज्ञान अंततः प्रेम बन जाता है, और प्रेम ज्ञान बन जाता है। ज्ञान जहां नहीं है, वहां प्रेम भी नहीं है।
और जहां प्रेम नहीं है, वहीं दुख है।

प्रेम का अभाव दुख है। उस अभाव में ही प्राण पीड़ा से भर जाते हैं और जीवन अस्वस्थ हो जाता है। प्रेम स्वास्थ्य है, क्योंकि प्रेम स्वयं की उपलब्धि है।
लेकिन, वह ज्ञान कहां है, जो कि प्रेम बन जाता है? ज्ञान है वहां, जहां
कि सूर्य की ओर आंखें हैं।
सत्य की ओर आंखें करते ही जीवन आलोक से भर जाता है।
किंतु अधिक लोग जीवन भर सत्य की ओर पीठ किये ही खड़े रहते हैं! और सूर्य
की ओर जिसकी पीठ है, उसकी स्वयं की छाया ही उसके लिए अंधकार बन जाती है।
हम स्वयं ही हैं अपने अंधकार या आलोक।
किस दिशा में हमारी आंखें हैं, इस पर ही सब कुछ निर्भर है। हम चाहें तो सूर्यमुखी होने का सौभाग्य पा भी सकते हैं और चाहें तो खो भी सकते हैं। मैं अपने ही अनुभव से यह कहता हूं--अंधकार में था, तो जहां तक दिखायी देता था, अंधकार ही अंधकार दिखायी देता था। उसे मिटाने का कोई भी प्रयास सफल नहीं हुआ। बहुत उससे लड़ा, लेकिन असफलता के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं आया।
लेकिन असफलता और सतत पराजय से मैं निराश नहीं हुआ, वरना यही जाना कि शायद मेरी दिशा ही भ्रांत है। और पाया कि दिशा गलत थी। अंधकार था, क्योंकि मैं ही प्रकाश से विमुख खड़ा था। वह अंधकार मेरी छाया थी। प्रकाश की विमुखता से ही उसका जन्म हुआ था। अपने आपमें उसकी कोई सत्ता न थी। और उसे मिटाने के लिए चाहे मैं कुछ भी क्यों न करता, वह सब निष्फल हो जाता। क्योंकि जो नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता है। असत्तावान से लड़ने से अधिक अज्ञानपूर्ण और क्या हो सकता है?
लेकिन हम सभी छायाओं से लड़ते हैं! और यही कारण है कि हमारा जीवन एक अंधेरी छाया होकर निःसत्व हो जाता है।
जीवन की उपलब्धि सदा ही विधायक की दिशा में है।
अभाव से संघर्ष जीवन में नहीं, मृत्यु में ही ले जाता है।
उसे पाना है,"जो है" और उसे छोड़ना है,"जो नहीं है।"
जैसे ही यह तथ्य मुझे दिखा, मैंने असत्य की और अंधकार की चिंता छोड़ दी
और आंखें उस और उठायीं, जो कि सत्य है, आलोक है। और मुड़ते ही जाना कि समस्त अंधकार मात्र इस बात की सूचना थी कि मेरी पीठ सूर्य की ओर थी, और मेरी आंखें सूर्य की ओर नहीं थीं!
मैं आपसे भी पूछना चाहता हूं--क्या आप अंधकार में हैं? क्या आपके चारों ओर भी अमावस की रात्रि घिरी है? यह एक इंगित है, एक सूचना है। आप जिस दिशा में खोज रहे हैं, उस दिशा में सूर्य नहीं है। और इस सत्य को जानते ही एक क्रांति हो जाती है। क्योंकि तब अंधकार या आलोक हमारी जीवन-दृष्टि के प्रतीक मात्र रह जाते हैं।
अंधकार को नष्ट नहीं करना है। वह तो जीवन दिशा के परिवर्तन से स्वतः
ही विलीन हो जाता है। और न ही आलोक को कहीं से लाना ही है। वह तो नित्य ही उपस्थित है। हमें तो मात्र उसकी ओर आंख उठानी हैं। और उसके लिए अपने हृदय के द्वार खोलने हैं।
वह जो कि सदा ही है--हृदय के द्वार बंद होने मात्र से खो जाता है और हृदय के द्वार खुलने से ही पुनः उपलब्ध हो जाता है।
सत्य को कहीं से पाना नहीं, बस स्वयं को ही खोजना है।
सूर्य को कहीं खोजना नहीं, बस अपनी आंखें ही मोड़नी और खोलनी हैं।
जगत में दो ही भांति के व्यक्ति हैं--सूर्यान्मुख और सूर्य से विमुख।
पौधे जैसे सूर्य से विमुख हों, तो जीवन को खो देते हैं। ऐसे ही वे व्यक्ति भी जीवन के रस और अर्थ से वंचित हो जाते हैं, जो सूर्य की विरुद्ध दिशा में यात्रा करते हैं और क्रमशः गहन से गहन अंधकार पथों पर भटक जाते हैं। स्वभावतः ही उनका जीवन दुख, पीड़ा और आत्मिक दारिद्रय से भर जाता है। उनके हृदय दीन-हीन हो जाते हैं और अंधी कामनायें उन्हें चिर-भिखारी बना देती हैं। उनके पास सब कुछ भी हो, तो भी उनके पास कुछ भी नहीं होता। वे स्वयं ही अपने पास नहीं रह जाते हैं। सब पाने के ख्याल में स्वयं को ही खो देते हैं। और स्वयं को गंवा देने से बड़ा न कोई संकट है, न कोई विपदा है।

प्रकाश के विरोध में जीने से आंखें अंधी हो जाती हैं और जड़ें सड़ जाती हैं। प्राण पाषाण बन जाते हैं और प्रेम के स्रात सूख जाते हैं। ऐसी आत्मायें, अंधकार के पक्षियों की भांति आलोक से भयभीत रहने लगती हैं। और उनका जीवन एक लंबा दुख स्वप्न हो जाता है। रात्रि की विषाक्त और मूर्च्छित निद्रा को ही वे जीवन मान लेती हैं! और दिवस का जाग्रत जीवन उन्हें विस्मरण ही हो जाता है! ऐसा जीना नाम-मात्र को ही जीना है। यह जीना झूठा ही है। वस्तुतः सूर्य से विमुख होकर कोई भी जीवन नहीं है।
धर्म का आमंत्रण सूर्यान्मुख होने का आख्रान है, सूर्य की ओर आंखों
को उठाना है।
लेकिन सूर्य कहां है? इस पर हम विचार करेंगे। उन कारणों पर भी विचार करेंगे, जो कि सत्य के आलोक तक पहुंचने में बाधा हैं। और जिनके कारण चित्त मुक्त होकर"सूर्य की ओर उड़ान" नहीं भर पाता।
सूर्य स्वयं के भीतर है।
बाहर होना सूर्य के विमुख होना है। बाहर की यात्रा अंधकार की यात्रा है।
ज्ञान का स्रात स्वयं में है। चैतन्य का केंद्र स्वयं में है। स्वयं
की आत्यंतिक गहराई में ही वह है, जिसे पाने से और सब पाने की वासनाओं से मुक्ति हो जाती है। सत्य को जानने का द्वार स्वयं को उसकी पूर्णता में जान लेना ही है।
किंतु सत्य के संबंध में तो बहुत मत हैं, बहुत सिद्धांत हैं, बहुत शास्त्र हैं! और इनका जाल ही व्यक्ति को उलझा लेता है! और उसके चित्त को ऐसा घेर लेता है कि वह सत्य के साक्षात में असमर्थ ही हो जाता है।
सत्य के संबंध में जो सिद्धांत हैं, वे स्वयं सत्य नहीं हैं।
सत्य को दिये गये जो शब्द हैं, वे स्वयं सत्य नहीं हैं।
और सत्य के संबंध में जो शास्त्र हैं, वे सत्य के नहीं, वरन सत्य के संबंध में मतों के संग्रह है।
सत्य यह है कि सत्य को शब्द से कहा ही नहीं जा सकता। सत्य है जीवंत अनुभूति, शब्द हैं मृत अभिव्यक्तियां। मृत, जीवित को प्रकट करने में समर्थ नहीं है।
इसलिए सत्य की खोज में सबसे पहले समस्त मतों से मुक्त होना आवश्यक है। मत सत्य नहीं, सत्य का आभास है।
किसी भी मत को मानना चित्त को पक्ष में बांधना है। जहां पक्ष है, वहां पक्ष का आग्रह है। जबकि सत्य का आग्रही पक्ष का आग्रही कैसे हो सकता है? पक्षपातग्रस्त चित्त अपने पक्ष को सत्य के भी ऊपर रखता है! सत्य को वह अपने पक्ष के अनुकूल ही चाहता है! और यह बात ही जड़तापूर्ण है।
सत्य को हमारे अनुकूल नहीं, वरन हमें सत्य के अनुकूल होना पड़ता है।
किंतु मताग्रही की ऐसी तैयारी नहीं होती। इसलिए वह अपनी धारणाओं को
ही सत्य सिद्ध करने की चेष्टा में नष्ट हो जाता है।
सत्य तो सिद्ध है ही। उसे क्या सिद्ध करना है! जो स्वयं को समस्त मतों, वाद-विवादों और पक्षों से शून्य करता है, वह निष्पक्ष होकर सत्य के आगमन के लिए स्वयं में मार्ग दे देता है।
मनुष्य ने अपनी लंबी यात्रा में मतों और पक्षों, संप्रदायों और पंथों
का बहुत-सा कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है। मनुष्य तो पैदा होते हैं, लेकिन फिर मरने का नाम नहीं लेते! उनकी लाशें सुरक्षित रख ली जाती हैं और उनकी पूजा जारी रहती है! इस भांति हम अतीत से मुक्त नहीं हो पाते हैं।
और प्रत्येक पीढ़ी नयी पीढ़ी को पुरानी परंपराओं की जंजीर वंशाधिकार में भेंट कर जाती है!
प्रत्येक नवागंतुक पैदा तो स्वतंत्र होता है, लेकिन पैदा होते ही संप्रदायों में परतंत्र हो जाता है। इसके पूर्व कि उसमें स्वयं की विचारणा जागे और विवेक पैदा हो, उसके चित्त को सत्य के संबंध में किन्हीं धारणाओं से भर दिया जाता है! विवेक जागरण के पूर्व ही ईश्वर, और आत्मा, और जीवन के संबंध में कुछ विश्वास उसमें संस्कारित कर दिये जाते हैं! यह प्रचार बहुत सूम है। इसके ही कारण पृथ्वी पर ईसाई हैं, हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, मुसलमान हैं, लेकिन मनुष्य नहीं हैं!

यह दुर्भाग्य बहुत गहरा है और यह दुर्घटना बहुत संघातक है। इसके कारण
ही न तो हम ठीक से मनुष्य होने में समर्थ हो पाते हैं और न ही हमें मनुष्यात्मा में निहित सत्य का साक्षात हो पाता है! मनुष्यात्मा को जानने से पहले कम से कम मनुष्य होना तो अनिवार्य है।
सत्य की खोज सांप्रदायिक चित्त को लेकर असंभव है। उसके लिए तो पूर्णतः असांप्रदायिक चित्त की भूमिका आवश्यक है। सांप्रदायिक चित्त तो दासता में बंधा होता है। शरीर को जो लौह-श्रृंखलायें बांध सकती हैं, वे इतनी सुदृढ़ नहीं होतीं, जितनी कि विचारों की श्रृंखलायें जो कि मन को बांध लेती हैं। मन की गुलामी की असल जड़ इस तथ्य में निहित होती है कि हमें उस गुलामी का बोध ही नहीं रह जाता है! वह हमारे अवचेतन में ही प्रविष्ट हो जाती है और हम उसके आदी और अभ्यस्त हो जाते हैं! जैसे खून में कोई जहर मिला दिया गया हो, ऐसे ही परंपरागत संस्कार हमारे चित्त को कैद कर लेते हैं! लेकिन बोध के अभाव में ही जिस बंधन की शक्ति है, वह बोध के आगमन के साथ
ही स्वतः क्षीण होने लगती है। जैसे-जैसे हम अपनी मानसिक दासता को पहचानते और परिचित होते हैं, वैसे-वैसे ही उसकी पकड़ हमारे ऊपर ढीली होने लगती है। लेकिन यदि इस दासता को ही हम स्वतंत्रता समझते हैं और संप्रदायों को
ही सत्य--तब तो उनसे मुक्ति का कोई उपाय ही नहीं रह जाता है।
धर्म के नाम पर प्रचलित सभी संप्रदाय, संगठन और चर्च स्वयं के ही एक मात्र सत्य होने का दावा व्यर्थ ही नहीं करते हैं। इस दावे और प्रचार में ही तो उनके प्राण छिपे हुए हैं! इसके आधार पर ही तो वे जीते हैं और शोषण करते हैं! यह दावा ही मनुष्य के ऊपर उनकी प्रभुता का मूल आधार है। इसलिए ही इस दावे को किसी भी मूल्य पर नहीं टूटने देना चाहते हैं। और इसे परिपुष्ट करने के लिए सभी भांति के उपाय करते हैं! इसके ही कारण उन सभी ने अपने-अपने ग्रंथों को ईश्वरीय कहा है! इन शास्त्रों की जकड़ मनुष्य पर ढीली न होने पावे, इसके लिए इनसे अधिक सुदृढ़ और कौन-सी भित्ति हो सकती है?
प्रभुता और अधिकार की आकांक्षा ने मनुष्य को परतंत्र रखने की बहुत-सी तरकीबें ईजाद की हैं। इन तरकीबों और प्रचार से जो अपने को सवाशत मुक्त नहीं करता, वह सत्य को जानने की आशा भी नहीं कर सकता है।
धर्म को पाने के लिए धर्मों से मुक्त होना होता है।
धर्म तो बहुत हैं, लेकिन उन सभी को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। वे
दो वर्ग हैं आस्तिक और नास्तिक। सत्य के संबंध में जहां भी किसी भांति की धारणा को मानने का आग्रह है, वहीं पंथ है और पांथिक दृष्टि है। जबकि सत्य को मानने का प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न तो उसे जानने का है।
सत्य का विश्वास नहीं करना है। विवेक को जगाना और सत्य को जानना है। विश्वास तो अंधापन है। फिर वह विश्वास चाहे किसी का भी क्यों न हो।
अविश्वास भी अंधापन है। आंखें तो मात्र विवेक से ही खुलती हैं।
मैं न तो आस्तिकता में मार्ग देखता हूं, न नास्तिकता में। वे दोनों तो
एक ही अंधेपन के पेंडुलम की दो स्थितियां हैं। वे दोनों एक दूसरे की प्रतिक्रियायें हैं। उन दोनों में से किसी की भी धारणा को पकड़ना घातक है। वस्तुतः तो धारणा मात्र को ही पकड़ना घातक है। किसी भी धारणा को स्वीकार या अस्वीकार करते ही चित्त बंध जाता है, सीमित हो जाता है और अपनी स्वतंत्रता खो देता है।
इसलिए न तो कुछ स्वीकार करना है और न ही अस्वीकार करना है, वरन स्वीकार और अस्वीकार दोनों को ही छोड़ देना है। चित्त संयम के इस बिंदु पर ही स्वतंत्रता का आविर्भाव होता है। और स्वतंत्रता सत्य तक ले जाती है।
मनुष्यता सत्य के संबंध में की गयी धारणाओं के कारण खंडित हो गयी है।
लेकिन सत्य सर्व, एक कर देता है।
धारणाएं तोड़ती हैं, सत्य जोड़ता है।
मनुष्य और मनुष्य के बीच संप्रदायों की दीवारों के अतिरिक्त और कौन-
सी दीवारें हैं? और जितना अहित इन दीवारों ने किया है और किसी दूसरी चीज ने किया है? लेकिन निश्चय ही आप भी किसी न किसी पंथ, किसी न किसी धर्म, किसी न किसी संप्रदाय में खड़े होंगे! आप भी किसी मंदिर, किसी शिवालय या किसी चर्च के अनुयायी होंगे। किसी शास्त्र या आगम पर आपका भी विश्वास होगा। किसी विश्वास के घेरे में आप भी आबद्ध होंगे। और फिर भी आप सत्य को पाना

चाहते हैं! क्या इन दोनों तथ्यों में स्पष्ट ही विरोधाभास नहीं है? क्या किसी संप्रदाय में होना और सत्य की आकांक्षा करना, विष को ही अमृत समझना नहीं है?
स्मरण रहे कि इस पृथ्वी पर सभी कुछ संभव है, लेकिन सांप्रदायिक मन सत्य को पा ले, यह संभव नहीं है।
मैं एक गांव में गया था। कोई वृद्ध वहां मुझसे बोले, मैं हिंदू हूं! मैंने उनसे पूछा कि यह हिंदू या मुसलमान होना क्या है? क्या ये सब बातें हमें दूसरों के द्वारा ही नहीं सिखा दी जाती हैं? क्या कोई व्यक्ति हिंदू या मुसलमान पैदा होता है?
समाज जो धारणायें देता है, सदा उनमें ही बंधे रहना प्रौढ़ता का लक्षण नहीं है।
धर्म का संबंध सांयोगिक घटनाओं से नहीं है। वह तो उस सनातन स्वरूप से संबंधित है, जो कि सबमें है। और जिसकी न कोई जाति है, न कोई देश है, और न कोई रंग और लिंग है।
मित्र, जो व्यक्ति स्वयं को किसी घेरे में बांध लेता है, वह उस तक कैसे पहुंचेगा, जिसका कि कोई घेरा नहीं है? और जो व्यक्ति किसी धारणा को पकड़ लेता है, वह उसे कैसे जानेगा, जिसकी कि कोई भी आत्मा संभव नहीं है?
हमें जो ज्ञात है, उस पर रुके रहने से अज्ञात नहीं जाना जा सकता है। सागर की अनंत यात्रा पर जिसने जाना चाहा है, उसे किसी किनारे से अपने को बांध रखने का कोई उपाय नहीं है।
क्या मैं पूछ सकता हूं कि किनारे पर बने रहना, और सागर में जाना भी-- दोनों एक साथ कैसे संभव हो सकते हैं?
अज्ञात सागर की खोज के लिए ज्ञात तट तो छोड़ने ही होंगे। उनका मोह जिसे है, वह अपनी नौका को यात्रा के लिए कभी खोल ही नहीं सकेगा। तट ही उसकी कब्र बनेंगे और सागर की यात्रा केवल स्वप्न ही रह जायेगी। बहुत लोग ऐसे ही स्वप्न देखते-देखते ही मर जाते हैं, क्योंकि अज्ञात की यात्रा का साहस जुटाना उन्हें संभव नहीं हो पाता है।
सागर में चलना है, तो तट छोड़ो। और सागर में गहरे चलना है तो सतह छोड़ो। सतह पर लहरें ही लहरें हैं, मोती तो गहरे में हैं। सत्य पाना है तो पक्ष छोड़ो, क्योंकि निष्पक्ष हुए बिना कोई भी सत्य के पक्ष में नहीं हो सकता है।
मनुष्य की सत्य की खोज में, उसकी जिज्ञासा में, सबसे बड़ी बाधायें, वे शब्द और शास्त्र हैं, जो कि उसने सीख रखें हैं और जिन्हें सत्य मानने का वह आदी हो गया है! सीखे हुए विचार और विचार-धारायें स्वयं के विचार के जन्म में अवरोध बन जाते हैं। उनमें दबकर स्वयं की विचार करने की शक्ति धीरे- धीरे मृतप्राय हो जाती है। उसके उपयोग का अवसर ही नहीं आ पाता। उधार ज्ञान ही जब काम दे देता हो, तो स्व-ज्ञान की आवश्यकता ही क्या रह जाती है?
मैं यदि आपसे पूछूं कि ईश्वर है? तो आप जो भी उत्तर देंगे, क्या वह सीखा हुआ ही नहीं होगा? और तब क्या वह उत्तर भी असत्य ही नहीं होगा? जीवन के संबंध में सीखा हुआ उत्तर सत्य कैसे हो सकता है?
जीवन में जो भी सीखने योग्य है, वह किसी से भी नहीं सीखा जा सकता है। उसे तो स्वयं ही जानना होता है। फिर चाहे वह प्रेम हो या कि प्रार्थना हो, सत्य हो या कि सौंदर्य हो! लेकिन हमने तो ईश्वर को भी सीख रखा है! इससे ज्यादा पागलपन की बात क्या कोई दूसरी भी हो सकती है? किंतु इन सीखे हुए थोथे उत्तरों पर ही हम जीवन को निर्मित करते हैं! और तब यदि एक दिन हवा का जरा-सा झोंका ही हमारे ज्ञान के सारे भवन को भूमिसात कर देता हो, तो क्या कोई आश्चर्य है?
जो ईश्वर को जानना और पाना चाहते हैं, उन्हें दूसरों द्वारा सिखाये गये ईश्वर को भूलना पड़ता है।
वह सत्य, सत्य नहीं है, जो कि स्वयं मेरे ही हृदय ने जाना और जीया नहीं है। और न ही वह प्रेम, प्रेम है, जो कि मेरे ही हृदय की पीड़ा से आविर्भूत न हुआ हो। और न ही वह प्रार्थना, प्रार्थना है, जिसमें कि मेरे ही प्राण स्पंदित न हो रहे हों। जब मैं स्वयं ही आमूल परिवर्तित हो जाता हूं, तभी वह

द्वार मेरे सामने आता है, जो कि परमात्मा के मंदिर का है। स्वयं की सत्ता के अतिरिक्त सत्य का कोई और मार्ग नहीं है।
इसलिए सीखे हुए ज्ञान को भूलना पड़ता है, ताकि उसका अनावरण हो सके, जो
कि स्वयं में ही छिपा है और जिसे सीखने की कोई भी जरूरत नहीं है।
स्वयं में जो अनसीखा है, वही स्वरूप है। और स्वरूप वही है, जो कि बाहर
से नहीं लाया गया है, और सदा से स्वयं में ही है, स्वयं ही है।
हम जो भी सीख लेते हैं, उसे ही खोजने लगते हैं! और ऐसी खोज प्रारंभ से
ही भ्रांत हो जाती है। क्योंकि ऐसी खोज अनावरण नहीं, बल्कि आरोपण बन जाती है। सत्य पर हम अपनी सीखी हुई धारणा का आरोपण करने लगते हैं। हम सत्य पर स्वयं को ही थोप देते हैं। और तब जो अनुभव होते हैं, वे सत्य के नहीं, हमारी ही धारणाओं के, हमारी ही कल्पनाओं के होते हैं।
राम, कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध या महावीर के अनुभव कठिन नहीं हैं। उन्हें साकार देख लेना भी कठिन नहीं है। लेकिन वह सब हमारे चित्त की धारणाओं और आत्म-सम्मोहन का खेल है। सत्य से उन अनुभूतियों का दूर का भी संबंध न है, न हो सकता है।
सत्य के निकट तो केवल वे ही जा सकते हैं, जिनके चित्त सब भांति की धारणाओं के वस्त्रों को त्याग कर नग्न हो चुके हैं और सब भांति की आत्म-सम्मोहक वृत्तियों को जिन्होंने तिलांजलि दे दी है।
चित्त के किसी भी कोने में पड़ी हुई कोई भी धारणा सत्यानुभव के लिये बाधा बन जाती है। उसका प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन हो सकता है। वह रूप धर सकती है और सत्य का भ्रम पैदा कर सकती है। यह अनुभव सुखद भी हो सकता है। लेकिन, सुखद होने से ही कोई अनुभव सत्य नहीं हो जाता।
वस्तुतः तो दुख और सुख की अनुभूतियां मन की ही अनुभूतियां हैं।
सत्य की अनुभूति न तो सुख की अनुभूति है, न दुख की, वह तो दोनों के ही पार है।
हम जिन धारणाओं को स्वीकार कर लेते हैं, वे क्रमशः अचेतन हो, चित्त के गहरे और अंधेरे तलों में प्रविष्ट हो जाती हैं। उनके होने का धीरे-धीरे हमें स्वयं ही ज्ञान नहीं रह जाता। किसी भी जाति की धारणायें उस जाति के व्यक्तियों के अचेतन की सहज ही निवासी बन जाती हैं। इनसे मुक्त होना कठिन है। लेकिन मुक्त हुए बिना, अन्य कोई विकल्प भी नहीं।
चित्त यदि पूर्व से ही किन्हीं धारणाओं, रूपों, आवृत्तियों और मूर्तियों से भरा है, तो वह सत्य को जानने को खाली ही नहीं है। उसमें अवकाश ही नहीं है कि सत्य प्रवेश पा सके। और वह स्वतंत्र भी नहीं है कि अपने स्वप्नों को छोड़ सके। उसमें स्वप्न बनते और बिगड़ते ही रहेंगे। और जिस स्वप्न के वह स्वयं ही पक्ष में हो और जिसे वह स्वयं ही सत्य सिद्ध करना चाहता हो, वह स्वप्न सत्य का अभिनय भी कर सकता है।
किसी भी स्वप्न में यदि हम अपनी समग्र शक्ति से सहयोग दें, तो तीव्रता
के किन्हीं क्षणों में वह सत्य की भांति प्रतीत हो सकता है। स्वप्न सत्य होने का आनंद दे सकते हैं! और बहुत से लोग इस तरह के अभ्यास को ही सत्य की साधना समझ लेते हैं!
मित्र, सत्य की और स्वप्न की साधना में बहुत भेद है। स्वप्न की साधना में श्रद्धा, विश्वास, आरोपण और आत्म-सम्मोहन चाहिए और सत्य की साधना में उन सबका त्याग।
सब भांति शून्य आंखें ही सत्य को जान सकती हैं। जो आंखें पूर्व से ही किन्हीं चित्रों से भरी हैं, वे अपने ही चित्रों के प्रक्षेपण को जानेंगी, उसको नहीं जो कि है। आंख तो चाहिए दर्पण जैसी--शून्य, निर्दोष और निष्पक्ष।
निराग्रह होना, निर्दोष होना है। शून्य होना, स्वच्छ होना है।
मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। एक फकीर दिन-भर के उपवास और उपासना
के बाद रात्रि को सोया ही था कि उसने एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि वह स्वर्ग में पहुंच गया है। कोई बड़ा समारोह वहां मनाया जा रहा है। सारे रास्ते सजे हैं। बहुत दीप जले हैं। हवायें सुवासित हैं। मार्गों पर बहुत चहल-पहल है। उसने किसी से इस सबका कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि आज भगवान का जन्म-दिन है और जल्दी ही उनकी शोभा-यात्रा निकलने वाली है! वह भगवान के

दर्शन की कल्पना से ही आनंदित हो उठा और राजपथ के किनारे इकट्ठी होती भीड़ में बड़ी प्रतीक्षा से खड़ा हो गया।
फिर शोभा-यात्रा शुरू हुई। लाखों लोग हैं, बीच रथ पर अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति बैठा हुआ है! उसने सोचा शायद यही भगवान हैं। और लोगों से पूछा, किंतु ज्ञात हुआ कि ये हैं जीसस क्राइस्ट और साथ में उनके अनुयायी हैं! उनके निकल जाने के बाद वैसा ही दूसरा रथ भी आया। वे थे हजरत मोहम्मद! उनके साथ भी लाखों लोग हैं! और फिर राम का रथ था, कृष्ण का रथ था, बुद्ध, महावीर और जरथुस्त्र के रथ थे! और बहुत से लोग थे और बहुत से रथ थे! वह देखते-देखते थक गया, लेकिन भगवान का कोई भी पता न चला!
फिर तो मार्ग भी निर्जन होने लगे। भीड़ छंटने लगी। शायद शोभा यात्रा समाप्त हो गयी थी। तभी एक बूढ़े से घोड़े पर एक वृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ आया। उसके साथ न तो मशालें थीं, न ही कोई व्यक्ति था! अंत में इस दयनीय वृद्ध को देख उसे हंसी आने लगी। उसने किसी से पूछा, ये महानुभाव कौन हैं? उत्तर मिला, ये स्वयं परमात्मा हैं!
इस सत्य के आघात से उसकी नींद टूट गयी और उसने स्वयं को कांपते हुए पाया! दिन भर जो प्रार्थनायें उसने की थीं, फिर उन्हें वह नहीं कर सका। भगवान के नाम से जो धारणायें, उसने बना रखी थीं, वे खंडित हो गयीं।
भगवान के साथ होने के लिए और सबका साथ छोड़ देना आवश्यक है। जो किसी और
के साथ है, वह इस कारण ही भगवान के साथ नहीं रह पाता है। उस रात्रि उसकी साधारण नींद ही नहीं टूटी, वरन वह नींद भी टूट गयी, जो धर्म के नामों पर प्रचलित अफीम को लेने से आ जाती है।
किंतु कितने कम लोग हैं, जो कि अपनी नींद के नशे को तोड़ने को राजी होंगे? उस फकीर ने जो स्वप्न में देखा था, क्या वही आपको सारी पृथ्वी पर वस्तुतः दिखायी नहीं पड़ता है?
लोग क्राइस्ट के साथ हैं, कृष्ण के साथ हैं, बुद्ध के साथ हैं! लेकिन परमात्मा के साथ कौन है?
वस्तुतः परमात्मा के साथ जिसे होना है, उसे अपने और परमात्मा के बीच में किसी भी मध्यस्थ को लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। मध्यस्थ की धारणा हमारी कल्पना के अतिरिक्त और कुछ ही नहीं है। फिर वह कल्पना ही बाधा बन जाती है।
यह स्मरण रहे कि जो परमात्मा के साथ है, वह राम, कृष्ण और क्राइस्ट के साथ तो है ही। लेकिन जो क्राइस्ट के साथ है या कृष्ण के साथ है, वह परमात्मा के साथ नहीं है! क्योंकि क्राइस्ट के साथ जो है, वह कृष्ण के विरोध में है! और राम के साथ जो है, वह मोहम्मद के पक्ष में नहीं! किंतु जो परमात्मा के साथ होता है, वह एक ही साथ सबके साथ हो जाता है। क्योंकि परमात्मा में किसी का कोई भी विरोध नहीं है। वैसा व्यक्ति किसी भी धर्म में नहीं होता है, क्योंकि वह धर्म में होता है।
मनुष्य जिस क्षण भी अपने सब आग्रह छोड़ देता है, उसी क्षण, उस निराग्रह भावदशा में ही सत्य के सब पद गिर जाते हैं। वस्तुतः वे पद सत्य पर नहीं, वरन हमारे चित्त पर ही पड़े होते हैं।
सत्य एक है और एक ही हो सकता है। किंतु उसकी धारणायें अनेक हैं। एक की
ओर चलने के लिए अनेक का क्षेत्र छोड़ देना आवश्यक है।
एक पूर्णिमा की रात्रि, मैं सागर तट पर था। सागर की लहरों में चंद्रमा
के अनेक रूप प्रतिबिंबित हो रहे थे! चंद्रमा तो एक था, लेकिन सागर की लहरें उसे बहुत रूपों में प्रतिफलित करती थीं। जो मित्र साथ थे, उनसे मैंने कहा था, ऐसा ही मनुष्य का अशांत मन है। सत्य को अशांति के कारण वह बहुत रूपों में धारण करता है। लेकिन जो एक है, उसे जानने को, स्वयं एक और शांत होकर प्रतीक्षा नहीं करता! और यह भी मैंने उनसे कहा था, सागर की लहरों पर जो प्रतिफलन बन रहे हैं, वे सत्य नहीं हैं, उन्हें छोड़कर उस ओर देखना आवश्यक है, जिनके कि वे प्रतिफलन हैं।
लेकिन दुर्भाग्य से हम तो प्रतिफलनों से ही तृप्त हो जाते हैं! धर्म
की जगह हम हिंदू, ईसाई या जैन होने से तृप्त हो जाते हैं! क्या यह उचित नहीं है कि जो धर्म में गति करना चाहे, उसे इन थोथी और सतही तृप्तियों से ऊपर

उठना चाहिए। धार्मिक होने के लिए हिंदू, मुसलमान, सिख या पारसी होना छोड़ना चाहिए। ये बंधन मिट ही जाना चाहिए।
धर्म के लिए पंथों का मोह-त्याग, मूल्य की भांति चुकाना पड़ता है।
संप्रदायों से जो जितना दूर जाता है, वह धर्म के उतने ही निकट आ जाता है।
संप्रदायों पर जिसका प्रेम जितना कम हो जाता है, वह धर्म का उतना ही प्यारा बन जाता है।
यह भी सोचना आवश्यक है कि संप्रदायों और संगठनों से हमारा इतना राग क्यों है! क्योंकि व्यक्ति अकेले होने में भय खाता है। भीड़ के साथ होने से उसे यह भय नहीं सताता और सुरक्षा अनुभव होती है। बहुत गहरे में यही भय धार्मिक संगठनों से हमें बांधे रखता है। संप्रदाय मनुष्य के समूह में होने की आकांक्षा के शोषण हैं। मनुष्य की यह कमजोरी ही उनकी शक्ति है। इस कमजोरी का सहारा ले, वे किन्हीं भी सिद्धांतों और शास्त्रों का प्रचार कर सकते हैं और लोगों को उन्हें मानने को राजी कर सकते हैं! उनके पीछे जितनी बड़ी भीड़ हो, जितनी बड़ी संख्या हो, उनके द्वारा प्रतिपादित और प्रचारित सत्य भी उतने ही ज्यादा सत्य मालूम पड़ने लगते हैं!
यही कारण है कि सभी संप्रदाय संख्या के बढ़ाने के लिए और उनकी संख्या
कम न हो जाये, इसके लिए सदा ही चेष्टारत होते हैं। इस प्रतिस्पर्धा में हिंसा, घृणा और हत्यायें--सभी पाप, पुण्य हो जाते हैं! युद्ध, धर्मयुद्ध हो जाता है! और निर्दोष व्यक्तियों के रक्त की भी झूठे देवताओं के लिए आहुति दी जा सकती है! धर्मों का इतिहास इन अत्याचारों और अनाचारों की कहानी का इतिहास है!
धर्मों की भित्ति भय पर है। जबकि धर्म की आत्मा है अभय।
अभय का अर्थ है अकेले होने का साहस।
वह वन जाने का साहस नहीं, वरन स्वयं से भीतर, भय के कारण स्वीकृत समस्त धारणाओं को छोड़ देने का साहस है। अपने भय के कारण हम स्वयं ही उन्हें पकड़े हुए हैं! कोई और मूलतः जिम्मेवार नहीं है। भय है और उससे सुरक्षा पानी है, तो किसी न किसी की शरण जाना ही होगा। शरणागत होने की प्रकृति भय से पलायन ही है। उससे भय तो नष्ट नहीं होता; बस व्यक्ति, पर-निर्भर हो जाता है।
भय से पर-निर्भरता आती है।
इस भांति हमारा चित्त एक ऐसे अंतहीन वृत्त में पड़ जाता है, जिसके बाहर जाने का फिर कोई द्वार ही नहीं मिलता है। द्वार तो है, लेकिन वह भय की अनुभूति में नहीं है। उससे पलायन के बाद फिर कोई द्वार नहीं है। भय है, तो उसे एक तथ्य की भांति स्वीकारें और उससे भागें नहीं। भागने पर तो, फिर परमात्मा भी उससे नहीं बचा सकता है। रुकें और भय के उस तथ्य में झांकें। झांकने पर ज्ञात होता है कि हम छाया से डरे हुए थे।
स्वयं के अकेलेपन को जानना और जीना धर्म का पथ है।
धर्म तो स्वयं की, स्वयं से, स्वयं तक, अत्यंत एकाकी उड़ान है।
उसका समूह से, संगठन से क्या संबंध?
धर्म तो आत्यंतिक रूप से वैयक्तिक और निजी क्रांति है।
क्या आपको स्वयं ही यह दिखायी नहीं पड़ता है? देखें! आंख खोलें और देखें! संप्रदायों के धुएं को हटाये, तो धर्म की निर्धूम ज्योति-शिखा अवश्य ही दिखायी पड़ती है।
समाज और घर को छोड़ने वाले संन्यासी तो हैं। लेकिन वास्तविक संन्यास
तो उन संस्कारों के छोड़ने से उपलब्ध होता है, जो कि घर और समाज, परंपराएं और जातियां हमें विरासत में दे देती हैं। चित्त के उन समस्त घेरों को तोड़ना आवश्यक है, जो कि दूसरों के द्वारा हमारे भीतर निर्मित किये गये हैं। सत्य की दिशा में यह पहला चरण है।
उस ज्ञान को व्यर्थ जानें, जो कि सिखाया गया है।
आस्तिकता सिखायी गयी हो, तो आस्तिकता व्यर्थ है। और नास्तिकता सिखायी गयी हो तो नास्तिकता व्यर्थ है। आस्तिकता तो हजारों वर्षों से सिखायी जाती रही है! राज्य और धर्म उसका प्रचार करते हैं!
लेकिन इधर कुछ देश कुछ वर्षों से नास्तिकता भी सिखा रहे हैं! कुछ वर्षों के प्रचार से उसने करोड़ों लोगों को ईश्वर, धर्म, आत्मा और पुनर्जन्म के विरोध में सहमत कर लिया है! लोग राजी हो गये हैं कि धर्म अफीम

का नशा है। और ईश्वर का सारा विचार ही अज्ञानपूर्ण है। और वे सारे लोग अज्ञानी थे, जिन्होंने देह के अतिरिक्त और किन्हीं सत्यों के अनुभव की बात है।
ये वे ही लोग हैं जो कि ईश्वर को मानते थे और ईश्वर के पुत्र को मानते थे! वह मान्यता भी उन्हें दिया गया संस्कार थी। और जैसे वे पुराने प्रचार को मानते थे, वैसे ही उन्होंने नया प्रचार भी मान लिया है! मानने की आदत ही असल में घातक है। मस्तिष्क का वैसा ढांचा कुछ भी मानने को राजी हो सकता है। क्योंकि अंधविश्वास ही वैसे ढांचे का आधार है। और अंधापन अज्ञान का गढ़ है। धार्मिक चेतना स्वीकार करने वाली चेतना नहीं होती है। विद्रोह तो उसका प्राण ही है।
मैं विद्रोह सिखाता हूं, क्योंकि मैं मनुष्यता में धर्म का जन्म देखता हूं।
विद्रोह का क्या अर्थ है?
विद्रोह विरोध नहीं है। विरोध तो प्रतिक्रिया-जन्य होता है। प्रतिवाद में वाद छिपा ही रहता है।
विद्रोह तो एक प्रकार का जागरण है। विद्रोह तो एक ऐसे सजीव बोध में निहित होता है, जहां मन स्वयं जानने को जागरूक रहता है और किसी भी मान्यता को या मान्यता के विरोध को अपने भीतर इकट्ठा नहीं होने देता है। विद्रोह अंधश्रद्धा से भिन्न विवेक की दृष्टि है।
मैं निवेदन करूंगा कि अपने मन में खोजें और जहां भी प्रचारित और संस्कारित विश्वास मिलें, उन्हें जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दें। इस भांति ही मन की भूमि तैयार होती है। बाद में उसमें ज्ञान के बीज बोये जा सकते हैं और सत्य की फसल काटी जा सकती है।
बाहर से आये विश्वास, स्वयं तो थोथे और निर्जीव होते ही हैं, लेकिन उनके घास-पात के कारण चित्त अपनी उत्पादकता भी खोने लगता है। थोथे और अंधे विश्वासों के कारण ही बहुत से सृजनशील मन बिल्कुल ही निरुत्पादक पड़े रह जाते हैं। उनके कारण ज्ञान का भ्रम पैदा होता है और तब स्वभावतः ही ज्ञान की खोज बंद हो जाती है। उनके कारण धार्मिक होने का आभास होने लगता है, तब स्वभावतः ही वास्तविक धर्म को जानने से वंचित रह जाना पड़ता है। क्या इस अति स्पष्ट के लिए भी मुझे प्रमाण देने होंगे?
कितने लोग मंदिर जाते हैं, कितने लोग परमात्मा पर श्रद्धा रखते हैं, कितने साधु हैं, कितने संन्यासी हैं; लेकिन क्या उनमें से किसी के भी जीवन में धर्म की किरण दिखायी देती है? विश्वास पर आधारित धर्म जीवित नहीं हो सकता है। विश्वास नपुंसक है। उससे न तो कोई क्रांति होती है और न कोई परिवर्तन होता है। हां, धोखा अवश्य ही पैदा होता है। और उस धोखे में कितने ही जीवन नष्ट हो जाते हैं।
जीवंत धर्म विश्वास से नहीं, विवेक से जन्मता है। वही आपके प्राणों
की ऊर्जा बन सकता है। उसकी अग्नि में ही आप नये होते हैं और आपका नया जन्म होता है।
धर्म निश्चय ही व्यक्ति को द्विज बनाता है, उसे दूसरा जन्म देता है।
लेकिन वह धर्म दूसरों से नहीं मिलता है। उसे तो स्वयं ही खोजना पड़ता है। दूसरों से दिया हुआ धर्म केवल एक बौद्धिक आस्था ही बनकर रह जाता है।
वह किसी भी भांति आपकी समग्र आत्मा नहीं बन सकता है। और जो आपकी समग्र आत्मा नहीं है, वह आनंद भी नहीं है।
जिज्ञासा को स्वतंत्र करो। अपनी जिज्ञासा को मुक्त करो।
किससे स्वतंत्र? किससे मुक्त?
समाज से, संस्कार से, संप्रदाय से, सत्य के सिद्धांतों और शास्त्रों से। संस्कारों में जो आबद्ध है, उसके पैर तो भूमि में गड़े हैं। वह आकाश में कैसे उड़ सकता है?
समाज को छोड़कर भागने को मैं नहीं कह रहा हूं। उस भांति के पागलपन के लिए मेरी दृष्टि में कोई भी स्थान नहीं। संन्यासियों से जब भी मिलता हूं, तो मैं उनसे यही कहता हूं कि समाज को छोड़कर भाग जाने से कुछ भी नहीं होता है। क्योंकि समाज के दिये संस्कार यदि आपके चित्त में बैठे हैं, तो भले ही समाज के बाहर चले आने के भ्रम में हों, लेकिन समाज अभी आपके भीतर ही बैठा

हुआ है। समाज के बाहर नहीं, वह तो आपके भीतर है। समाज तो संस्कारों और विश्वासों में है। उन्हें छोड़ना ही असली तप और त्याग है।
परिवार और परिवेश को छोड़कर भाग जाना कठिन नहीं है। कठिन है उस चित्त
को छोड़ना, जो कि समाज ने दिया है। उसे छोड़ने में बहुत कठिनाई होती है, क्योंकि एक अर्थ में वह स्वयं को ही तोड़ना है। संस्कारों को हटाना, अपने ही चित्त-भवन की ईंटों को हटाना है। बहुत साहस और श्रम की जरूरत है। परिचित चित्त में सुरक्षा है। वह जाना-माना है। फिर वैसे ही चित्त के और लोग भी हैं। उन सबके कारण उसका वैसा होना सत्य ही प्रतीत होता है।
संख्या मूर्खतापूर्ण से मूर्खतापूर्ण बात पर भी विश्वास दिला देती है!
ऐसी ही हमारी विचारसरिणी होती है कि जिस बात को इतने लोग मानते हैं,
वह अवश्य ही ठीक होनी चाहिए! इसी कारण से यदि समूह और भीड़ साथ हो, तो व्यक्तियों से ऐसे कार्य कराये जा सकते हैं, जो अकेले में वे कभी भी करने को राजी न होते। अकेले व्यक्ति को विचार पैदा होता है। भीड़ में वह भीड़ का हिस्सा हो जाता है और उसकी कोई निजी जिम्मेवारी नहीं रह जाती। भीड़ों ने जैसे अपराध किये हैं, वैसे अकेले व्यक्ति ने कभी नहीं किये!
यह स्मरण रहे कि जीवन में अनुभूति की--फिर चाहे वह सत्य की हो, सौंदर्य
की हो या शिवत्व की हो--जो भी श्रेष्ठतम ऊंचाइयां हैं, वे अकेले व्यक्तियों ने ही स्पर्श की है।
भीड़ों के ऊपर ही मनुष्य को नीचे गिराने का दोष मढ़ा जा सकता है।
समाज द्वारा प्रदत्त चित्त इसलिए भी सुरक्षित मालूम होता है, क्योंकि
वह परिचित है। अपरिचित में प्रवेश करने में, परिचित को छोड़ने का भय मालूम होता है। यह भय ही ज्ञात के ऊपर नहीं उठने देता। जबकि सत्य अज्ञात है और परमात्मा अज्ञात है।
ज्ञात को छोड़ना ही होगा, यदि अज्ञात को पाना है।
इसलिए ही साहस को मैं सबसे बड़ा धार्मिक गुण मानता हूं।
साहस को जगाओ और ज्ञान की लक्ष्मण-रेखा को लांघे। भूलें भी हो सकती हैं, लेकिन विवेक जाग्रत हो तो भूलों से बड़ी शिक्षा देने वाला और कौन-सा गुरु है? फिर ज्ञात पर रुके रहने से बड़ी और कोई भूल नहीं है। उससे कोई शिक्षा भी नहीं मिलती है। सिवाय इसके कि उस पर रुके रहने की आदत प्रगाढ़ होती है और अज्ञात में जाने का साहस क्रमशः क्षीण होता जाता है तथा अलंघ्य पर्वतों के बुलावे और चुनौती के प्रति कान बहरे हो जाते हैं।
अज्ञात से भय बूढ़े होने का लक्षण है। युवा मन तो सदा ही अज्ञात चुनौती स्वीकार करने को तैयार और तत्पर होता है। सत्य के साक्षात के लिए बूढ़ा नहीं; युवा मन चाहिए, जो अज्ञात और अपरिचित मार्गों के लिए सदा ही कटिबद्ध रहता है। वह इस तत्परता के कारण ही मन से कभी बूढ़ा नहीं होने पाता है। शरीर तो बूढ़ा होगा, लेकिन मन के बूढ़े होने की कोई भी अपरिहार्यता नहीं है। वह तो ज्ञात की लीक से बंधे रहने की हमारी वृत्ति के कारण बूढ़ा हो जाता है। साहस जिनमें नहीं है, वे बिना रीढ़ के प्राणियों की तरह जमीन पर ही रेंगते रहते हैं। साहस ही तो रीढ़ है।
उठो! और अपने साहस को जुटाओ।
संकल्प हो तो उसके केंद्र पर बिखरा हुआ साहस अवश्य ही इकट्ठा हो जाता है।
जीवन पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। क्या जमीन पर ही रेंगते रहना है
या कि ऊपर उठना है और सूर्य-लोक की यात्रा करनी है? जमीन पर रेंगते रहने का अंत, जमीन में कब्र को खोज लेने के अतिरिक्त क्या होगा?
लेकिन जो सूर्य की दिशा में यात्रा करते हैं, वे अमृत को उपलब्ध होते हैं। किंतु वह रास्ता अकेले का है। कोई दूसरा उसमें संगी-साथी नहीं हो सकता। समूह वहां साथ नहीं हो सकता। इसलिए जो उस लोक की यात्रा का अभीप्सु है, उसे अपने चित्त को सब भांति अकेला करना ही होगा। उसे स्वयं की स्वतंत्रता अर्जित करनी होगी।
चित्त जब तक समाज के संस्कारों का दास होता है, तब तक व्यक्ति समाज का
एक अंश मात्र ही होता है। और जब इन संस्कारों से कोई मुक्त होता है, तो

पहली बार वह व्यक्ति बनता है। मैं ऐसे व्यक्ति नहीं चाहता हूं, जो कि समाज के अंश हों। वरन एक ऐसा समाज चाहता हूं, जो कि व्यक्तियों का जोड़ हो।
स्वतंत्र व्यक्तियों से स्वतंत्र समाज भी निर्मित होता है।
साहस के अभाव के कारण ही हम दूसरों के उधार सत्यों को ढोते हैं। और जीवन की उत्तुंग ऊंचाइयों से परिचित होने से वंचित रह जाते हैं।
जीवन का वास्तविक अनुभव उस जीवन में नहीं है; जो कि जन्म से मिलता है, बल्कि उस जीवन में है, जो कि हम स्वयं ही पाते और अर्जित करते हैं।
जीवन, जो हो सकता है; आत्यंतिक रूप से वही होकर, वास्तविक बनता है। उसमें निहित सभी संभावनायें जब वास्तविक बन जाती हैं। तभी वह भी वास्तविक हो, यह स्वाभाविक ही है। उस जीवन में जिसे कि हम दैनंदिन कार्यों के निरंतर पुनरुक्त होने वाले मैदानी और समतल मार्गों पर ही व्यय कर देते हैं बहुत अज्ञात ऊंचाइयां हैं, बहुत अनजान गहराइयां भी हैं। और जो उनसे परिचित नहीं होता, वह स्वयं से ही परिचित नहीं हो पाता है।
लेकिन उन ऊंचाइयों और गहराइयों को पाने के लिए अदम्य साहस की अपेक्षा है। वह साहस भूमि पर सरकने वालों को तो दुस्साहस ही मालूम होगा। वैसा दुस्साहस जो करता है, वह पागल ही प्रतीत होता है। किंतु मेरी दृष्टि में तो वे लोग धन्य हैं, जो कि सत्य को पाने के लिए दुस्साहस करते हैं और पागल हो सकते हैं।
शास्त्रों को हटा दें, शब्दों को हटा दें और स्वयं को पूर्णतया उधार सत्यों से विच्छिन्न कर लें। ज्ञान की धूल को अपने चित्त से झाड़ दें। अज्ञान है भीतर, तो उसे ही स्वीकार करना है। उस अज्ञान में असुरक्षा ज्ञात हो, तो उस असुरक्षा को भी अंगीकार करना है। साहस का और अर्थ ही क्या है? असुरक्षा का सहज स्वीकार ही तो साहस है।
किंतु हम हैं कि असुरक्षा से भागते हैं और सुरक्षा की शरण लेते हैं!
इस कमजोरी का शोषण करने वाले बहुत हैं। वे अनेक-अनेक रूपों में सुरक्षा का आश्वासन देते हैं! और उन पर श्रद्धा करने और उनकी शरण गहने के अतिरिक्त उनकी कोई और शर्त भी नहीं होती है! इस भांति उनका अहंकार तृप्त होता है और हमारी सुरक्षा की आकांक्षा तृप्त हो जाती है! फिर तथाकथित गुरु, शास्त्र और संप्रदाय, सब इसी मानसिक शोषण पर जीते हैं।
लेकिन किसी भांति का पलायन न तो अज्ञान को ही नष्ट करता है और न वस्तुतः सुरक्षा ही लाता है। ज्ञान और सुरक्षा वस्त्रों की भांति ऊपर से ओढ़ लिए जाते हैं। और भीतर गहरे में अज्ञान और असुरक्षा का ही राज्य होता है। शत्रु के प्रति आंखें बंद कर लेने से कुछ नहीं होता है। तथ्यों से डरकर, अतथ्यों में मुंह छुपाने से भी क्या होगा?
तथ्य से भागने से नहीं, तथ्य को ही उघाड़ने, उसके प्रति जागने और विश्लेषण करने से सत्य की प्राप्ति होती है।
सत्य उन तथ्यों में ही छिपा बैठा है, जिनसे कि हम भागना चाहते हैं!
एक बाग में मैं गया था। वहां मैंने किसी बहुत सुकोमल फूल के बीज देखे।
वे तो पत्थर जैसे सख्त और कठोर थे। मैंने कहा, बीज को देखो और फूल को देखो।
इस सुकोमल फूल की सुरक्षा के लिए ही ऐसी कठोर इस बीज की खोल है। इसमें ही वह कोमल अंकुर छिपा है, जो कि अपने प्राणों में फूलों को बसाये हैं।
अज्ञान की खोल में ही ज्ञान का दीया छिपा है।
और असुरक्षा के बीज में ही परम सुरक्षा के फूल सोये हुए हैं।
जीवन उनका है, जो उसे जीते हैं; उनका नहीं, जो कि उससे भागते हैं।
जीवन से पलायन व्यर्थ ही नहीं, अनर्थ भी है।
विजय का सूत्र पलायन नहीं, परिवर्तन है।
स्वयं से भागो नहीं, वरन स्वयं को बदलो।
और बदलाहट के लिए साहस चाहिए, संकल्प चाहिए, श्रम चाहिए, शक्ति चाहिए।
और इन सबकी उत्पत्ति स्वयं पर श्रद्धा से होती है।
लेकिन हम स्वयं से नहीं, सदा और किसी की श्रद्धा में बंध जाते हैं! पर-श्रद्धा, आत्मा-श्रद्धा का अभाव है।
उससे शक्ति नहीं, अशक्ति ही आती है और जीवन बहुत गहरे में पंगु हो जाता है।

आत्म-श्रद्धा शक्ति है। स्वयं पर विश्वास से ही शक्ति के सोये स्रात सजग होते हैं। स्वयं पर जहां विश्वास है, वहीं, उसी केंद्र पर साहस इकट्ठा होता है। और यदि हम थोड़ा-सा साहस जुटा पायें, तो गति संभव हो जाती है। फिर गति से साहस आता है और साहस से गति बढ़ती है। चलने से ही चलने का विश्वास आता है और विश्वास आने से चलने की शक्ति बढ़ती है।
एक कदम भी जो उठा सकता है, वह फिर हजारों मील की यात्रा करने में समर्थ
हो जाता है। क्योंकि एक बार में एक कदम से ज्यादा तो किसी को भी नहीं उठाना है। और यदि कोई उठाना भी चाहे, तो भी उठा नहीं सकता।
बड़ी से बड़ी यात्रा एक-एक कदम उठाकर ही तय होती है।
और एक भी कदम न उठा सके, ऐसा कमजोर कौन है? हम यदि थोड़ा-सा साहस और आत्म-विश्वास जुटाये, तो एक कदम तो निश्चित ही उठा सकते हैं। स्वयं की जड़ता में थोड़ा-सा भी चैतन्य का प्रवेश, चेतना के जागरण के लिए प्रेरणा बन जाता है। शक्ति का थोड़ा-सा भी प्रयोग--और शक्ति के सक्रिय होने के लिए आमंत्रण बन जाता है।
क्या वह भजन आपने सुना है, जिसमें कहा गया है--"परमात्मा, एक ही कदम मेरे लिए काफी है।" सच ही जिसे चलना है, उसके लिए एक कदम उठाने की शक्ति ही काफी है। जिसे नहीं चलना है, उसके पास कितनी भी शक्ति हो, तो वह उसका क्या करेगा? उसकी शक्ति ही उसका विनाश बन जायेगी। क्योंकि जिस शक्ति का उपयोग नहीं होता है, वह आत्मघाती रूपों में प्रयुक्त होने लगती है।
शक्ति यदि सृजन न बन सके, तो वह विनाश बन जाती है।
यह अकसर ही मुझसे पूछा जाता है कि क्या कारण है, कि हम अपनी शक्ति और संकल्प को इकट्ठा नहीं जुटा पाते हैं और जीवन ऐसे ही चूक जाते हैं? क्या कारण है कि हमारी शक्ति सर्जक नहीं बन पाती है? क्या कारण है कि सत्य की दिशा में हमारे चरण नहीं उठ पाते हैं और हम भूमि में ही पड़े रह जाते हैं? मैं इस आधारभूत सवाल पर विचार करता हूं, तो मुझे दिखायी पड़ता है कि हम अपनी शक्तियों को इस कारण ही केंद्रित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि सत्य की जिज्ञासा हमारे भीतर कभी ज्वलंत प्यास नहीं बन पाती है और मात्र बौद्धिक ऊहापोह ही बनी रहती है। बौद्धिक ऊहापोह इतनी सतही बात है कि उसके कारण गहरे में सोई हुई शक्ति नहीं जाग सकती है। फिर जो मात्र वैचारिक है, उससे प्राणों की समग्रता अस्पर्शित ही रह जाती है।
प्राण तो विचार से नहीं, प्यास से आंदोलित होते हैं। और जब प्राण विकल होते हैं; तभी वह चुनौती आती है, जो कि शक्तियों को जगाती और एकत्रित करती है।
विचार और मात्र विचार अत्यंत निष्प्राण क्रिया है। इसलिए ही कोरे तत्व-चिंतक में ही चलते हैं। वस्तुतः उनके जीवन में कोई गति नहीं होती है। और इसलिए जीवन भी नहीं होता है। सत्य जिज्ञासा विचारणा की ही नहीं प्राणों की अभीप्सा भी बननी चाहिए। तभी यह यात्रा प्रारंभ होती है, जिसे कि मैं धर्म कहता हूं।
बौद्धिक जिज्ञासा, कोरा बौद्धिक ऊहापोह तो खुजली की खुजलाहट जैसा है।
वह तो एक रुग्णता है। उसमें जो भी रस है, वह भी अस्वस्थ और घातक है। साहस, शक्ति और संकल्प जिज्ञासा के केंद्र पर नहीं, अभीप्सा के केंद्र पर ही सक्रिय होते हैं।
जिज्ञासा, अभीप्सा तक ले चले तो शुभ है। लेकिन यदि वह अपने ही भीतर कोल्हू के बैल की भांति चक्कर लगाने लगे, तो अशुभ हो जाती है।
एक नवयुवक मेरे पास आया था। वह सत्य जानना चाहता था। मैंने उससे पूछा,"सत्य जानना चाहते हो या सत्य के संबंध में जानना चाहते हो?
सत्य के संबंध में जानना बहुत सरल है। लेकिन अंत में पाओगे कि जो जाना, वह सत्य नहीं है। और सत्य ही जानना चाहते हो, तो मार्ग पर्वतीय और बहुत दुर्लभ है। और सत्य मूल्य मांगता है। और छोटा-मोटा मूल्य नहीं, पूरे जीवन का ही मूल्य मांगता है।
क्या इतनी प्यास अनुभव होती है कि अपने प्राणों को बाजी पर लगा सको?
वह बहुत देर तक बैठा सोचता रहा! मैंने उससे कहा, प्यासा पानी पीने के लिए इतना नहीं सोचता है! जाओ और शास्त्रों को पढ़ो। शब्दों को सीखो और उनसे अपनी तृप्ति कर लो। किंतु स्मरण रखना कि सत्य विचारों के संग्रह से नहीं,

वरन प्राणों की प्रज्वलित प्यास से ही पाया जाता है। जहां गहरी प्यास है, वहीं उसकी प्राप्ति है।
जिज्ञासा, मात्र जिज्ञासा तो कोरा कुतूहल है। वह बहुत अपरिपदृ मस्तिष्क का लक्षण है। परिपदृता जिज्ञासा को प्यास में बदल देती है--सत्य के संबंध में नहीं, तब हम सत्य को ही जानना चाहते हैं। उसके पूर्व फिर संतृप्ति नहीं होती है।
एक अदभुत साधु था बोधिधर्म। वह हमेशा दीवार की और मुंह करके बैठता था! लोगों की और पीठ और दीवार की ओर मुंह! यह पागलपन ही है न? लेकिन जिनकी आंखों में सत्य की अभीप्सा न हो, उनकी ओर देखकर बात करना और दीवार की ओर बात करने में क्या भेद हैं?
बोधिधर्म से लोग इस असाधारण व्यवहार का कारण पूछते तो वह कहता, मैं तुममें भी दीवार पाता हूं। क्योंकि जिनके भीतर सत्य की अभीप्सा नहीं, जिन्हें उसकी प्यास नहीं है, उन पर उसकी वर्षा दीवार पर ही वर्षा है। सत्य भी केवल उनकी ओर मुंह करता है, जिनके प्राण उसके लिए प्यासे हो जाते हैं। सत्य भी केवल उनके लिए द्वार देता है जो कि अपनी--अपनी समग्र शक्ति और संकल्प से उसे पुकारते हैं।
सत्य की गहरी प्यास में ही स्वयं की बिखरी शक्तियां इकट्ठी हो जाती हैं। शक्ति हमेशा प्यास के केंद्र पर ही इकट्ठी होती है। जहां, जिस दिशा में प्यास है, वहीं शक्ति प्रवाहित होने लगती है। पानी जैसे ढाल की ओर बहता है, वैसे ही शक्ति भी प्यास की ओर बहती है। और पानी जैसे गड्ढों में इकट्ठी होता है, वैसे ही शक्ति भी प्यास में इकट्ठी हो जाती है। वस्तुतः प्यास ही शक्ति बन जाती है। प्यास ही शक्ति है।
एक प्रेयसी ने अपने प्रेमी से कहा,"क्या तुम मुझे प्रेम करते हो?" उस पागल प्रेमी ने कहा, कैसे विश्वास दिलाऊं? शब्द तो प्रमाण नहीं हो सकते! प्रेयसी ने कहा, गांव के पीछे जो पहाड़ है, उसे खोदकर अलग कर दो।!
रात्रि हो रही थी। सूरज डूब रहा था। वह युवक उठा, उसने फावड? उठाया और पहाड़ खोदने चला गया। और बड़ी मीठी कथा है कि सुबह होने के पूर्व उसने पहाड़ खोदकर फेंक दिया था।
यह बात कितनी काल्पनिक है, लेकिन फिर भी कितनी सच है। जिसके भीतर प्यास है, प्रेम है, उसके भीतर शक्ति भी है। जिसके भीतर आत्मविश्वास है, उसके भीतर शक्ति है। असल में मार्ग में पहाड़ हैं ही इसलिए कि हमारे भीतर ज्वलंत प्यास नहीं है। प्यास हो तो पहाड़ मिट जाते हैं। मार्ग की अड़चनें, प्यास के अभाव की प्रतीक हैं। प्यास की जलती अग्नि हो, तो कंटकाकीर्ण वनपथ भी राजपथ हो जाता है।
जिज्ञासा प्राणों को दांव पर नहीं लगा सकती। लेकिन अभीप्सा सभी कुछ दांव पर लगा सकती है। और जब तक सत्य प्राणों से भी ज्यादा मूल्यवान नहीं है; जब तक की उस पर, उसके लिए स्वयं को न्योछावर नहीं किया जा सकता है, तब तक हम उसके दावेदार भी कैसे हो सकते हैं?
सत्य के ऊपर भी यदि कोई चीज आपको ज्ञात होती है, तो जान लें कि अभी आपकी प्यास पैदा नहीं हुई है और अभी वह शुभ-मुहूर्त नहीं आया है कि आप उसकी खोज के लिए निकल सकें।
प्यास के बिना प्राप्ति असंभव है। निकट ही सरोवर हो और हमें प्यास न हो, तो उस सरोवर के दर्शन नहीं हो सकते। पानी की पहचान पानी में नहीं, प्यास में है। प्यास न हो तो पानी पहचाना ही नहीं जा सकता है।
रोज ही अनेक व्यक्ति मुझे मिलते हैं, जो कि सत्य की या परमात्मा की तलाश में हैं। साधु-संन्यासी मुझे मिलते हैं, जिन्होंने कि अपना पूरा जीवन ही गंवा दिया है, लेकिन सत्य को नहीं पा सके हैं! मैं उनसे पूछता हूं कि सबसे पहले यह खोजो कि सत्य को खोजने के पहले सत्य की प्यास पैदा हो गयी है या नहीं? अगर स्वयं की प्यास पैदा नहीं हुई है और दूसरों के कहने के कारण सत्य की खोज में निकल पड़े हो, तो इस धंधे में गंवाने के सिवाय कमाना नहीं हो सकता है।
एक तो वह भूख है, जो मुझे अनुभव होती है। एक वह भूख भी है, जो कि यदि आप
सब कहें कि मुझे लगी है, तो मुझे आभासित होने लगे। लेकिन, निश्चय ही इन

दोनों भूखों में जमीन-आसमान का भेद होगा। असत्य भूख की खोज भी असत्य ही होगी। उसकी ओर जीवन शक्ति का प्रवाह नहीं हो सकता है।
धर्मशास्त्रों के परंपरागत प्रचार और साधु-संन्यासियों के सतत उपदेशों के कारण सत्य की झूठी भूख भी पैदा हो जाती है। ऐसी भूख जीवन को बिल्कुल नष्ट कर देती है। फिर सत्य के अधिकांश तथाकथित खोजियों में तो सच्ची भूख तो दूर, झूठी भी नहीं होती! वे तो जीवन के उत्तरदायित्व से बचने के लिए ही इस दिशा में आ जाते हैं!
जीवन का संघर्ष बहुतों को जीवन से पलायन के लिए प्रेरित कर देता है। इसी पलायन का आत्यंतिक रूप आत्मघात में प्रगट होता है। फिर जहां ऐसे पलायन को भी संन्यास के नाम से आदर और पूजा मिलने की सुविधा हो, वहां तो बहुत ही सुविधा हो जाती है।
यही कारण है कि जिन देशों में, जिन जातियों में संन्यास की सुविधा और समादर है, उन देशों में और जातियों में आत्मघात की घटनाओं का अनुपात कम है। क्योंकि बहुत से भगोड़े संन्यास में शरण पा जाते हैं और बहुत से आत्मघाती प्रवृत्तियों के लोगों को भी जीवित रहते हुए भी मार्ग मिल जाता है! आलस्य और प्रमाद भी बहुतों को संन्यास में ले जाता है! श्रमहीन शोषण की प्रवृत्ति भी संन्यास में ले जाती है! अहंकार की तृप्ति भी ले जाती है! आत्महिंसा का भाव भी ले जाता है! इस तरह के रुग्ण चित्त लोगों को सत्य कैसे मिल सकता है? सत्य पाने के लिए बहुत स्वस्थ चित्त और सत्य की स्वस्थ और सच्ची भूख अपेक्षित है।
सत्य तो निरंतर मौजूद है, किंतु उससे हमारा संपर्क नहीं, संबंध नहीं! वस्तुतः तो संपर्क भी है, संबंध भी है, लेकिन हमें उस संपर्क का, संबंध
का बोध नहीं है!
सत्य में ही हम खड़े हैं। उसके बाहर होना संभव भी कैसे है! लेकिन उसकी खोज की, उसकी ओर आंखें उठाने की हममें गहरी आकांक्षा ही नहीं है!
इस आकांक्षा को, इस प्यास को, इस अभीप्सा को कैसे पैदा करें? कोई कृत्रिम उपाय तो हो नहीं सकता। और किसी कृत्रिम उपाय से जो प्यास पैदा भी होगी, वह कृत्रिम ही होगी। प्यास सहज ही फलित होनी चाहिए। तो ही वह सत्य और अकृत्रिम और स्वाभाविक हो सकती है।
मैं स्वयं सत्य की स्वाभाविक अभीप्सा को सहज ही उपलब्ध हुआ। जीवन के प्रति आंखें खोलने से, वह मेरे भीतर अनायास ही पैदा होने लगी। जैसे-जैसे मैंने जीवन को--चारों ओर से घिरे हुए जीवन को अनुभव किया उसकी समग्रता में, बिना किसी पूर्वाग्रह के मैं उसके प्रति जैसे-जैसे जागा, वैसे-वैसे ही मैंने एक अभिनव आकांक्षा को स्वयं में जन्म पाते हुए पाया। मैं जगत और जीवन के प्रति जाग रहा था, तो मुझमें सत्य के प्रति प्यास जाग रही थी। जीवन का देखें--उसकी समग्रता में। उसके सौंदर्य को, उसकी कुरूपता को। उसके फूलों को और उसके कांटों को। पतझड़ को और बसंत को। जन्म को और मृत्यु को। प्रकाश को और अंधकार को। साधु को और असाधु को। सबको देखें--सब कुछ देखें। आंखें खुली हों। और किसी तथ्य के प्रति उन्हें बंद न करें। और किसी तथ्य की दूसरों से गृहीत व्याख्या न करें, क्योंकि ऐसी सीखी हुई व्याख्यायें ही स्वयं की जिज्ञासा के आविर्भाव में बाधा बन जाती हैं। शास्त्र और शब्दों के द्वारा जीवन को देखना, न देखने के ही बराबर है। जीवन और स्वयं के बीच सीधा संपर्क होने दें। जीवन का आघात स्वयं पर निर्बाध पड़ने दें। स्वयं को जीवन के प्रति खोलें-- अशेष भाव से खोलें और देखें। किसी विचार की भूमि पर खड़े होकर न देखें, क्योंकि वह देखना नहीं है। किसी धारणा के बिंदु पर खड़े होकर अनुभव न करें, क्योंकि वह अनुभव करना ही नहीं है।
पक्षपात-शून्य, समस्त आग्रहों से मुक्त होकर, जो जीवन का अनुभव करता है, वह जीवन के सत्य को जानने की एक तीव्र अभीप्सा से भर जाता है।
और न केवल बाहर के प्रति सम्यक और निष्पक्ष दृष्टि चाहिए, बल्कि भीतर
के प्रति और भी ज्यादा चाहिए। स्वयं के चित्त के मार्गों को भी वैसे ही देखना पड़ता है, जैसे कि कोई किसी झरने को पहाड़ से झरते देखे या कि पक्षियों को आकाश में उड़ते देखे। क्रोध को और काम को, घृणा को और प्रेम को, मोह को और

लोभ को, और मूलतः अहंकार को--सबको देखना है। उनका दर्शन ही सत्य के ज्ञान की गहरी प्यास जगाता है।
जीवन के दर्शन से रहस्य का अनुभव होता है। रहस्य से जिज्ञासा जन्मती है।
और स्वयं के चित्त के दर्शन से बहुत पीड़ा और अज्ञान का अनुभव होता है
और उसके अतिक्रमण की अभीप्सा पैदा होती है।
एक साधु मृत्यु के निकट था। शरीर तो मृत्यु में डूब रहा था, लेकिन उसकी आंखों में अपूर्व ज्योति थी। किसी ने उससे पूछा, मृत्यु में भी आप इतने शांत और आनंदित हैं?
वह बोला, मैं जहां हूं, वहां मृत्यु नहीं है।
और किसी ने पूछा, आप साधु कैसे हुए? सत्य के खोजी कैसे हुए?
वह बोला,"आंख खोलकर जगत को देखा और स्वयं को देखा। और स्वयं को देखा,
तो सत्य को खोजने के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं रहा। और जैसे-जैसे सत्य की दिशा में चरण उठे, वैसे-वैसे ही पाया कि जीवन से सारी असाधुता अपने आप ही बह गयी है। साधु मैं कभी हुआ नहीं, उलटे साधुता ही मुझ तक आयी है। लेकिन, हम कहेंगे कि क्या हम आंखें खोलकर नहीं देख रहे हैं? आंखें तो हमारी भी खुली हुई दिखायी पड़ती हैं, लेकिन फिर भी वे खुली हुई नहीं हैं। क्योंकि, आंख जब खुलती हैं, तो जीवन की सारी मूर्च्छा टूट जाती है और सारा सम्मोहन नष्ट हो जाता है। आंखें खुली हों, तो पैर स्वयं सत्य की ओर बढ़ने लगते हैं। सत्य की अभीप्सा के अतिरिक्त आंखें खुली होने का और कोई प्रमाण नहीं है।
आंखें खोलकर देखने का क्या अर्थ है? अर्थ है, उस पर न रुक जाना, जो कि सामान्यतः दिखायी पड़ रहा है, वरन उस तक प्रवेश करना, जो कि दिखाई पड़ने वाले के पीछे छिपा है और दिखाई नहीं पड़ रहा है। जो दृश्य भी है, वह अदृश्य को छिपाये हुए है। दृश्य, अदृश्य की खोल मात्र है। आवरण ही है। वही सब कुछ नहीं है।
गौतम बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने उनके पिता को कहा कि इस पुत्र के संन्यासी हो जाने की संभावना है। स्वभावतः पिता चिंतित हुए। यह एक ही उनका पुत्र था। उन्होंने पूछा, इसे संन्यास से बचाने का क्या उपाय है? और जो उपाय बताया गया, वह ऐसा था कि जिसके कारण बुद्ध की आंखें बंद रहें और जीवन के तथ्य उन्हें दिखाई न पड़ सकें। क्योंकि, जो जीवन के तथ्यों को नहीं देख पाता है, वह जीवन के सत्य को जानने की व्याकुलता से नहीं भर सकता है।
ऐसा ही किया गया। दुख, पीड़ा, मृत्यु--इनका बुद्ध को दर्शन न हो, ऐसी व्यवस्था की गयी! जीवन के आघातों से उन्हें सुरक्षित रखा गया, क्योंकि आघात विचार पैदा करते हैं। उनके आसपास सुंदर युवा और युवतियां ही आ-जा सके थे! वृद्ध और रुग्ण व्यक्तियों को उनके पास नहीं ले जाया जाता था! उनके बाग में से कुम्हलाये फूल और पत्ते रात्रि में ही अलग कर दिये जाते थे, ताकि उन्हें किसी भी भांति जीवन के मुरझाने और समाप्त होने का ख्याल न आ सके! युवा होने तक वे मृत्यु तथ्य से अपरिचित थे! उन्हें ज्ञात ही नहीं था कि जगत में मृत्यु भी होती है! लेकिन यही व्यवस्था अंततः उनकी आंखें खोलने का कारण बन गयी!
बुद्ध के पिता ने मुझसे पूछा होता, तो ऐसी भूल भरी सलाह मैं कभी न देता। चूंकि उन्होंने बुढ़ापे के तथ्य को कभी नहीं जाना था, इसलिए जब जाना, तो वे चौंक गये। और वह आघात इतना तीव्र और गहरा हुआ कि उनकी आंखें खुल गयीं। यदि वे बचपन से ही इसके आदी होते, तो संभवतः आघात इतना तीव्र और आंदोलनकारी नहीं हो सकता था!
एक युवक महोत्सव में जाते हुए उन्होंने पहली बार किसी वृद्ध को और पहली बार किसी मृतक की शवयात्रा को देखा! उन्होंने अपने सारथी से पूछा, यह क्या हो गया है?
सारथी ने कहा,"पहले व्यक्ति वृद्ध होता है फिर मर जाता है।
बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी ऐसे ही मर जाऊंगा?
सारथी ने कहा, प्रभु, कोई भी अपवाद नहीं है। जो जन्मता है, उसे मरना ही होता है।

बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो।"मैं वृद्ध हो गया हूं और मैं मर गया हूं।"
इसे मैं आंखें खोलकर देखना कहता हूं।
मित्र, मैं पुनः दोहराता हूं,"इसे मैं आंखें खोलकर देखना कहता हूं।" बुद्ध युवा हुए, तब तक उनकी आंखें बंद थी। हममें से बहुत से बूढ़े हो जाते हैं, फिर भी उनकी आंखें बंद ही रहती हैं। जीवन के तथ्यों के हम इस भांति आदी हो जाते हैं कि उनका हम पर कोई आघात ही नहीं होता! उनके द्वारा हम पर कोई चोट ही नहीं पड़ती! और आघात न हो, तो विचार कैसे होगा? और आघात न हो तो जागरण असंभव है।
जीवन के प्रति हमारी संवेदनशीलता इतनी कम है कि आघात हमारी निद्रा को तोड़ने में असफल हो जाते हैं। और फिर इस निद्रा को हम बहुत-सी शास्त्रीय व्याख्याओं से और भी गहरा, निरापद कर लेते हैं! जब कोई मरता है, तो हम कहते हैं, आत्मा तो अमर है!
आंखें खुली हों और हृदय संवेदनशील हो, तो मृत्यु की प्रत्येक घटना में स्वयं की मृत्यु के दर्शन होंगे ही। और उस दर्शन में ही वह आघात है, जो कि जीवन को अमृत की खोज में संलग्न करता है।
संवेदनशील चित्त सत्य को जानने को उत्सुक और आकुल हो ही उठता है। गहरी संवेदनशीलता ही धार्मिक चित्त की आधारभूमि है। जड़ता धर्म में नहीं ले जा सकती है। लेकिन हम तो करीब-करीब जड़ की भांति व्यवहार करते हैं!
क्या रात्रि में आकाश के तारे आपके प्राणों को झंकृत करते हैं? क्या पतझड़ में उड़ते सूखे पत्ते आपके हृदय की गहराई में कोई प्रतिध्वनि जगा जाते हैं? क्या पड़ोसी की पीड़ा आपको स्पर्श करती है? क्या राह खड़े वृद्ध भिखारी की आंखों में आपको अपनी ही आंख दिखायी पड़ती है? वीणा के तारों की भांति संवेदनशील हृदय ही जीवन के सुखों-दुखों, सौंदर्य-असौंदर्य, आंसुओं और आनंदों के प्रति सजग और सचेत हो पाता है। इस सजगता को ही मैं आंखों को खोलकर देखना कहता हूं। और आंखें खुली हों, तो और भी बहुत कुछ दिखायी पड़ता है।
हमने सुना है कि महावीर के पास राज्य था, बुद्ध के पास राज्य था। लेकिन वे अपने राज्य को ठोकर मारकर चले गये! फिर भी हम तो राज्य की ही खोज में लगे हैं! जिनके पास मात्र धन है, क्या उनके पास आनंद भी है? लेकिन हम तो धन की ही खोज में लगे हैं! जिनके पास मात्र पद है, क्या वे शांति में हैं? लेकिन हम तो पदों की ही खोज कर रहे हैं!
निश्चय ही हम अंधे होंगे, नहीं तो जिन गड्ढों में दूसरे गिरे हैं, हमारी यात्रा भी उन्हीं गड्ढों की ओर क्यों होती?
और क्या हमने कभी सोचा है, विचारा है कि महत्वाकांक्षी चित्त आनंद और शांति को कैसे पा सकता है? जहां तृष्णा है, वहां दुख अपरिहार्य है। वस्तुतः दुख के सारे बीज तृष्णा में ही तो छिपे होते हैं।
स्पष्ट आंखें खुली हों, तो हम स्वयं के चित्त को देखेंगे और जानेंगे।
उसकी थोथी अहंता दिखायी पड़ेगी। विनम्रता में भी उसके दर्शन होंगे। हिंसा दिखाई पड़ेगी। तथाकथित अहिंसक आचरण में भी उसकी छाया होगी। घृणा, क्रोध और प्रतिशोध का सतत दर्शन होगा। लोभ और तृष्णा श्वास-श्वास में अनुभव होगी।
वह रूप हमारी वास्तविकता नहीं है, जो कि हम दूसरों को दिखाते हैं। थोड़ा ही गहरा देखने से उस व्यक्ति से मिलना होगा, जो कि वस्तुतः हम हैं। और उसकी पशुता का दर्शन ही उसे अतिक्रमण करने के लिए पर्याप्त कारण और प्रेरणा बन जाता है।
इस तथाकथित जीवन को उसकी समस्त नग्नता में--बाहर और भीतर उसके समस्त रूपों में देखने से ज्ञात होता है कि हम जिस भवन को अपना निवास समझे हुए हैं, वह लपटों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है!
और इन लपटों के दर्शन से विचार उठता है कि क्या जीवन यही है? क्या यही
है हमारे होने की सार्थकता? क्या यही है हमारे अस्तित्व का अर्थ और अभिप्राय?
और स्वयं जिसने इन लपटों को जाना और पहचाना है और उनके ताप का अनुभव किया है और उनकी जलन में से गुजरा है, उसके लिए यह जिज्ञासा मात्र बौद्धिक ऊहापोह नहीं रह जाती है; उसके लिए तो बन जाती है यह जीवन-मरण की समस्या।

उसके लिए यह प्रश्न अति गंभीर हो उठता है। उसके समाधान पर ही अब उसके प्राण निश्चिंत हो सकते हैं। यह खोज उसके लिए समस्या ही नहीं, संताप बन जाती है।
और स्मरण रहे कि जीवन की समस्या, जहां एक जीवंत संताप है, वहीं, उस संताप के निकट ही सत्य भी है। क्योंकि संताप सत्य को जानने के लिए प्राणों को उनकी समग्रता में व्याकुल कर देता है। और यह व्याकुलता एक ऐसे आंदोलन का प्रारंभ बन जाती है, जो कि अंततः आत्म-क्रांति में ले जाती है।
लेकिन, जीवन का संताप स्वयं अनुभव होना चाहिए। वह किसी की शिक्षा का
फल नहीं हो सकता है। मैं कह रहा हूं, इसलिए आप मान लें कि जीवन-गृह में आग लगी है, तो वह अनुभूति झूठी और मिथ्या होगी। और वैसी प्रतीति उस गृह के बाहर आने के लिए या गृह बदलने के लिए आधार नहीं बन सकती है।
मैं किसी घर में ठहरा होऊं और कोई मुझसे आकर कहे कि भवन में चारों ओर
आग लगी है, लेकिन मुझे स्वयं कहीं भी आग दिखाई न पड़ती हो, तो मैं क्या करूंगा? क्या मैं उस घर को छोड़ दूंगा? और यदि छोड़ भी दूं, तो क्या वह छोड़ना मूर्खतापूर्ण ही नहीं होगा? लेकिन यदि मुझे स्वयं ही दिखायी पड़े कि भवन लपटों से घिरा है, तो क्या मैं बाहर निकलने के लिए किसी की सलाह लेने जाऊंगा? या कि बाहर निकलने की सम्यक विधि खोजने को शास्त्रों का अध्ययन करने बैठूंगा?
नहीं मित्र, तब तो दर्शन ही कर्म बन जाता है। यह देख लेना ही कि मैं लपटों से घिरा हूं, बाहर निकलने के सहज और अंततः प्रेरित कर्म में परिणत हो जाता है।
आंखें बंद हों तो हम एक निद्रा में होते हैं, एक मूर्च्छा में और एक सम्मोहन में। उसके कारण उस सबके प्रति अचेत बने रहते हैं, जो कि चारों ओर प्रतिक्षण घटित हो रहा है।
आंखें खोलो और देखो! धर्म में जो उत्सुक होते हैं, वे तो उलटे आंखें बंद करने का अभ्यास करने लगते हैं!
मैं कहता हूं, आंखें खोलो और देखो।
क्या आपका भवन अग्नि की भेंट नहीं चढ़ा हुआ है? क्या जिस भूमि पर आप खड़े हैं, वहीं आपकी चिता बनने को नहीं है? हम सब चिता पर चढ़े हुए हैं! चिता की आग प्रतिपल हमें अपने आपमें मिलाती जा रही है। थोड़ी देर बाद जिसे हमने जीवन जाना है, वह राख के अतिरिक्त कुछ भी सिद्ध होने को नहीं है।
एक सुबह मैं उठकर बैठा ही था कि कुछ मित्र आ गये। वे मुझे खूब बधाइयां देने लगे! मैंने पूछा, बात क्या है? वे बोले, आपका जन्मदिन हैं।
यह सुन खूब हंसी आयी। और मैंने उनसे कहा, जो जन्मदिन है, क्या वही मृत्यु-दिन भी नहीं है? क्योंकि जन्म के क्षण के बाद जिसे हम जीवन मानते हैं, वह मृत्यु के क्रमिक आगमन के अलावा और क्या है? जिस दिन पालने पर किसी को रखा जाता है, उसी दिन उसकी कब्र भी खुदनी शुरू हो जाती है।
जन्म जीवन नहीं है, क्योंकि जन्म तो मृत्यु का प्रारंभ है।
निश्चय ही जो जीवन है, वह जन्म और मृत्यु दोनों के अतीत ही हो सकता है। क्या विचार करने से यह प्रतीति नहीं होती है? क्या जन्म और मृत्यु के तथ्यों में झांकने से तृप्ति होती है? जो उन्हें जागकर देखता है, वह उनसे तृप्त नहीं होता है। और उसकी अतृप्ति ही वास्तविक जीवन के लिए अभीप्सा बन जाती है।
धर्म की साधना धर्म को मानने से नहीं, वरन जीवन को जानने से प्रारंभ होती है। वह विश्वास नहीं, विवेक है। वह दूसरों के द्वारा अनुप्रेरित कामना नहीं, वरन स्वयं की अंतःसत्ता, अभीप्सित जीवन है।

नेति-नेति
चौबीसवां प्रवचन

सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण

मैं विचार करता हूं कि किस संबंध में आपसे बातें करूं! बातें इतनी ज्यादा हैं और दुनिया इतनी बातों से भरी है कि संकोच होना स्वाभाविक है। बहुत विचार हैं, बहुत उपदेश हैं! सत्य के संबंध में बहुत से सिद्धांत हैं! डर लगता है कि कहीं मेरी बातें भी उस बोझ को और न बढ़ा दें, जो मनुष्य के ऊपर वैसे ही काफी हैं।
बहुत संकोच अनुभव होता है। कुछ भी कहते समय डर लगता है कि कहीं वह बात आपके मन में बैठ न जाए। बहुत डर लगता है कि कहीं मेरी बातों को आप पकड़ न लें। बहुत डर लगता है कि कहीं वे बातें आपको प्रिय न लगने लगें, कहीं वे आपके मन में स्थान न बना लें। क्योंकि मनुष्य विचारों और सिद्धांतों के कारण ही पीड़ित और परेशान है। उपदेशों के कारण ही वह बंधा है और परतंत्र है।
मनुष्य के जीवन में दूसरे के द्वारा कही गई और दी गई बातें ही उस सत्य
के बीच बाधा बन जाती हैं, जो कि स्वयं उसके ही पास हैं और सदा से हैं। ज्ञान बाहर से उपलब्ध नहीं होता है। और जो तथाकथित ज्ञान बाहर से उपलब्ध हो जाए, वह ज्ञान को रोकने में कारण हो जाता है।
मैं भी बाहर हूं। मैं जो भी कहूंगा, वह भी बाहर है। उसे फिर ज्ञान मत समझ लेना। वह ज्ञान नहीं है। वह आपके लिए ज्ञान नहीं हो सकता है।
जो भी कोई दूसरा आपके लिए देता हो, वह आपके लिए ज्ञान नहीं हो सकता है। हां, उससे एक खतरा हो सकता है कि वे बातें आपके अज्ञान को ढक दें। आपका अज्ञान आवृत हो जाए, छिप जाए और आपको ऐसा प्रतीत होने लगे कि मैंने कुछ जाना है। सत्य के संबंध में यह जान कर भ्रम पैदा हो जाता है कि मैंने सत्य को जाना है! सत्य के संबंध में पढ़ कर यह धारणा बन जाती है कि मैं सत्य को जान गया हूं। और जिनको ऐसी धारणाएं बन जाती हैं, वे फिर सत्य को पाने में असमर्थ हो जाते हैं और पंगु हो जाते हैं।
सबसे पहले यह कह दूं कि बाहर से जो भी आता है, वह ज्ञान नहीं हो सकता है। वह सूचनाओं से अधिक नहीं है। और सूचनाएं सत्य नहीं हो सकती हैं।
और स्वाभाविक है कि मुझसे पूछा जा सकता है कि फिर मैं बोलूं--मैं क्यों कुछ कहूं, मैं बाहर हूं। और निश्चय ही आपसे कुछ कहूंगा--क्या कहूंगा? सत्य नहीं, बस सत्य के मार्ग की बाधाएं हटाने के लिए कहूंगा। मैं इतनी ही बात कहना चाहता हूं कि बाहर जो भी है, वह सब बाहर का समझें और उसे ज्ञान नहीं समझें। वह चाहे मेरा हो, वह चाहे किसी और का हो।
ज्ञान मनुष्य के भीतर उसका स्वरूप है। उस स्वरूप को जानने के लिए बाहर खोजने की कोई जरूरत नहीं है। बाहर खोजते हैं, इससे ही तो उसे खोते हैं। बाहर से जो भी सीख लेंगे, वही बाधा बन जाएगा। यदि उस सत्य को जानना हो, जो हमारे भीतर है; तो उसे अनसीखा करना होगा, उसे बाहर करना होगा, उसे छोड़ देना होगा। जिन्हें जानना है, उन्हें शास्त्र को छोड़ देना होता है। जो शास्त्र को पकड़ेंगे, सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं होगा।
हम सारे लोग शास्त्र को पकड़े बैठे हैं! दुनिया में जो इतने उपद्रव हैं, वे इन शास्त्रों को पकड़ने से है!
ये जो हिंदू हैं, ये जो मुसलमान हैं, ये जो जैन हैं, ये जो पारसी हैं--ये कौन हैं, इनको कौन लड़ाता है? इनको कौन एक-दूसरे से अलग कर रहा है?
शास्त्र अलग कर रहे हैं, शास्त्र लड़ा रहे हैं! सारी मनुष्यता खंडित है, क्योंकि कुछ किताबें कुछ लोग पकड़े हुए हैं, कुछ दूसरी किताबें कुछ दूसरे लोग पकड़े हुए हैं! किताबें इतनी मूल्यवान हो गई हैं कि वे मनुष्य की हत्या तक कर सकते हैं!
पिछले हजारों वर्षों से हमने लाखों-लाखों लोगों की हत्याएं की हैं, क्योंकि किताबें बहुत मूल्यवान हैं, क्योंकि किताबें बहुत उच्च हैं! किताबों के लिए, मृत किताबों के लिए--मनुष्य के भीतर जो परमात्मा बैठा है, वह कभी भी अपमानित किया जा सकता है, उसकी हत्या की जा सकती है! क्योंकि

शास्त्र बहुत मान्य है--इसलिए मनुष्यता को अमान्य किया जा सकता है, अस्वीकार किया जा सकता है! यह हुआ है, यह आज भी हो रहा है!
मनुष्य-मनुष्य के बीच जो दीवार है, वह शास्त्रों की है।
और आश्चर्य तो यह है कि कभी यह ख्याल पैदा नहीं होता कि जो शास्त्र मनुष्य को मनुष्य से अलग करते हों, वे मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकते हैं? जो मनुष्य को मनुष्य से ही तोड़ देता हो, वह मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने की सीढ़ी कैसे बन सकता है?
लेकिन हम अपने अज्ञान में सोचते हैं कि शायद शास्त्र में कुछ मिले! जरूर कुछ मिलता है। शब्द मिलते हैं, सत्य को दिए हुए शब्द मिल जाते हैं! और शब्द स्मरण हो जाते हैं। वे हमारी स्मृति में प्रविष्ट हो जाते हैं और स्मृति को हम ज्ञान समझ लेते हैं! स्मृति ज्ञान नहीं है।
कुछ चीजें सीख लेना, स्मरण कर लेना, ज्ञान नहीं है। ज्ञान का जन्म बहुत दूसरी बात है। स्मृति का प्रशिक्षण बहुत दूसरी बात है। स्मृति के प्रशिक्षण से कोई पंडित हो सकता है, लेकिन उससे प्रज्ञा जाग्रत नहीं होती है। स्मृतिजन्य पांडित्य जड़ता लाता है, जबकि ज्ञान तो जीवन में आमूल क्रांति कर देता है। ज्ञान ही जीवन को जीवंत बनाता है।
तो मैं कोई उपदेश देने का किंचित भी पाप करने को तैयार नहीं हूं। जो
भी उपदेश देते हैं, वे हिंसा करते हैं; वे पाप करते हैं।
मित्र, मैं उपदेश देने को नहीं हूं। मैं उपदेशक नहीं हूं। मैं तो सत्य
के प्रति स्वयं कैसे जागें, बस वही आपसे कहना चाहता हूं। वह भी इसलिए नहीं कि आप उसे मान लें। वरन इसलिए कि आप उसे सोचें। और हो सकता है कि उसके प्रति जागने में वह सत्य आप में भी जाग जाए। क्योंकि निष्पक्ष चित्त से किसी भी विचार के प्रति जागने से स्वयं में निश्चय ही बहुत सी अंतर्दृष्टियों का जन्म होता है।
जो भी कहता है कि मेरी बात मान लो, वह आपका दुश्मन है। जो भी कहता है कि श्रद्धा कर लो, वह घातक है। वह आपके जीवन को विकसित होने से रोकेगा। जो भी कहता है कि विश्वास करो, वह विवेक के जागरण में बाधा हो जाएगा।
और मनुष्य ने बहुत विश्वास किया है। और विश्वास का जो परिणाम है, वह हमारी दुनिया है। इससे बदतर दुनिया और क्या हो सकती है? इससे ज्यादा रुग्ण और अस्वस्थ मनुष्यता और क्या हो सकती है?
इस बीमार सभ्यता के मूल में वे विश्वासी लोग हैं, जिन्होंने सदा आंख बंद करके श्रद्धा की है और स्वयं के विवेक को प्रसुप्त रखा है। स्वयं के प्रति इससे बड़ा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि शेष सब अपराध इसी अंधेपन से पैदा होते हैं। और मनुष्य की पंगु स्थिति उसके विवेक के लंगड़ेपन से ही उत्पन्न हुई है।
और हम आज भी विश्वास किए जा रहे हैं--कोई मंदिर में, कोई मस्जिद में, कोई चर्च में; कोई इस किताब में, कोई उस किताब में; कोई इस मसीहा में, कोई उस मसीहा में! सारी दुनिया विश्वास करती है! लेकिन विश्वास के बावजूद यह परिणाम है!
लेकिन विश्वास का जहर पिलाने वाले और उसके आधार पर ही शोषण करने वाले कहेंगे कि विश्वास कम है, इसलिए ही यह परिणाम है! विश्वास से पैदा हुए अंधेपन को भी वे विश्वास की कमी के कारण बतलाते हैं! उनका बतलाना नहीं, किंतु हमारा उसे मान लेना तो एक अविश्वसनीय चमत्कार ही है।
मैं कहता हूं कि परमात्मा करे कि विश्वास बिल्कुल शून्य हो जाएं। क्योंकि विश्वास की पूर्णता विवेक की मृत्यु के अतिरिक्त और क्या हो सकती है? विश्वास पूरा हुआ तो मनुष्य गया, क्योंकि विवेक भ्रष्ट हो जाएगा। विश्वास विवेक का विरोधी है।
जब भी कोई कहता है कि हमारी बात मान लो, तभी वह यह कहता है कि तुम्हें जानने की कोई जरूरत नहीं है! जब भी कोई कहता है कि विश्वास कर लो, तो वह यह कहता है कि तुम्हें अपने पैरों की कोई आवश्यकता नहीं है! जब कोई कहता है कि श्रद्धा करो, तब वह यह कहता है कि तुम्हें अपनी आंखों की जरूरत नहीं है, हमारे पास आंखें हैं।
मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है।

एक गांव में एक आदमी की आंखें चली गयीं। वह बूढ़ा था, बहुत बूढ़ा था। उसकी कोई नब्बे वर्ष की उम्र थी। उसके घर के लोगों में उसके आठ लड़के थे। उन आठों ने उससे प्रार्थना की, कि आंखों का इलाज करवा लिया जाए। सब कहते हैं कि आंखें ठीक हो जाएंगी।
लेकिन उस बूढ़े आदमी ने कहा कि मुझे आंखों की क्या जरूरत है? मेरे आठ लड़के हैं, उनकी सोलह आंखें हैं। उनकी आठ पत्नियां हैं, उनकी सोलह आंखें हैं। ऐसे मेरे पास बत्तीस आंखें हैं। फिर मुझे खुद आंखों की क्या जरूरत है? मुझे क्या जरूरत है आंखों की? मैं अंधा भी जी लूंगा। उन लड़कों ने बहुत प्रार्थना की, लेकिन वह बूढ़ा माना नहीं! उसने कहाः मुझे जरूरत ही क्या है, मेरे घर में मेरी बत्तीस आंखें हैं!
लेकिन एक रात को भवन में आग लग गई। वे बत्तीस आंखें बाहर हो गयीं, वह बूढ़ा भीतर रह गया! वे बत्तीस आंखें बाहर हो गयीं! और तब याद आया कि अपनी ही आंखें काम आती हैं, किसी और की आंखें काम नहीं आ सकती हैं।
अपना ही विवेक काम आता है, किसी दूसरे से मिले हुए विश्वास काम नहीं आते हैं।
जीवन में चारों ओर चौबीस घंटे आग लगी हुई है! हम चौबीस घंटे जीवन की आग में खड़े हुए हैं! वहां अपनी ही आंख काम आ सकती है, किसी और की नहीं--महावीर की, न कृष्ण की, न बुद्ध की, न राम की, न मेरी और न किसी और की। किसी की आंख किसी दूसरे के काम नहीं आ सकती।
लेकिन तथाकथित धार्मिक लोग, धर्म के व्यवसायी, धर्म के नाम पर शोषण करने वाले लोग समझाते हैं कि विश्वास करो, विवेक की क्या जरूरत है, तुम्हें विचार की क्या जरूरत है! विचार तो उपलब्ध हैं, दिव्य विचार उपलब्ध हैं, इन पर विश्वास करो!
और हम उन विचारों पर विश्वास करते रहे हैं और निरंतर नीचे से नीचे चले
गए हैं। हमारी चेतना निरंतर नीचे से नीचे चली गई है। विश्वास से कोई चेतना ऊपर नहीं उठती। विश्वास तो आत्महत्या है, इसीलिए मैं नहीं कहता कि किसी बात पर विश्वास करो। मैं कहता हूं, विश्वास से अपने को मुक्त कर लो। विश्वास से मुक्ति में ही विवेक का जागरण है।
जिस व्यक्ति को भी सत्य का जीवन में अनुभव करना हो और जिस व्यक्ति को
भी प्रभु के प्रकाश और प्रेम को अनुभव करना हो, वह स्मरण रखे कि सब भांति के विश्वासों से स्वतंत्र हो जाना, उस मार्ग पर पहली और अनिवार्य शर्त है। स्वतंत्रता-चित्त की स्वतंत्रता, विवेक की स्वतंत्रता पहली शर्त है सत्य को जानने के लिए।
और जिसका चित्त स्वतंत्र नहीं, स्मरण रखें। वह कुछ भी जान ले, सत्य को नहीं जान सकेगा। सत्य के द्वार पर प्रवेश पाने के लिए चेतना का स्वतंत्र होना अत्यंत अनिवार्य है।
विश्वास बांधते हैं, परतंत्र करते हैं। श्रद्धाएं बांधती हैं, परतंत्र करती हैं। शास्त्र और सिद्धांत बांधते हैं और परतंत्र करते हैं। कितने आश्चर्य की बात है, एक घर में आप पैदा हो जाते हैं, संयोग से-- हिंदू कहो या मुसलमान कहो। और जन्म के साथ आपको विश्वास दे दिया जाता है और फिर जीवन भर आप उससे बंधे रहते हैं! फिर जीवन भर आप कहते हैं कि मैं तो हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं!
कहीं जन्म के साथ कोई ज्ञान मिलता है? जन्म का ज्ञान से कोई संबंध है? पैदाइश से धर्म का कोई संबंध है? अगर पैदाइश से ही दुनिया में लोग धार्मिक हों तो सारी दुनिया आज धार्मिक होनी चाहिए।
यह दुनिया इतनी अधार्मिक है, क्या यही इस बात का सबूत नहीं है कि जन्म
के साथ धर्म का कोई संबंध नहीं हो सकता है?
लेकिन हम सब जन्म से धार्मिक बने हुए हैं! और ये जन्म से बने हुए धार्मिक ही सारे उपद्रव के कारण हैं। दुनिया में इनके कारण ही धर्म का अवतरण नहीं हो पाता है।
जन्म से कोई धार्मिक नहीं होता है, जीवन से धार्मिक होता है। जन्म से किसी का कोई संबंध किसी विश्वास से होने का कोई कारण नहीं है।
लेकिन इससे पहले कि हमारा विवेक जाग्रत हो, हमारा समाज, हमारा परिवार, हमारे मां-बाप, शिक्षक, उपदेशक हमें विश्वास पकड़ा देते हैं! इसके पहले कि

विवेक मुक्त आकाश में विचरण करे, विश्वास की जंजीरें उसे जमीन पर रोक लेती हैं और बांध लेती हैं! फिर जीवन भर हम उसी विश्वास के घेरे में भटकते रहते हैं, फिर हम कभी सोच नहीं पाते हैं!
जिस आदमी का कोई भी विश्वास है, जिसकी कोई श्रद्धा है, वह आदमी कभी विचार नहीं कर सकता है, क्योंकि वह हमेशा अपने विश्वास के बिंब से ही देखना शुरू करता है। वह जो भी विचार करेगा, वह पक्षपातपूर्ण होगा। वह जो भी विचार करेगा, उसकी पूर्व-धारणा में आबद्ध होगा। वह जो भी विचार करेगा, वह हमेशा उधार और झूठा होगा। वह उसका निज का नहीं हो सकता है। और जो विचार अपना न हो और जो विवेक अपना न हो, वह असत्य है। उसकी कोई सच्चाई नहीं है। वह कोई वास्तविक आधार नहीं है, जिस पर जीवन खड़ा किया जा सके।
मैं देश भर में लोगों से यही पूछ रहा हूं कि आपके विश्वास तो बहुत हैं, कोई विचार भी है? वे कहते हैं, बहुत विचार हैं। मैं पूछता हूं कि कोई एकाध भी आपका अपना है या कि सब दूसरों के हैं और उधार हैं! जो संपत्ति दूसरे की है, उससे आपके जीवन में कौन सा प्राण मिलेगा?
लेकिन हमारी सारी विचार की संपत्ति उधार है और पराई है, वह दूसरे की है! यह चित्त की अत्यंत गहरी परतंत्रता है। और चित्त को सबसे पहले इस परतंत्रता से मुक्त होना ही चाहिए। मनुष्य का नया जन्म तभी संभव होता है, जब उसकी चेतना उधार विचारों और पराई धारणाओं से मुक्त होती है।
सत्य की खोज में स्वतंत्रता को मैं पहला तत्व कहता हूं।
जो भी सत्य की खोज में जाना चाहते हैं, जिनके भीतर भी प्यास जगी है कि
वे जानें कि जीवन का अर्थ क्या है? जिनके भीतर भी यह अभीप्सा चमकी है कि वे समझें कि यह सब जो है--मेरे चारों तरफ फैली सत्ता, उसका प्रयोजन क्या है? उन सबके लिए स्वतंत्रता जीवन-साधना की अनिवार्य सीढ़ी है।
यदि वे चाहते हैं कि जानें कि क्या है अमृत, और क्या है आनंद, और क्या
है परमात्मा, तो स्मरण रखें, पहली शर्त, पहली भूमिका होगी कि वे अपने चित्त को स्वतंत्रता की तरफ ले जाएं, चित्त को पूर्णरूप से स्वतंत्र कर दें। अगर अंततः स्वतंत्रता चाहिए तो प्रथम चरण में ही स्वतंत्रता के आधार देने होंगे।
लेकिन हम सारे बंधे हुए लोग हैं! हम सारे लोग किसी न किसी विश्वास से बंधे हुए हैं। और क्यों बंधे हुए हैं? इसलिए बंधे हुए हैं कि ज्ञान के लिए साहस और श्रम करना होता है। और विश्वास के लिए कोई साहस और श्रम करने की जरूरत नहीं। विश्वास करने के लिए किसी तरह की साधना की कोई जरूरत नहीं। किसी दूसरे पर विश्वास कर लेने के लिए निश्चय ही आपके भीतर साहस की, श्रम की, तपश्चर्या की अत्यधिक कमी अवश्य है।
गहरा आलस्य और तामसिक वृत्ति हो तो विश्वास सहज हो जाता है।
जो खुद नहीं खोज पाता है, वह मान लेता है कि जो दूसरे कहते हैं, ठीक ही कहते हैं।
सत्य के प्रति जिसके मन में कोई श्रद्धा नहीं है, वही सत्य के संबंध में प्रचलित सिद्धांतों में श्रद्धा कर लेता है। सत्य के प्रति जिसकी प्यास सच्ची नहीं है, वही केवल दूसरे के दिए हुए विचारों पर विश्वास कर लेता है।
अगर सत्य की अभीप्सा हो तो कोई किसी धर्म में, कोई किसी सिद्धांतों में कोई किसी संप्रदाय में आबद्ध नहीं हो सकता है। वह तो खोजेगा, निज खोजेगा, अपने सारे प्राणों की शक्ति लगा कर खोजेगा। और जो इस भांति खोजता है, वह निश्चित पा लेता है। और जो भीतर विश्वास करता चला जाता है, वह जीवन को खो देता है। लेकिन जीवन-सत्य उसे उपलब्ध नहीं होता है।
स्वयं की खोज और श्रम हो तो ही सत्य मिलता है।
जो खोजता ही नहीं और मुफ्त में पा लेना चाहता है, वह भूल में है। सत्य
तो मुफ्त नहीं मिलेगा, हां, उसका स्वयं का जीवन जरूर मुफ्त में खो जाएगा। अपने आलस्य और प्रमाद में हम किसी के चरण पकड़ लेते हैं, हम किसी की बांह पकड़ लेना चाहते हैं और जीवन के समाधान को उपलब्ध हो जाना चाहते हैं! किसी गुरु की, किसी साधु की, किसी संत की छाया में हम भी तैर जाना चाहते हैं। यह असंभव है, यह बिल्कुल ही असंभव है। इससे ज्यादा असंभव कोई दूसरी

बात नहीं हो सकती। यह तो आंतरिक परतंत्रता है। यह तो आत्मिक दासता है। इसलिए, किसी की शरण से नहीं बंधना है, वरन अशरण होना है।
यही प्रश्न है कि कैसे हमारा चित्त स्वतंत्र हो, कैसे हम चित्त को स्वतंत्र करें और मुक्त करें? यह बंधा हुआ चित्त जो ढांचों में कैद है, इसे हम कैसे इन पिंजरों के बाहर ले जाएं? क्योंकि मनुष्य के सामने सबसे बड़ी समस्या उसके चित्त-मुक्ति की और स्वतंत्रता की है। प्रश्न परमात्मा का नहीं है, प्रश्न चित्त की स्वतंत्रता का है।
मेरे पास लोग आते हैं, पूछते हैः ईश्वर है? तो मैं उन्हें कहता हूं कि ईश्वर की फिकर छोड़ दो। मुझे यह बताओ कि तुम्हारा चित्त स्वतंत्र है? कोई मुझसे पूछे कि आकाश है, कोई मुझसे पूछे कि सूरज है, तो इसका क्या अर्थ हुआ? यही न कि उसकी आंखें बंद हैं? इसलिए उलटे मैं ही उससे पूछूंगा कि क्या तुम्हारी आंखें खुली हैं?
सूर्य तो है, लेकिन सूर्य के होने के लिए आंखों का खुला होना चाहिए। परमात्मा तो है, लेकिन परमात्मा को होने के लिए चित्त खुला होना चाहिए। बंधे हुए चित्त और बंद आंखें उसे कैसे देख सकती है? जो विश्वास में सोए हैं, उनकी आंखें बंद हैं और चित्त बंधा हुआ है।
जिसने कोई भी मान्यता बना ली है, कोई भी आस्था बना ली है, कोई भी धारणा बना ली है, जिसने जानने के पहले कोई मान्यता बना ली है, उस आदमी का चित्त बंद हो गया है, उसने अपने द्वार बंद कर लिए-और अब वह पूछता है कि परमात्मा है, सत्य है? निश्चित ही बंद मन के लिए न सत्य है, न परमात्मा है।
असली प्रश्न, असली सवाल, असली समस्या ईश्वर के होने, न होने की नहीं है; न आत्मा के होने, न होने की है; न सत्य के होने और न होने की है। असली समस्या है कि क्या वह चित्त आपके पास है, जो जान सके? उस चित्त के बिना कोई मार्ग जीवन की उपलब्धि का, जीवन की सार्थकता को जानने का न है, न कभी था और न कभी हो सकता है। केवल वही जान सकते हैं, जिनका विवेक परिपूर्ण रूप से मुक्त होकर जानने में समर्थ है।
कैसे हम अपने चित्त को मुक्ति की ओर ले जाएं? कैसे उसका द्वार खोलें, कैसे उसकी खिड़कियां खोलें, ताकि उनसे प्रकाश आ सके? कैसे हमारी आंखें खुलें और हम देख सकें उसे--"जो है?"
जब भी हम कुछ मान लेते हैं, तो हमारी आंखों पर पर्दा पड़ जाता है और हम उसे देख ही नहीं पाते जो कि है, बल्कि उसे देखने लगते हैं, जिसे कि हम मानते हैं! लोगों ने कृष्ण के दर्शन किए हैं, राम के दर्शन किए हैं, क्राइस्ट के दर्शन किए हैं, बुद्ध के दर्शन किए हैं! ये दर्शन हो सकते हैं, अगर वे किसी बात को मान लें, विश्वास कर लें, आग्रहपूर्वक चित्त में उसे ग्रहण कर लें। और निरंतर उसका स्मरण करें और निरंतर उसका विचार करें और अपने को आत्म-सम्मोहित कर लें। उपवास से और तप से, निरंतर चिंतन और मनन से, निरंतर विचार और विश्वास से अगर वे अपने आपको पूरा का पूरा प्रसुप्त कर लें, तो उन्हें अपनी कल्पना के दर्शन हो सकते हैं!
किंतु ऐसा दर्शन सत्य का दर्शन नहीं है। वह हमारी ही कल्पना का साक्षात है, वह हमारे ही विचार का दर्शन है। वह हमारी ही मान्यता का प्रक्षेपण है। यह हमारा ही स्वप्न है, जो हमने पैदा किया है। इसलिए दुनिया में अलग-अलग धर्मों के लोग अलग-अलग ढंग से दर्शन कर लेते हैं! वे दर्शन वास्तविक नहीं हैं।
वास्तविक दर्शन के लिए, परमात्मा जैसा है उसे जानने के लिए, सत्य जैसा
है उसे जानने के लिए जरूरी है कि हम अपनी सारी कल्पनाओं को और धारणाओं को छोड़ दें। हमारी सारी कल्पनाएं शून्य हो जाएं, हमारे सारे विचार विलीन हो जाएं, हमारे अपने भीतर कोई मान्यता न हो और तब हम देख सकेंगे। मान्यता-शून्य चित्त का जो दर्शन है, वह सत्य का दर्शन है।
मान्यता के आधार पर जो दर्शन है, वह अपनी ही कल्पना का प्रक्षेपण है, अपनी ही कल्पना का विस्तार है। इस तरह का दर्शन, धार्मिक दर्शन नहीं है।
इस तरह का दर्शन एक मानसिक कल्पना और स्वप्न-सृष्टि है। यह अनुभव वास्तविकता नहीं है, यह अनुभव स्वयं ही बनाई गई अपनी ही मानसिक सृजना है।
हमने ही इसे निर्मित किया है।

और बहुत लोगों ने इस भांति परमात्मा के दर्शन किए हैं, किंतु वे परमात्मा के दर्शन नहीं हैं। क्योंकि परमात्मा का कोई रूप नहीं है और उसका कोई आकार नहीं है। सत्य की कोई मूर्ति नहीं है और सत्य के कोई गुण नहीं हैं।
उस सत्य को, जो समस्त में व्याप्त है, जानने के लिए शून्य और शांत हो जाना जरूरी है। अगर मेरा चित्त बिल्कुल निर्विकल्प हो, शांत और सरल हो, अगर मेरे चित्त में कोई विचार न बहते हों, कोई कल्पना न उठती हो, अगर मेरा चित्त बिल्कुल ही मौन हो, तो उस मौन में ही वह जाना जाता है, जो है। उस मौन में ही कुछ जाना जाता है, उस शून्य में ही किसी से संबंध और संपर्क हो जाता है। उस शांति में ही कहीं न कहीं किसी अलौकिक सत्ता से संबंध स्थापित हो जाता है। वही संबंध, वही संपर्क, वही समझ, वही बोध, वही प्रतीति परमात्मा की प्रतीति है। उस सबको जानने के लिए जरूरी है कि जानने के पूर्व ही जो जाना हुआ जान लिया गया है, उसे विदा दी जाए। इसे ही मैं तथाकथित ज्ञान से मुक्त होना कहता हूं।
झूठे ज्ञान से सच्चा अज्ञान ही कहीं ज्यादा मित्र है। मिथ्या ज्ञान रात्रि है। जानने के लिए "मैं नहीं जानता हूं", यह जानना अत्यंत हितकर है। इसलिए उचित है कि हम विश्वासों के मिथ्याजाल को तोड़ दें। और शास्त्रों और सिद्धांतों की धूल को भी स्वयं के चित्त-दर्पण से झाड़ दें।
आह! कितने कूड़े-कर्कट से भरे हैं हम? कितने ग्रसित है हम! और कितने मरे हुए हैं हम! कितना ज्यादा विचार का, सिद्धांत का, शास्त्र का हमारे ऊपर भार है--हम उससे दबे जा रहे हैं! हजारों सालों से मनुष्य चिंतन करता है। और इन हजारों साल के चिंतन का भार एक-एक आदमी के सिर पर है। हजार-हजार वर्षो में जो भी विचार हुए हैं, उनका भार हमारे ऊपर है! इस भार के कारण चित्त मुक्त नहीं हो पाता है, ऊपर नहीं उठता है। हम जब भी विचार करना शुरू करते हैं, इसी भार के घेरे में घूमने लगते हैं, वह हमारा ढांचा है, उन्हीं में हम चलने लगते हैं! जैसे कोल्हू का बैल चलता है अपने रास्ते पर, वैसे ही हमारा चित्त चलता है!
इसके पहले कि किसी को सत्य के अज्ञात जगत में प्रवेश करना हो, उसे सारे ज्ञात मार्गों को छोड़ देना बहुत आवश्यक है। वह जो भी हम जानते हैं, उसे छोड़ देना जरूरी है, ताकि वह जाना जा सके, जो हम नहीं जानते हैं। अज्ञात के स्वागत में ज्ञात को हटाना ही होता हैं। ज्ञात को जाने दें, ताकि अज्ञात आ सके। जो भी हम मानते हैं। उसे हटा लेना है; ताकि उसका दर्शन हो सके, जो है।
एक तो हौजों में भरा हुआ पानी होता है। ऊपर से पानी भर देते हैं, ईंट-गारे से जोड़ देते हैं हौज को। ऊपर से पानी भर देते हैं। दूसरा कुएं का पानी होता है, उसमें जितनी भी मिट्टी और पत्थर हैं, उन्हें निकाल कर बाहर कर देते हैं और तब नीचे से जल-स्रोत आता है। हौज का पानी थोड़े ही दिन में गंदा हो जाएगा। वह ऊपर से भरा हुआ जो है। और कुएं के तो अपने जल-स्रोत हैं। उसका पानी गंदा नहीं होगा। उसका तो प्राणों का संबंध बहुत गहरे तल से है, जहां बहुत जल है। वह तो अंततः सागर से जुड़ा हुआ है। हौज किसी से नहीं जुड़ा है। वह तो ऊपर-ऊपर ही है और इसलिए निष्प्राण है। हौज तो मात्र देह है। कुएं की अपनी आत्मा भी है।
ऐसे ही दो तरह के ज्ञान भी होते हैं। एक तो हौज का ज्ञान होता है, जो ऊपर से भर दिया जाता है और बहुत जल्दी सड़ जाता है। इसलिए ही तो दुनिया में तथाकथित पंडितों के मस्तिष्क से सड़ा हुआ और जरा-जीर्ण मस्तिष्क और कोई नहीं होता। वह सोच-विचार करने में असमर्थ ही होता है। उसकी स्थिति अत्यंत पंगु होती है। उसमें विचार तो बहुत होते हैं, लेकिन विचारणा बिल्कुल भी नहीं होती है। सब भरा हुआ रहता है। वह उसी को दोहराता है! वह जड़-यंत्र की भांति होता है। इसलिए तो पंडितों की बातें बिल्कुल मृत और यांत्रिक होती हैं। उनसे कुछ भी पूछिए, सब पहले से तैयार है! प्रश्न बाद में है, समाधान पहले है! उत्तर उसे मालूम हैं! उत्तर ऊपर से भर दिए गए हैं। अब तो ऐसे यंत्र भी तैयार हो गए हैं, जिनसे आप प्रश्न पूछें और वे उत्तर दे दें! पंडितों की अब दुनिया में जरूरत नहीं रह जाएगी, क्योंकि अब तो उनका कार्य यंत्र ही कर देंगे! निश्चय ही उन यंत्रों को भी ज्ञान का भोजन वैसे

ही कराना होगा, जैसा कि पंडितों को करना पड़ता है। उत्तर पहले सिखा दीजिए और फिर उत्तर ले लीजिए। वे यंत्र बस स्मृति-घर होंगे। विचार करना उनके बस में नहीं है। तोते--पंडितों के वश में भी वह कभी नहीं रहा है। एक अंतर जरूर होगा कि यंत्र पंडितों से ज्यादा कुशल होंगे! और उनसे एक सुविधा और होगी कि वे किसी को लड़ाएंगे नहीं, झगड़ा नहीं करवाएंगे। उनमें हिंदू, ईसाई और यहूदी का युद्ध खड़ा कराने की वृत्ति नहीं होगी।
यह ऊपर से भरा हुआ जो ज्ञान है, घातक है। यह मस्तिष्क को मुक्त नहीं करता है। मस्तिष्क को बांध देता है, खंडित कर देता है। उसकी उड़ने की क्षमता तोड़ देता है, उसके पंख नष्ट कर देता है। एक दूसरा ज्ञान है, जो भीतर से आता है, कुएं के जल की तरह आता है। निश्चित ही दोनों की प्रक्रिया बिल्कुल अलग और विरोधी हैं। कुएं में मिट्टी को, पत्थर को बाहर निकालना पड़ता है। और हौज में मिट्टी और पत्थर को जोड़ना पड़ता है। एक में पानी है और एक में पानी डालना पड़ता है।
क्या आप ज्ञान को हौज की तरह इकट्ठा कर रहे हैं? अगर इकट्ठा कर रहे हैं
तो सावधान हो जाएं, क्योंकि आप अपने ही हाथ से अपने मस्तिष्क को नष्ट कर रहे हैं। वह मस्तिष्क, जो कि परमात्मा तक उड़ सकता है, आप उसे अत्यंत पार्थिव भूमि पर बांध रहे हैं।
बाहर से ज्ञान न इकट्ठा करें, भीतर से ज्ञान को आने दें। भीतर से ज्ञान को आने देने के लिए यह जरूरी है कि ईंट, पत्थर जो इकट्ठे कर लिए हैं, वे अलग कर दिए जाएं। जितना ज्ञान हमने इकट्ठा कर लिया है, उसे हम हटा दें और सरल हो जाएं। यदि झूठे और सीखे हुए ज्ञान को हम हटा दें और सरल हो जाएं तो एक बिल्कुल ही अभिनव ऊर्जा का अनुभव होगा। कोई बिल्कुल ही नई चीज पैदा होनी शुरू हो जाएगी। वह तो सदा मौजूद है, किंतु व्यर्थ के ज्ञान का भार उसे प्रकट ही नहीं होने देता है!
लेकिन, जगत में संपत्ति को, पद को, परिवार को छोड़ना आसान है; विचार को छोड़ना कठिन है। निश्चित ही आप पूछेंगे, कैसे अलग कर दें? विचार तो छोड़ना बहुत कठिन है।
एक आदमी साधु हो जाता है। संपत्ति छोड़ देता है, घर छोड़ देता है; मित्र, प्रियजन छोड़ देता है; पत्नी तथा बच्चे छोड़ देता है। लेकिन जिन विचारों को उसने गृहस्थ रहते पकड़ा था, उनको नहीं छोड़ता है! उनको तो वह पकड़े ही रहता है! अगर वह जैन था तो वह कहता है कि मैं जैन साधु हूं! अगर वह मुसलमान था तो कहता है कि मुसलमान साधु हूं! अगर वह ईसाई था तो कहता है कि मैं ईसाई साधु हूं! जिन विचारों को उसने पकड़ा था, उन्हें पकड़े रहता है और सब छोड़ देता है! और गृहस्थी बाहर है, विचार की गृहस्थी भीतर है। और इसलिए ही कठिन है छोड़ने में। जो उसको छोड़ देता है, वह सत्य को जानने में समर्थ हो जाता है। घर-द्वार छोड़ने से कोई भी सत्य को कभी नहीं जान सकता है। क्योंकि सत्य
के मार्ग में घर की दीवार बाधा नहीं देती। मैं इस घर में बैठा हूं या दूसरे घर में बैठा हूं; ये दीवोलें कोई बाधा नहीं हैं, सत्य को जानने में। मैं किनके साथ बैठा हूं, यह भी कोई बाधा नहीं है। मैं कहां हूं, यह भी कोई बाधा नहीं है।
सत्य को जानने में एक ही चीज बाधक है। भीतर जो विचार की दीवार खड़ी हो जाती है, वही केवल बाधा है। और निश्चित ही उसका विसर्जन एक अति कठिन कार्य है! और जब मैं कहता हूं कि विचारों को छोड़ दें तो प्रश्न उठता है कि उसे कैसे छोड़ें? विचार की पकड़ कैसे जाएगी? वह तो निरंतर हमारे भीतर है। जो हमने सीख लिया है, उसे कैसे भूल सकते हैं?
जरूर जो सीख गया है, उसे भूलने का रास्ता होता है। और जो इकट्ठा किया गया है, उसे बांट देने का रास्ता होता है। और जो भर दिया गया है, उसे खोल देने का रास्ता होता है। असल में जो भीतर लाया गया है, उसे बाहर वापस पहुंचाने का रास्ता वही है, जिस रास्ते से वह भीतर लाया गया है। रास्ता हमेशा वही होता है। मैं जिन सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर आया हूं, उन्हीं सीढ़ियों से वापस चला जाऊंगा। और जिस रास्ते से आप सब आए हैं, उसी रास्ते से वापस लौटना होगा। रास्ता हमेशा वही होता है। आने और जाने में रास्ते का फर्क नहीं पड़ता, केवल दिशा का फर्क पड़ता है, मुंह को बदल देने का फर्क पड़ता है।

जिन-जिन रास्तों से हमने विचार को इकट्ठा किया है, उनके विपरीत मुंह कर लेने से विचारों को विसर्जित भी किया जा सकता है।
किन-किन रास्तों से हमने विचार को इकट्ठा किया है?
विचार को इकट्ठा करने में सबसे महत्वपूर्ण और सबसे गहरा जो तल है, वह ममत्व का है--इस भाव का कि वे मेरे हैं। लगता है कि विचार मेरे हैं! लेकिन क्या कोई विचार आपका है? विवाद में आप कहेंगे कि मेरा विचार ठीक है। जरा विचार करिए, आपका कोई विचार है? या कि सब विचार बाहर से आए हैं? व्यर्थ ही हम कहते हैं कि मेरा विचार है!
जो लोग कहने लगते हैं कि मेरी कोई पत्नी नहीं है, मेरा कोई बच्चा नहीं, मेरा कोई मकान नहीं है, वे भी कहते हैं कि मेरा धर्म है! वे भी कहते हैं कि मेरा विचार है, मेरा दर्शन है! उनको भी विचार के तल पर जो ममत्व का भाव है, मेरे होने का भाव है, वह नहीं जाता है! और जिनका उस तल पर ममत्व नहीं गया है, उनका किसी तल पर ममत्व का भाव नहीं जाएगा! वह चाहे कितना कहे कि मेरी पत्नी यह नहीं है, लेकिन बहुत गहरे मन पर भाव रहेगा कि यह मेरी पत्नी है।
एक बड़े स्वामी अमेरिका से वापस लौटे थे। सारे यूरोप में, सारे अमेरिका में उन्होंने सत्य-दर्शन की चर्चा की थी। उनका बड़ा प्रभाव हुआ, लाखों-करोड़ों लोगों ने उन्हें पूजा और माना। फिर वे भारत वापस लौट आए। कुछ दिन तक हिमालय में थे। उनकी पत्नी उनसे मिलने गई। स्वामी ने मिलने से इनकार कर दिया! उन्होंने कहा, मैं नहीं मिलता!
उनके पास एक मित्र थे। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, मैंने कभी आपको किसी स्त्री से मिलने को इनकार करते नहीं देखा। यूरोप में, अमरीका में हजारों स्त्रियां आपसे मिलीं और आपने कभी किसी को इंकार नहीं किया! इस स्त्री को क्यों इनकार करते हैं? क्या आप किसी तल पर अब भी उसे अपनी पत्नी नहीं मान रहे हैं? जिसे छोड़ कर चले गए थे, उससे मिलने से क्यों इनकार कर रहे हैं? जरूर ही वे किसी तल पर मान रहे थे कि पत्नी उनकी है, अन्यथा और स्त्रियों से मिलने से इनकार उन्होंने कभी नहीं किया था!
जब तक आपका विचार का ममत्व है, तब तक आप इस भ्रम में मत रहें कि आप कुछ
भी छोड़ सकते हैं, क्योंकि असली पकड़ और संपत्ति तो केवल विचार की है। बाकी सारी चीजें बाहर हैं, उनकी कोई पकड़ नहीं है। पकड़ तो सिर्फ विचार की है। वह जो विचार का घेरा है, वह जो विचार की संपत्ति है, जिससे आपको लगता है कि मैं कुछ जानता हूं, विचारणीय है कि क्या उसमें कुछ भी आपका है?
एक बहुत बड़ा साधु था। कुछ दिन पहले उसके आश्रम में एक युवा संन्यासी आया। दो, चार, दस दिन तक उस संन्यासी की बातें सुनी। वह जो वृद्ध साधु था, उसकी बातें बड़ी थोड़ी सी थीं और युवा संन्यासी बिल्कुल थक गया उन्हीं- उन्हीं बातों को बार-बार सुन कर। उसने सोचा कि इस आश्रम को छोड़ो। यहां तो सीखने को कुछ दिखाई नहीं पड़ता!
और तभी एक संन्यासी का आगमन उस आश्रम में हुआ। रात्रि में उस अतिथि संन्यासी ने जो चर्चा की, वह बहुत अदभुत थी, बहुत गंभीर थी, बहुत सूक्ष्म थी, बहुत गहरी थी। उस युवा संन्यासी ने उसकी बातें सुनीं। उस आगंतुक संन्यासी की, अतिथि की बातों से वह मोहित हो उठा और उसको लगा कि गुरु हो तो ऐसा हो, जिसके पास ऐसा ज्ञान हो--इतना गंभीर, इतना गहरा! और एक यह वृद्ध गुरु हैं, जिसके आश्रम में मैं रुका हूं, उसे कुछ थोड़ी सी बातें भर आती हैं और कुछ नहीं!
फिर उसे यह भी लगा कि यह वृद्ध संन्यासी उस अतिथि संन्यासी की बातें सुन कर मन ही मन में कितना दुखी होता होगा? निश्चय ही उसे अपमान का अनुभव हो रहा है, तभी तो वह आंखें बंद किए बैठा है! यह तो कुछ भी नहीं जानता है। जीवन इसने व्यर्थ ही गंवा दिया है!
उस नये आए साधु ने अपनी बात पूरी की और चारों ओर उसने सबकी तरफ देखा कि
उन पर क्या प्रभाव पड़ा है! उसने वृद्ध साधु की तरफ भी देखा। वह वृद्ध साधु बोला कि मैं दो घंटे से बहुत स्मृतिपूर्वक सुन रहा हूं, लेकिन मैं देखता हूं कि तुम कुछ बोलते ही नहीं!
अतिथि संन्यासी ने कहाः आप पागल तो नहीं हैं? मैं दो घंटे से बोल रहा हूं और आप दो घंटे से सुन रहे हैं और फिर भी कहते हैं कि बोलता नहीं!

वृद्ध साधु ने कहाः निश्चित ही मैंने बहुत-बहुत सुना है, लेकिन तुम कुछ भी नहीं बोले। जो भी कहा, सब दूसरों का कहा है! कोई विचार तुम्हारी अपनी अनुभूति से नहीं है! इसलिए मैं कहता हूं कि तुम नहीं बोले। दूसरे तुम्हारे भीतर से बोले, लेकिन तुम नहीं बोले! आह! तुम स्वयं में कितने रिक्त और खाली हो! लेकिन दूसरों की संपत्ति से तुमने अपना दारिद्रय जरूर ढांक लिया है।
विचार की मुक्ति के लिए और विचार की स्वतंत्रता के लिए और विवेक के जागरण के लिए पहली बात, पहला बोध यह है कि कोई भी विचार मेरा नहीं। विचार मात्र पराए हैं, उधार हैं, बासे हैं।
वह जो उनके प्रति मेरे होने का भाव है, मिथ्या है। वह भाव सत्य नहीं है। कोई विचार मेरा नहीं है। वह जो तादात्म्य है विचार से, उसे छोड़ दें। हम हर विचार से अपना तादात्म्य कर लेते हैं! हम कह देते हैं--जैन धर्म मेरा है, हिंदू धर्म मेरा है; राम मेरे, कृष्ण मेरे, क्राइस्ट मेरे! हम तादात्म्य कर लेते हैं। हम अपने में उनको जोड़ लेते हैं! बड़ा आश्चर्य है। वस्तुतः कोई विचार आपका नहीं है, कोई धर्म आपका नहीं है। यदि यह बोध स्मरणपूर्वक स्वयं में जाग्रत हो जाए तो एक मौलिक परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तन ही नहीं, वस्तुतः क्रांति ही हो जाती हैं।
अपने सारे विचारों को फैला कर देख लें, वे कहीं से आए होंगे। जैसे वृक्षों पर पक्षी संध्या बसेरा करते हैं, ऐसे ही विचार मन में आते हैं और निवास करते हैं। आप केवल एक धर्मशाला की तरह हैं, जहां लोग केवल ठहरते हैं और चले जाते हैं।
एक सराय का मुझे स्मरण आता है। एक छोटी सी सराय थी। वहां कुछ लोग आ रहे
थे संध्या को ठहरने। कुछ लोग जिनका काम पूरा हो गया, वे संध्या को विदा हो रहे थे। मैं उस सराय के बाहर बैठा था और हंस रहा था। किसी ने मुझसे पूछा, आप हंसते क्यों है? मैंने कहा, इस सराय को देख कर मुझे अपने मन का ख्याल आता है, इससे हंसी आ रही है। ऐसे ही कुछ विचार आते हैं और चले जाते हैं। और मन केवल सराय है। और कोई भी विचार उसका अपना नहीं है।
मन केवल सराय है। वहां ठहरते हैं विचार और चले जाते हैं। जरा अपने मन
को गौर से देखें तो पता चलेगा कि कल जो थे, वे आज नहीं हैं। परसों जो विचार थे, वे आज नहीं हैं, साल भर पहले जो विचार थे, वे आज नहीं हैं। दस साल पहले जो विचार थे, वे आज नहीं हैं। बीस साल पहले जो विचार थे, उनका कोई पता नहीं है। इन पिछले सालों में जिनसे आप गुजरे और जीए हैं, लौटें और देखें कौन से विचार आपके रहे हैं? विचार आए हैं और गए हैं और आप केवल सराय हैं, ठहरने की जगह हैं। फिर भूल से समझते हैं कि वे मेरे हैं! जैसे ही समझ लेते हैं कि वे मेरे हैं, वैसे ही विचार को पकड़ मिल जाती है और दीवारें बननी शुरू हो जाती हैं।
विचार मुक्ति की दिशा में पहली स्मृति है यह जानना कि मैं और विचार भिन्न हैं। मैं सराय हूं। वे यात्री हैं। उनसे ममत्व भ्रांति है। उनसे तादात्म्य भूल है।
और जब यह दिखता है तो क्या होता है? विचार-प्रवाह और चैतन्य की धारा पृथक-पृथक हो जाती है। चेतना साक्षी बन जाती है। वह द्रष्टा मात्र रह जाती है। आप निश्चित ही देखने वाले से ज्यादा नहीं हैं। आप केवल वहां एक दर्शक हैं।
हम तो नाटक में भी तादात्म्य कर लेते हैं! हम तो सिनेमा, फिल्म में भी तादात्म्य कर लेते हैं! वहां फिल्म चलती हो और कोई दुखद चित्र आता है तो हमारे आंसू बहने लगते हैं! और यह छोटे-मोटे आदमी की बात नहीं है।
एक बहुत बड़े विचारक हुए हैं। वे विद्या के सागर ही कहे जाते थे। एक छोटा सा नाटक हो रहा था। उस नाटक को वे भी देखने गए। उस नाटक में एक खलनायक है, जो कि एक अबला के साथ अनाचार करता है, अत्याचार करता है। उसका अत्याचार जब चरम हो उठता तो उनसे बर्दाश्त करना संभव नहीं हुआ! वे इतने गुस्से में आ गए कि उठकर उन्होंने अपना जूता निकाला और उसको मार दिया नाटक में! किंतु वे भूल ही गए कि वह नाटक है! और वे विद्या के सागर समझे जाते थे!

किंतु वह अभिनेता उनसे कहीं ज्यादा समझदार था! उसने उसे, जूते को सिर-माथे ले लिया और कहा कि यह उसके जीवन का सबसे बड़ा पुरस्कार है। निश्चय ही उसका अभिनय अदभुत रहा होगा; नहीं तो उसे इतना सत्य मान लेना कैसे संभव था? किंतु मित्र, जूते मारने वाले पर हंसें नहीं। हम सब यही रोज कर रहे हैं। हंसना ही है तो स्वयं पर हंसें। आप भी कोई कम विद्या के सागर थोड़े ही हैं।
जीवन में विचार के तल पर भी हम दर्शक से ज्यादा नहीं हैं, लेकिन हम विचार से तादात्म्य कर लेते हैं। वह जो विचार मन के पद पर आते और जाते हैं, उनके हम सिर्फ साक्षी हैं।
ख्याल करें, रात आपने स्वप्न देखे, सुबह आप उठे। आप कहते हैं कि स्वप्न आए और गए। आप बच्चे थे, अपने बचपन को देखा। फिर युवा हुए, फिर बूढ़े हुए। जरा ख्याल करें कि आपके भीतर कौन सा तत्व सदा साथ है। उसे खोजें जो निरंतर मौजूद है। सतत मौजूद है। सिवाय देखने वाले के और कोई मौजूद नहीं है। सब आता है और चला जाता है। बचपन आता है और चला जाता है। जवानी आती है, चली जाती है। बुढ़ापा आता है और चला जाता है। जन्म होता है, मृत्यु होती है। सुख आते हैं, दुख आते हैं। धूप आती है, छाया आती है, सम्मान आता है, अपमान आता है। लेकिन ये सारी चीजें आती हैं और जाती हैं।
पूरे जीवन में कौन सा तत्व है, जो न आता है और न जाता है। सिर्फ देखने वाले के सिवाय और कोई दूसरा तत्व नहीं है। वह जो इन सबको देखता है। वह जो देखता है कि धूप आई, वह देखता है कि धूप गई। वह देखता है कि युवा हुआ, वह देखता है कि बूढ़ा हुआ। वह देखता है कि एक विचार आया, वह देखता है कि वह विचार गया। एक देखने वाले सूत्र के सिवाय आपके भीतर बाकी सब आता और जाता है। बाकी कोई तत्व टिकता नहीं है। हां एक चीज टिकी रहती है। वह है देखने की शक्ति और देखने की क्षमता और द्रष्टा होने का, साक्षी होने का केंद्र--वह है हमारी चेतना।
विचार के तल पर साक्षी हो जाएं, विचार को देखें, पकड़ें नहीं। विचार से बंधें नहीं। उसे देखें। मात्र साक्षी होकर देखें। लेकिन हम साक्षी नहीं हो पाते, क्योंकि हमने मान रखा है कि कुछ विचार बुरे हैं और कुछ विचार अच्छे हैं। इसलिए हम अच्छे को पकड़ना चाहते हैं और बुरे को धक्का देना चाहते हैं। इसलिए हम साक्षी नहीं हो पाते हैं।
अच्छे और बुरे का जो भेद करता है, वह साक्षी नहीं हो सकता है।
जो अच्छे बुरे का भेद करता है विचार में, कि यह विचार अच्छा है, वह बुरा, तो स्वभावतः जो अच्छा है, वह उसे पकड़ना चाहता है और जो बुरा है, उसे हटाना चाहता है। विचार केवल विचार है। विचार न अच्छा होता है और न बुरा होता है। जैसे ही हमने अच्छा-बुरा कहा, वैसे ही हम एक को पकड़ने और दूसरे को छोड़ने में लग जाएंगे। इस पकड़-छोड़ में ही तो साक्षी खो जाता है।
और जो एक को पकड़ेगा और दूसरे को छोड़ेगा, वह समझ ले कि वह विचारों से कभी मुक्त ही नहीं हो सकता है, क्योंकि अच्छे और बुरे के मूल्य तो मनुष्य-निर्मित हैं, विचार तो बस विचार हैं। या तो विचार अपनी समग्रता में जाते हैं, या जाते ही नहीं हैं।
विचार कीशृंखला अखंड और एक है। उसके किसी खंड को बचाना और किसी से मुक्त होना असंभव है। वस्तुतः उसके खंड किए ही नहीं जा सकते हैं। अच्छे- बुरे दोनों विचार संयुक्त हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए एक पहलू को जो बचाता है, वह दूसरे को भी अनजाने ही बचा लेता है। जो एक को फेंकना चाहता है, उसे दूसरे को फेंकने की तैयारी भी करनी होती है। इसलिए जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, तो यह न सोचें कि उसमें बुरे विचार नहीं हैं। उसके भीतर भी बुरे विचार हैं। ऐसा अच्छा आदमी आप खोज ही नहीं सकते हैं, जिसके भीतर बुरे विचार न हों। और ऐसा बुरा आदमी भी नहीं खोज सकते हैं, जिसके भीतर अच्छे विचार न हों।
हां, ऐसा आदमी जरूर होता है, जिसके भीतर विचार ही न हों। ऐसा दो स्थितियों में होता है कि या तो वह व्यक्ति जड़ हो, मूर्च्छित हो या फिर पूर्ण जाग्रत और चैतन्य हो। मूर्च्छा में भी विचार होते हैं, केवल प्रगट नहीं होते हैं।

विचार से वास्तविक मुक्ति तो पूर्ण बोध में ही होती है। ऐसे व्यक्ति
को ही मैं साधु कहता हूं। ऐसे व्यक्ति को ही मैं धार्मिक कहता हूं। वह न अच्छा है, न बुरा है। वह तो बस है। और उसका यह होना ही शुभ है, सत है, परम मंगल है। वह तो मनुष्य भी न रहा, वह तो परमात्मा से ही एक हो जाता है। ऐसा ही व्यक्ति जानता है और ऐसा ही व्यक्ति वस्तुतः जीता है। उसका जानना और जीना एक ही है।
लेकिन जो अच्छे को पकड़ता है, वह स्मरण रखे कि बुरा भी उसके भीतर रहेगा। अच्छा ऊपर होगा और बुरा भीतर। क्या आपको यह ज्ञात नहीं है कि जो तथाकथित सज्जन हैं, वे स्वप्न में वही काम करते हैं, जो दुर्जन दिन में, जागने में करता है। सज्जन वही सब करता है, जिससे वह स्वयं को जागने में करने से रोकता है।
बुरे आदमी बुरे स्वप्न नहीं देखते, अच्छे आदमी बुरे स्वप्न देखते हैं। अक्सर बुरे आदमी अच्छे स्वप्न देखते हैं। बुरे आदमी साधु होने के सपने देखते हैं, और अच्छे आदमी असाधु होने के सपने देखते हैं! स्वप्न जीवन के परिपूरक हैं। इसलिए ही तो तथाकथित साधुओं को अप्सराएं परेशान करती हैं। ये अप्सराएं उनके स्वप्नों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं हैं।
चित्त जो-जो दमन करता है, वही-वही स्वप्न में रूप धर लेता है। स्वप्न जागरण का दूसरा पहलू है। चेतन से जिसे हम हटाते हैं, वह अचेतन में बस जाता है। इस भांति उससे छुटकारा नहीं है। उलटे उसकी पैठ तो ऐसे और भी गहरी और सूक्ष्म हो जाती है।
सज्जनों के मन खोले जा सकें तो ज्ञात होगा कि दुर्जनों के बराबर ही पाप वे भी कर लेते हैं। यह भेद जरूर है कि वे उन्हें मन ही मन में करते हैं।
लेकिन चेतना के लिए इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। समाज के लिए तो अंतर पड़ता है, किंतु स्वयं के लिए नहीं।
दुर्जन भी भलाइयों की कल्पना करते हैं, वे भी उनका स्वप्न देखते हैं।
असल में दोनों बातें सदा साथ रही हैं। उनमें एक से ही छुटकारा असंभव है।
और जो पहलू नीचे दबा रहता है, वह कभी भी ऊपर आ सकता है। इसलिए ही तो तथाकथित साधु असाधु और असाधु साधु होते देखे जाते हैं। यह केवल करवट बदलना है। इससे कोई वास्तविक क्रांति नहीं होती है। अच्छे आदमी में बुरा आदमी छिपा है, बुरे आदमी में अच्छा!
शुभ की आड़ में अशुभ है और अशुभ के नीचे ही शुभ। वैसे ही जैसे सिक्के का चेहरा हम ऊपर कर लें तो पीठ नीचे चली जाती है और पीठ ऊपर कर लेते हैं तो सिक्के का चेहरा नीचे चला जाता है। इस सत्य को ठीक से समझ लें कि अच्छा और बुरा एक ही तथ्य के दो पहलू हैं।
जिसको साक्षी होना है और सत्य को जानना है, उसे समस्त विचार को समान विचार समझना होगा। न कोई अच्छा है, न कोई बुरा है, क्योंकि जैसे ही हमने यह तय किया कि कुछ अच्छा है, कुछ बुरा है, वैसे ही हम एक को पकड़ने में और दूसरे को हटाने में लग जाएंगे और साक्षी नहीं रह जाएंगे।
साक्षी होने के लिए जरूरी है कि हम निष्पक्ष हों, हमारी कोई धारणा न हो, हमारी कोई कल्पना न हो, हम कुछ आरोपित न करना चाहते हों। विचार जैसे हों, हम उन्हें वैसे ही देखने को राजी हों। न उनकी प्रशंसा और न निंदा। उनके प्रति कोई दृष्टि नहीं। बस, मात्र दर्शन--तटस्थ दर्शन। कोई निर्णय नहीं। कोई मूल्यांकन नहीं, बस दर्शन। निपट दर्शन।
विचारों के प्रति सीधे और सरल साक्षी होना एक अदभुत घटना है। उसमें बड़ा आश्चर्य और रहस्य निहित है। क्योंकि विचारों के सहज और सरल निरीक्षण में विचार तिरोहित होने लगते हैं। और अंततः एक अवर्णनीय मौन, एक अखंड शांति और एक अज्ञात शून्य ही शेष रह जाता है। इस मौन में साक्षी ही शेष बचता है। विचारों का तटस्थ दर्शन उनके प्रति सारे संबंध तोड़ देता है।
और जहां विचारों के प्रति न राग है, न विराग है, वहां वे सहज ही आना बंद
कर देते हैं। राग-विराग के जाते ही उनके आगमन और ठहरने के मूल कारण का ही विच्छेद हो जाता है। लेकिन जब तक विचारों के प्रति शुभ-अशुभ के निर्णय की वृत्ति होती है, तब तक यह नहीं हो पाता है। वह वृत्ति चित्त के मौन और शून्य होने में बाधा बन जाती है।

विचारों को किसी भी पक्ष और भाव के बिंदु से देखना, उनसे बंधने और उलझने और ग्रसित होने का आधार है। इस आधार को ही देखे बिना, जो उनसे लड़ता है, वह व्यर्थ ही लड़ता है। वह जानता ही नहीं है कि स्वयं उसकी लड़ाई ही उन्हें प्राण दे रही है। मित्र भी हमको घेरे रहते हैं और शत्रु भी हमको घेरे रहते हैं। एक बार चाहे मित्र न भी घेरें, लेकिन शत्रु जरूर घेरे रहते हैं। वे हमारे चित्त में घूमते ही रहते हैं। मित्रता और शत्रुता--दोनों ही चेतना को विचारों से बांधने के कारण बनते हैं। इसलिए मैंने कहा कि उन्हें न राग से देखें, न विराग से। वीतराग दर्शन के अतिरिक्त उनसे मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। वस्तुतः उस दर्शन में उनकी जड़ें ही नष्ट हो जाती हैं।
यदि कोई व्यक्ति कामिनी को या कंचन को बुरा मान कर उनसे भागने लगे तो
वह पाएगा कि चौबीस घंटे वे ही विचार उसे घेरे हुए हैं! सोते जागते वह उनमें ही डूबा रहेगा! और जितना वह स्वयं को उनमें डूबा हुआ पाएगा, उतना ही भयभीत होगा। और जितना भयभीत होगा, उतना ही उनसे और तीव्रता से भागेगा। और जितना भागेगा, उतना ही और डूबेगा! ऐसे उसके जीवन में एक दुष्चक्र पैदा होगा, जो कि बिल्कुल आत्म-चलित यंत्र सा गति करेगा। ऐसे मोक्ष तो नहीं, नरक जरूर ही निकट आ जाता है।
जिस विचार से आप लड़ते हैं, वही विचार आपका आमंत्रण स्वीकार कर लेता है। जिससे आप लड़ते हैं, वही आने लगता है। मन का नियम है कि जिससे लड़ेंगे, वही आमंत्रित होगा। जिसको आपने धक्का दिया, वह आपके धक्के के कारण ही आना शुरू हो जाएगा। इसलिए विचार से न तो डरना है और न उसे डराना है। न उसे पकड़ना है, न उसे धक्का देना है। उसे तो मात्र देखना है। निश्चय ही इसमें बड़ी सजगता की जरूरत है, क्योंकि बुरा भी विचार आएगा और आदतवश मन होगा कि उसे धक्का दे दें। और अच्छा भी विचार आएगा और मन होगा कि पकड़ लें।
इस मन की यह जो पकड़ने और धक्का देने की प्रवृत्ति है, वह सहज आदत है। बोधपूर्वक, स्मृतिपूर्वक अगर कोई उस पर ध्यान करेगा तो वह वृत्ति धीरे- धीरे शिथिल हो जाएगी, और वह विचार को देखने में समर्थ हो जाएगा। और जो व्यक्ति विचार को देखने में समर्थ हो जाता है, वह वस्तुतः विचार से मुक्त होने में भी समर्थ हो जाता है।
हम विचार को कभी देखते ही नहीं। हम कभी रुक कर, ठहर कर देखते नहीं कि कहां क्या चल रहा है। आपने शायद ही कभी देखा हो। आधा घंटा बैठ कर आपने कभी देखा है कि क्या आपके भीतर चल रहा है? वह चल रहा है, और आप भी चले जा रहे हैं और आप काम किए जा रहे हैं! वह चल रहा है, आप खाना खा रहे हैं! वह चल रहा है, आप लिख रहे हैं, बोल रहे हैं! वह चल रहा है और आप सुन रहे हैं, वह भीतर चलता ही जाता है! वह अलग ही चलता जा रहा है! धीरे-धीरे आपने उसकी फिकर ही छोड़ दी है!
आपको ध्यान ही नहीं है कि भीतर क्या चल रहा है और आप अपना दैनंदिन कार्य बिल्कुल यंत्र की भांति ही किए जा रहे हैं! इसलिए आप करीब-करीब सोए हुए आदमी हैं। भीतर मन कुछ और कर रहा है, आप कुछ और किए जा रहे हैं! आप अनुपस्थित आदमी हैं, आप अपने प्रति उपस्थित नहीं हैं, आप अपने प्रति जागे हुए नहीं हैं।
महावीर से किसी ने एक दिन पूछा कि साधु कौन है? महावीर ने कहाः असुत्ता मुनि। जो सोया हुआ नहीं है, वह साधु है! पूछाः असाधु कौन है? उन्होंने कहाः सुत्ता अमुनि। सोया हुआ असाधु है!
अदभुत सूत्र है। वस्तुतः जो सोया है, वह जीवित नहीं है। वह नाम मात्र
को ही जीवित है। वह तो मृत ही है। और हम सारे लोग सोए हुए हैं। हम भीतर क्या चल रहा है, उसके प्रति बिल्कुल सोए हुए है! और वह भीतर ही हमारा असली होना है। हम उसके प्रति सोए हुए हैं! बाहर क्या चल रहा है, बाहर क्या हो रहा है, उसके प्रति जाग्रत हैं! "जो बाहर चल रहा है, उसके प्रति जागे हैं; जो भीतर चल रहा है, उसके प्रति सोए हैं! यही जीवन का दुख है और यही जीवन का अज्ञान है। और यही जीवन की परतंत्रता है। और यही जीवन का बंधन है।
उसके प्रति जागना होगा, जो भीतर चल रहा है। विचार की समस्त धारा के प्रति जो जागेगा, समझेगा, साक्षी होगा, वह एक बड़े अदभुत अनुभव से गुजरता है, उसे अनुभव में आना शुरू होता है कि जिन-जिन विचारों का वह साक्षी हो जाता है, वे-वे विचार आने बंद हो जाते हैं। जिस-जिस विचार को वह देखने में

समर्थ हो जाता है, वे-वे विचार आने में असमर्थ हो जाते हैं और एक घड़ी आती है कि विचार नहीं रह जाते हैं और तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम ही विवेक है।
विचार दूसरों के हैं, विवेक स्वयं का है। विचार पराए हैं, विवेक आत्मा है। यह विवेक ही वह प्रज्ञा है, जो प्रकाश में और परमात्मा में जगाती है। विचारों के जाने और विवेक के आने की घड़ी से बड़ी सौभाग्य की और कोई घड़ी नहीं है। उस घड़ी में ही विचार नहीं होते हैं और आप होते हैं। बस, आप ही होते है। इस स्वयं की निर्धूम सत्ता में ही जो ज्योतिशिखा जग उठती है, वही मुक्त विवेक है, वही स्वतंत्र हुआ विवेक है। यही स्वतंत्र विवेक सत्य को जानने में समर्थ होता है। परतंत्र विवेक सत्य को जानने में असमर्थ होता है। स्वतंत्रता पहली भूमिका है। यह स्वतंत्रता साधनी ही होगी। इसे साधे बिना कभी कोई सत्य के संबंध में गति नहीं होगी। कितने ही शास्त्र पढ़ें, कितने ही शब्द समझें, कितने ही सिद्धांत याद कर लें, बस शब्द ही याद हो जाएंगे और कुछ भी नहीं होगा। और शब्द मस्तिष्क को व्यर्थ ही भर देंगे। और बहुत शब्द किसी ज्ञान का लक्षण नहीं है।
शब्द तो पागल में भी बहुत होते हैं, आपसे ज्यादा होते हैं, लेकिन शब्द कोई ज्ञान का लक्षण नहीं है। और यह भी आप निश्चित समझें कि बहुत शब्द बढ़ जाएं तो आप भी पागल हो सकते हैं। पागल में और सामान्य में, पागल में और हममें कोई बहुत भेद नहीं है। हममें शब्द थोड़े कम हैं और उसमें थोड़े और ज्यादा हो गए हैं।
हर आदमी पागलपन के किनारे पर खड़ा रहता है। जरा धक्का लगा कि पागल हो सकता है। शब्द अगर और जोर से बोलने लगे तो वह पागल हो जाएगा। मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि हर तीन आदमियों में एक आदमी तो करीब-करीब पागल होने की हालत में ही है! हर तीन आदमी में! यहां जितने लोग हैं, उनमें से तीन में से एक तो पागल होने की हालत में है ही। और आप यह मत सोचना कि आपका पड़ोसी इस हालत में है। क्योंकि यह इस बात का लक्षण है कि आप गड़बड़ हालत में हैं।
अगर आपको यह ख्याल आ जाए कि मेरा पड़ोसी गड़बड़ हालत में है, तो समझना कि
आप भी गड़बड़ हालत में हैं। क्योंकि पागल यह कभी नहीं समझ पाता कि वह स्वयं पागल है। वह तो हमेशा समझता है कि दूसरा ही पागल है। यानी पागल का यह अनिवार्य लक्षण है कि वह हमेशा यह समझता है कि दूसरे लोग पागल हैं! पागल को आप समझा नहीं सकते कि वह पागल है, क्योंकि अगर इतना ही वह समझ जाए तो सबूत हो गया कि वह पागल नहीं है। हम करीब-करीब उस हालत में पहुंचते जा रहे हैं! प्रतिदिन लाखों व्यक्ति स्वयं को विक्षिप्तता के आक्रमण में घिरा पाते हैं! जल्दी ही वह समय आ जाएगा कि सभ्य संसार में घरों के समक्ष लगी सबसे ज्यादा तख्तियां मनोचिकित्सकों की होंगी! आज भी जो देश बहुत प्रगतिशील हैं, वहां वैसी स्थिति आनी शुरू हो ही गई है!
शायद अकेले अमेरिका में ही पंद्रह से तीस लाख व्यक्ति रोज अपने मानसिक रोगों के लिए विशेषज्ञों से सलाह लेते हैं! उनकी बीमारी क्या है? विचारों की बीमारी है। विचार बढ़ते जाते हैं और उनका होश क्षीण होता जाता है, एक सीमा पर संतुलन खो जाता है। विचार अबाध और असंगत और अनियंत्रित गति से घूमने लगते हैं। स्वयं में तो शांति कभी भी नहीं थी, लेकिन अब उस अशांति की तरंगें बाहर भी आने लगती हैं। स्वयं में जागृति कभी भी नहीं थी, लेकिन अब भीतर की मूर्च्छा दैनंदिन कार्यों को भी प्रभावित करने लगती है। यह कोई नई स्थिति नहीं है! बस मात्रा-भेद है। विचारों की मात्रा भर बढ़ गई है। यही मूर्च्छा विक्षिप्तता बन जाती है।
आप भी देखें--जागें और देखें कि क्या आपमें भी विचार की ऐसी ही विक्षिप्त गति नहीं है, --ऐसी मात्रा और तीव्रता नहीं है? दस मिनट बैठ जाएं और जो-जो विचार आएं, उन्हें लिखें ईमानदारी से। उनमें से एक भी न छोड़ें, जो भी आए--आधा आए तो आधा लिखें, पूरा आए तो पूरा लिखें। दस मिनट एक कागज पर लिखें और फिर किसी को दिखाएं। वह कहेगा कि यह किसी पागल ने लिखा है। और यदि आपको यह खुद ही समझ में आ जाए कि यह किसी पागल ने लिखा है तो जानना कि पागलपन के करीब तो आप हैं, लेकिन अभी कुछ किया जा सकता है!
जो आपके भीतर चल रहा है, वह उघाड़ कर देखा जा सके तो आप खुद घबरा जाएंगे
कि मैं कैसा पागल हूं, क्योंकि यह क्या चल रहा है, यह क्या मेरे भीतर हो रहा

है। लेकिन हम कभी रुक कर देखते नहीं कि वहां भीतर क्या हो रहा है और हम समझते हैं कि हम बहुत विचारवान हैं!
मित्र, मात्र विचारों से भरा होना, विचारवान होना नहीं हैं। विचार को, विवेक को, ज्ञान को तो केवल वही उपलब्ध होता है, जो कि विचारों से मुक्त हो जाता है। विचारों की भीड़ के कारण कोई विचारवान नहीं होता। सभी पागल ऐसा समझते हैं! और इसीलिए आपको यह पता हो जाना चाहिए कि जो तथाकथित विचारक अतिविचार में पहुंच जाते हैं, वे पागल हो जाते हैं।
क्या आपको ज्ञात है कि संसार में जो बड़े-बड़े विचारक, कवि, लेखक और चित्रकार हुए हैं, उनमें से बहुतों ने अंततः पागलखानों में शरण ली है? मुझे तो ऐसा लगने लगा है कि अब जो और दूसरे विचारक पागल नहीं हैं, वे जरूर कुछ थोड़े कम विचारक होंगे। एक वक्त आ जाएगा कि जो विचारक पागलखाने होकर न आया हो, हम समझेंगे कि कोई छोटी कोटि का विचारक है। ठीक भी है।
विचार की अंतिम परिणति पागलपन में है, विक्षिप्तता में है।
इसलिए महावीर को, बुद्ध को, क्राइस्ट को, लाओत्सु को मैं विचारक नहीं कहता हूं। वे विचारक नहीं हैं, ज्ञानी हैं। ज्ञानी और विचारक में जमीन आसमान का अंतर है। जो जानते हैं, वे विचार नहीं करते हैं। और जो नहीं जानते हैं, वही केवल विचार करते हैं। मैं यहां बैठा हूं, सभा खत्म होगी, हम सब उठेंगे और दरवाजे से निकल जाएंगे। कोई विचार नहीं करेगा कि दरवाजा कहां है, क्योंकि दरवाजा हमें दिखाई पड़ रहा है।
लेकिन एक अंधा आदमी यहां बैठा हो, जैसे ही सभा खत्म होगी, वह सोचेगा कहां से जाऊं, कहां दरवाजा है, कहां द्वार है, वह विचार करेगा!
जो देख सकता है, वह विचार नहीं करता। जो नहीं देख सकता है, वह विचार करता है। विचार अज्ञान का लक्षण है। वह ज्ञान का लक्षण नहीं है। तो जितना ही आप विचार करते हैं, समझें कि उतना ही ज्यादा गहन आपका अज्ञान है। विचारों से उस अज्ञान को ही भरने की तो कोशिश चलती है। वह प्रयास एकदम थोथा और व्यर्थ है। वह तो वैसा ही है, जैसे कि कोई अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में विचार इकट्ठा कर आंखों की कमी पूरी करने के ख्याल में हो। अंधापन आंखों से मिटता है और अज्ञान भी। विवेक की आंखें न हों, तो विचारों की भीड़ बस विक्षिप्त ही कर सकती है। और विक्षिप्त अंधे से साधारण अंधा ही बेहतर होता है।
ज्ञान उत्पन्न हो तो विचार क्षीण हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। मैंने कहा कि विचार को देखें और उसको क्षीण होने दें।
सजग होने से विचार शून्य होता है, साक्षी होने से विचार शून्य होता है।
और जब विचार शून्य हो जाता है तो विवेक मुक्त हो जाता है।
फिर वह विवेक शास्त्र से नहीं है, सिद्धांत से नहीं है। सत्य को जानने में उसकी गति हो जाती है। स्वतंत्र विवेक छोड़ देता है किनारा। वह अनंत सागर में प्रवेश करता है।
एक छोटी सी कहानी कह कर अपनी चर्चा को पूरी करूंगा।
एक रात कुछ मित्र मौज में थे और उन्होंने कहीं जाकर खूब शराब पी। फिर
वे सोचें कि चांद पूरा है, रात बहुत सुंदर और रम्य है। चलो हम चलें और एक झील में नौका-यात्रा करें। वे गए और एक नाव में बैठे और यात्रा शुरू की। उन्होंने पतवारें उठाईं और पतवारें चलाईं। वे रात के आखिरी पहर तक नाव चलाते रहे।
फिर सुबह की ठंडी हवाएं आने लगीं और चांद डूबने को होने लगा। ठंडी हवाओं ने उनके नशे को उखाड़ दिया। कुछ लोग ताजे हुए और उन्होंने कहा कि हम बहुत दूर निकल आए। अब वापस लौटें, क्योंकि घर पहुंचते-पहुंचते दोपहर हो जाएगी, इतने दूर निकल आए हैं अपने किनारे से। ऐसा सोच वे तट पर उतरे, यह देखने को कि कहां हैं, और तट पर जो थे उनसे पूछने को कि कहां हैं। लेकिन तट पर उतरते ही वे हैरान हो गए! वे कहीं भी नहीं गए थे! नाव वहीं खड़ी थी, क्योंकि वे जंजीर खोलना भूल गए थे! उस नाव की जंजीर वहीं बंधी थी! उन्होंने नाव की पतवार बहुत चलाई, लेकिन वे कहीं पहुंच न सके! वे तो ठगे से रह गए, क्योंकि वे व्यर्थ ही रात भर परेशान हुए। और बड़ा सोचते थे कि बड़ी यात्रा हो गई है, किंतु वहीं के वहीं खड़े थे!

मैं कहता हूं कि जीवन में भी ऐसा ही होता है। जिसका विचार और विवेक मुक्त होना चाहता है, उसे विश्वास के किनारे से जंजीर खोलनी है। और जिसकी विश्वास से जंजीर बंधी है, वह स्मरण रखे कि सत्य के जगत में उसकी, कोई यात्रा नहीं हो सकती! वह कहीं नहीं पहुंचेगा। अंत में वह पाएगा कि जहां से उसने प्रारंभ किया था वह वहीं खड़ा है! यात्रा व्यर्थ हुई, पतवार चलाना व्यर्थ हुआ। समाज ने, परंपरा ने उसे जो विचार दिए थे, उन्हीं विश्वासों पर वह खड़ा है मरते वक्त। ऐसे आदमी का जीवन दुर्भाग्य है, उसकी यात्रा व्यर्थ हो गई। वह नाव और उसकी जंजीर को किनारे से खोलना भूल गया।
किनारे से खोल लें अपनी जंजीर को। समाज ने जो दिया है, किसी दूसरे ने
जो दिया है, उससे अपनी जंजीर को खोल लें और विवेक को मुक्त होने दें। मुक्त विवेक ही परमात्मा तक ले जाने में पथ बनता है। और बंधन, विचार और विश्वास परमात्मा को रोकने वाली जंजीरें हो जाती हैं। हम सब जंजीरों में बंधे हैं। इन जंजीरों में बंधे होने के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं हो पाता है। साहस करें और जंजीर को छोड़ दें और फिर देखें कि आपकी नाव कहां जाती है। मैं अंत में यही प्रार्थना करता हूं अपनी नाव को खोल लो, अपनी नाव के पालों को तो उड़ाओ। परमात्मा की हवाएं उसे हमेशा अनंत में ले जाने को तैयार हैं।
मित्रो, अपनी नाव को तो खोलो, अपनी पालों को तो उड़ाओ। परमात्मा की हवाएं आपकी सदा से प्रतीक्षा कर रही हैं। और सत्य का अज्ञात सागर आपको बुला रहा है! क्या उसकी पुकार आपको सुनाई नहीं पड़ती है?
धन्य हैं वे लोग, जो उसकी पुकार सुन लेते हैं। और जो अपनी नाव खोल लेते हैं और अपने पाल खोल लेते हैं। और अभागे हैं वे लोग, जो अपनी नाव को बांधे रहते हैं और श्रम करते हैं और अंत में असफल हो जाते हैं।
प्रभु आपको सामर्थ्य दे कि आप अनंत की पुकार पर यात्रा पर निकल सकें
और आपकी नाव खुल सके। विश्वास के किनारे से ज्ञान के असीम सागर में आपका प्रवेश हो सके।
स्मरण रहे कि जो साहस करते हैं, परमात्मा उनके साथ है। और जो कमजोर हैं, रुके रह जाते हैं, परमात्मा उनके लिए क्या कर सकता है!